गणेश-तत्त्वका महत्त्व

(स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

मानव मानव होनेके नाते जन्मजात साधक है। ...के लिये उपयोगी होता है। कारण कि सत्सङ्ग ...का स्वधर्म है। स्वधर्मनिष्ठ होनेसे ही साधक धर्मात्मा, जीवन्मुक्त तथा भक्त हो सकता है। इस दृष्टिसे सत्सङ्ग ही अग्रगण्य देव गणेशकी पूजा है। सत्यको स्वीकार करना 'सत्सङ्ग' है। बुराईरहित होकर साधक धर्मात्मा होता है और अकिंचन, अचाह, अप्रयत्नपूर्वक साधक जीवन्मुक्त होता है तथा आत्मीयतासे जाग्रत् अखण्ड-स्मृति एवं अगाधप्रियतासे भक्त होता है। यह सत्सङ्ग अर्थात् गणेश-तत्त्वका महत्त्व है।

सच्चर्चा, सच्चिन्तन और सत्कार्यके द्वारा सत्सङ्गकी माँग जाग्रत् होती है। सत्सङ्ग मानवका स्वधर्म है। चर्चा, चिन्तन तथा कार्यके लिये पराश्रय और परिश्रम अपेक्षित है, किंतु सत्सङ्गके लिये पराश्रय तथा परिश्रमकी अपेक्षा नहीं है। अतः सत्सङ्ग स्वाधीनतापूर्वक साध्य है। निज ज्ञानके प्रकाशमें यह स्पष्ट विदित होता है कि शरीर और संसारसे मानवकी जातीय भिन्नता है। जिनसे जातीय भिन्नता है, उससे नित्य-योग तथा आत्मीयता सम्भव नहीं है। इस दृष्टिसे केवल जो अनुत्पन्न हुआ अविनाशी, स्वाधीन, स्वरूप, चिन्मय, अनादि, अनन्त तत्त्व है, उससे मानवकी जातीय एकता है और वही मानवका अपना है। अपनेमें अपनेकी अखण्ड स्मृति तथा अगाधप्रियता स्वतः होती है। स्मृतिके जाग्रत् होते ही इन्द्रियाँ अविषय, मन निर्विकल्प तथा बुद्धि सम हो जाती है और फिर स्मृति, योग, बोध तथा प्रेमसे अभिन्न कर देती है। इस दृष्टिसे सत्सङ्ग ही एकमात्र सिद्धिदायक है। जो सिद्धिदायक है, वही गणेश-तत्त्व है।

गणेश-तत्त्वको अपनाये बिना अन्य किसी भी प्रकारसे साध्यतत्त्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। कारण कि सत्सङ्गसे ही असत्‌का त्याग और इस दृष्टिसे साध्यकी माँग ही साध्यकी प्राप्तिमें हेतु है। साध्य उसे नहीं कहते, जो सदैव, सर्वत्र, सभीमें न हो; और साधक भी उसे नहीं कहते, जिसमें साध्यकी माँग न हो। इस सत्यको स्वीकार करनेपर साधक स्वतः साधन-तत्त्वसे अभिन्न हो जाता है, जो साधकका जीवन तथा साध्यकी महिमा है। साध्यके अस्तित्व, महत्त्व तथा अपनत्वको स्वीकार करना 'सत्सङ्ग' है। साधकके लिये साध्यसे भिन्न किसी अन्य वस्तुका अस्तित्व ही नहीं है। इस वास्तविकताको अपना लेनेपर साधक अकिंचन, अचाह तथा अप्रयत्नपूर्वक साधन-तत्त्वसे अभिन्न हो जाता है, यह आस्थावान् साधकोंका अनुभव है। माँग और कामका पुञ्ज ही केवल सीमित अहम्-भाव है। स्वभावजनित माँगके सबल होनेपर प्रमादसे उत्पन्न हुए कामका नाश हो जाता है और फिर माँग स्वतः पूरी हो जाती है, जिसके होते ही सीमित अहम्-भावका अन्त हो जाता है और फिर केवल साधन-तत्त्व और साध्यका नित्य विहार ही शेष रहता है।

जिस प्रकार साध्य अखण्ड, असीम तथा अनन्त है, उसी प्रकार साधन-तत्त्व भी असीम तथा अनन्त है। साधककी अभिन्नता साधन-तत्त्वसे होती है। साधन-तत्त्वसे ही साध्यको नितनव-रस मिलता है, जो क्षति, पूर्ति और निवृत्तिसे रहित होनेसे असीम है। साधकमें ही असीम साधन-तत्त्व और अनन्त साध्य तत्त्व विद्यमान हैं। परंतु यह रहस्य एकमात्र सत्सङ्गसे ही स्पष्ट होता है। इस दृष्टिसे गणेश-तत्त्वके द्वारा ही साधक प्रेम और प्रेमास्पदसे अभिन्न होता है। इसी रहस्यको बतानेके लिये गौरी-शंकर, सीता-राम और राधा-कृष्णके विहारकी चर्चा है। गणेश-तत्त्वको गौरी और शिवका आत्मज कहा है। पूर्ण तत्त्वसे ही साधन-तत्त्वकी अभिव्यक्ति होती है। साधन-तत्त्व और साध्यमें असत्‌के त्यागसे ही अकर्तव्य, असाधन और आसक्तिका नाश होता है ... फिर स्वतः साधकमें साधन-तत्त्वकी अभिव्यक्ति होती ... साधन-तत्त्व साधकको साध्यसे अभिन्न कर देता है। ... जीवनका सत्य है। अकर्तव्यका अन्त होते ही कर्तव्यपरायणता स्वतः आती है। कर्तव्यपरायणतासे विद्यमान रागकी निवृत्ति होती है तथा सुन्दर समाजका निर्माण ... ही नहीं, कर्तव्यनिष्ठ साधकके जीवनमें ... गन्ध भी नहीं रहती। कारण कि ... अपना अधिकार समझता है। ... होते ही साधक क्रोधरहित हो जाता है। ... न रहनेपर स्वतः योग तथा स्मृति जाग्रत् ... बोधसे स्मृति प्रेमसे अभिन्न कर देती है। समस्त ... परिणति प्रेम-तत्त्वमें होती है। प्रेम-तत्त्व ... और प्रेमीका जीवन है और प्रेम-तत्त्वकी प्राप्तिमें ... पूर्णता है। यही साधकके विकासकी चरम सीमा है।

साधकके पुरुषार्थका आरम्भ और अन्त सत्सङ्गमें ही निहित है। सत्सङ्ग शरीरधर्म नहीं है, अपितु आत्मधर्म है। स्वधर्मको अपनानेमें सभी साधक सर्वदा स्वतन्त्र हैं। स्वधर्मनिष्ठ हुए बिना सर्वतोमुखी विकास सम्भव नहीं है। स्वधर्मनिष्ठ होनेमें किसी प्रकारकी पराधीनता तथा असमर्थता नहीं है। 'स्व'को यह बोध स्वतःप्राप्त है कि समस्त दृश्य एक ही इकाई है और जिसकी माँग है, वह भी अद्वितीय ही है और जिसमें माँग है, वह 'मैं'-तत्त्व भी एक ही है। अब विचार किया जाय कि माँगका अनुभव 'स्व'-को स्वतः होता है और जब माँग सबल तथा स्थायी हो जाती है, तब कामका स्वतः नाश हो जाता है। कामका नाश होते ही माँग अपने-आप पूरी हो जाती है। यह जीवनका सत्य है, स्वरूपसे अभिन्नता है। उस अभिन्नताका स्पष्टीकरण सत्सङ्गसे ही अर्थात् गणेश-तत्त्वसे ही होता है, जो कि जीवनका सत्य है।

गणेश-तत्त्व अनुत्पन्न हुआ अलौकिक तत्त्व है। जिस

प्रकार साधकको शरीर और संसा

और अदर्शनका बोध है, उसी प्रका

उत्पत्तिका बोध है और न परिवर्तन

इस दृष्टिसे 'स्व'-तत्त्व ही गणेश-तत्त्व

की माँग होती है। माँग ही 'है'की

'है'में और 'है' 'स्व'में ओत-प्रोत है

अस्तित्वको स्वीकार करता है, तब

होती है। साधकका स्वधर्म 'है'के मह

स्वीकार करना है। साधक जिसके मह

है, उसीमें उसका नित्य वास रहता

महत्त्वको स्वीकार करता है, उसीमें अ

जो सदैव, सर्वत्र, सभीका अपना है, उस

और अपनेमें ही स्वीकार करना साधकक

'सत्सङ्ग' है। इस प्रकार प्रत्येक साधक अ

पूजा कर बड़ी सुगमतापूर्वक प्रेम तथा

बन जाता है।

वेदमें गणपति

(वेददर्शनाचार्य स्वामी श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी महाराज, उदासीन)

'तत्पुरुषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती सर्वान्तर्यामी ब्रह्माने व्यासका

लकः गणानाम्—देवसंघानां विद्याधरादिभेदेनानन्तानां सम्बन्धिनम्; गणपतिम्—गजाननं शिवतनयम्; कवीनाम्—क्रान्तदर्शिनाम्; कविम्—क्रान्तदर्शिनम्; उपमश्रवस्तमम्—उपमीयते अनया इति उपमा, सर्वेषामन्नानामुपमानं श्रवः अन्नं यस्य सः उपमश्रवाः, उपपूर्वात् माधातोः करणेऽङ्प्रत्ययेरिति ह्रस्वः, अतिशयेन स उपमश्रवाः उपमश्रवस्तमः, सर्वाश्रोपमितसर्वोत्तमम्; ज्येष्ठराजम्—ज्येष्ठानां प्रशस्यानां देवानां राजानं भूपतिं सर्वदेवोत्तमम्; ब्रह्मणाम्—मन्त्राणां स्वामिनम्; त्वा—त्वाम्; हवामहे—वयं स्तोतारः अस्मिन् कर्मणि आह्वयामः; नः—अस्माकं स्तुतिम् शृण्वन्—आकर्णयन्; ऊतिभि—रक्षणैः, सादनम्—सदनं यज्ञशालां हृदयं वा; सीद—आसीद, आगत्य उपविशेत्यर्थः।

'हे कर्मोंके पालक! आप विद्याधरादि देवगणोंके पति, त्रिकालदर्शी, अमितान्नवान्, सकलदेवोत्तम, मन्त्रोंके स्वामी हैं। हम सब स्तोता आपका आह्वान करते हैं। आप हमारी स्तुति सुनकर रक्षण-शक्तिसहित हमारी यज्ञशालामें अथवा हृदयमें पधारकर विराजमान होइये।'

'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥'

(शुक्लयजु० १६ । २५)

गणेभ्यः—देवानुचरा भूतविशेषा गणास्तेभ्यः; गणपतिभ्यः—विश्वनाथमहाकालेश्वरादिवत् पीठभेदेन भिन्नेभ्यो गजवदनेभ्यः; वः—युष्मभ्यम् 'च'—समुच्चये, नमो नमः इति द्विरुक्तिरादरार्थो; व्राताः—सङ्घाः; व्रातपतयः—यूथपतयस्तेभ्यः; गृत्साः—मेधाविनः; गृत्सपतयः—मेधाविपतयश्च तेभ्यः; विलक्षणं रूपं येषां ते विरूपाः—दिगम्बरपरमहंसजटिलास्तुरीयाश्रमिणस्तेभ्यः; विश्वम्—सर्वं रूपं येषां ते विश्वरूपाः, ब्रह्माद्वैतदर्शनेन सर्वेष्वात्मभावमापन्ना ज्ञानिनः तेभ्यः। शिष्टं समानम्।

'देवानुचर गणविशेषोंको, विश्वनाथ महाकालेश्वर आदिकी तरह पीठभेदसे विभिन्न गणपतियोंको, सङ्घोंको, सङ्घपतियोंको, बुद्धिशालियोंको, बुद्धिशालियोंके परिपालन करनेवाले उनके स्वामियोंको, दिगम्बर-परमहंस-जटिलादि चतुर्थाश्रमियोंको तथा सकलात्मदर्शियोंको नमस्कार हो।'

'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥'

(शुक्लयजु० २३ । १९)

गणानाम्—स्वस्वकार्यविशेषेषु नियुक्तानां शिवानुचराणां सम्बन्धिनम्, स्वामिपुत्रत्वाद् आदरणीयम्; अपि वा गणानाम्—गणदेवानां विश्वेषां देवानाम्, मरुताम् एकोनपञ्चाशत्संख्यानाम्, अष्टानां वसूनाम्, एकादशानां रुद्राणाम्, द्वादशानामादित्यानां मान्यम्, नूतनकार्यारम्भे पूजनीयं विघ्नहर्तृत्वात्; गणपतिम्—गणपतिसंज्ञं शिवतनयं गणेशम्; त्वा—त्वाम्; हवामहे—आह्वयामः। प्रियाणाम्—अभीष्टानां सम्बन्धिनं तेषां दातारम्; प्रियपतिम्—प्रियाणां प्रेमास्पदधनसुतधान्यादीनां पतिं पालकम्, न केवलं तेषां दातारम् दत्तानां रक्षकञ्चेति भावः; त्वा—त्वाम्; हवामहे आह्वयामः। निधीनाम्—सुखनिधीनां दयानिधीनां वा मध्ये निधिपतिम्—निधीनां पूर्वोक्तानां पतिम् मुख्यम्। निरतिशयसुखनिधिं दयालुशिरोमणिञ्चेति तात्पर्यम्। नवानां निधीनां शास्त्रप्रसिद्धानां स्वामिनमिति वा। किं बहुना वसो—वसति यस्मिन् विश्वम्, वासयति विश्वम्, सर्वत्र वसतीति वा वसुः, तत्सम्बोधने वसो! विश्वाधार! विश्ववासनहेतो! विश्वव्यापक! वा त्वम्; मम—त्वत्पादपद्मप्रपन्नस्य त्वदाराधकस्य त्राता भवेति शेषः। अहम् उपासकः; गर्भधः—गर्भे स्वोदरमध्ये विश्वं दधातीति गर्भधः, स्वोदरवर्तिचतुर्दशभुवनः, तम् जगत्स्वामिनम्, अतएव लम्बोदरम्; अजानि—गच्छेयम्, प्राप्नुयाम्, लभेय। गर्भधम्—गर्भे हृदयमध्ये ध्यानेन स्थापयतीति गर्भधस्त्वदुपासकस्तम्, हृदि दिवानिशं तव ध्यातारम् माम्; आ अजासि—आगच्छ। मम मनस्याविर्भूतो भव। सततं तिष्ठेति भावः।'

'अपने अपने कर्तव्य विशेषमें नियुक्त शिवानुचरोंके स्वामिपुत्र होनेसे सत्करणीय, अथवा विश्वेदेव अर्थात् उनचास मरुद्गण, आठ वसु, बारह आदित्य तथा ग्यारह रुद्र—इन गणदेवोंमें विघ्ननिवारक होनेसे नूतन कार्यारम्भमें पूजनीय शिवपुत्र गणेशका हम साधक आह्वान करते हैं। अभीष्ट पुत्र, धन धान्यादिके प्रदाता—दाता ही नहीं, अपितु उन अभीष्ट पुत्रादियोंके रक्षक आपका हम आह्वान करते हैं। सुखनिधि एवं दयानिधि देवोंके मध्यमें निरतिशयानन्दरूपसे एवं दयालु शिरोमणि, अथवा शास्त्रप्रसिद्ध नव निधियोंके पालक आपका हम आह्वान करते हैं। अधिक क्या कहें,

...शित होकर प्रातःकालके सूर्यके समान उनका शरीर ...तिमान् हो जाया करता है, उसी प्रकार गणेशजीका ...ार मूनके लगनेसे भयानक न प्रतीत होकर अतिसुन्दर ...त होता है। हिमवान्-कुमारी श्रीपार्वतीजी ही आद्या ...ति हैं। उसी प्रकृतिके सात्त्विक अंशसे व्यवसायात्मिका ...की उत्पत्ति होती है, इसी भावको सूचित करनेके ...े शास्त्रोंमें गणेशजीका जन्म श्रीपार्वतीजीसे हुआ बताया ...ा है। अव्यवसायात्मिका—कुतर्क-बुद्धिको ही गणेशजीके ...ल मूषकरूपसे दर्शाया गया है। सुबुद्धि ही कुतर्क-बुद्धिको ...नेमें समर्थ है। जिस प्रकार चूहा वस्तुके गुणोंपर ध्यान ...कर उसे काटकर नष्ट कर देता है, उसी प्रकार कुतर्क ...े भी भावके सारासारको न देखती हुई उसे खण्डित कर ...र्थ बना देती है। इसीलिये सुबुद्धिरूप गणेशजीका वाहन कुतर्करूप चूहा बताया गया है। जिस महापुरुषमें सुबुद्धि जितनी विशाल होती है, उसकी अपेक्षासे उसमें कुतर्क-बुद्धि भी उतनी ही स्वल्प होती है, इस भावको सूचित करनेके लिये गणेशजी उतने ही विशालकाय और उनका वाहन चूहा उतना ही छोटा है। यही गणपतिके स्वरूपका संक्षेपमें रहस्य है।

अर्वाचीन सज्जनोंको वेदमें गणपति-नामके अनुल्लेखकी भ्रान्ति उपर्युक्त वेद-मन्त्रोंके प्रमाणसे दूर की गयी। साथ ही गणपतिके ध्येयस्वरूप और उसके गूढ रहस्यका परिचय पाठकोंको दिया गया।

अगजाननपद्मार्कं गजाननमहर्निशम्।
अनेकदं तं भक्तानामेकदन्तमुपास्महे॥

श्रीगणेश—परम देवता

(श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)

स्मार्त पञ्चदेवोपासक होते हैं। ये पाँच देव—१—श्रीविष्णु, ...—श्रीशिव, ३—श्रीशक्ति, ४—श्रीसूर्य और ५—श्रीगणपति हैं। ...नमें जो स्मार्त वैष्णव हैं, वे विष्णुको ही मुख्य अङ्गी और ...न चारोंको उनके अङ्ग मानकर पूजन करते हैं। इसी प्रकार ...मार्त शैव शिवको, शाक्त शक्तिको, सौर सूर्यको और ...ाणपत्य गणेशजीको मुख्य मानते हैं। पूजा वे पाँचोंकी करते हैं। वास्तवमें देखा जाय तो नाम-रूपकी विभिन्नता होनेपर भी ...त्त्वतः ये पाँचों एक ही हैं; क्योंकि मुख्य तत्त्व तो एक अद्वैत है, किंतु उपासकोंकी भावनाके अनुसार लोग उसी एकको ही विविध नाम-रूपोंसे पूजते, मानते और स्मरण करते हैं—'रूपैस्तु तैरपि विभासि यतस्त्वमेकः।'

'गणेश'-शब्दका अर्थ है—'जो समस्त जीव-जातिके 'ईश'—स्वामी हों—'गणानां जीवजातानां यः ईशः—स्वामी स गणेशः।' इन भगवान् गणपतिका सृष्टिके आदिमें प्रादुर्भाव हुआ। कुछ लोगोंका कहना है कि 'ये अनार्योंके देवता हैं। आर्योंने अनार्योंको अपनेमें मिलानेके लिये इन्हें पञ्चदेवोंमें स्वीकार कर लिया।' ऐसी विचारधारा उन विदेशियोंकी है, जो आर्योंको ...े बाहरसे आया मानते हैं, जो कि असभ्यावस्थामें कुछ ...र्व विदेशोंसे आकर भारतमें बसे और शनैः-...े भ्रान्त विचार हैं। हमारे वेद शास्त्रोंके अनुसार तो सृष्टिका आरम्भ ही पुष्करसे हुआ। आर्य सदासे यहींके निवासी हैं। वे आरम्भमें असभ्य नहीं, पूर्ण सभ्य थे। वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य और क्रतु—ये सब पूर्ण पुरुष परम सभ्य थे। राम, कृष्ण, परशुराम आदि अवतार यहीं अवतरित हुए। न जाने कितने सत्ययुग त्रेता, द्वापर और कलियुग बीत गये, हमारे यहाँ आर्य अनार्यका कोई प्रश्न ही नहीं रहा। दो तरहके मनुष्य होते थे—नगर निवासी और वनवासी। दोनों स्वतन्त्र तथा एक दूसरेके पूरक होते थे। गणपति अनादिकालसे आर्योंके परम पूजनीय देव रहे हैं। समस्त मङ्गलकार्योंमें सबसे प्रथम गणेशजीकी पूजा होती है। शिवजीका जब पार्वतीजीके साथ विवाह हुआ तो सर्वप्रथम गणेश-पूजन तब भी हुआ।

कुछ लोग शङ्का करते हैं—'गणेशजी तो शिवजीके पुत्र हैं; उनके विवाहमें तो वे पैदा भी नहीं हुए थे; फिर उनका पूजन कैसे हुआ?'

वास्तवमें गणेशजी किसीके पुत्र नहीं। वे अज, अनादि एवं अनन्त हैं। ये जो शिवजीके पुत्र गणेश हुए, वे तो उन गणपतिके अवतार हैं। जैसे विष्णु अनादि हैं; राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन, हयग्रीव—ये सब उनके अवतार हैं। मनु, प्रजापति, रघु, अज—ये सभी रामकी उपासना करते थे।

दशरथ-नन्दन राम उन अनादि रामके अवतार हैं। इसी प्रकार शिव-तनय गणपति उन गणेशके अवतार हैं। इस सम्बन्धकी पुराणोंमें अनेकों कथाएँ हैं।

'ब्रह्मवैवर्तपुराणमें' बताया गया है कि एक बार भगवान् श्रीकृष्ण वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर पार्वतीजीके समीप गये और उनकी स्तुति करके कहने लगे— 'हे देवि ! गणेश रूप जो श्रीकृष्ण हैं, वे कल्प कल्पमें तुम्हारे पुत्र होते हैं। अब वे शिशु होकर शीघ्र ही तुम्हारी गोदमें आयेंगे।' ऐसा कहकर विप्ररूपधारी श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। तब एक अत्यन्त सुन्दर, सुकुमार, सर्वाङ्गमनोहर शिशु माँ पार्वतीजीकी शय्यापर प्रादुर्भूत हो गया। बालक इतना सुन्दर और सुगठित शरीरका था कि उसे देखनेके लिये समस्त ऋषि-मुनि, ब्रह्मा विष्णु आदि देवतागण आने लगे। एक दिन उस सुन्दर शिशुको देखने शनिदेव भी आये। शनिदेवकी पत्नीने किसी बातसे रुष्ट होकर उन्हें शाप दे दिया था कि 'तुम जिसकी ओर देखोगे, उसका सिर धड़से पृथक् हो जायगा।' अतः वे आकर चुपचाप पार्वतीजीके समीप बैठ गये। पार्वतीने बार-बार कहा—'शनि ! तुम मेरे पुत्रको देखते क्यों नहीं, देखो, कितना सुन्दर सुललित शिशु है।' शनिने बहुत कहा—'माँ ! मेरी घरवालीने मुझे शाप दे दिया है, जिसके कारण मेरी दृष्टि अनिष्ट कारक हो सकती है।' किंतु माँने उनकी बात मानी नहीं; देखनेको कहती ही रहीं। शनिकी भी इच्छा, उस शिशुको देखनेकी हुई। ज्यों ही उन्होंने गणेशकी ओर देखा, त्यों ही उनका सिर धड़से पृथक हो गया। इससे सर्वत्र हाहाकार मच गया। तब भगवान् विष्णु पुष्पभद्रा नदीके पास गजशिशुका मस्तक काटकर लाये और मस्तकपर जमा दिया। तभीसे गणेशजी गजानन...

स्कन्दपुराणमें लिखा है—'माँ पार्वतीने अपने ... बत्तियोंसे एक शिशु बनाकर उसे जीवित करके ... लिया और कहा— 'मैं स्नान कर रही हूँ, तुम किसीको ... अन्दर आने देना।' इसी बीच शिवजी आ गये ... शिवजीको रोका। दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। शिव... मस्तक काट लिया। इसे सुनकर पार्वतीजी 'पुत्र! ... बहुत रुदन करने लगीं। उसी बीच गजासुर शि... आया। शिवजीने उसका मस्तक काटकर इनके ... दिया। इससे ये 'गजानन' हुए।

इसी प्रकारकी पुराणोंमें अनेक कथाएँ हैं। ... सभी सत्य हैं। गणेश परम देवता हैं। इन... गणपति, विनायक, सुमुख, एकदन्त, गजक... लम्बोदर, विकट, धूम्रकेतु, गजानन, विघ्नेश... गजास्य, शूर्पकर्ण तथा मूषकध्वज आदि अनेक...

(छप्पय)

भूत-गरिस बड़ कान भक्त अनुकम्पा...
अच्युत, जगके हेतु, सृष्टिके आदि ...
प्रकृति पुरुष तैं परे ध्यान गनपति को ...
नसैं सकल तिनि बिघ्न अवसि भव-सागर ...
पाठ-हवन-पूजन करें, पाप रहित होवैं ...
सब बिघ्ननि तें छूटिकैं, छोड़ि जनम नहिं पु...

देव-देव ! भक्तनके मानसमें आइये !

मंत्रमय गनेस बिघन-हरन सदा गाइये।
प्रथम आदि गाय-गाय सकल सिधि पाइये॥
मंत्रको सरूप सोई गजमुख ठहराइये।
मंत्र-भाग चारि भुजा भालचंद ध्याइये॥
अंकुश-सी दूय ज्ञान रूप सो यताइये।

श्रीगणेश तत्त्वतः राम, कृष्ण, शिव आदिसे अभिन्न हैं

(नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान्‌का वास्तविक स्वरूप कैसा है, इस बातको तो ही जानते हैं, परंतु इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा ता है कि भगवान् अनेक रूपों और नामोंसे प्रसिद्ध नेपर भी यथार्थमें एक ही हैं; भगवान् या सत्य कदापि दो ीं हो सकते। भगवान्‌के अनन्त रूप, अनन्त नाम और नन्त लीलाएँ हैं। वे भिन्न भिन्न स्थलों और अवसरोंपर न्न भिन्न नाम-रूपोंमें अपनेको प्रकाशित करते हैं। भक्त पनी-अपनी रुचिके अनुसार भगवान्‌के भिन्न-भिन्न स्वरूपों ी उपासना करते हैं और अपने इष्टरूपमें ही उनके दर्शन ाकर कृतार्थ होते हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि क भक्तका उपास्य स्वरूप दूसरे भक्तके उपास्य स्वरूपसे थक् होनेके कारण दोनों स्वरूपोंकी मूल एकतामें कोई भेद ै। वे ही ब्रह्म हैं, वे ही राम हैं, वे ही कृष्ण हैं, वे ही शिव हैं, वे ही विष्णु हैं, वे ही सच्चिदानन्द हैं, वे ही माँ जगज्जननी ैं, वे ही सूर्य हैं और वे ही गणेश हैं।

जो भक्त इस तत्त्वको जानता है, वह अपने इष्ट रूपकी उपासनामें अनन्यभावसे संलग्न रहता हुआ भी अन्यान्य सभी भगवत्-स्वरूपोंको अपने ही इष्टदेवके रूप मानता है; इसलिये वह किसीका भी विरोध नहीं करता। वह अनन्य श्रीकृष्णोपासक होकर भी मानता है कि 'मेरे ही मुरलीधर श्यामसुन्दर भगवान् कहीं श्रीराम-स्वरूपमें, कहीं शिव स्वरूपमें, कहीं गणेश-स्वरूपमें, कहीं माँ कालीके स्वरूपमें और कहीं निर्लेप निराकार ब्रह्मरूपमें उपासित होते हैं; मेरे ही श्यामसुन्दर अव्यक्तरूपसे समस्त विश्व-ब्रह्माण्डमें नित्य एकरस व्याप्त हैं; वे ही मेरे नन्दनन्दन त्रिकालातीत, भूमा, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म हैं; वे ही मेरे पुरुषोत्तम आत्मरूपसे समस्त जीव-शरीरों में स्थित रहकर उनका जीवत्व सिद्ध कर रहे हैं; वे ही समय समयपर भिन्न-भिन्न रूपोंमें अवतीर्ण होकर संत भक्तोंको सुख देने और धर्मकी संस्थापना करते हैं और वे ही जगत्‌के पृथक्-पृथक् उपासक-समुदायोंके द्वारा पृथक्-पृथक् रूप-गुण-भावसम्पन्न होकर उनकी पूजा ग्रहण करते हैं। प्रत्येक परमाणुमें उन्हींका नित्य निवास है।' इसी प्रकार अनन्य श्रीरामोपासक, अनन्य श्रीशिवोपासक और श्रीगणेशो पासकोंको भी—सबको अपने ही प्रभुका स्वरूप, विस्तार और ऐश्वर्य समझना चाहिये। जो मनुष्य दूसरेके उपास्य इष्टदेव को अपने प्रभुसे भिन्न मानता है, वह प्रकारान्तरसे अपने ही भगवान्‌को छोटा बनाकर उनका अपमान करता है। वह असीमको ससीम, अनन्तको स्वल्प, व्यापकको एकदेशी और विश्वपूज्यको क्षुद्रसम्प्रदायपूज्य बनाता है। केवल हिंदुओंके ही नहीं, समस्त विश्वकी विभिन्न जातियोंके पूज्य परमात्मदेव यथार्थमें एक ही सत्य तत्त्व हैं। ये सारे भेद तो देश, काल, पात्र, रुचि, परिस्थिति आदिके भेदसे हैं, जो भगवत्कृपासे भगवान्‌की प्राप्ति होनेके बाद आप ही मिट जाते हैं; अतएव अपने इष्टस्वरूपका अनन्य उपासक रहते हुए ही वस्तुगत भेदको भुलाकर सबमें, सर्वत्र, सब समय परमात्माके दर्शन करने चाहिये। यह समस्त चराचर विश्व उन्हीं भगवान्‌का शरीर है, उन्हींका स्वरूप है—यह मानकर कर्तव्य-बोधसे जीवमात्रकी सेवा करके भगवान्‌को प्रसन्न करना चाहिये। सम्प्रदायभेदके कारण एक-दूसरेके उपास्यदेवकी निन्दा करना अपराध है।

अतएव सारे भेदमूलक विरोधी द्वेष-भावोंको त्यागकर अपनी-अपनी भावना और मान्यताके अनुसार भगवान्‌की भक्ति करनी चाहिये। उपासना करते-करते जब भगवान्‌की कृपाका अनुभव होगा, तब उनके यथार्थ स्वरूपका अनुभव आप ही हो जायगा। भगवान्‌का वह रूप कल्पनातीत है। मनुष्यकी बुद्धि वहाँतक पहुँच ही नहीं पाती। निराकार या साकार भगवान्‌के जिन जिन स्वरूपोंका वाणीसे वर्णन या मनसे मनन किया जाता है, वे सब शाखाचन्द्र-न्यायसे भगवान्‌का लक्ष्य करानेवाले हैं; यथार्थ नहीं। भगवान्‌का स्वरूप तो सर्वथा अनिर्वचनीय है। इन स्वरूपोंकी वास्तविक निष्काम उपासना से एक दिन अवश्य ही भगवत्कृपासे यथार्थ स्वरूपकी उपलब्धि कर भक्त-जीवन धन्य और कृतार्थ हो जायगा। फिर भेदकी सारी गाँठें अपने-आप ही पटापट टूट जायँगी। परंतु इस लक्ष्यके साधकको पहलेसे ही सावधान रहना चाहिये। कहीं विश्वव्यापी भगवान्‌को अल्प बनाकर हम उनकी तामसी पूजा करनेवाले न बन जायँ; कहीं असीमको सीमाबद्ध कर हम उनका तिरस्कार न कर बैठें। भगवान् महान्‌से महान् और अणुसे अणु हैं; त्रिकालमें नित्य स्थित और त्रिकालातीत

पञ्चदेवोपासनामें श्रीगणेशका स्थान

(महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी भजनानन्दजी सरस्वती महाराज)

शास्त्रीय प्रमाणोंसे पञ्चदेवोंकी उपासना सम्पूर्ण कर्मोंमें व्याप्त है। 'शब्दकल्पद्रुम' कोशमें लिखा है—

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥

पञ्चदेवोंकी उपासनाका रहस्य पञ्चभूतोंके साथ सम्बन्धित है। पञ्चभूतोंमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश प्रख्यात हैं और इन्हींके आधिपत्यके कारणसे आदित्य, गणनाथ (गणेश), देवी, रुद्र और केशव—ये पञ्चदेव भी पूजनीय प्रख्यात हैं। एक एक तत्त्वका एक-एक देवता स्वामी है—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

क्रम निम्न प्रकार है—

महाभूत	अधिपति
१–क्षिति (पृथ्वी)	शिव
२–अप् (जल)	गणेश
३–तेज (अग्नि)	शक्ति (महेश्वरी)
४–मरुत् (वायु)	सूर्य (अग्नि)
५–व्योम (आकाश)	विष्णु

यह विषय गम्भीरतासे मननीय तथा गवेषणीय है। इस विषयमें अल्प ही संकेत दिये जा सकते हैं। भगवान् श्रीशिवके पृथ्वीतत्त्वके अधिपति होनेके कारण उनकी पार्थिव-पूजाका विधान है। भगवान् विष्णुके आकाशतत्त्वके अधिपति होनेके कारण उनकी शब्दोंद्वारा स्तुतिका विधान है। भगवती देवीके अग्नि-तत्त्वका अधिपति होनेके कारण उनका अग्निकुण्डमें हवनादिके द्वारा पूजाका विधान है। श्रीगणेशजीके जलतत्त्वके अधिपति होनेके कारण उनकी सर्वप्रथम पूजाका विधान है। मनुका कथन है—'अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।' (मनुस्मृति १। ८) इस प्रमाणसे सृष्टिके आदिमें एकमात्र वर्तमान जलका अधिपति गणेश हैं। अतः जितने भी अनुष्ठान किये जायँ, उनके आरम्भमें पूजन . है। सूर्यके वायुतत्त्वके नी रक्षाके रे 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (यजुर्वेद ७। ४२) इस प्रमाणसे नमस्कारादिद्वारा पूजनका विधान है।

'मन्त्र योग संहिता'में कहा गया है—

'मानवानां प्रकृतय पञ्चधा परिकीर्तिताः।
यतो निरूप्यते सर्गः पञ्चभूतात्मकैर्बुधैः॥
भिन्ना यद्यपि भूतानां प्रकृतिः प्रकृतेर्वशात्।
तथापि पञ्चतत्त्वानामनुसारेण तत्त्ववित्॥
प्रत्येकतत्त्वप्राचुर्यं विमृश्य विधिपूर्वकम्।
उपासनाधिकारस्य पञ्चभेदमवर्णयत्॥

तात्पर्य यह है कि समस्त जगत् पञ्चभूतात्मक है। इसलिये तत्सम्बन्धी पञ्चदेवोंकी उपासना अनिवार्य है। प्रत्येक पूजामें पञ्चदेवोपासनाका विधान है—'गणेशादिपञ्चदेवताभ्यो नमः' (नारदपुराण ३। ६५)। उनमें भी सर्वप्रथम गणेशकी पूजा अनिवार्य है। इन गणेशकी पूजाके लिये अनेक प्रमाण हैं—

'गणानां त्वा' इत्यादि (शुक्लयजुर्वेदसंहिता २३। १९)

'गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद्' (६)में इनको सर्वदेवमय माना गया है और इनकी पूजासे सब देवताओंकी पूजा होती है, ऐसा लिखा है—

'त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥'

इसी प्रकार 'गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद्'में लिखा है कि 'जो गणेशकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण दोषोंसे, सम्पूर्ण विघ्नोंसे, सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है और वही सर्वविद् है—

महाविघ्नात् प्रमुच्यते। महापापात् प्रमुच्यते। सर्वदोषात् प्रमुच्यते। स सर्वविद् भवति।' (११)

इसी उपनिषद्के मन्त्र ४ में भी इनकी पूजा और जपका विधान है—

'गणादिं पूर्वमुच्चार्य वर्णादिं तदनन्तरम्। अनुस्वारः परतरः, अर्धेन्दुलसितम्, तारेण रुद्धम्। एतत्तव मनुस्वरूपम्। गकारः पूर्वरूपम्। अकारो मध्यमरूपम्। अनुस्वारश्चान्त्यरूपम्। बिन्दुरुत्तररूपम्। नादः संधानम्, संहिता संधिः। सैषा गणेशविद्या। ॐ गं (गणपतये नमः)।'

सिद्धिदाता गणेश

(महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज)

प्राचीन देवताओंमें सिद्धिदाता गणपतिका स्थान बहुत [ऊँचा] है। महागणपति, सिद्धिगणपति, हरिद्रागणपति आदि उनके अनेक प्रकार हैं। गणपतिकी उपासना प्राचीन भारतकी पञ्चदेवोपासनामें एक मुख्य उपासना है। [इस]के आधारपर अनेक लोग अनेक प्रकारसे गणेशकी [उपासना] किया करते हैं। इनके मूलमें गणपतिके प्रति [उनकी] श्रद्धाकी अधिकता देखनेमें आती है। वर्तमान [काल]में कोई-कोई रूपकके रूपमें गणपतिकी व्याख्या करते हैं। [उनके] अनुसार वे सिद्धिदायक दिव्य शक्तिके एक रूपकके [सिवा] और कुछ भी नहीं हैं। गणपति-तत्त्वकी शास्त्रीय आलोचना [करने]पर ज्ञात होता है कि एक प्रकारसे गणपति ॐकारके [प्र]तीक हैं। ऐतिहासिक दृष्टिसे देवतत्त्वका विश्लेषण करना [वर्तमा]न युगमें शिक्षाका एक अङ्ग है। अध्यापक मैकडानल्ड (Macdonlld) आदि बहुतोंने गवेषकोंने इस विषयमें [अपनी] शक्ति अपनी विद्या-बुद्धिका उपयोग किया है। गणपतिके [सम्बन्ध]में बहुत-सी ऐतिहासिक और अनैतिहासिक कहानियाँ [प्रचलित] हैं। उन सबकी भलीभाँति आलोचना करनेसे ज्ञात [होता] है कि वैदिक युगके साथ-साथ उन सबमें एक प्रकारका [सामञ्जस्]य है। वस्तुतः सत्यका रूप विभिन्न दिशाओंमें विभिन्न [प्रका]रसे प्रकाशित होता है। गणपतिका वह हस्ति-शुण्ड [प्राची]न युगके चिन्तनका निदर्शन है। वर्तमान युगके मनीषीगण [इस आ]कारको अधिकांशमें गणपतिका एक प्रतीक मानते हैं। [यह] माङ्गल्य-वाचक है, विचित्र एवं विशिष्ट शक्तिका निदर्शन [है।] मैं आशा करता हूँ कि यह गणपति विषयक अनुसंधान पूर्णरूपमें प्रकाशित होनेपर गणपतिके सम्बन्धमें प्राचीन [ऋषि]योंकी चिन्तन धारा कुछ अंशमें अभिव्यक्त हो सकेगी।

गणपतिकी आराधनाके अनेक प्रकारभेद हैं। विभिन्न [प्रका]रके प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये उनकी विभिन्न प्रकारकी [उपा]सनाका प्रवर्तन हुआ है। परंतु मूलभाव सर्वत्र एक ही है। [गण]पतिके हस्ति-शुण्ड क्यों है, इसके पौराणिक तथा ऐतिहासिक [अ]नेक कारण हैं। भाव-जगत्में भी इसका एक तात्पर्य है। [जैसे] एक ओर जैसे प्रति विशेषका अङ्गविशेष दीर्घ पड़ना है, उसी प्रकार दूसरी दृष्टिसे इसकी तात्त्विक गवेषणाके लिये भी बहुत गुंजाइश है। गणेश-उपासनाके भी अनेक प्रकारभेद हैं। हरिद्रागणपतिकी बात बहुत सुननेमें आती है, किंतु मूलमें वहाँ हस्तिशुण्ड भी नहीं है। उसमें किसी देवताका नाम है, इसमें संदेह नहीं। हमारे प्राचीन आर्य लोगोंने पञ्चदेवोपासनाका जो क्रम निबद्ध किया था, उसी क्रममें गणपतिकी उपासनाका एक स्थान है। यह उपासना भारतीय लोगोंकी विशिष्टता है। अतएव भारतीय सभ्यताकी अति प्राचीन अवस्थाके साथ इसका योग रहा है। गणपति सिद्धिदाताके रूपमें प्रसिद्ध हैं। सारी उपासनाका अन्त सिद्धिका सूचक होता है। ओंकार-उपासना जैसे माङ्गलिक है, वैसे ही गणपतिकी उपासना भी माङ्गलिक मानी जाती रही है। सब उपासनाओंकी दो दिशाएँ हैं—एक आदिम और दूसरी अन्तिम। इस दृष्टिसे सब प्रकारकी उपासनाके मूलमें एक ही तत्त्व रहता है और उसके अन्तमें उसी तत्त्वका पूर्ण विकास होता है। पञ्चदेवतामें प्रत्येकके साथ प्रत्येक आत्मसंतानका परिचय है और उसकी चरम स्थितिके सम्बन्धमें भी सर्वत्र एक ही रहस्य रहता है।

इस सम्बन्धमें विभिन्न लेखकोंसे प्राप्त विभिन्न दृष्टिकोणोंसे रचित निबन्धावली प्राप्त होनेपर निबन्धावलीके अन्तमें चरम रहस्यके रूपमें गणपति-तत्त्वकी आलोचना सम्भव हो सकेगी। गणेशके सम्बन्धमें अनेक बातें अनेक पुराणोंमें विभिन्न प्रकारसे विभिन्न स्थानोंमें वर्णित हुई हैं। उन सब बातोंका तत्त्व निर्णय करके ग्रन्थावलीके सम्पादक महोदय इस गणपति तत्त्वके रहस्यकी व्याख्या करेंगे। उस व्याख्याको देखनेके लिये हम सब उत्कण्ठित हैं। उसमें गणपति सम्बन्धी समस्त विचारधाराओंका संक्षिप्तरूपमें प्रकाशन होगा। अनेक साधनाओंके अनेक रहस्य प्रकाशित होंगे। उस शुभ दिनके लिये प्रार्थना करते हुए मैं अब अपनी लेखनीको विश्राम दे रहा हूँ। इन लेखोंमें वैदिकयुगके गणपति, पौराणिक गणपति और तान्त्रिक गणपति तत्त्वके साथ सामञ्जस्य प्रदर्शित होगा, ऐसी आशा है।

[illegible] । है । इसका अर्थ यह हुआ कि 'ओंकार ही [illegible]दि घटक द्रव्य है । नाद या शब्द इस प्रकार- [illegible] घटक द्रव्य होनेसे उसका या विश्वका उत्पाद्य- [illegible] भाव सम्बन्ध सिद्ध होता है । विश्व-पदार्थोंके पृथक्- [illegible] घटक द्रव्य शब्द होनेके कारण उनके उच्चारणकी [illegible] प्रक्रिया ज्ञात होनेपर उक्त उच्चारणके अनुरूप पदार्थ [illegible] देने लगेगा । उन समस्त शब्दोंको ध्वनि-लहरीका [illegible] कहा जा सकता है । तात्पर्य यह है कि ओंकार ही [illegible] मूल कारण है; और विश्वके अन्तर्गत जो-जो, जितने [illegible] हैं, वे वस्तुतः ध्वनि-लहरीकी सृष्टि हैं । इसी ध्वनि- [illegible] संज्ञा 'वेद' है । 'वेद' अनन्त होनेसे 'अनन्ता वै वेदाः' [illegible] उपलब्ध होता है । मनुस्मृति (१ । २१) के [illegible] एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ।'' इस वचनद्वारा [illegible] यह निर्माण क्रम शास्त्रानुसार ही वर्णित है; और यह [illegible] देखकर जो उसका उपयोग नहीं कर सकता, [illegible] वेदाध्ययन व्यर्थ है । इस बातका प्रत्यक्ष उल्लेख [illegible] 'किमृचा करिष्यति' (१ । १६४ । ३९) इस मन्त्रद्वारा किया गया है । आजकलके बढ़े हुए विज्ञान [illegible] वा आधुनिक प्रयोगशालाओंमें भी शब्द अथवा नाद- [illegible]की उत्पादन क्षमता अब सिद्ध हो चुकी है । उत्पादक [illegible]न-लहरी और उससे उत्पन्न होनेवाले पदार्थका [illegible] न तो वाच्यार्थ है, न लक्ष्यार्थ है और [illegible] व्यङ्ग्यार्थ ही है; अपितु स्वर्ण और उसके अलंकारमें जैसा स्वयम्भू एवं नैसर्गिक सम्बन्ध है, वैसा ही स्वयम्भू-सम्बन्ध है । इसी अभिप्रायसे श्रीतुकाराम महाराजने ओंकारको 'कल्पोंका बीज' (विश्व-सृष्टिका मूल कारण) कहा है । ओंकार और ईश्वरके इस सम्बन्धको दृष्टिमें रखकर ही भगवान् पतञ्जलिने उसे 'ईश्वरका वाचक' कहा है । ओंकारके इस स्वरूपको ध्यानमें रखकर उसे ईश्वरके समान ही उपास्य बतलाया गया है—

> एतन्नानावताराणां　निधानं　बीजमव्ययम् ।
> यस्यांशांशेन　सृज्यन्ते　देवतिर्यङ्नरादयः ॥
>
> (श्रीमद्भा० १ । ३ । ५)

'यह नाना अवतारोंका निधान (आकर) और अविनाशी बीज है, जिसके अंशांशसे देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादिकी सृष्टि होती है ।'

ओंकार और गणेश एक ही हैं

'श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष'में कहा गया है कि 'ओंकारका ही व्यक्त स्वरूप गणपति देवता हैं ।' सब प्रकारके मङ्गल-कार्यों और देवता प्रतिष्ठापनके आरम्भमें श्रीगणपतिकी पूजा करनेका कारण यही है । जिस प्रकार प्रत्येक मन्त्रके आरम्भमें ओंकारका उच्चारण आवश्यक है, उसी प्रकार प्रत्येक शुभावसरपर गणपतिकी पूजा अनिवार्य है । यह परम्परा शास्त्रीय है और इसे किसी गणेशभक्तने प्रारम्भ नहीं किया है । वैदिक धर्मान्तर्गत समस्त उपासना-सम्प्रदायोंने एक स्वरसे इस प्राचीन परम्पराको स्वीकार कर इसका अनुसरण किया है ।

'मन ! गननायक विनायक मनाइये ।'

अगाय वरद यह एकरद द्विरद है, द्विरद-बदन को [illegible] ।
वि-नायक नायक विनायक के पाय [illegible] ॥
कवि 'ग्वाल' याके [illegible] में
सब [illegible]
विपति [illegible] [illegible]दन
[illegible] ॥

विविध गणेश

(अनन्तश्री जगद्गुरु रामानुजाचार्य पुरुषोत्तमाचार्य रङ्गाचार्यजी महाराज)

'गणपति' स्वरूपकी जिज्ञासामें प्रवृत्त पूर्वाचार्योंने वेदोंमें प्रतिपादित पदार्थ विद्या एवं योगजधर्मसे उत्पन्न आर्षचक्षुद्वारा —तन्त्र, पुराण एवं श्रौतसूत्र आदि आर्षग्रन्थोंमें यह निर्णय किया है कि विश्वका आधार प्राण (शक्ति) 'गणपति' है । प्रतिष्ठा प्राण, आलम्बन प्राण, स्थिति प्राण, नियमन-प्राण आदि इसके नामान्तर हैं । 'पाञ्चरात्र-तन्त्र' में इसका नाम 'आधारशिला' है । परमात्मा ही 'गणपति'-रूपसे परिणत होते हैं, यह निर्णय तत्त्व-चिन्तकोंने किया है ।

गणेशोपासना—ईश्वरोपासना

'अङ्गोपासना अङ्गीकी उपासना है'—यह निर्णय वेदान्त-मीमांसामें किया गया है । 'तैत्तिरीय उपनिषद्' (१ । ५ । १) में उपलब्ध 'अङ्गान्यन्या देवताः'के आधारसे 'गणपति' अङ्गी परमात्माके अङ्ग हैं। इस प्रकार अङ्गरूप इस गणपतिकी उपासना भी अङ्गीरूप परमात्माकी उपासना हो जाती है ।

इन आधाररूप 'गणपति'को आधार बनाकर ही कूर्म-प्राण, शेष प्राण, गन्ध-प्राण, रस-प्राण (क्षीराब्धि), रूप प्राण, स्पर्श-प्राण एवं शब्द प्राण आदि अनेक आधेय प्राण स्थित, विकसित एवं स्थिर रहते हैं; अतः यह प्राण (आधेय) अनेक प्राणगणोंका पति (आधार) होनेसे वेदोंमें 'गणपति'-शब्दसे अभिहित है । किं बहुना, इसकी स्थिरतामें विश्व स्थिर एवं इसके विक्षोभमें वह विक्षुब्ध हो जाता है ।

अधिदैवत (ब्रह्माण्ड) में इस प्राणका पृथ्वीमें अतिशय विकास है, अतः 'तन्त्रशास्त्र'में पृथिवीको 'गणपति' मान लिया गया है । दूसरे शब्दोंमें 'पृथिवी गणेशका स्थूलतम रूप है ।' अर्थात् पार्थिव आग्नेय प्राण (देवता) ही विश्वका आधार है ।

योगमें विहित 'भक्तियोग'में 'भूतशुद्धि' ... (पदार्थविद्या)के अनुकूल है । पृथिवीसे ... कारण ही 'गणपति'का 'गं'—यह बीज मन्त्र ... वेदकी परिभाषामें 'गं' यह पृथिवीका ... गुण गन्ध है ।

योगमार्गमें निर्दिष्ट इस भक्तियोगका ... स्थित 'गणपति' प्रारम्भ है और सहस्रारमें विराजमान ... पर्यवसान है । एक ही उपासना (भक्ति) ... भेदसे 'भक्ति' एवं 'प्रपत्ति'—इन दो नामोंसे वेदोंमें ... होती है । 'गणपति'से लेकर 'शिव'तक वह ... वही विष्णुमें प्रविष्ट होकर 'प्रपत्ति' है । इस प्रसङ्गमें ... यही है कि वेदोंमें भक्ति एवं प्रपत्तिमें स्वरूपतः भेद न ... केवल अवस्थाकृत भेद माना गया है । ... साधनावस्था 'भक्ति' एवं फलावस्था 'प्रपत्ति' है । कि ... तरुण-ज्ञान वैराग्यसहकृता भक्ति ही 'प्रपत्ति' है और ... ज्ञान-वैराग्यसहकृता भक्ति 'भक्ति' है ।

आधार-प्राणरूप इस 'गणेश'का अभ्या... विकास 'मूलाधार'में होता है; अतः मूलाधारचक्र ... है । इसका नामान्तर 'मूलग्रन्थि' भी है । मूलग्र... यह 'गणपति' सुमेरुके मूलमें स्थित है; अतः यह ... पर्वोंमें स्थित देवगणोंका पति (आधार) होनेसे 'गणपति' ...

वेदोंमें आधारका दूसरा पर्याय 'ब्रह्म'-शब्द भी ... अतः 'मूलग्रन्थि'का नामान्तर 'ब्रह्मग्रन्थि' भी है । 'ऋक्-प्रातिशाख्य'में उपलब्ध 'बिभर्ति इति ब्रह्म' निर्वचनसे 'ब्रह्म'-शब्दका अर्थ 'आधार' है । इस निर्वचनसे उपलब्ध 'ब्रह्म'-शब्दका सविशेष है; अतः ब्रह्मसूत्र भाष्यकारोंका निर्विशेष मानना वेदप्रतिपादित पदार्थ ... है ।

पदार्थोंमें गणेशका आवास

गिशास्त्रका विज्ञान है कि इस 'प्रतिष्ठा'-प्राणरूप े'का आवास पदार्थोंके देहमध्य (केन्द्र) में रहता है 'देहमध्य' भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें भिन्न-भिन्न स्थलोंमें है। केवल प्राणियोंके विषयमें 'देहमध्य'का विवेचन न् याज्ञवल्क्यने इस प्रकार किया है—

गुदात्तु द्व्यङ्गुलादूर्ध्वमधो मेढ्राच्च द्व्यङ्गुलात् ।
देहमध्यं तयोर्मध्ये मनुष्याणामितीरितम् ॥
चतुष्पदां तु हृदयं तिरश्चां तुन्दमध्यमम् ।
द्विजानां तु वरारोहे तुन्दमध्यमितीरितम् ॥

अर्थात् मनुष्य—प्राणियोंमें 'देहमध्य' गुदासे दो अङ्गुल एवं शिश्न (लिङ्ग) से दो अङ्गुल नीचे है। इसमें पति'का आवास है। ब्रह्मा, शेष एवं कूर्मका भी यही वास है। पशुओंमें हृदय देहमध्य है। उनके हृदयमें पतिका आवास है। पक्षियोंका देहमध्य तुन्द (उदर)का यभाग है। अतः उसमें गणेशका आवास है, अर्थात् पक्षियों उदर-मध्यमें गणपतिका आवास है। वृक्षोंके मूलमें गणेश- ा निवास है। भूमिके भी केन्द्रमें गणेश, शेष, कूर्म आदि ण निवास करते हैं। ये सब पृथिवीको धारण करते हैं, तः 'शेषेण धर्तुं धराम्' यह कवियोंने कहा है।

विविध गणेश

विश्वकी आधार-शक्ति (प्राण) 'गणपति' है, यह कहा गया है। अब विविध गणपतियोंमें यह 'महागणपति' है यह बात कही जायगी। यह 'आधार-शक्ति' वस्तु भेदसे असंख्य एवं विविध है। उससे अभिन्न होनेके कारण गणपति भी असंख्य एवं विविध हैं। उनके नाम, रूप (आकृति), वर्ण (रंग), वस्त्र, आयुध, वाहन एवं कार्य आदि भी असंख्य एवं विविध हैं। उन सबका सम्पूर्णरूपसे वर्णन अशक्य है तो भी तत्त्ववेत्ताओंने उनमेंसे कतिपय विविध गणपतियों, उनके नामों, आकृतियों, वर्णों, वस्त्रों, आयुधों एवं वाहनोंका निर्देश 'श्रीतत्त्वनिधि' एवं 'श्रीविद्यार्णव-तन्त्र' आदि ग्रन्थोंमें किया है, उनके आधारसे कतिपय गणपतियोंके वैविध्यका वर्णन यहाँ दिया जाता है।

पर्याय नहीं

अमरकोश (१ । ३८) में 'अप्येकदन्तहेरम्बलम्बोदर-गजाननाः' शब्द आदि गणेशके पर्यायवाचक हैं। अर्थात् ये शब्द एकार्थक हैं, किंतु वेदमें देवतावाचक जितने भी शब्द हैं, वे परस्पर भिन्नार्थक हैं। अतः नाम भेदसे गणपति भी विविध हैं। एक शब्दका दूसरा पर्याय होता है, यह सिद्धान्त वैदिक-पदार्थविद्यामें सर्वथा त्याज्य है। कोशोंमें एक ही देवताके जो अनेक पर्याय मिलते हैं, वे केवल शब्दमात्रके परिचायक हैं। ब्रह्माके नामोंमें एक ही ब्रह्माके परमेष्ठी, हिरण्यगर्भ, पद्मभू आदि अनेक नाम निर्दिष्ट हैं; स्वामी कार्तिकेयके कार्तिकेय, कुमार, स्कन्द आदि नाम हैं तथा इन्द्रके वासव, मरुत्वान्, मघवा आदि पर्याय हैं; किंतु ये सब विभिन्नार्थक हैं।

सूर्यके ऊपर चतुर्थ अपोलोक है, जो पुराणोंमें 'क्षीर-सागर'के नामसे प्रसिद्ध है। उसमें रहनेवाला ब्रह्मा 'परमेष्ठी' है, सूर्यलोकका ब्रह्मा 'हिरण्यगर्भ' है और पृथिवीलोकका ब्रह्मा 'पद्मभूः' है। किंतु ब्रह्मा सब हैं; अतः इनको पर्याय मान लिया गया है।

स्वामी कार्तिकेयके नाम भी इसी प्रकार विभिन्नार्थक हैं। कृत्तिका-नक्षत्रोंमें जो अग्नितारा है, वह 'कार्तिकेय' है; पार्थिव उषामें जो अग्नि उत्पन्न होता है, वह 'कुमार' है; संवत्सराग्नि एवं अध्यात्ममें अहंकाराग्नि दोनों 'षण्मुख' हैं। एकके ऋतुरूप षण्मुख हैं तो दूसरेके इन्द्रियरूप षण्मुख हैं। इसी प्रकार एक ही गणपतिके एकदन्त, लम्बोदर, गजानन, गणपति, विघ्नराज, विनायक आदि अनेक पर्याय परिपठित हैं। परंतु ये सब विभिन्नार्थक हैं। इनमें पार्थिव पुरा प्राण 'एकदन्त' है, पार्थिव देश-प्राण 'गजानन' है, आन्तरिक्ष्य प्राण 'लम्बोदर' है, महत् प्राण 'गणपति' है और आकाश प्राण 'विनायक' है।

विविध गणपतियोंके नाम

'श्रीतत्त्वनिधि'-ग्रन्थमें कर्णाटकके महाराजा मुम्मडि कृष्णराज ओडयरने ३२ गणपतियोंके नाम-रूपोंका निर्देश इस प्रकार किया है।

१.बालगणपति–रक्तवर्ण, चतुर्हस्त।
२.तरुणगणपति–रक्तवर्ण, अष्टहस्त।
३.भक्तगणपति–श्वेतवर्ण, चतुर्हस्त।
४.वीरगणपति–रक्तवर्ण, दशभुज।
५.शक्तिगणपति–सिन्दूरवर्ण, चतुर्भुज।
६.द्विजगणपति–शुभ्रवर्ण, चतुर्भुज।
७.सिद्धगणपति–पिङ्गलवर्ण, चतुर्भुज।

८.उच्छिष्टगणपति—नीलवर्ण, चतुर्भुज ।
९.विघ्नगणपति—स्वर्णवर्ण, दशभुज ।
१०.क्षिप्रगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्हस्त ।
११.हेरम्बगणपति—गौरवर्ण, अष्टहस्त, पञ्चमातङ्गमुख; सिंहवाहन ।
१२.लक्ष्मीगणपति—गौरवर्ण, दशभुज ।
१३.महागणपति—रक्तवर्ण, त्रिनेत्र, दशभुज ।
१४.विजयगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्हस्त ।
१५.नृत्तगणपति—पीतवर्ण, चतुर्हस्त ।
१६.ऊर्ध्वगणपति—कनकवर्ण, षड्भुज ।
१७.एकाक्षरगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज ।
१८.वरगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्हस्त ।
१९.त्र्यक्षरगणपति—स्वर्णवर्ण, चतुर्बाहु ।
२०.क्षिप्रप्रसादगणपति—रक्तचन्दनाङ्कित, षड्भुज ।
२१.हरिद्रागणपति—हरिद्रावर्ण, चतुर्भुज ।
२२.एकदन्तगणपति—श्यामवर्ण, चतुर्भुज ।
२३.सृष्टिगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज ।
२४.उद्दण्डगणपति—रक्तवर्ण, द्वादशभुज ।
२५.ऋणमोचनगणपति—शुक्लवर्ण, चतुर्भुज ।
२६.ढुण्ढिगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज ।
२७.द्विमुखगणपति—हरिद्वर्ण, चतुर्भुज ।
२८.त्रिमुखगणपति—रक्तवर्ण, षड्भुज ।
२९.सिंहगणपति—श्वेतवर्ण, अष्टभुज ।
३०.योगगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज ।
३१.दुर्गागणपति—कनकवर्ण, अष्टहस्त ।
३२.संकष्टहरगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज ।

इस प्रकार यहाँ विविध अनन्त गणपतियोंमेंसे कतिपय गणपतियोंके केवल नाममात्रका उल्लेख किया गया है । इनकी आकृतियों, वर्णों, आयुधों एवं वाहनोंका भेद ग्रन्थोंसे जानना आवश्यक है । यहाँ केवल 'सिंहगणपति'का ...

शुण्डादण्डलसन्मृगेन्द्रवदनः शङ्खेन्दुगौरः शुभो
दीव्यद्रत्ननिभांशुको गणपतिः पायादपायात् स नः ॥

'जो दायें हाथोंमें वीणा, कल्पलता, चक्र वरद (मुद्रा) धारण करते हैं और बायें हाथोंमें रत्नकलश, सुन्दर धान्य मञ्जरी तथा अभय लिये हैं, जिनका सिंहसदृश मुख शुण्डादण्डसे सुशोभित है; जो शङ्ख और चन्द्रमाके समान गौरवर्ण हैं तथा जिनका वस्त्र रत्नोंके समान दीप्तिमान् है, वे शुभस्वरूप (मङ्गलमय) गणपति हमको अपाय (विनाश)से बचायें ।'

फल-भेदसे ध्यान-भेद

शास्त्रोंमें फल-भेदसे ध्यान-भेद विहित है । फलोंकी प्राप्तिके लिये गणेशके भिन्न-भिन्न ध्यानोंका वर्णन इस प्रकार है—

पीतं स्मरेत् स्तम्भनकार्य एनं वश्याय मन्त्री ह्यरुणं स्मरेत् ...
कृष्णं स्मरेन्मारणकर्मणीशमुच्चाटने धूम्रनिभं स्मरेत् ...
बन्धूककुसुमादिनिभं च कृष्टौ स्मरेद् बलार्थं किल पुष्टिकार्ये ...
स्मरेद् धनार्थी हरितं गणेशं मुक्तौ च शुक्लं मनुवित् स्मरेत् ...
एवं प्रकारेण गणं त्रिकालं ध्यायञ्जपन् सिद्धियुतो भवेत् स ...

'मन्त्र साधक स्तम्भन-कार्यमें गणेशजीके पीत कान्ति स्वरूपका ध्यान करे, वशीकरणके लिये उनके अ... कान्तिमय स्वरूपका चिन्तन करे । मारणकर्ममें गणेशजी ... कृष्ण-कान्तिका ध्यान करे तथा उच्चाटनकर्ममें उनके ... वर्णवाले स्वरूपका स्मरण करे । आकर्षण-कर्ममें बन्धूक पु... (दुपहरियाके फूल) आदिके समान लाल वर्णवाले गणेश... ध्यान करे; बलके लिये तथा पुष्टिकार्यमें भी वैसे ही ध्यान... विधान है । धनार्थी पुरुष इनके हरितवर्ण तथा मोक्षका... मन्त्रवेत्ता शुक्लवर्णवाले स्वरूपका चिन्तन करे । इस प्र... तीनों समय गणपतिका ध्यान और जप ...

स्वरूप गणेशकी अर्चना सबके लिये अनिवार्य है। रहस्यका प्रतिपादन सरस काव्य शैलीमें किसी ने इस श्लोकमें भली प्रकारसे किया है। इसमें अनेक दार्शनिक रचनाओंका उल्लेख भी है—

जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण
हरं वाभिभवोद्वेन
पार्वत्या ...
ख्यात.

(पादपूज्य श्री १००८ पूज्यपाद श्रीस्वामी ...

भगवान गजाननकी मान्यता भारतवर्षमें बहुत प्राचीन समयसे चली आ रही है। स्मार्त-उपासना (विष्णु, सूर्य, शक्ति, शिव और गणेश)में भी गणेशकी गणना की जाती है। वेदमें भी 'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे' (यजु० २३। १९) इत्यादि मन्त्रमें गणपतिका अर्थ ग्रहण किया गया है। यद्यपि वेदभाष्यकार उवट महीधरने इस मन्त्रका अर्थ प्रकरणानुसार कुछ और किया है, तथापि यास्कमुनिके कथनानुसार तपसे वेदमन्त्रोंके अनेक अर्थोंका साक्षात्कार किया जा सकता है; ऐसा सिद्धान्त होनेसे गणपतिपरक अर्थकी सम्भावनामें कोई संदेह नहीं किया जा सकता। अवैदिक जैन एवं बौद्ध धर्ममें भी गणेशकी मान्यता स्वीकार की गयी है। कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा है कि गणेशकी पूजा अनार्योंसे आर्योंमें आयी है। यह कथन सर्वथा अप्रामाणिक है। नेपाल, तिब्बत, कंबोडिया, चीन, जापान, मंगोलिया आदि देशोंमें भी गणेशकी प्रतिमाएँ मिली हैं, जिनसे इस उपासनाकी व्यापकता सिद्ध होती है; और यह गणेशका विज्ञान या उपासना क्रम भी भारतवर्षसे ही इन देशोंमें गया है; जैसा कि मनुमहाराजने कहा है—

> एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
> स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥
> (मनुस्मृति २। २०)

'इस देशमें पैदा हुए अग्रजन्मा ब्राह्मणोंसे संसारके सभी लोग अपने अपने चरित्र (एवं सभ्यता) को सीखें।' इसलिये इस गणेश विज्ञानको अनार्योंसे आर्योंके सीखनेका कोई प्रमाण नहीं है।

गणेश-विज्ञान

...जैसे पूर्ति
ऐसा क्षुब्ध कर
चुम्बिनी ऊर्मिमालाएँ
पूर्णतः प्रकाशमान हो
प्रणवके नादतत्त्वको फैलाकर
उद्वेलित कर देता है; जो शब्द
है; ओंकार जिसका शुण्डदण्ड है तथा
द्रष्टा (साक्षी) है, वह शक्तिनन्दन ...
आप सबके पाप तापोंका शमन करें।'

इस श्लोकमें शब्द-ब्रह्मरूप 'ॐ'का आविर्भाव ... गया है और इसी (ॐ)से श्रीगणेशजीकी रचना की गयी है, जो इस प्रकार है—प्रथम भाग—मध्य शुण्डाकार—दण्ड, ऊपर अर्द्धचन्द्र—दन्त, ...—मोदक।

और एक 'ॐ'का स्वरूप वैश्य, व्यापारी लोग अपनी बहियोंमें बनाते हैं। [चिह्न] इसे पतसिका कहते हैं।

ये ही गणेशजीके चारों हाथ हैं। यह चतुर्भुज ओंकार है।

'ओमभ्यादाने'—इस पाणिनिकी अष्टाध्यायीके ८। २। ८७ वें सूत्रके द्वारा मन्त्रके आरम्भमें प्रयुक्त 'ओम्' ... है जिसकी ...

आलम्बनरूप गणेशकी अर्चना सबके लिये अनिवार्य है। इस रहस्यका प्रतिपादन सरस काव्यशैलीमें किसी कविने इस श्लोकमें भली प्रकारसे किया है। इसमें अनेक ऐतिहासिक घटनाओंका उल्लेख भी है—

जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा व्याजाद् बलिं बध्नता
स्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं शेषेण धर्तुं धराम्।
पार्वत्या महिषासुरप्रमथने सिद्धाधिपैः सिद्धये
ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात् स नागाननः॥

८.उच्छिष्टगणपति—नीलवर्ण, चतुर्भुज।
९.विघ्नगणपति—स्वर्णवर्ण, दशभुज।
१०.क्षिप्रगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्हस्त।
११.हेरम्बगणपति—गौरवर्ण, अष्टहस्त, पञ्चमातङ्गमुख, सिंहवाहन।
१२.लक्ष्मीगणपति—गौरवर्ण, दशभुज।
१३.महागणपति—रक्तवर्ण, त्रिनेत्र, दशभुज।
४.विजयगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्हस्त।
५.नृत्तगणपति—पीतवर्ण, चतुर्हस्त।
६.ऊर्ध्वगणपति—कनकवर्ण, षड्भुज।
७.एकाक्षरगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज।
८.वरगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्हस्त।
त्र्यक्षरगणपति—स्वर्णवर्ण, चतुर्बाहु।
.क्षिप्रप्रसादगणपति—रक्तचन्दनाङ्कित, षड्भुज।
.हरिद्रागणपति—हरिद्रावर्ण, चतुर्भुज।
.एकदन्तगणपति—श्यामवर्ण, चतुर्भुज।
.सृष्टिगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज।
.उद्दण्डगणपति—रक्तवर्ण, द्वादशभुज।
ऋणमोचनगणपति—शुक्लवर्ण, चतुर्भुज।
ढुण्ढिगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज।
द्विमुखगणपति—हरिद्वर्ण, चतुर्भुज।
त्रिमुखगणपति—रक्तवर्ण, षड्भुज।
सिंहगणपति—श्वेतवर्ण, अष्टभुज।
गगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज।
र्गागणपति—कनकवर्ण, अष्टहस्त।
कष्टहरगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज।

कार यहाँ विविध अनन्त गणपतियोंमेंसे कतिपय केवल नामभावका उल्लेख किया गया है। कृतियों, वर्णों, आयुधों एवं वाहनोंका भेद

शुण्डादण्डलसन्मृगेन्द्रवदनः शङ्खेन्दुगौरः शुभो
दीव्यद्रत्ननिभांशुको गणपतिः पायादपायात् स नः॥

'जो दायें हाथोंमें वीणा, कल्पलता, चक्र और वरद (मुद्रा) धारण करते हैं और बायें हाथोंमें कमल, रत्नकलश, सुन्दर धान्य मञ्जरी तथा अभय लिये रहते हैं, जिनका सिंहसदृश मुख शुण्डादण्डसे सुशोभित है; जो शङ्ख और चन्द्रमाके समान गौरवर्ण हैं तथा जिनका वस्त्र दिव्य रत्नोंके समान दीप्तिमान् है, वे शुभस्वरूप (मङ्गलमय) गणपति हमको अपाय (विनाश) से बचावें।'

फल-भेदसे ध्यान-भेद

शास्त्रोंमें फल-भेदसे ध्यान-भेद विहित हैं। विभिन्न फलोंकी प्राप्तिके लिये 'गणेश'के भिन्न-भिन्न ध्यानोंका वर्णन इस प्रकार है—

पीतं स्मरेत् स्तम्भनकार्य एनं वश्याय मन्त्री ह्यरुणं स्मरेत् तम्।
कृष्णं स्मरेन्मारणकर्मणीशमुच्चाटने धूम्रनिभं स्मरेत् तम्॥
बन्धूकपुष्पादिनिभं च कृष्टौ स्मरेद् धनार्थं किल पुष्टिकार्ये।
स्मरेद् धनार्थी हरिवर्णमेनं मुमुक्षुश्च शुक्लं मनुवित् स्मरेत् तम्।
एवं प्रकारेण गणं त्रिकालं ध्यायन्जपन् सिद्धियुतो भवेत् सः॥

'मन्त्र साधक स्तम्भन-कार्यमें गणेशजीके पीत कान्तिवाले स्वरूपका ध्यान करे, वशीकरणके लिये उनके अरुण कान्तिमय स्वरूपका चिन्तन करे। मारणकर्ममें गणेशजीकी कृष्ण-कान्तिका ध्यान करे तथा उच्चाटनकर्ममें उनके धूम्र वर्णवाले स्वरूपका स्मरण करे। आकर्षण-कर्ममें बन्धूक पुष्प (दुपहरियाके फूल) आदिके समान लाल वर्णवाले गणेशका ध्यान करे; धनके लिये तथा पुष्टिकर्ममें भी वैसे ही ध्यानका विधान है। धनार्थी पुरुष इनके हरितवर्ण तथा मोक्षकामी मन्त्रोंका शुक्लवर्णवाले स्वरूपका चिन्तन करे।

ऐं ह्रीं श्रीं षं दुर्भगायुक्ताय खड्गिने नमः, वामस्कन्धे।

ऐं ह्रीं श्रीं शं सुभगायुक्ताय वरेण्याय नमः, हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं षं शिवायुक्ताय वृषकेतनाय नमः, हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं सं दुर्गायुक्ताय भक्ष्यप्रियाय नमः, हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं हं कालीयुक्ताय गणेशाय नमः, हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं लं कालकुब्जिकायुक्ताय मेघनादाय नमः, हृदयादिगुह्यान्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं क्षं विघ्नहारिणीयुक्ताय गणेश्वराय नमः, हृदयादिमूर्धान्तम्।

इस प्रकार शब्द-ब्रह्म श्रीगणेशस्वरूप ओंकारका मातृकाओंके साथ विस्तार किया गया है। इन्हींके योगसे तन्त्रग्रन्थोंमें अनेक स्तोत्र-मन्त्रोंका आविर्भाव किया गया है, जिससे अनेक प्रकारकी सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। इसका विशेष माहात्म्य गणेशपुराण, शिवपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदि पुराणोंमें बताया गया है। 'गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद्' भी गणपति-तत्त्वको बताता है। इसी प्रकार अन्य उपनिषद्-ग्रन्थोंमें भी इस तत्त्वका विचार किया गया है।

'ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः।' (यजुर्वेद १६।२५)

भगवान् श्रीगणेशकी विलक्षण महिमा

[एक वीतराग ब्रह्मनिष्ठ संतके सदुपदेश] (प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

भगवान् श्रीगणेश साधारण देवता नहीं हैं। वे साक्षात् अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक जगन्नियन्ता परात्पर ब्रह्म ही हैं। श्रीगणेशजी तैंतीस करोड़ देवी-देवताओंके भी परमाराध्य हैं। हम भारतीय सनातनधर्मी हिंदुओंके तो वे प्राणाधार ही हैं। जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त हमारा उनसे अखण्ड सम्बन्ध बना रहता है। प्रत्येक कार्य करनेके प्रारम्भमें श्रीगणेशजीका स्मरण करना अत्यावश्यक कर्तव्य माना गया है। पत्र या बहीखाता या ग्रन्थ लिखते समय सबसे पहले 'श्रीगणेशाय नमः' लिखकर तब आगे कुछ और लिखना होता है। किसी भी देवी देवताकी पूजा करते समय अथवा यज्ञ करते समय सबसे पहले यदि श्रीगणेश-पूजन नहीं किया गया तो नाना प्रकारकी विघ्न-बाधाएँ आ जाती हैं! दान पुण्य करिये तो पहले भगवान् गणेशजीको मनाना न भूलिये। विवाह-शादी करने, मकान बनवाने, नयी दूकान खोलनेमें सबसे पहले उन्हींकी पूजा होती है। भारतके प्राचीन राजमहल, किले, विशाल देव-मन्दिर, अट्टालिका आदिके मुख्यद्वारपर उन्हींकी मूर्ति अवश्य विराजमान मिलेगी। दीपावलीके दिन तो सभी हिंदू श्रीगणेशजी और श्रीलक्ष्मीजीका पूजन करते हैं। प्रत्येक धार्मिक-सामाजिक कार्यके पहले श्रीगणेश-पूजन एक अनिवार्य कृत्य है।

परमात्माके विवाहमें भी श्रीगणेशका पूजन

भगवान् श्रीरामचन्द्रका जब विवाह हुआ तो उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे श्रीगणेशजीकी बड़े प्रेमसे पूजा की। आशुतोष शंकरजी और पराम्बा पार्वतीने अपने विवाहके समय सबसे पहले उन्हींकी पूजा की। परब्रह्म परमात्मा श्रीगणेश सभीके पूज्य हैं। उनका स्मरण-पूजन करनेसे समस्त विघ्न-बाधाएँ तत्क्षण दूर हो जाती हैं। वे बड़े ही दयालु और करुणासिन्धु हैं।

यदि उन्होंने भगवान् श्रीविघ्न-विनाशक गणेशकी शरण नहीं ली तो एक-न-एक दिन उनका अधःपतन होनेमें तनिक भी देर नहीं लगेगा। जिन योगियों, सिद्धों, वेदान्तियों और ब्रह्मज्ञानियोंने अपने साधनके अभिमानवश विघ्नविनाशक भगवान् श्रीगणेशकी उपेक्षा की और अपने ज्ञान, योग एवं सिद्धि आदिके बलपर ही आगे बढ़नेका प्रयास किया, उनको अपने जीवनमें भीषण विघ्न-बाधाओंका सामना करना पड़ा। भगवान् श्रीगणेशकी कृपा ही सब प्रकारकी विघ्न-बाधाओंसे बचाकर हमारा लोक-परलोक बना सकती है; इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। इसीलिये कलिपावनावतार गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपने परम इष्टदेव भगवान् श्रीसीतारामजीकी प्राप्तिके लिये भगवान् श्रीगणेशकी वन्दना करना परमावश्यक माना था। उन्होंने विनयपत्रिकाके प्रथम पदमें उनकी स्तुति करते हुए कहा है—

'गाइये गनपति जगबंदन। संकर-सुवन भवानी-नंदन॥'

और अन्तमें उनसे यह वर माँगा—

गया है । इन्हीं बातोंको लेकर गणेशजीकी
भावना की गयी है; जो भिन्न-भिन्न रूपोंमें देखी
जिसका योगी लोग मूलाधार चक्रमें ध्यान करते
से समस्त योगविघ्नोंका नाश होता है, जिसका
भी अनेक प्रकारसे वर्णन किया गया है ।
वद्गीतामें भी अन्तिम गतिके समय इसके स्मरणका
बतलाया गया है—

मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥
(गीता ८ । १३)

ो पुरुष 'ॐ'—ऐसे इस एक अक्षररूप ब्रह्मका उच्चारण
हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरा चिन्तन करता
रीरका त्याग करता है, वह पुरुष परमगतिको प्राप्त
।"

ी ओंकार-ब्रह्म नाद-तत्त्वके अंदर वर्णोंका भी
त्मक है, जिसे तन्त्रशास्त्रमें 'मातृकाएँ' कहते हैं । ये
ँ ५२ हैं ।

ीशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम् ।
ीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकापीठरूपिणीम् ॥

। ५२ मातृकाओंको 'लघुषोढान्यास'के अन्तर्गत शक्ति-
णेशजी बताया गया है—

श्रीं अं श्रीयुक्ताय विघ्नेशाय नमः, शिरसि ।
ीं आं ह्रीयुक्ताय विघ्नराजाय नमः, मुखवृत्ते ।
श्रीं इं तुष्टियुक्ताय विनायकाय नमः, दक्षनेत्रे ।
ीं ईं शान्तियुक्ताय शिवोत्तमाय नमः, वामनेत्रे ।
श्रीं उं पुष्टियुक्ताय विघ्नकृते नमः, दक्षकर्णे ।
श्रीं ऊं सरस्वतीयुक्ताय विघ्नकर्त्रे नमः, वामकर्णे ।
श्रीं ऋं रतियुक्ताय विघ्नराजे नमः, दक्षनासापुटे ।
ीं ॠं मेधायुक्ताय गणनायकाय नमः, वामनासापुटे ।
... ।

ऐं ह्रीं श्रीं कं कामरूपिणीयुक्ताय गणनाथाय नमः,
दक्षबाहुमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं खं सुभ्रूयुक्ताय गजेन्द्राय नमः, दक्षकूर्परे ।

ऐं ह्रीं श्रीं गं जयिनीयुक्ताय शूर्पकर्णाय नमः, दक्ष
मणिबन्धे ।

ऐं ह्रीं श्रीं घं सत्यायुक्ताय त्रिलोचनाय नमः, दक्ष
कराङ्गुलिमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं ङं विघ्नेशीयुक्ताय लम्बोदराय नमः,
दक्षकराङ्गुल्यग्रे ।

ऐं ह्रीं श्रीं चं सुरूपायुक्ताय महानादाय नमः, वामबाहुमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं छं कामदायुक्ताय चतुर्मूर्तये नमः, वामकूर्परे ।

ऐं ह्रीं श्रीं जं मदविह्वलायुक्ताय सदाशिवाय नमः,
वाममणिबन्धे ।

ऐं ह्रीं श्रीं झं विकटायुक्ताय आमोदाय नमः,
वामकराङ्गुलिमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं ञं पूर्णायुक्ताय दुर्मुखाय नमः, वामकराङ्गुल्यग्रे ।

ऐं ह्रीं श्रीं टं भूतिदायुक्ताय सुमुखाय नमः, दक्षोरुमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं ठं भूमियुक्ताय प्रमोदाय नमः, दक्षजानुनि ।

ऐं ह्रीं श्रीं डं शक्तियुक्ताय एकपादाय नमः, दक्षगुल्फे ।

ऐं ह्रीं श्रीं ढं रमायुक्ताय द्विजिह्वाय नमः,
दक्षपादाङ्गुलिमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं णं मानुषीयुक्ताय शूराय नमः, दक्षपादाङ्गुल्यग्रे ।

ऐं ह्रीं श्रीं तं मकरध्वजायुक्ताय वीराय नमः, वामोरुमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं थं वीरिणीयुक्ताय षण्मुखाय नमः, वामजानुनि ।

ऐं ह्रीं श्रीं दं भृकुटीयुक्ताय वरदाय नमः, वामगुल्फे ।

ऐं ह्रीं श्रीं धं लज्जायुक्ताय वामदेवाय नमः, पादाङ्गुलिमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं नं दीर्घघोणायुक्ताय वक्रतुण्डाय नमः, वाम-
पादाङ्गुल्यग्रे ।

ऐं ह्रीं श्रीं पं धनुर्धरायुक्ताय द्विरण्डकाय (द्वितुण्डाय)
नमः, दक्षपार्श्वे ।

ऐं ह्रीं श्रीं वं दुर्भगायुक्ताय खड्गिने नमः, वामस्कन्धे।

ऐं ह्रीं श्रीं शं सुभगायुक्ताय शरोण्याय नमः, हृदयादि-दक्षकराङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं षं शिवायुक्ताय वृषकेतनाय नमः, हृदयादि-वामकराङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं सं दुर्गायुक्ताय भक्तप्रियाय नमः, हृदयादि-दक्षपादाङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं हं कालीयुक्ताय गणेशाय नमः, हृदयादिवाम-पादाङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं ळं कालकुब्जिकायुक्ताय मेघनादाय नमः, हृदयादिगुह्यान्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं क्षं विघ्नहारिणीयुक्ताय गणेश्वराय नमः, हृदयादिमूर्धान्तम्।

इस प्रकार शब्द-ब्रह्म श्रीगणेशस्वरूप ओंकारका मातृकाओंके साथ विस्तार किया गया है। इन्हींके योगसे तन्त्रग्रन्थोंमें अनेक स्तोत्र-मन्त्रोंका आविर्भाव किया गया है, जिनसे अनेक प्रकारकी सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। इसका विशेष माहात्म्य गणेशपुराण, शिवपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदि पुराणोंमें बताया गया है। 'गाणपत्यथर्वशीर्ष' उपनिषद् भी गणपति-तत्त्वको बतलाता है। इसी प्रकार अन्य उपनिषद् ग्रन्थोंमें भी इस तत्त्वका विचार किया गया है।

'ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः।' (यजुर्वेद १६।२५)

भगवान् श्रीगणेशकी विलक्षण महिमा

[एक वीतराग ब्रह्मनिष्ठ संतके सदुपदेश] (प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

भगवान् श्रीगणेश साधारण देवता नहीं हैं। वे साक्षात् अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक जगन्नियन्ता परात्पर ब्रह्म ही हैं। श्रीगणेशजी तैंतीस करोड़ देवी-देवताओंके भी परमाराध्य हैं। हम भारतीय सनातनधर्मी हिंदुओंके तो वे प्राणाधार ही हैं। जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त हमारा उनसे अखण्ड सम्बन्ध बना रहता है। प्रत्येक कार्य करनेके प्रारम्भमें श्रीगणेशजीका स्मरण करना अत्यावश्यक कर्तव्य माना गया है। पत्र या बहीखाता या ग्रन्थ लिखते समय सबसे पहले 'श्रीगणेशाय नमः' लिखकर तब आगे कुछ और लिखना होता है। किसी भी देवी देवताकी पूजा करते समय अथवा यज्ञ करते समय सबसे पहले यदि श्रीगणेश-पूजन नहीं किया गया तो नाना प्रकारकी विघ्न-बाधाएँ आ जाती हैं। दान पुण्य करिये तो पहले भगवान् गणेशजीको मनाना न भूलिये। विवाह शादी करने, मकान बनवाने, नयी दूकान खोलनेमें सबसे पहले उन्हींकी पूजा होती है। भारतके प्राचीन राजमहल, किले, विशाल देव-मन्दिर, अट्टालिका आदिके मुख्यद्वारपर उन्हींकी मूर्ति अवश्य विराजमान मिलेगी। दीपावलीके दिन तो सभी हिंदू श्रीगणेशजी और श्रीलक्ष्मीजीका पूजन करते हैं। प्रत्येक धार्मिक-सामाजिक कार्यके पहले श्रीगणेश पूजन एक अनिवार्य कृत्य है।

परमात्माके विवाहमें भी श्रीगणेशका पूजन

भगवान् श्रीराघवेन्द्रका जब विवाह हुआ तो उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे श्रीगणेशजीकी बड़े प्रेमसे पूजा की। आशुतोष शंकरजी और पराम्बा पार्वतीने अपने विवाहके समय सबसे पहले उन्हींकी पूजा की। परब्रह्म परमात्मा श्रीगणेश सभीके पूज्य हैं। उनका स्मरण-पूजन करनेसे समस्त विघ्न-बाधाएँ तत्क्षण दूर हो जाती हैं। वे बड़े ही दयालु और करुणासिन्धु हैं।

यदि उन्होंने भगवान् श्रीविघ्न विनाशक गणेशकी शरण नहीं ली तो एक-न-एक दिन उनका अधःपतन होनेमें तनिक भी देर नहीं लगेगी। जिन योगियों, सिद्धों, वेदान्तियों और ब्रह्मज्ञानियोंने अपने साधनके अभिमानवश विघ्नविनाशक भगवान् श्रीगणेशकी उपेक्षा की और अपने ज्ञान, योग एवं सिद्धि आदिके बलपर ही आगे बढ़नेका प्रयास किया, उनको अपने जीवनमें भीषण विघ्न-बाधाओंका सामना करना पड़ा। भगवान् श्रीगणेशकी कृपा ही सब प्रकारकी विघ्न बाधाओंसे बचाकर हमारा लोक-परलोक बना सकती है; इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। इसीलिये कलिपावनावतार गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपने परम इष्टदेव भगवान् श्रीसीतारामकी प्राप्तिके लिये भगवान् श्रीगणेशकी वन्दना करना परमावश्यक माना था। उन्होंने विनयपत्रिकाके प्रथम पदमें उनकी स्तुति करते हुए कहा है—

'गाइये गनपति जगबंदन। संकर-सुवन भवानी-नंदन ॥'

और अन्तमें उनसे यह वर माँगा—

ऐं ह्रीं श्रीं वं दुर्भगायुक्ताय खड्गिने नमः, वामस्कन्धे।

ऐं ह्रीं श्रीं शं सुभगायुक्ताय वरेण्याय नमः, हृदयादि-दक्षकराङ्गुल्यन्तम् ।

ऐं ह्रीं श्रीं षं शिवायुक्ताय वृषकेतनाय नमः, हृदयादि-वामकराङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं सं दुर्गायुक्ताय भक्ष्यप्रियाय नमः, हृदयादि-दक्षपादाङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं हं कालीयुक्ताय गणेशाय नमः, हृदयादिवाम-पादाङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं लं कालकुब्जिकायुक्ताय मेघनादाय नमः, हृदयादिगुह्यान्तम् ।

ऐं ह्रीं श्रीं क्षं विघ्नहारिणीयुक्ताय गणेश्वराय नमः, हृदयादिमूर्धान्तम्।

इस प्रकार शब्द-ब्रह्म श्रीगणेशस्वरूप ओंकारका मातृकाओंके साथ विस्तार किया गया है। इन्हींके योगसे तन्त्रग्रन्थोंमें अनेक स्तोत्र-मन्त्रोंका आविर्भाव किया गया है, जिससे अनेक प्रकारकी सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। इसका विशेष माहात्म्य गणेशपुराण, शिवपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदि पुराणोंमें बताया गया है। गाणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद् भी गणपति-तत्त्वको बताता है। इसी प्रकार अन्य उपनिषद् ग्रन्थोंमें भी इस तत्त्वका विचार किया गया है।

'ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः' (यजुर्वेद १६।२५)

भगवान् श्रीगणेशकी विलक्षण महिमा

(एक वीतराग ब्रह्मनिष्ठ संतके सदुपदेश) (प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

भगवान् श्रीगणेश साधारण देवता नहीं हैं। वे साक्षात् अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक जगन्नियन्ता परात्पर ब्रह्म ही हैं। श्रीगणेशजी तैंतीस करोड़ देवी-देवताओंके भी परमाराध्य हैं। हम भारतीय सनातनधर्मी हिंदुओंके तो वे प्राणाधार ही हैं। जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त हमारा उनसे अखण्ड सम्बन्ध बना रहता है। प्रत्येक कार्य करनेके प्रारम्भमें श्रीगणेशजीका स्मरण करना अत्यावश्यक कर्तव्य माना गया है। पत्र या बहीखाता या ग्रन्थ लिखते समय सबसे पहले 'श्रीगणेशाय नमः' लिखकर तब आगे कुछ और लिखना होता है। किसी भी देवी-देवताकी पूजा करते समय अथवा यज्ञ करते समय सबसे पहले यदि श्रीगणेश-पूजन नहीं किया गया तो नाना प्रकारकी विघ्न-बाधाएँ आ जाती हैं। दान-पुण्य करिये तो पहले भगवान् गणेशजीको मनाना न भूलिये। विवाह-शादी करने, मकान बनवाने, नयी दूकान खोलनेमें सबसे पहले उन्हींकी पूजा होती है। भारतके प्राचीन राजमहल, किले, विशाल देव-मन्दिर, अट्टालिका आदिके मुख्यद्वारपर उन्हींकी मूर्ति अवश्य विराजमान मिलेगी। दीपावलीके दिन तो सभी हिंदू श्रीगणेशजी और श्रीलक्ष्मीजीका पूजन करते हैं। प्रत्येक धार्मिक-सामाजिक कार्यके पहले श्रीगणेश-पूजन एक अनिवार्य कृत्य है।

परमात्माके विवाहमें भी श्रीगणेशका पूजन

भगवान् श्रीराघवेन्द्रका जब विवाह हुआ तो उन्होंने स्वय अपने हाथोंसे श्रीगणेशजीकी बड़े प्रेमसे पूजा की। आशुतोष शंकरजी और पराम्बा पार्वतीने अपने विवाहके समय सबसे पहले उन्हींकी पूजा की। परब्रह्म परमात्मा श्रीगणेश सभीके पूज्य हैं। उनका स्मरण-पूजन करनेसे समस्त विघ्न-बाधाएँ तत्क्षण दूर हो जाती हैं। वे बड़े ही दयालु और करुणासिन्धु हैं।

यदि उन्होंने भगवान् श्रीविघ्न-विनाशक गणेशकी शरण नहीं ली तो एक-न-एक दिन उनका अधःपतन होनेमें तनिक भी देर नहीं लगेगा। जिन योगियों, सिद्धों, वेदान्तियों और ब्रह्मज्ञानियोंने अपने साधनके अभिमानवश विघ्नविनाशक भगवान् श्रीगणेशकी उपेक्षा की और अपने ज्ञान, योग एवं सिद्धि आदिके बलपर ही आगे बढ़नेका प्रयास किया, उनको अपने जीवनमें भीषण विघ्न-बाधाओंका सामना करना पड़ा। भगवान् श्रीगणेशकी कृपा ही सब प्रकारकी विघ्न-बाधाओंसे बचाकर हमारा लोक-परलोक बना सकती है; इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। इसीलिये कलियुगपावनावतार गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपने परम इष्टदेव भगवान् श्रीसीतारामकी प्राप्तिके लिये भगवान् श्रीगणेशकी वन्दना करना परमावश्यक माना था। उन्होंने विनयपत्रिकाके प्रथम पदमें उनकी स्तुति करते हुए कहा है—

'गाइये गनपति जगबंदन। संकर-सुवन भवानी-नंदन॥'

और अन्तमें उनसे यह वर माँगा—

ऐं ह्रीं श्रीं वं दुर्भगायुक्ताय खड्गिने नमः, वामस्कन्धे।

ऐं ह्रीं श्रीं शं सुभगायुक्ताय वरेण्याय नमः, हृदयादि-दक्षकराङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं षं शिवायुक्ताय वृषकेतनाय नमः, हृदयादि-वामकराङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं सं दुर्गायुक्ताय भक्ष्यप्रियाय नमः, हृदयादि-दक्षपादाङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं हं कालीयुक्ताय गणेशाय नमः, हृदयादिवाम-पादाङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं लं कालकुब्जिकायुक्ताय मेघनादाय नमः, हृदयादिगुह्यान्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं क्षं विघ्नहारिणीयुक्ताय गणेश्वराय नमः, हृदयादिमूर्धान्तम्।

इस प्रकार शब्द-ब्रह्म श्रीगणेशस्वरूप ओंकारका मातृकाओंके साथ विस्तार किया गया है। इन्हींके योगसे तन्त्रग्रन्थोंमें अनेक स्तोत्र-मन्त्रोंका आविर्भाव किया गया है, जिससे अनेक प्रकारकी सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। इसका विशेष माहात्म्य गणेशपुराण, शिवपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदि पुराणोंमें बताया गया है। 'गणपत्यथर्वशीर्ष' उपनिषद् भी गणपति-तत्त्वको बताता है। इसी प्रकार अन्य उपनिषद् ग्रन्थोंमें भी इस तत्त्वका विचार किया गया है।

'ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः' (यजुर्वेद १६।२५)

भगवान् श्रीगणेशकी विलक्षण महिमा

[एक वीतराग ब्रह्मनिष्ठ संतके सदुपदेश] (प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

भगवान् श्रीगणेश साधारण देवता नहीं हैं। वे साक्षात् अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक जगन्नियन्ता परात्पर ब्रह्म ही हैं। श्रीगणेशजी तैंतीस करोड़ देवी-देवताओंके भी परमाराध्य हैं। हम भारतीय सनातनधर्मी हिंदुओंके तो वे प्राणाधार ही हैं। जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त हमारा उनसे अखण्ड सम्बन्ध बना रहता है। प्रत्येक कार्य करनेके प्रारम्भमें श्रीगणेशजीका स्मरण करना अत्यावश्यक कर्तव्य माना गया है। पत्र या बहीखाता या ग्रन्थ लिखते समय सबसे पहले 'श्रीगणेशाय नमः' लिखकर तब आगे कुछ और लिखना होता है। किसी भी देवी-देवताकी पूजा करते समय अथवा यज्ञ करते समय सबसे पहले यदि श्रीगणेश-पूजन नहीं किया गया तो नाना प्रकारकी विघ्न-बाधाएँ आ जाती हैं। दान-पुण्य करिये तो पहले भगवान् गणेशजीको मनाना न भूलिये। विवाह शादी करने, मकान बनवाने, नयी दूकान् खोलनेमें सबसे पहले उन्हींकी पूजा होती है। भारतके प्राचीन राजमहल, किले, विशाल देव-मन्दिर, अट्टालिका आदिके मुख्यद्वारपर उन्हींकी मूर्ति अवश्य विराजमान मिलेगी। दीपावलीके दिन तो सभी हिंदू श्रीगणेशजी और श्रीलक्ष्मीजीका पूजन करते हैं। प्रत्येक धार्मिक-सामाजिक कार्यके पहले श्रीगणेश पूजन एक अनिवार्य कृत्य है।

परमात्माके विवाहमें भी श्रीगणेशका पूजन

भगवान् श्रीराघवेन्द्रका जब विवाह हुआ तो उन्होंने स्वय अपने हाथोंसे श्रीगणेशजीकी बड़े प्रेमसे पूजा की। आशुतोष शंकरजी और पराम्बा पार्वतीने अपने विवाहके समय सबसे पहले उन्हींकी पूजा की। परब्रह्म परमात्मा श्रीगणेश सभीके पूज्य हैं। उनका स्मरण-पूजन करनेसे समस्त विघ्न-बाधाएँ तत्क्षण दूर हो जाती हैं। वे बड़े ही दयालु और करुणासिन्धु हैं।

यदि उन्होंने भगवान् श्रीविघ्नविनाशक गणेशकी शरण नहीं ली तो एक-न-एक दिन उनका अधःपतन होनेमें तनिक भी देर नहीं लगेगी। जिन योगियों, सिद्धों, वेदान्तियों और ब्रह्मज्ञानियोंने अपने साधनके अभिमानवश विघ्नविनाशक भगवान् श्रीगणेशकी उपेक्षा की और अपने ज्ञान, योग एवं सिद्धि आदिके बलपर ही आगे बढ़नेका प्रयास किया, उनको अपने जीवनमें भीषण विघ्न-बाधाओंका सामना करना पड़ा। भगवान् श्रीगणेशकी कृपा ही सब प्रकारकी विघ्न-बाधाओंसे बचाकर हमारा लोक-परलोक बना सकती है; इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। इसीलिये कलिपावनावतार गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपने परम इष्टदेव भगवान् श्रीसीतारामजीकी प्राप्तिके लिये भगवान् श्रीगणेशकी वन्दना करना परमावश्यक माना था। उन्होंने विनयपत्रिकाके प्रथम पदमें उनकी स्तुति करते हुए कहा है—

'गाइये गनपति जगबंदन। संकर-सुवन भवानी-नंदन॥'

और अन्तमें उनसे यह वर माँगा—

'मति तुलसिदास कर जोरे। परहिं रामप्रिय मानस मोरे॥'

भगवान् श्रीगणेशकी हिंदूजातिपर अद्भुत कृपा

भगवान् श्रीगणेशने हिंदूजातिके ऊपर असीम कृपा की है और उसका बड़ा उपकार किया है, इसीलिये यह उनकी ऋणी है और उन्हें कभी भुला नहीं सकती।

समस्त विश्व-साहित्यमें 'महाभारत' कोई साधारण पुस्तक नहीं, अपितु साक्षात् पञ्चम वेद है। यह अनन्त विद्याओंका भंडार है। उसपर आज समस्त विश्व मुग्ध हो रहा है। नास्तिक रूस भी महाभारतका रूसी भाषामें अनुवाद करा रहा है। ज्ञानके भंडार एवं विद्याओंकी खान पञ्चम वेद महाभारतको यदि भगवान् श्रीगणेश न लिखते तो यह अद्भुत महान् रत्न हिंदूजातिको कैसे प्राप्त हो सकता? श्रीवेदव्यासजी बोलते गये और श्रीगणेशजी इसे लिखते गये। तभी उनकी कृपासे यह महान् ग्रन्थ-रत्न हिंदुओंको प्राप्त हुआ है।

भगवान् श्रीगणेश कैसे प्रसन्न हों?

भगवान् श्रीगणेशजीको प्रसन्न करनेका साधन बड़ा ही सरल और सुगम है। उसे प्रत्येक गरीब-अमीर व्यक्ति कर सकता है। उसमें न विशेष खर्चकी, न विशेष दान-पुण्यकी, न विशेष योग्यताकी और न विशेष समयकी ही आवश्यकता है।

पीली मिट्टीकी डली ले लो। उसपर लाल कलावा (मौली) लपेट दो। भगवान् श्रीगणेश साकार रूपमें उपस्थित हो गये। रोलीका छींटा लगा दो और चावलके दाने डाल दो। पूजनकी यही सरल विधि है। गुड़की डली या चार बताशा चढ़ा दो, यह भोग लग गया और—

गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्॥

यह छोटा-सा श्लोक बोल दो, मन्त्र हो गया। बस, इतनेमात्रमें वे तुमसे प्रसन्न हो गये। कैसे दयालु हैं वे! इतना भी न बने तो दूर्वा चढ़ा दो और अपने सारे कार्य सिद्ध कर लो। इसमें कुछ भी नहीं और कुछ सबमें है। यही तो उनकी दयालुता महिमा है।

... अध:पतनका कारण भगवान् श्रीगणेशकी उपेक्षा

श्रीविघ्नविनाशक गणेशजीकी घोर उपेक्षा है। पहले धर्मप्राण भारतके प्रत्येक विद्यालयमें बालकोंसे सर्वप्रथम तख्तीपर 'श्रीगणेशाय नमः' लिखवाकर और भगवान् श्रीगणेशका पूजन करवाकर अध्यापक पढ़ाना प्रारम्भ करता था। प्रतिवर्ष सारे विद्यालयोंमें भाद्रपद श्रीगणेश-चतुर्थी (डंडा चौथ) को उनका बड़ी धूम-धामके साथ पूजन कराया जाता था, जो बस, देखते ही बनता था। समस्त भारत श्रीगणेश भक्तिके रंगमें रँग जाता था और बच्चा-बच्चा उनके प्रेममें विभोर हो जाता था। आज उसी धर्मप्राण भारतके सभी विद्यालयोंमें भगवान् श्रीगणेशका पूजन करना तो दूर रहा, उनका नाम भी नहीं लिया जाता। जबतक विद्यार्थी भगवान् श्रीगणेश और माता श्रीसरस्वतीका स्मरण-पूजन करते रहे, तबतक बालकोंकी बुद्धि शुद्ध और निर्मल रही। पर जबसे इन विद्यार्थियोंसे भगवान् श्रीगणेशका पूजन करना छुड़ाया गया, पूजनादिको पाखण्डवाद बताया गया, तबसे इन पढ़नेवाले विद्यार्थियोंकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी, जिसका घोर भयंकर दुष्परिणाम अनैतिकता, अनुशासनहीनता आदिके रूपमें प्रत्यक्ष देखनेमें आ रहा है। जो पतन यवन-शासनकालमें अथवा अंग्रेज-शासनकालमें नहीं हुआ, वह हो गया। बालकोंको अक्षरज्ञान कराते समय आजकल 'ग' माने 'गणेश' न पढ़ाकर, 'ग' माने 'गदहा' पढ़ाया जाता है।

श्रीगणेश-भक्तोंका परम कर्तव्य

भगवान् श्रीगणेशके भक्तोंको निम्नलिखित बातोंपर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

१–भगवान् श्रीगणेशका नित्यप्रति पूजन करो और प्रातःकाल उठकर सर्वप्रथम उनके चित्रका दर्शन करो।

२–किसी कार्यके आरम्भके पूर्व श्रीगणेशका स्मरण करना कदापि न भूलो।

३–अपना घर, मकान, महल बनाते समय द्वारपर आलेमें भगवान् श्रीगणेशजीकी सुन्दर प्रतिमा लगाना न भूलो, जिससे तुम्हें हर समय दर्शन-स्मरण करनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहे।

४–समाजके लिये हानिकारक तामसिक वस्तुओं (जैसे—बीड़ी या मदिरा) को बेचनेके लिये उनपर अथवा उनके व्यवसायपर गणेशजीका मार्का मत लगाओ।

... गणेशको प्रसन्न करनेके लिये स्वयं भी ... ... न मत करो।

६—पीली मिट्टीकी गणेश-प्रतिमा बनाकर उनका पूजन करनेके पश्चात् उन्हें ठीकरे किसी पवित्र स्थानपर रख दो और बादमें श्रीगङ्गा-यमुना आदि पवित्र नदियोंमें ले जाकर प्रवाहित कर दो। वह पैरोंमें न आने पाये, इस बातका पूरा-पूरा ध्यान रखो।

७—पूज्य ब्राह्मणोंके द्वारा श्रीगणेशपुराणकी कथाका श्रवण करो। गणेश-मन्दिरमें जाकर श्रीगणेशका दर्शन-पूजन करो। उनके मन्त्रका जप करो और उनके नामका संकीर्तन करो। वर्णाश्रमधर्मके अनुसार चलो और पापोंसे बचो। इसीसे तुमपर भगवान् श्रीगणेशजी प्रसन्न होंगे और तुम्हारी सब विघ्न-बाधाओंको दूरकर तुम्हारा परम कल्याण करेंगे।

जनगणके गणपति

(लेखक—आचार्य प्रभुपाद श्रीमत् प्राणकिशोर गोस्वामी)

भारतीय विज्ञान-दर्शनमें अखण्डतत्त्व-दर्शन सर्वत्र समादृत हुआ है। श्रीहर्षकृत 'खण्डन-खण्ड-खाद्यम्'-नामक दर्शनशास्त्रके ग्रन्थमें भी विचित्र चमत्कृति है और सौन्दर्य-उपलब्धिकी विराट् परिकल्पना है। गणपति गणेश-का प्राचीन ऋषियोंने दो प्रकारसे दर्शन किया है—गुरु-शिष्य-मिलन-क्षेत्रमें एवं उपनिषद्में कथित प्रत्यक्ष तत्त्व-स्वरूपमें। उपर्युक्त 'खण्डन-खण्ड-खाद्यम्' दर्शन ग्रन्थमें उनको ही कर्ता, धर्ता और हर्ता बतलाया गया है। सर्वमय गणपति नित्य 'परमात्मा' नामसे पुकारे गये हैं। उपनिषद्का कथन है कि हे गणपति! तुम आनन्दमय ब्रह्म, अद्वितीय, सच्चिदानन्द, विज्ञानात्मा हो। पञ्चतत्त्वात्मक जगत्के उद्भवस्थान हो। ध्वनितत्त्वकी परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणीमें तुम्हारा ही विस्तार है। तुम त्रिगुण, त्रिकाल तथा स्थूल-सूक्ष्म और कारण—इन त्रिविध देह-सम्बन्धोंसे अतीत, मूलाधार हो। ज्ञान, क्रिया और बल—इन तीनों शक्तियोंके परम आश्रय हो। योगी तुम्हारा ध्यान इस प्रकार करते हैं—

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्॥*

निवृत्तिदास ज्ञानदेव कहते हैं—'हे प्रणवस्वरूप गजवदन गणपति! तुम्हें नमस्कार। तुम आद्य और निखिल वेद प्रतिपाद्य हो। हे परमात्मस्वरूप! तुम स्वसंवेद्य हो। तुम्हारी जय हो। तुम सारे ज्ञानके प्रकाशक गणेशस्वरूप हो। बुद्धिके प्रकाशमें तुम एकेश्वर हो। हे पूर्णाङ्ग वेदस्वरूप! तुम्हारी मूर्ति अपूर्व सौन्दर्य-मण्डित है। तुम्हारी अङ्ग-कान्ति निर्दोष है। इस रूपको लेकर तुम विराजमान हो रहे हो। मनुस्मृति आदि शास्त्र सब तुम्हारे अवयव हैं।'

महाराष्ट्रके भक्तप्रवर एकनाथस्वामी ज्ञानेश्वरका अनुसरण करते हुए कह रहे हैं—'श्रीएकदन्तको नमस्कार। एक दन्तके कारण ही तुम अद्वितीय हो। अनन्तरूपमें प्रकाशित होकर भी विभु हो; तुम्हारे अद्वैतभावकी हानि नहीं होती। विश्व चराचरमें निवास करते हुए भी तुम लम्बोदर हो, सब जीवोंके आश्रय हो, सबके संग्राहक हो। तुम्हारे दर्शनसे दुःखमय संसार सुखमय हो उठता है।'

भक्तकवि तुलसीदास कहते हैं—

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥

(मानस १। १ सो०)

विनायक, विघ्नराज, द्वैमातुर, गणाधिप, एकदन्त, हेरम्ब, लम्बोदर, गजानन, परशुपाणि, आखुग, शूर्पकर्ण आदि नामसे गणपति पुराणों, तन्त्रों और अन्यान्य शास्त्रोंमें अभिहित होते हैं। अद्भुत है उनकी मूर्ति। वे हयग्रीव एवं नरसिंहके साथ तुलनीय हैं। नरदेहमें गज-मुण्ड केवल आजके भारतीय प्राचीन शास्त्रोंमें ही नहीं, बल्कि प्राचीन युगमें अन्य देशोंकी इतिकथामें भी इस प्रकारके अवयव-संस्थानकी बात आती है। मानव प्रकृतिके साथ पशु-जगत्के सम्मिश्रणमें इस जातीय भावनाका उद्भव हुआ है। यही बात ऋष्यशृङ्ग आदि मुनियोंके अवयव-संस्थानके सम्बन्धमें भी विचारणीय है।

गणेश, महागणेश, हेरम्ब और हरिद्रागणेश—ये तन्त्रशास्त्रमें नाना प्रकारके ध्यान और पूजाके विषय बने

* इन श्लोकोंका अर्थ पृष्ठ १५ पर देखें।

है। विविध कामनाओंकी सिद्धिके लिये पृथक्-पृथक् गणेशके प्रयोगोंकी व्यवस्था है।

गणेशका ध्यान—

वे सिन्दूरके समान रक्तवर्ण, त्रिनेत्र, स्थूल उदर तथा चतुर्भुज हैं। चारों हाथोंमें क्रमशः दन्त, पाश, अङ्कुश और वरमुद्रा है। इनके ध्वजमें मूषकचिह्न है तथा इनके मदधारासे इनका गण्डस्थल अभिषिक्त है। इनके अङ्गोंमें सर्पभूषण है तथा ये परिधानमें रक्तवस्त्र पहने हैं।

महागणेशके ध्यानमें एक विशेषता है। ये शाङ्करलिङ्गा पद्महस्ता निजप्रियाके द्वारा आलिङ्गित हैं। उनके हाथोंमें दाडिमफल, गदा, धनुष, त्रिशूल, चक्र, पद्म, पाश, उत्पल, व्रीहिगुच्छ, अपना भग्नदन्त और रत्नकलश है। तान्त्रिकाचार्य अन्य रूपमें भी उनका ध्यान बतलाते हैं। महागणेश मुक्ताके समान गौरवर्ण हैं। उनकी गोदमें उनकी पत्नी विराजित हैं। किसी प्रतिमामें ये गौरवर्ण हैं और कहीं उनका स्वरूप श्यामाङ्ग रहता है। तन्त्रमें गणेशजी गौरवर्ण, धूम्रवर्ण और रक्तवर्ण—त्रिविध वर्णित हुए हैं। मूषकवाहनके रूपमें ही श्रीगणेशकी प्रसिद्धि है। तन्त्रोक्त हेरम्ब साधनामें गजमुख गणेश सिंहवाहन हैं—

मुक्ताकाञ्चननीलकुन्दघुसृणच्छायैस्त्रिनेत्रान्वितै-
र्नागास्यैर्हरिवाहनं शशिधरं हेरम्बमर्कप्रभम्।
दृप्तं दानमभीतिमोदकरदान् टङ्कंशिरोऽक्षात्मिकां
मालां मुद्गरमङ्कुशं त्रिशिखकं दोर्भिर्दधानं भजे॥

'हेरम्ब त्रिनयन हैं। मुक्ता, स्वर्ण, नील, कुन्दकुसुम और कुङ्कुमकी शोभासे युक्त पाँच मुखवाले हैं। वे सूर्यके समान दीप्तिमान् हैं। ये अपने दस हाथोंमें क्रमशः दान, अभय, मोदक, दन्त, प्रस्तरखण्डनकारी अस्त्र टङ्क, शिर, अक्षमाला, मुद्गर, अङ्कुश और त्रिशूल धारण किये हुए हैं।'

एक दूसरे ध्यानमें देखा जाता है कि हेरम्बके हाथमें पाश, अङ्कुश, कल्पलता और गजदन्त हैं। उनके शुण्डके ऊपर दाडिमफल है।

हरिद्रागणेश हरिद्रावर्ण, हरिद्रावस्त्र और हरिद्राभूषण हैं।

समाज देवताके अनेक गण या दल हैं। सन्तान, उच्छिष्ट, हरिद्रागण, नवनीत आदि इन गणोंमें भी गणपति विग्रहका प्राधान्य स्वीकृत हुआ। वैदिक महर्षिके गायत्री—'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे' (यजुर्वेद २३। १९) मन्त्रसे उनका ही आवाहन है, वे विभिन्न हैं। धन गणपत् उनके ही अनुसार ग्रन्थ साधकगणोंमें उनकी प्रधानता है—सिद्धिदाता गणपति भक्तोंके लिये वे सुखदाता हैं।

इनके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है—'श्रीकृष्ण ब्राह्मणका वेष धारण करके एक बार श्रीदुर्गा पार्वतीके समीप गये और बोले—'देवि! तुम योगमाया! तुम्हारी कृपासे विष्णुभक्तिकी प्राप्ति होती है। पूजा व्रत आदिकी शिक्षा देनेके लिये श्रीकृष्ण कल्पक तुम्हारे पुत्रके रूपमें अवतीर्ण होंगे।' इस प्रकारकी बातें कहकर वे वहीं अन्तर्हित हो गये। पार्वतीके श्रीकृष्ण ही एक पुत्ररत्नके रूपमें प्राप्त हुए। उसका रूप अपूर्व था, गुण अव्यक्त था। देवीने उस अभिनव बालकका अत्यन्त हर्षपूर्वक लालन-पालन किया। वही बालक सिद्धिदाता गणेश हैं; देवगणवन्दित तथा अग्रपूज्य अधि हैं। उनमें असाधारण मातृभक्ति है।' (ब्रह्मवैवर्तपु

वेदानुगत शास्त्रोंके द्वारा प्रतिपाद्य समस्त भारतीय संस्कृतिके मूलमें है—पञ्चदेवोपासना। विष्णु, सूर्य, शि शक्ति और गणेश—ये पञ्चदेव हैं। यहाँ एकके अतिरि शेष चार देवताओंकी उपेक्षा नहीं है। सूर्यमण्डलमें ही प्रकारसे अभिलषित परमाभीष्ट विष्णुभगवान्की उपास होती है। अन्य देव-देवियोंके गायत्री-मन्त्रकी आराधना स मण्डलवर्ती भावनासे होती है। शिव और विष्णुमें भेदबुद्धि शास्त्र निषिद्ध बतलाता है। शक्तिके बिना शिव या विष्णु उपासना निष्फल है। वैष्णवोंकी घोषणा है कि 'विष्णुपूजा गणेशकी पूजा न करनेसे सेवापराध होता है। नव्य सम्प्रदा वादी कुछ लोग प्राचीन गुरुवर्गके द्वारा प्रदर्शित मार्ग अवहेलना करके अपने सम्प्रदायकी प्रधानता स्थापित करते तथा सुप्रसिद्ध स्वयंसिद्ध वेदानुमोदित पथसे भ्रष्ट होक स्वेच्छाचारी हो रहे हैं। कुछ लोग गुरु-प्रदर्शित पथ कण्टकरूप होकर आर्य-धर्मके पथमें बाधक बनते हैं श्रीगणेशजी ऐसे लोगोंको शुभ-बुद्धि प्रदान करें।

श्रीशंकराचार्यकी परम्परामें भगवान् श्रीगणेश

(लेखक—श्री एस० लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री)

अनादिकालीन सनातन धर्मकी व्यवस्थामें भगवान् गणेशकी उपासनाका एक प्रमुख स्थान है । इस पवित्र धर्ममें जो नास्तिकताके कीटाणु प्रविष्ट हो गये थे, उन्हें भगवान् शंकराचार्यने अपने पवित्र एवं शास्त्रीय दृष्टिकोणद्वारा दूरकर बड़ी सावधानीसे इसकी पवित्रताको अक्षुण्णरूपसे प्रतिष्ठित रखा। 'शंकरमत'के नामसे कोई चर्चा करना अत्यन्त भ्रमपूर्ण है । उन महान् आचार्यने कभी भी किसी नये दर्शन या धर्मकी स्थापनाका दावा नहीं किया । उनका काम था— वैदिक दर्शन और वैदिक धर्मका सही-सही ऐसा प्रचार और विस्तार, जिसका प्राचीन परम्परासे कहीं विरोध न हो और वैदिक धर्ममें घुसे हुए नास्तिकताके पोषक मतोंका, जिनमेंसे अधिकांश बाहरसे आये, उन्मूलन हो जाय । शंकराचार्य वेदोंकी प्राचीन परम्पराके संरक्षक, पोषक और अभिभावक अवश्य हैं, परंतु किसी नये धर्मके संस्थापक नहीं । इस लघु लेखका लक्ष्य है—भगवान् शंकराचार्यकी परम्पराके अनुयायी जनोंके जीवनमें श्रीगणेशोपासनाके स्थान और महत्त्वका निर्धारण । यहाँ जो कुछ मूल्याङ्कन किया जायगा, उसका आधार है—स्वयं आचार्य शंकरकी रचनाएँ, उनकी जीवनियाँ और उनकी परम्पराके अनुयायियोंके वचन ।

पाठकोंको यह जानकर बड़ी निराशा होगी कि 'श्रीगणेशपञ्चरत्न' और 'गणेश भुजङ्गप्रयातस्तोत्र' को छोड़कर, जो कि आचार्यप्रवरके भक्तिमय उद्गारोंके एक अङ्गमात्र हैं, अपने प्रस्थानत्रय अथवा प्रकरण ग्रन्थोंमें कहीं भी उन्होंने गणेशका उल्लेख नहीं किया । यदि कहीं किसी देवताका नाम आया भी है तो सदा विष्णुका ही नाम आया है; जैसे कि गीता और विष्णुसहस्रनाम आदिके भाष्योंमें । जहाँ गणेशका उल्लेख हुआ है, उनकी ऐसी अन्य रचनाएँ देवी या शिवके स्तोत्र हैं । 'प्रपञ्चसारतन्त्र'में भी गणेशका नाम मिलता है । उनकी रचनाओंमें विशिष्ट देवताओंका अनुल्लेख कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । परमतत्त्वकी व्याख्या करनेवाले दर्शनमें विशिष्ट देवी-देवताओंका वर्णन कैसे आ सकता है ? फिर भी इस परमतत्त्वके दर्शनके द्वारा ही ईश्वरकी सत्ताका प्रतिपादन हुआ है । जहाँ सब प्रपञ्च विलीन हो जाते हैं, उस पारमार्थिक धरातलपर जो केवल एक ही शेष बचता है, जो सबका आधारभूत है, उस परमब्रह्मका प्रपञ्चात्मक मायामें कोई निरूपण नहीं हो सकता। देश-काल और कारणकी परिधिमें वही निर्गुण परमसत्ता जब ईश्वररूप धारण करती है, तब उसमें अचिन्त्य सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता और सर्वव्यापकता आ जाती है । जब उस ऐश्वर्य क्रियाशील होता है, तब वह विश्वका सृजन, पालन, संहार और उसपर अनुग्रह-निग्रह करनेवाला बन जाता है । निर्गुण परब्रह्मके साथ ही साथ सगुण ईश्वररूपमें विराजित होनेमें कोई विरोध भी नहीं है । विद्युत्-शक्तिका हम न कोई स्वरूप बता सकते हैं और न उसको जान सकते हैं । उसके वास्तविक स्वरूपके विषयमें हम कुछ जाननेमें एकदम असमर्थ हैं । लेकिन भौतिकी (Physics) के द्वारा उसकी क्रियाओंसे उसका जो रूप प्रकट होता है, उसको हम अवश्य जान लेते हैं । वेदान्तका निर्गुण ब्रह्म इसी विद्युत्-शक्तिके समान है और सगुण ब्रह्म विद्युत्के क्रियात्मक रूपोंके समान । निर्गुण ब्रह्मका बोध ज्ञानके द्वारा हो सकता है, परंतु सगुण ब्रह्म या ईश्वरको पानेके लिये हमको भक्तिकी शरण लेनी होगी, जिसके और भी कई नाम हैं, जैसे—चिन्तन, मनन, ध्यान-उपासना, आराधना आदि । पर शंकराचार्यके दर्शनमें वेदान्तके निर्गुण ब्रह्मके रूपमें मिलनेवाले परम ज्ञान या परमानन्दकी प्राप्तिके लिये इष्टदेवकी भक्ति या उपासनाकी अनिवार्यताका प्रतिपादन उचित ही है । परम ज्ञानकी उपलब्धि केवल भगवत्कृपासे सम्भव है । इसलिये शंकर-दर्शनमें भक्तिको अद्वैत-ज्ञानका एकमात्र आधार बताया गया है ।

भगवान् शंकराचार्यद्वारा सुधार किये जाने तथा नवजीवन प्रदान किये जानेके उपरान्त अद्वैत सम्प्रदायके अनुगामियोंद्वारा धर्मके जिस रूपका आचरण किया गया, उसमें गणेशका क्या स्थान है, इसका अध्ययन करनेसे पूर्व इस बातकी जानकारी अत्यधिक लाभकारिणी होगी कि ईश्वर और उसकी उपासनाके विषयमें शंकराचार्यका दृष्टिकोण क्या है । वैदिक देव-समाजमें हमें नाना देवताओंके दर्शन होते हैं—जैसे, इन्द्र, वरुण, सविता, पूषा, उपेन्द्र, अग्नि, मित्र, अश्विनीकुमार और अन्य देवगण । देखनेमें देवताओंका एक भँवर जाल-सा लगता है । देवताओंका एक ऐसा जाल है, जिसके विषयमें ईसाई मिशनरी, मुसलमानी धर्मगुरु और

समान है; जो वृष-निषाद, क्षमा-दान करनेवाले, आनन्दकी निधि, यशके विस्तारक तथा मनके प्रेरक हैं; उन नमस्कार करनेवालोंके लिये सूर्यरूप श्रीगणेशको मैं नमस्कार करता हूँ।'

किंतु दूसरे ही क्षण शंकर निर्गुण ब्रह्मके ऊँचे शिखरपर जा पहुँचते हैं और गणेशकी अभ्यर्थना करते हुए वे कहते हैं—

यमेकाक्षरं निर्मलं निर्विकल्पं गुणातीतमानन्दमाकारशून्यम्।
परं पारमोंकारमाम्नायगर्भं वदन्ति प्रगल्भं पुराणं तमीडे ॥
(गणेशभुजङ्गम्—७)

'जिन्हें ज्ञानीजन एकाक्षर (प्रणवरूप), निर्मल, निर्विकल्प, गुणातीत, आनन्दस्वरूप, निराकार, परमपार एवं वेदगर्भ ओंकार कहते हैं, उन प्रगल्भ पुराणस्वरूप गणेशका मैं स्तवन करता हूँ।'

गणेशतत्त्वका परम सार यही है कि गणेश ही ओंकारके व्यक्त रूप हैं। दूसरे शब्दोंमें वे ही परब्रह्म हैं; आदिस्वर तथा नाद हैं, जिससे विश्वके सारे नाम-रूपोंका सृजन हुआ है। उनका वक्रतुण्ड-आकार ओंकारको प्रदर्शित करता है। ऊपर जितनी बातें कही गयी हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि शांकर सम्प्रदायके अनुयायियोंकी दृष्टिमें श्रीगणेश निर्गुण ब्रह्मके ही रूप हैं। शंकराचार्यजीने जिन मठोंकी स्थापना की है, उनमें गणेशकी पूजाका विधान है। इसका प्रमाण हमें 'उच्छिष्टगणपतिसहस्रनाम'के कुछ मन्त्रोंमें स्पष्टरूपसे मिलता है। जैसे—

कामकोटिपीठवासः शंकरार्चितपादुकः।
शृङ्गशृङ्गपुरस्थः स सुरेशार्चितवैभवः ॥
द्वारकापीठसंवास पद्मपादार्चिताङ्घ्रिकः।
जगन्नाथपुरस्थस्तु तोटकाचार्यसेवितः ॥
ज्योतिर्मठालयस्थः स हस्तामलकपूजितः ॥
(७७६–७८०)

'जो कामकोटिपीठके अधिवासी हैं और उस रूपमें साक्षात् आचार्य शंकरने जिनके चरणोंकी पादुकाका पूजन किया है; जो शृङ्गशृङ्गपुर (शृङ्गेरी मठ) में निवास करते हैं और वहाँ श्रीसुरेश्वराचार्यने जिनके वैभवकी अर्चना की है; जो द्वारकापीठमें निवास करनेवाले हैं और श्रीपद्मपादाचार्यने जिनके चरणारविन्दोंकी पूजा की है; जो जगन्नाथपुरीमें रहकर तोटकाचार्यसे सेवित हुए हैं तथा जो ज्योतिर्मठके अधिवासी होकर हस्तामलकाचार्यसे पूजित हुए हैं।'

इस प्रकार शांकर-सम्प्रदायके अनुयायियोंके लिये तथा आचार्यप्रवरके द्वारा स्थापित किये हुए विभिन्न पीठाधीशोंके लिये भी श्रीगणेशकी बाह्य-पूजा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करनेका एक आवश्यक अङ्ग है। श्रीविद्याके कट्टर उपासक और 'ललितासहस्रनाम'की व्याख्याके लेखक श्रीभास्कररायने, जो अद्वैतमतानुयायी थे, अपने 'गणेशसहस्रनाम'की व्याख्याकी भूमिकामें लिखा है—'परमेश्वरके द्वारा नाना गुणोंसे युक्त नाना रूपोंका धारण किया जाना उनकी कृपाके ही कारण होता है। जो रूप वे धारण करते हैं, वे वे ही रूप होते हैं, जिनके प्रति उनके भक्तोंकी रुचि होती है'—

'बहिरङ्गानुष्ठानशीलानामेव स्वान्तरङ्गानुष्ठानेऽधिकारः।सगुणं तु रूपमुपासकानुग्रहार्थं कल्पितमेव इत्युपासकरुचिवैचित्र्येण नानाविधम्।'

'जो स्वभावतः बहिरङ्ग अनुष्ठानमें संलग्न रहनेवाले हैं, उनका ही अन्तरङ्ग-अनुष्ठानमें अधिकार है। सगुणरूप तो उपासकोंपर अनुग्रह करनेके लिये कल्पित हो है; अतः उपासकोंकी विभिन्न रुचिके कारण वह अनेक प्रकारका है।'

अन्तमें यह बात बड़ी दृढ़ताके साथ कही जा सकती है कि जहाँतक शांकर-सम्प्रदायके अनुयायियोंसे सम्बन्ध है, वहाँतक उनकी दृष्टिमें गणेश और अन्य किसी देवतामें कोई भेद नहीं है साथ ही वहाँपर असाम्प्रदायिकता, धर्मान्धता और तान्त्रिकताकी आड़में होनेवाले अनाचारोंके लिये कोई स्थान नहीं है। गणपति एक ही साथ सगुण ईश्वर भी हैं और निर्गुण ब्रह्म भी। श्रीगणपतिके प्रति शांकर-सम्प्रदायका अभिमत मत क्या है, यह श्रीराघवचैतन्यकृत 'महागणपति-स्तोत्र'के निम्नलिखित श्लोकसे बहुत अच्छी तरह व्यक्त होता है, जिसमें साम्प्रदायिकतासे रहित ईश्वरवादके उच्च स्तरकी आभा झलक रही है—

हरयं विष्णुशिवादितत्त्वतनवे श्रीवक्रतुण्डाय हुं-
काराक्षिप्तसमस्तदैत्यपृतनाव्राताय दीप्तत्विषे।
आनन्दैकरसावबोधलहरीविध्वस्तसर्वोर्मये
सर्वत्र प्रथमानमुग्धमहसे तस्मै परस्मै नमः ॥
(राघवचैतन्यकृत महागणपतिस्तोत्रम्—४)

'इस प्रकार विष्णु शिव आदि तत्त्व जिनका शरीर है; जिन्होंने अपने हुंकारमात्रसे समस्त दैत्यसेनाके समूहको मार भगाया है; जिनकी दीप्ति अत्यन्त उद्दीप्त है; जिन्होंने आनन्दैकरसमयी ज्ञान-लहरीसे समस्त ऊर्मियोंको विध्वस्त कर डाला है तथा जिनका मुग्ध मनोहर तेज सर्वत्र व्याप्त है, उन परमात्मा वक्रतुण्डको नमस्कार है।'

यमेकाक्षरं निर्मलं निर्विकल्पं गुणातीतमानन्दमाकारशून्यम्।
परं पारमोंकारमाम्नायगर्भं वदन्ति प्रगल्भं पुराणं तमीडे ॥

(गणेशभुजङ्गम्—७)

'जिन्हें ज्ञानीजन एकाक्षर (प्रणवरूप), निर्मल, निर्विकल्प, गुणातीत, आनन्दस्वरूप, निराकार, परमपार एवं वेदगर्भ ओंकार कहते हैं, उन प्रगल्भ पुराणस्वरूप गणेशका मैं स्तवन करता हूँ।'

गणेशतत्त्वका परम सार यही है कि गणेश ही ओंकारके व्यक्त रूप हैं। दूसरे शब्दोंमें वे ही परब्रह्म हैं; आदिस्वर तथा नाद हैं, जिससे विश्वके सारे नाम-रूपोंका सृजन हुआ है। उनका वक्रतुण्ड-आकार ओंकारको प्रदर्शित करता है। ऊपर जितनी बातें कही गयी हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि शाकर-सम्प्रदायके अनुयायियोंकी दृष्टिमें श्रीगणेश निर्गुण ब्रह्मके ही रूप हैं। शंकराचार्यजीने जिन मठोंकी स्थापना की है, उनमें गणेशकी पूजाका विधान है। इसका प्रमाण हमें 'उच्छिष्टगणपतिसहस्रनाम'के कुछ मन्त्रोंमें स्पष्टरूपसे मिलता है। जैसे—

कामकोटिपीठवासः शंकरार्चितपादुकः।
शृङ्गपुरस्थः स सुरेशार्चितवैभवः॥
द्वारकापीठसंवासः पद्मपादार्चिताङ्घ्रिकः।
जगन्नाथपुरस्थस्तु तोटकाचार्यसेवितः॥
ज्योतिर्मठालयस्थः स हस्तामलकपूजितः॥

गुणोंसे युक्त नाना रूपोंका धारण किया जाना उनकी ... ही कारण होता है। जो रूप वे धारण करते हैं, वे वे ... होते हैं, जिनके प्रति उनके भक्तोंकी रुचि होती है।—

'बहिरङ्गानुष्ठानशीलानामेव त्वन्तरङ्गानुष्ठानेऽधिकार ... तु रूपमुपासकानुग्रहार्थं कल्पितमेव इत्युपासकरुचिवं ... नानाविधम्।'

'जो स्वभावतः बहिरङ्ग अनुष्ठानमें संलग्न रहनेव... उनका ही अन्तरङ्ग-अनुष्ठानमें अधिकार है। स... तो उपासकोंपर अनुग्रह करनेके लिये कल्पित ही है... उपासकोंकी विभिन्न रुचिके कारण वह अनेक प्रकारक...

अन्तमें यह बात बड़ी दृढ़ताके साथ कही जा स... कि जहाँतक शाकर सम्प्रदायके अनुयायियोंसे सम्बन... वहाँतक उनकी दृष्टिमें गणेश और अन्य किसी देवता... भेद नहीं है साथ ही यहाँपर असाम्प्रदायिकता, धर्मान्धत... तान्त्रिकताकी आड़में होनेवाले अनाचारोंके लिये कोई... नहीं है। गणपति एक ही साथ सगुण ईश्वर भी ह... निर्गुण ब्रह्म भी। श्रीगणपतिके प्रति शाकर सम्प्रद... अभिमत मत क्या है, यह श्रीराघवचैतन्यकृत 'महाग... स्तोत्र'के निम्नलिखित श्लोकसे बहुत अच्छी ... व्यक्त होता है, जिसमें साम्प्रदायिकतासे रहित ईश्वर... उच्च स्तरकी आभा झलक रही है—

इत्थं विष्णुशिवादितत्त्वतनवे श्रीवक्रतुण्डाय हुं·

'श्रीमहागणपतिसहस्रनामस्तोत्र'में गणेशके 'ज्येष्ठराज' 'ब्रह्मणस्पति', 'कवि कवीनाम्' आदि सारे नाम प्राप्त होते हैं—

> विश्वकर्ता विश्वमुखो विश्वरूपो निधिर्घृणिः ।
> कविः कवीनामृषभो ब्रह्मण्यो ब्रह्मणस्पतिः ॥
> ज्येष्ठराजो निधिपतिर्निधिप्रियपतिप्रियः ।
> हिरण्मयपुरान्तःस्थः सूर्यमण्डलमध्यगः ॥
>
> (१४-१५)

'गणानां त्वा गणपतिं०'(२ । २३ । १)—यह ऋक्-मन्त्र तथा इसके अनुरूप और भी कतिपय मन्त्र सर्वत्र चिरकालसे गणेशकी उपासनामें विनियुक्त होते आ रहे हैं। बङ्गदेशमें ऋग्वेदीय ब्राह्मण वृषोत्सर्गश्राद्धमें गणेशपूजनके समय इस मन्त्रका पाठ करते हैं। बल्लभट्टने 'याज्ञवल्क्य स्मृति'की 'मिताक्षरा' टीकाके लक्ष्मीभाष्यमें इसका गणेशपूजनपरक कहकर ही उल्लेख किया है।

महाकवि भास कालिदास और कौटिल्यके भी पूर्ववर्ती हैं। उन्होंने भी आजसे लगभग ढाई हजार वर्ष (ई० पू० ४५०) पूर्व अपने सुप्रसिद्ध नाटक 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण'के नान्दी श्लोकमें 'वत्सराज'-शब्दका द्व्यर्थक शब्दके रूपमें ही प्रयोग किया है। देवपक्षमें उसका अर्थ 'कार्तिकेय' है तथा दूसरा लौकिक अर्थ है—वत्सदेशका राजा उदयन।

महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्रीने इस श्लोककी अपनी व्याख्यामें निम्नलिखित वेदमन्त्रको उद्धृत करके अपना मन्तव्य इस प्रकार व्यक्त किया है—'वत्सराजः बालभावो राजा च वत्सराजः। ××गणपतिर्हि अस्य ज्येष्ठो ज्येष्ठराज इति वेदे व्यपदिष्टः। अतः कनिष्ठ औचित्याद् वत्सराज इति व्यपदिश्यते।'

अतएव 'ज्येष्ठराज' या 'वत्सराज'—ये दो पद परस्परके परिपूरक हैं। इनका अर्थ यथाक्रम दो देवभ्राता—गणपति और कार्तिकेय हैं। वेदमें ज्येष्ठराज-नामका उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है। यह प्रथमतः गणेशको कनिष्ठ कार्तिकेयके ज्येष्ठ भ्राताके रूपमें निर्दिष्ट करता है। केवल इतना ही नहीं, इसमें उनके माता पिता शिवा शिवका उल्लेख भी सुस्पष्ट है; क्योंकि 'ज्येष्ठराज'के अर्थमें गणेश उनके ज्येष्ठ पुत्र भी हैं।

अतः 'शाकल' और 'तैत्तिरीय'-संहितामें 'ज्येष्ठराज'-नाम गणेशके लिये आम्नात होनेसे सिद्ध होता है कि इतिहास तथा उनके विविध आख्यान निम्नाङ्कपूर्वक वर्णित हैं, वे अर्वाचीन या अनार्योंकी देन नहीं, वेदोंमें इनका मूल सुनिबद्ध है।

'ज्येष्ठराज' इस नामसे सिद्ध होता है कि गणेश ही नहीं, कार्तिकेय, शिव और पार्वती भी वैदिक देवता हैं। इससे पाश्चात्त्य ईसाई 'भारतबन्धुओं'के दुरभिसंधिमूलक मतवाद विध्वस्त हो जाते हैं।

ध्यान देनेकी बात है कि तथाकथित वेद-विदग्ध मैक्स मूलरने घोषणा की है कि 'अथर्ववेदमें तीन आँखोंवाले नंगे दानव (Three-eyed naked monster) शिव, उसकी महाशक्ति दुर्धर्ष काली और उनके दो कुमार—हस्तिमुख गणेश और षण्मुख कार्तिकेयका अस्तित्व नहीं है।' इस प्रकार उसने शिव-परिवारपर विशेषरूपसे आक्रमण किया है; किंतु,

> स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
> बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥
>
> (शौनक० २० । ८८ । ६)

> स शुष्टुभा विवासे ज्येष्ठराज भरे कृत्नुम् ।
> महो वाजिनं सनिभ्यः ।
>
> (शौनक० २० । ४४ । १)

—इस मन्त्रमें भी गणपति 'ज्येष्ठराज'-रूपसे स्तुत हुए हैं। इस मन्त्रपर सायणभाष्य नहीं मिलता।

यह ऋक्-मन्त्र 'शाकल-संहिता'में न होनेपर भी अन्य किसी संहितासे लिया गया है।

(२) शुक्लयजुः-माध्यन्दिन-संहिता ।

(क) 'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे, प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे, निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे। वसो मम ॥' (२३ । १९)

यह मन्त्र बहुत प्रसिद्ध है। इसमें गणेशके 'गणपति, प्रिय प्रियपति, निधि निधिपति' आदि नाम पाये जाते हैं। वङ्गदेशके यजुर्वेदी ब्राह्मण वृषोत्सर्ग-श्राद्धमें इस मन्त्रद्वारा गणेशका आवाहन करके उनकी पूजा करते हैं। यह मन्त्र अश्वमेधयज्ञमें भी विनियुक्त होता है।

(ख) नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः। (१६ । २५)

(ग) 'गणश्रिये स्वाहा, गणपतये स्वाहा।' (२२ । ३०)

(३) कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयसंहिता ।

श्रीमहागणपतिसहस्रनामस्तोत्रमें गणेशके 'ज्येष्ठराज' ब्रह्मणस्पति', 'कवि' कवीनाम्' आदि सारे नाम प्राप्त होते हैं—

विश्वकर्ता विश्वमुखो विश्वरूपो निधिर्गुणिः ।
कविः कवीनामृषभो ब्रह्मण्यो ब्रह्मणस्पतिः ॥
ज्येष्ठराजो निधिपतिर्निधिप्रियपतिप्रियः ।
हिरण्मयपुरान्तःस्थः सूर्यमण्डलमध्यगः ॥
(१४-१५)

'गणानां त्वा गणपति॰'(२।२३।१)—यह ऋक्-मन्त्र तथा इसके अनुरूप और भी कतिपय मन्त्र सर्वत्र चिरकालसे गणेशकी उपासनामें विनियुक्त होते आ रहे हैं। बङ्गदेशमें ऋग्वेदीय ब्राह्मण वृषोत्सर्गश्राद्धमें गणेशपूजनके समय इस मन्त्रका पाठ करते हैं। बालम्भट्टने 'याज्ञवल्क्य स्मृति'की मिताक्षरा टीकाके लक्ष्मीभाष्यमें इसका गणेशपूजनपरक कहकर ही उल्लेख किया है।

महाकवि भास कालिदास और कौटिल्यके भी पूर्ववर्ती हैं। उन्होंने भी आजसे लगभग ढाई हजार वर्ष (ई० पू० ४५०) पूर्व अपने सुप्रसिद्ध नाटक 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण'के नान्दी-श्लोकमें 'वत्सराज'-शब्दका द्व्यर्थक शब्दके रूपमें ही प्रयोग किया है। देवपक्षमें उसका अर्थ 'कार्तिकेय' है तथा दूसरा लौकिक अर्थ है—वत्सदेशका राजा उदयन।

महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्रीने इस श्लोककी अपनी व्याख्यामें निम्नलिखित वेदमन्त्रको उद्धृत करके अपना मन्तव्य इस प्रकार व्यक्त किया है—'वत्सराज. बालभासी वत्सराजो वा वत्सराज.। ××गणपतिर्हि अस्य ज्येष्ठो ज्येष्ठराज इति वेदे व्यपदिष्ट.। यत. कनिष्ठ औचित्याद् वत्सराज इति व्यपदिश्यते।'

अतएव 'ज्येष्ठराज' या 'वत्सराज'—ये दो पद परस्परके परिपूरक हैं। इनका अर्थ यथाक्रम दो देवभ्राता—गणपति और कार्तिकेय है। वेदमें ज्येष्ठराज नामका उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है। यह प्रथमतः गणेशको कनिष्ठ कार्तिकेयके ज्येष्ठ भ्राताके रूपमें निर्दिष्ट करता है। केवल इतना ही नहीं, इसमें उनके माता पिता शिवा शिवका उल्लेख भी सुस्पष्ट है; क्योंकि 'ज्येष्ठराज'के अर्थमें गणेश उनके ज्येष्ठ पुत्र भी हैं।

अतः 'शाकल' और 'तैत्तिरीय'-संहितामें 'ज्येष्ठराज'-नाम गणेशके लिये आम्नात होनेसे सिद्ध होता है कि इतिहास तथा उनके विविध लीलाप्रसङ्ग विस्तारपूर्वक वर्णित हैं, वे अर्वाचीन या अप्रामाणिक देव नहीं, वेदोंमें इनका मूल सुनिबद्ध है।

'ज्येष्ठराज' इस नामसे सिद्ध होता है कि गणेश ही नहीं, कार्तिकेय, शिव और पार्वती भी वैदिक देवता हैं। इससे पाश्चात्त्य इमाद 'भारतबन्धुओं'के दुरभिसंधिमूलक मतवाद विध्वस्त हो जाते हैं।

ध्यान देनेकी बात है कि तथाकथित वेदविदग्ध मैक्स मूलरने घोषणा की है कि 'अथर्ववेदमें तीन आँखोंवाले नंगे दानव (Three-eyed naked monster) शिव, उसकी महाशक्ति नृशंस काली और उनके दो कुमार—हस्तिमुख गणेश और षण्मुख कार्तिकेयका अस्तित्व नहीं है।' इस प्रकार उसने शिव-परिवारपर विशेषरूपसे आक्रमण किया है; किंतु,

नं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम्।
महो वाजिनं सनिभ्यः।
(ऋ०सं० ८।१६।३)

—इस मन्त्रमें भी गणपति 'ज्येष्ठराज'-रूपसे स्तुत हुए हैं। इस मन्त्रपर सायणभाष्य नहीं मिलता।

यह ऋक्-मन्त्र 'शाकल-संहिता'में न होनेपर भी अन्य किसी संहितासे लिया गया है।

(२) शुक्लयजुः-माध्यन्दिन-संहिता।

(क) 'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे, प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे, निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे। वसो मम ॥'
(२३।१९)

यह मन्त्र बहुत प्रसिद्ध है। इसमें गणेशके 'गणपति, प्रिय प्रियपति, निधि निधिपति' आदि नाम पाये जाते हैं। बङ्गदेशके यजुर्वेदी ब्राह्मण वृषोत्सर्ग-श्राद्धमें इस मन्त्रद्वारा गणेशका आवाहन करके उनकी पूजा करते हैं। यह मन्त्र अश्वमेधयज्ञमें भी विनियुक्त होता है।

(ख) नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः।
(१६।२५)

(ग) 'गणश्रियै स्वाहा, गणपतये स्वाहा।'(२२।३०)

(३) कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयसंहिता।

(क) 'गणानां त्वा'—इत्यादि (२।३।१४।...)

वैदिक देवता ज्येष्ठराज गणेश

(लेखक—श्रीनीरजाकान्त चौधुरी देवशर्मा, एम्० ए०, एल-एल्०बी०, बी-एल०डी०)

'तत्कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

(कृष्णयजुर्वेद, मैत्रायणी-संहिता २ । ९ । १)

गलद्दानगण्डं मिलद्भृङ्गषण्डं
चलच्चारुशुण्डं जगत्त्राणशौण्डम् ।
लसद्दन्तकाण्डं विपद्भङ्गचण्डं
शिवप्रेमपिण्डं भजे वक्रतुण्डम् ॥

(शंकराचार्यकृत शिवभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम्)

'जिसके गण्डस्थलसे निरन्तर मदवारि स्रवित हो रहा है और उस मदगन्धसे भ्रमरोंके मिलित होनेपर जिनका सुन्दर शुण्ड बराबर चलायमान रहता है, जगत्के परित्राणके कार्यमें जो सुदक्ष हैं, जिनका एकदन्त सुशोभित हो रहा है, जो जगत्की विपत्तिका नाश करनेमें प्रचण्ड हैं तथा जो शिवजीके परम प्रेमास्पद हैं, उन वक्रतुण्ड गणेशजीको मैं भजता हूँ ।'

गणेशजी विघ्नोंका नाश करनेवाले, सिद्धिदाता तथा सर्वाग्रपूज्य हैं । इसी कारण इस स्तोत्रके आदिमें उनकी वन्दना की गयी है । चाहे सम्प्रदाय कोई भी क्यों न हो, प्रत्येक हिंदूको जिस किसी देवताकी उपासना, अथवा जिस किसी कार्यके प्रारम्भमें श्रीगणपतिकी पूजा करनी ही पड़ती है ।

पाश्चात्त्य मत—गणेश वैदिक देवता नहीं हैं

किंतु पाश्चात्त्य विचारक हमलोगोंको शिक्षा देते हैं कि 'गणेश एक अनार्य देवता हैं । वेदोंमें उनका कोई स्थान न था । गुप्तयुगके पूर्वतक हिंदूधर्ममें ये अज्ञात थे ।' कोई-कोई एतद्देशीय विद्वान् भी उनका ही अनुकरण करते हुए कहते हैं कि 'दक्षिण भारतके देशोंमें उनकी पूजा पहले-पहल दशम शताब्दीमें आरम्भ हुई थी ।' हमारी मान्यता है कि पार्वती-परमेश्वरके ज्येष्ठ पुत्र गणपतिका स्थान वेदमें सुप्रतिष्ठित है ।

सुप्रसिद्ध भारत पुरातत्त्ववित् जर्मन विद्वान् मैक्स मूलर (Max Muller) को बहुत-से लोग 'वेदोंका उद्धार-कर्ता' कहते हैं । परंतु उन्होंने प्रायः एक सौ वर्ष पूर्व एक व्याख्यानमें कोटि-कोटि हिंदुओंके अर्धनरपशी-वाहन, सर्पशायी चतुर्हस्त 'विष्णु,' त्रिनेत्र, नग्न, नृमुण्डमालधारी, विकटाकार, वृषारूढ 'शिव', मयूरवाहन, षण्मुख 'कार्तिकेय', हस्तिमुख, चतुर्भुज, मूषकवाहन, सिद्धिके देवता 'गणेश' तथा लोलजिह्वा, नृमुण्डमालिनी, मुक्तकेशी, रक्ताक्तशव[illegible] आदिकी मूर्तियोंकी उपासनाको लेकर भी भीषण [illegible] किया था ।

उन्होंने अन्यत्र लिखा है कि 'वेदोंमें [illegible] देखनेपर अनुमोदनके योग्य कोई वस्तु नहीं है । परं[illegible] संदेह नहीं कि उनमें शिव और कालीकी नृशंसता, [illegible] लम्पटता और विष्णुके मायावतार आदिका कुछ भी नहीं मिलता ।'

उनके मतसे 'हिंदुओंकी यह मूर्तिपूजा ग्रीक और [illegible] लोगोंके जुपिटर, अपोलो, मिनर्वा आदिकी पूजाकी [illegible] भी असभ्य और नीचे स्तरकी थी । सभ्यताके आलो[illegible] तथा स्वाधीन चिन्तनका प्रसार होनेपर ये सब [illegible] जायँगे ।'* किंतु इस मतकी निस्सारता आगेकी पंक्ति[illegible] पढ़नेसे स्पष्ट हो जायगी ।

गणपति वैदिक देवता हैं

वास्तवमें इस समय सुविशाल वैदिक साहित्यका क[illegible] मात्र अवशिष्ट है । तथापि जो कुछ भी है, उससे ज्ञात [illegible] है कि गणेश अति प्राचीन वैदिक देवता हैं, अर्वाचीन न[illegible]

(१) ऋग्वेद शाकलसंहिता—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः
शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥

(ऋग्वेद २ । २३ । १)

'हे अपने गणोंमें गणपति (देव), क्रान्त[illegible] दर्शियोंमें (कवियोंमें) श्रेष्ठ कवि, शिवा-शिवके प्रिय ज्ये[illegible] पुत्र, अतिशय भोग और सुख आदिके दाता, हम आपक[illegible] इस कर्ममें आवाहन करते हैं । हमारी स्तुतियोंको सुनते हुए पालनकर्ताके रूपमें आप इस सदनमें आसीन हों ।'

यह मन्त्र गणपति-दैवत है, इसमें संदेह नहीं हो सकता । इसके द्रष्टा बृहस्पति हैं और देवता ब्रह्मणस्पति । यह 'तैत्तिरीयसंहिता (२ । ३ । १४ । ३)में भी आम्नात हुआ है ।

---

* [illegible]

'श्रीमद्गणपतिसहस्रनामस्तोत्र'में गणेशके 'ज्येष्ठराज' 'ब्रह्मणस्पति', 'कविः कवीनाम्' आदि सारे नाम प्राप्त होते हैं—

> विश्वकर्ता विश्वमुखो विश्वरूपो निधिर्घृणिः ।
> कविः कवीनामृषभो ब्रह्मण्यो ब्रह्मणस्पतिः ॥
> ज्येष्ठराजो निधिपतिर्निधिप्रियपतिप्रियः ।
> हिरण्मयपुरान्तःस्थः सूर्यमण्डलमध्यगः ॥
>
> (१४-१५)

'गणानां त्वा गणपति॰'(२ । २३ । १)—यह ऋक्-मन्त्र तथा इसके अनुरूप और भी कतिपय मन्त्र सर्वत्र चिरकालसे गणेशकी उपासनामें विनियुक्त होते आ रहे हैं । वङ्गदेशमें ऋग्वेदीय ब्राह्मण वृषोत्सर्गश्राद्धमें गणेशपूजनके समय इस मन्त्रका पाठ करते हैं । बालम्भट्टने याज्ञवल्क्य स्मृति'की 'मिताक्षरा' टीकाके लक्ष्मीभाष्यमें इसका गणेशपूजनपरक कहकर ही उल्लेख किया है ।

महाकवि भास कालिदास और कौटिल्यके भी पूर्ववर्ती हैं । उन्होंने भी आजसे लगभग ढाई हजार वर्ष (ई॰ पू॰ ४५०) में अपने सुप्रसिद्ध नाटक 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण'के नान्दी श्लोकमें 'वत्सराज' शब्दका द्व्यर्थक शब्दके रूपमें ही प्रयोग किया है । देवपक्षमें उसका अर्थ 'कार्तिकेय' है तथा दूसरा लौकिक अर्थ है—वत्सदेशका राजा उदयन ।

महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्रीने इस श्लोककी अपनी व्याख्यामें निम्नलिखित वेदमन्त्रको उद्धृत करके अपना वक्तव्य इस प्रकार व्यक्त किया है—'वत्सराजः बालब्रह्मचारी स्कन्दो वा वत्सराजः । ××गणपतिर्हि अस्य ज्येष्ठो ज्येष्ठराज इति वेदे व्यपदिष्टः । यतः कनिष्ठ औचित्याद् वत्सराज इति व्यपदिश्यते ।'

अतएव 'ज्येष्ठराज' या 'वत्सराज'—ये दो पद परस्परके परिपूरक हैं । इनका अर्थ यथाक्रम दो देवभ्राता—गणपति और कार्तिकेय हैं । वेदमें ज्येष्ठराज-नामका उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है । यह प्रथमतः गणेशको कनिष्ठ कार्तिकेयके ज्येष्ठ भ्राताके रूपमें निर्दिष्ट करता है । केवल इतना ही नहीं, इसमें उनके माता-पिता शिवा शिवका उल्लेख भी सुस्पष्ट है; क्योंकि 'जेष्ठराज'के अर्थमें गणेश उनके ज्येष्ठ पुत्र भी हैं ।

अतः 'शाकल' और 'तैत्तिरीय'-संहितामें 'ज्येष्ठराज'-पद गणेशके लिये आम्नात होनेसे सिद्ध होता है कि इतिहास पुराणादिमें जगत्के माता-पिताकी जो पौराणिक गाथा है तथा उनके विविध संल्पप्रसङ्ग विस्तारपूर्वक वर्णित हैं, वे अर्वाचीन या अनार्योंकी देन नहीं, वेदोंमें इनका सुनिबद्ध है ।

'ज्येष्ठराज' इस नामसे सिद्ध होता है कि गणेश ही नहीं, कार्तिकेय, शिव और पार्वती भी वैदिक देवता हैं । इससे पाश्चात्त्य ईसाई 'भारतबन्धुओं'के दुरभिसंधिमूलक मतवाद विध्वस्त हो जाते हैं ।

ध्यान देनेकी बात है कि तथाकथित वेदविद् मैक्स मूलरने घोषणा की है कि 'अथर्ववेदमें तीन आँखोंवाला नंगे दानव (Three-eyed naked monster) शिव उसकी महाशक्ति नृशंस काली और उनके दो कुमार—हस्तिमुख गणेश और षण्मुख कार्तिकेयका अस्तित्व नहीं है ।' इस प्रकार उसने शिव-परिवारपर विशेषरूपसे आक्रमण किया है; किंतु,

> तं धुरधुम्या विवासे ज्येष्ठराज भरे कृत्नुम् ।
> महो वाजिनं सनिभ्यः ।
>
> (शौनकसं॰ २० । ४४ । १)

—इस मन्त्रमें भी गणपति 'ज्येष्ठराज'-रूपमें स्तुत हुए हैं । इस मन्त्रपर सायणभाष्य नहीं मिलता ।

यह ऋक्-मन्त्र 'शाकल-संहिता'में न होनेपर भी अन्य किसी संहितासे लिया गया है ।

(२) शुक्लयजुः-माध्यन्दिन-संहिता ।

(क) 'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे, प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे, निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे । वसो मम ॥'

(२३ । १९)

यह मन्त्र बहुत प्रसिद्ध है । इसमें गणेशके 'गणपति, प्रिय-प्रियपति, निधि-निधिपति' आदि नाम पाये जाते हैं । वङ्गदेशके यजुर्वेदी ब्राह्मण वृषोत्सर्ग-श्राद्धमें इस मन्त्रद्वारा गणेशका आवाहन करके उनकी पूजा करते हैं । यह मन्त्र अश्वमेधयज्ञमें भी विनियुक्त होता है ।

(ख) नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः । (१६ । २५)

(ग) 'गणश्रिये स्वाहा, गणपतये स्वाहा ।' (२२ । ३०)

(३) कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयसंहिता ।

(क) 'गणानां त्वा'—इत्यादि (२ । ३ । १४ ।

श्रा। (११) अथर्ववेद—'गणपति उपनिषद्'।

ऽ (क) एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
॥ दन्ती प्रचोदयात् ॥' (८)

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
॥ रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥ (९)

भावार्थ—'हम एकदन्त गणेशको जानते हैं, वदनका ध्यान करते हैं। वह महादन्त देव हमारी बुद्धि सत्पथमें प्रेरित करें।' 'गणेश एकदन्त एवं चतुर्भुज हैं; थोंमें पाश, अङ्कुश, अभय और वरद मुद्राके द्वारा भायमान हैं। वे रक्तवर्ण, लम्बोदर और मूषकध्वज। उनके कर्ण शूर्प (सूप) के समान हैं। उनके परिधेय लोहितवर्णके हैं। रक्त चन्दनादि गन्धके द्वारा उनका अनुलिप्त है और रक्तवर्णके पुष्पोंद्वारा वे जित होते हैं।'

(ख) 'नमो व्रातपतये। नमो गणपतये। नमः प्रमथये। नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्नविनाशिने शिवाय श्रीवरदमूर्तये नमो नमः'॥ (१०)

'मैं गणनाथको प्रणाम करता हूँ। गणपतिको प्रणाम ता हूँ। प्रमथपतिको प्रणाम करता हूँ। लम्बोदर, एकदन्त नविनाशक, शिवतनय श्रीवरदमूर्तिको बारंबार प्रणाम ता हूँ।'

(ग) यो दूर्वाङ्कुरैर्यजति स वैश्रवणोपमो भवति। मोदकसहस्रेण यजति स वाञ्छितफलमवाप्नोति।... महे महानद्याः प्रतिमासंनिधौ वा जप्त्वा सिद्धमन्त्रो ति।(११)

'नव-दूर्वादलके द्वारा गणेशकी पूजा करनेसे भक्त रके समान हो जाता है। जो एक सहस्र मोदकोंका लगाता है, उसको मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। सूर्यग्रहणके समय महानदीमें अथवा देवप्रतिमाकी संनिधिमें के इष्ट मन्त्रका जप करनेसे मन्त्रसिद्धि होती है।'

यह 'गाणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद्' है तथा 'मुक्तिको द्'में भी इसका उल्लेख है। अतएव इस उपनिषद्को माणित करनेका कोई हेतु नहीं है।

वेदाङ्ग

शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष और व्याकरण ये छः वेदाङ्ग हैं। ये वेदोंके साथ अङ्गाङ्गी भावसे सम्बद्ध हैं। वेदाङ्गमें पारंगत हुए बिना श्रुतिके गूढ़ रहस्य और प्रकृत अर्थको हृदयंगम करना सम्भव नहीं। उपर्युक्त उदाहरणोंसे यह निस्संदेह सिद्ध हो गया कि 'ज्येष्ठराज' गणेश स्मरणातीतकालसे वैदिक धर्ममें एक प्रधान देवताके रूपमें पूजित होते आ रहे हैं। इसके अतिरिक्त यह भी प्रमाणित हो गया कि हर गौरी तथा उनके दो पुत्र, गणेश और कार्तिकेयकी लीला कथा वैदिक साहित्यमें भी सुप्रसिद्ध है; केवल पौराणिक गल्प नहीं। यहाँतक कि परशुरामके साथ युद्धके फलस्वरूप एकदन्तके रूपमें गणेशका ध्यान भी वेद संहितामें उपलब्ध होता है।

यहाँ केवल दो वेदाङ्गों, व्याकरण और कल्पसे गणेशकी उपासनाका कुछ उल्लेख किया जाता है।

(१) व्याकरण

पाणिनिमुनिका 'अष्टाध्यायी' वर्तमान कालका प्राचीनतम व्याकरण है। इतना ही नहीं, यह पृथ्वीकी सारी भाषाओंके व्याकरणमें श्रेष्ठत्वका दावा रखता है। भविष्यमें भी इसका यह गौरव अक्षुण्ण रहेगा, इसमें संदेहका कोई कारण नहीं है।

'अष्टाध्यायी'के 'जीविकार्थे चापण्ये।' (५। ३। ९९) तथा 'इवे प्रतिकृतौ।' (५। ३। ९६) आदि सूत्रोंमें मूर्तिपूजाका प्रमाण मिलता है। 'पाणिनीय शिक्षा' भी उपर्युक्त 'अष्टाध्यायी' का ही समकालीन ग्रन्थ है। बहुतोंके मतसे यह वेदके ब्राह्मणभागका समकालीन है; क्योंकि वेदमन्त्र और ब्राह्मणके समान शिक्षामें भी उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित आदिके समान संकेत चिह्न दिये गये हैं।

इन दो सूत्रोंके भाष्यमें पतञ्जलिने मूर्तिपूजाका तथा कैयट (द्वितीय-तृतीय शताब्दि ई० पूर्व) ने शिव, स्कन्द, विशाख और गणपति-मूर्तियोंका उल्लेख किया है। उनके भाष्य निस्संदेह गुरु शिष्यपरम्पराद्वारा जो ज्ञानका स्रोत प्रवाहित होता आ रहा है, उसके ही प्रकाशक हैं। अतएव स्वीकार करना पड़ता है कि उनसे बहुत पहले, यहाँतक कि पाणिनिसे बहुत पूर्वसे ही इन सब देवताओंकी मूर्तिपूजा वैदिक आराधनामें प्रचलित थी।

(२) कल्प

दण्ड, इन्क्विजीशन (Inquisition)—जलाकर मार ना आदि घटनाएँ खूब घटित हुईं। फ्रांसमें प्रोटेस्टेंट के ऊपर राजा चतुर्दश लुईने चरम सीमातक अत्याचार लिया। उसके पूर्व सेंट बार्थोलोम्यू (St. Bartholomew) के भयानक अत्याचार फैल रहा। इंग्लैंडमें पादरी लोगोंको— आर्क बिशप क्रानमार (Cronmar)को १५५६ ई० जलाकर मार डाला गया। प्रोटेस्टेंट लोगोंकी हत्या ५७ ई०तक हुई।

आयरलैंडमें कैथलिक लोगोंके साथ प्रोटेस्टेंट लोगोंका संघर्ष आज भी चल रहा है। गत महायुद्धमें हिटलरने मानुषिक रीतिसे लगभग ७५ लाख यहूदियोंका वध किया था।

मुस्लिम आक्रमणकारियों और शासकवृन्दने भारतमें हिंदुओंके ऊपर जो बर्बरतापूर्ण अत्याचार किये, उसकी तुलना कहीं नहीं है। पाकिस्तानमें हिंदुओंका उत्पीडन भयानक रीतिसे हुआ और हो रहा है। शिया सुन्नीके विरोधकी बातको सभी जानते हैं।

तथापि हिंदुओंमें साम्प्रदायिक विरोध तो क्या, परमत असहिष्णुता भी नहीं देखी जाती; बौद्धोंको तलवारके द्वारा नहीं, युक्तिके द्वारा ही पराजित किया गया। जैनियोंके ऊपर यदि हिंदू राजाओंने अत्याचार किये होते तो वे यहाँ टिके न रह सकते। फलतः वर्णाश्रम-समाजमें आपाततः सम्प्रदाय-भेद देखे जानेपर भी वस्तुतः धर्मानुष्ठानमें सबकी एकता है। केवल प्रत्येकके तत्त्वानुसार इष्टका निश्चय होता है। पति और पत्नी, दोनोंके इष्ट-मन्त्रोंमें भी भेद हो सकता है।

आज भी कुम्भमेला हिंदुओंकी असाम्प्रदायिकताका एक समुज्ज्वल दृष्टान्त है। इतना विशाल धर्मसंघटन विश्वमें और कहीं नहीं है।

पञ्चदेवताओंकी लिङ्गपूजा

भगवान् श्रीशंकराचार्यने पाँचों देवताओंकी लिङ्गपूजाकी जो व्यवस्था कर दी है, दक्षिण भारतके ब्राह्मण लोग उसके अनुसार प्रतिदिन एक साथ ही पञ्चलिङ्गकी पूजा करते हैं। काशीमें भी पञ्चलिङ्ग पाये जाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व उनका मूल्य लगभग २५ रुपया था। वे ये हैं—(१) शिवका लिङ्ग, (२) विष्णुकी शालग्राम शिला, (३) सूर्यका स्फटिक-बिम्ब, (४) शक्तिका धातुयन्त्र और (५) गणेशका चतुष्कोण रक्तवर्ण प्रस्तरविशेष।

रक्तकर आवरण देवताके रूपमें पूजा करनी पड़ती है। लिङ्ग पूजाके अश्लील होनेकी आधुनिक धारणा नितान्त भ्रमपूर्ण है।

गणेश-पूजा प्रथम

सारांश यह है कि सनातनधर्ममें गणपतिकी उपासना एक दृष्टिसे देखनेपर सर्वापेक्षा प्रयोजनीय है; क्योंकि प्रारम्भमें उनकी पूजा बिना किये किसी कार्यमें अग्रसर होना असम्भव है। इस दृष्टिसे हममें प्रत्येक ही गाणपत्य सम्प्रदायके अनुयायी हैं। प्रत्येक हिंदूके घर, दूकान एवं कार्यालयमें गणेशका चित्र या प्रतिमूर्ति रखी जाती है।

पुरातात्त्विक प्रमाण

विधर्मियोंके अत्याचारसे भारतके अधिकांश प्राचीन मन्दिर और देवता ध्वस्त हो गये हैं; किंतु आज गणेश मन्दिर या मूर्ति कम देखनेमें आती है, अतएव अपेक्षाकृत आधुनिक युगमें उनकी मूर्तिपूजा प्रारम्भ हुई है, यह समझना भूल है।

(१) सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ रायबहादुर दयाराम साहनीने जयपुर राज्यमें सौभर झीलके तटवर्ती एक टीलेके निम्नस्तरमें खुदाईके फलस्वरूप द्विभुज गणेश, अग्नि और शिवकी पकी मिट्टीकी मूर्ति खोज निकाली है। उसके साथ ग्रीक राजा आन्टिमाकस निकोफर (Antimachos Nicophor) १२० ई० पूर्वकी मुद्रा भी उपलब्ध हुई है। अतएव यह मूर्ति अति प्राचीन है तथा ई० पूर्व द्वितीय शताब्दीसे परेकी नहीं है।

(२) बङ्गदेशमें चौबीस परगना जिलेमें चन्द्रकेतु गढ़में गणेश और शक्तिकी पकी मिट्टीकी मूर्ति (४ इंच आकारकी) पायी गयी है। विशेषज्ञोंके मतसे वह ई० पूर्व द्वितीय शताब्दीकी है।

गणेशजीकी जो प्राचीन पत्थरकी मूर्तियाँ देखनेमें आती हैं, उनमें अति सुन्दर शिल्पकला विशिष्ट प्रतिमाओंकी कमी नहीं है। भुवनेश्वरमें, लिङ्गराज-मन्दिरके पार्श्वमें एक अति उत्कृष्ट गणेशकी मूर्ति है। जान पड़ता है कि वह मक्खनद्वारा तैयार की गयी है।

बङ्गदेशमें शरद् और वसन्त ऋतुमें दशभुजा महिष मर्दिनीके साथ उनके पुत्रके रूपमें गणेश और कार्तिकेय तथा कन्याकी भावनासे लक्ष्मी-सरस्वतीकी एक साथ मृन्मयी विराट् प्रतिमाकी तीन दिनोंतक पूजा होती है।

श्रीगणेशके आज भी दर्शन होते हैं

विघ्नविनाशक गणपति शंकरजीके [illegible] सदानन्द और करुणामय हैं। वे थोड़ेसे ही संतुष्ट हो जाते हैं, भक्तोंको उनके अब भी दर्शन होते हैं।

१—लेखकके परम मित्र रायबहादुर [illegible] काश्मीरके गवर्नर थे। वे निष्ठावान् काश्मीरी ब्राह्मण थे। इंदौरमें रहते थे। उनको गणेशकी विशाल मूर्तिका दर्शन हुआ था। भगवान्ने मृदुहास्य करते हुए उन्हें दर्शन दिया था।

२—लेखकके निकट-आत्मीय एक सात वर्षके बालकने जगन्नाथजीके मन्दिर, पुरीके प्राङ्गणमें देवसभामें गणेश और कार्तिकेयके मल्लयुद्धका एक अलौकिक दृश्य देखा था। गणेशने शुण्डके द्वारा कार्तिकेयको फेंक दिया था। यह देखकर वह हँस पड़ा था। यह सन् [illegible] ई० की घटना है।

[illegible] गणेश एक [illegible] के ऊपर बैठे थे। [illegible] दर्शन [illegible] ई० [illegible] घटना है।

[illegible]

[illegible]

'अच्छे जीवनके लिये स्थूल पदार्थोंको देखनेवाले केवल दो नेत्र ही पर्याप्त नहीं हैं। तीसरा ज्ञानरूपी नेत्र भी मनुष्यको धारण करना चाहिये, —इस भावको ललाटगत तृतीय नेत्रके द्वारा सूचित करते हुए ज्ञान-वारिधि भगवान् गजानन हमारी रक्षा करें।'

नेता विशालविमलप्रमुदाशयः सन्
स्यात् सर्वदैव सुमुखः स्वजने प्रवृत्तः ।
इत्युद्गिरन् प्रमुदितास्यतयाऽन्तराय-
ध्वान्तापहारस्तु शरणं मम कोऽपि भास्वान् ॥

'नेताको मनुष्योंके साथ व्यवहार करते समय मुँह फुलाये नहीं रखना चाहिये, अपितु सदा ही विशाल, निर्मल और प्रमुदित हृदयवाला होकर प्रसन्नवदन ही रहना चाहिये—इस अभिप्रायको अपनी प्रसन्नमुखताद्वारा प्रकट करते हुए विघ्नरूप अन्धकारको मिटानेके लिये अनिर्वचनीय सूर्यरूप (भगवान् गणपति) मेरे शरणदाता हों।'

हसितविभूषितवदनो भवोऽस्तु सकलोऽपि मोदसम्पत्यै ।
इति संदर्शितहृदय. स एकदन्तोऽस्तु मे शरणम् ॥

'पारस्परिक प्रमोद सम्पत्तिके संवर्धनके लिये सभीको अपना मुख हास्यच्छटासे विभूषित ही रखना चाहिये—इस आशयको एकदन्तत्वसे प्रकट करनेवाले भगवान् गणपति मेरे शरणदाता हों।'

लोकाराधनकर्म दिग्गजमहामूर्धैव कर्तुं प्रभु-
र्बोद्धुं सर्वगभीरमानसमलं स्याद् दीर्घघोण. पुमान् ।
भङ्ग्याऽऽस्यस्य तथा दधातु मतिमान् नीचेषु चोपेक्षण-
मित्याख्यान् करिवक्त्रवक्रिमरुचाव्याद्वो गणेशो निजान् ॥

'दिग्गजके समान महामस्तक (बड़े माथावाला) पुरुष ही लोगोंको संतुष्ट रखनेका कार्य कर सकता है—यह बात गणेशजी अपने गज-तुल्य मस्तकसे सूचित करते हैं। सबके गम्भीर अन्तस्तलको सूँघने (जानने) में दीर्घ नासिका (विशाल बुद्धि) वाला मनुष्य ही समर्थ हो सकता है—यह भाव वे अपनी लंबी सूँड़द्वारा प्रकट करते हैं तथा वक्रतुण्डता (मुखकी वक्रता) से यह अभिप्राय व्यक्त करते हैं कि जैसे हाथी कुत्तोंके भूँकनेपर ध्यान नहीं देता, उसी प्रकार बुद्धिमान्

इत्युद्गिरन् स शरणं गजकर्णकत्व-
स्वीकारवर्यविधिनास्तु गजाननो नः ॥

'लोकनायकको सदैव सहृदय रहते हुए अपने कानोंको विशाल बनाये रखना चाहिये, जिससे वह लोगोंकी दुःख गाथाओंको सुन सके—इस बातको हाथीके से विशाल [illegible]को स्वीकार करनेकी श्रेष्ठ विधिसे सूचित करते हुए [illegible] गणपति हमारे लिये शरणप्रद हों।'

लोकः समोऽपि हृदि विप्रियमन्यदत्तं
तूष्णीं दधन् प्रकटयेत् स्वमहाशयत्वम्
इत्यादिशन्नुरुधियोऽम्बुदरादरेण
लम्बोदरः स भगवानवलम्बनं स्यात् ।

'सज्जन पुरुष दूसरोंके द्वारा किये गये अप[illegible] चुपचाप मनमें रखे और इस प्रकार अपनी मह[illegible] प्रकट करे—इस भावको अपने उदधिके [illegible] विशाल उदरके प्रति आदर रखकर सूचित कर[illegible] भगवान् लम्बोदर हमारे अवलम्ब हों।'

रागमयं स्वाचरणं रक्ष्यं सर्वैः स्वकीयहितकामै[illegible]
इति रक्ताम्बरधरया क्यान् गणेशो नः कृपानिधिः पाया[illegible]

'अपना हित चाहनेवाले सभी लोगोंको अपना आच[illegible] अनुरागमय बनाये रखना चाहिये, इस भावको रक्तव[illegible] वस्त्रके धारणसे सूचित करते हुए कृपासिन्धु भगवान् ग[illegible] हमारी रक्षा करते रहें।'

स्वकमिह धवलीकरोतु सर्वः
सुकृतभरैरवदातकान्तिचित्तैः ।
इति सितवसनश्रियां प्रसारै-
र्द्विपवदनोऽवतु वेदयन् निजान् नः ॥

'सुकृत समूहकी उज्ज्वल प्रभाके वैभवसे सब लोग अ[illegible] स्वच्छ ही बनाये रखें—इस अभिप्रायको धवल व[illegible] वस्त्रकी कान्तिके प्रसारसे प्रकट करते हुए भ[illegible] गजानन हम-जैसे निजजनोंकी रक्षा करते रहें।'

आरूढो जननायकस्य पदवीं लोकस्य सर्वापदो
नाशाया चिरतं हिताय च भवेत् सत्त्वी मनीषी जनः ।

श्रीगणेश-मीमांसा

(लेखक—श्रीअनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्य, तर्कशिरोमणि)

यहाँ निगम, आगम एवं योगज प्रत्यक्षके आधारपर 'श्रीगणेश-तत्त्व'की मीमांसा की जा रही है। इसमें 'गणेश-तत्त्व'का 'इदमित्थम्, इदमित्थम्, इदमियत्' रूपसे प्रत्यक्षकल्प निर्णय किया गया है। 'गणेश'—यह समस्त पद है। यह 'गणानाम् ईशः गणेशः'—इस प्रकार षष्ठी तत्पुरुष समासके विधानसे निष्पन्न हुआ है। 'कोश' ग्रन्थोंमें 'गण'-शब्द समूह-विशेषका वाचक माना गया है। 'गणेश'-पद-घटक 'गण'-शब्द वेदों एवं पुराण आदि आर्ष-ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध सप्तविध मरुद्गणोंका वाचक है, अतः उन मरुद्गणोंका ईश होनेके कारण 'गणेश' 'नि षु सीद गणपते गणेषु' (ऋग्वेद १० । ११२ । ९) आदि वेद-ऋचाओंमें 'गणपति'-शब्दसे अभिहित हुआ है।

शिव-शक्ति-पुत्रता

निगम आगममें 'गणेश'को शिव-शक्तिका पुत्र माना गया है। वेदोंमें आग्नेय प्राण 'शिव' एवं सौम्य प्राण 'शक्ति'-शब्दसे अभिहित हैं। इन दोनोंके समन्वय (संयोग) से उत्पन्न सात प्रकारके यौगिक प्राण ही सप्तविध 'मरुद्गण' हैं। इस विज्ञानका विश्लेषण 'मरुतो रुद्रपुत्रासः'—इस ऋचामें किया गया है। ये सात प्रकारके मरुद्गण भौतिक 'वायु'के जनक हैं, जिसका स्पर्श हमको प्रत्यक्षरूपसे होता है। मरुद्गणोंसे उत्पन्न होनेके कारण यह भौतिक वायु 'मारुत' कहलाता है। वेदोंमें इसका एक नामान्तर 'वात' भी है। इस प्रकार वायुके जनक (पिता) मरुद्गण हैं। मरुद्गणोंके पिता 'रुद्र' एवं माता 'पार्वती' हैं। 'गणपति' भी मरुद्गणोंमें अन्यतम मरुत् हैं, अतः ये शिव-शक्ति-जन्य होनेसे उनके पुत्र हैं—'वन्दे शैलसुतासुतम्'।

गणेश एवं हनुमान्

पुराणोंमें विज्ञान है कि 'अदिति' (सूर्य-संयुक्ता पृथ्वी)के गर्भमें इन सात मरुद्गणोंकी प्रतिष्ठा हुई। वासव—इन्द्रका भी यहीं निवास हुआ। वह इनमेंसे प्रत्येकके सात सात [illegible] कर देता है, अतः ये सात मरुद्गण [illegible]

हनुमान्—ये दोनों मरुद्गणोंके अन्तर्गत होनेसे 'मरुतो रुद्र-पुत्रासः'के आधारपर रुद्र-पुत्र हैं। यही कारण है कि 'वैखानसागम'में हनुमान्को आकाशसे अभिन्न माना गया है।

विघ्नहर्ता एवं कर्ता

उनचास मरुद्गणोंमेंसे पृथ्वीमें स्थित 'मूल मरुत्-प्राण' गणेश हैं। इस मूल प्राणके धृति-बल, प्रतिष्ठा-बल एवं आधार प्राण आदि अनेक पर्याय हैं। इस प्रतिष्ठाप्राणकी स्थितिमें विश्वकी स्थिति एवं प्रच्यवनमें विश्वका विनाश है। ये दोनों भाव क्रमशः उनके विघ्नहर्तृत्व एवं विघ्नकर्तृत्व-रूप दो पहलू हैं। विघ्नकर्तृत्वभावसे वे 'विघ्नराजो गणाधिपः' हैं तथा विघ्नहर्तृत्वभावसे 'सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः॥' हैं।

सर्वाग्रपूजा

ब्रह्माण्डमें उत्पन्न होनेवाले अणु-बृहत्—सभी कार्यों एवं घटनाओंको अपनी सिद्धि एवं स्थितिके लिये आधार-रूपसे धृति-बलरूप गणेशका अवलम्बन (अर्चन) अनिवार्यरूपसे लेना पड़ता है, इस विश्वव्याप्त नियमके आधारपर ही आर्योंने कार्यमात्रके आरम्भमें 'गणेश'की अग्रपूजाको अनिवार्य माना है। आर्य इस प्राकृत नियमका पालन परम्परासे जागरूक होकर करते आये हैं, इसमें इतिहाससमर्थित यह कवि सूक्ति प्रमाण है—

> जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा व्याजाद्बलिं बध्नता
> स्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं शेषेण धर्तुं धराम्।
> पार्वत्या महिषासुरप्रमथने सिद्धाधिपैः सिद्धये
> ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात् स नागाननः॥*

---

* त्रिपुरपर विजय प्राप्त करनेके लिये भगवान् शंकरने, छलसे बलिको बाँधनेके लिये भगवान् विष्णुने, चौदहों भुवनोंकी रचनाके लिये ब्रह्माजीने, पृथ्वीको अपने मस्तकपर धारण करनेके

अध्यात्ममें ये 'गणपति' बुद्धिगुहामें प्रतिष्ठित हैं। ये 'अपान' रूप हैं। पार्थिव प्राण भी अधिदैवतमें अपान-रूप है। मूलमें स्थित 'मरुत्प्राण' गणेश हैं—ऐसा कहा गया है। इस मूल प्राणरूप गणपतिके रहनेके कारण ही 'वस्ति गुहा' को 'मूलप्रकृति' कहते हैं। महाराष्ट्रमें आज भी इसकी मूल जड़को 'गणेशमूल' कहते हैं।

इन्द्रसे अभेद

वेद एवं पुराण आदिमें यह प्रसिद्ध है कि मरुद्गण इन्द्रके भ्राता एवं उनके सैनिक हैं। ज्योतिर्मय इन्द्र अपने सैनिक मरुद्गणोंको आगे करके ही तमोमय असुरोंपर विजय पाते हैं। मघवा इन्द्र धन होनेसे मरुद्गणोंके राजा हैं, ईश हैं। मरुद्गण उनकी दैवी प्रजा हैं। मरुद्गणोंके पति (ईश) होनेसे इन्द्र भी 'गणपति'-शब्दसे वेदोंमें अभिहित हुए हैं। गणदेवताओंको गणी देवताकी महिमारूप होनेके कारण उससे अभिन्न माना गया है। अतः पृथ्वीमें स्थित प्रथम मरुद्रूप 'गणपति' भी इन्द्रसे अभिन्न होनेके कारण 'नि षु सीद गणपते गणेषु' आदि वेद-ऋचाओंमें 'गणपति'-शब्दसे अभिहित होते हैं।

देवासुर-संग्राम

ज्योतिर्मय इन्द्र मरुद्गणोंको आगे करके देवासुर-संग्राममें तमोमय असुरोंपर आक्रमण करते हैं—यह कहा गया है। इस देवासुर-संग्रामका वेदके मन्त्रों एवं ब्राह्मण भागोंमें बहुधा वर्णन है। यह अधिदैवत, अध्यात्म एवं अधिभूत भेदसे तीन प्रकारका है। हम यहाँ अधिभूत 'देवासुर'-संग्रामका प्रत्यक्ष दर्शन कराते हैं—

वारुण—आप्य प्राणमय तमोमय आसुरभावके प्रवेशसे कोई भी वस्तु सड़ने लगती है। किसी भी वस्तुका सड़ना आसुर आक्रमणका फल है। जब उसमें वायव्य सेनारूप मरुत्प्राणोंका आगमन होता है, तब उसका वह दुर्गन्धरूप आसुरभाव नष्ट हो जाता है। मरुद्गणोंके साथ इन्द्र भी वहाँ उपस्थित रहते हैं। यह अधिभूतमें 'देवासुर-संग्रामका स्वरूप है। प्रकाश अन्धकारका अधिदैवतमें एवं शारीरिक दाम-दम आदि देवों और अहंकार लोभ आदि असुरोंका अध्यात्ममें 'देवासुर'-संग्राम है। इन सब संग्रामोंमें मरुद्गण इन्द्रके सहायक होते हैं।

वाहन मूषक

निगम आगममें यह प्रसिद्ध है कि गणपतिका वाहन 'मूषक' है। पार्थिव धनप्राण 'गणपति'-नामसे कहा गया है। इसका वाहन निविडघन यह पृथ्वी पिण्ड ही है। वेदमें अत्यन्त घनप्राणका नाम 'मूषक' है। इस प्राणसे पृ... प्राणीका निर्माण होता है। अतः यह प्राणी उस प्राणका नि... (संकेत) माना गया है। अर्थात् गणपतिके वाहन मू... भूपिण्ड मानना चाहिये। दूसरे शब्दोंमें गणेशकी म... भूपिण्ड है। यह गणपति प्राण उक्थरूपसे भूपिण्ड (मू... पर स्थित होकर त्रैलोक्यमें व्याप्त है। 'निरुक्त'में मह... यास्कका विज्ञान है कि स्वयं देवता ही अपने वाहन, आयुध, आभूषण आदि रूपोंमें परिणत होते हैं, अतः यह भूपिण्ड मूषक 'गणेश'से अभिन्न माना गया है। प्रतिष्ठा-बलरूप गणे... का पीतमृत्तिका एवं पूगीफल (सुपारी) से अतिरिक्त वि... है, अतः ये दोनों गणपतिकी भाव प्रतिमा मानी गयी हैं।

ध्यान एवं निदान-भाव

आगम पुराण आदिमें 'निदान' भावोंसे कल्पित गणपति... अनेक ध्यानोंका उल्लेख है। उनमेंसे तीन ध्यानोंका उल्लेख यहाँ किया जाता है—

१. खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
प्रस्यन्दन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम्।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम्॥*

२. सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं
दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद्बीजपूराभिरामम्।
बालेन्दुद्योतमौलिं करिपतिवदनं दानपूरार्द्रगण्डं
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम्॥†

* मैं सिद्धिप्रदाता, अभीष्टदायी, पार्वतीनन्दन भगवान् गणेशकी वन्दना करता हूँ, जो नाटे, स्थूलकाय, गजवदन एवं लम्बोदर होनेपर भी अप्रतिम कमनीय हैं, जिनकी कनपटियोंसे चूते हुए मदकी मधुर गन्धसे आकृष्ट भौंरोंके कारण वे कनपटियाँ चञ्चल प्रतीत होती हैं तथा अपने दाँतकी चोटसे विदीर्ण हुए शत्रुओंका रुधिर जिनके मुखपर सिन्दूरकी शोभा धारण करता है।

† जिनकी अङ्गकान्ति सिन्दूरके समान है, जिनके तीन नेत्र हैं, जिनका उदर विशाल है, जो अपने अनेक हाथोंमें क्रमशः दन्त, पाश, अङ्कुश, वर-मुद्रा और बिजौरा नीबू धारण किये अत्यन्त सुन्दर लगते हैं, जिनका मस्तक द्वितीयाके चन्द्रसे उद्भासित रहता है, गजवदन होनेके कारण जिनकी कनपटियाँ मदके प्रवाहसे भीगी रहती हैं, जो अपने शरीरपर वासुकि नागको अलंकाररूपमें धारण किये रहते हैं और जो लाल ही वस्त्र और लाल ही अङ्गराग धारण करते हैं, उन भगवान् गणेशका भजन करो।

उद्यद्दिनेश्वररुचिं निजहस्तपद्मैः
पाशाङ्कुशाभयवरान् दधतं गजास्यम्।
रक्ताम्बरं सकलदुःखहरं गणेशं
ध्यायेत् प्रसन्नमखिलाभरणाभिरामम्॥७॥

निदान-भावोंके रहस्य

तन्त्रोंका विज्ञान है कि जिस प्राणदेवताका भाव प्रतिमा अथवा नैदान प्रतिमामें आवाहन अभीष्ट होता है, उस देवताके कल्पित नैदानस्वरूपको प्रथमतः अपने अन्तर्जगत्में स्वचित करना पड़ता है; अतः आवाहनसे प्रथम ध्यानका विधान है। तदनन्तर 'गणपतिमावाहयामि' इत्यादि रूपसे भाव-प्रतिमा अथवा नैदान प्रतिमारूप मध्यस्थ भूतमें उस ध्यानात्माके स्वरूपका आवाहन किया जाता है। मध्यस्थ भूतमें भी 'गणपति' हैं; किंतु आवाहित 'गणपति'से भूतस्थ गणपति उद्बुद्ध होते हैं, यह आवाहनका रहस्य है।

रहस्य

'निदान' शब्दद्वारा कल्पित 'गणपति'के इन तीन ध्यानोंमें प्रयुक्त निदान भावोंके रहस्य इस प्रकार हैं—

१ खर्वम्-'गणेश'के शरीरकी खर्वता (वामनत्व) खगोल एवं खगोलस्थ बृहत्तम सूर्य आदि पिण्डोंके सामने यह पार्थिव पिण्ड अत्यन्त लघु (छोटा) है, इस रहस्यका निदान (संकेत) करती है।

२ स्थूलतनुम्-यहाँ पार्थिव 'गणपति' प्राण पुष्टिभावका प्रवर्तक है, इस भावका संकेत है। 'पुष्टिर्वै पूषा'—इस वैदिक विज्ञानके आधारपर 'पूषा' प्राण पुष्टिभावका प्रवर्तक माना गया है; परंतु पार्थिव 'गणपति' प्राण पार्थिव 'पूषा'-प्राणका अनुगामी है, इस कारण यह भी पुष्टिभावका प्रवर्तक है।

३ गजेन्द्रवदनम्-यह पार्थिव 'इरा' रस मादक है, इस भावका द्योतक है। हस्ती पशुमें इस रसका अतिरेक विकास है, अतः वह 'गज' शब्दसे अभिहित हुआ है। 'गजति मदेन मत्तो भवति इति गजः'—यह 'गज' शब्दका निर्वचन है। पार्थिव 'गणपतिः'-तत्त्व भी इस इरा-रससे मत्त है, अतः उनको भी 'गजानन' मान लिया गया है। दूसरे शब्दोंमें 'गणपति'का गजानन भाव पार्थिव इरा-रसकी मादकताका निदान है।

४ लम्बोदरम्-यह उरु-अन्तरिक्षमें अनुगत म भावका निदान है। अर्थात् यह विस्तीर्ण अन्तरिक्ष 'गणपति'का लंबा उदर है।

५ दन्ताघातः-यह घन प्राणका निदान है। अ पार्थिव घन प्राण 'गणपति' है। देवता ही आयुध परिणत होते हैं—यह पहले कहा जा चुका है।

६ सिन्दूरशोभाकरम्-यह सिन्दूरवर्णका द्योतक 'गणपति'के सिन्दूरवर्ण, रक्तकान्ति, रक्तवस्त्र, रक्त अङ्ग आदि आग्नेय पार्थिव प्राणके सूचक हैं। अर्थात् ग पार्थिव आग्नेय प्राणरूप हैं।

७ नागेन्द्रावद्धभूषम्-यह आन्तरिक्ष्य नाग सर्पप्राणोंका सूचक है। अर्थात् गणेशके भूषण नाग नाग दिव्य सर्पप्राण हैं। इनके उदरका भूषण सर्प खगो विद्युद् वृत्त है।

८ त्रिनेत्रम्-यह अग्नि-सोम-आदित्यरूप तीन ज्योतियोंका निदान है। अर्थात् ये तीन ज्योतियाँ गणे तीन नेत्र हैं।

९ हस्तपद्मैः-यह खगोलीय चतुःस्वस्तिकोंका नि है। अर्थात् खगोलीय चार स्वस्तिक ही गणेशके हस्तपद्म हैं।

१० दन्तं पाशाङ्कुशेष्टानि-ये 'गणपति'के ह विद्यमान अनेक शक्तियोंके सूचक हैं। इनमें दन्त घन पाश नियन्त्रण शक्ति, अङ्कुश आकर्षण तथा वरमुद्रा अ कामपूरिका शक्तिके क्रमशः निदान हैं। शुण्डादण्डमें बीजपूर फल पार्थिव परमाणुओंका निदान है।

११ बालेन्दुद्योतमौलिम्-यह शनैश्चरका निदान अर्थात् 'गणपति' शान्तन हैं, सर्वश हैं। 'गणपति'की दन्तता पार्थिव पूषा प्राणके साथ अभेदकी सूचिका है। पूषा प्राणका प्राबल्य होता है, वह दन्तरहित होता 'अदन्तकः पूषा'—यह वेद विज्ञान है।

श्रीगणेश-तत्त्व

(लेखक—शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)

गणपतिके स्वरूपमें नर तथा गज—इन दोनोंका ही सामञ्जस्य पाया जाता है। यह मानो प्रत्यक्ष ही परस्पर-विरोधी प्रतीत होनेवाले 'तत्'-पदार्थ तथा 'त्वम्'-पदार्थके विशिष्ट अभेदको सूचित करता है; क्योंकि 'तत्' पदार्थ सर्वजगत्कारण, सर्वशक्तिमान् परमात्मा होता है, 'त्वम्'-पदार्थ अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् जीव होता है। इन दोनोंका सर्वांशमें ऐक्य स्थूलदृष्टिसे यद्यपि तर्क-विरुद्ध है, तथापि लक्षणासे सृष्टिकर्तृत्वादिविरुद्ध ईशद्वयका त्याग करके चैतन्यांशमें एकता सुसम्पन्न होती है, तद्वत् लोकमें यद्यपि नर और गजका ऐक्य असमञ्जस है, तथापि सर्वविरुद्धधर्माश्रय भगवान्‌में यह समञ्जस है; क्योंकि चित् और अचित्—दोनों ही ब्रह्मके शास्त्रसिद्ध विशेषण हैं।

पञ्चदेवोपासना

यह विश्वप्रपञ्च पञ्चमहाभूतोंका विपरिणाम है। पञ्च महाभूत सत्त्व, रज और तम प्रकृतिके इन तीन गुणोंसे समुद्भूत हैं। आकाशतत्त्व—विशुद्ध सत्त्वगुणप्रधान है, वायुतत्त्व—सत्त्व और रजके सम्मिश्रणका विपरिणाम है, अग्नितत्त्व—विशुद्ध रजोगुणप्रधान है, जलतत्त्व—रजोगुण और तमोगुणके सम्मिश्रणका विपरिणाम है तथा पृथ्वीतत्त्व—विशुद्ध तमोगुणप्रधान है। इस प्रकार प्रकृतिके तीन गुणोंसे पाँच विभिन्न तत्त्वोंका प्रादुर्भाव हुआ है, जिनमें आकाश, अग्नि और पृथ्वी—ये तीन तत्त्व क्रमशः सत्त्व, रज और तमोगुणके विशुद्ध विपरिणाम हैं, तथा वायु और जलतत्त्व क्रमशः सत्त्व-रज तथा रज-तमके सम्मिश्रणके विपरिणाम हैं। उक्त पञ्चभूतोंसे [illegible] ही समस्त जीवोंके शरीर हैं। जिस प्राणीमें जिस तत्त्वका अधिकार होता है, तदनुसार ही उस जीवका [illegible] होता है। वेद कहते हैं—

'[illegible]' ([illegible] १०।[illegible])

[illegible]

[illegible]

अमुक-अमुक तत्त्वके न्यूनाधिक्यके तारतम्यके कारण ही है। मनुष्योंमें भी कोई स्वभावतः सौम्य और दूसरे महा[illegible] देखे जा सकते हैं। इस प्रकार सिद्ध है कि मनुष्यवर्ग[illegible] विध प्रकृतिसम्पन्न है।

यद्यपि समस्त जीवोंके उपास्य एकमात्र श्रीमन्ना[illegible] भगवान् ही हैं, परंतु पञ्चविध प्रकृतिवाले जीव स्व[illegible] प्रकृतिके अनुरूप ही उपासनामें प्रवृत्त होते हैं। श्रीभग[illegible] स्वयं भगवद्गीतामें घोषणा की है—

'प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥' (३।३[illegible])

अर्थात् समस्त जीव अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार कार्यमें प्रवृत्त होते हैं—इसमें निग्रह सफल नहीं हो पाता।

लोकमें भी 'स्वभावो दुरतिक्रमः'—यह आभाणक सुप्रसि[illegible] है। ऐसी स्थितिमें एक ही कृपालु भगवान् जीवोंके उद्धार[illegible] लिये उपासकोंकी भावनाके अनुसार अपने विभिन्न रूपोंकी कल्पना करते हैं। रामपूर्वतापनीय उपनिषद् ७ में आया है—

'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना।'

अर्थात् उपासना करनेवाले भक्तोंको अभीष्ट सिद्धि प्रदान करनेके लिये ब्रह्मके बहुविध रूपोंकी कल्पना होती है।

तदनुसार आगमशास्त्रोंमें एक ही श्रीमन्नारायण तत्त्वोंके अधिष्ठाता रूपमें पञ्चविध वर्णित हुए हैं।

यथा—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

अर्थात् आकाशतत्त्वके अधिष्ठाता विष्णु, अग्नितत्त्वकी अधिष्ठात्री देवी दुर्गा, वायुतत्त्वके अधिष्ठाता सूर्य, पृथ्वीतत्त्वके शिव और जलतत्त्वके अधिष्ठाता गणेश हैं।

[illegible]

के आधियोंको प्राकृतिक चिकित्साका अपर नाम ही सना है। अतः जलतत्त्व प्रधान प्रकृतिवाले साधकोंके लिये तत्त्वके रूपमें गणेशरूप श्रीमन्नारायणकी उपासना शास्त्र- है। इसी प्रकार तत्तत् तत्त्वप्रधान प्रकृति विशिष्ट कोंके लिये तत्तत् देवतारूप श्रीमन्नारायणकी उपासना देय है। यही पञ्चदेवोपासनाका अन्तरङ्ग रहस्य है।

स्वरूप-विवेचन

श्रीगणेश 'गज-वदन' हैं, जो 'समाधिना योगिनो यत्र गच्छन्ति इति 'ग.'। यस्माद् बिम्बप्रतिबिम्बवत्तया प्रणवात्मकं जायते इति 'जः'। अर्थात् समाधिसे योगी जिस तत्त्वको प्राप्त करते हैं, वह 'ग' है और जैसे बिम्बसे प्रतिबिम्ब उत्पन्न होता है, वैसे ही कार्य-कारणस्वरूप प्रणवात्मक प्रपञ्च जिससे उत्पन्न होता है, उसे 'ज' कहते हैं। 'जन्माद्यस्य यतः।' 'यस्माद्रौप्यमभूनिर्यतो वेदो यतो जगत्।' इत्यादि वचन भी इसके पोषक हैं। सोपाधिक 'त्वं'-पदार्थात्मक गणेशका पादादि कण्ठपर्यन्त नरदेह है। यह सोपाधिक होनेसे निरुपाधिककी अपेक्षा निकृष्ट है—अधोभूताङ्ग है। निरुपाधि उत्कृष्ट 'तत्' पदार्थमय श्रीगणेशजीका कण्ठादि मस्तकपर्यन्त गजस्वरूप है; क्योंकि वह निरुपाधिक होनेसे उत्कृष्ट है। सम्पूर्ण पादादि मस्तकपर्यन्त गणेशका देह 'असि'-पदार्थ अखण्डैकरस है।

गणेशजी 'एकदन्त' हैं। 'एक' शब्द 'माया' का बोधक है और 'दन्त' शब्द 'मायिक' का बोधक है। यथा—

> एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वं समुद्भवम्।
>
> ×   ×   ×
>
> दन्तः सत्तात्मकस्तत्र मायाचालक उच्यते॥
>
> (मुद्गलपुराण)

गणेशजी माया और मायिकका योग होनेसे 'एकदन्त' हैं। वे 'वक्रतुण्ड' भी हैं—'वक्रमात्मस्वरूपं मुखं यस्य'। 'वक्र' टेढ़ेको कहते हैं। आत्मस्वरूप टेढ़ा है; क्योंकि सर्वजगत् मनोवचनका गोचर है, किंतु आत्मतत्त्व उसका (मन-वाणीका) अविषय है, जैसा कि कहा है—'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।' इसीलिये कहा गया है—

> कण्ठाधो मायया युक्तं मस्तकं ब्रह्मवाचकम्।
>
> वक्राख्यं येन विघ्नेशस्तेनायं वक्रतुण्डकः॥

'चतुर्भुज'—अर्थात् चारों वेद, चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके संस्थापक और रक्षक हैं—

> 'चतुर्णां त्रिविधानां च स्थापकोऽयं चतुर्भुजः।'

'मूषकवाहन'—'आखुस्ते पशुः।' (यजुर्वेद ३।५७) जैसे (मुष् स्तेये धातुसे निष्पन्न) मूषक प्राणियोंके सब भोग्यपदार्थोंको चुराकर भी पुण्य पाप वर्जित होता है, वैसे ही मायागूढ़ सर्वान्तर्यामी भी सर्वभोग्योंको भोगता हुआ भी पुण्य पाप वर्जित है—

> ईश्वरः सर्वभोक्ता च चोरवत् तत्र संस्थितः।
>
> स एव मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः॥

'लम्बोदर'—यह समस्त विश्वप्रपञ्च उनके उदरमें प्रतिष्ठित है—

> 'तस्योदरात्समुत्पन्नं नाना विश्वं न संशयः।'

गणेश गजमुख, लम्बकर्ण, एकदन्त और लम्बोदर क्यों हैं तथा उनका वाहन मूषक क्यों है!—इन सब बातोंका विस्तारपूर्ण सप्रमाण और अलौकिक विस्तृत वर्णन इस लघु लेखमें सम्भव नहीं। यादृशं प्रभुः 'गणेशाङ्क' के अन्यान्य सभी निबन्धोंका भी ध्यानसे पठन मनन आवश्यक होगा।

'नमामि त्वां गणाधिप !'

> गणाधिप नमस्तुभ्यं सर्वविघ्नप्रशान्तिद। उमानन्दप्रद प्राज्ञ त्राहि मां भवसागरात्॥
>
> हरानन्दकर ध्यानज्ञानविज्ञानद प्रभो। विघ्नराज नमस्तुभ्यं सर्वदैत्यैकसूदन॥
>
> सर्वप्रीतिप्रद श्रीद सर्वयज्ञैकरक्षक। सर्वाभीष्टप्रद प्रीत्या नमामि त्वां गणाधिप॥
>
> (पद्मपुराण, सृष्टि० ६१। ३६-३८)

श्रीगणेशजी! आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण विघ्नोंकी शान्ति करनेवाले, उमाके लिये आनन्ददायक तथा परम बुद्धिमान् हैं, आप भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये। विघ्नराज! आप भगवान् शंकरको आनन्दित करनेवाले,

सी प्रमाण उपस्थित करते हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति, चाराध्याय, गणपतिकल्पमें कहा गया है—

एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः।
कर्मणां फलमाप्नोति श्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमाम्॥
(२९३)

यहाँपर विनायक (गणेश) पूजा करनेसे गणेश-पूजन तं भी सिद्ध हुआ। यह याज्ञवल्क्यस्मृति शतपथ-णके प्रवक्ता महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्यद्वारा प्रोक्त है, अतः यह प्राचीन है, वहीं परम प्रामाणिक भी।

न्यायदर्शन (४।१।६२) सूत्रके वात्स्यायनभाष्यमें गया है—

'द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्चाप्रामाण्यानुपपत्तिः। य एव मन्त्र-ह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खलु इतिहासपुराणस्य शास्त्रस्य चेति।'

'वेद-इतिहास पुराण और धर्मशास्त्रके द्रष्टा एवं प्रवक्ता न हैं।' इससे शतपथ-ब्राह्मणके तथा धर्मशास्त्र—ज्ञवल्क्यस्मृतिके द्रष्टा प्रवक्ता याज्ञवल्क्य समान होनेसे नोंकी प्रमाणता स्पष्ट हुई। ब्राह्मण तथा स्मृतिके वक्ता समान नेपर भी भाषा-भेदका कारण यह है कि शतपथब्राह्मण *याज्ञवल्क्यको सूर्यसे प्राप्त हुआ था*, अतः वह अपौरुषेय ना है (देखिये, इसपर महाभारत, शान्तिपर्व ३१८।६)। ज्ञवल्क्यस्मृति' उनकी पौरुषेय रचना है, अतः भाषा-द स्वाभाविक है। इसलिये संस्कृत भाषामें भाषाशैलीसे चीनता एवं अर्वाचीनताका निश्चय करना आधुनिकोंकी पना निराधार है।

इसे केवल हम ही नहीं कहते, बल्कि आर्यसमाजके नुसंधाता श्रीभगवद्दत्तजी बी०ए० भी मानते हैं। वे पनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वैदिक वाङ्मयका इतिहास' (द्वितीय ग) के पृष्ठ १६०पर लिखते हैं—'वे ही ऋषि ह्मणोंका प्रवचन करते थे और वे ही धर्मशास्त्रों दिका भी।'

'भारतवर्षका बृहद् इतिहास' (भाग १, पृष्ठ ७२) में ही लिखते हैं—"पं० ईश्वरदत्तजी (दयानन्दोपदेश विभाग ग्रन्थमें उन्होंने सिद्ध किया है कि "शतपथब्राह्मणकी भाषा वैदिक प्रवचनशैलीकी भाषा होने तथा 'ह, वै' आदिकी *बहुलतावश भी याज्ञवल्क्यस्मृतिकी भाषासे पर्याप्त सादृश्य* दीखता है। याज्ञवल्क्यस्मृतिके अनेक पाठ पाणिनीय-व्याकरण-के प्रभावसे उत्तरोत्तर बदले गये हैं। पहले वे पाठ पुरातन-लोकभाषामें थे।"" (पृ० ७३)

उक्त ग्रन्थके ५४वें पृष्ठमें तो श्रीभगवद्दत्तजीने सर्वथा स्पष्ट कर दिया है। वे लिखते हैं—'याज्ञवल्क्यस्मृति वाजसनेय-ब्राह्मण (शतपथ) के प्रवक्ता श्रीयाज्ञवल्क्यने बनायी थी—इस विषयका विशद विवेचन पं० ईश्वरदत्तजीके ग्रन्थमें देखिये। याज्ञवल्क्यस्मृतिके १००से अधिक प्रयोग पाणिनिसे पूर्वके हैं।'

श्रीभगवद्दत्तजी बी०ए०की यह बात समूल भी है। शतपथके अन्तमें कहा है—'आदित्यानि इमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येन आख्यायन्ते।' (१४।९।४।३३) यहाँपर श्रीयाज्ञवल्क्यने सूर्यके द्वारा अपनेको शतपथब्राह्मणकी प्राप्ति कही है। इसका स्पष्टीकरण 'महाभारत'के शान्तिपर्व (३१८।१, १९) में है। इससे स्पष्ट है कि श्रीयाज्ञवल्क्य मिथिलामें राजा जनकके आश्रयमें रहा करते थे। यही 'याज्ञवल्क्यस्मृति'में भी कहा है—

'मिथिलास्थः स योगीन्द्रः (याज्ञवल्क्यः) क्षणं ध्यात्वाब्रवीन्मुनीन्।' (१।२)

उसी स्मृतिमें श्रीयाज्ञवल्क्यने अपने 'बृहदारण्यक'के लिये, जो कि शतपथब्राह्मणका अन्तिम (१४वाँ काण्ड) है, कहा है—'ज्ञेयं चारण्यकमहं (याज्ञवल्क्यः) यदादित्याद् (सूर्याद्) अवाप्तवान्।' (प्रायश्चित्ताध्याय ३।११०) यहाँ श्रीयाज्ञवल्क्यने अपनी स्मृतिमें अपनेद्वारा प्रवचन किये हुए 'बृहदारण्यक' (शतपथके १४वें काण्ड)-की सूर्यद्वारा प्राप्ति कही है। इससे स्पष्ट है कि शतपथब्राह्मण-के तथा याज्ञवल्क्य स्मृतिके प्रवक्ता श्रीयाज्ञवल्क्य भिन्न भिन्न नहीं, किंतु एक ही व्यक्ति हैं। जब ऐसी बात है, तब याज्ञ-वल्क्य-स्मृतिमें प्रोक्त गणेश-पूजनादि प्राचीन तथा प्रामाणिक

—विनायक (गणेश) को विघ्नकारक कहा गया है। तब यदि उन गणेशकी पूजा न की जाय तो क्यों विघ्न कैसे हटें।

अब 'मुद्गलपुराण'[illegible] भी देख लीजिये—उसमें (११ । ६-८ श्लोकोंमें) विविध विघ्न दिखलाये गये हैं। फिर उनके शान्त्यर्थ 'तस्मात् तदुपशान्त्यर्थं समभ्यर्च्यं गणेश्वरम् ।' (११ । ९) 'एतेन सम्पूज्य गणाधिदेवं विघ्नोपशान्त्यै' (११ । ११) यह गणेश पूजा दिखलायी है। पराशरजीने 'गणानां त्वेति मन्त्रेण [illegible]।' (४ । १७७), 'गणानां त्वा'—मन्त्रसे गणेशजीकी पूजा बतायी है। याज्ञवल्क्यस्मृतिकी मिताक्षरा टीका (२८६) में 'तत्पुरुषाय विद्महे० ।'—यह गणेशजीका मन्त्र लिखा गया है।

'भविष्यपुराण'में भी 'गजेन्द्रवदनं देवं'''मूषकस्थं महाकायं—गणानां त्वेति मन्त्रेण' (मध्यमपर्व २० । १४१-१४२)में गजानन एवं मूषकस्थित देवकी 'गणानां त्वा'—इस मन्त्रसे पूजा कही गयी है।

'बोधायनगृह्यशेषसूत्र'के विनायककल्पमें—

'अभ्युदयार्थः सिद्धिकामः'''भगवतो विनायकस्य बलिं हरेत्।' (३ । १० । १)

'विघ्न ! विघ्नेश्वरागच्छ विघ्नेश्येन नमस्कृत । अविघ्नाय भवान् सम्यक् ।' (३ । १० । २)

यहाँपर भी विघ्नराजकी पूजा कही गयी है।

इसीलिये यजुर्वेद, माध्यन्दिन-संहितामें 'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च' (१६।२५) मन्त्रमें गणपतिको नमस्कार भी किया गया है। यहाँ गणपतिके लिये बहुवचनका प्रयोग सम्मानार्थ किया गया है। यद्यपि यजुर्वेद-संहिताके उक्त सूक्तके रुद्रदेवता हैं, तथापि 'आत्मा वै पुत्रनामासि' (पारस्करगृ० १ । १८ । १४)के अनुसार पिता पुत्रका अभेद सम्बन्ध प्रसिद्ध होनेसे रुद्रका गणपतिरूपसे वर्णन आया है। यही बात एक गाणपत्यने स्वामी शंकराचार्यको कही थी—

> अंशांशिनोरभेदस्तु वेदे सम्यक् प्रकीर्तितः ।
> गणेभ्यो गणपेभ्यश्च नम इत्यादिना यते ॥
> रुद्रश्च गणपश्चैव न त्वन्यो मुनिपुंगव ।

(आनन्दाश्रम, पूनाके शंकरदिग्विजयके पृष्ठ ५२७ की टीकामें उद्धृत १८।९५ श्लोक)

इसीसे महाभारतमें 'महादेव[illegible] विघ्नानि ॥' (वनपर्व) महादेवकी पूजासे [illegible] प्राप्ति भी कही गयी है। इसलिये वेदमें भी 'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे' (यजुः माध्यन्दिन-संहिता [illegible] १९) द्वारा गणपतिका [illegible] गया है। [illegible] प्रेस वैदिक यन्त्रालयसे प्रकाशित यजुर्वेदकी प्रतिमें [illegible] मन्त्रका देवता भी 'गणपति' लिखा गया है। [illegible] गणपति जब वैदिक देवता, रुद्रके अन्य रूप अथवा [illegible] या पुत्र सिद्ध हुए, तब गणपतिको 'अवैदिक' कहना एक अक्षम्य अपराध है।

इसीलिये यजुर्वेद, माध्यन्दिन संहितामें 'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे, निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे' (२३ । १९)—इस वैदिक [illegible] अश्वमेधके अश्वकी स्तुतिके लिये भी उसे गणपतिके [illegible] आहूत किया गया है। इसलिये 'गणेशपुराण'के उ[illegible] खण्डमें भी 'गणेशसहस्रनामों'में 'ज्येष्ठराजो निधिपतिर्निधि[illegible] प्रियपतिः प्रियः ।' (४७ । १५) ये ही गणेशके नाम [illegible] हैं। इसी प्रकार दोनोंकी अभिन्नता सिद्ध हुई।

आनन्दगिरिके 'शंकरविजय'के अनुसार एक गा[illegible] आचार्य शङ्करके सामने गणपतिका यही मन्त्र रखा [illegible] आचार्यने इसका खण्डन न करके अनुमोदन ही [illegible] इसीलिये इस गणपतिको वेदमें कहीं नैरुक्तरीति ([illegible] देवताके मन्त्रमें अन्य देवताका वर्णन)से अश्व[illegible] अश्वके रूपमें भी वर्णित किया गया है तो वहीं [illegible] कहीं इन्द्रके तो कहीं ब्रह्मणस्पतिके तथा बृहस्पतिके रू[illegible]

गणपति ही ब्रह्मणस्पति

अब हम वेदद्वारा गणपतिका ब्रह्मणस्पति तथा [illegible] रूपमें वर्णन दिखलाते हैं—

> गणानां त्वा गणपतिं हवामहे,
> कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
> ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
> आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥
> (ऋक्सं० २ । २३ । १)

ब्रह्मणस्पतिके ये ही नाम 'गणेशपुराण'के सहस्रनाम[illegible] गजानन-गणेशके भी आये हैं—'कविः कवीनामृषभो ब्रह्मण्यो ब्रह्मणस्पतिः । ज्येष्ठराजो निधिपतिः' (४६ । १४) अतः दोनोंका ऐक्य भी सिद्ध हो गया।

कहा जाता है कि उक्त मन्त्र 'ब्रह्मणस्पति'का है। ब्रह्म-से 'ब्रह्मणां पति:' बृहस्पतिका बोध होता है, गणेशका इसके उत्तरमें यह जानना चाहिये कि देवताओंके बहुत से एवं रूप हुआ करते हैं—यह प्रसिद्ध है। इसलिये पुराणमें गणेशसहस्रनामोंमें 'ब्रह्मणस्पति'—यह नाम उक्त मन्त्रके अन्य नाम भी आते हैं।

गणपतिका स्वस्तिकरूप

गणपति 'स्वस्तिक' रूपमें भी प्रसिद्ध हैं। उसी धामाकार रूपमें चारों ओर गणपतिका बीजमन्त्र 'गं' विराजमान यह ध्यानसे देख लीजिये। दक्षिणावर्त स्वस्तिकमें यही न्त्र 'गं' उसके दूसरी ओर विराजमान है। यही बीज 'गं' उक्त ब्रह्मणस्पतिके मन्त्रके आदिम तथा अन्तिम से निष्पन्न है—यह बात 'त्रिपुरतापिनी उपनिषद्'में कही गयी है।

आकाशमें 'स्वस्तिक' प्रसिद्ध है। 'स्वस्ति न इन्द्रो श्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्ट : स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥' सामवेदसंहिताके अन्तिम मन्त्रमें उल्लिखित इन्द्र, पूषा, तार्क्ष्य बृहस्पति—ये चार देवता आकाशमें तारोंके रूपमें प्रकार विराजमान हैं कि उन चारोंके ऊपरसे नीचेको दाहिने पार्श्वसे बायेंको रेखा कर दी जाय तो स्तिक' बन जाता है। उक्त मन्त्रमें चार बार 'स्वस्ति'-शब्द से 'स्वस्तिक' बना है। श्रीपाणिनिने भी (६।३। १ सूत्रमें) स्वस्तिकको स्मरण किया है।

अतः वेदमें जहाँ इन्द्रका कोई मन्त्र हो, या पूषा या तार्क्ष्य रुद्र) या बृहस्पतिका मन्त्र हो, उससे 'स्वस्तिक' णेश) का बोध हो जाता है। उक्त मन्त्रमें पहले गणपतिका रूपसे स्तवन है और सबसे पीछे बृहस्पतिरूपसे। इसका भाव हुआ कि वेदमें इन्द्र भी गणपतिरूपसे स्तुत होते हैं तथा स्पति भी। तब इससे वेदमें 'गणपति'की स्थिति सिद्ध हुई; के निरुक्तकार कहते हैं—

'एकस्य आत्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।'

(७।४।९)

'एक देवतात्माके दूसरे देवता अङ्ग-प्रत्यङ्ग होते हैं।'

श्रीसायणाचार्यने भी ब्रह्मणस्पति-मन्त्रके अपने भाष्यमें 'गणानां सम्बन्धी गणपतिः'—यह अर्थ भी किया है। तब ब्रह्मणस्पतिका देवपतित्व या गणपतित्व भी सिद्ध हुआ। 'गणेश-गीता'में भी गणेशको 'ब्रह्मणस्पति' कहा गया है, इसलिये गणपतिको देवदेव महादेवका आत्मा (पुत्र) माना गया है। इसी कारण 'वाल्मीकि रामायण'के एक स्थलमें महादेवको भी 'गणेश' कहा गया है।

इसके अतिरिक्त 'गणेश' बुद्धिके अधिष्ठाता भी प्रसिद्ध हैं। इसलिये ब्रह्मणस्पतिके मन्त्रमें गणपतिको 'कवि' भी कहा गया है। 'कवि'का अर्थ 'क्रान्तदर्शी' तथा 'बुद्धिमान्' है। महाभारतके लिखनेके अवसरमें गणपतिका कवित्व प्रसिद्ध है ही। अथवा 'ब्रह्मणस्पति'में 'ब्रह्म'वेदका नाम है। 'स्तुता मया वरदा वेदमाता' इस अथर्ववेदसंहिता (१९।७१।१) के मन्त्रमें 'वेदमाता'से गायत्री ही अभिप्रेत है। यह गायत्री 'धियो यो नः प्रचोदयात्।' (यजुर्वेद ३।३५) बुद्धिरूपा है। गायत्री चारों वेदोंकी सारस्वरूपा है। इस विषयमें मनुस्मृति (२।७६ ७७) देखिये। तब बुद्धिका अधिष्ठाता गणपति भी वेदका स्वामी होनेसे 'ब्रह्मणस्पति' है। इसलिये इसे 'बृहस्पति' भी कहा जाता है। 'बृहतीनां वेदवाचां पतिः बृहस्पतिः'। 'कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु' (पा० ६। ३।४२ पर व्याकरण महाभाष्य)से यहाँ पुंवद्भाव हो जाता है। तब 'बृहस्पति' रूपसे वर्णन भी 'गणेश'का ठीक ही हुआ।

इसलिये 'गणेशपुराण'में भी 'गणेश'को 'ब्रह्म ब्रह्मार्चित पदो ब्रह्मचारी बृहस्पतिः॥' (४६।१०५) 'बृहस्पति'-शब्दसे भी कहा गया है।

> कविः कवीनामृषभो ब्रह्मण्यो ब्रह्मणस्पतिः॥
> ज्येष्ठराजो निधिपतिर्निधिः प्रियपतिः प्रियः।
>
> (४६।१४-१५)

—यहाँ गणेशको ब्रह्मणस्पति तथा ज्येष्ठराज भी कहा है। तब यह ब्रह्मणस्पतिवाला 'गणानां त्वा०' मन्त्र भी गणेशजीका ही सिद्ध हुआ।

इस वेद-मन्त्रका इतिहास 'गणेशपुराण'में इस प्रकार आया है—

> कदाचित् सुमुहूर्ते तु पिता शाचक्नविः सुतम्।
> गणानां त्वेति ब्रह्मन्त्रं महान्तमुपदिष्टवान्।
> उवाच च महामन्त्रो वैदिकोऽखिलसिद्धिदः॥
> आगमोक्तेषु मन्त्रेषु सर्वेषु श्रेष्ठ एव च।
> ध्यात्वा गजाननं देवं जपेत् स्थिरमानसः॥

यजुर्वेदकी १०१ संहिताएँ हैं । इनमें कृष्णयजुर्वेदकी ८६ तथा शुक्ल यजुर्वेदकी १५ संहिताएँ होती हैं । ऐतिहासिक दृष्टिसे कृष्णयजुर्वेद शुक्ल यजुर्वेदकी अपेक्षा बड़ा, प्राचीन और सुव्यवस्थित भी है ।

इसी प्रकार कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यकमें भी गजानन गणेशका वर्णन मिलता है—'तत्पुरुषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ।' (१०।१) इसीलिये सर्ववेदभाष्यकार श्रीसायणाचार्य भी अपने भाष्योंके प्रारम्भमें गजानन गणेशका ही मङ्गलाचरण करते हैं । यदि इसमें अवैदिकता होती तो वे यह नहीं करते ।

त्रिपुरातापिनी उपनिषद्की तृतीयकण्डिकामें 'गणानां त्वा'''सीद सादनम्' मन्त्रके आदि अन्तसे 'गं गणपतये नमः'''''''गणेशको नमस्कार कराया गया है । वहीं चतुर्थकण्डिकामें 'गणानां त्वाइति त्रैष्टुभेन पूर्वेणाभ्यर्च्य चतुर्थेनान्तेन गणाधिपमभ्यर्च्य गणेशत्वं प्राप्नोति'—यह फल बतलाया गया है । ['गणानां त्वा'—इस त्रिष्टुभ् छन्दके मन्त्रसे भगवान् गजाननकी पूजा करके पूजक गणेशके पद (सायुज्य) को प्राप्त करता है] ।

'खिल'-मन्त्र भी 'वैदिक' ही हैं, प्रक्षिप्त नहीं । इसीलिये मनुस्मृति (३ । २३२) में 'खिलानि च' के द्वारा पितृकर्ममें खिलोंके पाठका भी विधान है । यजुर्वेदकी माध्यन्दिन-संहिता में २६वें अध्यायके बीचमें जो 'यथेमां वाचं०' यह प्रसिद्ध मन्त्र है, वह 'खिल' माना जाता है । 'बृहत्पराशर-स्मृति'में 'आ तू न इन्द्र'—इस मन्त्रको 'गणेश्वर'-परक बतलाया गया है, यह हम पहले बतला चुके हैं ।

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥
(अथर्व० १९ । ९ । १०)

—इस मन्त्रके पूर्वार्धमें ग्रहोंसे प्रार्थना है और उत्तरार्ध में 'धूमकेतु' शब्दसे 'धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षः' गणेशकी प्रार्थना तथा चतुर्थ पादमें रुद्रदेवताओंसे प्रार्थना की गयी है ।

'गणानां त्वा०' इस यजुर्वेदके मन्त्रके द्वारा अश्वमेध यज्ञमें अश्वकी भी गणपतिरूपसे स्तुति की गयी है । उसके भाष्यकार श्रीमहीधर भी 'प्रजाय लक्ष्मीं च हरिं गणेशम्'के रूपमें गणेशको भी वैदिक देवता मानकर उन्हें नमस्कार करते हैं ।

यजुर्वेदकी माध्यन्दिन संहितामें 'आखुस्ते पशुः०' (३ । ५७) कहकर चूहेको गणपतिका वाहन माना गया है । यद्यपि इस मन्त्रका देवता रुद्र है, तथापि रुद्रसूक्तमें ही 'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च०' (१६ । २५)के द्वारा रुद्रका गणपतिके रूपमें वर्णन किया गया है । 'रुद्रस्य गाणपत्यम्' (यजु० ११ । १५) में रुद्रका 'गाणपतित्व' कहा गया है । यह 'पुत्र आत्मा मनुष्यस्य' (महाभारत ३ । ३१३ । ७२)के अनुसार है । इसमें वैदिकता है । वैदिक यज्ञकी क्रियामें चूहेके बिलकी मिट्टी लायी जाती है (देखिये, शतपथ० २ । १ । ७); अतएव उसके अध्यक्ष गणपतिकी भी यज्ञमें पूजा होती है । 'गणानां त्वा०' (यजु० २३ । १९) मन्त्रसे अश्वमेध यज्ञमें यज्ञिय अश्वमें गणपतिका आवाहन किया जाता है । प्राकृतिक गणपति प्राणके च्युत होनेपर उसका प्रथम प्लेगरूप आघात चूहेपर होता है । उस प्लेगके उपशमनके लिये गणपति याग ही शास्त्रोक्त उपाय है । जबतक गणपति चूहेपर चढ़े रहते हैं, तबतक प्लेग दबी रहती है ।

गणेशका 'विघ्नेश्वर' नाम देखकर 'ये गणेश विघ्नविनाशक कैसे हो सकते हैं ? अच्छे कार्योंमें विघ्न डालनेवाले होनेसे वे उपदेव या अनार्यदेव हुए'—यह कइयोंका कहना भी अज्ञानातिशयके कारण है । 'मृगेन्द्र सिंह' मृगोंका स्वामी होता हुआ मृगोंका विनाशक भी होता है । 'जगदीश्वर' जहाँ जगत्‌का स्वामी है, वहाँ 'जगत्संहारक' भी है । एक ही देवको जब कर्ता, भर्ता और हर्ता भी माना जाता है, तब 'विघ्नेश्वर'-की 'विघ्नविनाशकता'के विषयमें शङ्काका अवसर ही कहाँ ! ईश्वरमें अनुग्रहके समान 'निग्रह'की भी शक्ति हुआ करती है । 'महेश्वर' क्या 'संहारक' नहीं ?

गणपतिको उपनिषद्में 'सर्वेश्वर' भी माना जाता है । जो 'सर्वेश्वर' है, वह 'विघ्नेश्वर' भी है । विघ्नेश्वरके व्यापार—विघ्नोंकी भी हमें आवश्यकता पड़ती ही है । जिस व्यक्तिको लगातार दुःख आ रहे हों, उसमें यदि विघ्नेश्वर प्रतिबन्ध-स्वरूप विघ्न न डालें तो वह व्यक्ति समाप्त हो जाय ।

एक बार किसी राजाकी एक उँगली कट गयी । इसे देखकर मन्त्रीने कहा—'जो विघ्नेश्वर करता है, ठीक ही करता है ।' राजाने इससे क्रुद्ध होकर मन्त्रीको निकाल दिया । मन्त्रीने उस निष्कासनको भी अच्छा समझा । एक बार राजा सेनासे अलग हो गया । जंगलमें उसे अकेला पाकर कापालिक लोगोंने देवीके आगे बलि देनेके लिये उसे पकड़ लिया । बलि देनेके समय उसे विकलाङ्ग देखकर उन लोगोंने

उसकी बलि नहीं दी, बल्कि वह छोड़ दिया गया। तब राजाको मन्त्रीकी बात ठीक ज्ञात हुई। उसने मन्त्रीको फिरसे बुला लिया। राजाने मन्त्रीसे कहा—'तुम्हारा मेरे द्वारा निकाला जाना तो तुम्हारे हकमें ठीक नहीं था; परंतु तुम उसे शुभ ही मानते हो, यह कैसे ?' इसपर मन्त्रीने कहा कि 'आप तो अङ्गभङ्ग होनेके कारण बलिदानसे बच गये; किंतु मैं यदि आपके साथ होता तो पूर्णाङ्ग होनेसे मेरी अवश्य बलि दे दी जाती। अतः आपद्वारा मेरा निकाला जाना मेरे लिये विघ्नस्वरूप होनेपर भी शुभ ही हुआ। इसलिये विघ्नेश्वरके विघ्नोंसे भी लाभ ही होता है।'

यदि विघ्नेश्वरके विघ्न न हों तो पुरुष अशुभ व्यवहारोंसे निवृत्त कैसे हो ? उन पापकार्योंमें विघ्न ही तो पुरुषकी उनसे रक्षा करते हैं। प्रतिबन्धस्वरूप विघ्न होनेसे ही हमें सुख तथा दुःख भी क्रमशः मिलते हैं। अप्रतिबन्धवश निरन्तर सुख मिले तो हम अभिमत्त होकर अपना पतन कर डालें और निरन्तर दुःख मिले तो हम निराश होकर मर जायँ। संसाररूपी गाड़ीको ही लीजिये। यह एक व्यवस्थासे चले, उसमें प्रतिबन्धस्वरूप विघ्न न हो तो गाड़ी किसी स्टेशनपर रुके ही नहीं। फिर यात्री उसपर कैसे चढ़ें या उतरें ? बिना लाइन क्लियरके वह कहीं जा टकराये तो बड़ी हानि हो जाय। मोटर-साइकल लगातार दौड़ती चली जाय, उसमें यदि ब्रेक न हो तो वह कहीं रुके ही नहीं; उसके आगे नदी आ जाय तो वह उसमें जा डूबे।

राजा बलिके बढ़े हुए वैभवमें वामनावतारका छलपूर्वक विघ्न डालना वैष्णववृत्ति थी, आर्यवृत्ति थी, अनार्यवृत्ति नहीं। वामन अनार्यदेव नहीं थे। हमलोग भी कई ऐसे कार्य लोभवश करने लग जाते हैं, जो हमारी प्राणहानि भी कर सकते हैं। यदि विघ्नेश्वर वहाँ न हों और उसमें विघ्न न डालें तो हम मर ही जायँ। यदि विघ्नेश्वर पापकर्मोंमें विघ्न न डालें तो पापकर्म कैसे रुकें ? हमारा मरण भी एक बड़ा विघ्न है, पर वह भी हमारा नया संस्करण करके हमारे लिये नवजीवनदाता बनता है।

अतः जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी अधिष्ठात्री देव त्रिमूर्तिकी भाँति विघ्नेश्वरके देवकी भी आवश्यकता रहती है। अद्वैतमें एक तत्त्व होनेपर भी व्यवहारमें वह नाना-

रूप भिन्न-भिन्न होते हैं। विघ्न होनेसे कई लाभ भी

हैं। कई बार शीघ्रता करनेसे कार्य सफलतापूर्वक न

उसमें विघ्न पड़नेपर देरी हो जानेसे वह सुगमता

है। अतः विघ्नेश्वर गणेश 'अपदेव' कभी नहीं

विघ्नेश्वर गणेश विद्या एवं बुद्धिके ही

नहीं, अपितु ऋद्धि-सिद्धि एवं निधिके भी दा

'निधिपति' एवं प्रिय आख्यानोंके अधिष्ठाता होनेसे

भी हैं। अच्छे कार्योंमें आनेवाले विघ्नोंके भी विघ्न

अभीप्सितार्थ सिद्धिदायक होनेसे वे सुरासुर पूजित भी

तभी तो उनके लिये कहा जाता है—

> अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः।
> सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः॥

जो कहीं 'गणपति'को 'चोर गणपति' कहा जाता है,

यह भाव समझना चाहिये कि वे सम्पूर्ण विघ्नोंके चोर हैं। उ

'उच्छिष्टगणपति' भी कहा जाता है, वहाँ यही भाव है कि

'सर्वान्तेऽवशिष्टः'—सबके अन्तमें शेष रहनेवा

अथर्ववेदसंहिताके 'उच्छिष्टसूक्त' (११।७)का

तात्पर्य है। इस प्रकार गणपति ब्रह्म होनेसे—

'गणपति उपनिषद्'में कहा गया है, वे 'उच्छिष्ट' भी सि

गणपतिको 'पिचण्डिल' या 'लम्बोदर' भी कहा ज

जब गणपतिको 'ब्रह्म' कहा जाता है, तब 'लम्बोदर'

भाव हुआ—'जगन्ति यस्यां सविकासमासत'।

सारा जगत् उनके पेटमें समाया हुआ है। अतः

पेट बहुत बड़ा है। यही भाव इस शब्दमें ओत-प्रोत है

'गजमुख'से डर जाना भी ठीक नहीं। कदाचित् य

इसलिये हो कि 'वे गजमुखसे सार्थक भाषा बोल कैसे सकते

सिर कटनेपर गजमुखका संधान कैसे हुआ ? उनकी मृत्यु

न हो गयी ?'—ये संदेह भी 'श्रद्धा'से समाहित हो

हैं। ब्राह्मणभागात्मक वेदको उठा लीजिये। शतपथ ब्रा

(१४।१।१।१९-२४)में वर्णन है कि अथर्वा

पुत्र दध्यङ्का सिर काटकर अश्विनीकुमारने उस

घोड़ेका सिर जोड़ दिया। उस अश्व सिरसे यज्ञपूर्तिकी विद्या

अश्विनीकुमारने सीखी। सिर कटनेसे दध्यङ् मरे भी नहीं,

घोड़ेके सिरका संधान भी हो गया। उससे बोलना

तथा विद्या प्राप्ति भी सम्पन्न हो गयी। यही यह बात ब्राह्मण

ग्रकी होनेसे किसीको खटक न जाय, अतः उन्हें वेदसंहिता देख लेनी चाहिये—

'आथर्वणाय अश्विनी दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्।' (ऋक्सं० १।११७।२२)

'युवं दधीचो मन आविवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं (अश्विनौ) वदत्॥' (ऋक्सं० १।११९।९)

इसमें प्रत्यक्षका अनुग्रह भी देख लीजिये—

एक कुत्तेका सिर दूसरे कुत्तेकी गर्दनपर जोड़ दिया गया।

मास्को २४ सितम्बर। 'मास्को ईवनिंग'के अनुसार रूसी ...निक कल एक कुत्तेका सिर एक अन्य किसके कुत्तेकी ...पर लगानेमें सफल हो गये। पत्रने लिखा है—'दो ...वाला कुत्ता सकुशल है और उसके दोनों सिर खाते-पीते ...' ('वीर अर्जुन', दिल्ली, २९ सितंबर १९५८)।

फलतः उक्त वैदिक कथाकी भाँति तथा प्रत्यक्ष ...निक रूसी घटनाकी भाँति गजमुखका संधान तथा ...के भाषण शक्ति भी सम्भव है। यह शङ्का तो व्यर्थ है कि ...का सिर बहुत बड़ा होता है, फिर वह छोटे पुरुषकी ...र कैसे जुड़ सका? इसका उत्तर यह है कि ...तेको मनुष्यशरीर समझना भूल है। गणपति ...ुष्य नहीं, किंतु देव हैं। देवताओंके शरीर ...ुष्य जितने नहीं, किंतु बहुत बड़े होते हैं। चाहे ...प चित्रोंमें गणेशको ह्रस्व आकारवाला ही देखते हों, पर वहाँ ...ाविकता नहीं होती। पृथ्वीकी अपेक्षा १३ लाखगुना बड़ा ...र्यदेवता भी चित्रमें कितना छोटा होता है। हाथीको भी वहाँ ...्य ही समझना चाहिये, इस लोकका प्राणी नहीं। तब ...न्द्रवदनं देवम्' (भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, द्वितीय ...। २०।१४०) 'मूषकस्थं महाकायम्' (वही, २०।१४२) ...आदि वचनोंमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं रह जाती। तब क्या ...के सिरवाले वैदिक ऋषि दध्यङ्को भी अनार्य ऋषि मान लिया जायगा? मनुष्य और सिंहकी संकीर्ण आकृतिवाले नृसिंहावतारको तथा मत्स्य, कूर्म, वराह और हयग्रीवकी आकृतिवाले विष्णुको भी क्या 'अनार्य देव' मान लिया जायगा? ऋक्संहिता ८।८५।७ के अनुसार रासभवाहनवाले अश्विनीकुमारोंको तथा कृष्ण रंगवाले श्रीकृष्ण तथा श्रीजगन्नाथ-मूर्तिको भी क्या अनार्य देव मान लिया जायगा? वस्तुतः गणनायकका गजवाहन होना स्वाभाविक ही है।

३३ देवताओंमें श्रीगणेशके न आनेसे भी गणेशजी अवैदिक नहीं माने जा सकते; अन्यथा उनमें सरस्वती, ब्रह्मणस्पति आदि देवताओंके भी न आनेसे वे भी अवैदिक देव हो जायँगे। पर यह किसीको भी इष्ट नहीं है। गणेशजीका जब सर्वत्र देश विदेशोंमें प्रचार है, तब स्पष्ट है कि भूमण्डलभरमें फैले हुए आर्योंके मान्य वेदादि-शास्त्रोंकी यह देन है। 'गजानन' शब्द भी चारों वेदोंके अन्तिम अक्षरोंको संकेतित करता है—'ऋग्' से 'ग', यजुः से 'ज', सामन्से 'न' और अथर्वन्से 'न'। तब वेदसे प्रकट हुआ यह गजानन देव अवैदिक एवं अनार्य कैसे हो सकता है?

'विघ्नराज क्षमस्व'—यों गणपति-पूजाके अन्तमें कहना 'आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्। पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वर॥' की भाँति आवाहनके अनन्तर विसर्जनके उद्देश्यसे है, गणेशकी अनावश्यकताका द्योतक नहीं।

गणेशकी एक मूर्ति 'ॐ' भी है। उसमें आरम्भिक भाग गजका शुण्डादण्ड है, ऊपरका अनुनासिक 'भालचन्द्र' है एवं दाहिनेमें गोलाकार मोदक (लड्डू) है। किन्हींके मतानुसार ॐ में प्लुतचिह्न मूषक है। इस प्रकार ॐ—यह गजानन गणेशकी प्रणवाकार मूर्ति है। इसे 'गणेशतापिनी उपनिषद्'में भी संकेतित किया गया है—'ततश्च ॐ इति ध्वनिरभूत्। स वै गजाकारः'। 'ॐकाररूपी भगवान् यो वेदादौ प्रतिष्ठितः।' (गणेशपुराण)।

श्रीगणपति-रहस्य

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, एम० ए०, साहित्याचार्य)

सदात्मरूपं सकलादिभूतममायिनं सोऽहमचिन्त्यबोधम् ।
अनादिमध्यान्तविहीनमेकं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥
अनन्तचिद्रूपमयं गणेशं ह्यभेदभेदादिविहीनमाद्यम् ।
हृदि प्रकाशस्य धरं स्वधीस्थं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥*

(एकदन्तस्तोत्र ३-४)

आर्योंके प्रत्येक मङ्गल-कार्यके आरम्भमें भगवान् गणपतिकी पूजा होती है। यह पूजा थोड़ी मात्रामें हो या बड़ी मात्रामें, होती है अवश्य। आवाहनसे लेकर विसर्जनपर्यन्त पूजा विविध विधानोंके अनुसार यथाशास्त्र विशेष प्रकारसे की जाती है; परंतु सामग्रियोंके अभावमें केवल 'श्रीगणेशाय नमः', 'श्रीगणपतये नमः' कहकर ही हम कभी-कभी मङ्गलमूर्ति सिन्धुरवदनका स्मरण कर लिया करते हैं। यह पूजा भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तके धर्माभिमानी हिंदू सद्गृहस्थोंके घरमें की जाती है, चाहे वह किसी भी दूसरे सम्प्रदायका उपासक क्यों न हो। गणेश-पूजाका इतना लोकप्रचार—सार्वभौम परिचय होनेपर भी हम गणपतिके यथार्थ स्वरूपसे अनेक अंशोंमें अपरिचित-से ही हैं। यही कारण है कि उन्हें शिवपुत्र जानते हुए शिव-गौरीके विवाहारम्भमें उनके पूजनकी कथा सुनकर हममेंसे बहुत लोग इन दोनों बातोंमें पारस्परिक विरोध मान बैठते हैं अथवा इस कथाको पौराणिक कल्पना कहनेमें आनाकानी नहीं करते। अतः गणपतिके वास्तविक स्वरूपका जानना हमारा परम कर्तव्य है। हमारे गणेशोपासना सम्बन्धी संस्कृत ग्रन्थोंमें इस रहस्यका उद्घाटन बड़ी मार्मिकताके साथ किया गया है। 'कल्याण'के प्रेमी पाठकोंके सामने इस तत्त्वका थोड़ा-सा विवेचन प्रस्तुत करनेका उद्योग किया जा रहा है।

गणपति। तत्त्व निरूपण करनेके पहले विषयमें सामान्य चर्चामात्र कर देना मैं हूँ। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि वैदिक सिद्धान्तके अनुसार प्रायः सभी पौराणिक दे वेदोंमें मिलता है। धीरे-धीरे ये विकासकी नवीन रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं। गणेशजी हैं, परंतु इनका नाम वेदोंमें 'गणेश' न 'ब्रह्मणस्पति' है। जो वेदमें 'ब्रह्मणस्पति सूक्तोंमें अभिहित किये गये हैं, उन्हीं देव 'गणेश' मिलता है। ऋग्वेदके द्वितीय मण मन्त्र गणपतिकी ही स्तुतिमें है—

गणानां त्वा गणपति
कविं कवी
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्म
आ नः शृण्वन्नूति

इसमें आए 'ब्रह्मणस्पति' कहे अर्थ वाक्, वाणी है—अतः 'ब्रह्म वाचस्पति अथवा वाणीका स्व उपनिषद्में (१ । ३ । २०-२१) प्रदर्शित किया गया है—

एष एव उ एव बृहस्पति पतिस्तस्मादु बृहस्पतिः। एष उ ए तस्या एष पतिस्तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः

'ज्येष्ठराज' शब्द भी, जिसका मिलता है, इसी मन्त्रमें प्रयुक्त हुआ सबसे ज्येष्ठ—सबसे पहले उत्पन्न होने शासनकर्ता। इन्द्र तो केवल देवों इन्द्रके भी प्रेरक होनेसे आपका नाम ' मन्त्रमें गृत्समद ऋषि देवगणोंके अधिपति, क अनागतके भी द्रष्टा, कवियोंके कवि, अनुप 'ज्येष्ठराज' ब्रह्मणस्पतिका आवाहन करते प्रार्थना करते हैं कि हमारे आवाहन-मन्त्र अपनी रक्षा शक्तिके साथ हमारे यज्ञमें आकर

* जो सत्पुरुषोंके आत्मरूप (अथवा सदा आत्मरूप), सबके आदि, मायाविवर्जित, 'वही (परमात्मा) मैं हूँ'—इस प्रकार जिनके अंदर अचिन्त्य ज्ञान है, जिनका न आदि है न मध्य और न अन्त ही है, उन द्वितीय-रहित भगवान् एकदन्तकी हम शरण ग्रहण करते हैं। हम उन एकदन्त भगवान् गणेशकी शरणमें जाते हैं, जिनका स्वरूप अनन्त एवं चिद्रूप है, जो सबके आदिभूत हैं, जो हृदयमें प्रकाशको धारण किये रहते हैं, अपनी बुद्धिमें विराजमान रहते हैं और भेद-अभेद आदिसे रहित हैं।

पूरा-का-पूरा सूक्त ब्रह्मणस्पति—गणपतिकी प्रशंसामें अन्य सूक्तोंमें भी आपकी स्तुति मिलती है, अतः जोंके ब्रह्मणस्पतिके रूपमें वैदिक देवता होनेमें तनिक संदेह नहीं है। और भी एक बात है। गणेशके जिस रूपका वर्णन पुराणोंमें उपलब्ध होता है, उसका भी स्म वैदिक ऋचाओंमें मिलता है। निम्नलिखित मन्त्रोंमें तिको 'महाहस्ती', 'एकदन्त', 'वक्रतुण्ड' तथा 'दन्ती' गया है—

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं संगृभाय।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥

(ऋग्वेद ८।८१।१)

एकदन्ताय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

(कृ० य०, मैत्रायणीसंहिता २।९।१।६)

गणपतिके वैदिक स्वरूपके जिज्ञासुजन नीलकण्ठविरचित 'गणपतितत्त्वरत्नम्' के अध्ययन करनेका कष्ट उठायें। इस प्रकार गणपतिके वैदिक रूपका थोड़ा-सा आभास देकर हम अपने मुख्य विषयकी ओर आते हैं।

'गणपति' शब्दका अर्थ है—गणोंका पति। इसी अर्थमें इन्हें 'गणेश' भी कहते हैं। यहाँ 'गण' शब्दका अर्थ जानना आवश्यक है। 'गण समूहे'—समूहवाचक 'गण्' धातुसे 'गण' शब्द बना है। अतः इसका सामान्यार्थ समूह—समुदाय होता है; परंतु यहाँपर इसका अर्थ देवताओंका गण, महत्तत्त्व अहंकारादि तत्त्वोंका समुदाय तथा सगुण निर्गुण ब्रह्म है; अतः 'गणपति' शब्दसे यह सूचित होता है कि आप समस्त देवतावृन्दके रक्षक हैं; महत्तत्त्व आदि जितने सृष्टि-तत्त्व हैं, उनके भी आप स्वामी हैं, अर्थात् इस जगत्‌की उत्पत्ति आपसे ही हुई है। सगुण-निर्गुणके पति होनेसे गणपति ही इस जगत्‌में सबसे श्रेष्ठ तथा माननीय देवाधिदेव हैं। 'गण'की दूसरी व्याख्यासे आपका जगत्कर्तृत्व और भी अधिकरूपसे स्पष्ट प्रतीत होता है। मनोवाणीमय सकल दृश्यादृश्य विश्वका वाचक 'ग' अक्षर है तथा 'ण' अक्षरके द्वारा जितना मनोवाणी-समन्वित तथा तद्रहित जगत् है—उसका ज्ञान होता है। उसके पति या ईश होनेके कारण हमारे आराध्य गणेश सर्वश्रेष्ठ महान् देव हैं। 'गण'-शब्दकी यह व्याख्या मौद्गल-पुराणमें इस प्रकार निरुक्त है—

मनोवाणीमयं सर्वं दृश्यादृश्यस्वरूपकम्।
गकारात्मकमेवं तत् तत्र ब्रह्म गकारकः ॥
मनोवाणीविहीनं च संयोगायोगसंस्थितम्।
णकारात्मकरूपं तत् णकारस्तत्र संस्थितः ॥

अब गणपतिके रूपपर तनिक दृष्टि डालिये। उनका मुख हाथीका-सा बतलाया जाता है। इसीसे आपको गजानन, गजास्य, सिन्धुरानन आदि नामोंसे अभिहित किया जाता है। चित्र विचित्र रूपके लिये पुराणोंमें समुचित कथानक भी वर्णित हैं, परंतु इस रूपके द्वारा जिस अव्यक्त भावनाको व्यक्त रूप दिया गया है, वह नितान्त मनोरम है। गणपतिके अन्तर्निहित गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्वको जिस ढंगसे इस रूपके द्वारा सर्वजनसंवेद्य बनानेकी चेष्टा की गयी है, वह वास्तवमें अत्यन्त सुन्दर है। गणपतिके बाह्य रूपको समझना क्या है, उनके आभ्यन्तर गुहास्थित सत्य रूपकी पहचान करना है। उनका रहस्य जाननेके लिये यह बड़ी भारी मूल्यवान् कुंजी है।

गणेशजीके सारे अङ्ग एक प्रकारके नहीं हैं। मुख तो है गजका, परंतु कण्ठके नीचेका भाग है मनुष्यका। इनके देहमें नर तथा गजका अनुपम सम्मिलन है। 'गज' किसे कहते हैं? 'गज' कहते हैं, साक्षात् ब्रह्मको। समाधिके द्वारा योगिराज जिसके पास जाते हैं—जिसे प्राप्त करते हैं वह हुआ 'ग' (समाधिना योगिनो यत्र गच्छन्तीति गः) तथा जिससे यह जगत् उत्पन्न होता है, वह हुआ 'ज' (यस्माद् बिम्बप्रतिबिम्बतया प्रणवात्मकं जगज्जायते इति जः)। विश्वकारण होनेसे वह ब्रह्म (गज) कहलाता है। गणेशका ऊपरी भाग गजका-सा है अर्थात् निरुपाधि ब्रह्मरूप है। ऊपरका भाग श्रेष्ठ अंश होता है—मस्तक देहका राजा है, अतः गणपतिका यह अंश भी श्रेष्ठ है; क्योंकि यह निरुपाधि—उपाधिरहित मायानवच्छिन्न ब्रह्मका द्योतक है। नरसे अभिप्राय मनुष्य, जीव अथवा सोपाधि ब्रह्मका है। अधोभाग ऊर्ध्वभागकी अपेक्षा निकृष्ट होता है। अतः सोपाधि अर्थात् मायावच्छिन्न चैतन्य—जीवका रूप होनेसे अधोभाग निकृष्ट है। अथवा 'तत्त्वमसि' महावाक्यकी दृष्टिसे हम कहेंगे कि गणेशजीका मस्तक 'तत्'-पदार्थका संकेत करता है तथा अधोभाग 'त्वम्'—पदार्थका। 'तत्'-पद मायानवच्छिन्न शुद्ध चैतन्य निरुपाधि ब्रह्मका वाचक है, अतः गजाननके उत्तमाङ्गद्वारा उसका द्योतन नितान्त उचित है।

... साथ मिलकर मलावरणसे इतना आच्छन्न हो जाता है कि उसका असली प्रकाशमय रूप बिल्कुल आवृत हो जाता है। ऐसी अवस्थामें सद्गुरुके मुखसे निकला हुआ 'गणेश'-नाम कर्णकुहरके द्वारा मनुष्योंके हृदयमें प्रवेश कर सूपकी तरह पाप-पुण्यको अलग कर देता है तथा भगवान् शूर्पकर्णकी उपासना मायाको बिल्कुल हटाकर आत्मरूप ब्रह्मकी प्राप्ति कराती है। अतः आपके 'शूर्पकर्ण'-नामकी सार्थकता स्पष्टरूपसे प्रतिपादित होती है—

शूर्पकर्णं समाश्रित्य त्यक्त्वा मलविकारकम्।
ब्रह्मैव नरजातिस्थो भवेत्तेन तथा स्मृतः॥

गणेशजी मूषकवाहन—मूषकध्वज हैं। मूषक किस तत्त्वको द्योतित करता है, इस विषयमें मतभेद है। मूषकका काम वस्तुको कुतर डालना है। जो वस्तु इसके सामने रखी जाती है उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गका वह विश्लेषण कर देता है। इस दृष्टिसे वह मीमांसा करनेके उपयुक्त वस्तुस्वरूप—विश्लेषणकारिणी बुद्धि (निश्चयात्मिका बुद्धि) का प्रतिनिधि प्रतीत होता है। गणेशजी बुद्धिके देवता हैं। अतः जिस तार्किक बुद्धिके द्वारा वस्तुतत्त्वका परिचय प्राप्त किया जाता है तथा उसके सार एवं असार अंशका पृथक्करण किया जाता है, उसका—गजाननका वाहन बनना अत्यन्त औचित्यपूर्ण है। दूसरी दिशासे विचार करनेपर 'मूषक' ईश्वर-तत्त्वका द्योतक भासमान होता है। ईश्वर अन्तर्यामी हैं, सब प्राणियोंके हृदयमें निवास करते हैं, सब प्राणियोंके द्वारा स्थूल किये गये भोगोंका वे भोग करते हैं। किंतु अहंकारके कारण मोहयुक्त प्राणी इसे नहीं जानता; वह तो अपनेको ही भोक्ता समझता है। परंतु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। प्राणियोंका प्रेरक—अन्तर्यामी, हृदयमें निवास करनेवाला ईश्वर ही वास्तवमें सब भोगोंका भोक्ता है। इस अवस्थामें मूषककी कार्यपद्धति उसपर खूब घटती है। मूषक भी घरके भीतर पैठकर चीजें चुराया करता है, परंतु घरके मालिकको इसकी तनिक भी खबर नहीं होती। इसलिये मूषकके रूपमें ईश्वरकी ओर संकेत है। पुराणोंमें गणेशकी सेवा करनेके लिये ईश्वरके मूषकरूप बन जानेकी कथा भी मिलती है। उस परब्रह्मके लिये ईश्वरके सेवार्थ वाहनरूप स्वीकार करनेकी कथा आध्यात्मिक दृष्टिसे भी उपयुक्त है—

अतः गणपतिजी चिन्मय हैं, आनन्दमय हैं, ब्रह्ममय हैं, सच्चिदानन्दरूप हैं। उन्हींसे इस जगत्‌की उत्पत्ति होती है, उन्हींके कारण इसकी स्थिति है और अन्तमें उन्हींमें इस विश्वका लय हो जाता है। ऐसे परमात्माका सकल कार्योंके आरम्भमें स्मरण तथा पूजन करना उपयुक्त ही है। एक बात और भी है। गणेशकी मूर्ति साक्षात् 'ॐ'-सी प्रतीत होती है। मूर्तिपर दृष्टिपात करनेसे ही इसकी प्रतीति नहीं होती, प्रत्युत शास्त्रोंमें भी गणेशजी ओंकारात्मक माने गये हैं। लिखा है कि शिव-पार्वती दोनों चित्रलिखित प्रणव (ॐ) पर ध्यानसे अपनी दृष्टि लगाकर देख रहे थे। अकस्मात् ओंकारकी भित्तिको तोड़कर साक्षात् गजानन प्रकट हो गये। इसे देख शिव-पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस पौराणिक कथाकी सूचना—

प्र त इन्द्र पूर्व्याणि प्र नूनं
वीर्या वोचं प्रथमा कृतानि।
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं
सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम्॥
(ऋक्० १०। ११२। ८)

—मन्त्रमें बतलायी जाती है (इस मन्त्रके अर्थके लिये देखिये 'गणपतितत्त्वरत्नम्' का १२वाँ पृष्ठ)। अतः ओंकाररूप होनेके हेतु गणेशजीकी सब देवताओंसे प्रथम पूजा तथा सत्कार पाना ठीक ही है; क्योंकि प्रणव सब श्रुतियोंके आदिमें आविर्भूत माना जाता है—'प्रणवश्छन्दसामिव।'

गणेश शिवके ज्येष्ठ पुत्र बतलाये गये हैं। इनके शिवपुत्र होनेके विषयमें एक पौराणिक कथा भी है। कहते हैं कि गणेशने सब देवताओंकी सृष्टि की। शिव, ब्रह्मा आदि भी उन्हींसे उत्पन्न हुए। इन्होंने तपस्या करना शुरू किया। योगिराज शंकरने अपनी समाधि लगायी। उसमें ब्रह्मानुभूति होनेपर आपने अपने हृदयमें गणेशजीका साक्षात् दर्शन किया। दर्शनके अनन्तर उन्होंने गणेशजीकी स्तुति एवं प्रार्थना की कि 'आप हमारे पुत्र होइये, जिससे आपका पिता होनेके कारण मैं इस मायामोहमय संसारसे पार हो जाऊँ'—

ध्याने मनसि मे जातः पुत्रत्वं याहि च प्रभो।
मम पुत्र इति ख्यातो लोकेऽस्मिन् भगवान् भव॥

शंकरजीकी प्रार्थना सुनकर गणेशने उनका पुत्र होना

पार्वतीके यहाँ माघ मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी
को हुआ था—

> सर्वदेवमयः साक्षात् सर्वमङ्गलदायकः ।
> माघकृष्णचतुर्थ्यां तु प्रादुर्भूतो गणाधिपः ॥
>
> (शिवधर्म)

गणेशजी अपने आराधकोंके समस्त संकटोंको, कष्टोंको
कर देते हैं, अतः उनके प्रादुर्भावकी तिथि 'सकष्ट
हर) चतुर्थी' कहलाती है ।

चतुर्थी तिथिको गणेशजीके प्रकट होनेके कारण
उनके भक्त प्रतिमास इस तिथिके आनेपर उनका विशेष आराधन
करते हैं और प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थीको 'गणेश
चतुर्थी' और शुक्लपक्षकी चतुर्थीको 'वैनायकी चतुर्थी'
कहते हैं ।

स्कन्दपुराणोक्त श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-संवादके अनुसार
भाद्रपद-मासके शुक्लपक्षकी चतुर्थीकी विशेष महिमा है ।
उस दिनकी आराधनासे गणपतिभगवान् अपने आराधकों-
के समस्त कार्य-कलापोंमें सिद्धि प्रदान करते हैं, अतः
उनका नाम 'सिद्धिविनायक' प्रसिद्ध हो गया है—

> सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि मनसा चिन्तितान्यपि ।
> तेन ख्यातिं गतो लोके नाम्ना सिद्धिविनायकः ॥

उनकी कृपासे विद्यार्थीको विद्याकी, धनार्थीको धनकी,
विजयार्थीको विजयकी और पुत्रार्थीको पुत्रकी प्राप्ति हो
जाती है ।

जलतत्त्वप्रधान व्यक्ति और गणपति

संसारके सभी जीव पाञ्चभौतिक शरीरोंसे सम्बद्ध हैं । किसी
में पृथ्वीतत्त्व प्रधान होता है, किसीमें जलतत्त्व, किसीमें
तेजस्तत्त्व, किसीमें वायुतत्त्व और किसीमें आकाशतत्त्व । इन
पाँचों प्रकारके जीवोंकी साधनामें समीचीनताके सम्पादनार्थ
गुरुजन परमात्माकी पञ्चधा उपासना बताते हैं । पृथ्वीतत्त्वकी
प्रधानतावालोंके लिये भगवान् शंकरकी, जलतत्त्वकी प्रधानता
वालोंके लिये भगवान् गणपतिकी, तेजस्तत्त्वकी प्रधानतावालोंके
लिये भगवती दुर्गाकी, वायुतत्त्वकी प्रधानतावालोंके लिये
सूर्यकी और आकाशतत्त्वकी प्रधानतावालोंके लिये
विष्णुकी उपासना रुचिकर होती है—

(क

गणेशजीके साथ रूपान्तरोपासना

सभी कार्योंमें सिद्धि-प्राप्तिके लिये श्रीगणप
श्रीसूर्य, श्रीदुर्गा, श्रीशिव और श्रीविष्णुकी पूजाका वि

> आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशव
> पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजये

केवल एक देवताकी मूर्तिकी पूजाका निषेध है
जो व्यक्ति अपनी कामनाओंकी सफलता चाहता
अनेक देवताओंकी पूजा करनी चाहिये—

> एका मूर्तिर्न सम्पूज्या गृहिणा स्वेष्टमिच्छत
> अनेकमूर्तिसम्पन्नः सर्वान् कामानवाप्नुयात

पूजा-क्रममें गणपति द्वितीय

यदि पञ्चायतन देवताओंमें प्रत्येकके प्रति सम
भक्ति हो तो साधकको सर्वप्रथम श्रीसूर्यकी, तत्पश्चात
श्रीगणपति, श्रीदुर्गा, श्रीशंकर और श्रीविष्णुकी पूजा
चाहिये—

> रविर्विनायकश्चण्डी ईशो विष्णुस्तथैव च
> अनुक्रमेण पूज्यन्ते व्युत्क्रमे तु महद् भयम्

गणपतिके प्रतिमात्रयका निषेध

घरमें कभी-कभी एक देवताकी अनेक मूर्तियोंका स
जाता है; अतएव आराधकको उनकी संख्याका ध्
ध्यानमें रखना आवश्यक है । घरमें दो शिवलिङ्ग
शङ्खों, दो सूर्य-प्रतिमाओं, दो शालग्रामों, दो गोमती
तीन गणपति प्रतिमाओं एवं तीन देवी प्रतिमाओंकी स
नहीं करनी चाहिये—

> गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं गणेशत्रितयं तथा ।
> शङ्खद्वयं तथा सूर्यौ नार्च्यौ शक्तित्रयं तथा ॥
> द्वे चक्रे द्वारकायाश्च शालग्रामशिलाद्वयम् ।
> तेषां तु पूजनेनैव उद्वेगं प्राप्नुयाद् गृही ॥

प्रतिष्ठा-समय-विचार

गणपतिभगवान्की प्रतिष्ठाके लिये चैत्र, वैशाख,
माघ अथवा फाल्गुन मासका शुक्लपक्ष शुभ है—

(ऋग्वेद १० । ११२ । ९)

त् हे गणपते ! आप यहाँ आनन्दपूर्वक । सभी लोग आपको विद्या-विशारदोंमें सर्वोत्तम एवं आपकी आराधनाके बिना कोई भी म नहीं किया जाता। (यजमानके प्रति आचार्यका हे धनी पुरुष ! महान् और पूजनीय गणपति- चित्र विचित्र अर्थात् विभिन्न द्रव्योंके द्वारा ।

अभिषेक

शङ्खमें रखे हुए पवित्र जलसे गणपतिभगवान्का करते समय 'गणेशाथर्वशीर्ष'की इक्कीस आवृत्ति विधान है।

दूर्वा

त (लाल) वर्णवाले और सुरभित कुसुमावलीके साथ ङ्कुर भी गणेशजीको अर्पण किये जाते हैं, किंतु जामें तुलसीदलका प्रयोग नहीं किया जाता—

'न तुलस्या गणाधिपम् ।' (ज्ञानमाला)

नीराजन-मन्त्र

विघ्नारण्यकुठारं विहितनयनकरम् ।
विरदबल्लीवरकुम्भं विहितकुलप्रकाशम् ॥
विजयाकल्पलितां विरचितभवपाशम् ।
विनताः स्मो वयमनिशं विद्याविभवेशम् ॥

र्थात् हम सभी आराधक नित्य निरन्तर उन गणेशजी- प्र विनयावनत हैं, जो समस्त विघ्नरूपी वनोंको नेके लिये प्रबल कुठार हैं, जो अनीति और तत्काल विनाश कर देते हैं, जो विपत्तिके नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिये कटिबद्ध हैं, जिनके कमलमें अङ्कुश और दूसरेमें पाश विराजमान नि विघ्न विनाशरूपी सूर्यके प्रकाशसे दसों दिशाएँ कर दी हैं, जो अपने उपासकोंके भवबन्धनको कर देते हैं और जो समस्त विद्याओंके वैभवके र हैं।

नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥

अर्थात् हे गणपते ! आप विघ्नोंके नाशक हैं, अतएव आराधकोंको उनके द्वारा उत्पीडित नहीं होने देते। आप अपने उपासकोंको उनके अभीष्ट वर देकर कृतार्थ कर देते हैं। सारे देवता आपको प्रिय हैं और आप सब देवताओंको प्रिय हैं। आप लम्बोदर हैं, चतुष्षष्टि कलाओंके निधान हैं और जगत्का मङ्गल करनेके लिये सदा तत्पर रहते हैं। आप गज-वदन हैं और श्रुत्युक्त यज्ञोंको अपने आभूषणोंके समान स्वीकार कर लेते हैं। आप पार्वती-नन्दन हैं। हम आपके चरणोंमें बारंबार प्रणाम करते हैं।

गणेश-गायत्री

(१) एकदन्ताय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्ती प्रचोदयात् । (गणपत्युपनिषद्)

(२) तत्पुरुषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्ती प्रचोदयात् । (नारायणोपनिषद्)

अर्थात् हम एकदन्त परमपुरुष गणपति भगवान्को जानते हैं, मानते हैं और उन वक्रतुण्ड भगवान्का हम ध्यान करते हैं। वे हमारे विचारोंको सत्कार्यके लिये प्रेरित करें।

परिक्रमा

'कर्मकाण्ड-परिशिष्ट'के अनुसार गणेशजीकी एक परिक्रमा करनी चाहिये—

'एकां विनायके कुर्यात्'

किंतु मतान्तरसे—

'तिस्रः कार्या विनायके ॥'

—इस वचनके अनुसार तीन परिक्रमाओंका विकल्प भी आदरणीय है।

गणेशजीके पार्षद

गणपतिभगवान्को निवेदित किया हुआ नैवेद्य सर्वप्रथम उनके पार्षदों (सेवकों) को देना चाहिये। पार्षदोंके नाम हैं—गणेश, गालव, गार्ग्य, मङ्गल और सुधाकर—ये पाँच एवं मतान्तरसे गणप, गालव, मङ्गल और सुधाकर—ये चार गणेशजीके सेवक हैं।

गणेशजीके बारह नाम

१. सुमुख—सुन्दर मुखवाले।

२. एकदन्त—एक दाँतवाले।

३. कपिल—जिनके श्रीविग्रहसे नीले और पीले वर्णकी आभाका प्रसार होता रहता है।

४. गजकर्णक—हाथीके कानवाले।

५. लम्बोदर—लंबे उदरवाले।

६. विकट—सर्वश्रेष्ठ (विकटं श्रेष्ठेऽपि निर्दिष्टम्, हलायुध कोश)।

७. विघ्ननाश—विघ्नोंका नाश करनेवाले।

८. विनायक—विशिष्ट नायक। उन्नत मार्गपर ले जानेवाले।

९. धूम्रकेतु—धुएँकेसे वर्णकी ध्वजावाले।

१०. गणाध्यक्ष—गणोंके स्वामी।

११. भालचन्द्र—मस्तकपर चन्द्रकला धारण करनेवाले।

१२. गजानन—हाथीके मुखवाले।

इन बारह नामोंका पाठ अथवा श्रवण करनेसे विद्यारम्भ, विवाह, गृह-नगरमें प्रवेश, गृह-नगरसे निर्गम, संग्राम तथा किसी भी संकटके समय कोई विघ्न नहीं होता—

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥

भागवतमें गणपति-पूजन-विधान

सभी वैष्णवोंके परममान्य प्रमाण ग्रन्थ [illegible] एकादश स्कन्धके सत्ताईसवें अध्यायमें श्री[illegible] उद्धवजीको क्रियायोगका उपदेश दिया है। वहाँ स्प[illegible] है कि 'मेरे पूजनके समय दुर्गादेवी, विनायक, विष्वक्सेन, गुरुदेव एवं अन्यान्य देवताओंकी भी [illegible] साधक भक्तको करनी चाहिये'—

दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान्।
स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान् पूजयेत् प्रोक्षणादिभिः॥
(११। २७।[illegible])

सच्चिदानन्दरूप श्रीगणेशकी निर्गुण-सगुणोपासना

(लेखक—पं० श्रीदामोदर प्रसाद पाठक शास्त्री, पूर्वोत्तरमीमांसक, न्यायसिन्धुरामणि, शिक्षाशास्त्री, काव्यतीर्थ, राष्ट्रभाषाकोविद)

समूचे संसारमें भारतीय संस्कृतिकी महत्ता अन्यान्य संस्कृतियोंकी अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट एवं आदरणीय मानी जाती है। संस्कृति पदसे [illegible] और [illegible] की परिपूर्ति करनेके कारण हमारी भारतीय संस्कृति सार्थ और यथार्थ है। भारतीय संस्कृति वैदिक संस्कृति है। भारतीय संस्कृतिके मूल आधार वेद हैं। वेद ज्ञानरूप हैं, ज्ञानमय हैं, अज्ञानको दूर करनेवाले हैं। वे स्वयं ज्ञानमय होनेके कारण उनमें अज्ञानका अस्तित्व ही कहाँ! वेद तो ज्ञानस्वरूप हैं ही, इसमें संदेह नहीं, किंतु ज्ञानका [illegible] विवेचन वेदोंके [illegible] उपनिषदोंमें ही प्राप्त है। वहीं [illegible] इस विश्वका मूल कारण बताया है। अतः उपनिषदोंमें [illegible]—'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्। एकमेवाद्वितीयम्।' (छान्दोग्य० ६।२।१) 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।' (छान्दोग्य० ३।१४।१) [illegible]।

[illegible] है, सच्चिदानन्द है। वही सत् है, असत् नहीं। है, वही चित् है, [illegible] है, वही आनन्दरूप है और जो आनन्दरूप है, वही सत् है; [illegible] सार्वकालिक, चित्का अर्थ है—चैतन्यरूप और [illegible] अर्थ है—सदा सुखमय। सद्रूप, चिद्रूप और [illegible] सत् इस विश्वका मूल कारण है। उन्होंने स्फुरित[illegible] 'एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय।'—मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ, ऐसा स्फुरित होते ही वह एक सत् ही गणेश रूपमें अभिव्यक्त हो गया—

'गणेशो वै सदजायत तद् वै परं ब्रह्म।'
(गणेशोत्तरतापिनि-उपनिषद् [illegible])

'[illegible]' [illegible]

(गणेशपूर्वतापिन्युपनिषद् [illegible])

'उसी सत्ने अखिल [illegible], गजमुख, चतुर्भुज देवता [illegible] उत्पन्न होती है। [illegible]

णेश सच्चिदानन्दरूप है।'

' तद् गणेशः । ॐ सद् गणेशः । ॐ परं गणेशः । गणेशः ।' (गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् २ । १)

ही तत्-गणेश है, वही सत्-गणेश है, वही पर है, वही ब्रह्म-गणेश है।'

'तच्चित्स्वरूपं निर्विकारं अद्वैतं च ।'

(गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् ४)

ही चिद्रूप, निर्विकार और अद्वितीय है। वही सद्रूप आनन्दरूप है।'

आनन्दो भवति स नित्यो भवति स शुद्धो भवति स भवति स स्वप्रकाशो भवति स ईश्वरो भवति स भवति स वैश्वानरो भवति स तैजसो भवति स प्राज्ञो स साक्षी भवति स एव भवति स सर्वो भवति स सर्वमिति ।' (गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् ५)

वही सद्रूप गणेश आनन्दरूप है, नित्य है, शुद्ध है, मुक्त स्वप्रकाश, ईश्वर और प्रमुख है। वही वैश्वानर और तथा प्राज्ञ है। वही सर्वसाक्षी है, वह वही है, वह सब सब कुछ है।'

त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि ।'—(गणपत्यथर्वशीर्ष ४)

श्रीगणेश सच्चिदानन्दरूप परब्रह्म हैं।' 'न रूपं न नाम णम् ।' 'स ब्रह्म गणेशः'

'स निर्गुणः स निरहंकारः स निर्विकल्पः स निरीहः स आनन्दरूपस्तेजोरूपमनिर्वाच्यमप्रमेयः पुरातनो निगद्यते ।' (गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् २)

'उसका न कोई रूप है, न नाम है और न गुण है। वही ब्रह्म है। वह निर्गुण, निरहङ्कार, निर्विकल्प, निरीह, कार, आनन्दरूप, तेजोरूप, अनिर्वचनीय और अप्रमेय तीत गणेश है।'

उसी प्रकार एकाक्षर ओंकाररूप ब्रह्म भी वही है—

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेदं सर्वम् । तस्योपव्याख्यानम् । भूतं भव्यं भविष्यदिति सर्वमोंकार एव । एतच्चान्यच्च

भूत, भविष्य, वर्तमान—सभी ओंकाररूप ही है। यह त्रिकालस्वरूप और त्रिकालातीत सब ओंकार ही है। वही ओंकाररूप ब्रह्म यह गणेश ही है। ओंकार ब्रह्मस्वरूप है ही, यह ओंकार स्वयं माङ्गलिक होकर उपासकोंका रक्षण करता है।'

'ओंकारश्चाथ शब्दश्च द्वौ'''माङ्गलिकावुभौ ।'

ओंकारकी प्रक्रिया इसी प्रकारकी है—'अवत्यस्माद्-पासकम् । अवति ब्रह्म चेति विगृह्य अव रक्षणादौ । अवतेष्टिलोपश्च इति मन् प्रत्ययः । तस्य प्रत्ययस्यैव लोपः, न प्रकृतेः । अन्यथा मन्त्रित्येव विद्ध्यात् । ज्वरत्वरेत्यादिना वकारस्योपधायाश्च ऊठ् । द्वयोरूठोः सवर्णदीर्घत्वे सार्वधातुकार्धधातुकयोः इति गुणः । कृन्मेजन्तः इत्यव्ययमोम् ॥'

अतः व्याकरणकी प्रक्रियासे यह सिद्ध हुआ कि यह ओंकार उपासकोंके लिये मङ्गलवाचक, रक्षार्थक और उपासनाके लिये उपक्रमकारक है।

निर्गुण निराकार परब्रह्म गणेशकी यह केवल एकाक्षर नाम-स्वरूप उपासना है। यहाँ गणेश पदसे पार्वती शिवसम्भूत गणपतिकी उपासना नहीं है। पार्वती शिव-नन्दन गजानन परमात्मा भगवान् गणेशके अवतार हैं। भगवान् गणेश परब्रह्म परमात्मा हैं। वे निर्गुण, निराकार तथा सारे विश्वमें व्याप्त हैं—

जगद्रूपो गकारश्च णकारो ब्रह्मवाचकः ।
तयोर्योगे गणेशाय नाम तुभ्यं नमो नमः ॥

(मुद्गलपुराण, भक्तमनोरथसिद्धिप्रद गणेशस्तोत्र ४)

''गणेश' शब्दमें आया हुआ 'गकार' जगद्रूप है और 'णकार' ब्रह्मवाचक है। ऐसे सर्वव्यापक परब्रह्म श्रीगणेशको प्रणाम है।' निर्गुण उपासना करनेवालोंको मोक्षकी मालिकी आवश्यकता होती है। उसकी परिपूर्ति साक्षात् गणेश हैं। निर्गुणोपासनामें ज्ञान साधन है तथा मोक्ष साध्य है। इस साधनरूप ज्ञान और साध्यरूप मोक्ष—दोनोंके स्वामी श्रीगणेशजी हैं—

ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः ।
तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम् ॥

(ब्रह्मवैवर्त; विघ्ननिवारक गणेशनामाष्टकस्तोत्र १)

ाररके यहाँ जन्म लेकर पुत्रके रूपमें प्रकट हुए, र-सुवन भवानी-नंदन' भी कहलाये । गजानन शंकरजीके पुत्र हैं। कृतयुगमें विनायक, त्रेतामें ादि परमात्मा गणेशके अवतार हैं ।

ा गणेश सगुणरूपमें प्रकट हुए हैं और अनेक दुष्ट-दैत्योंका संहार करनेके लिये, ज्ञान प्रदान ये, लीलाओंका आदर्श प्रतिष्ठापित करनेके लिये, अनेक महान् कार्योंका सम्पादन करनेके लिये ार रूपोंमें प्रकट हुए हैं। उनके मूल स्वरूपको नके सगुण स्वरूपकी उपासना करनी चाहिये । ापूर्वक उपासना करनेवाले उपासक भी गण्य मान्य नीय बन गये हैं, जिनमेंसे मुद्गल, गृत्समद, वरेण्य णपत्य श्रेष्ठ हैं।

ान् गणेशकी सगुणोपासना अनेक प्रकारकी होती ाल गणेश-मूर्तिके प्रकार अलग-अलग होते हैं नाका विधि-विधान भी अलग-अलग होता है। ार और अनेक विधानोंसे गणेशोपासना की जाती ासे अठारह हाथोंवाली मूर्तियाँ भी होती हैं। एकमुखसे ली मूर्तियोंका भी पूजन होता है। सिंह-मयूर-वाहनों-ाजन मूषकवाहनके साथ कई उपासक करते हैं । ्धु प्रदान करनेसे भी गणेशके कई नाम प्रसिद्ध उनमें हरिद्रागणेश, दूर्वागणेश, शमीगणेश, गोमय-ादि नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। काम्यकर्ममें किये उपास्य देवताओंके नाम उसी उपासनाके अनुसार ुए हैं । जैसे—संतानगणेश, विद्यागणेश आदि। के अनेक मत हैं। उनमेंसे वरदचतुर्थीव्रत, इक्कीस-गणपतिव्रत, गणेश-पार्थिवपूजनव्रत, गणेश-, तिलचतुर्थीव्रत, संकष्टहरचतुर्थीव्रत, वैनायकी क्षेत्रमें और चित्तवड़ क्षेत्रमें गाणपत्योंकी उपासनाएँ और मताचार विशिष्ट एवं विभिन्न रहे हैं। कुछ उपासक 'गणपत्यथर्वशीर्ष'का पठन करते हैं तो कोई 'ब्रह्मणस्पतिस्तोत्र'-का, कोई 'योगगीता'का तो कोई 'गणेशगीता'का पठन-चिन्तन मनन करते हैं ।

कर्ममार्गका अनुसरण करनेवाले 'गणेशयाग' करते हैं। गणेशभद्र, गणपतिभद्र आदिका निर्माण शास्त्रीय विधिसे करके और उनपर गणेशयन्त्रोंको स्थापितकर विधान-पूर्वक हविष्यान्नका हवन करते हैं । जिसकी जो इच्छा होती है, तदनुसार मोदक, दूर्वा, लाजा, तिल आदि हविष्यान्नका उपयोजन उपासक करते हैं। कई उपासक वाक्सिद्धि, कामनापूर्ति, विद्याप्राप्ति, यशोलाभ, पाप-नाश आदिके लिये जपानुष्ठान करते हैं तथा एकाक्षरसे लेकर अनेक अक्षरों-वाले सिद्ध-मन्त्रोंका जप करते हैं। उनमें जप, हवन, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मण-भोजन आदिका विधान होता है । कई उपासक तान्त्रिक पद्धतिसे पूजा-उपासना करते हैं । सत्य विनायक, सिद्धि-विनायक आदि अनेक प्रकारकी तान्त्रिक उपासनाओंका विधान है। कई जगहोंपर 'द्वार-यात्रा' चलती है। कई उपासक मन्त्र-कल्प करते हैं । 'गणेशगायत्री', 'गणेश-अष्टोत्तरशतनाम', 'गणेश-सहस्रनाम'से अपनी मनः-कामना सफल करनेवाले भी कई उपासक हैं।

इस प्रकार अनेकानेक उपासनाओंका सारे भारतमें यथाशक्ति, यथाविधि, यथासमय विस्तार हुआ है। इन सगुण उपासनाओंका ज्ञान देनेवाले अनेक ग्रन्थ संस्कृत और प्रादेशिक भाषाओंमें आज भी उपलब्ध हैं। केवल भारतमें ही नहीं, समूचे संसारमें गणेशकी प्रतिमाएँ मिलती हैं । कई जगहोंपर अपने-अपने ढंगकी उपासनाएँ भी प्रचलित हैं।

श्रीगणेश-तत्त्व

(लेखक—आचार्य डॉ० श्रीमुक्ताकान्तजी उपाध्याय 'मुक्तरत्न', एम्० ए०, पी एच्० डी०, साहित्याचार्य, शिक्षा शास्त्री, नीतिज्ञ रत्नद्वय)

परम सत्ताको जान लेना ही इस जीवनका चरम शिखर है। 'यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।' (ऋ० १। १६४। ३९)—अर्थात् जो उस परमात्माको नहीं जानता, वह ऋचासे क्या करेगा। वैदिक ऋषियोंकी खोज और शिक्षाका सर्वोच्च सार है—एक परम तत्त्वका रहस्य, 'एकं सत्' (ऋ० १। १६४। ४६) या 'तदेकम्' (ऋ० १०। १२९। २), जो उपनिषद्का महावाक्य बन गया। सब देव, प्रकाश और सत्यकी शक्तियाँ एक (देव) के ही नाम और शक्तियाँ हैं। प्रत्येक देव स्वयं सब देवता है और उन्हें अपनेमें रखे हुए है। वह परम सत्य एक है—'तत् सत्यम्' (ऋ० ३। ३९। ५; ४। ५४। ४ तथा ८। ४५। २७ इत्यादि)।

एक ही परमात्मा निखिल कल्याणगुणगणार्णव, अगणित शक्तियोंका केन्द्र और अनन्त लीलाओंका अथाह सागर है। 'अनाम' होते हुए भी उसके अनन्त नाम और 'अरूप' होते हुए भी उसके असंख्य रूप हैं। उपासककी भावना, कामना, लक्ष्य और सिद्धि आदिके भेदसे वह एक ही अनेक रूपोंमें पूजित होता है—

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान्।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम्॥
(ऋ० ५। ६२। १)

निम्नाङ्कित प्रसिद्ध मन्त्रमें इसी सिद्धान्तकी स्पष्ट सूचना मिलती है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
(ऋ० १। १६४। ४६)

'गणपत्यथर्वशीर्ष'में परम तत्त्व और ब्रह्मके रूपमें श्रीगणेश-की यह स्तुति उनकी परदेवतासे अभिन्नता सूचित करती है—

'ॐ नमस्ते गणपतये त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि।' (१)

तन्त्रग्रन्थके आरम्भमें विनायकके रूपमें गणेश स्तुति इस प्रकार की गयी है—

अनाद्यन्तोऽपराधीनः स्वाधीनसु[illegible]
अत्यन्तविरतो व्याप्तदिशः कालो वि[illegible]

इसमें विनायक (गणेश)के अ[illegible] स्वाधीन, नित्य कालस्वरूप माना है। वे व्याप्ति[illegible] दिशाओंके बन्धनोंसे अनवच्छिन्न हैं। उनका ति[illegible] तादात्म्य है। दूसरे शब्दोंमें यहाँ विनायकका [illegible] वर्णन किया गया है।

यद्यपि वेदोंमें इन्द्र, अग्नि, वरुण, विष्णु, [illegible] तरह श्रीगणेशका जो रूप पुराणोंमें है, उस [illegible] सूक्त प्राप्त नहीं होते, किंतु कुछ मन्त्रोंमें स्पष्ट[illegible] पौराणिक स्वरूपके बीज मिलते हैं। श्रीगणेश[illegible] प्रसिद्ध नाम 'गणपति' है। वेदोंमें यह नाम अने[illegible] प्राप्त होता है—

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं [illegible]
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे महामर्कं [illegible]
(ऋ० १०। ११[illegible]

'हे गणपते! आप स्तुति करनेवाले हमलोगोंके [illegible] भली प्रकार स्थित होइये। आपको क्रान्तदर्शी [illegible] अतिशय बुद्धिमान्—सर्वज्ञ कहा जाता है। आपके बि[illegible] भी शुभाशुभ कार्य आरम्भ नहीं किया जाता। (इ[illegible] हे भगवन्! (मघवन्), ऋद्धि सिद्धिके अधिष्ठा[illegible] हमारी इस पूजनीय प्रार्थनाको स्वीकार कीजिये।'

शुक्लयजुर्वेदके १६वें अध्यायके २५वें मन्त्र[illegible] 'गणपति'-शब्द आता है। 'ॐ नमो गणेभ्यो गणपति[illegible] भ्यो नमो नमः।'—गणोंको और आप गणपतियोंको [illegible] है।' गणपति-पूजनमें प्रयुक्त शुक्लयजुर्वेदके २३वें अ[illegible] १९वाँ मन्त्र सर्वविदित है—

'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रिय[illegible] हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे। वसो [illegible] अहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।'

यद्यपि यह मन्त्र अश्वमेध यज्ञके प्रसङ्गमें आता है [illegible] मन्त्रका विनियोग अश्व-स्तवनमें है, तथापि केवल अ[illegible] सन्देह [illegible] अश्वमुखेन गणपति[illegible]

द्धि इस मन्त्रसे होती है। मीमांसा शास्त्रके अनुसार ही मन्त्र प्रस्थान भेदसे कई देवताओंके लिये प्रयुक्त हो ता है। इसी आधारपर यह मन्त्र गणेशके लिये प्रयुक्त हुआ तैत्तिरीय-आरण्यकके १०वें प्रपाठकके प्रथम अनुवाकमें यह आया है, जो गणेश-गायत्रीके नामसे प्रसिद्ध है—

'तत्पुरुषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।'

—इसमें यह प्रार्थना की गयी है कि 'दन्ती हमको प्रेरित ।' दन्तीका अर्थ हुआ—दाँतवाला। उनका विशेषण है—तुण्ड, टेढ़ी सूँड़वाला। दन्तीमें दाँतोंकी संख्याका निर्देश है; परंतु यह स्पष्ट है कि ऐसा नाम उसीको दिया जा ता था, जिसके दाँतोंमें कोई विशेषता रही हो। ऐसी में स्वभावतः गणेशजीके एकदन्त, एकरद-जैसे नामोंकी र ध्यान जाता है और यह स्पष्ट होता है कि 'दन्ती' शजीका ही नाम है। 'वक्रतुण्ड' नाम इसी निष्कर्षकी पुष्टि ता है। तैत्तिरीय आरण्यक कृष्ण-यजुर्वेदके अन्तर्गत है।

'गण' शब्द समूहका वाचक है। समूहोंका पालन करने के परमात्माको 'गणपति' कहते हैं। 'गण्यन्ते बुध्यन्ते ते णाः'—इस व्युत्पत्तिसे सम्पूर्ण दृश्यमात्र 'गण' है और उसका अधिष्ठान है, वही 'गणपति' है। गणेश भगवान् लम्बोदर क्योंकि उनके ही उदरमें समस्त प्रपञ्च प्रतिष्ठित हैं और किसीके उदरमें नहीं हैं। उनका वाहन मूषक है। मूषककी यह ही सर्वान्तर्यामी सर्वप्राणियोंके हृदयरूप बिलमें रहनेवाले वं जन्तुओंके भोगोंको भोगनेवाले ही श्रीगणपति हैं। चूहा विवेचक, विभाजक, भेदकारक, विस्तारक, विश्लेषक एवं द्धिका सूचक है। हाथीका सिर ध्याना संयोजक, समाहारक, समन्वयकारक, संश्लेषक बुद्धिका उदय होना है। ज्ञान और तन्मूलक व्यवहारके लिये विभाजक और समाहार-कारक—दोनों प्रकारकी बुद्धि चाहिये, परंतु प्रधानता समन्वय-बुद्धिकी ही है; इसीलिये गजवदनजी चूहेपर सवारी करते हैं। इस संश्लेषक बुद्धिके कारण ही गणेशजी 'बुद्धिसागर' माने जाते हैं। चूहा लौकिक बुद्धिवाले मोहावृत जीवका भी प्रतीक है—'आखुस्ते पशुः।' (यजु० ३ । ५७) चूहेकी चपलता और भोगलोलुपता प्रसिद्ध ही है। वह रातमें निकलता है और रातको मोह—अज्ञानकी उपमा दी जाती है। यह भी अज्ञानी जीवसे चूहेकी समता दिखानेवाली बात है। श्रीगणेश विद्यात्मक ईशतत्त्वके प्रतीक हैं। गणेशजीकी एकदन्तता उनकी अद्वैत-

प्रियताकी सूचक है। उनको मोदक प्रिय होना ही चाहिये। मोदकका अर्थ है—आनन्द देनेवाला। मोदक ब्रह्मानन्दका नाम है। इनके उपासकोंको सभी प्रकारकी ऋद्धि सिद्धियाँ सुलभ हैं।

'गणेश' नामका अर्थ इस प्रकार है—

ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः।
तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥

अर्थात् 'ग' ज्ञानार्थवाचक और 'ण' निर्वाणवाचक है। इस प्रकार ज्ञान-निर्वाणवाचक गणके ईश परब्रह्म हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूँ।

गणेश पुराणके उपासना-खण्डमें दिये हुए 'गणेशाष्टक' (२) का यह श्लोक भी ध्यान देनेयोग्य है—

यतश्चाविरासीज्जगत्सर्वमेतत्
तथाब्जासनो विश्वगो विश्वगोप्ता।
तथेन्द्रादयो देवसंघा मनुष्याः
सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥

'हम सदा उन गणेशको प्रणाम करते और उनका भजन करते हैं, जिनमेंसे यह सारा जगत्, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि देव सङ्घ तथा मनुष्य आविर्भूत हुए हैं।'

इसी प्रकार 'एकदन्तस्तोत्र' (२३)में कहा गया है—

सदात्मरूपं सकलादिभूतममायिनं सोऽहमचिन्त्यबोधम्।
अनादिमध्यान्तविहीनमेकं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥
विश्वादिभूतं हृदि योगिनां वै प्रत्यक्षरूपेण विभान्तमेकम्।
सदा निरालम्बसमाधिगम्यं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥

'जो सदा आत्मस्वरूप हैं, सबके आदिभूत हैं, मायासे परे हैं। 'सोऽहमस्मि'—वह परमात्मा मैं हूँ—इस अचिन्त्य बोधसे सम्पन्न हैं तथा जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, उन एकमात्र भगवान् एकदन्तकी हम शरण लेते हैं। जो विश्वके आदिकारण हैं, योगियोंके हृदयमें प्रत्यक्षरूपसे प्रकाशमान एक—अद्वितीय तत्त्व हैं। निरालम्ब समाधिके द्वारा ही जिनका सदा साक्षात्कार सम्भव है, उन भगवान् एकदन्त (गणेश) की हम शरण लेते हैं।'

अतः श्रीगणेश परतत्त्वके ही एक रूप हैं। गाणपत्य उपासक परमात्माको 'महागणाधिपति'के नामसे पुकारते हैं और गणपतितत्त्वको ब्रह्मसे अभिन्न मानते हैं। अपनी इस भावनामें अखण्ड, चिद्घन, एकरस, नेति-नेतिवाच्य ब्रह्म

श्रीगणेश

(लेखक—श्रीरायकृष्णदासजी)

गणेशकी वन्दना प्रायः सभी हिंदू प्रत्येक शुभ कार्यके [आरम्]भमें करते हैं। यहाँतक कि किसी कार्यारम्भके लिये [‘श्रीग]णेश करना’ एक मुहावरा बन गया है। गणेशकी यह वन्दना इसलिये की जाती है कि कार्य निर्विघ्न पूरा [हो ज]ाय। गणेशपूजा केवल भारतमें ही सीमित नहीं, [बृह]त्तर भारत अर्थात् नेपाल, चीनी-तुर्किस्तान, जावा, बाली, [बोर्]नियो, तिब्बत, बर्मा, स्याम, चीन, इंडो-चाइना तथा [जाप]ानतकमें गणेशकी उपासना फैली हुई थी, एवं है।

[ब्र]ह्मवैवर्तपुराणके अनुसार जन्मके कुछ देर बाद शनैश्चर-[की] दृष्टि पड़नेसे उनका सिर कट गया था। इसपर विष्णुने एक [हाथी]का सिर काटकर उनके धड़पर संयोजित कर दिया, इसी [लिये] उनका नाम ‘गजानन’ पड़ा। इसी पुराणके अनुसार एक [बार] परशुरामजी शिव-पार्वतीके दर्शनके लिये कैलास गये। उस [समय] वे निद्रित थे और गणेशजी पहरा दे रहे थे; अतएव [उन्हों]ने परशुरामजीको रोका। इसपर कलह हुआ और अन्ततः [परशु]रामजीने अपने परशुसे उनका एक दाँत काट डाला। [इसी] कारण वे ‘एकदन्त’ हैं। माघकाव्यके अनुसार उनका [एक] दाँत रावणने उखाड़ लिया था। गणेश-जन्मकी [कथा]में एक यह कथा भी प्रचलित है कि एक बार पार्वती [स्ना]न करने गयीं। वहाँ उनका मन ऊबने लगा और समय [बिता]नेके लिये उन्होंने मिट्टीका (या उन्हें जो उबटन किया [गया] था, उसकी बत्तियोंका) एक गजमुख बालक बना डाला [और] पीछेसे उस पिण्डमें जान डाल दी, जो गणेश हुए।

गणेश-सम्बन्धी कथाओंमें एक मुख्य कथा यह भी है [कि] उन्होंने महाभारतका लेखन-कार्य किया था। भगवान् [वेद]व्यास जब महाभारतकी रचनाका विचार कर चुके [तब] उन्हें उसे लिखवानेकी चिन्ता हुई। इसपर उन्हें [ब्रह्]माजीने गणेशजीसे यह कार्य लेनेका परामर्श दिया। [गणेश]जीने इस शर्तपर लिखना अङ्गीकार किया कि [यदि] व्यास कहीं रुकेंगे तो मैं लिखनेका कार्य बंद कर दूँगा। [व्या]सजीने इसे समझ-समझकर लिखनेके अनुरोधके साथ [स्वी]कार किया। जब उन्हें रुकना होता था तो वे कूट [श्लो]कोंकी रचना करके बोल देते थे। इनके अर्थ समझनेके [लिये] गणेशको रुकना पड़ता था। इस बीच व्यास अनेक [श्लोकोंकी] रचना कर डालते थे।

गणेशजी विद्या-बुद्धिविधायक हैं। इस रूपमें भी उनकी बहुत वन्दना की गयी है। वैदिक बृहस्[पति] बुद्धिके देवता हैं। गणेशजीके आयुधोंमें परशु प्रधान [है।] उनका नाम ‘गणपति’ है।

महायान बौद्ध सम्प्रदायमें और तन्त्रोंमें भी [गणेशके] पूजनके विविध प्रकार और क्रिया-कलाप मिलते हैं। हठयोगमें शरीरके भीतर जो अनेक चक्रोंकी कल्पना [की गयी] है, उसमें मूलाधार (गुदा)-चक्रके देवता गणेश हैं।

बौद्धोंमें श्वेत हस्ती बहुत पवित्र और पूजनीय [माना] जाता है। उनके यहाँ कथा है कि बुद्ध माता माया[को] स्वप्न हुआ था कि एक श्वेत गज स्वर्गसे उतरकर [उनके] मुखमें घुसा। पीछे बुद्ध गर्भस्थ हुए। फलतः श्वेत [हस्ती] बुद्धका सूचक माना गया है। इसीसे कई स्थानोंकी अ[शोककी] धर्म-लिपियोंमें श्वेत हस्तीकी मूर्तिको स्थान दिया गय[ा है।] अशोकके कालसीवाले प्रज्ञापनमें, लेखोंके ऊपर इस [हाथीकी] एक मूर्ति खुदी है, जिसके नीचे ‘गजतमो’ (सर्वश्रेष्ठ [गज]) लिखा है। इसी प्रकार धौलीके प्रज्ञापनमें सबसे [ऊपर] हाथीकी एक आधी मूर्ति उभारकर बनी है। इसी [धर्म-]लिपिमें छठे प्रज्ञापनके अन्तमें सेतो (श्वेतः) शब्द लिखा है। गिरनारवाली धर्म-लिपिमें तेरहवें प्रज्ञापनके नी[चे] ‘श्वेतो हस्ती सर्वलोकसुखाहरो नाम’ अर्थात् सब लोक[को] सुख का देनेवाला श्वेत हस्ती, ये शब्द खुदे हैं। इ[सके] सिवा उनकी धर्म-लिपियोंके चौथे प्रज्ञापनमें यह भी लि[खा] है कि जनताको धार्मिक भावसे हाथियोंका दर्शन कर[ाया] जाता था। गणेशकी गजाकृतिकी चर्चा हम बौद्ध-धर्म[की] उक्त हस्ति-पूजामें पाते हैं। यह बात इस तौरपर और [पुष्ट] होती है कि बुद्धके नाम भी ‘विनायक’ और ‘गणश्रेष्ठ’ हैं।

अबतक गणेशकी जो सबसे प्राचीन मूर्ति मिली है, [वह] भूमरा (नागोद राज्य, मध्यभारत) की है। यह मू[र्ति] द्विभुज है। जावाके हिंदू-मन्दिरोंमें भी गणेशकी सुन्दर प्रतिमाएँ मिली हैं। गणेशकी प्रतिमाओंमें एकदन्त हाथीका मुँह, लंबा उदर, टेढ़ी (विकट) और नाटी (खर्व) देह और नाग-यज्ञोपवीत सार्वभौम रूपसे मिलते हैं। इसी प्रकार उनके आयुधोंमें अङ्कुश प्रायः सभी प्रतिमाओंमें पाया जाता है। उनका प्रिय आहार मोदक है। गणेशका ध्यान चार भुजासे लेकर आठ या इससे अधिक भुजाओंतक मिलता है। इन ध्यानोंमें या तो गणेश बैठे हुए होते हैं या

आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्।
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः॥

'जो इस सृष्टिके आदिमें आविर्भूत हैं—प्रकट हुए जो प्रकृति पुरुषसे परे हैं, इस प्रकारसे गणपतिका ध्यान करनेवाला योगी तो योगियोंमें श्रेष्ठ है।'

'गण' क्या है—

सत्, चित् और आनन्द—तीन गणोंके पति (रक्षक) जिसे, उनसे विभूषित रहनेके कारण उस तत्त्वको 'गणपति' कहते हैं। इस प्रकार वह सत्ता, ज्ञान और सुखका पाता (रक्षक) है। जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति जैसी अवस्थाओंसे परे (समाधिस्वरूप) होनेसे वह 'गणपति' है। वह जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति (प्रगाढ निद्रा)—तीनों अवस्थाओंका वेत्ता और द्रष्टा होनेसे 'गणपति' है। परा, पश्यन्ती और मध्यमा—तीनों जिसे दृष्टिगोचर होती रहती हैं, वह तुर्यावस्थामें स्थित ब्रह्म ही 'गणपति देव' है। त्रिभुवन—पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं स्वर्ग—इन तीनों गणोंका पति होनेके कारण वह 'गणपति' अथवा 'गणेश' है। ज्योतिषशास्त्रानुसार देवगण, मानवगण तथा राक्षसगण—तीनोंका स्वामी होनेके कारण वह गणपति आराध्य है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
(ऋग्वेद १।१६४।४६)

अर्थात् सत् (सत्ता) एक ही है। उसीको मेधावीजन इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम एवं मातरिश्वा (पवन) कहते हैं। अनेकतामें एकता ही हमारे वेद पुराणोंका चरम लक्ष्य है। भगवत्पादने कहा है—'एकमद्वयं गीयते' (१०।१४।१८) एक ब्रह्म ही परम है और वही पर्यवसान है।

प्रातःस्मरणीय गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपनी अमर रचनाओंमें गणपतिको 'जगवन्दन' अर्थात् 'जगद्वन्द्य' कहा है। उन्होंने इन देवको 'विद्या-वारिधि' एवं 'बुद्धि-विधाता' कहकर अभिहित किया है। बालकाण्ड (मानस) के मङ्गलाचरणमें उन्होंने लिखा है—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥

तदनुसार ये विनायक हैं, वर्णों, (स्वर व्यञ्जनसे अ[illegible] अर्थ-समूह, रस-समूहके कर्ता एवं मङ्गलकर्ता हैं। यहाँ परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी—चारों न[illegible] अभिप्रेत हैं। छन्दःशास्त्रमें तो गण आठ हैं—भगण, [illegible] सगण, यगण, रगण, तगण, मगण और नगण। [illegible] आठ विनायक हैं—'अष्टौ विनायकाः'। और [illegible] गणपति हैं। 'रसानाम्'से काव्यशास्त्रके नौ रस स्प[illegible] ये नौ रसोंके, रसानुकूल अर्थोंके, अभिधा, लक्षणा, व्य[illegible] (त्रिशक्तियों) के रचयिता एवं मङ्गलकर्ता हैं, पति (रक्षक[illegible]

आचार्य यास्कने 'निरुक्त'के तृतीय दैवतकाण्डके [illegible] अध्यायमें इसे स्पष्ट कर दिया है—'महाभाग्याद्देवताया[illegible] आत्मा बहुधा स्तूयते।' (१)—अत्यन्त ऐश्वर्यशाली वि[illegible] शक्तिसम्पन्न होनेसे एक ही परमात्मा विभिन्न गुणोंके कारण [illegible] प्रकारसे स्तुत अर्थात् प्रशंसित हैं।' गुण गण (सत्त्व, रज[illegible] तमस्) का एकमात्र अधिपति होनेके कारण वह परमात्म[illegible] 'गणपति' या 'गणाधिपति' कहलाता है। कठश्रुति (२।१[illegible] का 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' कथन भी तो तभी उ[illegible] होगा, जब चारों वेद उसी एक पद (ॐ-ओंकारस्वरू[illegible] का आमनन अर्थात् बार-बार अभ्यास (उपदेश [illegible] कथन) करते हों।

वेदोंने प्रायः समष्टिका ही निर्देश मिलता है। [illegible] बहुवचनका उल्लेख मिलता है। वैदिक धर्ममें व्यष्टि[illegible] समष्टिको प्रधानता दी गयी है। वैदिक संहिताओंमें अनं[illegible] देव माने गये हैं। कर्म और गुणके अनुसार जैसे 'वि[illegible] सहस्रनाम'में एक ही तत्त्व (श्रीविष्णु) हजार नामों[illegible] अभिहित है, उसी प्रकार शिवसहस्रनाम, दुर्गासहस्रना[illegible] सहस्रनाम आदि ग्रन्थोंमें गुण-कर्मानुसार एकके ही हज[illegible] या हजारों नाम हैं।

शतकोटिरामचरितान्तर्गत 'आनन्दरामायण'के [illegible] काण्डमें वर्णन है—

शैवाः सौराश्च गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
ममैव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा॥
एकः स पञ्चधा जातः क्रियया नामभिः किल।
देवदत्तो यथा कश्चित्पुत्राद्याह्वाननामभिः॥
(८।९-१० [illegible]

'इस संसारमें शैव (शिवोपासक), सौर (सूर्योपासक), गाणेश (गणेशोपासक), वैष्णव तथा शक्तिपूजक अर्थात्[illegible]

पञ्चदेवोपासक उस ब्रह्मको उसी प्रकार प्राप्त कर लेते हैं, जैसे वर्षाका जल सागरमें समा जाता है । यह ब्रह्म एक है और वही नाम और कर्मके प्रभावसे पाँच रूपोंमें पञ्चदेवताके रूपमें विभक्त होता है । उदाहरणके लिये, देवदत्त एक मनुष्य है; वह किसीका पुत्र, किसीका भाई, किसीका बाप और किसीका चाचा कहलाता है, लेकिन तत्त्वतः वह एक है ।'

देवता क्या हैं ? कितने हैं ?

ऋग्वेदमें एक ब्रह्मके बहुधाभावकी कल्पना एक दार्शनिक विषय है । 'एको देवः' लिखकर यह बतलाया गया है कि यह एक ब्रह्मविषयक सिद्धान्त है । दिव् (द्योतते दीव्यति वा) धातुसे व्युत्पन्न 'देव' शब्द तीन अर्थोंमें व्यवहृत हुआ है । देवता एक तद्धितीय शब्द है । 'देवानां समूहो देवता'—ऐसी व्याख्या भी मिलती है । आचार्य यास्कने अपने निरुक्तके दैवतकाण्डमें लिखा है—'देवो दानाद् वा दीपनाद् वा द्योतनाद् वा'—(३ । ७ । ४ । १५) अर्थात् सारे भोग्य पदार्थ देनेवाले, प्रकाशित होनेवाले और समस्त लोकोंका ज्ञान करानेवालेको 'देवता' कहते हैं । और 'दिवु' धातु (दीव्यति) क्रीडार्थक है । 'दिवि दीव्यन्ति'—जो स्वर्गादि प्रकाशमान लोकोंमें क्रीडा करते हैं, वे देवता हैं । वेदोंमें गुण-कर्मानुसार अनेक नामोंसे अनेक देवताओंकी स्तुति की गयी है—'एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़'से श्रुतिका अभिप्राय है कि वह ब्रह्म या परमात्मा अथवा पराशक्ति एक ही है । 'तस्मात् सर्वैरपि परमेश्वर एव हूयते' अर्थात् अनेक नामोंसे—तत्तत्कर्मानुसार विभिन्न नामोंसे पुकारे जानेपर भी देव (ईश्वरीय शक्ति—महाशक्ति) एक ही है । एक ही मूल सत्ता है । सारे देवता उसीके विलास हैं । नियन्ता एक है । यास्कने 'ना राष्ट्रमिव' लिखकर भलीभाँति स्पष्ट कर दिया है कि व्यक्तिगतरूपसे भिन्न होते हुए भी जैसे असंख्य नर-नारी राष्ट्ररूपसे एक ही हैं, उसी प्रकार अनेक रूपोंमें प्रकट होनेपर भी, अनेक नामधारी होनेपर भी सभी देवोंमें परमात्म-तत्त्व एक ही है ।

वेद वस्तुतः एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है । उसमें अचेतन (चेतनाशून्य) पदार्थों, जैसे—जल, वायु, विद्युत्, पर्वत पादप आदिकी भी स्तुतियाँ की गयी हैं । वेदोंमें ओषधियाँ वैद्योंसे बातें करती हैं । जल और वायु, चमस और स्रुवा—सब-के-सब चलते फिरते हैं, वर प्रदान करते हैं, धनादि अभीष्ट वस्तुएँ देते हैं । यहाँ तो चेतनवादकी प्रधानता है । साथ ही ऋग्वेदमें यह भी कहा गया है कि तपस्वियोंके [illegible] देवता औरोंके मित्र नहीं होते । देवताओंके गुप्तचर विचरण करते रहते हैं—उनकी आँखें कभी [illegible] होतीं ।

मीमांसाकार महर्षि जैमिनि देवत्वशक्तिको म[illegible] स्वीकार करते हैं । कहा भी गया है—'मन्त्राधीनाश्च[illegible]' अर्थात् ये देवता मन्त्राधीन हैं । जिन मन्त्रोंमें जिन दे[illegible] वर्णन और स्तवन है, उन मन्त्रोंमें उन देवताओं[illegible] सदासे निहित है । निरुक्तकार स्पष्ट कर देते हैं 'एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति ।' अर्थात् परमात्माके ये सारे देवगण विभिन्न अंश हैं, प्रत्य[illegible] सभी देवताओंकी महती शक्ति अथवा पराशक्ति एक [illegible]

दैवतवादका प्रधान ग्रन्थ 'बृहद्देवता' है । त[illegible] प्रयत्न करके प्रत्येक देवताका ज्ञान प्राप्त करना चा[illegible] अभिप्राय है कि 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' । 'बृहद्दे[illegible] अनुसार तो शव (मुर्दे) की भी आँखें रहती हैं, पर इसलिये नहीं देख पाता कि उसका चेतनाधिष्ठान नहीं नेत्र तो जड हैं । जबतक उसका चेतनाधिष्ठाता [illegible] रहता है, तबतक वह अच्छी तरह देख पाता है । नद-न[illegible] अग्नि जल तथा गगन पवन—सभीके चेतनाधिष्ठाता हैं । [illegible] पदार्थोंमें स्वयं कर्तृत्वशक्ति या भोक्तृत्वशक्ति नहीं है इनमेंसे प्रत्येकका अपना चेतनाधिष्ठाता है । ये ही अने[illegible] देवता हैं । गणपति, अग्नि, इन्द्र, वरुण, वायु, पूषा, अर्यमा सरस्वती, आदित्यगण, रुद्रगण, विष्णु, मरुत्, सोम[illegible] अदिति, त्वष्टा, भग, बृहस्पति, यम, सूर्य, विश्वेदेव[illegible] अश्विनीकुमारादि सभी प्रसिद्ध वैदिक देवता हैं । इनके मूलमें एक पराशक्ति अथवा महाशक्ति है और वही परदेवता नाना रूपोंको धारण करती है । गणेशजी अनादि देवता हैं । नहीं तो शिव पार्वतीके विवाहमें विघ्नराज, साथ ही मङ्गलके विधाता गणपतिकी अग्रपूजा क्यों और कैसे होती ?—

> मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि ।
> कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि ॥
> (मानस १ । १००)

ओंकारस्वरूप भगवान् गणपतिका स्वरूप

सन्त ज्ञानेश्वरके मतानुसार भगवान् गणाध्यक्ष साक्षात् ओंकार के स्वरूप हैं । यदि आप ध्यानसे उनका विग्रह देखें [illegible]

लेगा कि वस्तुतः उनका बहिरङ्ग रूप ओंकारका प्रतीक है। दक्षिण भारतके किसी भी गणपतिदेवकी आकृति शत प्रतिशत ओंकारके चित्रसे मिलती-जुलती है। दार्शनिक दृष्टिसे भगवान् गणाधिपति बड़े ही विलक्षण देवता हैं।

ज्ञानेश्वर लिखते हैं—(१) हे ओंकार! हे वेदोंसे ही वर्णनीय आदिरूप! आपको नमस्कार है। आप ही सकल अर्थ और बुद्धिको प्रकाशित करनेवाले गणेश हैं। (२) ये जो अखिल [शब्द] हैं, वे ही आपकी सुन्दर मूर्ति हैं और वेदके अक्षर आपका निर्दोष शरीर है। (३) स्मृतियाँ आपके अवयव हैं। अर्थकी सुन्दरता आपके लावण्यकी द्युति है। (४) अठारहों पुराण आपके मणिभूषण हैं, प्रमेय रत्न हैं तथा [पद]रचना उनका कुन्दन है। (५) उत्तम पद-लालित्य आपका [रंगीन] शरीर है, जिसमें साहित्य शास्त्रका ही उज्ज्वल ताना [बाना] है। (६) काव्य और नाटक, जिनको देखते ही आनन्द आश्चर्य होता है, रुन झुन करनेवाली आपकी कटिकी घंटियाँ हैं और काव्य-नाटकोंका अर्थ उनकी—घंटियोंकी [ध्व]नि है। (७) अनेक प्रकारके तत्त्वार्थ और उनकी [कुश]लता, अच्छी तरह देखनेपर उन तत्त्वार्थोंके उत्तम पद [आ]दि घंटियोंके बीच चमकनेवाले रत्न हैं। (८) व्यास [आ]दि ऋषियोंकी बुद्धि मेखला-सी सुहाती है और उसका [...] उस मेखलाके पल्लवका अग्रभाग-सा चमकता है। [(९)] देखिये, जो 'षड्दर्शन' कहलाते हैं, वे ही आपकी छः भुजाएँ हैं और जो भिन्न भिन्न मत हैं, वे ही आपके श[स्त्र] हैं। (१०) तर्कशास्त्र परशु (फरसा) है, न्यायशास्त्र अङ्कु[श] है और वेदान्त सुरस मोदक है। (११) एक हाथमें जो आप ही-आप टूटा हुआ दाँत है, वह वार्तिककारके व्याख्यान[से] खण्डित किये हुए बौद्धमतका संकेत है। (१२) जो वरदायक कर-कमल है, वह सहज ही सत्कार्यवाद (सांख्योक्त सिद्धान्त)का सूचक है और धर्मकी प्रतिष्ठा आपका अभय कर है। (१३) अत्यन्त निर्मल विवेक ही आपकी लंबी सूँड़ है। (१४) उत्तम संवाद आपके सम एवं शुभ्रवर्ण दन्त हैं। हे विघ्नराज! ज्ञानदृष्टि आपके सूक्ष्म नेत्र हैं। (१५) दोनों (पूर्व और उत्तर) मीमांसाएँ दोनों कानोंके स्थानमें दिखायी पड़ती हैं। (ये ही गजकर्ण हैं।) (१६) तत्त्वार्थ प्रकाशमान प्रवाल है, ज्ञानामृत ही मद है और ज्ञानवान् मुनि उसकी सेवा करनेवाले भ्रमर जान पड़ते हैं। द्वैत और अद्वैत दो निकुम्भ हैं और दोनोंका जिस स्थलपर एकीकरण (मिलन) होता है, वही आपका मस्तक है। (१७) वेद और उपनिषद्, जो उत्तम ज्ञानामृतसे युक्त हैं, वे आपके गजमस्तकपर रखे मुकुटमें पुष्पोंके समान शोभा दे रहे हैं। (१८) 'अकार' आपके दोनों चरण हैं, 'उकार' विशाल उदर है और 'मकार' मस्तकका महामण्डल है। (१९) ये तीनों (अ उ म्) जहाँ समाविष्ट होते हैं, वही आदिबीज ओंकार है। गजवदन गणेश ही प्रणवाकृति (ॐ) हैं।

श्रीगणेश-गुणगान

वारण-वदन, विघ्न-वारण, अरुणवर्ण,
सुषमा-सदन, लोक-शोकके हरण हो।
शरण-विहीन दीन-हीनोंके शरण सच्चे,
तरुण तरणि-तेज-पुञ्जके भरण हो॥
आभाभरे अम्बर-विभूषण-विभा-समान,
भावुक उरोंमें भव्य भावोंके भरण हो।
मोदक-अशन, 'मित्र' मोदके प्रदाता सदा,
गणधीश! तुम महामङ्गल-करण हो॥
मञ्जुल मुकुट शीश, सेंदुर-तिलक भाल,
कुण्डल-कलित कर्ण, गले मणिमाला है।
चारों चारु करोंमें सरोज आदि राज रहे,
दया-दृष्टि सृष्टि को सुहाती दुःख-ज्वाला है॥
परम पवित्र पाद-पङ्कज-पराग 'मित्र',
हिय मोह-तम हेतु ज्ञानका उजाला है।
गुण-गणसागर उजागर तुम्हारी भक्ति,
प्रेम पूरे भक्तोंको पिलाती प्रेम-प्याला है॥
मानस-प्रणेताने प्रथम वन्दनाको कर,
सफल-प्रयास हो विशिष्ट पद पाया है।
महाकवियोंमें महामान उनको है मिला,
चन्द्र-सा धवल यश विश्व-बीच छाया है॥
मानस-निमज्जन-निरत नर हुए 'मित्र'
'मोतियों' को हंसके समान अपनाया है।
'रामनाम-मणि' का प्रकाश घर-बार हुआ,
श्रेय 'तुलसी' को यह तुमने दिखाया है॥
मङ्गलमुख यदि हो प्रधान कल्याण-निधान,
हय विश्वभरका समस्त पाप-भार हो।
धेनु-द्विज-देवोंकी पुनीत पूजा होने लगे,
धर्मका धरामें फिर प्रचुर प्रचार हो॥
दास 'मित्र' को भी आत्म-तत्त्वका कराके ज्ञान,
इसका किसी प्रकार जीवन सुधार हो।
अविकल अवलम्ब दे के अगदम्ब-पुत्र,
भव-पारावार-पार इसको बनाए हो॥
—[...] 'मित्र' [...]

सगुण रूपाची ठेव। महा लावण्य लाघव॥
नृत्य करिती सकल देव। तटस्थ होती॥ (समर्थ रामदास)

'श्रीगणेशका सगुण रूप अत्यन्त सुन्दर और मोहक है। उनके नृत्य करते ही देवगण विभोर हो जाते हैं।'

वहाँपर परशुरामने अपने परम गुरु भगवान् शिवको प्रणाम करनेके लिये भीतर जानेकी इच्छा प्रकट की। इसपर द्वारपर स्थित गणेशने उन्हें रोककर कहा—'अभी भगवान् शंकर निद्रित हैं। उनके जग जानेपर उनसे आज्ञा लेकर मैं भी आपके साथ ही चलूँगा—कुछ समयतक आप प्रतीक्षा करें।' गणेशके रोकनेपर भी परशुराम रुकना नहीं चाहते थे। अब दोनोंमें वाग्युद्ध होने लगा। वाग्युद्धके बढ़ते-बढ़ते दोनों क्रोधाविष्ट हो गये। अब परशुराम गणेश पर अपने फरसेसे आक्रमण करनेको पूर्णरूपसे प्रस्तुत हो गये; परंतु कार्तिकेयके मध्यमें पड़ आनेसे कुछ क्षणिक शान्ति आयी। क्षणोपरान्त पुनः परशुरामने गणेशको धक्का दिया और वे गिर पड़े। पुनः उठकर गणेशने परशुरामको पटकाया। इसपर परशुरामने कुठार उठा लिया। तब गणेश उन्हें अपनी सूँड़में परशुरामको लपेटकर घुमाने लगे और घुमाते ही-घुमाते गणेशने उन्हें तीनों लोकोंका दर्शन कराकर गोलोकवासी भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कराये। अब परशुरामने अपने अभीष्टदेव श्रीकृष्ण, अपने गुरु शम्भुके द्वारा प्रदत्त परम दुर्लभ कवच और स्तोत्रका स्मरण किया। तदनन्तर परशुरामने अपने उस अमोघ कुठारको, जिसकी प्रभा ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्नकालिक सूर्य प्रभासे सौगुनी थी और जो तेजमें शिव तुल्य था, गणेशपर चला ही दिया। पिताके उस अमोघ अस्त्रको आते देखकर स्वयं गणपतिने उसे अपने वाम दन्तसे पकड़ लिया—उस अस्त्रको व्यर्थ नहीं होने दिया। तब महादेवके बलसे वह कुठार वेगपूर्वक गिरकर मूलसहित गणेशके दाँतको काटकर पुनः परशुरामके हाथमें लौट आया[10]। तबसे गणेश 'एकदन्त'के नामसे अभिहित होने लगे।

इस पौराणिक उपाख्यानसे गणेशका 'एकदन्तत्व' सिद्ध और चरितार्थ होता है।

१०. सस्मार कवचं स्तोत्रं गुरुदत्तं सुदुर्लभम्।
अभीष्टदेवं श्रीकृष्णं गुरुं शम्भुं जगद्गुरुम्॥
चिक्षेप पर्शुममोघं शिवतुल्यं च तेजसा।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाशतगुणं मुने॥
पितुरस्त्रममोघं च दृष्ट्वा गणपतिः स्वयम्।
जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थं चकार ह॥
निपत्य पर्शुर्वेगेन छित्त्वा दन्तं समूलकम्।
जगाम रामहस्तं च महादेवबलेन च॥
(ब्रह्मवैवर्तपु० ३। ४२। ११—१४)

गणेशकी अग्रपूज्यता

गणेशदेवकी सर्वप्रथम पूजा केवल पञ्चदेवयजनमें नहीं, प्रत्युत अखिल—३३ कोटिमित देवोंके अर्चनमें होती है; क्योंकि 'पुण्यक' नामक व्रताचरणके प्रभा[illegible] स्वयं साक्षात् गोलोकनाथ—विष्णु आदि देवोंके भी [illegible] भगवान् श्रीकृष्ण ही पार्वतीके पुत्ररूपमें अवतीर्ण [illegible] थे। अतः श्रीकृष्ण और गणेश—दोनों अभिन्न अ[illegible] एक ही तत्त्व हैं। पौराणिक प्रतिपादनानुसार वाम[illegible] नरसिंह, रामादिके अवतार केवल अंशावतार हैं, परंतु [illegible] कृष्ण तो सम्पूर्ण षोडश कलाओंसे परिपूर्ण साक्षात् भगवान्[illegible] परब्रह्म, परमात्मा वा परमतत्त्व ही हैं[11]। पुनः पार्वत[illegible] व्रताचरणकालीन स्तुतिक्रममें श्रीकृष्णसे उनके समान [illegible] अलौकिक सुन्दर पुत्रकी कामना की थी[12]। भगवान् श्रीकृ[illegible] बालकरूप धारणकर महलके भीतर स्थित पार्वतीकी शय[illegible] पर जा शिवके वीर्यमें मिश्रित होकर पुत्रके रूपमें आविर्भ[illegible] हुए थे, अतः श्रीकृष्ण और गणेश दोनों अभिन्न तत्त्व हैं[illegible] एक स्थलपर विष्णुने कहा है कि मेरे वरदानसे गणेशकी पू[illegible] सर्वप्रथम होगी। सम्पूर्ण देवोंकी पूजाके समय सबसे पह[illegible] गणेशकी पूजा करके ही मनुष्य निर्विघ्नतापूर्वक पूजा[illegible] फलको पा लेता है, अन्यथा उसकी पूजा व्यर्थ हो जाती है[13] विष्णुने जब गणेशके धड़पर गजका मस्तक योजित क[illegible] उस बालकको जीवित कर दिया, तब विष्णुने शुभ सम[illegible] आनेपर देवों तथा मुनियोंके साथ सर्वश्रेष्ठ उपहारोंसे उ[illegible] बालकका पूजन किया और उससे कहा—'सर्वश्रेष्ठ [illegible]

११ 'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥'
(भागवत १। ३। २८)

१२ 'त्वत्तो भवदिव पुत्रं लब्धुमिच्छामि साम्प्रतम्।'
(ब्रह्मवैवर्तपु० ३। ७। १२५[illegible])

१३. ऐतत्पत्तनकाले च स विष्णुर्विष्णुमायया।
विधाय विप्ररूपं तु आजगाम रतेर्गृहम्॥
(ब्रह्मवैवर्तपु० ३। ८। १९)

पूज्यश्च सर्वदेवानामग्राक जगतां विभुः।
सर्वाग्रे पूजनं यस्य भविता मद्वरेण वै॥
पूजासु सर्वदेवानामग्रे सम्पूज्य यो जनः।
पूजाफलमवाप्नोति निर्विघ्नेन वृथाऽन्यथा॥
(ब्रह्मवैवर्तपु० ३। ९। १०-१८)

मैंने सर्वप्रथम तुम्हारी पूजा की है, अतः तुम सर्वश्रेष्ठ होओ।'[14]

इन विवृतियोंसे ध्वनित होता है कि गणेश आदि कालसे निखिल देवाग्रपूज्य हैं।

ऋग्वेदके ब्रह्मणस्पतिको गणपति[15] की उपाधि दी गयी है, जिससे ज्ञानदेवता बृहस्पतिका समकक्ष बननेमें गणपतिको पश्चात्कालीन धारणाओंमें सहायता मिली। रुद्रके वर्णनमें रुद्रके अनेक गण कहे गये हैं, उन गणोंके पतिका नाम गणपति है और गणपतिका ही द्वितीय नाम विनायक या गणेश है।

मानवगृह्यसूत्र (२।१४) में शालकटङ्कट, कूष्माण्ड-राजपुत्र, उस्मित और देवयजन नामक चार विनायकोंका उल्लेख है। वे विविध विघ्नकर्ताओंके रूपमें चित्रित किये गये हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृतिमें[16] वर्णन आया है कि रुद्र और ब्रह्मदेवने विनायकको गणेश्वर नामक बनाकर मनुष्योंमें विघ्न करनेको नियत किया। यहाँ एक ही विनायकका उल्लेख है, पर उनके छः नाम कथित हुए हैं—(१) मित, (२) सम्मित, (३) शाल, (४) कटङ्कट, (५) कूष्माण्ड और (६) राजपुत्र। विनायककी माताका नाम यहाँ अम्बिका है। विनायक स्वभावतः हानिकारक होने पर भी उपासनासे हितकर माने गये हैं। याज्ञवल्क्य-स्मृतिका रचनाकाल षष्ठ शताब्दी स्वीकृत किया गया है। कुछ शिलाचित्रोंमें विनायकका मस्तक हाथीके समान मिलता है और 'मालतीमाधव' नाटककी आरम्भिक वन्दनामें भवभूतिने विनायकके ऐसे ही शिरका वर्णन किया है।

गुप्तकालीन लेखोंमें गणपतिकी चर्चा नहीं मिलती। एलोराके चित्रोंमें सप्त-मातृकाके समूहमें गणपतिका चित्र मिलता है, जो आठवीं शताब्दीका माना जाता है। जोधपुरसे २२ मील उत्तर-पश्चिम घटियाला नामक स्थानके शिलालेखसे गणपति-पूजा-प्रचारका प्रमाण उपलब्ध होता है। यह लेख ८६२ ई०का स्वीकृत किया गया है। इस प्रकार ईसाके पश्चात् षष्ठी शतीसे नवमी शतीतक गणपति-पूजा-प्रचारके प्रमाण मिलते हैं। आनन्दगिरिने 'शंकरविजय' में गणपतिके छः सम्प्रदायोंका उल्लेख किया है। उच्छिष्ट-गणपतिकी उपासना वाममार्गियोंकी प्रथाके समान है। उच्छिष्ट-गाणपत्य न जाति भेद मानते हैं, न विवाह बन्धन, न छोटा प्रतिबन्ध और न मद्यपान दोष। वे ललाटपर लाल तिलक करते हैं। साधारणतः हिंदुओंकी सभी पूजाओंमें पहले गणपतिकी पूजा होती है। महाराष्ट्रमें भाद्रपद मासकी चतुर्थीको गणपतिकी पार्थिव मूर्तिकी पूजा बड़े समारोहसे की जाती है। पूनाके निकट चिंचवडमें गणपति-पूजनकी विशेष व्यवस्था है। गणपतिको इतना सम्मान उनके रुद्रगणके स्वामी होनेके कारण विघ्नविनाशार्थ तथा सार्वत्रिक वन्दनार्थ ही प्रदान किया गया है[17]।

शुक्लयजुर्वेद संहितामें गणपतिका उल्लेख मिलता है। यथा—

'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥'

(यजुर्वेद २३। १९)

[illegible] यजुर्वेदमें [illegible] प्रकारसे [illegible] है। [illegible] है—

'[illegible]'

---

१४. [illegible]
(ब्रह्मवैवर्त० [illegible])

१५. गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥
(२।२३।१)

१६. विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः।
गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥
तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोधत।
स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति ॥
([illegible])

१७. [illegible]

श्रीगणेशकी भगवत्ता एवं महत्ता

(लेखक—डॉ० श्रीभवानीशंकरजी पंचारिया, एम्० ए०, पी-एच्०डी०)

अज्ञानतिमिरोपशान्तये शान्तपावनमचिन्त्यवैभवम् ।
तन्नरं वपुषि कुञ्जरंमुखे मन्महे किमपि तुन्दिलं महः ॥

'जो शान्त और पावन हैं, जिनका वैभव अचिन्त्य है, जो शरीरसे तो नर और मुखसे गजाकार हैं, उन किन्हीं अनिर्वचनीय तेजःपुञ्जका हम विघ्नरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये चिन्तन करते हैं।'

आजका वैज्ञानिक मानव अन्तरिक्ष जगत् और भौतिक जगत्के अनेकों रहस्योंका भेदन करते हुए अपनी नयी-नयी स्थापनाएँ कर रहा है। नवीन प्रयोगों और भौतिकताकी दिग्विजयने उसे निरा पदार्थवादी बना दिया है। अब वह अपनेको सृष्टिका नियन्ता सिद्ध करते हुए ईश्वरकी सत्ताको भी चुनौती देनेके लिये तत्पर है। धर्म उसके लिये अन्धविश्वास, श्रद्धा बुद्धिहीनता और विश्वास मूढताका प्रतीक है। जडपदार्थवादी फायरबाख कहा करता था—'मनुष्योंको भगवान्ने नहीं बनाया, अपितु भगवान्को मनुष्योंने बनाया है।' इसके विपरीत भारतीय महर्षियों योगियोंने समाधि अवस्थामें अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञाद्वारा परमात्माके जिन जिन दिव्य गुण गणोंका अनुभव किया, विभिन्न शास्त्रोंने उन-उन गुणोंवाले नामोंका अनुसंधान किया है। वस्तुतः ईश्वर अद्वितीय है, अर्थात् परब्रह्म परमात्मा एक ही है, किंतु कोई उसे अव्यक्त मानता है और कोई व्यक्त। सृष्टिका सत्ताधीश तत्त्व एक ही है। उसे ही 'ब्रह्म', 'ईश्वर', 'परमात्मा' आदि अनेक नामोंसे माना जाता है। यथा—

'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।'
(श्रीमद्भागवत [illegible])

अर्थात्—'वह एक ही तत्त्व तत्त्ववेत्ताओंके तारतम्यसे ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् आदि नामोंसे व्यपदिष्ट होता है।'

श्रीगणेश उस तत्त्व हैं—यह निश्चय प्रायः सभी गणेशोपासकोंके हृदयोंको उद्वेलित किया करती है। महर्षि व्यासजीने 'श्रीमद्गणेशसहस्रनामस्तोत्र'में श्रीगणेशके वर्णनमें इन्हें प्रथम. १८९, पुरुषोत्तम ११०, तत्त्वानां परमं तत्त्वम् ५०३, परमात्मा ५४१, ब्रह्म ५५०, भगवान् ५९१, ब्रह्म ७४२, विष्णु ७४३, शिव ८४८,

ईशः ७४६, शक्तिः ७४७ आदि विशेषणोंसे व्यक्त अतः नामैक्यसे यह प्रतिपादित होता है कि श्री परमात्मा या परमतत्त्वमें अभिन्नता है।

'गणेशाथर्वशीर्ष' (१)में उन्हें प्रत्यक्ष परमात्म करते हुए कहा गया है—

'त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्व खल्विदं ब्रह्मासि।'

उपरि-लिखित वचनोंसे ऐसा प्रतीत होता है 'केवल' शब्द प्रयुक्त किया गया है, वह उसी 'परब्रह्म सूचक है—जो सृष्टिके आदिमें रहा है, जिससे य रूपात्मक सारा जगत् उत्पन्न हुआ है, जिसके भीतर वा है तथा महाप्रलयके समय पुनः जिसके भीतर वह वि जाता है। इसी कारणसे श्रीगणेशको अनादि देवताके समादृत किया गया है। वे ही योगाधीश्वर, निधिपति और बुद्धिके प्रदाता भी हैं। उन्हें ही वक्रतुण्ड, ए सूर्पकर्ण, लम्बोदर, विघ्नेश्वर, गणपति, गजानन, वि सिद्धिदाता कहा गया है। उन्हें वेद भी 'ऐसा नहीं है— नेति' कहकर अव्यक्त निरूपित करता है, किंतु जो अ लीलाविलास हेतु अवतरित होकर व्यक्त बनकर सब अनुग्रह और दुष्टोंका निग्रह करते हैं। अतएव श्रीगणेश ब्रह्म हैं। वे 'निर्गुण सगुण', 'व्यक्ताव्यक्त' भी हैं।

गणेशपुराणके उपासनाखण्ड, अध्याय ४०के अनुशील ज्ञात होता है कि श्रीगणेश ही आदिदेव, परब्रह्म, अज पालक, नियन्ता और प्रेरक तत्त्व हैं। श्रीव्यासजीने श्रीगणे महत्त्व सूचक एक कथामें इस बातका उल्लेख किया है पूर्वकल्पमें त्रिपुरासुरने वरदानके प्रभावसे समस्त भूमण्डल ब्रह्म और वैकुण्ठलोकको अपने वशवर्ती कर अपनी अख सत्ताकी स्थापना कर ली। समस्त देवता त्रिपुरासुरके अत्याचारोंसे त्रस्त होकर नारदजीसे पूछते हैं—

'यह असुर हमारे मारनेपर भी नहीं मर रहा है। इसे हम सबको अधिकारहीन कर दिया है। इसका बताइये, अ हम किसकी शरणमें जायँ।'

नारदजीने देवताओंके प्रत्युत्तरमें कहा—'पूर्वकालमें [त्रिपु]रासुर आदिदेव श्रीगणेशको प्रसन्न कर आपलोगोंसे [अजे]य होनेका वरदान प्राप्त कर चुका है। किंतु श्रीगणेशने [कृपालु]तासे उसकी मृत्युका केवल एक उपाय रख छोड़ा है। [अतः] आपलोग कठोर तप करते हुए अपनी मङ्गल-कामना-[से] उन्हें प्रसन्न कर उनसे त्रिपुरासुर-वधका रहस्य जाननेका [प्रयत्न] करें।'

कहा जाता है कि देवताओं और ऋषियोंने नारदजीके [बताये] अनुसार एक सहस्र दिव्यवर्षतक श्रीगणेशका ध्यान एवं [स्तु]ति की। देवताओंने प्रार्थनामें श्रीगणेशका 'परमात्मा'के [रूप]में स्मरण किया था, यह अधोलिखित श्लोकोंसे [प्रमाणि]त होता है—

[न]मो नमस्ते परमार्थरूप नमो नमस्तेऽखिलकारणाय।
[न]मो नमस्तेऽखिलकारकाय सर्वेन्द्रियाणामधिवासिनेऽपि॥
[न]मो नमो भूतमयाय तेऽस्तु नमो नमो भूतकृते सुरेश।
[न]मो नमः सर्वधियां प्रबोध नमो नमो विश्वलयोद्भवाय॥
[न]मो नमो विश्वभृतेऽखिलेश नमो नमः कारणकारणाय।
[न]मो नमो वेदविदामदृश्य नमो नमः सर्ववरप्रदाय॥

(श्रीगणेशपुराण, उपासना ४०। ४२—४४)

'हे सत्यस्वरूप! आपको बार बार नमस्कार है। आप ही [सम]स्त चराचर सृष्टिके कारण हैं, अतः आपको सादर प्रणाम। [आ]प सृष्टिके नियन्ता एवं सब इन्द्रियोंके अधिष्ठाता हैं, [आ]पको हम नमन करते हैं। हे सुरेश्वर! भूतभव और [भूतों]को उत्पन्न करनेवाले आपको हम पुनः प्रणाम करते हैं। [आ]प बुद्धिकी वृत्तियोंके ज्ञाता, सृष्टि रचयिता, उसकी स्थिति [औ]र लयरूप हैं। आपको हमारा प्रणाम। हे सर्वेश्वर, [वि]श्वपालक, सब कारणोंके परम कारण! हम आपको सिर [झु]काकर प्रणाम करते हैं। आप वेदवेत्ताओंके लिये भी अदृश्य [हैं]। हम बार-बार सबको वर देनेवाले आपको सादर [न]मस्कार करते हैं।'

उपर्युक्त गणेशपुराणमें देवताओंकी वन्दना इस बातकी [द्यो]तक है कि श्रीगणेश ही देववन्दित, सर्वपूज्य, जगत्‌के परम [का]रण एवं उसकी स्थिति, उत्पत्ति और लयके एकमात्र हेतु [हैं]। कहा जाता है कि उन्हींके अनुग्रहसे देवताओंके समस्त [सं]ताप दूर हो सके। आज भी हम देखते हैं कि सनातन [पर]म्परामें हिंदूशास्त्रोंमें कार्यारम्भके पूर्व मङ्गलमूर्ति विघ्नेशकी वन्दना मनोरथकी पूर्ति करती है। हमारे इस कथनकी पु[ष्टि] निम्न शब्दोंसे भी होती है—

सर्वमङ्गलकार्येषु भवान् पूज्यो जनैः सदा।
मङ्गलं तु सदा तेषां त्वत्पादे च धृतात्मनाम्॥

(सत्योपाख्यान पू०, अ० २३)

अतः सनातन परम्परानुसार भी समस्त मङ्गलादि कार्यों[के] लिये श्रीगणेशजी सदा पूजनीय माने गये हैं। जो कार्यारम्भपर उनके चरणोंका ध्यान करता है, उसके समस्त कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होते देखे जाते हैं। महात्मा गोस्वामी तुलसीदासजीने तो गणेशजीके स्मरणमात्रसे ही समस्त सिद्धियोंकी प्राप्तिका संकेत किया है। उनके कथनानुसार श्रीगणेश एकमात्र ऐसे देवता हैं, जो केवल स्मरणमात्रसे ही प्रसन्न हो जाया करते हैं। इसका यह कारण है कि श्रीगणेश ऋद्धि सिद्धि और बुद्धिके दाता हैं। 'ॐ' स्वरूप उनकी मुखाकृति मङ्गलमयी और सिद्धिदात्री है।

श्रीगणेश ही सगुण और निर्गुण ब्रह्म

स्वरूपतः ब्रह्मको निर्गुण माना जाता है, जो कि उसका यथार्थ स्वरूप है; किंतु कहा जाता है कि वही मायाकी उपाधिसे सगुण सा प्रतीत होने लगता है। अब यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि निर्गुण कभी सगुण नहीं हो सकता और न सगुणको ही निर्गुण कहा जा सकता है। फिर हम श्रीगणेशको ही निर्गुण और सगुण दोनों ही कैसे मान लें?

शास्त्रकारों और मतोंका इस सम्बन्धमें कथन है कि माया भी ब्रह्मकी ही शक्ति है। पुनश्च शक्ति और शक्तिमान् उसी तरह अभिन्न हैं, जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति अभिन्न होती है। अतएव मायासे परे होनेपर वह निर्गुण कहलाता है। वह नित्य निर्गुण होते हुए भी नित्य सगुण हुआ करता है। निर्गुण सगुणका एक अर्थ यह भी लगाया जाता है कि चूँकि हम अपने चर्म-चक्षुओंसे उसके तेजस्वी स्वरूपको नहीं देख पाते, अतः उसे निराकार या निर्गुणके नामसे पुकारते हैं; किंतु उन्हींके जिस तेजस्वी स्वरूपको हम देख सकते हैं, उसे ही साकार या सगुणकी उपाधि प्रदान करते हैं। गणेशमें दोनों तत्त्व एक साथ विद्यमान होनेसे वे एक साथ निर्गुण सगुण हैं।

'गणपत्यथर्वशीर्ष'में कहा गया है—"आप ही प्रत्यक्ष तत्त्व 'परमात्मा' हैं—त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि।" (१)

'गण'-शब्दमें 'ग'का तात्पर्य दृश्यादृश्य जगत्में रहनेवाला 'ब्रह्म' है तथा 'ण'का आशय है—मन-वाणीसे रहित और संयोग एवं अयोगमें रहनेवाला। इस तरह 'गकार' और 'णकार' रूपसे गणेशको निर्गुण सगुण कहा जाता है।

इसी तरह 'त्वं'-शब्द गकारात्मक है और 'तत्'-शब्द णकारात्मक तथा दोनोंके ही अभेदमें 'असि' क्रियापद है। निर्गुण और सगुणके मध्य प्रणव है। अतएव जिसे 'गकार' और 'णकार'-से समन्वित कहा गया है, वही प्रत्यक्ष परमात्मा है।

श्रुति-वाक्यमें 'गकार' और 'णकार'का यथार्थ रहस्य प्रतिपादित किया गया है। वस्तुतः समस्त जगत् क्या है? इसका प्रत्युत्तर हमें आगे लिखी हुई पंक्तियोंमें मिलता है—

मनोवाणीमयं सर्वं दृश्यादृश्यस्वरूपकम्।
गकारात्मकमेवं तत्तत्र ब्रह्म गवाचकः॥
मनोवाणीविहीनं च संयोगायोगसंस्थितम्।
णकारात्मकरूपं तण्णकारस्तत्र संस्थितः॥
विविधानि णकाराणि प्रसूतानि महामते।
महाणि तानि कथ्यन्ते तत्त्वरूपाणि योगिभिः॥
निरोधात्मकरूपाणि कथितानि समन्ततः।
गकारस्य णकारस्य नाम्नि गणपतेः स्थितौ॥
तदा जानीहि भो योगिन् महाकारो श्रुतेर्मुखात्।
तयोः स्वामी गणेशश्च योगरूपेण संस्थितः॥
तं भजस्व विधानेन शान्तिमार्गेण पुत्रक॥

कहनेका आशय यह है कि गकारात्मक ब्रह्म धारण करनेयोग्य है—तथा वह मन और वाणी-मय है तथा दृश्यादृश्य, व्यक्ताव्यक्त, निर्गुण सगुण स्वरूपवाला है। 'गण' शब्दमें णकारात्मक 'ण' मन और वाणीसे परे है अर्थात् निर्गुणस्वरूप है। जो संयोग और अयोगमें स्थित है अर्थात् मुक्ति और बन्धनका प्रतीक है। 'गकार' सगुण प्रतिपादक है और 'णकार' निर्गुणवाचक। सगुणरूपी गकारके साथ निर्गुणका बोध हो, इसलिये 'णकार'का योग 'गकार'के साथ किया गया, जिससे 'गण' शब्दकी निष्पत्ति हुई और उससे निर्गुण सगुणात्मक 'ब्रह्म' गणेशका बोध हुआ। इस गकार और णकारसे ही अनेक ब्रह्म और सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है—ऐसा योगी लोगोंका कथन है।

'गणेश'-शब्दकी निरुक्ति 'गकार' और 'णकार' द्वारा की है, जो ब्रह्माकार है अर्थात् ओंकारात्मक [illegible] श्रुति प्रतिपादित बात है। 'ग' और 'ण' गणेश हैं। 'गण' शब्दमें गणपति योगरूपसे [illegible] गणेशकी उपासना शान्तिपूर्वक उभय—निर्गुण रूपोंमें की जा सकती है।

श्रुतिवाक्योंमें कहा गया है कि इस [illegible] ब्रह्म विद्यमान है:—

'ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिण[illegible]
(मुण्डक उप० २।[illegible]

अस्तु, इस सिद्धान्तानुसार 'गणेश' भी [illegible] रूपसे सर्वत्र विद्यमान हैं।

'गणेशोत्तरतापिनी उपनिषद्'में कहा गया है:

'अप्राप्यमप्राप्यं च अज्ञेयं चाज्ञेयं च। विक[illegible] तच्छक्तिकं गजवक्त्रं गजाकारं जगद्देवास्वरूपे।' ([illegible]

अर्थात्—'जो मनोगतिशून्य है, अर्थात् जिसे [illegible] जाना जा सके, जो अज्ञेय है, अर्थात् जिसे वा[illegible] भी व्यक्त न किया जा सके तथा जो निर्[illegible] विकल्पशून्य है, वह निरुपाधिक मायासे युक्त है[illegible] गजाकार स्थूल और गजवक्त्र महान् शक्तिका [illegible] जिसने जगत्को धारण कर रखा है।

श्रीव्यासजीने ब्रह्मसूत्रके अन्दर जिसे जगत्की स्थि[illegible] और उत्पत्तिका कारण माना है, वह 'ईश्वर' या '[illegible] गणेशजीको भी जगत्का परम कारण कहा गया [illegible] 'गणेशपुराण'में कहा गया है—'जिससे ओंकार उत्प[illegible] है—वह गणेश है और इसीसे वेद और जगत् भी [illegible] हुए हैं। 'गाणपत्यपर्वशीर्ष'में श्रीगणेशको ही केवल [illegible] माना गया है। यथा—

'त्वमेव केवलं कर्तासि' (१)

'त्व' पदार्थ व्यवहारकी सत्ताको धारण करने[illegible] और 'केवल' शब्दसे अव्यक्तमें लगाकर स्थूल देह[illegible] जगत्के निर्माता गणेश कहे जाते हैं।

वेद, शास्त्र और पुराणादिका मत है कि [illegible] निर्गुण निराकार अर्थात् सत् चित् आनन्द—इन [illegible] व्याप्त है। उस परमात्माकी सत्तासे ही सब कुछ। [illegible] [illegible] ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, या[illegible] [illegible] [illegible] गया है—

...त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं ...त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥'

(गणपत्यथर्वशीर्ष ६)

...वस्तुतः श्रीगणेश हमारे अनूठे और अद्वितीय देवता ... उनकी आकृतिको देखकर बड़ा ही विस्मय होता है। वे ... गजाकृति और शेष नराकृतिसे व्यक्त किये जाते ... यथाः—

ओंकारसंनिभमिभाननमिन्दुभालं
मुक्ताग्रबिन्दुममलद्युतिमेकदन्तम्।
लम्बोदरं कलचतुर्भुजमादिदेवं
ध्यायेन्महागणपतिं मतिसिद्धिकान्तम् ॥

अर्थात्—ओंकार-सदृश, हाथीके-से मुखवाले, जिनके ...पर चन्द्रमा और बिन्दुतुल्य मुक्ता विराजमान है, जो ...लम्बी और एक दाँतवाले हैं, जिनका उदर लम्बायमान ...नकी चार सुन्दर भुजाएँ हैं, उन बुद्धि और सिद्धिके ... आदिदेव गणेशजीका हम ध्यान करते हैं।

...गणेश विद्या-बुद्धि और समस्त सिद्धिके दाता कहे जाते ... अतः उपासकोंको उनसे गणेशविद्याका ही वरदान ... चाहिये। गणेश-उपासकोंको प्रायः तीक्ष्ण बुद्धि तो ...ी जाती है, किंतु तीक्ष्ण बुद्धिसे ही उस समयतक कोई ...हीं हो पाता, जबतक कि चित्तकी शुद्धि प्राप्त न हो ... आज हम सर्वत्र देखते हैं कि शक्ति प्राप्तकर निर्बलों-...ड़ित किया जाता है, धन प्राप्तकर मनुष्यत्वको विस्मृत ...या जाता है और विद्या प्राप्तकर विवादमात्र ही ...जाता है। अतः उपासनामें किसी पदार्थकी कामना न ...हुए चित्तकी शुद्धिकी ही याचना श्रेयस्कर मानी ...। इस सम्बन्धमें श्रीशंकराचार्यका मत अनुकरणीय है—

'चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये।'

...र्थात्—'कर्म करनेका उद्देश्य चित्तकी शुद्धि है न कि ... प्राप्ति।'

...चित्तकी पाँच वृत्तियाँ मानी गयी हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, ... और निरुद्ध। जहाँ-जहाँ चित्त जाता है, उसमें वह ...ही जाया करता है। जो अपनी चित्त वृत्तियोंका ... करते हुए ध्येयके साथ तदाकार हो जाया करता है, ...खण्ड और अनुपम आनन्दका अनुभव होने लगता ...। ऐसी स्थिति 'योगस्थिति' कही जाती है। ऐसे योगियोंमें श्रीगणेशका ध्यान करनेवाला श्रेष्ठ योगी होता है। श्रीगणे... अपने भक्तको विद्या और अविद्या—इन दोनोंसे दूर कर... निज स्वरूपका बोध कराते हैं। अतः गणेश विद्याका हम... लिये परम उपयोग होता है। उसकी प्राप्ति ही कल्याणका... और मङ्गलदात्री कही गयी है।

गणेशजीका 'गणपत्यथर्वशीर्ष'मे श्रेष्ठ मन्त्र निरूपि... किया गया है—'ॐ गं गणपतये नमः।' (७)

इस मन्त्रमें 'गकार' आया है, उसके बाद वर्णादि... 'अकार' है और उसके परे सानुनासिक अनुस्वार है। साथ... में प्रणव है। इस मन्त्रमें 'गं' बीज है और 'ओंकार' शक्ति।... इसके सम्बन्धमें एकाक्षर 'गणपति-कवच'में मन्त्रोद्धारमें... कहा गया है:—

'गं बीजं शक्तिरोंकारः सर्वकामार्थसिद्धये।'

अतः 'ॐ गं गणपतये नमः'—इस मन्त्रमें गकार पूर्वरूप, मध्यम अकार और अन्त्यरूप अनुस्वार है। बिन्दु उत्तररूप है। इन भिन्न अक्षरोंके एकीकरणको साधन 'गं' नाद कहते हैं और उनके मिलनको 'संहिता' कहा गया है। यह गणेशविद्याकी प्राप्तिका सरल मन्त्र है।

अथर्वशीर्षके मध्यके मन्त्रोंमें गणेश-गायत्री भी दी हुई है, जो सुप्रसिद्ध है—

'एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥'

(८)

अर्थात् 'हम एकदन्तको जानते हैं और वक्रतुण्डका ध्यान करते हैं—वह गणेश हमारी बुद्धिको सन्मार्गकी ओर प्रेरित करे।'

'एक'-शब्द यहाँ 'माया' वाचक है और 'दन्त'-शब्द 'माया'-चालक अर्थात् सत्तात्मक है। मुद्गलपुराणमें इसका महत्त्व यों प्रतिपादित किया गया है—

एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वं समुद्भवम्।
भ्रान्तिदं मोहदं पूर्णं नानाखेलात्मकं किल ॥
दन्तः सत्ताधरस्तत्र मायाचालक उच्यते।
बिम्बेन मोहयुक्तश्च स्वयं स्वानन्दगो भवेत् ॥
माया भ्रान्तिमयी प्रोक्ता सत्ता चालक उच्यते।
तयोर्योगे गणेशोऽयमेकदन्तः प्रकीर्तितः ॥

''एक'-शब्द मायावाचक है और 'दन्त'-शब्द सत्तात्मक। 'गणेश' बोधक ब्रह्मके लिये प्रयुक्त है, जिससे सारी

गणपति और श्रीमहागणपति

(लेखक—वीतराग श्री १००८ नारायणाश्रमस्वामीजी)

भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम्॥

"श्रीगणपति प्रकृति और पुरुषसे परे विराजमान ब्रह्म
। कभी अपनी महिमासे च्युत न होनेके कारण 'अच्युत'
गये हैं। सम्पूर्ण जगत्के कारणतत्त्व ये ही हैं।
नोंपर अनुग्रह करनेके लिये ये गणपतिदेव सृष्टिके
कालमें स्वतः प्रादुर्भूत हुए थे। मैं उन्हें प्रणाम
हूँ।"

उपनिषद्में गणपतिको साक्षात् ब्रह्म (सर्वव्यापक)
या है—'त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि।' (गणपत्यथर्व-
१)। जिस तरह ब्रह्म वाच्य-वाचक भेदसे 'शेय और
' दो प्रकारका है, उसी तरह श्रीगणेश भी
नाकी दृष्टिसे निर्गुण एवं सगुण दो प्रकारके हैं।

इत्य श्रीगणपतिका वाच्यस्वरूप अचिन्त्य अप्रमेय ब्रह्म
सकी केवल योगी षट्चक्रोंमें नादब्रह्मके स्वरूपमें उपासना
।) करते हैं। प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें रीढ़की हड्डीके
गुदासे दो अंगुल ऊपर मूलाधारचक्र है। यह चक्र
पँखुड़ी है। इसमें सम्पूर्ण जीवनकी शक्ति अव्यक्त-
रहती है। चक्रके मध्यमें चतुष्कोण आधारपीठ है।
श्रीगणेश विराजमान हैं। जैसे—

वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः।
गिनो ध्यायन्ति नित्यम्।' (गणपत्यथर्वशीर्ष ६)

मूलाधार-चक्रके ऊपर त्रिगुणमयी पराशक्ति 'कुण्डलिनी'
इष्टदेवता श्रीगणपतिके चिन्मय स्वरूपका ध्यान करने
ही कुण्डलिनी प्रबुद्ध होकर क्रमशः स्वाधिष्ठान, मणि
अनाहत, विशुद्ध एवं आज्ञाचक्रमें प्रविष्ट हो जाती है।
की लोकोत्तर सिद्धि प्रदान करती हुई सहस्रार-
परमशिवके साथ जा मिलती है। षट्चक्रोंमें व्याप्त
नादशक्ति ही 'महागणपति' हैं। गाणपत्य-योगमें
द-लहरीके-स्वरूपमें महागणपतिका ध्यान षट्चक्रोंमें
ता है।

प्रथम अनादि (अचिन्त्य अप्रमेय), अनन्तस्वरूप
गणपतिके चिन्मय स्वरूपमेंसे गाणपत्यधर्मका आविर्भाव
श्रीगणपतिने अपनी उपाधि गाणपत्यसे विष्णु, ब्रह्मा,
इन्द्र आदि देवता एवं सगर, कार्तिकेय, नन्दीश्वर
रुद्रगणोंको विभूषित किया।

श्रीगणपतिका दूसरा वाचक (आकार) स्वरूप,
साकार एवं श्री समृद्धिका प्रदायक है, जिनके ध्यानमात्र
मनुष्य सम्पूर्ण विद्याका निधिपति बन सकता है—

रक्तो रक्ताङ्गरागांशुककुसुमयुतस्तुन्दिलश्चन्द्रमौलि-
र्नेत्रैर्युक्तस्त्रिभिर्वामनकरचरणो बीजपूरात्तनासः।
हस्ताग्राक्लृप्तपाशाङ्कुशरदवरदो नागवक्त्रोऽहिभूषो
देवः पद्मासनो वो भवतु नतसुरो भूतये विघ्नराजः॥
(प्रपञ्चसार १६। ४

अनादिकालसे लेकर आजतकके देवता, ऋषि, मनु
यक्ष, राक्षस, वैष्णव, सौर, शाक्त, गाणपत्य एवं पाशु
मतानुयायी भक्तजन, जिनकी पूजा सपर्या सदा करते आ
हैं, "वे विघ्ननाशक श्रीगणपति शरीरसे रक्तवर्णके हैं
उन्होंने लाल रंगके ही अङ्गराग, वस्त्र और पुष्प
धारण कर रखे हैं। वे लम्बोदर हैं; उनके मस्तक
चन्द्राकार मुकुट है; उनके तीन नेत्र हैं और हाथ-
छोटे-छोटे हैं; उन्होंने शुण्डाग्रभागमें बीजपूर (बिजौ
नीबू) ले रखा है; उनके हस्ताग्रभागमें पाश, अङ्कुश
दन्त तथा वरद (मुद्रा) सुशोभित हैं; उनका मु
गजके समान है और सर्पमय आभूषण धारण किये हैं।
कमलके आसनपर विराजमान हैं और समस्त देवता उन
चरणोंमें नतमस्तक हैं; ऐसे विघ्नराजदेव आपलोगों
लिये कल्याणकारी हों।"

पञ्चायतन-पूजामें सर्वप्रथम गणपतिकी पूजा-सपर्या की
जाती है। वैष्णव, सौर, शाक्त तथा पाशुपत धर्मानुयायी प्रथम
गणपतिकी पूजा करके ही अपने इष्टदेवकी पूजा करते हैं।

अग्रपूजाका रहस्य

ब्रह्माण्डपुराणके अन्तर्गत श्रीललितोपाख्यानमें महागणपति-
के प्रादुर्भावकी कथा प्रसिद्ध है। भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी
ललिताके साथ भण्डासुर दैत्यका घमासान युद्ध छिड़ा हुआ
था। भगवती बाला अम्बिका एवं दण्डनाथा नामकी दो शक्तियों-
द्वारा भण्डासुरके तीन सौ पुत्रोंका निधन हो चुका था।

श्रीभगवतीकी इस महान् विजयपर भण्डासुरका मन्त्री विशुक्र क्षुब्ध होकर एक बड़ी भारी शिलापर जयविघ्न-यन्त्र लिखकर उसकी पूजा करके रात्रिके समय श्रीललितादेवीकी सेनानगरी (शिविर) के एक कोनेमें रख आया।

उस यन्त्रके प्रभावसे युद्धोद्यत सेनामें आलस्य, कृपणता, दीनता, निद्रा, तन्द्रा (शिथिलता), प्रमीलिका, क्लीवता, निरहंकारा या विस्मृति—ये आठ दोष उत्पन्न हुए। विघ्न-यन्त्रके प्रभावसे श्रीललितादेवीकी सेना उत्साहहीन एवं अचेत होकर शस्त्रोंका परित्याग कर अपने-अपने शिविरमें प्रवेश कर गयी। तब अवसर पाकर विशुक्र तुरंत ही शक्तिसेनापर आक्रमणकर दिव्य शस्त्र-अस्त्रोंका प्रहार करने लगा।

उस समय श्रीललितादेवीकी सेनानायिका दण्डनाथा तथा मन्त्रिणी श्यामा—ये दोनों सचेत हो अपने कार्यमें जागरूक थीं। विशुक्रको युद्धके लिये तत्पर देखकर दोनों महाराज्ञी श्रीललिताके महासांनिध्यमें पहुँचकर सेना शिविरका समाचार सुनाने लगीं। वह वृत्तान्त सुनकर श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ललिता स्मितपूर्वक श्रीमहाकामेश्वरके मुखमण्डलकी ओर निहारने लगीं—

तस्याः स्मितप्रभापुञ्जे कुञ्जराकृतिमान् मुखे।
कटक्रोडगलद्दानः कश्चिद्देवो व्यजृम्भत॥
जपापटलपाटल्यपाटच्चरपुर्द्युतिः।
बीजपूरं गदामिक्षुचापं शूलं सुदर्शनम्॥
अब्जपाशोत्पलं व्रीहिमञ्जरीवरदाङ्कुशान्।
रत्नकुम्भं च दशभिः स्वकैर्हस्तैः समुद्वहन्॥
तुन्दिलश्चन्द्रचूडश्च मदबृंहितनिस्वनः।
सिद्धिलक्ष्म्या समाश्लिष्टः प्रणनाम महेश्वरीम्॥

(ब्रह्माण्ड० पु०, ललितो०, अ० २७। ६८—७१)

'श्रीत्रिपुरसुन्दरी ललिताके मन्दहास्यसे उद्भूत प्रभा पुञ्जसे कोई अनिर्वचनीय तेजस्वी देवता प्रकट हुआ, जिसका मुख हाथीके समान था। उसके गण्डस्थलसे मदकी धारा झर रही थी। उसकी अङ्गकान्ति जवा कुसुम-समूहकी लालीको चुराये लेती थी। उसने अपने दस हाथों और सूँड़में क्रमशः बीजपूर (बिजौरा), गदा, ईखका धनुष, सुन्दर शूल, शङ्ख, पद्म, उत्पल, धानकी बाल, वरदमुद्रा, अङ्कुश तथा रत्नमय कलश धारण किये थे। वह लम्बोदर था और उसके मस्तकपर चन्द्राकार ... थी। उसके मुखसे मदमत्तकी-सी गर्जन-ध्वनि निकल रही थी। वह सिद्धि-लक्ष्मीसे आलिङ्गित था। उस गजानन... प्रकट होते ही महेश्वरी ललिताके चरणोंमें प्रणाम...।'

त्रिपुरसुन्दरी ललितासे आशीर्वाद लेकर वे गजानन ... प्राकारके भीतर सेना-शिविरमें पहुँचे। प्राकारके ... ओर घूमते हुए श्रीमहागणपतिने एक कोनेमें ... विघ्न-यन्त्रको देखा। तुरंत ही उन्होंने अपने दाँ... घातसे उसे चूर्णकर आकाशमें उड़ा दिया। विघ्न-यन्त्रके नष्ट होते ही शक्ति-सेना सचेत हो युद्धके लिये उद्यत हो गयी।

श्रीमहागणपति अपने मदवारिसे दैत्यसेनाको ... करते हुए आमोद, प्रमोद, दुर्मुख, सुमुख, अविघ्न (विघ्न-हर्ता) और विघ्नकर्त्ता—इन षड् विघ्नविनायकों तथा ... ज्वालिनी, नन्दा, सम्भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, ते... सत्या और विघ्ननाशिनी—इन नौ शक्तियोंके साथ विशुक्रकी सेनामें पहुँचे। वहाँ उन्होंने सात अक्षौहिणी सेनाके ... गजासुर नामक विपुल पराक्रमी दैत्यका संहार किया।

गजासुरको मारकर श्रीगणपति अपनी माँ ललिताके महासांनिध्यमें उपस्थित हुए। इसपर प्रसन्न हो महाराज्ञी श्रीदेवी ललिताने श्रीगणपतिको सब देवोंकी पूजामें सबसे प्रथम पूजे जानेका वर प्रदान किया। जैसा कि—

विततार महाराज्ञी प्रीयमाणा गणेशितुः।
सर्वदैवतपूजायाः पूर्वपूज्यत्वमुत्तमम्॥

(ब्रह्माण्ड पु०, ललितो० २७। १०४)

'जबसे महाराज्ञी श्रीललिताका यह वर प्राप्त हुआ, तबसे महागणपति विष्णु, ब्रह्मा आदि सभी देवता, असुर, मुनि, मनुष्य एवं महर्षियोंमें प्रथम पूजित हुए।' इसलिये पञ्चायतन-पूजामें सर्वप्रथम पूजा श्रीगणपतिकी ही होती है, उसके अनन्तर ही सर्वदेव-पूजाकी विधि है।

गणपतिकी उपासना

यजुर्वेदमें 'गणानां त्वा गणपतिं'—इस वाक्यसे ब्रह्मा विष्णु आदि गणोंके अधिपति श्रीगणनायक ही परमात्मा कहे गये हैं और वैदिक यज्ञक्रियामें इनकी उपासना करना सर्वोत्तम माना गया है। भगवान् आद्यशंकराचार्य तन्त्रमार्गसे ही गणपतिकी उपासना करनेसे शीघ्र सिद्धि उपलब्ध होती है, ऐसा कहते हैं। जैसा कि प्रपञ्चसारमें—

आवाह्य विघ्नेश्वरमर्चयित्वा
प्रागुक्तया तन्त्रविधानक्लृप्त्या।
निवेदयित्वा सह भक्ष्यलेह्यैः
भाज्यैश्च साज्यैरपि भोज्यजातैः॥

(१६।३६)

—मन्त्रागमकी सपर्या गुरुगम्य मानी गयी है। जो [illegible]क गुरु-परम्परासे गणपति सपर्याकी विधा उपलब्ध [illegible]ते हैं, उन्हें ही उपासनामें प्रवेश करनेका अधिकार [illegible]ा है। तन्त्रशास्त्रकी उपासनामें देश-काल एवं उपकरणों-[illegible] अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। भगवान् परशुरामके [illegible]नुसार तन्त्रागम पूजामें सर्वप्रथम महागणपतिका [illegible]न करना चाहिये। जैसा कि कहा गया है—

'देवं सिद्धलक्ष्मीसमाश्लिष्टपार्श्वम्, अर्धेन्दुशेखर-[illegible]कवर्णं मातुलुङ्गगदापुण्ड्रेक्षुकार्मुकशूलसुदर्शनशङ्ख-[illegible]त्पलधान्यमञ्जरीनिजदन्ताञ्चलरत्नकलशपरिष्कृतपाण्येका-[illegible]कं प्रभिन्नकटमानन्दपूर्णमशेषविघ्नध्वंसनिघ्नं विघ्नेश्वरं [illegible]त्वा।'

(परशुरामकल्पसूत्र, खं० २।४)

'भगवान् महागणपतिका वाम पार्श्व सिद्धलक्ष्मीसे [illegible]श्लिष्ट है। वे मणिमय रत्नसिंहासनपर विराजमान हैं। [illegible]का शरीर करोड़ों सूर्योंके समान चमकीला रक्तवर्णवाला [illegible] मस्तकपर अर्धेन्दु (चन्द्रमौलि) है। ग्यारह भुजाओं-[illegible]मातुलुङ्ग, गदा, इक्षु-कार्मुक, सुदर्शन, शूल, शङ्ख, पाश, [illegible]ल,धान्यमञ्जरी, अपना ही भग्नदन्त तथा रत्नकलश हैं। इस प्रकार परमानन्दपूर्ण गण्ड-स्थलसे मदकी धारा बहाने वाले सर्वविघ्नविध्वंसक महागणपतिका ध्यान करना चाहिये।'

तत्पश्चात् सिद्धपीठ (त्रिकोण-षट्कोण वृत्त चतुरस्रादि) में गन्धाक्षत पुष्प-पूजित शुद्ध जलपूर्ण कलशोंसे अर्घ्य-स्थापना करनी चाहिये। उसी अर्घ्यामृत-जलसे अर्घ्यपात्र आदिका संस्कार करके महागणपतिकी पूजा सपर्या पञ्चावरणसे करनी चाहिये। जैसा कि—मूलेन पञ्चावरणपूजां कुर्यात्॥ ऐसा कहा गया है। (परशुरामकल्पसूत्र, खं० २।७)

पूजा-सपर्याके उपचारमें पाद्य-अर्घ्य आचमन-स्नान-वस्त्र-भूषण-गन्ध-पुष्प-धूप दीप-नैवेद्य-नीराजन आदिका उपयोग होता है। जैसा कि—'देवं गणनार्थं दशावोपचार्य, षोडशोपचारैरुपचर्य, गणपतिबुद्ध्या एकं बटुकं, सिद्धलक्ष्मी-बुद्ध्या एकां शक्तिं चाहूय, गन्धपुष्पाक्षतैरभ्यर्च्य निर्विघ्न-मन्त्रसिद्धिर्भूयादित्यनुग्रहं कारयित्वा नमस्कृत्य यथाशक्ति जपेत्।' (परशुरामकल्पसूत्र, खं० २।९)

उपर्युक्त विशेषार्घ्यामृत-वारिसे सविधि उपचार पूजा-सपर्या करके सर्वविघ्ननिवारणार्थ महागणपतिकी स्तुति करनी चाहिये। तत्पश्चात् महागणपतिमन्त्रका जप करनेपर शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। यद्यपि तुरंत सिद्धि प्राप्त करनेके लिये उच्छिष्टगणपति, वरदगणेश, हरिद्रागणेश आदिकी उपासना अत्यन्त उत्तम समझी जाती है, तथापि ये सब सिद्धियाँ क्षणिक मानी गयी हैं। उपर्युक्त महा-गणपतिकी पूजा सपर्यासे साधकको शाश्वती सिद्धि-समृद्धि उपलब्ध होती है और भोग-अपवर्ग दोनों प्राप्त होते हैं।

जय गणपति !

जय गणपति, गणनायक जय हे! जन-मन-मङ्गल, त्राता।
एक-रदन, गज-वदन, विनायक, कृपासिन्धु सुखदाता॥
जय लम्बोदर, मूषक-वाहन, विघ्न-विनाशन-कर्ता।
जय जग-वन्दन, शंकर-नन्दन, कलुष-ताप-तम-हर्ता॥
बुद्धिराशि, शुभ ज्ञान-प्रकाशक, मोदक-प्रियवर वर दो।
भारत-माताके अञ्चलमें सुखद सम्पदा भर दो॥

—वासुदेव गोस्वामी

— परमात्माके सत्य चिन्तनके माध्यमसे मनुष्य असत्यसे सत्की ओर बढ़े, यही वैदिक ज्ञानयोग है; मनुष्य अन्धकारसे प्रकाशकी ओर बढ़े, यही वैदिक कर्मयोग है एवं मृत्युसे जीवनकी ओर बढ़े, यही वैदिक भक्तियोग है।

परमात्मा अनन्त है; उसकी शक्तियाँ अनन्त हैं। वेदोंकी उपासना अनन्त शक्तिवाले परमात्माकी ही उपासना है। प्रबल स्वरमें इन सारे देवोंको एक और अकेली आत्मशक्तिमें केन्द्रित करते हुए कहता है कि ज्ञानवान् एक ही सत्यको विभिन्न नामोंसे कहते हैं—

'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।'
(ऋग्वेद १। १६४। ४६)

ऊपर कहा जा चुका है कि दैवी सम्पत्तिके गुण और आसुरी सम्पत्तिके दोषको लेकर ही आदि-मानवका प्रादुर्भाव हुआ था। इसको अधिक सरल करनेके लिये यह कहा जा सकता है कि आदि मानव, जो ज्ञान और मोहको लेकर ही उत्पन्न हुआ था, वह अन्ततक मनुष्योंके साथ ही रहेगा। ज्ञान प्रकाशकी बुद्धिमत्ता है और मोह अज्ञानके अन्धकारकी मूढ़ता। ध्यान दीजिये कि जो मनुष्य ज्ञानके आलोकके साथ चन्द्रलोकपर चढ़नेकी बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करता है, वही मनुष्य आणविक आयुधोंका प्रक्षेपण करता हुआ स्वलोकके विनाशकी मूढ़ता भी दिखलाता है। विद्युत्से दीप्तिमान् हमारे ग्राम और नगर एवं हमारे अत्यधिक वैभवके साधन हमें इस मूढ़तासे, इस आसुरी सम्पदाके पाशसे मुक्त कर सकेंगे, यह सोचना स्वयं एक मूढ़ता है।

हमारी यह आसुरी सम्पदा, हमारी यह मूढ़ता, हमारी दैवी सम्पदाकी बुद्धिमत्ताको पराजित न कर पाये—यही हमारे जीवनका लक्ष्य है। जीवनके इस परम लक्ष्यको पहचानकर हमारे वैदिक ऋषि मन्त्रद्रष्टा बने थे। उन्होंने परमात्माके ज्ञानमय स्वरूपका दर्शन अपने मानस-चक्षुओंद्वारा किया और इस पूर्णदर्शनके उपरान्त ही उन्होंने गणाधिराज गणपतिको ज्ञानका स्वामी घोषित करते हुए उस परमेश्वरके शक्ति-स्वरूपका आवाहन कर कहा था—'देवत्वकी कामना करनेवाले लोग तुमसे प्रार्थना करते हैं; अतः ज्ञानके स्वामिन्! उठो'—

'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।'
(ऋग्वेद १। ४०। १)

जो वेद गणेशजीको 'गणपति' कहते हैं, वे ही उन्हें 'ब्रह्मणस्पति' और 'बृहस्पति' भी कहते हैं। देवताओंके गुरु-रूपमें गणेशजीके बृहस्पतित्वका बड़ा सरल परिचय हमें पुराणोंके माध्यमसे मिलता है। पर यह बात बहुत थोड़े लोग जानते हैं कि गणेशजी ही देवगुरु बृहस्पति हैं और उन्हींको वेद 'ब्रह्मणस्पति' भी कहते हैं।

वैदिकविज्ञानके अनुसार सारे देवता एक ही परमपिता परमात्माकी भिन्न भिन्न शक्तियोंके प्रतीक हैं। उन सबको एक ही समझनेकी बात भारतके प्राचीन साहित्यमें बारबार दुहरायी गयी है। मनुष्यकी दैवी सम्पदा उसे श्रेयोमार्गपर बढ़ाती है; पर ठीक इसके विपरीत उसकी आसुरी सम्पदा उसे प्रेयोमार्गकी ओर प्रेरित करती रहती है। इस संघर्षके कारण मनुष्यके सामने सदैव यह भय उपस्थित रहता है कि वह श्रेयोमार्गको त्यागकर प्रेयोमार्गपर ही न दौड़ने लग जाय। वेदके मन्त्रद्रष्टा ऋषि मानवकी इस महती बाधाको भलीभाँति पहचानते थे और इसलिये मानव-मात्रका सच्चा प्रतिनिधित्व करते हुए उन्होंने वेदके अपौरुषेय ज्ञानके द्रष्टा होकर लोककल्याणके निमित्त परमात्माकी विभिन्न शक्तियोंको लोकमें इसलिये उतारा कि वे मानवमात्रको श्रेयोमार्गपर चलनेकी प्रेरणा दें—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥
(ऋग्वेद २। २३। १)

वेदमें शब्दको 'ब्रह्म' कहा गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि वेदका प्रत्येक शब्द हमें परब्रह्म परमात्माके ज्ञानकी दिशाकी ओर बढ़ाता है। अतः वेदके ब्रह्ममय शब्दोंका चिन्तन और मनन मननशील मनुष्यको यावज्जीवन करते ही रहना चाहिये।

उपर्युक्त वेदमन्त्रका अन्वय नीचे दिया जा रहा है। इस अन्वयसे मूलमन्त्रके तात्पर्यको समझनेमें सहायता मिल सकती है। संस्कृतके सामान्य ज्ञानकी सहायतासे इसको समझनेका प्रयत्न करना सुखकर होगा। मन्त्रद्रष्टा महर्षि शौनक इस मन्त्रके माध्यमसे जो प्रार्थना गणेशजीसे करते हैं, उसका तात्पर्य इस अन्वयसे अधिक स्पष्ट होगा—

'ब्रह्मणस्पते! गणानां गणपतिं कवीनां कविम् उपम-

गणपतिका वैदिक स्तवन

(लेखक—श्रीदेवीरत्नजी अवस्थी 'करील')

आजका वैज्ञानिक अध्ययन इस मतको निरन्तर अप्रसारित करता रहता है कि मनुष्यके ज्ञानका विकास उसी प्रकार धीरे धीरे हुआ, जिस प्रकार हमारे घरोंमें हमारे बच्चोंका ज्ञान धीरे धीरे विकसित होता है। पर हमारे इस युगका वैज्ञानिक अध्ययन जैसे जैसे प्रगति करता जायगा, वैसे ही वैसे वह उस वैदिक सिद्धान्तके निकट पहुँचता जायगा, जिसमें कहा गया है—'वह पूर्ण है, यह पूर्ण है, पूर्णसे ही पूर्ण प्रकट होता है तथा पूर्णसे पूर्णको निकाल लेनेपर पूर्ण ही शेष रह जाता है।'

> पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
> पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
>
> (बृहदारण्यकोपनिषद् ५। १। १)

तर्कसङ्गत प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि अन्नके खाद्योजका जन्म अन्नके साथ ही हुआ है। गेहूँमें जो खाद्योज आज विद्यमान है, वह उसके जन्मके आदिकालमें भी था और भविष्यमें भी तबतक बना रहेगा, जबतक गेहूँका अस्तित्व है। सिंहने धीरे धीरे हिंसा नहीं सीखी; वह जितना हिंसक आज है, उतना हिंसक अपनी सृष्टिके आदिमें भी था; अन्ततक वह आजकी ही भाँति हिंसक बना रहेगा। गायने धीरे धीरे शाकाहार नहीं सीखा। वह आजकी ही भाँति अपनी सृष्टिके आदिकालमें भी शाकाहारिणी थी और अन्ततक वह शाकाहारिणी ही बनी रहेगी।

वनस्पति जगत् और पशु जगत्की प्रवृत्तियोंके सारे प्रमाण इस बातके पुष्ट आधार हैं कि मनुष्य मानवीय सृष्टिके आदिकालमें जिन दैवी और आसुरी सम्पदाओंको लेकर उत्पन्न हुआ था, वे आदिसे अन्ततक एक-सी होकर उसके साथ ही रहेंगी। पाश्चात्य विद्वानोंके बहुमतसे यह मान्यता कि आदिमानव बंदर जीवके रूपमें उत्पन्न हुआ और बहुत बड़ी कालावधिके उपरान्त उसने बोलना सीखा, तभी सत्य प्रमाणित हो सकता है, जब यह सिद्ध कर दिया जाय कि मृगने अपनी उत्पत्तिके बहुत दिनों बाद दौड़ना सीखा और कोयलकी कूकने बहुत दिनों बाद माधुर्यका प्रसार हुआ। पर ऐसा सिद्ध नहीं किया जा सकता।

पूर्णसे पूर्ण ही प्रकट होता है; इसीसे मनुष्य आज जगत्‌के जिसमें मनुष्यका ... अधिक महत्त्वपूर्ण है, अपनी सृष्टिके कालमें पूर्णत्वसे युक्त होकर और दो सम्पदाओंसे सम्पन्न होकर उत्पन्न हुआ—एक दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्ति। मानव-जीवनमें उसकी दैवी और आसुरी सम्पत्तियोंके बीच निरन्तर संग्राम होता रहता है। संग्राममें उसके अन्तस्तलमें व्याप्त ईश्वरीय सत्ताका ... निरन्तर आसुरी सम्पदाके प्रतिनिधि वृत्रका संहार ... रहता है। वेदकी घोषणा है कि 'यह अग्नि सत्यके ... ईश्वर है; यह संसारके महान् सौभाग्यका ईश्वर ... विश्वकी सन्तान सत्ता और पशु सत्ताका ईश्वर है; यह उन सभीका ईश्वर है, जो वृत्रका संहार किया करते हैं।'

> अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य।
> राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम्॥
>
> (ऋग्वेद ३। १६। ...)

वैदिक ऋषि पूर्णब्रह्मकी पूर्ण संतान थे। अपनी पूर्णताके कारण ही वे सारे ज्ञानके आदिद्रष्टा थे। उन्होंने मानस चक्षुओंसे जिस ज्ञानका दर्शन किया था, उसके वे लेखक और प्रकाशक नहीं बने, उन्होंने अपनेको उस ज्ञानका द्रष्टा माना। इस अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ... भी उन ऋषियोंकी पूर्णता सिद्ध होती है। वैदिक ऋषियोंने अपने जाग्रत् विवेकके द्वारा संसारकी दैवी सम्पत्तिके संवर्धनके हेतु एवं आसुरी सम्पत्तिके उन्मूलनके लिये जगत्‌के स्रष्टाकी अनेक नामोंसे उपासना की है। वेदज्ञ ऋषियोंकी इस देवोपासनाके विवेचनात्मक अध्ययनकी आवश्यकता कभी समाप्त होनेकी नहीं। वेदोंका ... ... अध्ययन ही संसारको प्रगतिके मार्गपर ले जायगा। जो विद्वान् वैदिक शब्दोंकी सूची बनाकर, अन्य ग्रन्थ भाषाओंके साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन करनेमें ... करते हैं, उनके परिश्रमकी प्रशंसा करते हुए भी यह ... जायगा कि उनके उस प्रयाससे वैदिक विज्ञानका ... लोगोंको नहीं हो सकता। वेदका कथन है कि 'जो ... वाचक ईश्वरको नहीं जान पाया, ऋचाओंके ... उसको कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं होगा।'

> 'यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।'
>
> (ऋग्वेद १। १६४। ३९)

माके सत्य-चिन्तनके माध्यमसे मनुष्य असत्यसे ओर बढ़े, यही वैदिक ज्ञानयोग है; मनुष्य प्रकाशकी ओर बढ़े, यही वैदिक कर्मयोग है एवं पुसे जीवनकी ओर बढ़े, यही वैदिक भक्तियोग है।

त्मा अनन्त है; उसकी शक्तियाँ अनन्त हैं। वेदोंकी अनन्त शक्तिवाले परमात्माकी ही उपासना है। स्वरमें इन सारे देवोंको एक और अकेली केमें केन्द्रित करते हुए कहता है कि ज्ञानवान् ही सत्यको विभिन्न नामोंसे कहते हैं—

सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।'
(ऋग्वेद १। १६४। ४६)

: कहा जा चुका है कि दैवी सम्पत्तिके गुण और म्पत्तिके दोषको लेकर ही आदि-मानवका प्रादुर्भाव । इसको अधिक सरल करनेके लिये यह कहा जा कि आदि मानव, जो ज्ञान और मोहको लेकर ही आ था, वह अन्ततक मनुष्योंके साथ ही रहेगा। ग्नकी बुद्धिमत्ता है और मोह अज्ञानके अन्धकारकी ध्यान दीजिये कि जो मनुष्य ज्ञानके आलोकके न्द्रलोकपर चढ़नेकी बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करता है, य आणविक आयुधोंका प्रक्षेपण करता हुआ लाखोंके मूढ़ता भी दिखलाता है। विद्युत्से दीप्तिमान् हमारे : नगर एवं हमारे अत्यधिक वैभवके साधन हमें ासे, इस आसुरी सम्पदाके पाशसे मुक्त कर सकेंगे, वना स्वयं एक मूढ़ता है।

री यह आसुरी सम्पदा, हमारी यह मूढ़ता, हमारी दाकी बुद्धिमत्ताको पराजित न कर पाये—यही हमारे लक्ष्य है। जीवनके इस परम लक्ष्यको पहचानकर : वैदिक ऋषि मन्त्रद्रष्टा बने थे। उन्होंने परमात्माके स्वरूपका दर्शन अपने मानस-चक्षुओंद्वारा किया र इस पूर्वदर्शनके उपरान्त ही उन्होंने गणाधिराज वे ज्ञानका स्वामी घोषित करते हुए उस परमेश्वरके स्वरूपका आवाहन कर कहा था—'देवत्वकी कामना के लोग तुमसे प्रार्थना करते हैं; अतः ज्ञानके । उठो'—

त्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।'
(ऋग्वेद १। ४०। १)

जो वेद गणेशजीको 'गणपति' कहते हैं, वे ही उन्हें 'ब्रह्मणस्पति' और 'बृहस्पति' भी कहते हैं। देवताओंके गुरु-रूपमें गणेशजीके बृहस्पतित्वका बड़ा सरल परिचय हमें पुराणोंके माध्यमसे मिलता है। पर यह बात बहुत थोड़े लोग जानते हैं कि गणेशजी ही देवगुरु बृहस्पति हैं और उन्हींको वेद 'ब्रह्मणस्पति' भी कहते हैं।

वैदिकविज्ञानके अनुसार सारे देवता एक ही परमपिता परमात्माकी भिन्न भिन्न शक्तियोंके प्रतीक हैं। उन सबको एक ही समझनेकी बात भारतके प्राचीन साहित्यमें बारंबार दुहरायी गयी है। मनुष्यकी दैवी सम्पदा उसे श्रेयोमार्गपर बढ़ाती है; पर ठीक इसके विपरीत उसकी आसुरी सम्पदा उसे प्रेयोमार्गकी ओर प्रेरित करती रहती है। इस संघर्षके कारण मनुष्यके सामने सदैव यह भय उपस्थित रहता है कि वह श्रेयोमार्गको त्यागकर प्रेयोमार्गपर ही न दौड़ने लग जाय। वेदके मन्त्रद्रष्टा ऋषि मानवकी इस महती बाधाको भलीभाँति पहचानते थे और इसीलिये मानव-मात्रका सच्चा प्रतिनिधित्व करते हुए उन्होंने वेदके अपौरुषेय ज्ञानके द्रष्टा होकर लोककल्याणके निमित्त परमात्माकी विभिन्न शक्तियोंको लोकमें इसलिये उतारा कि वे मानवमात्रको श्रेयोमार्गपर चलनेकी प्रेरणा दें—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥
(ऋग्वेद २। २३। १)

वेदमें शब्दको 'ब्रह्म' कहा गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि वेदका प्रत्येक शब्द हमें परब्रह्म परमात्माके ज्ञानकी दिशाकी ओर बढ़ाता है। अतः वेदके ब्रह्ममय शब्दोंका चिन्तन और मनन मननशील मनुष्यको यावज्जीवन करते ही रहना चाहिये।

उपर्युक्त वेदमन्त्रका अन्वय नीचे दिया जा रहा है। इस अन्वयसे मूलमन्त्रके तात्पर्यको समझनेमें सहायता मिल सकती है। संस्कृतके सामान्य ज्ञानकी सहायतासे इसको समझनेका प्रयत्न करना सुखकर होगा। मन्त्रद्रष्टा महर्षि शौनक इस मन्त्रके माध्यमसे जो प्रार्थना गणेशजीसे करते हैं, उसका तात्पर्य इस अन्वयसे अधिक स्पष्ट होगा—

'ब्रह्मणस्पते! गणानां गणपतिं कवीनां कविम् उपम-

सादनम् आ सीद ।'

जिन गणेशजीका आवाहन महर्षि भृगुपुत्र शौनकने इस मन्त्रमें किया है, उन्हें पहले 'ब्रह्मणस्पते' कहकर सारे ज्ञान विज्ञानसे युक्त बतलाया गया है । ज्ञान विज्ञानसे युक्त गणेशजी जब लोकमें पधारेंगे तो मनुष्योंमें ज्ञान-विज्ञानका प्रसार करेंगे, पर इस ज्ञान विज्ञानके ग्रहण करनेकी क्षमता तो मनुष्य ही अपनेमें उत्पन्न करेगा । इस मन्त्रका मानवमात्रके लिये सन्देश है कि ब्रह्मणस्पति गणेशजीका योग्य सेवक बननेके लिये स्वयं ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न बनो ।

इसके उपरान्त गणेशजीको 'गणानां गणपतिम्' कहकर स्मरण किया गया है । हमें गणपतिभगवान्‌का ज्ञानालोक तभी प्राप्त होगा, जब हम अपने (रुद्र) गणोंको सँभालें । ये गण ग्यारह हैं; हमें इन गणोंको सँभालना है । इनको सँभाले बिना किसी मनुष्यको 'ब्रह्मणस्पति' कहलानेवाले गणेशजीका ज्ञानालोक नहीं प्राप्त हो सकता । दसों इन्द्रियाँ और उनके ऊपरका सत्ताधारी मन, इस प्रकार ग्यारह गणोंका नियन्त्रक मनुष्य भी है । जब मनुष्य वेदके माध्यमसे गणपति भगवान्‌को अपने घरमें बुलाकर बैठानेका प्रयत्न करता है, तब उसके घरको इस योग्य भी तो होना चाहिये कि भगवान् उसमें विराज सकें । कहनेका तात्पर्य यह है कि गणपतिके आवाहकको गणपतिके समान ही सदाचारसम्पन्न होना चाहिये ।

तीसरे विशेषणमें गणेशभगवान्‌को 'कवीनां कविम्' कहा गया है । भगवान् केवल कवि नहीं हैं, वे कवियोंके कवि हैं । जब भगवान् कवियोंके कवि हैं तो मनुष्यको अकवियोंका अकवि नहीं बनना है; कवियोंका कवि बनना है । कवि उसे ही नहीं कहते, जो कवि सम्मेलनोंमें अपनी कवितादारा लोगोंको प्रसन्न करता है । कवि कहते हैं, ज्ञानके प्रत्येक छोरतक पहुँचनेवाले विद्वान्‌को । कविके आचरणके लिये बड़ी सरल भाषामें कहा जाता है—'जहाँ न जाये रवि, वहाँ जाये कवि' । मनुष्य ज्ञान विज्ञानका द्रष्टा बननेका प्रयत्न करे और उसी प्रकारका आचरण करके गणेशजीको अपने हृदय धाममें बुलानेकी क्षमता अपनेमें उत्पन्न करे, यही इस विशेषणका तात्पर्य है । जबतक मनुष्य अपनी दैवी सम्पदाके बलसे अपनी आसुरी सम्पदाओंपर विजय नहीं प्राप्त करता, तबतक उसे उन भगवान् गणपतिको अपने घरपर बुलानेका कोई अधिकार नहीं है । यदि मानव बिना अधिकारी बने उनको बुलायेगा तो केवल उसके कोरे मन्त्रपाठसे वे उसके

[illegible] ... गया है—

'यमाय येद् किमृषा करिष्यति'
(ऋग्वेद १ । ११

इसके उपरान्त वेद गणेशजीको 'उपमश्रवस्तम' है । इसका अर्थ हुआ—यशकी उपमामें सर्व यशस्वी । और सरलतासे समझिये—नामियोंमें न हमारा देवता नामियोंमें नामी है, वैसे ही हम भी नामी बननेका प्रयत्न करें । एक होता है विख्यात उसकी बड़ाई होती है; और दूसरा होता है कुख्यात और उसकी निन्दा होती है । गणेशभक्त म सदाचारके लिये विख्यात हो, दुराचारके लिये कुख्यात यही इस विशेषणका तात्पर्य है ।

अब 'ज्येष्ठराजम्'पर विचार कीजिये । क्यों ग केवल 'ज्येष्ठम्' कहकर नहीं बुलाया गया । इसलि केवल सबसे जेठे ही नहीं हैं, प्रत्युत जितने भी विश्वमें व्याप्त हैं, उस ज्येष्ठताको वे अपना तेज प्र हैं । जिस 'राज'—शब्दसे हम बहुत अधिक परि उसका अर्थ होता है—तेजस्वी । यदि विश्वके हम अपनी आँखें न खोलें तो उस प्रकाशका हमें नहीं हो सकता । इसी प्रकार यदि हम दिन आँखोंपर कपड़ा बाँध लें तो सड़कपर चलनेके दूसरेका सहारा लेना पड़ेगा । गणेशजी केवल ज्येष्ठ हैं, वे ज्येष्ठोंमें भी तेजस्वी हैं और सारे ज्येष्ठ लोग तेजसे तेजस्वी बनते हैं । अतः उनके तेजका प्र लिये मनुष्यको अपनी आँखोंकी पट्टी खोलनी चाहि भगवान्‌के तेजके आशीर्वादसे परमसुख प्राप्त करना च यही इस 'ज्येष्ठराज' विशेषणका तात्पर्य है ।

वेद लोकमें जिन गणेशजीका आह्वान क वे केवल ज्ञानी ही नहीं हैं, ज्ञानभंडारके प पतिका अर्थ होता है—रक्षक । जो देवता ब्रह्मणस्पति वह अपना ज्ञान अधिकारी व्यक्तिको ही देग अधिकारी वही हो सकता है, जिसने आसुरी सम्प शत्रुओंका उन्मूलन कर दिया हो । जिसने अपने आप ठीक वैसा बना लिया हो, जैसा गणपतिभगवान् चा तभी उसकी पुकारपर भगवान् गणपति उसके घर आकर बैठ सकते हैं । अधिकारी होनेकी मर्यादा इस भी प्रचलित है । हमारे संसारमें एक भी ऐसा विद्वा

[illegible]हों है, जो दसवीं श्रेणीके उत्तीर्ण विद्यार्थीको पंद्रहवीं श्रेणीमें [प्र]वेश दे दे। पद्रहवीं श्रेणीमें प्रवेश पानेके लिये आवश्यक है [कि] विद्यार्थी चौदहवीं श्रेणीमें उत्तीर्ण हो चुका हो। ठीक [इ]सी प्रकार गणपतिभगवान्‌का ज्ञानालोक प्राप्त करनेके लिये [य]ह आवश्यक है कि हम स्वयं उनके द्वारा प्रसारित ज्ञानके [प्र]काशको अपने आचरणमें उतार चुके हों।

वेदमें गणेशजीकी स्तुतियोंके अनेक मन्त्र हैं, जिनमेंसे केवल एककी चर्चा इस लेखमें की गयी है। आशा है, इस चर्चासे विज्ञ पाठकोंका न केवल मनोरञ्जन होगा, प्रत्युत इसके द्वारा उनके हृदयमें उस वेदभक्तिका भी उदय होगा, जिसकी शक्तिसे मानव उस परमपिता परमात्माका अनुग्रह प्राप्त कर सकता है।

वेदोंमें गणपति

(लेखक—डॉ० श्रीशिवशङ्करजी अवस्थी)

[ब्रह्म]णस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
[वि]श्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः[1]॥
([ऋ]ग्वेद २। २३। १९; २। २४, १६; यजुर्वेद ३४। ५८)

शतपथब्राह्मणके भाष्यकार हरिस्वामीके गुरु स्कन्दस्वामी, [जो] संवत् ६८७में विद्यमान थे, अपने ऋग्वेद भाष्यके [आर]म्भमें लिखते हैं—

विघ्नेश विधिमार्तण्डचन्द्रेन्द्रोपेन्द्रवन्दित।
नमो गणपते तुभ्यं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते[2]॥

इससे स्पष्ट है कि वैदिक देवता ब्रह्मणस्पति ही [लौ]किक गणपति हैं। लौकिक साहित्यमें गणेशके दो मुख्य [कार्य] वर्णित हैं—एक विद्या, बुद्धि एवं धनका प्रदान और दूसरा विघ्न या दुष्टोंका दमन। वेदमें ब्रह्मणस्पतिके सम्बन्धमें ऐसे ही उल्लेख मिलते हैं। यथा—

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते॥
(ऋग्वेद २। २३। ५)

'हे ब्रह्मणस्पति! आप जिस जनकी रक्षा करते हैं, उसे कोई दुःख और तज्जनक पाप पीड़ित नहीं कर सकता; शत्रु कहीं भी उसकी हिंसा नहीं कर सकते, मनमें कुछ और तथा क्रियामें कुछ अन्य करनेवाले वञ्चक भी उसे बाधा नहीं दे पाते। अपने जनोंकी हिंसक समस्त सेनाओंको आप नष्ट कर देते हैं।'

तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन् दृळ्हाऽव्रदन्त वीळिता।
उद् गा आजदभिनद् ब्रह्मणा वलमगूहत्तमो व्यचक्षयत्स्वः॥
(ऋग्वेद २। २४। ३)

'देवोंमें श्रेष्ठ देव ब्रह्मणस्पतिके ये कर्म हैं—दृढ पर्वतादिकोंको ये अपने बलसे विशीर्ण कर देते हैं, कठोरको कोमल बना देते हैं, प्रज्ञा या ज्ञान प्रदान करते हैं, अपनी वाग्रूपिणी शक्तिसे आच्छादक असुरोंको ध्वस्त करते हैं, अज्ञान या अन्धकारको दूर करते हैं एवं स्वर्गात्मक सुख प्रदान करते हैं।'

ब्रह्मणस्पति, बृहस्पति और वाचस्पति—वेदमें ये एक ही गणपतिके भिन्न नाम मिलते हैं। भास्कररायने 'गणपति सहस्र-

---

१. हे मन्त्रोंके अधिपति! तुम इस जगत्‌के नियामक हो; इस सूक्तको जानो और मेरी सन्तानको प्रसन्नता प्रदान करो; [ज]ैसे देव जिसकी रक्षा करते हैं, उसका सर्वथा भला होता है। [ह]म इस जीवन-यज्ञमें सुन्दर पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होकर [आप]की स्तुति करें।

२. ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र तथा विष्णुके द्वारा वन्दित हे [विघ्नेश] गणपति! मन्त्रोंके स्वामी ब्रह्मणस्पति! तुम्हें नमस्कार है।

३. (क) विद्या-वारिधि, बुद्धि-विधाता—तुलसीदास

(ख) ढुण्ढाम्राकलितेन हेमकलशेनावर्जितेन क्षर-
न्नानारत्नचयेन साधकजनान् सम्भावयन् कोटिशः।
—श्रीराघवचैतन्य—महागणपतिस्तोत्र ८

(ग) विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाट्।

(घ) यतो बुद्धिरज्ञाननाशो मुमुक्षो-
र्यतः सम्पदो भक्तसंतोषिकाः स्युः।
यतो विघ्ननाशो यतः कार्यसिद्धिः
सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥
—गणेशपुराण, उपासनाखण्ड, गणेशाष्टक ५

४. 'बृहस्पते ब्रह्मणस्पते'—तै० ब्रा० ३। ११। ४। २, [ए]ष (प्राणः) उ एव ब्रह्मणस्पतिः। वाग्वै ब्रह्म तस्या एष पतिः [त]स्मादु ह ब्रह्मणस्पतिः'—शतपथब्राह्मण १४। ४। १। २३, [ए]ष वै ब्रह्मणस्पतिर्य एष (सूर्यः) तपति'—शतपथब्राह्मण १४। १। २। १५। 'बृहस्पतिरेव ब्रह्मणस्पति'—३३१।

मुखवाले और सात किरणों अथवा सात वर्ण-वर्गवाले विविध रूप धारण करके नादके द्वारा अन्धकार अज्ञानको दूर करते हैं।'

गणेशको 'एकदन्त' कहा जाता है। ऋग्वेदमें एक मन्त्र है—

वत्तो इलश्रत्ताभुतः सर्वा भ्रूणान्यारुषी।
अराय्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णशृङ्गोदृषन्निहि॥
(१०।१५५।२)

'वह अलक्ष्मी इस लोकसे तथा उस लोकसे भी विनष्ट जाय, जो समस्त भ्रूणों या ओषधियोंके अङ्कुरोंको नष्ट देती है। हे तीक्ष्णदन्त ब्रह्मणस्पति! आप उस दान-विनी अलक्ष्मी या दुर्भिक्षअधिदेवताको दूर करते हुए।'

'शृङ्ग'का अर्थ दाँत भी होता है। सायणाचार्यने 'तीक्ष्ण-शृङ्ग' ऐसा अर्थ किया है।

लोकमें गणेश और सरस्वतीकी एक साथ वन्दना देखी जाती है। वेदोंमें भी ऐसा उल्लेख मिलता है—

'प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता'॥ (ऋग्वेद १।४०। ; सामवेद, आग्नेयपर्व २।५६; यजुर्वेद ३३।८९)

'हमारे यज्ञमें ब्रह्मणस्पति देव आवें, वाग्देवता सरस्वती पधारें।'

ब्रह्मणस्पति ऋग्वेदमें महत्त्वपूर्ण देवताके रूपमें वर्णित । ग्यारह सूक्तोंमें इनकी स्तुति मिलती है। पुराणोंमें कर इनका रूप और विशद हुआ है। प्रत्येक लेखनकार्य अन्य शुभ कर्ममें वे अग्रणी रहते हैं। बालकोंके अक्षरारम्भ-वे स्मृत होते हैं। जो लोग सोचते हैं कि गणेशजीका न-कार्यसे सम्बन्ध 'सिद्धि'-शब्दके गड़बड़-झालेके कारण ना है, वे भ्रान्त हैं। उनका यह कहना कि 'सिद्धि'-शब्द चीनकालसे ही वर्णमालाका बोधक रहा है और गणेशको सिद्धिदाता' कहा जाता है, अतः उक्त शब्द ही गणेशको रूपमें वर्णन करनेवाले उपाख्यानका जन्मदाता है—असंगत है। पतञ्जलिने 'सिद्ध' शब्दको मङ्गलार्थक और नित्यार्थक माना है। 'कातन्त्र-व्याकरण'का पहला सूत्र है—'सिद्धो वर्णसमाम्नायः।' इसका अर्थ है—'वर्णमाला नित्य है।' 'ॐ नमः सिद्धम्' इसका भी प्रयोग यत्र-तत्र मिलता है। इसमें पठित तीनों शब्द मङ्गलार्थक एवं परमात्मवाचक हैं। 'तैत्तिरीयसंहिता'के सुप्रसिद्ध भाष्यकार कौशिक भट्टभास्करने रुद्रभाष्यमें लिखा है—

'ॐ, स्वाहा, स्वधा, वषट्, नमः इति पञ्च ब्रह्मणो नामानि।' 'मङ्गलार्थम्'—सिद्ध शब्द मङ्गलार्थक है। महाभाष्यके इस प्रतीकको लेकर भर्तृहरि लिखते हैं—

"निरपकृष्टाभिमतार्थसिद्धिर्मङ्गलम्। तदर्थं च यदुपादीयते तदपि तदर्थत्वान्मङ्गलमित्याख्यायते।—बिना किसी त्रुटिके अभिप्रेत अर्थकी सिद्धिको 'मङ्गल' कहते हैं और मङ्गलार्थ जिस शब्दका ग्रहण किया जाता है, वह भी तदर्थ होनेके कारण 'मङ्गल' कहलाता है।" इस प्रकार सिद्ध-शब्दका अर्थ मङ्गलमूर्ति या गणपति तो हो सकता है, वर्णमालाका बोधक नहीं। वैदिक बृहस्पति[11] ही लौकिक गणेश हैं, इसमें संदेह नहीं। वेदमें गणपति और इन्द्रकी एकताके भी वचन मिलते हैं। यथा—

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च॥
(ऋग्वेद १०।११२।९)

---

९. सप्तरश्मिः—अ, क, च, ट, त, प, य—यही सात वर्ग या वर्ण हैं, जिनसे अज्ञान दूर होता है—

अकारादिक्षपर्यन्ता - कलात्मा शब्दकारणम्।
मातरः सप्त सो देव्यो रश्मयश्च कलाः स्मृताः॥
(भट्टभास्कर)

१०. 'नित्य-पर्यायवाची सिद्ध शब्दः'। 'मङ्गलार्थम्' माङ्गलिक आचार्यो महतः शास्त्रौघस्य मङ्गलार्थं सिद्धशब्दमादितः प्रयुङ्क्ते।'
(पस्पशाह्निक)

११. भण्डारकरको भी इस सम्बन्धमें भ्रम हुआ। हाँ, गोपीनाथ रावने अवश्य बृहस्पति और गणेशकी एकताका प्रतिपादन अपने 'एलिमेंट्स आफ हिंदू आइकोनोग्राफी' नामक ग्रन्थके Vol. I, Part i, P. 45 में किया है—

'Bhandarkar is of the opinion that this reputation for wisdom was born of a confusion between Gaṇeśa and the Vedic god of wisdom, Bṛhaspati, while Rao identifies him with the celestial Guru Bṛhaspati himself. It is interesting to note here that Bṛhaspati, an important god in the Rig Veda is described as carrying the axe or 'golden hatchet', an attribute particularly ascribed to Gaṇeśa, and that he also was referred to as Gaṇapati'—'गणेश' [Alice Getty.]

... सामर्थ्य हो । अरे ! तुम्हारे बिना कोई अथवा कल्याण-कार्य नहीं किया जा सकता । अतः हे मघवन् ! आप महान् श्रेष्ठ और विविध कर्म (जनोंके हृदयमें उपस्थित होकर) करें ।'

वस्तुतः गणपतिका अर्थ है—'अक्षर'[12]-गणके पालक ।' यही ब्रह्मणस्पतिका भी अर्थ है । यास्क 'निरुक्त'में लिखते हैं—'ब्रह्मणस्पतिः—ब्रह्मणः पाता वा पालयिता वा ।' दुर्गाचार्यने इसपर लिखा है—'ब्रह्म'का अर्थ अन्न और ऋगादि वेद हैं । वर्षाके द्वारा ओषधियोंका निष्पादन करते हुए यह दोनोंका रक्षक बन जाता है ।' 'ब्रह्म'को वेद कहते हैं । वेद त्रिधा विभक्त हैं—ओंकारात्मक, वर्णमालात्मक और संहितात्मक । भर्तृहरि कहते हैं—'प्रणवो हि वेदः', स हि सर्वशब्दार्थप्रकृतिः ।—प्रणव ही वेद है, वही समग्र शब्दों और अर्थोंका मूल है ।' पतञ्जलिकी उक्ति है—'सोऽयमक्षर-समाम्नायो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः ।' 'महाभाष्य' —वर्णमाला ब्रह्मराशि है ।'

'ब्रह्म'का अर्थ स्तुति या मन्त्र भी होता है । गणपति मन्त्रोंके उद्भावक हैं । इन्हें अग्निका ही एक रूप माना जाता है । मनुस्मृतिके टीकाकार मेधातिथि भी इसी मतको मानते हैं । वेदमें ओंकार और लोकमें स्वस्तिका या श्रीगणेश का लेखन स्मरण प्रसिद्ध है । 'गणेशपुराण'का कथन है—

ओंकाररूपी भगवान् यो वेदादौ प्रतिष्ठितः ।
यं सदा मुनयो देवाः स्मरन्तीन्द्रादयो हृदि ॥
ओंकाररूपी भगवानुक्तस्तु गणनायकः ।
यथा सर्वेषु कर्मेषु पूज्यतेऽसौ विनायकः ॥

शुक्लयजुर्वेद, अध्याय २३ । १९में गणपतिसे सम्बद्ध अधोलिखित बहुचर्चित मन्त्र आता है—

... त्वा गणपतिं हवामहे
... हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिं
हवामहे वसो मम ।
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ।'

इसका वास्तविक अर्थ निम्नाङ्कित है—यजमान पत्नी प्रातः ब्रह्मणस्पति या सूर्यको[13] ... कहती हैं—

'हे मेरे जीवनरक्षक सर्वव्यापी ईश्वर ! मनुष्यादि गणोंमें गणपति हम आपका आह्वान करते हैं । प्रियोंमें प्रियपति हम आपका आह्वान करते हैं । निधिपति हम आपका आह्वान करते हैं । तुम ... जन्मात्मक प्रजारूप गर्भ 'प्रजा वै पशवो गर्भः' (... १३ । २ । ८) का पोषण करनेवाले हो (त्वं ... अजासि) । मैं भी प्रजारूप गर्भका पोषक पा... (अहं गर्भधम् आ अजानि) ।'

शुक्लयजुःसंहितामें भी वाचस्पति, बृहस्पति और ब्रह्मण-स्पति-सम्बन्धी अनेक कण्डिकाएँ मिलती हैं । तीनों ... भी भाष्यकारोंने प्रतिपादित की है । बृहस्पति यज्ञ... समस्त देवोंमें श्रेष्ठ, उनके पुरोहित अर्थात् अग्रगण्य ...

'त्रयो देवा एकादश त्रयस्त्रिंशाः सुराधसः । बृ... पुरोहिता देवस्य सवितुः सवे । देवा देवैरवन्तु ...
(२० । ...

'त्रिगुण एकादश अर्थात् तैंतीस सुसम्पन्न देव ... बृहस्पति अग्रगण्य हैं, सविता या परमात्माकी आज्ञामें वर्तमान होकर अन्य देवोंके साथ हमारी रक्षा करें ।'

'रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ।' (यजुर्वेद १ । ...

'हे ब्रह्मणस्पति ! हमारी रक्षा करो ।'

अथर्ववेदमें एक स्थानपर नक्षत्रेदस् ब्रह्मणस्पतिसे प्रार्थना की गयी है कि 'बच्चेके दो दाँत, जो पिता माताको ... हनन मारनेके लिये उद्यत हैं, आप उन्हें ... बना दें ।'

यौ व्याघ्रावरूढौ जिघत्सतः पितरं मातरं च ।
तौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः ॥
(अथर्ववेद ६ । १४० । १)

---

12. Coomaraswamy attributes his reputation as 'Patron of Letters' to the double meaning of the word, Gaṇa, which, besides being the name of the followers of Śiva, is also the 'technical designation of early lists or collections of related works.'—('गणेश' in 'Bulletin of the Boston Museum of Fine Arts', Vol. XXVI, P. 32, April 1928.—('गणेश' Alice Getty))

13. वेदमें गणपति ... से सूर्य मानी जाती है, जिसका ... 'सूर्यं ब्रह्मणस्पति' है ।

...विविध प्रकारके राक्षसोंके नाशकी भी प्रार्थना की है—

'...वेषां पञ्चारपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरोमुखा । खलजाः ... रजा उरण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः । ... ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥' (अथर्व० ८ । ... ५)

बृहस्पति या गणपतिको वेदोंमें 'देवपुरोहित' कहा गया ... पुरोहित अग्निस्वरूप ही होता है । इसमें पाँच विघ्न शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं । एक वाणीमें, एक पैरोंमें, ... त्वचामें, एक हृदयमें तथा एक उपस्थेन्द्रियमें । कुपित ... रूप पुरोहित राजाका निग्रह करता है और शान्त होने-... अनुग्रह । सूनृतावाक्‌के द्वारा यजमान पुरोहितकी वाणीमें ... विघ्नको शान्त करता है, पादोदकसे पैरोंके विघ्नको । ... कारोंसे त्वचामें विद्यमान, तर्पणसे हृदयमें स्थित और अनारुद्ध सुन्दर गृहप्रदान करके उपस्थके विघ्नको शान्त करता है इस प्रकार शान्त हुआ अग्निरूप पुरोहित जैसे समुद्रभूमिको सुरक्षित रखता है, वैसे राजाका कल्याण करता है ।

'अग्निर्वा एष वैश्वानरः पञ्चमेनिर्यन् पुरोहितः, तस्य वाच्येवैका मेनिर्भवति पादयोरेका त्वच्येका हृदय एकोपस्थ एका..........।' ऐतरेयब्राह्मण, ८ पञ्चिका, अध्या० ५ । २४—२७)

'बृहस्पतिर्ह वै देवानां पुरोहितः ।—बृहस्पति या अग्नि स्वरूप गणपति देवोंके पुरोहित हैं ।' वे अशान्ततनु होकर कोई विघ्न न करें, अतः पञ्चोपचार-पूजनद्वारा हम उन्हें शान्ततनु बनायें—

'स एनं शान्ततनुरभिहुतोऽभिप्रीत. स्वर्गलोकमभिवहति क्षत्रं च बलं च राष्ट्रं च विशं च ।' (ऐतरेय ब्राह्मण)

श्रीगणेशकी उत्पत्ति, स्वरूप एवं सम्प्रदाय

(लेखक—डॉ० श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी, एम्० ए० [हिंदी, संस्कृत, दर्शन], बी० एड्०, व्याकरणाचार्य, पी-एच्० डी०)

गणेशजीकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अनेकों मत उपलब्ध होते हैं । संक्षेपमें यहाँ उन सभीका दिग्दर्शन कराया जा रहा है ।

(१) वैखानसागममें गणेशोत्पत्तिकी दार्शनिक व्याख्या की गयी है । इसके अनुसार 'अहंकार-तत्त्व'से आकाशकी उत्पत्ति होती है और यह आकाश-तत्त्व ही 'गणेश' है । आकाश सर्वाधार है, अतः गणेशजी भी सर्वाधार हैं । आकाश या उसकी शब्द-तन्मात्रा ही 'गणेश' हैं । आकाश-तत्त्वसे ही सभी तत्त्व समुत्पन्न होते हैं और अन्ततः सभी उसीमें विलीन हो जाते हैं, अतः आकाशमें रूप-तन्मात्रा एवं अग्नि-तत्त्व, रस-तन्मात्रा एवं जल-तत्त्व, स्पर्श-तन्मात्रा एवं वायु-तत्त्व, गन्ध-तन्मात्रा एवं पृथ्वी-तत्त्व—विश्वके समस्त मूलभूत उपादान निहित रहते हैं । इसीलिये आकाश सर्वाधार है । आकाश-तत्त्व गणेश-तत्त्व है, अतः गणेश तत्त्वमें विश्वोपादानके सभी तत्त्व एवं उनकी समस्त सूक्ष्म तन्मात्राएँ भी सूक्ष्मरूपमें अवस्थित हैं । गणेश ही अनन्त ब्रह्माण्डोंके अधिष्ठाता देवता हैं ।

उपनिषदोंमें 'खं ब्रह्म' (आकाश ब्रह्म है) कहकर आकाशकी ब्रह्मरूपता सिद्ध की गयी है; अतः आकाशस्वरूप होनेसे गणेशजी भी निष्कल, निरञ्जन, निर्गुण, निराकार, अनवद्य, अद्वैत, अज, अखण्ड एवं अभेद परब्रह्म हैं ।

वैखानसागममें ही दूसरे स्थलपर आकाशको 'गणाधिपति' कहा गया है और यह भी उपर्युक्त तथ्योंकी सम्पुष्टि करता है ।

सांख्य-शास्त्रके अनुसार पुरुष एवं प्रकृति (शिव एवं पार्वती) (मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् । श्वेताश्वतर ४ । १०) के संयोगसे ही 'महत्तत्त्व'की उत्पत्ति होती है और 'अहंकार-तत्त्व'से आकाशादिक तत्त्वोंकी ।

(२) तान्त्रिक विद्वानोंकी दृष्टिमें मूलाधारमें अवस्थित शक्ति (कुल-कुण्डलिनीके अतिरिक्त)का नाम 'गणेश' है । वे मूलाधार-शक्तिको ही गणेश-तत्त्व भी मानते हैं ।

(३) मत्स्यपुराणमें एक उपाख्यान है कि पार्वतीजीने अपने शरीरके अङ्गलेपसे एक क्रीडनक निर्मित किया । इसके सिरकी आकृति गजके सदृश थी । उन्होंने उसे लाकर गङ्गाजलसे वैसेही उसका अभिषेक किया, वैसे ही वह प्राणवान् हो गया । उसे पार्वती एवं गङ्गा—दोनोंने अपना पुत्र माना । यही पुत्र 'गणेश'के नामसे विख्यात हुआ ।

अनवच्छिन्न सर्वव्यापक सम्पूर्ण परमात्मा हैं। पति प्रत्यक्ष तत्त्व हैं, कर्ता, धर्ता और हर्ता हैं। विद्यमान ब्रह्म हैं, आत्मा हैं। उनका औपनिषद प्रकार है—

नमस्ते गणपतये । त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि । त्वमेव केवलं कर्तासि । त्वमेव केवलं धर्तासि । त्वं हर्तासि । त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि । त्वमासि नित्यम् ।'

(गणपत्यथर्वशीर्ष उप० १)

गणेशजी अव्यय हैं, अविनाशी और अगम हैं, वे निराकार हैं, मन और वाणीसे परे सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं, अपने स्वजनों—उपासकोंपर कृपा करनेके साकार हो जाते हैं। ब्रह्मा शिव आदि भी उन्हें नहीं जानते हैं, और न शेष ही उनकी महिमाका वर्णन कर पाते हैं—

न स्वरूपं न विदुर्ब्रह्मेशानादयः सुराः ।
सहस्रवदनो यस्य महिमानं न च क्षमः ॥
वक्तुं विशेषविदपि प्रवक्तुं राजसत्तम ॥

(गणेशपुराण, उपासना खण्ड ९ । ३१-३२)

गणेशके उपासक भी उनको 'निर्गुण' ही कहते हैं। स्वरूप वर्णन करनेमें कोई भी समर्थ नहीं कहा जा है—

गणेशस्य स्वरूपं न वक्तुं केनापि शक्यते ।
व्याप्युपासनामर्त्यैर्निर्गुणं तन्निरूप्यते ॥

(गणेशपुराण, उपासना० १ । ११)

भगवान् गणपति परमानन्द हैं, वे ही परम गति हैं। तत्त्वार्थदर्शी उन्हें 'परब्रह्म' कहते हैं। ब्रह्माके वचन हैं—

यमाहुः परमानन्दं यमाहुः परमां गतिम् ।
यमाहुः परमं ब्रह्म वेदशास्त्रार्थपारगाः ॥

(गणेशपुराण, उपासना० १० । २७)

[illegible] पति, सत्, असत्, व्यक्त और [illegible] निर्विकल्प हैं, लौकिक [illegible] हैं; निराकार, सर्वभेद,

परं निर्गुणं निर्विशेषं निरीहं
परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम ॥

(गणेशपु०, उपा० १३ । ३)

भगवान् वामनने श्रीगणेशजीकी महिमाका वर्णन करते समय उनके तात्त्विक स्वरूपका अभिव्यञ्जन करते हुए उन्हें 'वेदवन्दित' कहा है। श्रीवामनके मन्त्रजपके प्रभावसे भगवान् ब्रह्मणस्पति श्रीगणेशजीने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया था। श्रीवामनने उनकी स्तुति की—

अव्यक्तं व्यक्तहेतुं निगमनुतनुतं सर्वदेवाधिदेवं
ब्रह्माण्डानामधीशं जगदुदयकरं सर्ववेदान्तवेद्यम् ।
मायातीतं स्ववेद्यं स्थितिविलयकरं सर्वविद्यानिधानं
सर्वेशं सर्वरूपं सकलभयहरं कामदं कान्तरूपम् ॥

(श्रीगणेशपुराण, क्रीडा० ३१ । १४)

'जो अव्यक्तस्वरूप तथा व्यक्त जगत्के हेतु हैं; जिनका श्रीविग्रह वेदवन्दित है; जो सम्पूर्ण देवताओंके भी अधिदेव हैं; जो अखिल ब्रह्माण्डोंके नायक, जगत्के स्रष्टा, सर्ववेदान्तवेद्य, मायातीत, स्वसंवेद्य, सृष्टि, स्थिति और संहारके कर्ता हैं; जो समस्त विद्याओंकी निधि, सर्वेश्वर, सर्वरूप, सर्वभयहारी, मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले तथा कमनीयरूपधारी हैं; उन श्रीगणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

श्रीब्रह्मणस्पति समस्त स्तुतियोंके आश्रय हैं। वेदने उनका निरूपण—तत्त्वाङ्कन विद्यमान रहनेपर भी वे वेदोंकी पहुँचके बाहर हैं—वेदातीत हैं—

'पदं स्तुतीनामपदं श्रुतीनाम्'

(शारदातिलक १३ । १४२)

भगवान् ब्रह्मणस्पति गणेशजी प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं, वे ज्ञान-विज्ञानमय हैं। स्कन्दपुराणके काशीखण्डमें उनकी स्तुति है—हे परमकारण ! आप कारणोंके भी कारण हैं, वेदके विद्वानोंद्वारा सदा एकमात्र आप ही जाननेयोग्य हैं। आप ही वेद-वाणीमें अनुसंधान करनेयोग्य, अनिर्वचनीय तत्त्व हैं। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके दिव्य स्वरूपका एक अंश है तथा आप वाणीके अविषय हैं—

त्वं कारणं परमकारण कारणानां
वेद्योऽसि वेदविदुषां सततं त्वमेकः ।
त्वं मार्गणीयमसि किंचन मूलवाचां
वाचामगोचर चराचर दिव्यमूर्ते ॥

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ५० । १०)

…क मन्त्रका भाष्य सायणाचार्यद्वारा प्रस्तुत है—

'ब्रह्मणस्पतिः देवान् धनवान् ब्रह्मणोविहा रोगाणां …पुविन् धनस्य लब्धा पुष्टिवर्धनः पुष्टेर्वर्धयिता … स्वरोपेतः शीघ्रफलदः स ब्रह्मणस्पतिर्नोऽस्मान् …तो परिगृह्यानुगृह्णात्वित्यर्थः ।'

…भाव यह है कि जो सम्पत्तिशाली, रोगापहारक, … पुष्टिवर्धक और शीघ्र फलदाता हैं, वे ही … हमलोगोंपर अनुग्रह करें ।

…यजुर्वेदका निम्न उद्धृत मन्त्र भगवान् … पूजामें विद्वानों तथा शास्त्रज्ञोंद्वारा प्रयुक्त …—

'…र्नां त्वा गणपतिᳪ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिᳪ … निधीनां त्वा निधिपतिᳪहवामहे वसो मम । …ने गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥'

(२३ । १९)

…र्युक्त मन्त्रद्वारा आवाहित तथा पूजित गणेश— … ब्रह्मणस्पति गणपति, प्रियपति—स्वामी अथवा … परमेश्वर और निधिपतिरूपमें स्वीकृत हैं । …श्री भाष्यकारके मतसे उपर्युक्त मन्त्रका यह अर्थ …ता है कि 'हे परमदेव गणेशजी ! आपको हम समस्त …पति स्वीकार करते हैं, आपको प्रिय पदार्थों— … पालक और समस्त सुखनिधियोंका निधिपति … करते हैं । आप सृष्टिको उत्पन्न करनेवाले हैं, …वात्मा हिरण्यगर्भको धारण करनेवाले—संसारको …पमें धारण करनेवाली प्रकृतिके भी स्वामी आपको …'

…ग्वेदके एक मन्त्रमें भगवान् ब्रह्मणस्पतिका उल्लेख … होता है, जिसमें उपासकद्वारा उनकी प्राप्तिकी …ी गयी है—

'प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।'

(५९)

…सका आशय है कि ब्रह्माण्डके पालक ईश्वर …ति और वाग्देवता—भगवती वाणी हमें प्राप्त हों ।

१. ऋग्वेद १ । ४० । ३ में भी मिलता है ।

२. ब्रह्मणस्पतिकी स्तुति ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष, वेद तथा वेदज्ञोंके वशकी बात नहीं है । साक्षात् श्रीविष्णुके वचन हैं—'ईश ! मैं सनातन ब्रह्मज्योतिःस्वरूप आपका स्तवन करना चाहता हूँ, पर आपके अनुरूप निरूपण करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ ।''शेष अपने सहस्रों मुखोंसे भी आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं । आपके स्तवनमें न पञ्चमुख महेश्वर समर्थ हैं न चतुर्मुख ब्रह्मा; न सरस्वतीकी शक्ति है और न मैं ही समर्थ हूँ । आपका स्तवन करनेमें चारों वेद भी समर्थ नहीं हैं, फिर उन वेदवादियोंकी क्या गणना है ?'

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।
निरूपितुमशक्तोऽहमनुरूपमनीहकम् ॥
त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च ।
न क्षमः पञ्चवक्त्रश्च न क्षमश्चतुराननः ॥
सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ ।
न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः ॥

(ब्रह्मवैवर्त० गणपति० १३ । ४१, ४९-५०)

आद्यदेव वेदप्रतिपाद्य ब्रह्मणस्पति भगवान् गणपतिका ज्ञान केवल स्वानुभवसे होता है तो हो जाता है । बड़े-बड़े स्वानुभवी संत महात्माओं, ऋषि-मुनियों और आत्मवादियोंने स्वानुभवमें उनके स्वरूपका साक्षात्कार किया है । वे ओंकारस्वरूप परमात्मा हैं । महात्मा ज्ञानेश्वरने श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका 'ज्ञानेश्वरी'में श्रीगणेशजीके माङ्गलिक स्वरूपको स्मरण करते हुए उनकी स्तुति की है ।—

'ॐ नमो श्रीआद्या । वेद प्रतिपाद्या । जय जय स्वसंवेद्या आत्मरूपा । देवा तूंचि गणेशु । सकलमति प्रकाशु ।'

(१ । १-२)

आशय यह है कि 'हे ओंकारस्वरूप परमात्मा ! वेद ही आपका प्रतिपादन कर सकते हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ । आप ऐसे आत्मस्वरूप हैं, जिनका ज्ञान केवल स्वानुभवसे ही हो सकता है । मैं आपका जय-जयकार करता हूँ ।'

भगवान् ब्रह्मणस्पति श्रीगणपति—सिद्धि-बुद्धिके स्वामी वेदप्रतिपाद्य श्रीगणेश अचिन्त्य, अनन्त और अव्यक्त होकर भी अपने उपासकोंपर कृपा करनेके लिये उनके ध्यान, चिन्तन एवं उपासनामें साकार हो जाते हैं ।

पुत्रकामं कृत्वा व्रतं कुरु वरानने ॥
तं च पुण्यकं नाम वर्षमेकं करिष्यसि ।

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० ३ । १, ३)

"हे पर्वतराज हिमवान्की पुत्री ! मेरे वचनको ध्यान से सुनो, तुम्हारा कल्याण होगा । मैं तुमसे उत्तम वचन कहता हूँ; क्योंकि तीनों लोकोंमें उद्यमसे ही धर्ममें सफलता होती है।" ... "तुमने ! भगवान् श्रीहरिकी आराधना ... 'पुण्यक' नामक श्रेष्ठ व्रतका एक वर्षतक पालन करो ।" ... इसको विधिपूर्वक करनेसे भगवान् गोलोकेश्वर श्रीकृष्ण ... तुम्हें पुत्ररूपमें प्राप्त होंगे । यद्यपि वे सब प्राणियोंके ... हैं, फिर भी वे इस व्रतके अनुष्ठानसे तुमपर प्रसन्न होकर पुत्र बनकर तुम्हारे पास आयेंगे ।" यथा—

व्रतस्यास्य प्रभावेण स्वयं गोलोकनायकः ।
ईश्वरः सर्वभूतानां तव पुत्रो भविष्यति ॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० ५ । २०)

शिवजीके इस वचनको सुनकर सतीशिरोमणि भगवती ... ने शास्त्रोक्त विधिके साथ श्रीकृष्णभगवान्की पूजा की ... 'पुण्यक' नामक व्रत करना आरम्भ किया । व्रत ... समाप्त हो गया । समाप्तिके दिन उत्सव मनाया ... । पुरोहितको बुलाकर हवन कराया गया । सभी ब्राह्मणों- ... आमन्त्रित किया गया । भगवान् शंकरने सभी देवगण तथा ... महर्षियोंको दूत भेजकर बुलाया । सबके उपस्थित होनेपर ... बहुत आदरके साथ ब्राह्मणों, देवताओं और मुनियोंदि ... प्रमथगणोंको भोजन कराया । देवताओंके ... सर्वेश्वर नारायण, ब्रह्मा एवं महेश्वरने भी आनन्दसे भोजन किया ।

भगवती शिवसहधर्मिणी पार्वतीने ब्राह्मणोंको प्रचुर- ... दक्षिणा दी । वे ब्राह्मण भी अत्यन्त संतुष्ट हो गये ... उन लोगोंने प्रसन्न-मनसे पार्वतीको मनोरथ पूर्ण होनेका ... दिया । अन्तमें जब पुरोहितको यज्ञान्त-दक्षिणा ... समय आया, तब पुरोहित सनत्कुमारजीने पार्वतीसे ... —"हे देवि शंकरप्रिये ! आपने सभी ब्राह्मणोंको मुँह ... दक्षिणा दी है; अतः मुझे आप मेरी अभीष्ट दक्षिणा ... ।" देवी पार्वतीने पूछा—"आपकी अभीष्ट दक्षिणा ... है ?" सनत्कुमारजीने कहा—"हे देवि ! मेरी अभीष्ट ... भगवान् शंकर हैं । कृपया उन्हींको मेरी दक्षिणामें दीजिये । अन्य विनाशी पदार्थोंको लेकर मैं करूँगा क्या ? पुरोहितको अभीष्ट दक्षिणा देनेसे आपका मनोरथ शीघ्र पूर्ण होगा ।"

भगवान् श्रीकृष्णकी योगमायाके प्रभावसे श्रीशंकरकी अर्द्धाङ्गिनी पार्वतीकी बुद्धि भी मोहित हो गयी । अतः पुरोहितके वचनको सुनते ही वे विलाप करने लगीं एवं रोते रोते मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं ।

देवसभामें विष्णु, ब्रह्मा और शंकरजी अभी बैठे ही थे कि ऋषियोंने आकर पार्वतीके मूर्च्छित होनेका समाचार कहा । शंकरजी उस समय सभी देवताओंके स्वागतमें व्यस्त थे, इसलिये ऋषियोंकी बातपर उनका ध्यान नहीं गया । पश्चात् विष्णुभगवान् और ब्रह्माने इस समाचारको सुना और उन दोनोंने शिवजीको प्रेरित करके पार्वतीके पास भेजा ।

शंकरजीने जाकर जगदम्बा पार्वतीको मूर्च्छित अवस्थामें देखा और हृदयसे लगाकर अपने अमृतमय करतल-स्पर्शसे उन्हें सचेत किया । फिर शंकरजीने सुना कि पुरोहित सनत्कुमार-ने यज्ञान्त दक्षिणाके रूपमें भगवान् शंकरको ही माँगा है, इसीलिये इनको मूर्च्छा आ गयी है । इस बातको सुनकर अन्तर्यामी भगवान् शंकरने अपनी प्रियतमा पत्नी पार्वतीसे कहा—"प्रिये ! तुम तो त्यागरूपा हो; सनत्कुमारजीको उनकी अभीष्ट दक्षिणा अवश्य दे दो ।" पार्वतीकी मूर्च्छाका समाचार सुनकर अपनी शक्तियोंके साथ भगवान् नारायण और ब्रह्मा भी शंकरजीके पास ही आ गये । श्रीमन्नारायणने जब दक्षिणामें शिवजीके माँगनेकी बात सुनी, तब उन्होंने कहा—"देवि ! तुम तो उदारहृदया हो, तुम्हारे लिये अदेय क्या है, पुरोहितने तुमसे जो दक्षिणा माँगी है, तुम उसे उन्हें दे दो, तुम्हारा कल्याण ही होगा ।" भगवान् नारायणके कहनेसे पार्वतीजीने अपने प्रिय पति भगवान् महेश्वरको उन्हें दक्षिणामें दे दिया ।

पुरोहित सनत्कुमारजी महादेवजीको लेकर चलनेके लिये उद्यत हुए । तब पार्वतीके दुःखको देखकर नारायणने कहा—

विष्णुदेहा यथा गावो विष्णुदेहस्तथा शिवः ।
द्विजाय दत्त्वा गोमूल्यं गृहाण स्वामिनं शुभे ॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० ७ । ८०)

श्रीमन्नारायणके वचनको सुनकर देवी पार्वतीके मनमें कुछ साहस हुआ और उन्होंने कातरस्वरसे अपने पुरोहित सनत्कुमारजीसे कहा—

कहा—'गणेशरूपमें श्रीकृष्ण प्रत्येक कल्पमें आपके घर आते हैं। आप शीघ्र भीतर आकर देखिये।' श्रीकृष्ण इतना कहकर बालकका रूप धारणकर भीतर बिछी हुई शय्यापर लेट गये। लेटते ही शय्यापर पड़े हुए शिवजीके तेजमें लिप्त हो उत्पन्न हुए बालकके समान उस घरके शिखरकी ओर देखने लगे।'

पार्वतीने उस अत्यन्त सुन्दर बालकको शय्यापर टकटकी लगाकर देखते हुए देखा और प्रेमसे अपनी गोद में उठा लिया तथा दूधसे भरे हुए अपने स्तनोंको पिलाया। पुराणके इन प्रमाणोंसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि गणेशके रूपमें श्रीकृष्ण ही आविर्भूत हुए हैं।

भगवान् शंकरने इनके बल पराक्रम और बुद्धिमत्ताको देखकर इन्हें अपने प्रमथादिगणोंका आधिपत्य दे दिया और इसीलिये उन्होंने गणेश नाम रखा।

गणेशजीकी पूजा करनेसे विघ्नोंका नाश हो जाता है—

पूजने विघ्नं निर्मूलं जगतां भवेत्।
व्याधिः सूर्यपूजायां शुचिः श्रीविष्णुपूजने ॥
(ब्रह्मवैवर्त० गणपति० ६। १००)

'किसी कार्यके आरम्भमें भगवान् गणेशजीकी पूजा करनेसे संसारके विघ्न जड़-मूलसे नष्ट हो जाते हैं, सूर्यकी पूजा करनेसे रोग दूर हो जाते हैं तथा भगवान् विष्णुकी पूजासे बाह्य और आभ्यन्तर पवित्रता आती है।'

किसी कार्यमें प्रथम गणेशकी पूजा न करनेसे कार्य-सिद्धिमें विघ्न अवश्य होता है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि समुद्रमन्थनमें गणेशजीकी पूजा पहले नहीं हुई थी, इससे जब दैत्य और देवगण मन्दराचलको ला रहे थे, तब उसके भारसे वे लोग दबकर हताहत हो गये थे; तब विष्णुने अपने अमृतमय करतल-स्पर्शसे उनको पुनरुज्जीवित किया था। पश्चात् जब वह पर्वत समुद्रमें डाल दिया गया, तब उसमें डूब गया। इससे दैत्य और देवता दोनों हताश हो गये और दोनोंने समझा कि सब किया कराया चौपट हो गया। इस बातको देखकर भगवान् विष्णुने समझ लिया कि विघ्नराज गणेशजीकी पूजा न करनेसे अप्रसन्न होकर उन्होंने ही विघ्न उपस्थित किया है—

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो
दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसंधिः ।
कृत्वा वपुः कच्छपमद्भुतं महत्
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ॥
(८। ७। ८)

'उस समय भगवान्ने देखा कि यह तो विघ्नराजकी करतूत है, इसलिये उन्होंने उसके निवारणका उपाय सोचकर अत्यन्त विशाल एवं विचित्र कच्छपका रूप धारण किया और समुद्रके जलमें प्रवेश करके मन्दराचलको ऊपर उठा दिया।' भगवान्की शक्ति अनन्त है। वे सत्यसंकल्प हैं। उनके लिये यह कौन सी बड़ी बात थी।

जैसे भगवान् श्रीकृष्णके नामोच्चारणमात्रसे सभी संकट दूर हो जाते हैं, वैसे ही श्रीगणेशके नामोच्चारणसे सभी बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

श्रीगणेश और 'जेनस'

(लेखक—बा० श्रीविष्णुदयालजी, मारिशस)

वेद-मन्त्रका उच्चारण करनेके पूर्व 'ॐ'का उच्चारण किया जाना अपेक्षित है। इसी भाँति धार्मिक ग्रन्थों और कार्यारम्भमें श्रीगणेशजीका नाम-स्मरण करनेकी प्रथा है। 'गणेशपुराण'का कथन सही है कि 'गणेशजी ओंकारस्वरूप हैं।' मुहावरेदार भाषाका प्रयोग किया जाता है और किसी कार्यका 'श्रीगणेश' करनेकी चर्चा होती है, तब यही समझा जाता है कि उस कार्यका आरम्भ होनेवाला है।

पश्चिममें 'रोमनों'के देवता 'जेनस'का नाम 'गणेश'-नामके समकक्ष है। विश्वकोशोंमें बताया गया है कि जब इटलीवासी या रोमन लोग पूजा करते थे, इसी जेनस-देवताविशेषका नाम सर्वप्रथम लिया करते थे। हमारी कथा वहाँ पहुँची और वहाँ भी श्रीगणेश सर्वप्रथम रहे। आजकल वर्षके प्रथम मासको अंग्रेजीमें 'जनवरी' जेनसकी स्मृतिमें कहते हैं। अठारहवीं शतीके संस्कृतज्ञ विलियम जोन्सने लिखा है कि 'जितनी विशेषताएँ श्रीगणेशमें पायी जाती हैं, वे जेनसमें भी दिखायी देती हैं।'

गोमूल्यं मत्पतिसममिति वेदे निरूपितम्।
गवां लक्षं प्रयच्छामि देहि मत्स्वामिनं द्विज॥
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० ७। ८५)

'एक गौका मूल्य मेरे स्वामीके समान है। मैं आपको एक लाख गौएँ देती हूँ। एक ही गौका मूल्य, भगवान् विष्णु और शिवके समान है। फिर आपको एक लाख गौ लेकर मेरे पतिको देनेमें क्या हानि है? कृपया मेरे पतिको लौटाकर आप एक लाख गायोंको ग्रहण कीजिये।'

परंतु पुरोहित सनत्कुमारने पार्वतीके इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—'देवि! आपने मुझे अमूल्य रत्न दक्षिणामें दिया है, फिर मैं उसके बदले एक लाख गौ कैसे ले सकता हूँ? इन गायोंको लेकर तो मैं और भी झंझटमें फँस जाऊँगा।' तब भगवती माहेश्वरीको बड़ा दुःख हुआ और वे कहने लगीं—'मैंने कैसी मूर्खता की कि पुत्रके लिये मैंने एक वर्षतक 'पुण्यक'-व्रत किया, उसके नियम-पालन करनेमें बहुत कष्ट भोगा; किंतु फल क्या मिला? पुत्र तो मिला ही नहीं, पतिको भी मैं खो बैठी। अब पतिके बिना पुत्र कैसे प्राप्त होगा?'

इसी बीचमें सभी देवताओंने तथा पार्वतीने आकाशसे उतरते हुए एक तेजःपुञ्जको देखा। उसमें इतनी चमक थी कि सबकी आँखें बंद हो गयीं। किंतु पार्वतीजीने उस तेजःपुञ्जके मध्यमें अत्यन्त सुन्दर पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्णको विद्यमान देखा। उनके दर्शनसे भगवती पार्वती का हृदय प्रेमसे भर गया और उन्होंने स्तुति करना आरम्भ किया—

कृष्ण जानासि मां भद्र नाहं त्वां ज्ञातुमीश्वरी।
के वा जानन्ति वेदज्ञा वेदा वा वेदकारकाः॥
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० ७। १०२)

'हे कल्याणनिधे श्रीकृष्ण! आप तो मुझको जानते हैं; परंतु मैं आपको जाननेमें समर्थ नहीं हूँ। केवल मैं ही नहीं, बल्कि वेदको जाननेवाले, अथवा स्वयं वेद भी, अथवा वेदके निर्माता भी आपको जाननेमें समर्थ नहीं हैं।' इस तरह स्तुति करके पार्वतीजीने कहा—

[illegible] पुत्रस्तेन तु किंवा।
[illegible] पुत्रं [illegible] सततम्॥
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० ७। ११५-११६)

'प्रभो! इसलिये मैं आपको [illegible] हूँ। मैं पुत्राभावके दुःखसे दुःखित हूँ [illegible] आपके ही समान पुत्र चाहती हूँ।' उन[illegible] होकर भगवान् श्रीकृष्णने सर्वसाधारणके लि[illegible] मनोहर रूपमें उन्हें दर्शन दिया और [illegible] वरदान देकर वे अन्तर्हित हो गये।

इधर शंकर और भगवती पार्वती—दोनें[illegible] में आकर विश्राम करने लगे। भगवान [illegible] अस्तोन्मुख हो रहे थे, उसी समय कि[illegible] द्वार खटखटाया और पुकारा—'जगत्पित[illegible] जगन्मातः देवि पार्वति! आपलोग उठिये[illegible] रात्रिके उपवासका व्रत किया था, इसलि[illegible] भूखा हूँ। आप जैसे माता-पिताके रहते हुए [illegible] व्याकुल हो रहा हूँ। कृपया शीघ्र आइये और [illegible] देकर मेरी रक्षा कीजिये।'

उसके दीन वचन सुनकर दोनों ही द्वारपर [illegible] उन दोनोंने अत्यन्त वृद्ध, क्षीणकाय, फटे मैले [illegible] हुए एक ब्राह्मणको देखा। देवी पार्वतीने पू[illegible] क्या भोजन करना चाहते हैं?'

ब्राह्मणने कहा—'सुना है, आपने बहुत [illegible] पदार्थ महोत्सवमें ब्राह्मणोंको खिलाये हैं; मुझे [illegible] रबड़ी, तिलके लड्डू, मेवा, मिष्टान्न, हविष्य, [illegible] आदि और इस ऋतुमें होनेवाले फल प्रचुरमात्रामें [illegible] जिससे यह पीठमें सटा हुआ मेरा पेट बाहर नि[illegible] और मैं लम्बोदर हो जाऊँ।' इन वचनोंको कहते ही [illegible] ब्राह्मण अन्तर्हित हो गये। उसी समय आकाशव[illegible] कि 'हे पार्वति! जिसको तुम खोज रही हो, वह तुम्ह[illegible] आ गया है'—

गणेशरूपः श्रीकृष्णः कल्पे कल्पे तदात्मजः
स्वर्गं [illegible] क्षिप्रमि[illegible]।
कृत्वा सार्वत्रिकीं माया बालरूपं विधाय सः।
जगाम पार्वतीतल्पं मन्दिराभ्यन्तरस्थितम्॥
गत्वा [illegible] मिश्रितः स बभूव ह।
ददर्श गेहनिर्माणं मध्ये बालको यथा॥
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० ८। ८१—८

'उस ब्राह्मणरूपधारी भगवान् श्रीकृष्णने अन्तर्[illegible]

म वही—गणेशरूपमें श्रीकृष्ण प्रत्येक कल्पमें आपके बनकर आते हैं। आप शीघ्र भीतर जाकर देखिये।' न् श्रीकृष्ण इतना कहकर बालकका रूप धारणकर मके भीतर बिछी हुई शय्यापर लेट गये। लेटते ही शय्यापर पड़े हुए शिवजीके तेजमें लिप्त हो और उत्पन्न हुए बालकके समान उस घरके शिखरको देखने लगे।'

फिर पार्वतीने उस अत्यन्त सुन्दर बालकको शय्यापर र पटक-पटककर खेलते हुए देखा और प्रेमसे अपनी उठा लिया तथा दूधसे भरे हुए अपने स्तनोंको पिलाया। वर्तपुराणके इन प्रमाणोंसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि शके रूपमें श्रीकृष्ण ही आविर्भूत हुए हैं।

भगवान् शंकरने इनके बल पराक्रम और बुद्धिमत्ताको र इन्हें अपने प्रमथादिगणोंका आधिपत्य दे दिया और नाम उन्होंने 'गणेश' रखा।

गेशजीकी पूजा करनेसे विघ्नोंका नाश हो जाता है—

गणेशपूजने विघ्नं निर्मूलं जगतां भवेत्।
नेर्व्याधिः सूर्यपूजायां शुचिः श्रीविष्णुपूजने॥
(ब्रह्मवैवर्त० गणपति० ६। १००)

किसी कार्यके आरम्भमें भगवान् गणेशजीकी पूजा करनेसे के विघ्न जड़-मूलसे नष्ट हो जाते हैं, सूर्यकी शरीरके रोग दूर हो जाते हैं तथा भगवान् विष्णुकी बाह्य और आभ्यन्तर पवित्रता आती है।'

किसी कार्यमें प्रथम गणेशकी पूजा न करनेसे कार्य-सिद्धिमें विघ्न अवश्य होता है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि समुद्रमन्थनमें गणेशजीकी पूजा पहले नहीं हुई थी, इससे जब दैत्य और देवगण मन्दराचलको ला रहे थे, तब उसके भारसे वे लोग दबकर हताहत हो गये थे; तब विष्णुने अपने अमृतमय करतल-स्पर्शसे उनको पुनरुज्जीवित किया था। पश्चात्, जब वह पर्वत समुद्रमें डाल दिया गया, तब उसमें डूब गया। इससे दैत्य और देवता दोनों हताश हो गये और दोनोंने समझा कि सब किया-कराया चौपट हो गया। इस बातको देखकर भगवान् विष्णुने समझ लिया कि विघ्नराज गणेशजीकी पूजा न करनेसे अप्रसन्न होकर उन्होंने ही विघ्न उपस्थित किया है—

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो
दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसंधिः।
कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार॥
(८। ७। ८)

'उस समय भगवान्ने देखा कि यह तो विघ्नराजकी करतूत है, इसलिये उन्होंने उसके निवारणका उपाय सोचकर अत्यन्त विशाल एवं विचित्र कच्छपका रूप धारण किया और समुद्रके जलमें प्रवेश करके मन्दराचलको ऊपर उठा दिया।' भगवान्की शक्ति अनन्त है। वे सत्यसंकल्प हैं। उनके लिये यह कौन सी बड़ी बात थी।

जैसे भगवान् श्रीकृष्णके नामोच्चारणमात्रसे सभी संकट दूर हो जाते हैं, वैसे ही श्रीगणेशके नामोच्चारणसे सभी बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

श्रीगणेश और 'जेनस'

(लेखक—बा० श्रीविष्णुदयालजी, मारिशस)

वेद-मन्त्रका उच्चारण करनेके पूर्व 'ॐ'का उच्चारण किया जाना अपेक्षित है। इसी भाँति धार्मिक ग्रन्थों और के आरम्भमें श्रीगणेशजीका नाम-स्मरण करनेकी प्रथा है। 'गणेशपुराण'का कथन सही है कि 'गणेशजी ओंकारस्वरूप जब मुहावरेदार भाषाका प्रयोग किया जाता है और किसी कार्यका 'श्रीगणेश' करनेकी चर्चा होती है, तब यही जाता है कि उस कार्यका आरम्भ होनेवाला है।

पश्चिममें 'रोमनों'के देवता 'जेनस'का नाम 'गणेश'-नामके समकक्ष है। विश्वकोषोंमें बताया गया है कि जब इटलवी या रोमन लोग पूजा करते थे, इसी जेनस-देवताविशेषका नाम सर्वप्रथम लिया करते थे। इनकी कथा पहुँची और वहाँ भी श्रीगणेश सर्वप्रथम रहे। आजकल वर्षके प्रथम मासको अंग्रेजोंने 'जनवरी' जेनसकी स्मृतिमें रखा है। अठारहवीं शतीके संस्कृतज्ञ विलियम जोन्सने लिखा है कि 'जितनी विशेषताएँ श्रीगणेशमें पायी जाती हैं, जेनसमें भी दिखायी देती हैं।'

पूर्व केवल—

गर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
(ऋग्वेद १० । १२१ । १)

वेद-मन्त्रानुसार चराचरके अधिपति, आकाश पृथिवीके धर्ता एक ही अद्वैत 'ब्रह्म' है। उसके लिये शब्दका प्रयोग सम्भव नहीं। अतः जब इसमें द्वित्व-त्रित्वकी भावना 'एकोऽहं बहु स्याम्' त् हो गयी, तब सृष्टिमें अनेकरूपता आयी और समष्टि बनने लगी। समूह—समाजका निर्माण हुआ। क समाजोंके समन्वितरूप गणपरगण पनपने लगे। सब गणोंको समन्वित तथा अनुशासित रखनेके एक गणाधिपति गणाध्यक्षकी आवश्यकता अनिवार्य गयी। वही शक्ति गणाधिपति 'गणेश'-पदपर राजमान हो सकती है, जिसमें विशिष्ट गुणोंका समन्वय और जो छिन्न भिन्न विभ्रष्ट गणोंमें समन्वय करा के, जो व्यष्टिके स्वार्थसे समष्टिके स्वार्थको महत्त्व देता है। जो सर्वतन्त्र गणतन्त्रकी भावनासे ओत प्रोत हो, जो भी शक्तियोंको सूत्ररूपमें आत्मसात् कर सके, वही गणेश, गणपति, गणाध्यक्ष, गणनायक बन सकता है। गणपतिमें प्रियपति तथा निधिपतिका भाव-साम्य होना भी अनिवार्य है। अर्थात् 'गणानां पतिः, प्रियाणां पतिः, निधीनां पतिः' ब्रह्मस्वरूप 'गणेश' सदा-सर्वदा पूज्य हैं। गणपति-पूजनका सर्वप्रसिद्ध यजुर्वेदका मन्त्र भी यही भाव करता है कि गणेशमूर्ति निर्गुण ब्रह्म-उपासनाका प्रतीक है—

'ॐ गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे। निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥'
(२३ । १९)

'सर्वेश! तुम मेरे वसु (परम धन) हो; तुम ही समस्त अभीष्ट शक्तियोंके दाता हो; सम्पूर्ण ऋद्धि सिद्धि-आदि गुणोंके अधिपति हो; सभी आपत्तियोंको, विघ्न-बाधाओंको नष्ट करनेकी शक्ति तुममें है; अतः तुम प्रिय ही नहीं, प्रियपति हो; हम सब गण आपका आवाहन-पूजन करते हैं।' इस मन्त्रमें 'हवामहे' बहुवचनकी क्रिया है, जो गणात्मक भावका प्रतीक है। इसमें सभी गण अपने गणनायकका आवाहन करते हैं। मैं जन्म मरणके चक्रमें हूँ और तुम (मा त्वमजासि गर्भधम्) जन्मरहित हो, अर्थात् अजन्मा, अजर, अमर, अनादि, अनन्त, व्यापक परब्रह्म तुम ही हो। तुम सबके बीजरूप हो, तुम सभी रहस्योंके ज्ञाता हो, तुम्हारा मङ्गलकरण विघ्नहरण स्वरूप सर्वोपरि है। तुम्हें बारंबार शतशः नमस्कार है—

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो
नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः।
नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो
नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः॥
(यजुर्वेद १६ । २५)

गणेशजीको 'भूतगणादिसेवितम्' कहा गया है। इसकी व्याख्यामें शिव-गण—भूत प्रेत, पिशाच, बेताल, कूष्माण्ड, भैरव आदि ही गण शब्दसे ग्राह्य नहीं हैं, बल्कि व्यापक दृष्टिकोणसे अध्यात्मगण (मन बुद्धि-चित्त-अहङ्कारादि), अधिदैवतगण (सूर्य चन्द्र-अग्नि-वरुण-वाय्वादि) और अधिभूतगण (पृथिवी-जल-तेज-वायु-आकाशादि) भी ग्राह्य हैं। गणेशरूपमें उपास्य देवतामें सत्त्वगुणकी ही प्रधानता है। सत्त्व-गुणोदय होनेपर कर्तृत्व अभिमान सर्वथा लुप्त हो जाता है। ऐसी दशामें विघ्न-बाधाओंका नाश ही नहीं होता, बल्कि उनका अत्यन्ताभाव भी हो जाता है। जब हृदयमें सत्त्वभावका उद्रेक होता है, तब अन्तर्यामी देवाधिदेव ही सब कुछ कर्ता-धर्ता है, वह ही मन-बुद्धिमें बैठकर सङ्कल्प-विकल्प एवं निश्चयात्मक क्रिया-कलाप चला रहा है। 'वही कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रियमें गतिदाता है। हमारा अपना कर्तृत्व तो आटेमें नमकके बराबर भी नहीं है'। भाव जागता है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥
(गीता ३ । २७-२८)

"वस्तुतः सम्पूर्ण कर्म प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये जाते हैं; परंतु अहंकारी विमूढात्मा 'मैं ही हूँ'—ऐसा मान लेता है। इसके विपरीत विद्वान् पुरुष 'मैं कुछ नहीं करता'—ऐसा मानकर आसक्त नहीं होता।" ऐसे सत्त्व-

[illegible] अजित (अंग्रेजी) [illegible] रहता है और [illegible] जाती है।

जहाँ [illegible] है, जहाँ [illegible] है [illegible] रहती है। [illegible] जाता है।

[illegible]

अग्रपूज्य श्रीगणेश

(लेखक—डा० श्री[illegible] त्रिपाठी, एम० ए०, डी० लिट्०)

हिंदू-धर्मकी कुछ ऐसी विलक्षणता है कि जहाँ उसका ज्ञानकाण्ड 'एकमेवाद्वितीयम्'—जगत्में एक ही सत्ता ब्रह्म ईश्वरकी है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है—'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। (श्वेताश्वतरोपनिषद् ५ । १०)—एक ही देवता सभी जीवोंमें छिपा हुआ है। वह सर्वव्यापी तथा सभी जीवोंका अन्तरात्मा है।' आदि अद्वैतवादी सिद्धान्तोंका उद्घोष करता है, वहाँ उसका कर्मकाण्ड अनेक देवताओंके अस्तित्व, उनकी पूजा एवं अर्चनाकी अवश्यकर्तव्यताके विधानपर आधारित है।

यदि अनेक देवी देवताओंके अस्तित्वपर विश्वास होगा तथा उनकी पूजा-अर्चा भी करणीय होगी तो स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि उनमें सर्वप्रथम किसकी पूजा की जाय। एक बार देवताओंमें स्वतः इस बातपर विवाद उत्पन्न हुआ कि हम सब लोगोंमें अग्रपूजाका अधिकारी कौन है? जब पारस्परिक वार्तालापसे इस प्रश्नका निर्णय न हो सका, तब सर्वसम्मतिसे सभी देवता भगवान् शंकरके पास गये तथा उनसे प्रार्थना की कि 'भगवन्! आप ही इस बातका निर्णय कर दीजिये कि हमलोगोंमें अग्रपूजाका अधिकारी अर्थात् सर्वश्रेष्ठ कौन है?' भगवान् शंकरने यदि यादृच्छिक रूपसे इस प्रश्नका सीधा उत्तर दे दिया होता तो सम्भव है कि किसी किसीको अपनी योग्यता एवं शक्तिका अधिक मूल्याङ्कन करनेके कारण उनपर पक्षपातका दोष प्रतीत होता। ऐसे लोग भगवान् शंकरके निर्णयसे संतुष्ट न होते। अतः उन्होंने एक ऐसा उपाय निकाला, जिससे देवताओंको स्वतः इस बातका बोध हो जाय कि उनमें सर्वश्रेष्ठ कौन है?

उन्होंने कहा—'आप सब लोग अपने-अपने वाहन एक साथ छोड़िये तथा पूरे विश्वकी परिक्रमा करके लौट आइये। जो मेरे पास सबसे पहले पहुँचे, उसे अग्रपूजाका अधिकारी समझा जायगा।' बस [illegible] भगवान् शंकरके ऐसा कहते ही इन्द्र अपने [illegible] कार्तिकेय अपने मयूरपर तथा अन्य सभी देवता अपने वाहनोंपर विश्वकी परिक्रमा करने दौड़ पड़े।

श्रीगणेशजीका वाहन चूहा माना गया है। [illegible] सोचा—'ऐसे वाहनके बलपर इस प्रतियोगितामें [illegible] तथा उसमें सफलता प्राप्त करना तो असम्भव है, किंतु [illegible] शंकर परमात्मा हैं। वे विश्वात्मा हैं। सारा संसार उन्हींमें है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद् [illegible]) अर्थात् यह सब कुछ ब्रह्म ही है', 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' (यजुर्वेद ३१ । २) अर्थात् उस ब्रह्म या परमात्माके एक ही [illegible] में यह सारा संसार है।' 'मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति' (गीता ७ । ७), अर्थात् मेरे (भगवान्‌के) अतिरिक्त दूसरा [illegible] कुछ नहीं है, इत्यादि। अतः भगवान् शंकरकी परिक्रमा [illegible] लेनेसे ही विश्वकी परिक्रमा हो जायगी।'—ऐसा सोचकर उन्होंने अपने मूषकवाहनसे ही भगवान् शंकरकी परिक्रमा कर ली तथा निश्चिन्त होकर बैठे। बहुत देर बाद धीरे-धीरे अन्य देवताओंका भी प्रत्यावर्तन प्रारम्भ हुआ। किंतु तबतक इधर खेल समाप्त हो चुका था। भगवान् शंकरके निर्णयके अनुसार विजयश्री गणेशजीके हाथ लगी। तबसे वे अग्रपूजाके अधिकारी मान लिये [illegible]

मनसे यह भी निर्विवाद सिद्ध होता है कि बुद्धिमान् ही होती है, केवल शक्तिशाली एवं नहीं। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासने गणेशजी- विनयमें उन्हें 'मोदक-प्रिय मुद मंगल-दाता। द्धि-विधाता॥' कहा है। उपर्युक्त उपाख्यानसे मत्ता एवं विद्वत्ता तो सिद्ध हो ही जाती है, द्धिमान् व्यक्ति ही सफल होता है तथा सफलता) एवं मङ्गलमयताका कारण होती है। (प्रसन्नता एवं मङ्गलमयता) का प्रतीक है।

यह एक प्राचीन आस्था है कि जैसा इस ही समस्त विश्वमें है—'यथा पिण्डे तथा जिन तत्त्वोंके समावेशसे इस शरीर एवं आध्यात्मिक सत्ताओंका निर्माण हुआ है, इस समस्त विश्वका भी निर्माण हुआ है। द्ध होता है कि समस्त विश्वकी जो तार्किक बनावट इस शरीरमें भी है।

उपर्युक्त आस्थाका एक परिणाम यह क पौराणिक उपाख्यानों, भौतिक घटनाओं या सामान्य दृष्टिसे भी सम्भव है तथा से भी। उदाहरणार्थ, पुराणोंके अनुसार स्नान करनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता। संगमका अर्थ 'प्रयागमें स्थित गङ्गा, यमुना संगमसे ही है।' किंतु कुछ योगनिष्ठ कथन है कि जिस संगमपर स्नान करनेसे, ध्यात्मिक अर्थमें अवगाहन करनेसे पुनर्जन्म अरुमध्यपर स्थित इडा, पिङ्गला एवं है। मैं यह नहीं कहता कि उपर्युक्त दोनों कोई एक सत्यसे निकट तथा दूसरी उससे मेरा अभिप्राय इतना ही है कि कुछ पौराणिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही

स्वामी हैं। पौराणिक व्याख्याके अनुसार वे भगवान् शङ्करके भूतोंके स्वामी माने गये हैं। प्रथम—आध्यात्मिक व्याख्याके अनुसार मैं गणेशजीको राग-द्वेषादिरहित शुद्ध मनका प्रतीक मानता हूँ। यह मत प्रायः सभी भारतीय दर्शनोंके अनुसार पाँच ज्ञानेन्द्रिय एवं पाँच कर्मेन्द्रिय—इन दस इन्द्रियोंके समुदायका स्वामी माना जाता है। अतः इस व्याख्याके अनुसार गणेशका अर्थ हुआ—दस इन्द्रियोंके समुदायका स्वामी। ऐसे गणेशजीकी अग्रपूजा अर्थात् उपासनाका महत्त्व वेदोंमें भी स्वीकार किया गया है 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' (यजुर्वेद, अ० ३४), 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः (ब्रह्मबिन्दु उप० २)।'

पूर्व उपासनाद्वारा मनके शुद्ध एवं समाहित हुए बिना शुद्ध-बुद्धिस्वरूपा पार्वती देवी (अर्थात् ब्रह्मविद्या) का आविर्भाव नहीं हो सकता (केनोप० ३। १२) इससे जगज्जननी माता पार्वतीको ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी स्वीकार करनेका स्वारस्य स्पष्ट हो जाता है, यदि हम नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप आत्मा—ब्रह्म एवं शंकरमें कोई भेद न मानें। उपनिषदों एवं गीता आदिमें भी इनमें कोई तात्त्विक भेद स्वीकार नहीं किया गया है।

माता पार्वतीको ब्रह्मविद्याका प्रतीक केनोपनिषद्के यक्षोपाख्यानकी व्याख्यामें स्वामी शङ्कराचार्यने भी माना है।

इस प्रकार भगवान् शंकरकी कृपासे ज्ञान प्राप्तकर जीवनका चरम लक्ष्य—मोक्ष प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मविद्या-स्वरूपिणी उमा, पार्वती (केनोपनिषद्‌में 'उमा हैमवती')-का आविर्भाव आवश्यक है तथा उसके लिये शिवसंकल्प, रागद्वेषादिरहित शुद्ध मनःस्वरूपी गणेशजीकी अग्रपूजा अर्थात् उपासनाकी आवश्यकता पड़ती है।

(२) दूसरी आध्यात्मिक व्याख्या यौगिक है। योगशास्त्रकी मान्यताके अनुसार मेरुदण्डके भीतर सुषुम्ना-नामकी एक अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ी है, जो गुदा एवं उपस्थके बीच कुछ ऊपरसे लगी हुई मस्तकतक चली गयी है। इस नाड़ीके बायें दायेंसे लगी हुई इडा एवं पिङ्गला नामकी दो नाड़ियाँ एक दूसरेसे लिपटी। दिखने ? चलती हुई कुछ स्थानोंपर एक दूसरेका आलिङ्गन करती हैं। इन स्थानोंको चक्र कहते हैं। ये चक्र संख्यामें छः हैं, जिनके नाम हैं—(१) मूलाधार, (२) स्वाधिष्ठान, (३) मणिपूर,

(४) अनाहत, (५) विशुद्ध, (६) आज्ञा एवं (७) सहस्रार। इन चक्रोंपर ध्यान करते करते योगियोंको विलक्षण रंग रूपके विकसित कमल दीख पड़ते हैं। इन कमलोंके दलोंकी संख्या तथा उनका रंग आदि भिन्न भिन्न होते हैं तथा प्रत्येक दलपर किसी न किसी बीजाक्षरका तथा उस चक्रपर उसके अधिष्ठातृ देवताका जीवन्त दर्शन होता है। उदाहरणार्थ, मूलाधारचक्रका रंग पीला, दलोंकी संख्या चार तथा उसके अधिष्ठाता देवता स्वयं गणेशजी हैं।

जिस तरह श्रीरामचन्द्रजीके मन्दिरमें द्वारपर स्थित श्रीहनुमान् जिके दर्शन वन्दनके उपरान्त ही
विग्रहका दर्शन-वन्दन करना चाहिये, अन्यथा
अतिक्रमण अपमानके दोषका भागी बनना पड़
पहले मूलाधार चक्रपर श्रीगणेशजीका दर्शन
करनेके उपरान्त ही आगे बढ़नेका अधिकार
क्रमशः आगे बढ़ते हुए आपको विभिन्न च
देवताओंके दर्शन होंगे। इस व्याख्याके अनु
श्रीगणेशजीका दर्शन एवं नमस्कार आदि
अनिवार्य हो जाती है।

श्रीगणेशजीकी अग्रपूजाका रहस्य

(लेखक—श्रीश्रीराम माधव चिंगले एम्० ए०)

'शुभाशुभे वैदिकलौकिके वा स्वमर्चनीयः प्रथमं प्रयत्नात्।'

पुण्यभू भारतवर्षमें अनादिकालसे अनेक देवी देवताओंकी उपासना चली आ रही है। एकत्वमें अनेकत्व और अनेकत्वमें एकत्व-दर्शन यह भारतीय संस्कृतिकी विशेषता रही है। 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'—यह ऋग्वेद-वचन (१ । १६४ । ४६) इस विषयमें प्रमाण है। एक ही परात्पर परब्रह्म अनन्त नाम रूपात्मक सृष्टिकी रचनामें अनेकानेक रूप धारण कर लेते हैं। इनमेंसे अनेक रूप सृष्टिकी नियामक शक्तियोंके रूपमें प्रकट होते हैं। इन्हींको 'देवता' कहा जाता है। यद्यपि इनका निरुपाधिक तात्त्विक स्वरूप एक ही है, तथापि त्रिगुणात्मक उपाधिभेदसे इनके सृष्टिकालीन व्यावहारिक रूप और अधिकार भिन्न भिन्न हो जाते हैं। इन बातोंको ध्यानमें रखते हुए हमें प्रस्तुत स्थलमें श्रीगणेशजीका स्वरूप, उनका विशिष्ट अधिकार और उनकी अग्रपूजाका रहस्य समझना है।

श्रीगणेशजी अन्य देवताओंकी अपेक्षा अपनी ऐसी अनेसी विशेषता रखते हैं, जो अन्य देवी देवताओंमें नहीं पायी जाती। ध्यान रहे, हमारा उद्देश्य अन्य देवताओंका महत्त्व कम बतलानेका न होकर केवल श्रीगणेशजीकी उक्त विशेषताका रहस्य प्रकट करनेका है। श्रीगणेशजीकी यह विशेषता है—उनकी अग्रपूजाका अधिकार। सभी लौकिक तथा धार्मिक कार्योंका प्रारम्भ श्रीगणेशजीके स्मरण तथा पूजनपूर्वक होता है। विशेषता तो यह है कि देव दानव, मनुष्य गन्धर्व तथा शैव-वैष्णव आदि सभीसे उन्हें यह सम्मान प्राप्त है। प्राचीन परम्पराके अनुसार बालककी विद्याका प्रारम्भ ' '—

इन श्रीगणेश वन्दनात्मक पदोंसे होता है।
लेखादिका प्रारम्भ 'श्री'-पूर्वक होता है।
अमङ्गलका द्योतक समझा जाता है। यह 'श्री
नमः' का ही संक्षिप्त रूप है। ये सब बातें प्र
अनुसरण करके की जाती हैं। किंतु जो
शास्त्रीय रहस्य समझकर की जाती है, वह अधि
होती है और उसीमें सच्ची एवं स्थायी श्रद्धा उत
इसी आशयसे छान्दोग्य श्रुति (१ । १ । १०)
'यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदे
भवति।' यही रहस्य हमें यहाँ विशद रूपसे बत

श्रीगणेशजीकी अग्रपूजाके मूलमें गहरा
है। इसका अनुभव हम अपने दैनन्दिन जीवनमें
हैं। किसी भी कार्यसिद्धिके लिये समुचित
जुटानी पड़ती है। किंतु कई बार अनुभवमें यह
लौकिक प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा होनेपर भी ऐन मौकेपर
कोई विघ्न-बाधा उपस्थित हो जाती है और बना
बिगड़ जाता है; सारे प्रयत्नोंपर पानी फिरकर
हो जाता है। इस विघ्न-बाधाको शास्त्रीय परिभाषामें
कहा गया है। कार्य सिद्धिके हेतु कारण सामग्रीमें
प्रकारके प्रतिबन्धकका न होना—प्रतिबन्धकाभा
एक महत्त्वका घटक माना गया है। इसी आशयसे
करता है—

'[illegible] कार्यत्वावच्छिन्नं प्रति प्रतिबन्धक
भावत्वावच्छिन्नस्य कारणत्वमिति नियमः।'

ीअरूपसे पूर्ण हो गया ।। इसके साथ एक और
ी कार्यमें प्रतिबन्धक उत्पन्न न होकर उसका
तैसे पूरा होना एक बात है, किंतु उज्ज्वल
सफलताके साथ उस कामका पूरा होना
सरली बात दोषाभावरूप है तो दूसरी गुणा-
ी भी कार्यके करते समय मनुष्य यह दोहरी

। है कि उसका अङ्गीकृत कार्य निर्विघ्नरूपसे
ही वह भलीभाँति सफल होकर यशःप्रदायक
ी यह इच्छा स्वाभाविक है। अतएव वह
ई कसर नहीं उठा रखता । किंतु मानवके
क कारणोंसे ज्ञात-अज्ञात, लौकिक-अलौकिक,
प्रकारकी मर्यादाओंसे ग्रस्त होते हैं। कार्या-
। आकलन मनुष्यकी शक्तिके बाहरकी बात
तीन्द्रिय एवं अलौकिक ज्ञानका विषय होनेके
मन और वचन यहाँ कुण्ठित हो जाते हैं।
अभीष्ट सिद्धिके लिये वह शास्त्रैकशरण होकर
इता है। प्रातिभ आर्षज्ञानसे सम्पन्न होनेके
ालज्ञ ऋषि-मुनियोंने जनसाधारणके कल्याणार्थ
तथा शास्त्रोंमें इन बातोंका रहस्य प्रकट किया
ाण्ड एक महत्त्वका विषय है। सृष्टिके
परमात्माकी अनेक शक्तियाँ अनेक रूपोंमें
हैं। यथा—सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति तथा
ब्रह्मा, विष्णु, महेशद्वारा होते हैं। इन

कार्य
होनेके

आपके चरण-कमलोंके स्मरणमात्रसे विघ्न-समुदाय इस प्रकार नष्ट होते हैं, जिस प्रकार सूर्यके सामने घनान्धकार—

> स जयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम् ।
> वासरमणिरिव तमसां राशीन्नाशयति विघ्नानाम् ॥

समस्त मङ्गलोंके निधान, प्रत्यक्ष मङ्गलमूर्ति होनेके कारण आपमें स्वभक्तोंका मङ्गल करनेकी भी महान् शक्ति विद्यमान है—

> यन्मङ्गलं सर्वजनेषु देव सयक्षविद्याधरपन्नगेषु ।
> तस्येश्वरो मङ्गलमूर्तितां त्वं गतो यतो मङ्गलकृत् स्वभक्ते॥

कोई आश्चर्य नहीं कि आपके इस विशिष्ट महत्त्वपूर्ण अधिकारके कारण आपने देवासुर मानवोंद्वारा अग्रपूजाका सम्मान प्राप्त किया हो—

> अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः ।
> सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः ॥

यद्यपि सभी देवता अनेक शक्तियोंसे सम्पन्न हैं, तथापि विशिष्ट कार्यके लिये उन्हें विशिष्ट अधिकार और शक्तिसे सम्पन्न देवताओंका स्मरण और पूजन करना पड़ता है। इस कारण इन्हें कोई न्यूनत्व नहीं प्राप्त होता; क्योंकि यह बात सृष्टिकी सुचारु व्यवस्थाके लिये आवश्यक है। उदाहरणार्थ, किसी भी देशके राजा, अध्यक्ष या प्रधान मन्त्रीका शासनमें सर्वोपरि महत्त्व होता है, तथापि वह स्वयं सीधे खजानेमेंसे चाहे जब और चाहे जितना द्रव्य नहीं ले सकता। उसे नियमानुसार अर्थमन्त्री तथा कोषाध्यक्षके द्वारा ही यह काम ... है। देशकी रक्षाके लिये उसे सेनापतिसे हो ... है। यही कारण है कि श्रीराम-कृष्ण आदि ... भी सन्ध्या-वन्दनादि नित्यकर्म करते ... । भगवत्पूज्यपाद श्रीशंकराचार्य-जैसे अवतार- ... भी इस एक निर्धन भक्तकी आर्थिक ... 'कनकधारास्तोत्र'द्वारा श्रीलक्ष्मीजीकी स्तुति ... । इसी न्यायसे असुर, देव एवं मानव—सभी ... निर्विघ्न तथा सुमङ्गलयुक्त समाप्तिके लिये ... श्रीगणेशजीका विधिवत् स्मरण-पूजन ... ही

... है ... एक आपाततः

…जीके ओंकारका व्यक्त स्वरूप कहा गया है। …भक्त चतुर्थीका मत करते हैं। यह मत श्रीगणेशजीके …रूपकी ओर संकेत करता है। श्रीगणेशजीके पवित्र …के अङ्ग-प्रत्यङ्ग, उनका मूषक वाहन, उनकी …के विभिन्न उपकरणादि प्रतीकरूप हैं। उनमें गहरा … अर्थ भरा हुआ है।

…की बात तो यह है कि पाश्चात्य देशोंके विधर्मी लोग …कोपासनाके रहस्यको यथार्थरूपमें समझते हैं; किंतु …मारे देशवाले इस विषयमें अनेक भ्रान्त धारणाएँ …ये हैं। एलिस गेटीने श्रीगणेशजीपर एक पुस्तक …। प्रस्तुत संदर्भमें उसका निम्न अवतरण द्रष्टव्य है—

"…t we are incapable of judging the …eption of an eastern mind, seems …d when a writer looks upon the …sentation of the Elephant-faced god … amusement rather than with …rehension."—('Parmentier quoted by … Getty in 'Gaņeśa', p. 87)

…सका अर्थ यह है कि 'प्राच्य बुद्धिकी कल्पनाको …में हम असमर्थ हैं। इसका प्रमाण यह है कि …ननदेवके बाह्य स्वरूपका हम सम्यक् आकलन न …उसे मनोविनोदका विषय बना लेते हैं।'

…गणेशजी ओंकारस्वरूप परब्रह्म होनेके साथ ही …अधिष्ठाता देव भी हैं। स्वयं असाधारण युक्ति-बुद्धिसे …होनेके कारण वे अपने भक्तोंको सद्बुद्धि प्रदान करते …नवकी बुद्धि अनादि अज्ञानके कारण रजतम आदि … मलिन होती है। भगवदुपासनासे उसके ये दोष दूर … उसे सद्विचारोंकी प्रेरणा मिलती है। भगवान्से …पापपरायण लोगोंकी बुद्धि उन्हें विनाशकी ओर ले …—'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।' (गीता २। ६३) …मी तुलसीदासजी कहते हैं—'राम बिमुख सपनेहुँ …हीं॥' बुद्धिगत दोषोंके कारण मनुष्यकी स्वाभाविक … भी कुण्ठित हो जाती हैं। भगवदुपासनासे ये दोष …र वे ज्ञानसम्पन्न तथा वीर्ययुक्त हो जाती हैं—

…यः कुण्ठिताः सर्वाः स्मरणेन त्वया प्रभो।
…युक्ताः स्ववीर्याश्च कृता विघ्नेश ते नमः॥

…द्ध्यधीनं जगत्सर्वम्' अर्थात् सारा जगत् बुद्धिके …। इसी आशयसे 'न्यायशास्त्र' कहता है—

'सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानम्।'

'हमारे सारे भले-बुरे व्यवहार हमारी बुद्धि यानी ज्ञानके ही अधीन होते हैं।' हमारी सारी इच्छाएँ, भावनाएँ, क्रियाएँ और मूल्य ज्ञानाधीन ही होते हैं। जैसा जिसका ज्ञान, वैसा ही उसका व्यवहार होता है और इस ज्ञानके बदलते ही मनुष्यके सम्पूर्ण व्यवहार बदल जाते हैं। इसके साथ ही स्वयं मनुष्य भी आमूलाग्र बदल जाता है। नारदजीके यथार्थ ज्ञानोपदेशसे सदोषज्ञानयुक्त कुख्यात महाभयंकर लुटेरेका हृदय-परिवर्तन होकर उसका जगद्वन्द्य महर्षि वाल्मीकिमें रूपान्तर हो गया—

'उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥'

(मानस २। १९४। ४)

ज्ञान या बुद्धि एक महान् शक्ति है—

'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।'

इसी अर्थका अंग्रेजी वचन है—'Knowledge is Power.' ग्रीसदेशीय दार्शनिक सुकरात कहा करता था कि 'ज्ञान ही सद्गुण है—'Knowledge is virtue'. समस्त दुर्गुण अज्ञानमें ही पनपते हैं। अज्ञान ही मनुष्यका सबसे बड़ा शत्रु है—'एकः शत्रुर्न द्वितीयोऽस्ति शत्रुरज्ञानतुल्यः पुरुषस्य राजन्।' इन्हीं सारी बातोंको ध्यानमें रखते हुए हमारे परमर्षियोंने श्रीभगवान्से अज्ञान दूर करनेके लिये, बुद्धि शुद्ध करनेके लिये तथा उसे शुभ प्रेरणा देनेके लिये अनेक मन्त्रों तथा प्रार्थनाओंका विधान किया है। इसीलिये कार्यारम्भसे पूर्व सद्बुद्धिदाता श्रीगणेशजीके स्मरण तथा पूजनका विधान महत्त्वपूर्ण है। हमारे शास्त्रकारोंने ठीक ही कहा है कि 'देवता पशुपालकी भाँति मनुष्योंके पीछे डंडा लेकर नहीं घूमते; वे मनुष्यके कर्मानुसार उसे विशिष्ट बुद्धिसे युक्त कर देते हैं। इसलिये उन्हें वैषम्य-नैर्घृण्यके दोष नहीं लग पाते।'

ध्यान रहे, मानवी बुद्धि अनेक प्रकारकी मर्यादाओंसे ग्रस्त है। मनुष्यका ज्ञान इतना सीमित होता है कि उसे एक साधारण-सी दीवारकी ओटमें क्या है अथवा अगले क्षण क्या होगा, इसका पता नहीं होता। किंतु उसका अहंकार इतना प्रबल होता है कि वह अपने-आपको जरा-से ज्ञानके बलपर सर्वज्ञ समझने लगता है और बड़ी-बड़ी डींगें हाँकने लगता है। यह अहंकार

मनुष्यका प्रबल शत्रु है, जो पूर्णतया विनाश पूर्ण किये बिना नहीं रहती। इसके वैदिक तथा लौकिक अनेक उदाहरण प्रसिद्ध हैं। केनोपनिषद्में इस विषयकी एक सुन्दर कथा है। परात्पर परब्रह्मकी शक्ति पाकर देवताओंने दानवोंपर विजय प्राप्त की। इस विजयसे वे फूल उठे और परब्रह्मकी कृपाको भूलकर अहंकारसे मत्त होकर अपनी ही शक्तिको इस विजयका कारण समझने लगे। इस अहंकारमें देवताओंके विनाशका बीज देखकर परब्रह्मने उनके इस अहंकारको दूर करनेका निश्चय किया। उन्होंने देवताओंके सामने प्रकट होकर उनके सामर्थ्यकी परीक्षा ली और उन्हें दिखला दिया कि वे अपना पूर्ण बल आजमानेपर भी एक जरासे तिनकेको न तो जला सकते हैं और न टस-से-मस कर सकते हैं। इतिहास-पुराणादिमें भी इस प्रकारके अनेक उदाहरण पाये जाते हैं।

मानवीय इतिहासमें इस अहंकारके चूर्ण होनेका सुप्रसिद्ध उदाहरण अंग्रेजोंद्वारा निर्मित टिटैनिक (Titanic) नामक जहाजका है। अपने समयका यह सबसे बड़ा जहाज था और सब प्रकारकी सुविधाओंसे तथा आमोद-प्रमोदके साधनोंसे युक्त था। इसके निर्माताओंका दावा था कि बड़े-से-बड़ा तूफान भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता; किंतु हा हन्त! इसकी पहली यात्रामें ही १५ अप्रैल, सन् १९१२ की कालरात्रिमें, जब कि उसके बड़े-बड़े शाही मुसाफिर आमोद-प्रमोद आदिमें मग्न थे, वह एक प्रचण्ड हिमशिलासे टकराया और लगभग डेढ़ हजार गण्यमान्य मुसाफिरोंके साथ देखते-देखते [illegible] और अभी कल ही से हुआ इसके निर्माता[illegible]

इससे अधिक ताजी घटना है, [illegible] की। युद्ध हो गया पूर्ण [illegible] तब उसकी सुरक्षाके लिये दुर्भिक्षको [illegible] इसके फलस्वरूप यह दुर्घटना सुरक्षित [illegible] गया। इसी प्रकारके अहंकार [illegible] अहंवादके समर्थक हिटलरवादी [illegible] कालकवलित हुए। ये दोनों घटनाएँ [illegible] भोगी लोगोंकी है।

इन्हीं सारी बातोंपर विचार करके हमारे [illegible] परमर्षियोंने संकट और दुःखोंके प्राणभक्षक[illegible] और सब प्रकारकी मङ्गल-सिद्धिके लिये विघ्नहर्ता [illegible] बुद्धिदाता, बुद्धि सिद्धि-पति श्रीगणेशजीके [illegible] विधान किया है। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी [illegible] कहते हैं—

> गाइये गनपति जगबंदन।
> संकर-सुवन भवानी-नन्दन॥
> सिद्धि-सदन, गज-बदन बिनायक।
> कृपा-सिंधु, सुंदर सब लायक॥
> मोदकप्रिय मुद मंगलदाता।
> बिद्या-बारिधि, बुद्धि-बिधाता॥
> माँगत तुलसिदास कर जोरे।
> बसहिं राम-सिय मानस मोरे॥
>
> (विनय[illegible]

वन्दना

पिता पञ्च-आनन हैं, अग्रज षडानन हैं,
स्वयं गज-आनन हैं, संकट निवारते।
गिरिजा के नन्दन हैं, पूज्य जग-वन्दन हैं,
भक्त-उर-चन्दन हैं, ऋद्धि-सिद्धि धारते॥
मङ्गल-विधायक हैं, बुद्धि के प्रदायक हैं,
महागण-नायक हैं, विघ्न-व्यूह टारते।
मोद को बढ़ाते, भक्त मोदक चढ़ाते,
शुण्ड-दण्ड से उठाते, मुख-मण्डल में धारते॥

—गोपीनाथ उपाध्याय

गीतामें भी 'अनन्याश्चिन्तयन्तो……योगक्षेमं (९ । २२) आदि वाक्योंद्वारा मिलती है।

—

जैसे चावलको घास-भूस आदिसे शुद्ध करके भोजन बनाता है, उसी प्रकार भगवान् गणेशजी भी भक्तोंके अज्ञानरूप धूलिको उड़ाकर ज्ञान-दान करते नेनावृतं ज्ञानम्' (गीता ५ । १५)। मायासे आवृत साधकको नहीं मिलता। इसलिये मायाको हटाकर कार करानेका संकेत 'शूर्पकर्ण' देते हैं—

युक्तं यथा धान्यं रजोहीनं करोति च।
सर्वनराणां वै योग्यं भोजनकमन्यथा ॥
मायाविकारेण युतं ब्रह्म न लभ्यते।
कोपासनकं तस्य शूर्पकर्णस्य सुन्दरि ॥
कर्णं समाश्रित्य त्यक्त्वा मलविकारकम्।
व नरजातिस्थो भवेत्तेन तथा स्मृतः ॥

पवीत तथा सिरपर चन्द्रमा—

यज्ञोपवीत कुण्डलिनीका संकेत है तथा सिरपर चन्द्रमा ऊपर स्थित अमृतवर्षक चन्द्रमाका प्रतीक है।

मूषकवाहन—

भक्तोंके हृदयोंमें चोरकी तरह छिपे रहकर सभी मनुष्योंको चलानेका संकेत मूषकसे प्राप्त होता है—

द्वन्द्वं धरसि भक्तानां तेषां हृदि समास्थितः।
चोरवत्तेन तेऽभूद्वै…………………… ॥
मूष स्तेये तथा धातुः……………… ।
ईश्वरः सर्वभोक्ता च चोरवत्तत्र संस्थितः ॥
स एव मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः।

ईश्वरके समस्त भूतोंके हृदयोंमें छिपे रहनेकी बात सिद्ध है, जो गीतोक्त भी है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥
(१८ । ६१)

इससे भी सिद्ध होता है कि गणेशजी श्रीकृष्णसे अभिन्न हैं।

श्रीगणेशजीके अवतार—

श्रीगणेशजीके अवतार असंख्य होनेपर भी उनमें आठ बहुत प्रसिद्ध हैं। स्थानाभावके कारण उनका केवल उल्लेखमात्र किया जाता है—

(१) वक्रतुण्ड—जो सिंहवाहन तथा मत्सरासुरके हन्ता हैं।

(२) एकदन्त—जो मूषकवाहन तथा मदासुरके हन्ता हैं।

(३) महोदर—जो मूषकवाहन, ज्ञानदाता तथा मोहासुरके नाशक हैं।

(४) गजानन—जो मूषकवाहन, सांख्योंको सिद्धि देनेवाले एवं लोभासुरके हन्ता हैं।

(५) लम्बोदर—जो मूषकवाहन तथा क्रोधासुरके हन्ता हैं।

(६) विकट—जो मयूरवाहन तथा कामासुरके हन्ता हैं।

(७) विघ्नराज—जो शेषवाहन और ममासुरके मर्दता हैं।

(८) धूम्रवर्ण—जो मूषकवाहन और अहंतासुरके हन्ता हैं।

इन अवतारों तथा इनके द्वारा मारे गये असुरोंके बारेमें विवेचन करके देखें तो मत्सर, मद, मोह, लोभ, क्रोध, काम, ममता तथा अहंतारूप अन्तःशत्रुओंका ही संकेत करते हैं। साधकके अरिष्टका नाश करके परमपद प्राप्ति करनेका संकेत उनकी अवतार-लीलाओंमें ज्ञात होता है।

युगभेदसे गणेशके विभिन्न रूपोंका ध्यान—

कृतयुगमें-सिंहारूढ, दशबाहु, तेजोरूप तथा कश्यपके सुत श्रीगणेशजीका ध्यान करना चाहिये।

त्रेतायुगमें-मयूरवाहन, षड्भुज, शुक्लवर्ण तथा शिवपुत्र श्रीगणेशजीका ध्यान करे।

द्वापरमें-मूषकारूढ, चतुर्भुज, रक्तवर्ण तथा वरेण्य सुतके रूपमें श्रीगणेशजीका ध्यान करे।

कलियुगमें-धूम्रवर्ण, द्विबाहु तथा सर्वभावकके रूपमें श्रीगणपतिका ध्यान करके उनकी उपासना विहित है। यही बात गणेशपुराणके निम्नलिखित ध्यानमें सूचित है—

ध्यायेत् सिंहगतं विनायकममुं दिग्बाहुमाद्ये युगे
त्रेतायां तु मयूरवाहनममुं षड्बाहुकं सिद्धिदम्।
द्वापारे तु गजाननं युगभुजं रक्ताङ्गरागं विभुं
तुर्ये तु द्विभुजं सिताङ्गरुचिरं सर्वार्थदं सर्वदा ॥

बारह महीनोंमें गणेशजीकी उपासना—

चैत्र मासमें 'वासुदेव' रूपी गणेशजीकी उपासना करके सुवर्ण दक्षिणा देनी चाहिये। वैशाख मासमें 'संकर्षण' रूपी गणेशजीकी उपासना करके शङ्ख दान देना चाहिये। ज्येष्ठ मासमें 'प्रद्युम्न' रूपी गणेशजीकी पूजा करके फल-मूल दान देना चाहिये। ज्येष्ठ मासमें गणेशजीकी अर्चा 'सतीव्रत' के नामपर की जाती है, जिससे स्त्रियाँ पार्वतीजीका श्रेष्ठ प्राप्त कर लेती हैं। आषाढ़ मासमें 'अनिरुद्ध' रूपी गणेशजीकी अर्चा करके संन्यासियोंको तूंबी पात्रका दान करना चाहिये। श्रावण मासमें गणपतिकी अर्चा करके देवदुर्लभ फल पाता है। श्रावण मासमें 'बहुला गणेशजी'की पूजाका विधान है। भाद्रपद मासमें 'सिद्धि-विनायक'की पूजाका विधान है। आश्विनमें 'कपर्दीश' गणेशजीकी पूजा पुरुषसूक्तसे करनी चाहिये। कार्तिक मासमें 'करकचतुर्थी' व्रत करनेका विधान है। मार्गशीर्ष मासमें चार संवत्सरपर्यन्त पाक्षीय व्रतकी विधि है। पौष मासमें 'विघ्ननायक' गणेशकी और माघ मासमें 'संकष्टव्रत' लेकर उनकी पूजा करनेका विधान है। फाल्गुन मासमें 'ढुण्ढिराज'व्रत करनेका विधान है। मङ्गलवारपर चतुर्थी आये तो उसे 'अङ्गारक चतुर्थी' कहते हैं, जो विशेष फलदायक होती है। रविवारके दिन चतुर्थी आये तो विशेष फलप्राप्तिका हेतु होती है।

इक्कीस पत्रोंसे पूजा—

श्रीगणेशजीको समर्पण किये जानेवाले सभी इक्कीस पत्र भी आयुर्वेदकी दृष्टिसे बड़े महत्त्वके हैं। उनमें एक-एक ओषधि आरोग्य-वर्धक, रोग निवारक सिद्ध हुई है। विशेषकर दूर्वा तो पुष्टिदायक, मनोव्रणहर, सवर्णकारक, सर्वदोषहर कहलाती है, जो विशेषरूपसे गणपतिकी पूजामें प्रयुक्त होती है। अभी समाचारपत्रोंमें आया है कि 'दूर्वामें प्रोटीन बहुत अधिक है। एक हेक्टरमें उपजनेवाले धानके अतिरिक्त, घासमें कम-से-कम पाँच गुना प्रोटीन आदि अधिक होते हैं।' मद्रासके समीप घाससे बिस्कुट, रोटी बनानेवाला कर्मागार भी काम करता है। अन्य पत्रोंका वैज्ञानिक विवेचन स्थानाभावके कारण नहीं किया जा रहा है।

जन्तुमुखवाले कुछ प्रधान देवता—

पहले सर्वाङ्गपूर्ण पुरुषरूपसे प्रकट होकर, कारण-विशेषसे सिर कट जानेपर अन्य किसी जन्तुका सिर लगाये जानेसे प्रसिद्ध हुए देवताओंमें भगवान् हयग्रीव तथा गणपति प्रधान हैं। इसपर दृष्टि ... गया था, तो भी इनकी आराधना ... विष्णुके नरसिंह, वराह अवतार तो ... प्रकट हुए थे। इनके सिवा ... गणपति तथा हयग्रीवकी आराधना ...

अन्य देवताओंमें गणेशजीका ...

श्रीगणेशजीके अंश एकादश ... अष्टमूर्ति शंकरके ... दिखाई ... यह अनुमान किया जाता है कि गणेशजी ... रूपमें भगवान् नारसिंहजीके तथा हनुमान्‌जी ... दी जाती है।

विष्णूपासनके अङ्गके ...

गणेशजीकी अर्चा विष्णुजीके द्वितीयावरणके ... रूपमें (वैखानस-सम्प्रदायके अनुसार) की ... वहाँ उनका ध्यान निम्नप्रकारसे किया जाता है, ... साधारणमें प्रचलित नहीं है—

> 'द्वितीयावरणद्वारदक्षिणे चोत्तराभिमुख ...
> एकदन्तः, कृष्णवर्णं गजाननो वाम ...
> वेणुकृतवाहनश्शङ्खधरश्चतुर्भुजः,
> भार्यापतिश्चविघ्नजो मन्मुखः।'
>
> (मरीचि विमानार्चनकल्प ...)

... विष्णुके आलयोंमें उत्सवके प्रारम्भमें ... 'अङ्कुरारोपण' में भी गणेशजीकी पूजा होती है।

गणेशजीकी पूजा विभिन्न प्रतीकों ...

साधारणतया गणेशजीकी पूजा हरिद्राकी मूर्तिपर की जाती है। हरिद्रामें मङ्गलकारिणी ... वह लक्ष्मीका प्रतीक भी है। नारदपुराणमें तो ... सुवर्णमयी प्रतिमा बनानेका आदेश देकर, उसके ... हरिद्रासे उसे बना लेनेकी छूट दी गयी है। ... लक्ष्मीका स्थान होनेके कारण लक्ष्मी प्राप्तिके लिये ... की उपासना गोमय-मूर्तिपर की जाती है।

गणेशजीकी विशेष कृपा शीघ्र पानेके लिये ... अर्ककी जड़को पुष्य नक्षत्रयुक्त रविवारके ... मन्त्रोच्चारणपूर्वक उखाड़कर उस जड़से अँगूठेके बराबर ... गणेशजीकी मूर्ति बनाकर पञ्चामृतसे उसका अभिषेक ... पूजामें रख ले, जो बहुतोंद्वारा अनुभूत है तथा इसका ... अग्निपुराणके १०१वें अध्यायमें भी मिलता ...

… अलभ्य हो तो केवल पुष्य-नक्षत्रके … श्वेत आककी जड़को उखाड़कर पूजाके … कर सकते हैं।

… लकड़ीकी मूर्ति बनाकर घरके बहिर्द्वारके … स्थापना करनेपर यह मङ्गलयुक्त हो जाता … स्यां भवति सदनं माङ्गल्यकरम्।' अब … गायत्रियोंके स्मरणके साथ लेख समाप्त …

… भिन्न गणेशगायत्री—

(१) …य विद्महे महोदराय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥
(अग्निपुराण ७१ अध्याय)

(२) महोत्कटाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥
(अग्निपुराण, १७९ अध्याय)

(३) एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥
(गणपत्यथर्वशीर्ष)

(४) तत्कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥
(मैत्रायणीय-संहिता)

(५) तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥
(तैत्तिरीयारण्यक—नारायणोपनिषद्)

'कलौ चण्डीविनायकौ'

(लेखक—पं० श्रीपट्टाभिराम शास्त्री, मीमांसाचार्य)

… है पवित्र हमारा भारतदेश आध्यात्मिक शक्ति- … क्योंकि हमारे पूर्वजोंने ऐसे अनेक पर्वोंको प्रवर्तित … से सेतुसे लेकर हिमाचलपर्यन्त एक ही रीतिसे … ये जाते हैं। इतिकर्तव्यतामें भेद हो सकता … नमें कोई भेद नहीं है। उन पर्वोंमें भाद्रपद … विशेष महत्त्वपूर्ण है। प्रान्तके भेदसे कोई इसको … चतुर्थी' कहते हैं तथा कोई 'गणेश चतुर्थी'।

विनायक-रहस्य

… 'चण्डी' और … माने … भी कार्योंके आरम्भमें …

पड़ जाय तो इसका विशेष महत्त्व माना जाता है। इस तत्त्वको 'विनायक'-शब्द अवगत कराता है। क ट प आदि संख्या शास्त्र-के अनुसार वि ४, ना० य १, क १—इन संख्याओंका योग ६ होता है। यह 'वक्रतुण्ड षडक्षरी' मूल तन्त्रका परिचायक है। 'अङ्कानां वामतो गतिः' इस शास्त्रीय नियमसे ११०४ संख्या प्राप्त होती है। यह संख्या सिंहस्थ सूर्य, भाद्रपद मास, शुक्ल पक्ष, चतुर्थी तिथि और हस्त-नक्षत्रका परिचय कराती है। चान्द्रमानके अनुसार भाद्रपद छठा मास है। इन संख्याओं-का योग ६ है। संख्या ४ और १ के योगसे ५ संख्या निकलती है। यह सिंहस्थ सूर्यका द्योतक है। सिंह पाँचवीं …

…। …तत्त्वका ज्ञान नहीं है और जब हम पञ्चभूतोंको ब्रह्म के … जानते हैं तो पञ्चभूत नहीं हैं। दृष्टिका ही यह भेद है, …ज्ञ' है, वह परिपूर्ण है। यही तत्त्व 'विनायक' है। यही …स्कृति है।

…विद्याके उपासक सर्वप्रथम 'गणेश'की पूजा करते हैं। …इस पूजाका वे गणेश-पूजा या विनायक-पूजाके नामसे … नहीं करते। किंतु 'महागणपति-सपर्या' शब्दसे … करते हैं। इस प्रकारके व्यवहारमें एक महान् …। 'अष्टाविंशतिवर्णविशिष्टो महाहेरम्बस्य मनुः'— …पादका सूत्र है। यह मनु (मन्त्र) दो प्रकारका है— …। सम्बोधनान्त 'गणपते'-पदसे और दूसरा … 'गणपते'-पदसे घटित है। श्रीविद्याके उपासक …न्त मन्त्रका जप करते हैं। जो मोक्षेच्छु हैं, वे …न्त मन्त्रको जपते हैं—

…सम्बुद्ध्यन्तमहामन्त्रो शाक्तमार्गप्रबोधकः।
…चतुर्थ्यन्तमहामन्त्रो मोक्षमार्गैकहेतुकः॥

—ऐसा प्रमाण मिलता है। क-ट-प आदि रीतिसे महागणपति शब्दमें म—५, हा—८, ग—३, ण—५, प—१, ति—६—इन संख्याओंके योगसे २८ संख्या लब्ध होती है। यह महाषोडशीका परिचायक है। इसी प्रकार ग—३, ण—५, प—१, ति—६—इनके योगसे १५ संख्या निकलती है। यह पञ्चदशाक्षरीका द्योतक है। अतएव श्रीविद्याके साथ महागणपतिका दृढ़तर सम्बन्ध व्यक्त होता है। जो श्रीविद्याके उपासक नहीं हैं, उनके लिये विनायक-पूजन भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीमें विहित है। आचारमें श्रीविद्याके उपासक भी भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी व्रतको करनेवाले मिलते हैं।

इस प्रकारके रहस्यको ध्यानमें रखते हुए हमारे चिरन्तन महात्मा पूजन आदिसे आध्यात्मिक शक्तिका उपार्जन करते थे। हमारी हिंदू जनताका न केवल यह प्रतीक है, किंतु एकताके लिये महान् साधन है। हम सभी इस दृष्टिसे भाद्रपद शुक्ल-चतुर्थीमें विनायकके पूजनसे एकताको प्राप्त कर भारतवर्षके उन्नयनमें भागीदार बनें।

गणेशरूपकी मान्त्रिक व्याख्या

(लेखक—श्रीगोविन्दजी शास्त्री)

गणेशका नाम लेते ही एक मूर्ति उभरती है—स्थूलकाय, …दीत, वक्रतुण्ड महाप्राण देवताकी। ये ही हैं गणाधिप, …बुद्धिके स्वामी विघ्नविनायक। सम्पूर्ण शरीर मानव-… किंतु मस्तक हाथीका। आजके हृदय-प्रतिरोपणतक … शल्य-विज्ञानके लिये यह रूप असम्भवकी सीमातक …पनीय, अतएव अविश्वसनीय है; किंतु नृसिंह, हयग्रीव, …य और सहस्रबाहुके देशमें न यह असम्भव है न …श्वसनीय। वास्तवमें अविश्वसनीय देशकाल-सापेक्ष है। … लिये कोई गारंटी नहीं दी जा सकती कि आजका …श्वसनीय कलका यथार्थ नहीं होगा? भाव-जगत्में इस …ी अविश्वसनीय घटनाएँ एक सामान्य बात हैं, …ीके क्षेत्रमें और इच्छाशक्तिकी वास्तविक अधिकार-…में यह सब सम्भव है। स्थूल जगत्में यह चमत्कार है।

गणेशके जन्मके सम्बन्धमें एक कथा प्रचलित है कि … पार्वतीने अपनी रक्षाके लिये एक पुतलेमें प्राण-… कर दी और उसे प्रहरी बनाकर स्थापित कर दिया। … देरमें भगवान् शंकर आये; पार्वतीके पास गर्भ-गृहमें …ये तो प्रहरीने मना कर दिया। शिव और शिवाके संयोगमें बाधक कौन हो सकता है? शंकरने रुद्ररूप धारण किया और प्रहरीका नाश कर दिया। उमाने शंकरको आया देख अपनी सृष्टि—कल्पित पुत्रके लिये जानना चाहा तो ज्ञात हुआ कि उसका शव पड़ा हुआ है। जगज्जननी रुष्ट हो गयीं। शंकर ठहरे आशुतोष। वे भावोंसे प्रसन्न होनेवाले हैं, अभिव्यक्तिसे नहीं। भक्त उन्हें गाली देकर प्रसन्न कर सकता है, रुष्ट होकर प्रसन्न कर सकता है, हठ करके उनका प्रसाद प्राप्त कर सकता है; फिर पराम्बा तो उनकी अभिन्न सहचरी ठहरीं। उनके रोषके आगे वे विनत हैं। उन्होंने झटसे हाथीका मस्तक उस धड़पर लगा दिया।

यह है गणपतिके सम्बन्धमें प्रचलित कथा। यह कथा एक रूपक है अथवा पौराणिक सत्य—यह विवेच्य विषय नहीं है। इस निबन्धका प्रतिपाद्य है—इस कथाका भारतीय वैज्ञानिक दृष्टिसे रहस्य-विश्लेषण। प्रस्तुत है—गणपति-जन्मका तान्त्रिक एवं मान्त्रिक दृष्टिसे प्रमाणसम्मत विवरण।

सबसे पहला प्रश्न इस कथाके आरम्भमें उठता है कि 'पराम्बा पार्वती अपनी शक्तिसे स्वरक्षित हैं, उनको अपनी

…क्योंकि उनमें सोचे विचारे अर्चना की जाती है। …उपासनामें गणेशकी पूजा अनिवार्य है। आज …ई प्रणव-मन्त्रका जप करता है तो उसपर अनिष्ट …सो यह स्वरक्षित है, प्रणवके कारण सुरक्षित है, …याण होगा ही। गणेशकी अर्चनाका भी यही

…जो प्रणव मन्त्रकी महत्ता गणेशके प्रतीकसे उपस्थित …भी प्रणव-मन्त्र सभी मन्त्रोंके प्रारम्भमें लगा दिया जाता …इसी तथ्यकी ओर इङ्गित करता है, जिसके अनुसार …भी अनुष्ठानोंमें प्रथम पूजनीय बनते हैं। गणपतिकी …कार सारे भारतमें है। मिट्टीसे लेकर पीतल, ताँबा, …ने आदि सभी वस्तुओंसे गणेशकी मूर्ति बनायी जाती …प्रचलित हैं। अन्य कुछ भी नहीं तो मिट्टीकी डलीके मोली लपेटकर ही गणेशकी मूर्ति कल्पित कर ली जाती है।

गणेशका प्रिय भोज्य है—मोदक! मोदककी गोल आकृति महाशून्यका प्रतीक है। यह समस्त वस्तुजात, जो दृष्टिकी सीमामें है अथवा उससे परे है, शून्यसे उत्पन्न होता है और शून्यमें ही लीन हो जाता है। शून्यकी यह विशालता पूर्णत्व है, जो प्रत्येक स्थितिमें पूर्ण है। और यह पूर्णता प्रणव मन्त्रका गुण है। 'गणेश' प्रणवके प्रतीक हैं अथवा प्रणवरूप हैं, बात एक ही है। परमार्थतः देवता मन्त्रके स्वरूप हैं, अन्यथा शक्तिका कोई आकार—रूप नहीं होता। चतुर्भुज, अष्टभुज, त्रिनेत्र आदि रूप एक मानवीय कल्पना है, जिसमें व्यक्तिकी सामान्य बुद्धि सहज भावसे ग्रहण कर लेती है; अन्यथा यह विचित्रता तत्तन्मन्त्रका स्वरूप है, जिसे हम देवताके रूपमें मानते हैं, पूजते हैं।

भगवान् श्रीगणेशके प्रमुख द्वादश नाम और उनका रहस्य

(लेखक—डा० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस-सी०)

…रतीय आर्य हिंदू-परम्परामें पञ्चदेव और उनमें …वान् श्रीगणेशका जो अप्रतिम महत्त्व है, वह किसीसे … नहीं है। हिंदू-समाज, विशेषतः सनातन-…धर्मी समाजका कोई भी कार्य भगवान् श्रीगणेशके …जनके बिना न आरम्भ होता है और न इसके … उसकी सफलताकी, पूर्णताकी आशा ही की जाती …प्रत्येक कृत्यको मङ्गलमय एवं परिपूर्ण बनानेके उद्देश्यसे …भमें ही श्रीगणेशके द्वादश नामोंका संकीर्तन इस रूपमें … जाता है—

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे … न जायते॥

…भके नामोंका स्मरण करता है तो उसके उद्देश्य अथवा मार्गमें किसी प्रकारका विघ्न नहीं आता। श्रीगणेशके ये बारह नाम निम्नलिखित हैं—१—सुमुख, २—एकदन्त, ३—कपिल, ४—गजकर्ण, ५—लम्बोदर, ६—विकट, ७—विघ्ननाशन, ८—विनायक, ९—धूम्रकेतु, १०—गणाध्यक्ष, ११—भालचन्द्र और १२—गजानन।

सामान्य दृष्टिसे इन नामोंके अर्थ हैं—सुन्दर मुखवाले, एक दाँतवाले, कपिलवर्णके, हाथीके-से कानवाले, लंबे पेटवाले, भयंकर, विघ्ननाशन, वशिष्ठ-नायकोचित-गुणसम्पन्न, धूम्रकेतु (धुएँके रंगकी पताकावाले), गणोंके अध्यक्ष, मस्तकमें चन्द्रको धारण करनेवाले और हाथीके समान मुखवाले। परंतु संस्कृत-साहित्यानुरागी-जन इस तथ्यसे सुपरिचित हैं कि संस्कृत शब्दनिर्माता कथमपि अर्थगाम्भीर्यविरहित नहीं रहे हैं। उन्होंने अपूर्व सूझ-बूझका परिचय देते हुए गागरमें सागरकी भाँति एक-एक शब्दके पीछे एक-एक इतिहासको इस कुशलताके साथ अन्तर्हित किया …कि जब व्यक्ति एकाग्रभावसे इनका अनुसंधान …ता है, तब गह्वरस्थ रत्नोंकी भाँति भावरत्न सामने …आकर उसे विगलितवेद्यान्तरकी अनिर्वचनीय भाव-… पहुँचाकर इस प्रकार विभोर कर देते हैं कि

प्रतीक बन गये । इस कल्पनाका समर्थन इस श्लोकसे प्राप्त होता है—

प्राग् द्वैतभ्रम एव भाति नितरामद्वैतमप्याश्रय
एतद्बोधयतो रदो गणपतेरेकत्वमेवाश्रयन् ॥
(गणपतिसं० ६ । ५३)

अर्थात् पहले निरन्तर द्वैतभ्रम ही भासित होता रहता है, फिर अन्तमें 'अद्वैत' हो जाता है । गणेशका दाँत भी एक होकर यही भान कराता है । इसके साथ ही एकदन्त इस बातका भी द्योतक है कि जीवनमें सफल वही होता है, जिसका लक्ष्य एक हो । श्रीगणेश अपने एकदन्तरूपी लक्ष्य-के कारण ही जीवनमें न केवल सफल रहे, अपितु अग्र-पूजाके अधिकारी भी बने, अतः उस एकदन्तको कल्पवृक्षकी उपमा देते हुए कहा गया है—

संयोज्येव सकेतकं परिहसन् सम्सारसारं स्वांग-
स्यके कृत्रिमदन्तधारणविधेरुद्घाटनाक्योत्सवम् ।
मन्ये सान्त्वयतेऽवृतः स जरतो बालांश्च वा नीरदा-
नेकेनैव रदेन सर्वरदः पायाद् गणेशः श्रियम् ॥
(गणपति सं० ६ । ८५)

अर्थात् जो केवड़ेके फूलको हँसते हुए मुखमें जोड़कर दूसरा दाँत-सा दिखाते हुए कृत्रिम दन्तधारणका उद्घाटन-सा करता हो, या मानो वृद्ध एवं बालकोंको सान्त्वना-सी देता हो, वही गणेशका एकदन्त अपने भक्तोंकी श्री सम्पत्तिकी रक्षा करता रहे ।

मौद्गलके अनुसार 'एक' शब्द 'माया'का बोधक है और 'दन्त'-शब्द 'मायिक'का । श्रीगणेशमें माया और मायिकका योग होनेसे वे 'एकदन्त' कहलाते हैं—

एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वसमुद्भवम् ।
दन्तः सत्ताधरस्तत्र मायाचालक उच्यते ॥

इस प्रकार श्रीगणेशका अद्वैत विधायक द्वितीय नाम 'एकदन्त' भी सार्थक और एकलक्ष्यार्थप्रेरक है ।

श्रीगणेशका तृतीय नाम है—'कपिल' । यह विशेषण शब्द है, जिसका द्वितीय अर्थ है—भूरा, तामड़ा, मटमैला । अंग्रेजीमें इसे 'ब्राउन Brown' कहते हैं । यदि इस शब्दको आकारान्त बना दिया जाय तो इसका रूप बनेगा—'कपिला', अर्थ होगा—गौ । अतः भाव स्पष्ट हो जाता है कि जैसे गौ भूरवर्णकी होती हुई भी दूध, घी, दही आदि पोषक पदार्थ एवं गोमय

रहती है, उसी प्रकार कपिलवर्णके श्रीगणे-
दीप, ज्ञानरूपी दूध, मधुरताकपी मक्खनरूपी घृ -
देते हैं, अथवा उनके दैहिक पदार्थों पुष्टि
प्रदान करते हैं तथा अमङ्गलरूप, विघ्नरू
पदार्थ प्रदानकर उनके विविध तापोंका शम
अतः यह तृतीय नाम भी सार्थक है ।

श्रीगणेशका चतुर्थ नाम है—'गजकर्ण', अर्थ
समान कानवाला । विज्ञ पाठक जानते हैं कि
भारतीय [आर्षपरम्परानुयायी बुद्धिको अधि
मानते हैं और इसीलिये अपने आराध्यको उन्होंने
वाला प्रतिपादित किया है कि जिससे उनसे प्रद्युम्न
उनकी एतद्विषयक अभिरुचिका यथावत् पर
सकें । इससे पूर्व भी हम अन्यत्र इसी लेखमें लि
कि 'मनुष्यको चाहिये कि सुन लो लेकर कुछ, कि
भी कार्य ऊँचे लोगोंके साथ बिना विचार किये करे नहीं
सिखानेकी इच्छासे ही गणपतिने हाथीके समान क
धारण किये हैं । इसके अतिरिक्त एक यह भी
श्रीगणेशके लम्बे कानोंमें छिपा है कि क्षुद्र कानोंवाल
सदैव व्यर्थकी बातोंको सुनकर अपना ही अहित
है । अतः हाथी-जैसे लम्बे कानोंद्वारा श्रीगणेश
देते हैं कि व्यक्तिको अपने कान ओछे न र
विस्तृत बना लेने चाहिये कि उनमें सदसों निन्द
भली-बुरी बातें इस प्रकार समा जायँ कि वे
जिह्वापर आनेका प्रयासतक न कर सकें । पुराणोंमें
गजकर्णत्व अथवा शूर्पकर्णत्वका कारण बताते
है—'श्रीगणेश योगीन्द्र मुखसे वर्ण्यमान तथा श्रेष्ठ जि
श्रूयमाण विषयको ग्रहणकर सूर्पके समान पा
रजको दूर करके सदामति सम्पादित कर देते हैं, अ
इसी नामसे व्यवहृत किया जाता है ।

रजोयुक्तं यथा धान्यं रजोहीनं करोति च
शूर्पं सर्वेषां वै योग्यं भोजनकाम्यया ।
तथा मायाविकारेण युतं ब्रह्म न लभ्यते ।
शूर्पकर्णं समाश्रित्य शूर्पकर्णस्य सुन्दरि ।
सर्वत्र सद्मानिष्या स्वबला सद्गतिकारकम् ॥

[ग]णेशका पाँचवाँ नाम है—'लम्बोदर'। इसका [अर्थ है—लम्बे] अर्थात् विशाल पेटवाला। गणेश-गायत्रीमें [इनका स्म]रण इस प्रकार किया गया है—

'[लम्बोद]राय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
[तन्नो] दन्ती प्रचोदयात्॥'

[इस ना]मका उद्देश्य सांसारिक जनोंको शिक्षा देना [और उन्हें नि]र्विघ्न जीवन-यापनमें सक्षम बनाना है। इस [संसारमें द्विव]िध पुरुष पाये जाते हैं—एक वे, जो प्रत्येक [अच्छी-]बुरी बात सुनकर उसे उदरस्थ कर लेते [हैं और दूसरे] वे, जो किसी भी बातको पचा नहीं पाते, [उसे प्रकट कर देते हैं] और अपनी इस क्रिया अथवा चेष्टाद्वारा [वातावरणको विषाक्त] बना देते हैं। अतः उक्त नाम [शिक्षाविधायक] होनेके कारण न केवल अन्वर्थक, [अपितु अनुकरणी]य भी है।

['ब्रह्माण्डपुराण']के अनुसार 'भगवान् शंकरद्वारा [ताण्डवनृत्यमें] बजाये हुए डमरूकी ध्वनिसे श्रीगणेशने [वेदोंको] ग्रहण किया, माता पार्वतीके चरणद्वयमें [धारण किये] नूपुरोंसे संगीत सीखा, प्रतिदिन ताण्डव [नृत्य देखकर औ]र उसके अभ्यासके बलसे नृत्य सीखा और [इसी प्रकार अन्य]भिन्न ज्ञानोंको आत्मसात् (उदरस्थ) करनेके [कारण उनका] उदर लम्बायमान हो विविध विद्याओंके कोष[में प]रिणत हुआ'—

डमरुध्वनेर्भगवता दत्त्वन्मसमानाद्घनं
नमनीपदाम्बुजरणत्कारैरतान्नूपुरात्।
ताण्डवदर्शनात् प्रतिदिनं स्वाभ्यासयुक्तेर्बलात्
अभिधानमेवमभवन् मन्ये ततस्तुन्दिलः॥
(५। ५५)

[इसके] अनन्तर श्रीगणेशका छठा नाम सामने आता है [जो] है—'विकट'। 'विकट'का अर्थ होता है—भयंकर। [इन]का धड़ (कण्ठसे पैरतकका भाग) है—नरका [और मस्तक] अर्थात् मुख है—हाथीका। अतः ऐसा विकट [रूप भय]ंकर होगा ही—यह निर्विवाद है। श्रीगणेशके नामके [उल्ले]खका भाव यह है कि श्रीगणेश अपने नामको सार्थक [करते हुए] सभी प्रकारके विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये विघ्नोंके [लिये विकट] बनकर उपस्थित रहते हैं; क्योंकि वे जानते [हैं कि 'शठे शाठ्यं] समाचरेत्' अर्थात् बुरे और दुष्ट [लोग सज्जनता]से सीधे नहीं, अपितु तद्वत् बनकर ही दबाया [जा सकते हैं।] अतः यह नाम भी सार्थक ही है। स्वयं

श्रीगणेश हमारे कथनके प्रतिपादनमें भगवान् परशुरामसे युद्धके अवसरपर कहते हैं—

द्रक्ष्यत्यद्य भवद्गुरुर्मम पिता साम्बो निजैरक्षकं
पुत्रस्यापि नवं महश्चिरतनं शौर्यं च तेजश्चयम्।
आसं चापि यदा नरो न रणतो भीतोऽभवं किं पुन-
र्धृत्वा द्व्याकृतिमद्य संगरमयं यायां त्वदेकाकृतेः॥
(गणपतिखं० ६। ५०)

अर्थात् आज तुम्हारे गुरु और मेरे जनक मेरी माताके साथ अपनी आँखोंके सामने पुत्रके नये तेज और शिष्यके पुराने तेजःपुञ्जको देखेंगे। जब मैं केवल नर था, तब भी कभी युद्धमें नहीं डरा, तब भला, अब दो प्रकारकी आकृति धारण करके एक आकारवाले तुमसे कैसे डरूँगा?

इस स्थितिमें यह स्पष्ट हो जाता है कि गणेशका 'विकट' नाम सांसारिक जनोंके लिये इस दृष्टिसे प्रेरणास्रोत है कि वे भी यथावसर रूप धारणकर अभीष्ट सिद्ध करें।

श्रीगणेशका सप्तम नाम है—विघ्ननाश। भगवान् श्रीगणेश सम्पूर्ण विघ्नोंके विनाशक हैं। 'गणपत्यथर्वशीर्ष'के नवम मन्त्रमें श्रीगणेशके लिये लिखा है—'विघ्ननाशिने शिवसुताय वरदमूर्तये नमः।' इसका भाव है—'हम विघ्नोंको नष्ट करनेवाले, शिवके पुत्र, वरप्रदायी मूर्तिरूपमें प्रकटित श्रीगणेशको नमस्कार करते हैं।' सुप्रसिद्ध भाष्यकार श्रीसायणाचार्यने 'विघ्ननाशिने' का भाष्य इस प्रकार प्रस्तुत किया है—'विघ्ननाशिने कालात्मकभयहारिणे, अमृतात्मकपदप्रदत्वात्' अर्थात् श्रीगणेश कालात्मक भयको हरण करनेवाले हैं; क्योंकि वे अमृतात्मक पदके प्रदाता हैं। 'स्कन्दपुराण'के अनुसार इन्द्रने निज भागशून्य यज्ञके विध्वंसके लिये जब कालका आह्वान किया, तब वह विघ्नासुरके रूपमें प्रकटित हो, अभिनन्दन राजाको मार सत्कर्मोंका लोप करने लगा। तब महर्षियोंने ब्रह्माजीकी प्रेरणासे श्रीगणेशकी स्तुति कर उनके द्वारा विघ्नासुरका उपद्रव दूर करवाया। उसी समयसे गणेश-पूजन स्मरणादिविरहित कार्यमें विघ्नका प्रादुर्भाव अवश्य होता है—यह मान्यता स्वीकार कर कार्यारम्भमें श्रीगणेश-पूजन अनिवार्य प्रतिपादित किया गया है। विघ्न भी सामान्य नहीं है। यह कालस्वरूप होनेसे भगवत्स्वरूप, अतएव अतीव महिमान्वित है। इसके स्वरूपका निदर्शन इस प्रकार प्राप्त होता है—'विशेषेण जगत्सामर्थ्यं हन्तीति विघ्न—ब्रह्मादिकोंकी भी जगत्कर्तृत्वादि सामर्थ्यका हरण करनेवाले तत्त्व, जिसे शास्त्रों 'विघ्न' कहते हैं।' इसपर यदि किसीका ध्यान चला है तो श्रीगणेशका

ाको पुनर्जीवित कर दिया, तब सभी
होकर नाचते हुए अपने ऊपर उनको
तथा 'गणपति' कहकर सम्बोधन करते हुए
ार मनाने लगे—

णाः समेत्य सकलाः स्वेष्वाधिपत्यं ददुः
हो सुशुण्डमिति ते स्वास्मानमामोदयन्।
सरलेक्षयोर्ध्वनयनेर्वक्त्रैर्हसन्तो मुहुः
णराजन्दिन्यविजयं दीर्घैः स्वरैर्वा प्लुतैः ॥

(गणपतिसं० ५।९१)

न्य सनातनधर्मी विद्वानोंने सर्वजगन्नियन्ता पूर्ण
णपति-तत्त्व' के रूपमें स्वीकार और प्रतिपादित
का यह दृष्टिकोण पूर्णतः शास्त्रसम्मत है।
शब्द समूहका वाचक माना गया है—
हस्य वाचकः परिकीर्तितः।' अतः गणपति-
'समूहोंका पालन करनेवाला परमात्मा।'
गणपतिः'। देवादिकोंके पतिको भी 'गणपति'
के अतिरिक्त और भी कई रूपोंमें
चन प्राप्त होता है। यथा—'महत्तत्त्वादि-
पतिः गणपतिः', 'निर्गुण-सगुणब्रह्म-
: गणपतिः' एवं सर्वविध गणोंको सत्ता
परमात्मा ही 'गणपति' है। अभिप्राय यह है
उद्भवात्' (ब्रह्मसूत्र १।१।२२)—इस न्यायसे
े जगदुत्पत्ति स्थिति-लय-लीलत्व, जगन्नियन्तृत्व,
गुण पाये जायँ वही 'ब्रह्म' होता है।'' जैसे
दुत्पत्ति स्थिति-कारणत्व—'सर्वाणि ह वा इमानि
व समुत्पद्यन्ते।' (छान्दोग्य उप० १।
स श्रुतिसे जाना जाता है एवं इसीके
भी आकाशपदवाच्य परमात्मा माना जाता
इससे निष्कर्षरूपमें कहा जा सकता है—
तत्त्वकी अवगतिमें शास्त्र ही प्रमाण हैं, अतः
र तथा 'गण' शब्दकी व्युत्पत्ति—'गण्यन्ते
गाः' के अनुसार 'गणपति' शब्दका अर्थ यही
गण शब्दसे व्यवहृत सर्वदृश्यमात्रका अधिष्ठान
है; क्योंकि स्वयं श्रीगणेशको पूर्ण ब्रह्म
े ही हैं, अतः गणोंके अधिपति तथा गण-
हृत सर्वदृश्यमात्रके अधिष्ठानभूत होनेके
का यह नाम भी अन्वर्थक ही है।

श्रीगणेशका ग्यारहवाँ नाम है—'भालचन्द्र'। इसका भाव है—जिसके मस्तक (भाल) पर चन्द्र हो। भगवान् शंकरके मस्तकमें विराजमान चन्द्रमाका ही यह संक्षिप्त संस्करण है। चन्द्रकी उत्पत्ति विराट्के मनसे मानी जाती है और उस चन्द्र-तत्त्वसे सब प्राणियोंके मन अनुप्राणित माने जाते हैं। अतः श्रीगणेशके संदर्भमें इसका भाव यही है कि 'वे भालपर चन्द्रको धारण कर उसकी शीतल निर्मल कान्तिसे विश्वके सभी प्राणियोंको आप्यायित किया करते हैं।' इसके साथ ही 'भालचन्द्र' से यह भी विदित होता है कि 'व्यक्तिका मस्तक जितना शान्त होगा, उतनी ही कुशलताके साथ वह अपना दायित्व निभा सकेगा। श्रीगणेश गणपति अर्थात् प्रत्येक गणनीय वस्तुके पति हैं, अतः अपने भालपर सुधाकर अथवा हिमांशुको धारणकर उन्होंने अपने मस्तिष्कको सुशान्त बनाये रखनेके प्रयासमें सफलता पाकर, तत्परक नाम धारण कर सफलताकामियोंके लिये एक समुज्ज्वल मार्ग प्रशस्त किया है और बताया है कि यदि वे अपने मस्तकमें चन्द्रकी-सी शीतलता लेकर कार्यरत होंगे तो सफलता निश्चय ही उनके पग चूमेगी।'

कुछ विद्वानोंने यह भी उत्प्रेक्षा की है कि भगवान् शंकरने भी अपने मस्तकपर चन्द्रको धारण किया है और गणेशने भी; इसी कारण वे 'शशिशेखर' कहलाते हैं और ये भालचन्द्र। इस चन्द्र-धारणका उद्देश्य जहाँ शिवके पक्षमें इतना ही है कि उनके ललाटकी ऊष्मा, जो त्रिलोकीको भस्मसात् करनेमें सक्षम है, उन्हें पीड़ित न करे, इसी हेतुसे भगवान् शिवने अपने सिरपर गङ्गा और चन्द्र दोनोंको धारण कर रखा है; वहीं गणेशके पक्षमें इसका भाव है कि शिव-परिवारके वाहनोंके सहज वैरके सम्भावित परिणामको इङ्गित कर गणेशने अपने मस्तकमें चन्द्रको धारण किया है। किंवा स्वयंको चन्द्र-जैसे भालसे मण्डित कर तद्वत् विशेषताओंसे अपने परिवारको विद्वेषकी ज्वालाओंसे बचानेमें सफलता प्राप्त की है।

देवमोदकोपहार प्रसङ्गमें भालचन्द्रको लेकर कविने अच्छा मनोरञ्जन किया है। जब गणेश और कार्तिकेय परस्पर मोदकोंसे प्रहार कर रहे थे, तब इधर गणेश और उधर शिवके गलेके सर्प फूत्कार करने लगे, जिससे उनके शरीरपर रमायी हुई भस्म उड़ने लगी और देखते-ही-देखते अन्धकारपूर्ण रात्रिका साम्राज्य चतुर्दिक्में व्याप्त हो

हैं। अतः गणेशका 'विघ्नेश' नाम न केवल सार्थक, अपितु [illegible] महिमाका भी सूचक है।

गणेशजीका [illegible] नाम है—'विनायक'। इसका अर्थ है—विशिष्ट नायक या विशिष्ट स्वामी। कतिपय विद्वानोंने [illegible] विघ्नका [illegible] स्वीकारकर 'विनायक'का अर्थ विघ्नोंका नायक भी स्वीकार किया है। यह अर्थ पूर्णतः श्रीगणेशपर चरितार्थ होता है; क्योंकि ब्रह्मादि देवता अपने अपने कार्यमें विघ्न पराभूत होनेके कारण स्वेच्छाचारी नहीं हो सकते, परंतु गणेशके अनुग्रहसे ही विघ्नरहित होकर कार्यसम्पादनमें समर्थ होते हैं और यही कारण है कि पुण्याहवाचनके अवसरपर 'भगवन्तौ विघ्नविनायकौ प्रीयेताम्' कहकर विघ्न और उसके पराभवकर्ता श्रीगणेश दोनोंका स्मरण किया जाता है। इससे वि-विघ्न, नायक-स्वामी—विनायक शब्दकी सार्थकता सिद्ध हो जाती है। इसी प्रकार यदि इस शब्द (विनायक) का अर्थ 'विशिष्ट नायक' लिया जाय तो भी यह अन्वर्थक ही सिद्ध होता है; क्योंकि श्रुतिमें श्रीगणेशको 'ज्येष्ठराज' शब्दद्वारा सम्बोधित कर उनके महत्त्वका प्रतिपादन किया गया है। 'गणेशतापिनी'में पूर्ण ब्रह्म परमात्माको ही निर्गुण एवं विघ्नविनाशकत्वादि-गुणगण-विशिष्ट गजवदनादि-अवयवपर गणेशरूपमें प्रतिपादित किया गया है—

'ॐ गणेशो वै ब्रह्म तद्विद्यात्, यदिदं किं च, सर्वं भूतं भव्यं सर्वमित्याचक्षते।'

इसके अतिरिक्त गणेशकी एक अन्य विशेषता भी उन्हें विशिष्ट नायकत्व ही नहीं, श्रीमन्नारायणकी समानता प्रदान कर इस विशेषण या नामको अन्वर्थक बनाती है। वह विशेषता है—मुक्तिप्रदायिनी क्षमता। सभी विद्वान् जानते हैं कि मोक्षप्रदानका एकमात्र अधिकार सत्त्वमूर्ति भगवान् नारायणने अपने अधीन रखा है। श्रीमद्भागवत (५।६।१८) में उनके इस वैशिष्ट्यका निदर्शन इस प्रकार हुआ है—'मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न तु भक्तियोगम्' अर्थात् भगवान् नारायण मुक्ति तो कदाचित् दे भी देते हैं, परंतु भक्तियोग सहज ही किसीको नहीं देते। इसके विपरीत 'गणेश-गीता' श्रीगणेशको भी मोक्षप्रद प्रतिपादित करते हुए कहती है—

य. स्मृत्वा त्यजति प्राणमन्ते मां श्रद्धयान्वित.।
स यात्यपुनरावृत्तिं प्रसादान्मम भूभुज॥

शिवपुराण' इनसंहिताके अनुसार श्रीगणेशके विघ्नराजनामकरणका कारण भगवान् शंकरने [illegible] बताया है—'हे पार्वति! यह तुम्हारा पुत्र [illegible] [illegible] होकर पूज्य बना है, अतः इसका [illegible] [illegible] नायक (नायकवर्जित) हो [illegible]

[illegible] सर्वेषु विघ्न [illegible] भूत्वेऽपि पूज्य।

[illegible] मत्वा भविष्यति विनायक।

(शि॰पु॰ ११।[illegible])

इस प्रकार शास्त्रोंमें गणेशका 'विनायक' [illegible] उनकी विशेषताओंका परिचायक एवं अन्वर्थक है।

अब लीजिये नवम नामको; यह है—'धूम्रकेतु'। धूमकेतुका सामान्य अर्थ है—अग्नि और शब्दार्थ है—[illegible] ध्वजवाला। श्रीगणेशके संदर्भमें—इसके दो भाव प्रकट हैं—१. गंधर्व विकराल धूम धूसर [illegible] साकार बनानेवाले तथा उन्हें मूर्तरूप दे ध्वजरूप न फहरानेवाले होनेके कारण गणेशका 'धूम्रकेतु' नाम है। २. इसी प्रकार अग्निके समान मानवकी आ[illegible] अथवा आधिभौतिक प्रगतिके मार्गमें आनेवाले [illegible] भस्मसात् कर मानवको चरमोत्कर्षकी दिशामें उन्मुख [illegible] क्षमतासे परिपूर्ण होनेके कारण भी गणेशका 'धूम्रके[तु]' सार्थक ही प्रतीत होता है।

'गणाध्यक्ष' श्रीगणेशका दशम नाम है। [illegible] दो अर्थ हैं—१. संख्यामें परिगणित हो[ने] योग्य सभी पदार्थोंके स्वामी तथा २. प्रमथादि [गणोंके] स्वामी। विचार करनेपर उक्त दोनों ही नाम अन्वर्थक [प्रतीत] पड़ते हैं। विश्वके परिगणनीय जितने भी पदार्थ हैं, श्रीगणेश उन सबके स्वामी हैं। जैसा कि निम्न श्लो[कसे] स्पष्ट है कि 'श्रीगणेश देवता, नर, असुर और नाग—[इन] चारोंके संस्थापक एवं चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) [त]था चतुर्वेदादिके भी स्थापक हैं'—

स्वर्गेषु देवताश्चायं पृथ्व्यां नरांस्तथाऽतले।
असुरान्नागमुख्यांश्च स्थापयिष्यति बालकः॥
तत्त्वानि चालयन्-विश्वात्मस्वात्मभावना चतुर्भुजः।
चतुर्णां त्रिविधानां च स्थापकोऽयं प्रकीर्तितः॥

गणोंके स्वामी तो श्रीगणेश हैं ही। इस पदपर वे स्वयं भगवान् शंकरद्वारा प्रतिष्ठित किये गये या गणोंद्वारा, इस सम्बन्धमें दोनों ही प्रकारके विवरण प्राप्त होते हैं। 'गणपति-[खण्ड]के अनुसार जब भगवान् शंकरने [illegible]

...प्रकार अनेकानेक विशेषताओंसे परिपूर्ण होनेके ...णेशको 'गजानन' शब्दसे अभिहित किया गया है, ...सार्थक है। परंतु यह होते हुए भी गणेशके ...तकके शरीरको नराकृति प्रतिपादित किया गया ...है इसलिये कि प्रकृतिमें केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी ...वक्ता, उदारमना, विभिन्न कार्यसम्पादक एवं भुक्ति ...के कहा जा सकता है। अतः श्रीगणेशके मानव-...भी तत्तद् विशेषताओंका दिग्दर्शन करानेके लिये ...आकण्ठ शरीर नरका प्रतिपादित किया गया है।

...के साथ ही श्रीगणेशका शरीर परस्पर विरोधीसे ...ने तत्-पदार्थ तथा त्वं पदार्थके अभेदका परिचायक है। ...र्थ नरस्वरूप है तथा 'तत्'-पदार्थ गजस्वरूप है एवं ...रस गणपतिरूप 'असि'-पदार्थमें इन दोनोंका साम-...। शास्त्रोंमें 'गज' शब्दका अर्थ अतीव चामत्कारिक ...गया है—"समाधिना योगिनो गच्छन्ति यत्र इति ... यस्माद् बिम्बप्रतिबिम्बवत्तया प्रणवात्मकं जगज्जायत ...।" अर्थात्—समाधिसे योगीजन जिस परम तत्त्वको प्राप्त ..., वह 'ग' है तथा जैसे बिम्बसे प्रतिबिम्ब उत्पन्न होता ...ही कार्य-कारणस्वरूप प्रणवात्मक प्रपञ्च जिससे उत्पन्न ... उसे 'ज' कहते हैं। 'जन्माद्यस्य यतः' आदि वचनोंसे ...कथनकी पुष्टि हो ही जाती है। सोपाधिक 'त्वं'-...मक गणेशका पादादि-कण्ठपर्यन्त नरदेह है। यह ...क होनेसे निकृष्ट, अतएव अधोभूताङ्ग है। निरुपाधि ...ष्ट 'तत्'-पदार्थमय गणेशजीका कण्ठादि मस्तकपर्यन्त ...रूप है और वह निरुपाधिक होनेसे उत्कृष्ट है। अतः ...का भाव भी स्पष्ट हो जाता है।

...णपतिसम्भवमें गज मनुज योजनका उद्देश्य भगवान् ...इस प्रकार बताया है—'हे उमे! हाथी और मनुष्यकी ...२० वर्षकी अर्थात् समान निश्चित की गयी है, उसीको ...के लिये तुम्हारे पुत्रके शरीरने नर एवं गजका ...रूप धारण किया है। अतः मानवको यत्नपूर्वक वह ...स करनी चाहिये। लोकमें हाथीकी पूजा करनेवाला पुरुष मान्य और धन्य होता है और जिसे हाथी स्वयं अपनी सूँड़से सिरपर चढ़ाये, उसकी धन्यता तो असंदिग्ध है ही। मानव और गजके पारस्परिक सम्बन्धको प्रकट करनेके लिये ही हमारे पुत्रने यह नर गजात्मक रूप धारण किया है। जैसे इसके शुण्डके हिंडोलेमें लक्ष्मी झूलती हैं, वैसे ही नरकी दोनों भुजाओंमें भी झूलें। जैसे श्वेतवसना सरस्वती हाथीके दाँतोंमें द्विगुणरूपमें अपनी छटा दिखाती हैं, वैसे ही नरके दन्ताग्रपर भी प्रकट करें। जैसे हाथी खूब खाता है और बँधे हुए पुरीषपिण्ड देता है, वैसे ही मानव भी उक्त दोनों क्रियाएँ करता हुआ स्वस्थ रहे। इसी भावको साकार बनानेके लिये उभयात्मक रूप धारण कर यह हमारे पुत्रके रूपमें आया है'—

> अब्युर्हस्तिमनुष्ययोः समतमं विंशोत्तरं यच्छतं
> तद् विख्यापयितुं तवात्मजवपुर्मर्त्येभरूपं दधे।
> तस्मान्मानवमात्रकेण यत्नैरास्वादनीयं च तद्
> विघ्नांस्तत्र भवान् निहन्तु मनसा शीघ्रावधेयं ततः ॥
> लोके यो गजराजपूजनकरो मान्यः स धन्यो नरो
> यं स्वे मूर्धनि धारयेत् स करतो धन्यस्तदन्यश्च कः ?
> अन्योन्यं कृतबन्धनौ नरगजौ व्यक्ते जगत्यामिदं।
> मत्त्वनुस्नेहसुदेहलेहनरवो मर्त्येभरूपः सुतः ॥
> लक्ष्मीः खेलतु शुण्डयोरिव सदा मर्त्यस्य बाह्वोर्द्वयो-
> र्दन्ताग्रे वसताच्च सा द्विगुणिता शुभ्रा च वागीश्वरी।
> कुर्याद् भोजनमप्युरु प्रजहतात् पौरीषपिण्डं च त-
> न्मर्त्येभद्वयरूपतः प्रकटकस्त्वन्मद्गृहयाऽऽत्मसुनः ॥
> (गणपतिसं० ५। ५०—५२)

इस प्रकार अमितौजा भगवान् गणेशके द्वादश प्रमुख नामोंकी यथामति-यथाशक्ति व्याख्या करनेके उपरान्त हम विघ्नहरणके चरणकमलोंमें सादर साञ्जलि प्रणाम, इन शब्दोंके साथ समर्पित करते हैं—

> सिन्दूरपूरपरिशोभितपूर्णशुण्डं
> श्रीकुण्डतुल्ययुगकुण्डलमण्डिगण्डम् ।
> शुण्डेन विघ्नभयभञ्जनभङ्गचण्डं
> वन्दे महेशगिरिजामहिमांशुपिण्डम् ॥

श्रीवरदमूर्तये नमः

(लेखक—श्री के० वा० भातखण्डे, बी० ए०, बी० टी०)

'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे।'
(ऋग्वेद २। २३। १)

नमस्तस्मै गणेशाय ब्रह्मविद्याप्रदायिने।
यस्यागस्त्यायते नाम विघ्नसागरशोषणे॥
(गणेशपुराण, उपासना० १। १)

'जो ब्रह्मविद्या प्रदान करनेवाले हैं तथा जिनका नाम विघ्नसागरको सुखानेके लिये अगस्त्यके समान है, उन गणेशजीको नमस्कार है।'

अखिल श्रीगणेश साहित्यमें तथा श्रीगणेशोपासनामें यह सूक्त 'श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष' सर्वप्रधान माना जाता है। 'त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्।' (१) 'भक्तानुकम्पिनं देवम्।' (९) कहकर श्रीगणेशजीका मधुर वर्णन करनेवाले इस अथर्वशीर्षके अन्तमें श्रीगणेशके आठ शुभ नामोंका उल्लेख है। वे इस प्रकार हैं—'नमो व्रातपतये, नमो गणपतये, नमः प्रमथपतये, नमस्ते अस्तु लम्बोदराय, एकदन्ताय, विघ्ननाशिने, शिवसुताय, वरदमूर्तये नमः।' (१०) इस नाममालामें 'वरदमूर्तये नमः'—यह अन्तिम नाम सब नामोंमें मधुरतम है। हम वैदिक धर्मावलम्बियोंमें कार्यका आरम्भ करते समय श्रीगणेश-चिन्तन करनेका पवित्र विधान है। श्रीगणराजसे 'निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥'—इस प्रकार प्रार्थना न करनेसे कार्य विघ्नरहित नहीं हो पाता। 'विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा' आदि विविध कार्योंमें गणराजका स्मरण चिन्तन हमको निर्विघ्नता प्रदान करता है। विघ्नेश्वर श्रीगणेशजी भक्तोंके और सज्जनोंके मार्गमें होनेवाले सब विघ्नोंको दूर करते हैं और उनको विद्या, धन, सुख एवं भक्ति आदिका वरदान देते हैं। सारे विघ्नोंको दूर करने तथा सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ होनेके कारण ही श्रीगणेशजी 'विघ्नेश्वर' और 'वरदमूर्ति' कहलाते हैं। इसीलिये वे अग्रपूजनीय भी हुए। श्रीगणेशराजको अग्रपूजाका अधिकार तथा वरदातृत्वका महान् गुण कैसे प्राप्त हुआ—इस विषयमें पुराणोंमें अनेकों रम्य कथाएँ वर्णित हैं। सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रदक्षिणाकी स्पर्धामें सारे देवताओंको श्रीगणेशजी अपने बुद्धि-कौशलसे ही परास्त कर सके। इसी प्रसङ्गमें श्रीगणेशजीके मातृ-पितृ-भक्ति, भगवन्नाम निष्ठा, शक्ति-शिव-तत्त्व-ज्ञातृत्व आदि दिव्य गुणोंका भी परिचय मिलता है।

मातृ-पितृ-भक्ति और भगवन्नामोंसे सुरभित वैष्णवत्व आदि महान् गुण ही श्रीगणराजके अमोघ वरदातृत्वका रहस्य है। श्रीगणराजके इस अमोघ वरदायित्वका लाभ बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों और देवताओंको उन्मुक्त रूपसे प्राप्त हुआ है। श्रीवेदव्यासजीने जब पुराणोंकी रचना आरम्भ की, उस समय गणेश स्मरण न करनेके कारण उनको सब कुछ विस्मरण हो गया। श्रीब्रह्माजीके कथनानुसार जब गणेशोपासना करनेसे वरदाता श्रीगणेशजी प्रसन्न हुए, तब श्रीवेदव्यासजीको उपपुराणसहित अठारहों पुराणोंकी रचनाका श्रेय मिला। मधु-कैटभ राक्षसोंको मारनेके लिये महाविष्णुने श्रीगणेशमन्त्रका स्मरण किया और श्रीगणेशके वरदायित्वका अनुभव किया। श्रीगणेशजीके वरसे सृष्टि रचनाके महान् कार्यको श्रीब्रह्माजी कर सके। त्रिपुरासुरका वध करनेके लिये श्रीनारदजीके उपदेशानुसार श्रीशंकरजीने गणेशकी आराधना की, तब श्रीगणेशजीने प्रसन्न होकर श्रीशंकरजीको 'गणेशसहस्रनाम' प्रदान किया और त्रिपुरासुर संहारमें यशःप्राप्तिका वर दिया। ऐसा है वरदमूर्ति श्रीगणेशजीका अमोघ और उदार वरदायित्व।

हमारा जीवन विघ्न-बाधा-रहित हो तथा हमें चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति सुगम हो—इसके लिये हमें विधिवत् गणेश-उपासना करनी चाहिये। पाश, अङ्कुश, रद, वरदसे युक्त चतुर्भुज मूर्तिका ध्यान, दूर्वाङ्कुर, मोदक, शमीपत्र, रक्तपुष्प आदिसे पूजन, ब्रह्मणस्पतिसूक्त या अथर्वशीर्ष-मन्त्रोंसे अभिषेक, विनायक, गणपति, गजानन—इन महानामोंका चिन्तन या कीर्तन आदि विविध प्रकारोंसे भक्तगण गणेशोपासना किया करते हैं। भावपूर्वक गणेशनाम कीर्तन करना सबसे सुलभतम साधन है।

श्रीवरदमूर्ति गणेशजी विपुल विद्या, अतुल धन, सुदीर्घ आयु आदि अनेक वरदान तो सभी भक्तोंको देते हैं, किंतु हरिभक्तिका वरदान वे केवल अन्तरङ्ग भक्तोंको ही देते हैं। श्रीगणेशजी बड़े हरिनाम परायण हैं। रामनाम रससे युक्त हरिभक्तिका रसायन श्रीगणपतिके पास सहज ही सुलभ है, जो

गणेशोपासनाकी प्राचीनता

(लेखक—श्रीयोगेन्द्रनाथजी ..., शास्त्री, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

हिंदुओंका उपासना-विधान इतिहासके विकास, समाजकी माँग तथा परिस्थितिकी आवश्यकताके अनुसार अपना बाह्य रूप बदलता रहा है। पर इसका मूलतत्त्व अधिक समन्वयात्मक, परिष्कृत एवं परिवर्धित रूपमें देव-प्रतिमाकी उपासनाके रूपमें सुरक्षित है। देवोपासनामें व्यक्ति और समाजकी रुचि, संस्कार, क्षेत्र विशेषकी परम्परा और समयकी आवश्यकताके अनुसार परब्रह्मके किसी एक साकार देवरूपको किसी क्षेत्र-विशेषमें प्रधानता मिली है तो कभी किसी दूसरे साकार देवरूपको दूसरे क्षेत्र विशेषमें। वर्तमान समयमें बंगालमें शक्तिपूजाकी प्रधानता है तो उत्तर भारतमें श्रीराम एवं श्रीकृष्ण विशेषरूपसे उपास्य हैं। मूलरूपमें ये सभी देवी-देवता एक अखण्ड ब्रह्म-चेतनाके प्रतीक हैं तथा इन रूपों-द्वारा वस्तुतः एक परब्रह्मकी ही उपासना की जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीगणपतिकी उपासना वैदिक वर्ग-की किसी शाखामें अवश्य प्रचलित रही होगी। वैदिकशाखा-ग्रन्थोंके लुप्त होनेके साथ गणपति-उपासना-विषयक साहित्य भी लुप्त हो गया होगा। इस लोप होनेके कारणके पीछे अथर्व-वेदविषयक आथर्वणशाखा-ग्रन्थोंका लोप भी कारण रहा होगा। लोकमें शान्ति-पौष्टिक-कर्मोंकी सिद्धि आथर्वण-विद्यासे सम्बन्धित मानी जाती थी। 'श्रीगणपत्युपनिषद्' एवं 'अथर्व-शीर्ष उपनिषद्'से ज्ञात होता है कि गणपति विद्याका सम्बन्ध अथर्ववेदीय शाखासे था। कालान्तरमें अथर्ववेदका सम्बन्ध वाममार्गी तन्त्रविद्यासे जुड़ गया। यह तन्त्रविद्या लोकमें निषिद्ध आचारका सेवन करनेके कारण जब निन्दित हुई एवं लुप्त हो गयी, तब अथर्ववेदीय विद्याओं तथा शास्त्रोंका भी लोप हो गया। यहाँतक कि पौराणिक कालमें रचित गणपति साहित्य भी अब उपलब्ध नहीं होता। नारदपुराणमें दी हुई सूचीके अनुसार वामनपुराणके उत्तरार्धमें सहस्रश्लोकी गाणेश्वरी-संहिताके होनेका उल्लेख है। पर आजकल वामन-पुराणका यह उत्तरार्ध उपलब्ध नहीं है। गाणपत्योंकी ग्रन्थोंको गोपनीय रखनेकी प्रवृत्ति भी इसमें हे... सकती है।

कतिपय विद्वान् यह मानते हैं कि सूत्रग्रन्थोंने ... गृह्यधर्म एवं लोकधर्मकी परम्परा संहिताकालसे भी ... आरण्यक-ग्रन्थों एवं सूत्र-ग्रन्थोंमें श्रीविनायक ... सम्बन्धी उल्लेख ऐसा संकेत देते हैं कि ... उपासना वैदिकयुग एवं पूर्व-वैदिकयुगमें भी ... वर्तमानरूपमें ही प्रचलित थी। तैत्तिरीयारण्यक (... १)में महादेव, दुर्गा, गणपति, कार्तिकेय और ... पृथक्-पृथक् गायत्री मन्त्र मिलता है, जिससे इनके ... स्वतन्त्र देवताके रूपमें लोकमें उपास्य होनेका प्रमा... है। तैत्तिरीयारण्यकमें एवं नारायणोपनिषद्में गायत्री-मन्त्रका रूप यों है—

'तत्पुरुषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। ... प्रचोदयात् ॥'

इस मन्त्रमें 'वक्रतुण्ड'-नाम उनके गजानन होनेका तथा 'दन्ती'-नाम उनके 'एकदन्त' ... संकेत करता है। मैत्रायणीयसंहिता (२।९ ... उपलब्ध गणेश-गायत्रीका रूप भिन्न है—

'तत्कराटाय विद्महे, हस्तिमुखाय धीमहि। ... प्रचोदयात् ॥'

इन 'वक्रतुण्ड' और 'हस्तिमुख', 'कराट' और ... नामोंसे यह भी संकेत मिलता है कि गणपतिकी ... गजानन-रूपमें उस समय भी बनायी जाती रही तथा ... पूजा की जाती रही। दो प्रकारकी गणपति गायत्री ... संकेत करती है कि संहिताकालमें ही गणपतिके भि... रूपोंकी उपासना प्रचलित रही एवं गणपति-उपासकों... भिन्न सम्प्रदाय भी रहे।

नामनामानुरागी भक्त जिन श्रीगोविन्दकी [illegible] अविच्छिन्न प्रीतिका अर्पित होता रहता है। ऐसे महाभाग श्रीगणपतिजीके हरि-कीर्तनकी बड़ी लगन है। [illegible]— श्रीज्ञानदेवके ये वचन ही गणेशजीमें यथार्थ घटित होते हैं। श्रीनिम्बराज नामके एक बड़े हरिभक्त थे। एक बार जब वे पूर्णरूपसे निद्रामग्न थे, तब स्वप्नमें श्रीगणेशजीने इन्हें एक ऐसा मधुर बोध दिया कि उन्हें [illegible] हरिकीर्तनकी महान् स्फूर्ति प्राप्त हुई। [illegible] श्रीनिम्बराज हरिकीर्तन करने लगे, जिससे उनका जीवन धन्य हो गया। [illegible] प्रेमका वरदान हम सबको गणेशजी प्रदान करें, यही परमपूज्य प्रार्थना है।

गणेश देवता

(लेखक—पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी)

आर्य संस्कृतिमें देवताकी भावनाका आविर्भाव कब और कैसे हुआ, इसका ऐतिहासिक उत्तर खोज निकालना बहुत ही कठिन है। वैदिक युग देव-प्रधान युग था। उसमें देवता परम आदर्श और परमाराध्य थे। देवत्वकी प्राप्ति जीवनका चरम ध्येय था। गुरुकुलसे लौटते हुए स्नातकको यह शिक्षा दी जाती थी—

'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।'

(तैत्तिरीय-उपनिषद् १। ११। २)

'माता, पिता, आचार्य और अतिथिको देवता मानकर उनकी सेवा करो।'

सारांश यह है कि आर्य जीवनमें देवताका प्राधान्य है। देवताका आर्य जीवनके साथ अविनाभाव सम्बन्ध है। जहाँ देवभावका अभाव है, वहाँ असुरभाव उपस्थित हो जाता है। असुरभावसे त्राण पानेके लिये देवताकी शरण लेनेके अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। अतएव देवाराधनके द्वारा देवत्वकी वृद्धि करके असुरभावका विनाश करना जीवनका परम कर्तव्य है। मानव-जीवनका चरम लक्ष्य देवत्वकी प्राप्ति है और असुरभाव उसमें प्रधान और प्रबल विघ्न है। गणेशजी विघ्नेश्वर हैं। उनकी कृपादृष्टि होनेसे विघ्नोंका पर्वत अपने-आप विगलित होकर क्षणमात्रमें विनष्ट हो जाता है, असुरसमूह उनके नाममात्रसे विद्रावित होते हैं। इसी कारण सब प्रकारके मङ्गल-कार्योंमें, सब प्रकारकी देवपूजाओंमें गणेशजीकी प्रथम पूजा होती है—

अलम्बे जगदालम्बे हेरम्बचरणाम्बुजम्।
शुष्यन्ति यद्रज:स्पर्शात् सद्यः प्रत्यूहवार्धयः॥

'जगत्को आश्रय देनेवाले श्रीगणेशजीके चरण मैं आश्रय लेता हूँ, जिनकी रजके स्पर्शसे विघ्न तत्काल सूख जाते हैं।'

प्रतिमा बनाकर आवाहनादि षोडशोपचारसे पूजा अथवा गोबरके गणेश या मृत्तिकाके गणेशकी रचना गणेश-पूजा करना सर्वसाधारणमें पाया जाता है। यह पूजा निर्विघ्न कार्यसिद्धिके उद्देश्यसे की जाती है। मङ्गल आदि आनन्दप्रद समारोहोंके अवसरपर गणेशजीका [illegible] किया जाता है। गणेशजी पार्वतीनन्दन हैं, विश्वजननी मायाके वरद पुत्र हैं, आनन्दमूर्ति हैं, मोदकप्रिय हैं, [illegible] जाता है। विद्या और कलाके अधिदेवताके रूपमें [illegible] साथ गणेशजीका भी नाम लिया जाता है। कहते हैं कि [illegible] जब ताण्डव-नृत्य करने लगते हैं तो आनन्दमें मग्न [illegible] गणेशजी अपने कण्ठसे मेघकी तरह मृदङ्ग ध्वनि करते हैं—

नमस्तस्मै गणेशाय यत्कण्ठः पुष्करायते।
मदाभोगघनध्वानो नीलकण्ठस्य ताण्डवे॥

(दशरूपक १। १)

देवताका दूसरा रूप है—आधिदैविक। पुराणोंमें जो देवताओंका स्वरूप वर्णित है, जो देवासुर-संग्रामके वर्णन आते हैं, वे उनकी आधिदैविक लीलाओंको अभिव्यक्त करते हैं। वैदिक मन्त्रोंके भी जो अग्नि आदि देवता हैं, वे मन्त्रमय हैं। निरुक्तकार यास्क कहते हैं—

'यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति।'

'जिस कामनासे ऋषि उस कामनाको पूर्ण करनेवाले जिस देवताकी स्तुति करता है, उस देवता[illegible]

दं त्वयि लयमेष्यति । सर्वं जगदिदं त्वयि
भूमिरापोऽनलोऽनिलो नभः ।'

(गणपत्यथर्वशीर्ष उप० ५)

वान् श्रीगणेश ! यह सारा जगत् आपसे ही उत्पन्न
आपसे ही इस सारे जगत्का अस्तित्व है । इस
ा लय भी आपमें ही होगा । आप सत्यस्वरूप
तिष्ठित होनेके कारण यह असत्य जगत् सत्य-सा
है । आप ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा
जगत्की उत्पत्तिके पूर्व आप ही थे, जगत्के
आप ही हैं और जगत्के प्रलयके बाद आप
। इसलिये जगत्से अतीत सनातन सत्य केवल
हैं । ऐसे संसारातीत प्रणवस्वरूप परमतत्त्व
भक्त-हितार्थ युग-युगमें अवतरित होते रहते हैं ।
श्रीगणेशजीके नाम, आकार, वर्ण, वाहन आदि
हैं । श्रीगणेशजीकी स्तुतिका और एक

यः पायात् प्रणमत गणेशं जगदिदं
न प्रातं नम इह गणेशाय महते ।
ास्त्यन्यत् त्रिजगति गणेशस्य महिमा
मच्चित्तं निवसतु गणेश त्वमव माम् ॥

'गणेशजी तुमलोगोंकी रक्षा करें । तुमलोग गणेशजीको नमस्कार करो । गणेशजीने ही इस जगत्की रक्षा की है; उन महिमाशाली गणेशजीको नमस्कार है । गणेशजीसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है । त्रिलोकीमें गणेशजीकी महिमा व्याप्त है । गणेशजीमें मेरा चित्त सदा निवास करे । गणेश ! आप मेरी रक्षा कीजिये ।' (कारककी सभी विभक्तियोंका उदाहरण इस एक ही श्लोकमें प्रदर्शित किया गया है ।)

इस श्लोकको सुनकर करवीर-संकेश्वरपीठके ब्रह्मलीन सिद्ध श्री १०८ स्वामी शिरोलकर शंकराचार्यजी महाराज बड़े गद्गद और पुलकित हो जाया करते थे तथा उनकी आँखोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगता था । भाद्रपद-शुक्ला चतुर्थी श्रीगणेश-जीका पावन जन्मदिवस है । उस दिन घर-घरमें श्रीगणेशजीकी पार्थिव पूजा होती है । भाद्रपद-शुक्ला चतुर्थीसे भाद्रपद-शुक्ला चतुर्दशीतक श्रीगणेश जन्मोत्सव मनाया जाता है । स्वनाम-धन्य श्रीलोकमान्य तिलकजीने राष्ट्रको जाग्रत् करनेके लिये सामुदायिकरूपसे इस धार्मिक उत्सवका मनाना प्रारम्भ किया और उनको अपने उद्देश्यमें सफलता भी मिली । सर्वातीत सर्वसमर्थ भगवान् श्रीगणेशजीका अर्चन-वन्दन व्यक्ति और समाज—सभीको सुख-समृद्धि प्रदान करता है ।

गणेशजीका सार्वभौम ऐश्वर्य

(लेखक—श्रीभालचन्द्रजी देशपाण्डेय, बी०ए०, बी०एड०)

य संस्कृतिमें श्रीगणेशजीका स्थान सर्वोपरि है ।
कार्यके आरम्भमें सर्वप्रथम श्रीगणेशजीका पूजन
ये । इतना ही क्यों, किसी भी देवताकी पूजाके
णेशजीकी अग्रपूजा करना आवश्यक माना जाता है ।
सका पालन नहीं करता, उसके कार्यमें निश्चित
ा है । श्रीशिवजी गणेशजीकी पूजा किये बिना ही
ो मारने गये; किंतु उन्हें स्वयं ही पराजित होना
-जब शिव-विष्णु-सूर्यादि देवताओंने गणेशजीकी
हीं की, तब-तब उन्हें अपने कार्यमें विफल होना
णेशजीकी शरण लेनेके पश्चात् ही उन्हें सिद्धि तथा
प्राप्ति हुई । इस बारेमें प्रमाणभूत क्षेत्र आज भी
है ।

पूना जिलेमें स्थित 'राजनगाँव'-क्षेत्रमें श्रीशंकरजीने त्रिपुरासुर-वधके लिये गणेशाराधना की । 'थेऊर'-क्षेत्रमें श्रीब्रह्माजीने सृष्टि-कार्यमें सिद्धि-प्राप्तिके लिये श्रीगणेशजीकी उपासना की । महाविष्णुने मधुकैटभ-वधके लिये 'सिद्धटेक'-क्षेत्रमें श्रीगणेशजीकी अर्चना की । यमराजने 'नामल' (मराठवाड़ा)-क्षेत्रमें श्रीगणेशजीको प्रसन्न किया । शिवपुत्र श्रीस्कन्दने 'लेह्ला' क्षेत्रमें आकर गणेशजीके लिये तपश्चर्या की, तब कहीं वे तारकासुरको मार सके । आदि शक्ति देवीने 'विन्ध्याचल' क्षेत्रमें आकर गणेशजीकी प्रसन्नताके लिये तपश्चर्या की, तब कहीं वे महिषासुरको नष्ट कर सकीं । ऐसे तप और ऐसी तपःस्थलियोंके अनेक उदाहरण हैं, जो भगवान् श्रीगणेशकी गरिमाको प्रकाशित एवं प्रतिष्ठापित करते हैं ।

पीने गङ्गाजलसे सिञ्चन करके शिवनन्दनके ग्न कर दिया। कठोर तपस्वी जितेन्द्रिय गणेशजी कर बोले—'देवि! तुमने यह क्या किया? तुम मना करो; मैं ऊर्ध्वरेता हूँ। विश्वकी सारी स्त्रियाँ नी हैं।'

ऐसे उद्धगवदन गजवदन, जो एकदन्त हैं, चैतन्यस्वरूप हैं, जगत्के आदिकारण हैं, परब्रह्म हैं, वे सतत वन्दनीय और भजनीय हैं—

अनेकमेकं गजमेकदन्तं चैतन्यरूपं जगदादिबीजम्।
ब्रह्मेति यं ब्रह्मविदो वदन्ति तं शम्भुसूनुं सततं भजामि॥

'गणपति जग-वंदन !'

ा रीते, पर राह न रीती।
लनेवाले चला किये, मंजिलतक पहुँचे।
ाँ उन्हें मंजिल आगे फिर
ानी ही लंबी-सी दीखी।
ालिये गण-पति गणेशने,
क छोड़, मान्यता नयी गढ़,
ोकको प्रतिनिधित्व देकर
र अहदयका, मनस्तुष्टिका,
तन-दृष्टिको सर्वोपरि रख,
कट केन्द्रको चरम लक्ष्य कह,
एकनिष्ठ, दृढ़ आस्थाके बल
सारी दुनिया ही समेट ली
कुछ कदमोंमें,
उत्पादककी परिक्रमा कर।
और—बेचारे स्वामिकार्तिक!
लीक-लीक चल, जग-चक्कर भर
जब वे लौटे विजय-दर्प-सँग,
जीती बाजी हार चुके थे।
नयी मान्यता जीत चुकी थी
नेति-पराक्रमपर इतिके बल,
पाकर शिव-कल्याणी-स्वीकृति,
उत्पादककी परिक्रमा कर।

—बालकृष्ण बलदुवा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

स्तवन

विघ्नहरं प्रकृतेः परतत्त्वं
मोदकधारिणमीश्वरपुत्रम्।
भक्तभयाऽपहमीशमनीशं
श्रीगणनाथमहं प्रणतोऽस्मि॥

जो विघ्न हरण करनेवाले, प्रकृतिसे परे परमतत्त्वरूप, शिवके पुत्र तथा हाथमें मोदक (लड्डू) लिये रहनेवाले हैं; जो भक्तजनोंके भयका नाश करनेवाले एवं सबके ईश्वर हैं; जिनका कोई दूसरा ईश्वर नहीं है; उन श्रीगणनाथको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

अलिप्रवीणैः कमलान्यपास्य
श्रितं मदाऽऽढ्यं भ्रमरैर्यदास्यम्।
भजाम्यहं तस्य सदैव दास्यं
हृत्तस्य भक्त्या विमलं ममाऽस्तु॥

भ्रमरावली बड़ी चतुर है। उसने कमलोंको त्यागकर जिनकी मदपूर्ण गण्डस्थलीका आश्रय ले लिया है, मैं ऐसे भगवान् गणपतिका दास्य स्वीकार कर रहा हूँ। उनकी भक्तिसे मेरा हृदय निर्मल हो जाय।

कपर्दसर्पाद् भयमादधानं
प्रचण्डदर्पाल्लघुसत्त्वयन्तम्।
भैषीर्वृथा मा परिरक्षकोऽहं
जल्पन्नयेद् वाहनमेकदन्तः॥

(भगवान् शंकरकी) जटामें ठहरे हुए प्रचण्ड दर्पवाले सर्पसे डरते हुए अपने स्वल्पकाय वाहन मूषकसे गणेशजी यह कह देते हैं कि 'जब मैं तेरा रक्षक हूँ, तब तू व्यर्थ मत डरा कर।'—ऐसा कहनेवाले भगवान् एकदन्त गणपतिकी सदा विजय हो।

—कृष्णदत्त भारद्वाज

सद्गुणसदन श्रीगजवदन

(लेखक—श्रीव्योमकेश भट्टाचार्य)

सर्वविघ्नविनाशाय सर्वकल्याणहेतवे ।
पार्वतीप्रियपुत्राय गणेशाय नमो नमः ॥

'सारे विघ्नोंके विनाशके लिये, समस्त कल्याणके हेतुभूत, पार्वतीजीके प्रिय पुत्र गणेशजीको अनेक नमस्कार ।'

सर्व-जनगणके देवता गणेश गणपति हैं । पुराणोक्त कथामें पाया जाता है कि भगवती पार्वतीने अपने अङ्गके अनुलेपसे एक चतुर्भुज मूर्ति बनाकर अपने पति देवाधिदेव महादेवसे प्रार्थना की कि 'उसमें प्राण-संचार कर उसे अपने पुत्ररूपमें प्रसिद्ध करके जगत्पूज्य बना दें ।' भगवान् शंकरने वेदोक्त जीवसूक्त और सृष्टिसूक्तद्वारा उस कृत्रिम पुत्रमें प्राण-संचार करके कहा—"हे देवि ! यह पुत्र जगत्में यशस्वी और जनगणका अधिपति होकर 'गणेश' नामसे विख्यात होगा ।"

उस शिशु पुत्रके आविर्भावसे कैलासमें महोत्सव मनाया जाने लगा । सुर-मुनि-गण शिशुका दर्शन करके आशीर्वाद देनेके लिये एकत्र हुए । केवल सूर्यतनय शनिदेवके सम्पर्कसे उसमें व्यतिक्रम हो गया । शनिकी पत्नीने उनको शाप दे रखा था कि 'जिसके ऊपर उनकी दृष्टि पड़ेगी, उसका शिरश्छेद तत्काल हो जायगा ।' विशेष अनुरोधपर शनि जब शिशुके समीप आये तो जगज्जननी पार्वतीजी बोलीं—'किसकी सामर्थ्य है जो मेरी सन्तानका अनिष्ट साधन कर सके ।' विधिका विधान कौन जानता है । शिशुके ऊपर शनिकी दृष्टि पड़ते ही शिशुका सिर कटकर विष्णुके तेजमें विलीन हो गया । जननी पार्वती शोकातुर हो उठीं । उन्होंने शनिने मूल नीच कर लिया । कैलासमें हाहाकार मच गया । गोलोकसे विष्णुने आकर उत्तराभिमुख सोये एक गजका मस्तक काटकर शिशुके कंधेपर जोड़ दिया और उसमें प्राण-संचार कर दिया । तभीसे यह शिशु 'गजानन' नामसे विख्यात हुआ । ब्रह्मवैवर्त-पुराणके अनुसार पार्वतीने गजाननरूपमें ही पुत्रकी सृष्टि की थी । बाल्यकालमें एक दिन गणेशने एक बिल्लीको क्षत-विक्षत करके माताके समीप आकर देखा कि माताका शरीर क्षत-विक्षत और रक्ताक्त है । माता बोलीं—'हे वत्स ! जगत्के सब प्राणियोंमें मेरा वास है । सब स्त्रियाँ मेरा अंश हैं । उस बिल्लीके ऊपर हुआ आघात मेरे ऊपर पड़ा है'—

'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण ...

समस्त नारीमूर्तिको ...

गणेशजी सदाके लिये मातृ-भक्त हो गये ।

एक दिन पार्वतीने अपने पुत्र कार्तिकेय और गणेशको बुलाकर कहा—'हे वत्स ! दोनोंमें जो पहले त्रिभुवनकी परिक्रमा करके मेरे पास आयेगा, उसे यह कन्या दूँगी ।' मयूरवाहन कार्तिकेय द्रुतगतिसे त्रिभुवनकी परिक्रमाके लिये बाहर निकले । स्थूलशरीर, लम्बोदर, मूषकवाहन श्रीगणेशजी बड़ी कठिनाईमें पड़े । परिक्रमाके लिये बाहर न जाकर धीरे-धीरे माताकी प्रदक्षिणा करके बोले—'माँ ! त्रिभुवन तुम्हारा ही विग्रह है, तुम्हारी परिक्रमा करनेसे त्रिभुवनकी परिक्रमा हो गयी ।' माताने पुत्रके वचनसे संतुष्ट होकर उनको कन्या दे दिया । इस प्रकारकी मातृभक्तिका दृष्टान्त कहीं कम देखनेमें आता है ।

देवासुर-संग्राममें गणेशने दानवोंका संहार करके देवताओंकी रक्षा की थी । देवराज इन्द्रने गणेशजीसे कहा था—"आप सब देवताओंके पूज्य होंगे । आरम्भमें आपकी पूजा करनेसे सारे कार्य सिद्ध होंगे । आप 'विघ्नविनाशक' नामसे प्रसिद्ध होंगे ।"

शिवके शिष्य परशुराम इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करके श्रीगुरुके चरणारविन्दके दर्शनार्थ कैलास गये । वहाँ हर-पार्वती निद्रामें पड़े थे और द्वारपर गणेश पहरा दे रहे थे । उन्होंने परशुरामको भीतर प्रवेश करनेसे रोका । उन्होंने गुरुके द्वारा प्राप्त परशु-अस्त्रसे गणेशके एक दन्तको चूर्ण-चूर्ण कर दिया । तबसे गणेश 'एकदन्त' नामसे विख्यात हुए ।

ऊर्ध्वरेता गणेशजी एक समय गङ्गातटपर ध्यानमग्न बैठे थे । एक देवी कामातुर होकर तप्त-काञ्चनके समान गणेशके रूपको देखकर मुग्ध हो उठी । उनके ध्यानको भङ्ग करनेमें असमर्थ

…री और सूप जैसे बड़े-बड़े कानोंवाले हैं। उनके …लाल चन्दनका लेप है। वे लाल-लाल पुष्पोंद्वारा पूजित …र कृपा करते हैं, जगत्‌के कारण और अच्युत हैं। … पहलेसे आविर्भूत हैं तथा प्रकृति और पुरुषसे परे …नका ध्यान करनेवाला योगी सब योगियोंमें श्रेष्ठ …

…दन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
…भयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
…कं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
…गन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
…नुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
…र्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्॥
…ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः।

(गणपत्यथर्वशीर्ष उप० ९)

…यह निर्विवाद और स्पष्ट है कि 'गणपत्यथर्वशीर्ष' …ने उनके स्वरूप और रूप—दोनोंका प्रतिपादन …है। इस औपनिषद रूपकी समन्वयात्मक अभिव्यक्तिका …ह-पुराण'में बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। देवता कैलास-…र शंकरजीके पास गये और उन्होंने शिवजीसे निवेदन …ा कि 'असत् कार्य करनेवालोंके लिये आप विघ्न उपस्थित …में समर्थ हैं।' शंकरजी भगवती उमाकी ओर देखने …। उन्होंने आकाशमें एक स्वरूप देखा और वे हँस …। भगवती उमा उस रूपको अपलक देखती रहीं। …को मोहित करनेवाले सुन्दर गणेशको देखकर रुद्रने …ा दे दिया—'कुमार! तुम्हारा मुख हाथीके मुखके …न होगा, उदर लंबा होगा और तुम सर्पका यज्ञोपवीत …रण करोगे।'

ततः शशाप तं देवो गणेशं परमेश्वरः।
कुमार गजवक्त्रस्त्वं प्रलम्बजठरस्तथा।
भविष्यसि तथा सर्पैरुपवीतगतिर्ध्रुवम्॥

(वराहपुराण २३। १८)

श्रीगणेशजीके रूप-सौन्दर्यका महत्त्वाङ्कन असाधारण …दिसम्पन्न प्राणीके ही वशकी बात है। राजा वरेण्यने उनके …का दर्शन किया था। वे कहते हैं—

अनाद्यनन्तं लोकादिमनन्तभुजशीर्षकम्।
प्रदीप्तानलसंकाशमप्रमेयं पुरातनम्॥
किरीटकुण्डलधरं दुर्निरीक्ष्यं मुदावहम्।
एतादृशं निरीक्षे त्वां विशालवक्षसं प्रभुम्॥

(गणेशगीता ८। ११-१२)

'हे देव! आप अनादि, अनन्त, लोकोंके आदिकारण, अनन्त भुजाओं और सिरोंसे युक्त, जलती हुई अग्निके समान प्रकाशयुक्त, अप्रमेय और पुरातन पुरुष हैं। आपने किरीट और कुण्डल धारण कर रखे हैं, आपका रूप-दर्शन सहज-सुलभ नहीं है। आप आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, आपका वक्षःस्थल विशाल है; ऐसे स्वरूपवाले आप स्वामीको मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।'

प्रमुख पुराणोंके रचयिता महर्षि व्यासजीने चार श्लोकोंमें भगवान् गणेशके रूपसौन्दर्यका अमित मनोमोहक चित्रण प्रस्तुत किया है। यह उनके पौराणिक रूपका भव्य वर्णन है। महर्षि व्यासकी उक्ति है कि 'मैं विशालकाय, तपाये हुए स्वर्ण-सरीखे प्रकाशवाले, लम्बोदर, बड़ी बड़ी आँखोंवाले श्रीएकदन्त गणनायककी वन्दना करता हूँ। जिन्होंने मौञ्जी-मेखला, कृष्ण-मृगचर्म तथा नाग-यज्ञोपवीत धारण कर रखे हैं, जिनके मौलिदेशमें बालचन्द्र सुशोभित हो रहा है, मैं उन गणनायककी वन्दना करता हूँ। ''जिन्होंने अपने शरीरको विविध रत्नोंसे अलंकृत किया है, अद्भुत माला धारण की है, जो स्वेच्छासे अनेक रूपोंमें अभिव्यक्त होते हैं, उन गणनायककी मैं वन्दना करता हूँ। जिनका मुख हाथीके मुखके समान है, जो सर्वदेवोंमें श्रेष्ठ हैं, सुन्दर कानोंसे विभूषित हैं, उन पाश और अङ्कुश धारण करनेवाले श्रीगणपतिदेवकी मैं वन्दना करता हूँ।'

एकदन्तं महाकायं तप्तकाञ्चनसंनिभम्।
लम्बोदरं विशालाक्षं वन्देऽहं गणनायकम्॥
मुञ्जकृष्णाजिनधरं नागयज्ञोपवीतिनम्।
बालेन्दुकलिकामौलिं वन्देऽहं गणनायकम्॥
चित्ररत्नविचित्राङ्गं चित्रमालाविभूषणम्।
कामरूपधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम्॥
गजवक्त्रं सुरश्रेष्ठं चारुकर्णविभूषितम्।
पाशाङ्कुशधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम्॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६। २-३, ६-७)

श्रीगणेशके श्रीविग्रहका ध्यान परम माङ्गलिक और विघ्नहर है। उनका ध्यान करते ही, उनके सम्मुख होते ही समस्त विघ्न दूर हो जाते हैं। महाकवि केशवदासने उनके माङ्गलिक रूपका वर्णन यों किया है—

श्रीगणेशजीके परिधान, आभूषण, आयुध, परिवार, पार्षद और वाहन

(लेखक—श्रीरामदास)

श्रीगणेशजी आद्य पूज्य देव हैं। उनका स्वरूप नितान्त अव्यक्त, अचिन्त्य और अपार है। उनका रूप परम आकर्ष, असामान्य और ध्येय है। वे देवपूज्य, निरुपम और मङ्गलात्मा हैं। उनकी सूँड़ चिन्मयता है। उनका मुख छोटे हाथीके शिशुके मुखके समान बड़ा ही लावण्यमय है। वे सर्वदा प्रणम्य हैं—

नमो नमः सुरवरपूजिताङ्घ्रये
नमो नमो निरुपममङ्गलात्मने।
नमो नमो विपुलदयैकसिद्धये
नमो नमः करिकलभाननाय ते॥

(गणेशपुराण, उपा० ४६। २२०)

स्वरूपतः श्रीगणेशजीमें ही समस्त जगत्‌की प्रतीति होती है। समस्त जगत् उन्हींसे उत्पन्न होता है, उन्हींमें स्थित है और उन्हींमें लीन होता है। वे सत्त्व-रज-तम—तीनों गुणोंसे परे परब्रह्म परमात्मा हैं, निर्गुण हैं। वे स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीरोंसे परे निराकार हैं। उनके स्वरूपकी विज्ञप्ति है—

'त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।' 'सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति। सर्वं जगदिदं त्वयि प्रत्येति।' 'त्वं गुणत्रयातीतः।'

(गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद् ४-६)

स्वरूपसे उनका रूप अभिव्यक्त होता है। रूप-अभिव्यक्तिके सम्बन्धमें पुराणोंमें अनेकों कथाएँ उपलब्ध होती हैं, पर वे सब-की सब समानरूपसे उनके 'गजमुख'-रूपका ही प्रतिपादन करती हैं। श्रीगणेशजीका सम्पूर्ण शरीर मनुष्याकार है, पर मुख हाथीकी मुखाकृतिका है—यही उनके रूपकी असाधारण विचित्रता है। श्रीगणेशपुराणमें उल्लेख है कि 'एक बार दैवयोगसे प्रलय हो गया। हवाके प्रचण्ड वेगसे पहाड़ टूट-टूटकर गिरने लगे। संसारके नष्ट हो जानेपर गणेशजी, जो सूक्ष्मरूपमें स्थित थे, प्रकट हो गये। ब्रह्मा, विष्णु और महेशने उनकी स्तुति की। उन्होंने करुणाके वशीभूत होकर उन त्रिदेवोंके सम्मुख अपना रूप प्रकट किया—

ततोऽतिकरुणाविष्टो लोकाध्यक्षोऽखिलार्थवित्॥

दर्शयामास तान् सर्वान् :
पाशाङ्कुशौ नवधर्मनिर्मितरक्तवस्त्रम्
रक्ताम्बरप्रभाशान्तु त्रिसंध्यकं...
कटिसूत्रप्रभाभाविनिर्मितहेमाद्रिशिखरम्
खड्गखेटधनुःशक्तिभिर्भास्वच्चतुर्भुजम्
सुनासं पूर्णिमाचन्द्रजितकान्तिमुखाम्बु...
अहर्निशं प्रभायुक्तं पद्मचक्षुःकं...
अनेकसूर्यसंशोभाजिन्मुकुटभ्राजिमस्तकम्
नक्षत्राङ्कितव्योमकान्तिजिदुत्तरीयकम्
वराहदंष्ट्राशोभाजिदेकदन्तविराजितम्
ऐरावतादिदिक्पालभयकारिसुपुष्करम्

(गणेशपुराण, उपा० १२। १...

'श्रीगणेशजीका रूप ब्रह्मा, विष्णु और महे... और नेत्रोंको आनन्दित करनेवाला था। उनके ... अङ्गुलियोंके नखोंमें ऐसा अरुणिम प्रकाश ... उसके आगे लाल कमलका केसर नितान्त महत्त्वहीन पड़ता था। उनके शरीरपर लाल रंगका वस्त्र देख ... हो रहा था कि उसकी उपमामें संध्याकालीन ... सूर्यमण्डल प्रभावहीन था। उनके कटिसूत्रकी ... सुमेरुगिरिके शिखरकी सुषमा जीत ली थी। उनके चा... हाथोंमें खड्ग, खेट, धनुष और शक्ति सुशोभित हो ... उनकी नासिका सुन्दर थी; उनके मुख-कमलकी प्रभाने ... चन्द्रमाकी कान्तिको निरर्थक कर दिया था। उनके मनोह... कमल रात-दिन विकसित रहते थे। उनका मस्तक ... सूर्योंकी प्रभाको व्यर्थ कर देनेवाले चमकीले मुकुटसे ... हो रहा था। उनके उत्तरीयकी उपमामें असंख्य तार... शोभित आकाशकी सुषमा नहींके बराबर थी। ... एक दाँतके सामने वराहभगवान्‌की दाढ़की कोई गणना नहीं थी। उनकी सूँड़ ऐरावत आदि दिग्गजोंके ... भय पैदा करनेवाली थी।'

श्रीगणेशका उपर्युक्त पौराणिक रूप 'गणपत्यथर्वशीर्ष' द्वारा भी प्रतिपादित है—'वे एकदन्त हैं, चतुर्भुज हैं। उ... चारों हाथोंमें पाश, अङ्कुश, अभय और वरदमुद्रा है। ... मूषक चिह्नकी ध्वजावाले हैं। उनका ... है। वे लम्बो...

समर्थ रामदासजीने चतुर्भुज गणेशके हाथकी शोभाका वर्णन किया है—

शोभे फरश आणी कमल। अंकुश तीक्ष्ण तेजाल।
येके करीं मोदक गोल। तयावरी अति प्रीति॥

(दासबोध १। २। २०)

आशय यह है कि 'हे देव! आपके हाथोंमें परशु और कमल शोभित हैं, तीक्ष्ण अङ्कुश चमक रहा है। एक हाथमें गोल मोदक है, जिसपर आपकी बहुत प्रीति है।'

श्रीगणेशजीके हाथोंमें रत्नजटित अँगूठियोंकी शोभा बड़ी मनोहर है। श्रीगणेशजीको अङ्गुलीयककी प्राप्ति वायुदेवतासे हुई थी—

'वायूरत्नाङ्गुलीयकम्॥' (ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० १३। ९)

गणेशपुराणमें भी उनकी रत्नसंयुत मुद्रिकाका उल्लेख मिलता है—

'मुद्रिका रत्नसंयुताम्।' (उपा० २०। ३३)

गणेशपुराणमें ही उनकी मरकतमणिजटित अँगूठीका वर्णन है—

'स्फुरन्मरकताभ्राजदङ्गुलीयकशोभितम् [illegible]।'

(उपा० १४। २३)

श्रीगणेशजीके हाथकी कलाईमें सुन्दर वलय—कङ्कण है। ये कङ्कण क्षीरसागरसे उत्पन्न दिव्यरत्नोंसे निर्मित हैं। साक्षात् भगवती लक्ष्मीसे ये उन्हें प्राप्त हुए थे।

'क्षीरोदोद्भवसद्रत्नरचितं वलयं वरम्।'

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० १३। १०)

भगवती लक्ष्मीने उन्हें केयूर—भुजबंद दिये थे—

'......केयूरं ददौ पद्मालया मुने।'

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० १३। १०)

उनके बाजूबन्द बहुमूल्य रत्नोंसे जटित हैं—ऐसा गणेशपुराणमें वर्णन मिलता है। भक्तोंद्वारा उनके रूपका ध्यान किया गया है—

'अनर्घ्यरत्नखचितकेयूराङ्गदभूषितम् [illegible]॥'

(उपा० १८। ११)

गणेशपुराणमें ही उनके पैरोंके नूपुर—पाजेबका भी वर्णन मिलता है—

'[illegible] [illegible]॥' (उपा० २०। ३३)

श्रीगणेशजीके मुखमण्डल और उनके आभरणोंका साङ्गोपाङ्ग वर्णन समर्थ रामदास... में गणेश-स्तुतिके प्रसङ्गमें प्रस्तुत किया... समर्थका कथन है कि 'उनका भव्यरूप... महाप्रचण्ड है। विस्तीर्ण और उन्नत मस्तक... है। उनके गण्डस्थलसे अनेक प्रकारकी सुगन्धि... और भ्रमर उसपर गुञ्जार करते हैं। ... उनके अभिनव कपोल शोभित हैं। ... क्षण क्षणमें तीक्ष्ण मद टपकता है। वे ... स्वामी अपनी छोटी-छोटी आँखें हिला रहे हैं ... तथा लचीले कान फड़फड़ा रहे हैं। उनके ... झलमला रहा है और उसपर अनेक प्रकारके ... हैं। उनके कुण्डलोंमें जड़े नीलम चमक रहे हैं। ... दाँतमें सोनेके कड़े शोभित हैं और उनके ... स्वर्णपत्र चमकते हैं—

भव्य रूप विवंड। भीममूर्ति ...
विस्तीर्ण मस्तकीं उदंड। सिंदूर ...
नाना सुगंध परिमळें। थबथबां ...
तेथें आलीं षट्पदकुळें। झंकारशब्दें ...
सुंदीव झुंडादंड सरळें। शोभे ...
लंबित अधर तीक्ष्ण गळे। ...
चौदा विद्या चा गोसावी। हरस्व ...
लवलवित फडकावी। ...
रत्नखचित मुगुटी सलील। नाना सुमन ...
कुंडलें सजपदी नील। ...
दंत शुभ्र सरळ। रत्नखचित ...
तया तळपती पत्रं नील। ...

(११ ...

सन्तप्रवर—गादिरमूर्ति गणेशजीके ... की शोभाका वर्णन आकर्षक ... अपनी ज्ञानेश्वरीमें प्रस्तुत की है। ... कि 'हे देव! महासुखके परमानन्दको ... सुविचार ही आपका ... परिहार करनेवाला ... शुभ वर्णन दी है। उन्होंने ... आपके पदकमल सूक्ष्म नेत्र हैं। ... कि पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा ... हुए दोनों कानोंपर ...

भूमौ दन्तश्च सरणः शब्दगुरुधरम् ।
गैरिकयुक्तश्च महास्फटिकपर्वतः ॥
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० ४१ । ११, १६)

कथा ब्रह्माण्डपुराणके मध्यभागके तृतीय बयालीसवें अध्यायमें भी वर्णित है। गणेशजी दन्तसे विभूषित हो गये। विष्णुने पार्वतीसे कहा पुत्रका 'एकदन्त' नाम वेदोंमें विख्यात है, सभी नमस्कार करते हैं।"

भिधानं वेदेषु पश्य वत्से वरानने ।
न्त इति ख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥
(ब्रह्मवैवर्त० गणपति० ४४ । ८१)

कराचार्यने अत्यन्त रमणीय दन्तकी शोभासे युक्त का चिन्तन किया है—

न्तकान्तदन्तकान्तिमन्तकान्तकात्मज-
मचिन्त्यरूपमन्तहीनमन्तरायकृन्तनम् ।
तरे निरन्तरं वसन्तमेव योगिनां
तमेकदन्तमेव तं विचिन्तयामि संततम् ॥
(श्रीगणेशपञ्चरत्न–५)

प्रार्थना स्तवन है कि 'जिनकी दन्तकान्ति अत्यन्त , जिनका रूप अचिन्त्य है, जिनका अन्त नहीं योगियोंके हृदयमें सदा अवस्थित हैं, मैं उन न्दन, विघ्नेश्वर, एकदन्तका चिन्तन करता हूँ।'

णेशजीके गण्डस्थल—कनपटीकी अद्भुत शोभा र विलम्बित मद-गन्धसे लुब्ध मधुपोंका दल है। एक श्लोकमें उनके गण्डस्थलके सौन्दर्यका वर्णन है—

स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम् ।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम् ॥
(बंगला स्तवकवचमाला)

णेशजीकी नाक बड़ी शोभामयी है। उसका वर्णन है—

'...मवक्त्रं स्थूलवक्षसमीश्वरम् ।'
(गणेशपुराण, क्रीडा० ८१ । ११)

वे तीन नेत्रोंसे विभूषित कहे गये हैं। इसका भी उपर्युक्त संदर्भगत श्लोकमें ही वर्णन है—

'षड्भुजं चन्द्रसुभगं लोचनत्रयभूषितम् ।'
(गणेशपुराण, क्रीडा० ८१ । ११)

ऐसे तो गणेशजी अनन्त श्रुति और नेत्रोंसे सम्पन्न हैं, पर वर्णन तीन नेत्र और दो ही कानोंका उपलब्ध होता है—

'अनन्तश्रुतिनेत्रश्च' (गणेशपुराण, क्रीडा० ७९ । १८)

श्रीव्यासजीने उन्हें 'चारुकर्णविभूषित' कहा है। उन्होंने श्रीगणेशजीकी वन्दना की है—

गजवक्त्रं सुरश्रेष्ठं चारुकर्णविभूषितम् ।
पाशाङ्कुशधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम् ॥
(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६ । ७)

'उनके कर्ण-कुण्डलोंसे तेज झरता रहता है। ऐसा लगता है, मानो वे दो सूर्यबिम्ब हों'—

'कुण्डले भ्राजदंशुभ्यां सूर्यबिम्बे इवापरे ॥'
(गणेशपुराण, उपा० २१ । ११)

मणिकुण्डलोंकी प्राप्ति गणेशजीको सूर्यसे हुई थी—
'सूर्यश्च मणिकुण्डले।' (ब्रह्मवैवर्तपु०, गणपति० १३ । ८)

श्रीगणेशजीका मस्तक सिन्दूरसे अरुण तथा मुकुटसे विभूषित रहता है—

मुकुटेन विराजन्तं मुक्तारत्नयुजा शुभम् ।
रक्तचन्दनलिप्ताङ्गं सिन्दूरारुणमस्तकम् ॥
(गणेशपुराण, उपा० १४ । २१)

उनके मस्तकपर कस्तूरीका भव्य तिलक शोभित रहता है। देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर गणेशजीके प्रकट होनेके प्रसङ्गमें इसकी पुष्टि होती है—

'क्षुद्रघण्टाक्वणत्पादं कस्तूरीतिलकोज्ज्वलम् ।'
(गणेशपुराण, क्रीडा० ७८ । ११)

श्रीगणेशजी अपने विराट् रूपमें अनन्तशीर्षयुक्त हैं—

यो देवः सर्वभूतेषु गूढश्चरति विश्वकृत् ।
सोऽनन्तशीर्षोऽनन्तश्रीरनन्तचरणः स्वराट् ॥
(गणेशपुराण, क्रीडा० ७९ । २०)

श्रीगणेशजीके मस्तकका अलंकार चन्द्रमा है, जिसका वर्णन यों उपलब्ध होता है—

'सिंहारूढा दशभुजा दशायुधविराजिता ।'
(गणेशपुराण, क्रीडा० १८ । १९)

गणेशजीके हाथमें कमण्डलु शोभित रहता है । ध्वजगणपति के ध्यानमें कमण्डलुका उल्लेख है । ध्वजगणपतिके हाथमें पुस्तक भी शोभित है—

यः पुस्तकाक्षगुणदण्डकमण्डलुश्री-
निर्वर्त्यमानकरभूषणमिन्दुवर्णम् ।
तं वैरमाननचतुर्भुजशोभमानं
त्वां संस्मरेद् ध्वजगणाधिपते स धन्यः ॥
(क्रियाक्रमद्योति)

उपर्युक्त श्लोकमें ही वर्णन है कि श्रीगणेशजीका हाथ दण्डसे विभूषित है । दण्ड पुरुष आयुध है । यह पुरुषके आकारका है, इसका कृष्ण—काला वर्ण है तथा इसके नेत्र लाल हैं—

'दण्डोऽपि पुरुषः कृष्णो रौद्रो लोहितलोचनः ।'
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

श्रीगणेशजीके हाथमें चक्र शोभित रहता है । चक्र नपुंसक आयुध है । 'उत्तरकामिकागम'के अष्टषष्टितम पटलमें चक्रको नपुंसक आयुध ही कहा गया है—

'आये शक्तिगदे श्वेते चक्रपद्मे नपुंसके ।'

'एलीमेंट्स् ऑफ हिंदू आइकोनोग्राफी'के प्रथम खण्डमें चक्रको पुरुष आयुध स्वीकार किया गया है । उसके नेत्र लाल होते हैं तथा वह अनेक आभूषणोंसे अलंकृत होता है । उसके हाथमें चामर रहता है । तेनकाशीके विश्वनाथस्वामी मन्दिरमें स्थापित लक्ष्मीगणपतिके हाथमें चक्र स्थित है । विघ्नेश्वर गणपतिके हाथमें चक्र रहता है—

'शङ्खेक्षुचापकुसुमेषुकुठारपाश-
चक्राब्ददन्तसृणिमञ्जरिकाशराद्यैः ।'
(श्रीतत्त्वनिधि)

'शङ्ख' पुरुष आयुध है । यह दिव्य पुरुषाकार है तथा श्वेत वर्णका है । इसके नेत्र देखनेमें सुन्दर हैं—

'शङ्खोऽपि पुरुषो दिव्यश्शुक्लश्शुभलोचनः ।'
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

भुवनेशगणपतिके हाथमें शङ्ख विभूषित रहता है । इसे अविद्याका नाशक कहा गया है । 'एलीमेंट्स् ऑफ हिंदू आइकोनोग्राफी'में उल्लेख है कि वराहपुराणमें शङ्खका अविद्यानाशकके रूपमें वर्णन है ।

खड्ग पुरुष आयुध है । इसका शरीर श्याम वर्णका है तथा इसके नेत्र क्रोधयुक्त हैं—

'खड्गश्च पुरुषः श्यामशरीरः क्रुद्धलोचनः ।'
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

'खड्ग' अज्ञानका नाश करता है । उपर्युक्त सद्‌ग्रन्थगत वराहपुराणमें ऐसी स्वीकृति है । वीरविघ्नेश्वरको खड्गयुक्त निरूपित किया गया है—

'वेतालशक्तिशरकार्मुकखेटखड्ग-
खट्वाङ्गमुद्गरगदाङ्कुशनागपाशान् ।'
(क्रियाक्रमद्योति)

उपर्युक्त श्लोकमें गणेशजीके हाथोंको खेट, खट्वाङ्ग और मुद्गर आदिसे विभूषित कहा गया है ।

हेरम्बगणपतिका ध्यान है—

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं च अभयं मोदकं तथा ।
दण्डं शराक्षमाले च मुद्गरं चाङ्कुशं तथा ।
त्रिशूलं चेति हस्तेषु दधानं कुन्दवत् सितम् ॥
(देवतामूर्तिप्रकरण ८ । ७७)

श्रीगणेशजीका हाथ दन्तविभूषित है । दाँत उनके आगेके दाहिने हाथमें शोभित है । कालडीके शारदा-देवी मन्दिरमें स्थापित गणेश विग्रहके दाहिने हाथमें दाँत भूषित है । 'रूपमण्डन'में वर्णन है—

वरं तथाङ्कुशं दन्तं दक्षिणे च परश्वधम् ।
वामे कपालं बाणाक्षपाशान् कौमोदकीं तथा ॥
धारयन्तं करैरेभिः पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
हेरम्बं मूषकारूढं कुर्यात् सर्वार्थकामदम् ॥

अक्षरगणपतिके ध्यानमें वर्णन है कि दाँत उनके दाहिने हाथमें शोभित है—

गजेन्द्रवदनं साक्षाच्चलत्कर्णसुचामरम् ।
हेमवर्णं चतुर्बाहुं पाशाङ्कुशधरं वरम् ॥
स्वदन्तं दक्षिणे हस्ते सव्ये त्वाम्रफलं तथा ।
पुष्करे मोदकं चैव धारयन्तमनुस्मरेत् ॥
(श्रीतत्त्वनिधि)

दाहिने हाथमें दाँत होनेकी पुष्टि 'अंशुमद्भेदागम'में भी उपलब्ध होती है । उसमें उल्लेख है—

'स्वदन्तं दक्षिणे हस्ते वामहस्ते कपित्थकम् ।'

बालगणपतिके हाथ केला, आम, कटहल, ईख,

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः ।
तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम् ॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कुमार० १९ । ३९)

आशय यह है कि जो माता पिताकी पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसको पृथ्वीकी परिक्रमा करनेका फल मिलता है । इस तरह श्रीगणेशजीने अपने विवाहित होनेकी योग्यता प्रमाणित की । प्रजापति विश्वरूपको जब इसका पता चला तो उनको बड़ी प्रसन्नता हुई । उनके सिद्धि और बुद्धि नामकी दो कन्याएँ थीं, जो दिव्य रूपसे सम्पन्न तथा सर्वाङ्गशोभना थीं—

विश्वरूपप्रजेशस्य दिव्यरूपे सुते शुभे ।
सिद्धिबुद्धिरिति ख्याते सुभे सर्वाङ्गशोभने ॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कुमार० २०

सिद्धि-बुद्धि—दोनोंसे गणेशजीका विवाह गया । गणेशकी पत्नी सिद्धिसे क्षेम और बुद्धिसे शोभासम्पन्न दो पुत्र हुए—

सिद्धेर्गणेशपत्न्यास्तु क्षेमनामा
बुद्धेर्लाभाभिधः पुत्र आसीत्

(शिवपुराण, ...

गणेशपुराणके उपासनाखण्डमें ... गणेशका पूजन किया । श्रीगणेशजीकी सम्पन्नताके लिये दक्षिणाके समय दो नेत्र सुन्दर थे, मुख प्रसन्न था; वे शोभित थीं, दिव्य गन्धसे युक्त थीं; ... मालाएँ पहने थीं । ब्रह्माजीने उन... करनेकी इच्छा की । गणेशजीको कर्पूर पुष्पाञ्जलि समर्पित की; उनकी प्रदक्षिणा की । ब्रह्माद्वारा पूजित गणेश ... कर अन्तर्धान हो गये—

समस्य सर्वंवासस दर्शनं ...
एवं सम्पूजितस्तेन ब्रह्म ...
ततः प्रसन्नो भगवान् सिद्धि ...
सिद्धिबुद्धी गृहीत्वा तं अन्तर्धानगत ...

(गणेशपु०, उ० ...

नारदपुराणमें गणेशजीका ध्यान है । ... पत्नी (सिद्धि) द्वारा आलिङ्गन निर्वहित ... श्रीगणेशजीने अपनी चारों भुजाओंमें ... ... धारण कर रखी हैं । ... उनसे सटकर बैठी हैं, ... तीन नेत्र हैं—

... ध्यायेत् ...
रक्ताङ्गं त्रिनेत्रं ...

(नारदपु०, पूर्व०, ...

... विवाहके ...
... स्वरूप ...

मूषक-वाहन

(लेखक—श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव, एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०)

…के तीन रूप हैं—स्थूल, सूक्ष्म एवं पर । स्थूल …ात्मक विश्वके रूपमें अभिव्यक्त वैराजरूप है, …के प्रतीक हैं—अग्नि, विद्युत्, सूर्य एवं चन्द्र । …हिरण्यगर्भरूप है, जो सूत्रात्मा या अव्यक्तरूपसे …का धारण, संचालन एवं नियन्त्रण करता है । …जगत्के आधाररूपमें स्थित सूक्ष्म जगत्का …है। पिण्डदेहगत सूक्ष्म शरीरमें हृदयचक्र, भ्रूमध्य …रन्ध्रमें नादब्रह्म अथवा ज्योतिब्रह्मके रूपमें इसका …भव होता है । ब्रह्मका पर रूप सबका साक्षी, …री, अच्युत, सच्चिदानन्दात्मक परतत्त्व है । नानाविध …स ब्रह्मके ही अङ्ग-प्रत्यङ्गरूप विशिष्ट शक्तियाँ हैं, …भिन्न देवरूपकी भाँति प्रतीत होते हुए विश्व-प्रशासनके …के विशिष्ट क्षेत्रका अधिपतित्व करते हैं । इन देवोंके …रूप हैं—अमूर्त और मूर्त । पञ्चभूतात्मक जगत्में ये …रूपसे निवास करते हैं एवं अपने-अपने सूक्ष्म देवलोकोंमें …मूर्तरूपमें स्थित होते हैं । दिव्य मूर्तरूपमें देवोंके …अपने वाहन, रथ, आयुध आदि देवोंका अपना-अपना …प शक्ति ही होती है—यह बात निरुक्तमें स्पष्टरूपसे …ही गयी है । प्रत्येक देवताके वाहन-आयुधादि …त्य देवरूप ही होता है, उससे भिन्न नहीं; अतएव …सके देवताके वाहन-आयुधादिकी देवरूपमें ही पूजा …है, यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये ।

…गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद्के अनुसार श्रीगणपति …वाङ्मयी एवं ज्ञानमयी शक्तिका प्रतिनिधित्व करते …अतः उन्हें प्रत्यक्ष वाङ्मयरूप चिन्मय ब्रह्म कहा गया … … केन्द्र है । ब्रह्मज्ञानरूपी महासिद्धि देकर मोक्ष प्रदान करते हैं। इसीलिये वे ज्ञानियों एवं योगियोंके उपास्य हैं तथा गुरुके भी गुरु हैं। वराहपुराण इस तथ्यकी पुष्टि करता है कि गणेश पृथ्वीतत्त्व एवं आकाशतत्त्व—दोनोंके अधिपति हैं;[1] अतएव सभी देवोंमें उनकी महिमा अधिक है । पृथ्वीतत्त्वसे सम्बन्धित रूप ही उनका स्थूल रूप है, जो विघ्नकर, विघ्नहर एवं मङ्गलदायक है ।

निदानतः शास्त्रकी परिभाषाके अनुसार देवताका वाहन उसका अपना तेज ही होता है । देवताको उसके तेजके अतिरिक्त अन्य कौन उसे धारण एवं वहन कर सकता है । पर यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है कि एक ही देवतत्त्व सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंके तारतम्यसे, परस्पर न्यून-सम-अधिकतम मात्रारूपमें मिश्रणसे तथा इनका पञ्चतत्त्वोंके साथ संयोग होनेके कारण नाना रूप धारण कर लेता है । सत्त्वगुणके रूपमें स्थित ज्ञान और प्रकाश ही तमोगुणके क्षेत्रमें आकर नानाविध अविद्या और अन्धकारका रूप धारण कर लेते हैं । इसी प्रकार भौतिक जीवनके निम्न धरातलमें देवताका वाहन उन अज्ञान और अन्धकारकी शक्तियोंका भी प्रतीक बन जाता है, जिसका नियन्त्रण वह देवता करता है ।

परमात्मा सभी प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामी-रूपसे निवास करता हुआ उनके पिण्ड-विश्वका धारण, पोषण, संचालन एवं विनाश कर रहा है । प्रत्येक प्राणी (चाहे वह मूषक-समान अति लघुकाय हो या हस्ति सदृश अति विशालकाय) का देह ही देववाहन है। यह सूक्ष्म रहस्य …भी नाना पशु-पक्षियोंकी देववाहनके रूपमें कल्पना करके … गया है । श्रीगणपति विशालकाय हैं एवं उनका मूषक अति लघुकाय है । सरसरी तौरपर देखनेसे … असम्भव एवं हास्यास्पद प्रतीत होती है, पर … बुद्धिपूर्वक विचार करें तो यह संकेत मिलता है कि

1. पृथिव्यां … … … ।
(वराहपु० १० । ११)

… … ।
(वराहपु० १० । १४)

—रूक रहकर देखना होगा कि उसके शरीर, न और बुद्धिके क्षेत्रमें कहीं कोई कोना ऐसा है, जहाँ अन्धकारकी इन शक्तियोंका गुप्त वास है अवसर पानेके छायोंमें उसपर आक्रमण कर उसकी साधनाकी बहुमूल्य सम्पत्तिको कुतर-कुतरकर नष्ट है। मूषकवाहन निरन्तर जागरूक रहने एवं सर्वत्र नियन्त्रणपूर्ण रहनेका संदेश देता है।

…तेक जीवन अन्नकी बहुलता एवं सम्पन्नतापर …त है। अध्यात्म साधनाका प्रारम्भ अन्नमय कोशकी …से प्रारम्भ होता है। अतएव तैत्तिरीय उपनिषद् ३। ९का …के लिये आदेश है—'अन्नं बहु कुर्वीत।' पर्याप्त अन्न उपजाओ और अन्नका संग्रह कर अतिथि आदिका पोषण करो।' पृथ्वीको धान्यसे सम्पन्न करना अन्न-ब्रह्मकी उपासना है। धान्योत्पत्ति एवं कृषिका सबसे बड़ा शत्रु मूषक है। पृथ्वीतत्त्वके अधिपति एवं जीवोंकी मङ्गल-सिद्धिके देवता श्रीगणेशका मूषक-वाहनत्व यह संकेत देता है कि जीवनमें प्रचुर पौष्टिक धान्यकी उपलब्धिके लिये मूषक-जैसे कृषि विनाशक जन्तुओंका पूर्ण नियन्त्रण आवश्यक है।

इस प्रकार श्रीगणपतिका वाहन मूषक भौतिक जीवनसे लेकर अध्यात्म-जीवनतकके लिये नाना अभिप्रायोंके सार्थक एवं गम्भीर संकेत देता है। देवोपासकोंको इन संकेत-रहस्योंको समझकर उनके अनुसार आचरण करना चाहिये।

'परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम'

ऋषिरुवाच

…निर्विकल्पं निराकारमेकं निरानन्दमानन्दमद्वैतपूर्णम्। परं निर्गुणं निर्विशेषं निरीहं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम॥
…मिनं चिदानन्दरूपं चिदाभासकं सर्वगं ज्ञानगम्यम्। मुनिध्येयमाकाशरूपं परेशं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम॥
…गं कारणज्ञानहरं सुरादिं सुखादिं युगादिं गणेशम्। जगद्व्यापिनं विश्ववन्द्यं सुरेशं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम॥
…तो ब्रह्मरूपं श्रुतिज्ञं सदा कार्यसक्तं हृदाऽचिन्त्यरूपम्। जगत्कारणं सर्वविद्यानिदानं परब्रह्मरूपं गणेशं नताः स्मः॥
…त्त्वयोगं मुदा क्रीडमानं सुरारीन् हरन्तं जगत्पालयन्तम्। अनेकावतारं निजज्ञानहारं सदा विश्वरूपं गणेशं नमामः॥
…गिनं रुद्ररूपं त्रिनेत्रं जगद्धारकं तारकं ज्ञानहेतुम्। अनेकागमैः स्वं जनं बोधयन्तं सदा सर्वरूपं गणेशं नमामः॥
…महारं जनाज्ञानहारं त्रयीवेदसारं परब्रह्मसारम्। मुनिज्ञानकारं विदूरेविकारं सदा ब्रह्मरूपं गणेशं नमामः॥
…र्वधीस्तोषयन्तं करार्द्रैः सुरौघान् कलाभिः सुधास्राविणीभिः। दिनेशांशुसंतापहारं द्विजेशं शशाङ्कस्वरूपं गणेशं नमामः॥
…स्वरूपं नभोवायुरूपं विकारादिहेतुं कलाधारभूतम्। अनेकक्रियानेकशक्तिस्वरूपं सदा शक्तिरूपं गणेशं नमामः॥
…परूपं महत्तत्त्वरूपं धराचारिरूपं दिगीशादिरूपम्। असत्सत्स्वरूपं जगद्धेतुरूपं सदा विश्वरूपं गणेशं नताः स्मः॥
… मनः स्थापयेद् द्वियुग्मे जनो विघ्नसंघातपीडां लभेत। लसत्सूर्यबिम्बे विशाले स्थितोऽयं जनो ध्वान्तपीडां कथं वा लभेत॥
…मिताः सर्वथाज्ञानयोगाद्वलब्धास्तवाङ्घ्रिं बहून् वर्षपूगान्। इदानीमवाप्तास्तवैव प्रसादात्प्रपन्नान् सदा पाहि विश्वम्भराद्य॥
… पठेत्प्रातरुत्थाय धीमान् त्रिसंध्यं सदा भक्तियुक्तो विशुद्धः। सुपुत्रान् श्रियं सर्वकामाँल्लभेत परब्रह्मरूपो भवेदन्तकाले॥
…त्थं स्तुतो गणेशस्तु संतुष्टोऽभून्महामुने। कृपया परयोपेतोऽभिधातुमुपचक्रमे॥

इति ऋषिकृतो श्रीगणपतिस्तवः सम्पूर्णः।

…षि बोले—जो अजन्मा, विकल्परहित, निराकार, अद्वितीय, लौकिक आनन्दसे शून्य, आत्मानन्दस्वरूप, …ावसे पूर्ण, सर्वोत्कृष्ट, निर्गुण, निर्विशेष, निरीह एवं परब्रह्मस्वरूप हैं, उन गणेशका हम भजन करें। जिनका …स्वरूप (निरूपण) तीनों गुणोंसे अतीत है, जो चिदानन्दस्वरूप, चिदाभासक, सर्वव्यापी, ज्ञानगम्य, मुनियोंके ध्येय, …शस्वरूप एवं परमेश्वर हैं, उन परब्रह्मरूप गणेशका हम भजन करें। जो जगत्के कारण हैं, कारणज्ञान जिनका …है, जो देवताओं, सुखों और युगोंके आदिकारण हैं, जो प्रमथगणोंके स्वामी, विश्वव्यापी, जगद्वन्द्य तथा देवेश्वर … परब्रह्मरूप गणेशका हम भजन करें। जो रजोगुणके योगसे ब्रह्माका रूप धारण करते हैं, वेदोंके ज्ञाता हैं और …सृष्टिकार्यमें संलग्न रहते हैं, जिनका पारमार्थिक रूप मनसे अचिन्त्य है, जो जगत्की उत्पत्तिके हेतु तथा सम्पूर्ण …ाओंके आदिकारण हैं, उन परब्रह्मरूप गणेशको हम नमस्कार करते हैं। जो सदा सत्त्वगुणसे युक्त विष्णुरूप हैं, …नन्दसे खेलते रहते हैं, असुरोंका नाश करते और जगत्की रक्षामें संलग्न रहते हैं, जिनके अनेक अवतार हैं

श्रीगणेश-लीला

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

[भगवान्‌के लीला-अवतारोंके चरित विभिन्न पुराणों-शास्त्रोंमें विभिन्न रूपोंमें उपलब्ध होते हैं। भगवान् लीलाविहारी सर्वसमर्थ हैं, एवं कल्पभेदसे उनके अनन्त अवतार हुए हैं; अतएव उनके चरित भी अनन्त हैं। 'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता' से संतशिरोमणि श्रीतुलसीदासजीने इसी भावको स्पष्ट किया है। अतः भगवान्‌के सभी चरित यथार्थ हैं एवं भक्तोंके प्राण हैं। प्रस्तुत प्रसङ्गका अध्ययन करते समय इस बातको निरन्तर स्मृतिमें रखना चाहिये; तभी भगवान् श्रीगणेशकी लीलाओंके आस्वादनका वास्तविक आनन्द एवं फल प्राप्त हो सकेगा—सम्पादक]

प्रस्तावना

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मस्वरूपाय चारवे। सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः॥[1]

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणपतिखण्ड १३। ३२)

सिद्धि-सदन श्रीगणेश सर्वात्मा शिव और धर्ममध्यनिवासिनी पार्वतीके प्राणप्रिय पुत्र तथा परम तेजस्वी, परम [illegible] षडाननके अग्रज हैं। कहीं-कहीं ये स्वयं उनके अनुज माने जाते हैं। ये खर्व (छोटे कदवाले), अरुणवर्ण, [illegible], गजमुख, शूर्पकर्ण, लम्बोदर, अरुण-वस्त्र, त्रिपुण्ड्रतिलक, मूषकवाहन, पार्वती-पुत्र, विद्या-वारिधि एवं मङ्गलकी [illegible] हैं। भगवान् गणपति बुद्धिके अधिष्ठाता हैं। वे साक्षात् प्रणवरूप हैं। जिन्हें भौतिक सिद्धि चाहिये, वे इस युगमें [illegible]जीको शीघ्र प्रसन्न कर पाते हैं[2]। पार्वतीनन्दन अत्यल्प श्रमसे ही मुदित और द्रवित हो जाते हैं। इन मङ्गलवपुके [illegible] स्मरण, ध्यान, जप, आराधना एवं प्रार्थनासे मेधाशक्ति तीव्र होती है। समस्त कामनाओंकी पूर्ति और विघ्नोंका [illegible]ण हो जाता है। त्रयतापका शमन एवं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष करतलगत हो जाते हैं। मोदक-प्रिय गजमुखकी [illegible]तासे निरन्तर आनन्द-मङ्गलकी वृद्धि होती ही रहती है।

वेदविहित समस्त कर्मोंमें प्रथमपूज्य अम्बिकानन्दन गणेश नित्य देवता हैं, किंतु भिन्न-भिन्न कालों एवं अवसरोंपर [illegible]के मङ्गलके लिये इनका मङ्गलमय लीला-प्राकट्य होता है। इनकी लीला और इनके कर्म अद्भुत और अलौकिक होते [illegible] करुणामूर्ति गणेश सदा ही अधर्म, अनीति, अनाचार एवं पाप-तापका सर्वनाश कर साधु-परित्राण एवं सद्धर्मकी स्थापना [illegible] उसका संवर्धन करते हैं।

---

1. इस मन्त्रका परिचय और माहात्म्य इस प्रकार है—

द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रः सर्वकामदः। धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदः सर्वसिद्धिदः॥
पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिस्तु मन्त्रिणः। मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स च विष्णुश्च भारते॥
विघ्नानि च पलायन्ते नामस्मरणेन च। महावाग्मी महासिद्धः सर्वसिद्धिसमन्वितः॥
गरपतिर्वरो यस्य यत्र साक्षात् सुनिश्चितम्। महाकवीन्द्रो गुणवान् विदुषां च गुरोर्गुरुः॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० १३। ३४-३७)

'श्रीगणेशजीके इस मन्त्रमें बत्तीस अक्षर हैं। यह सम्पूर्ण कामनाओंका दाता, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूप फल देनेवाला सर्वसिद्धिप्रद है। इसके पाँच लाख जपसे ही साधकको मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है। भारतवर्षमें जिसे मन्त्रसिद्धि [illegible] है, वह विष्णुतुल्य हो जाता है। इसके नाम-स्मरणसे सारे विघ्न भाग जाते हैं। निश्चय ही वह महान् वक्ता, [illegible] सम्पूर्ण सिद्धियोंसे सम्पन्न, श्रेष्ठ कवियोंमें भी श्रेष्ठ, गुणवान्, विद्वानोंके गुरुका गुरु तथा जगत्‌के लिये साक्षात् [illegible] हो जाता है।'

2. सिद्धियोंके विवरणके लिये श्रीमद्भागवतके ११वें स्कन्धके १५वें अध्यायमें श्लोक ३से ८तक देखने चाहिये।

[illegible] कलौ चण्डीविनायकौ।

श्रीशिव-दम्पतीके श्रीगणेश

तेऽकस्तं तु बालमर्कसमद्युतिम्।
सौहार्दाद् पुपुषुः स्तन्यविस्रवैः॥
त्तिकेयः स त्रैलोक्ये सचराचरे।
न्दतो प्रसो गुहावासाद् गुहोऽभवत्॥
(महा०, अनु० ८६। १२-१४)

ान् शिशु अग्निके समान प्रकाशित हो रहा
रकी आकृति दिव्य थी। वह देखनेमें
ान पड़ता था। वह दिव्य सरकण्डेके वनमें
के दिनों दिन बढ़ने लगा। कृत्तिकाओंने
ालक अपनी कान्तिसे सूर्यके समान
है, इससे उनके हृदयमें स्नेह उमड़
ौहार्दवश अपने स्तनोंका दूध पिलाकर
रने लगीं। इसीसे चराचर प्राणियोंसहित
ार्त्तिकेयके नामसे प्रसिद्ध हुआ। स्कन्दन
ारण वह 'स्कन्द' कहलाया और गुहामें वास
से विख्यात हुआ।''

ब्रह्मा, क्षीरोदधिशायी विष्णु, शचीपति
र् भुवनभास्कर आदि समस्त देवताओंने
दर धूप, खिलौने, छत्र, चँवर, भूषण और
द्वारा कुमार षड्वदनका सेनापतिके पदपर
भगवान् श्रीविष्णुने उन्हें सब प्रकारके
केये। धनाधिपति कुबेर, अग्नि और वायुने
... सेना, तेज और वाहन अर्पित
कार्त्तिकेयको अनन्त पदार्थ
...ने पुत्रने देखकर स्कन्दकी

आपकी
संतुष्ट

...की

...सुर-

दुराचारी एवं क्रोधी भी है। हमलोग उस असुरसे भयभीत और त्रस्त हैं। अतएव आप उक्त दुर्दमनीय तारकासुरका वध कीजिये। यही एक कार्य शेष रह गया है।'

'तथास्तु!' दुःखी देवताओंके वचन सुनते ही षडाननने कह दिया और भू-कण्टक तारकासुरका वध करनेके लिये वे देवताओंके पीछे-पीछे चल पड़े।

कार्तिकेयका आश्रय प्राप्त हो जानेपर सुरेन्द्रने अपना एक दूत भयानक आकृतिवाले अजेय तारक असुरके पास भेजा।

'असुरराज! देवराज इन्द्रने संदेश दिया है।' दूतने तारकासुरके पास जाकर कहा—'वे देवगण तुमसे युद्ध करने आ रहे हैं, तुम अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये जो भी प्रयत्न करना चाहो, कर लो।'

'निश्चय ही सुरेन्द्रको कोई आश्रय प्राप्त हो गया है।' दूतके चले जानेपर असुरराजने विचार किया—'अन्यथा वे ऐसी बात नहीं कह सकते थे।'

'ऐसा कौन वीर पुरुष है, जिसे मैंने अबतक परास्त नहीं किया है।' तारकासुर पुनः विचार कर ही रहा था कि उसे बन्दियोंके द्वारा बालक विशाखका स्तवन सुनायी पड़ा।

'तुम्हारा वध बालकके द्वारा होगा।' दैत्यराज तारकको पितामहका वर स्मरण हो आया। वह भयभीत हो गया, तथापि उसने शस्त्र धारण किया और अपनी दुर्दमनीय सेनाके साथ कुमारके सम्मुख डट गया।

'बालक! तू युद्ध क्यों चाहता है?' तारकासुरने अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्न सुकोमल कुमारको देखकर कहा—'जा, कन्दुक खेल। तू निरा बच्चा है। युद्ध बलात् तेरे सिरपर लाद दिया गया है। यह तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय हुआ है। अभी तुझे समझ नहीं है। जा, घर चला जा।'

'तारक! यहाँ शास्त्रार्थ नहीं करना है।' कुमारने स्पष्ट शब्दोंमें तारकासुरसे कहा—'भयंकर संग्राममें शस्त्रोंके द्वारा ... होती है। तुम मुझे शिशु समझकर मेरी ... विषधरका नन्हा बच्चा भी मार डालनेमें ... बालसूर्यको और भी देखना कठिन ... छोटे मन्त्रमें भी अद्भुत शक्ति होती है; ...म भी दुर्जय हैं। तुम मुझे पराजित नहीं

तो तुम स्वर्गके मार्गमें स्थित हो उनके धर्मकार्यमें विघ्न उत्पन्न करो; अर्थात् ऐसे यज्ञकर्ताको स्वर्ग मत जाने दो। जो इस जगत्में अनुचित ढंगसे अन्यायपूर्वक अध्ययन, अध्यापन, व्याख्यान और दूसरा कार्य करता हो, उसके प्राणोंका तुम सदा ही हरण करते रहो। नरपुंगव प्रभो! वर्णधर्मसे च्युत स्त्री-पुरुषों तथा स्वधर्मरहित व्यक्तियोंके भी प्राणोंका तुम अपहरण करो। विनायक! जो स्त्री-पुरुष ठीक समयपर सदा तुम्हारी पूजा करते हों, उनको तुम अपनी समता प्रदान करो। हे बाल गणेश्वर! तुम पूजित होकर अपने युवा एवं बूढ़े भक्तोंकी भी सब प्रकारसे इस लोकमें तथा परलोकमें भी रक्षा करना। तुम विघ्नगणोंके स्वामी होनेके कारण तीनों लोकोंमें तथा सर्वत्र ही पूज्य एवं वन्दनीय होओगे, इसमें संदेह नहीं। जो लोग मेरी, भगवान् विष्णुकी अथवा ब्रह्माजीकी भी यज्ञोंद्वारा अथवा ब्राह्मणोंके माध्यमसे पूजा करते हैं, उन सबके द्वारा तुम पहले पूजित होओगे। जो तुम्हारी पूजा किये बिना श्रौत, स्मार्त या लौकिक कल्याणकारक कर्मोंका अनुष्ठान करेगा, उसका मङ्गल भी अमङ्गलमें परिणत हो जायगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंद्वारा भी तुम सदा का[illegible] भक्ष्य भोज्य आदि शुभ पदार्थोंसे पूजि[illegible] लोकोंमें जो चन्दन, पुष्प, धूप-दीप आदिके[illegible] किये बिना ही कुछ पानेकी चेष्टा करेंगे, वे [illegible] और कोई, उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं हो[illegible] मनुष्य तुम विनायककी पूजा करेंगे, वे नि[illegible] देवताओंद्वारा भी पूजित होंगे। जो लोग [illegible] ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र अथवा अन्य देवताओंकी [illegible] किंतु तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे, उन्हें तुम वि[illegible] पहुँचाओगे।'

सर्वात्मा प्रभु शिवका आशीर्वाद प्राप्त[illegible] गणपतिने विघ्नगणोंको उत्पन्न किया और उन[illegible] उन्होंने भगवान् शंकरके मङ्गलमय चरणों[illegible] और प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया। फिर वे त्रैलोक्य[illegible] के सम्मुख खड़े हो गये। तबसे लोकमें श्रीगणपति[illegible] होती है। इसके बाद श्रीगणेशजीने दैत्योंके धर्मम[illegible] पहुँचाना आरम्भ कर दिया।

(ग) ब्रह्मवैवर्तपुराणमें

शिवकी शिवाको सोदाहरण पुण्यक-व्रत करनेकी प्रेरणा

ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार शिव-प्राणवल्लभा पार्वतीके [illegible]ब्रह्ममय अङ्कमें श्रीकृष्णरूपी परमतत्त्व ही व्यक्त हुआ था, [illegible] पाप-संतापहारिणी एवं निखिलानन्दवर्द्धिनी कथा भगवान् नारायणने देवर्षि नारदको इस प्रकार सुनायी थी—

वैराग्यज्ञाननिरता शैलपुत्री पार्वतीके साथ सर्वसाक्षी भगवान्के मङ्गल-परिणयके अनन्तर चराचरात्मा शिव उन्हें [illegible] लेकर निर्जन वनमें चले गये। वहाँ दीर्घकालतक देवाधि-[illegible] महादेवका विहार चलता रहा। एक दिन धर्मज्ञा पार्वतीने [illegible]न् शंकरसे निवेदन किया—'प्रभो! मैं एक श्रेष्ठ पुत्र [illegible]ती हूँ।'

'प्रिये! मैं तुम्हें सम्पूर्ण व्रतोंमें एक श्रेष्ठ व्रत बताता हूँ, [illegible] सम्पूर्ण अभीष्टोंका बीजरूप, परम मङ्गलदायक तथा [illegible]दान करनेवाला है।' सर्वभूतेश भगवान् त्रिपुरारिने [illegible] सुन्दरी पार्वतीसे प्रसन्न मनसे कहा—'उस परम शुभद व्रतका नाम 'पुण्यक' है। तुम श्रीहरिका स्मरण क[illegible] प्रारम्भ करो। इसके अनुष्ठानकी पूर्ति एक वर्षमें हो[illegible]

'धर्मात्मा मनुकी सती पत्नी पुत्रके बिना दुःख[illegible] कात्यायन नीलकण्ठने आगे कहा। 'वे ब्रह्मलोकमें [illegible] समीप पहुँचीं।

'प्रभो! आप सृष्टिकर्ता और जगत्के कारणोंके भी [illegible] हैं।' सती शतरूपाने सर्वलोकपितामहसे विनयपूर्वक क[illegible] "पुत्रके बिना गार्हस्थ्य-जीवन सर्वथा नीरस और व्यर्थ [illegible] है। पुत्रके बिना स्त्री-पुरुषका जन्म, ऐश्वर्य और ध[illegible] निष्फल ही होता है। तप एवं दानका पुण्य जन्मा[illegible] सुखदायक सिद्ध होता है, परंतु पुत्र पिताको (इसी जन्म[illegible] सुख, मोक्ष और हर्ष प्रदान करता है। पुत्र 'पुत्' ना[illegible] नरकसे रक्षा करनेका हेतु होता है। अतएव वन्ध्याको [illegible] प्रकार पुत्रकी प्राप्ति होती है, आप कृपापूर्वक बता[illegible] कर दीजिये।"

* [illegible]
[illegible] किया दम्पति[illegible]

॥ दुःखी हूँ। आप मुझे पुत्र-
:खी मनसे शतरूपने विधाताके
वनमें चली जाऊँगी। आप
आदि ग्रहण कीजिये; क्योंकि
क्या उपयोगिता है ?'
सती शतरूपा फूट-फूटकर

मत बताता हूँ, जो सम्पूर्ण
समस्त सत्कीर्तिप्रदायक तथा
ठान करनेसे तुम निश्चय ही
पुत्र प्राप्त करोगी।' रुदन
आश्वस्त करते हुए दयामय
ासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी
भुक्ति-मुक्ति प्रदायक परब्रह्म
गौर विधिपूर्वक आराधना
चाहिये। यह व्रत
और सम्पूर्ण विघ्नों
क द्रव्योंका दान
।'
सती व्रत
किया

में
प्राप्त
शक्तिको
स पुण्यमय
मङ्गलमय
प्रभावसे इन्द्राणीने
अनन्य भगवद्भक्त
, सूर्यपत्नीने
में प्राप्त किया था।
पत्नीने देवताओंके
अन्यतम सात्त्विक
। भाग्यवती भृगुपत्नीने
नके फलस्वरूप उन्हें
दैत्यगुरु शुक्र-जैसे
यह परम पुण्यमय व्रत
राजेन्द्रपत्नियों और देवियोंके लिये सुखसाध्य एवं आनन्दप्रद है। साध्वी स्त्रियोंके लिये तो यह व्रत प्राणाधिक प्रिय है।'

पुण्यक-व्रतकी संक्षिप्त विधि

सर्वधर्ममयी पार्वती अपने प्राणवल्लभ जगद्गुरु कर्पूरगौरके वचन अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुन रही थीं और कृपासिन्धु वृषवाहन कहते जा रहे थे—'माघ मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीके दिन इस व्रतका आरम्भ किया जाता है। उत्तम व्रतीको व्रतारम्भके पहले दिन उपवास करना चाहिये और दूसरे दिन ब्राह्ममुहूर्तमें शय्या त्यागकर शौचादिसे निवृत्त हो वह निर्मल जलमें स्नान करे। फिर आचमनादिके अनन्तर सर्वव्यापी श्रीहरिको अर्घ्य प्रदान कर शीघ्र ही घर लौट आवे। घरपर नित्यकर्म पूर्ण कर लेनेके बाद सुयोग्य पुरोहितका वरण कर स्वस्तिवाचनपूर्वक कलश-स्थापन करे। फिर संकल्पके द्वारा यह महान् व्रतानुष्ठान आरम्भ करे।'

फिर सौन्दर्य, नेत्रदीप्ति, विविध अङ्गोंके सौन्दर्य, पति- ... आदिके लिये विभिन्न वस्तुओंके संख्यासहित ...ण करनेका उपदेश करते हुए दयामय शिवने कहा— ...! पुत्र प्राप्तिके लिये कूष्माण्ड, नारियल, जम्बीर तथा श्रीफल—इन फलोंको श्रीहरिकी सेवामें समर्पित करना चाहिये। व्रत-कालमें नाना प्रकारके संगीत और वाद्यसे परम प्रभुको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करना उचित है। हरिभक्तिकी विशेष उपलब्धिके लिये सुगन्धित पुष्पोंकी (बिना टूटी हुई) एक लक्ष माला भक्तिपूर्वक प्रभुको चढ़ानी चाहिये। उनकी तुष्टिके लिये विविध प्रकारके मधुर एवं स्वादिष्ट व्यञ्जनोंका भोग लगाना आवश्यक है। तुलसीदलमिश्रित अनेक प्रकारके सद्गन्धपूरित पुष्प समर्पित करनेसे श्रीहरिको अत्यधिक प्रसन्नता प्राप्त होती है। जन्म-जन्मान्तरमें धन-धान्यकी वृद्धिके लिये व्रतकालमें व्रतीको प्रतिदिन एक सहस्र ब्राह्मणोंको तृप्तिकर भोजन कराना चाहिये।'

शिवने आगे बताया—'सुव्रते! प्रतिदिन पूजनके समय सुगन्धित सुमनोंसे भरी सौ अञ्जलियाँ समर्पितकर निखिलभुवन प्रभुके चरणोंमें सौ बार प्रणाम करना उचित है। व्रतकालमें छः महीनेतक हविष्यान्न,* पाँच मासतक फलाहार और एक पक्षतक

* अगहनी धान, मूँग, तिल, जौ, मटर, तिन्नी, साठी, ... दूध, दही, घी, शक्कर, ... कन्द, ... नमक, समुद्री नमक, बथुआ, मूली, ... केला, हर्रे और आँवला आदि हविष्यान्नके ...

, ब्याह्लेश्वरने समस्त अभ्यागतोंका सादर
रते हुए उनके अनुरूप स्वच्छ, सुन्दर एवं
 तथा भोजन आदिकी व्यवस्था की। उस
 कहना, जहाँ त्रैलोक्यपति शिव एवं
नी जगज्जननीका निवास हो।

 जगदीश्वरीके उक्त व्रतानुष्ठानके अवसरपर
दानाध्यक्ष, धनपति कुबेर कोषाध्यक्ष और स्वयं
आदेश प्रदान करनेवाले थे। वरुण परोसनेका
थे।

रसे पार उतारनेवाली सती शिरोमणि शिव-
नके अवसरपर दूध, दही, घी, तेल, मधु,
नी आदिकी लक्षाधिक सरिताएँ प्रवाहित
इसी प्रकार गेहूँ, चावल, जौ और चिउरे
य असंख्य ढेर लग गये थे। उक्त दिव्य
स्वर्ण, रजत, मूँगा और मणियोंकी राशि
मिल रही थी।

नियमिका गिरिजाके श्रेष्ठतम व्रतोत्सवपर
ोंने विविध प्रकारके सुन्दर, सुमिष्ट एवं
तैयार किये थे। उस समय एक लाख
 काम कर रहे थे। देवताओं और
वत नारायणने वहाँ भोजन किया।

 जब भगवान् नारायण रत्नसिंहासनपर
 चतुर ब्राह्मणोंने सुगन्धित ताम्बूल अर्पित
 नारायण देवता और ऋषियोंसे घिरे थे।
नपर श्वेत चँवर डुला रहे थे। ऋषि तथा
न कर रहे थे। गन्धर्वगण श्रुतिमधुर गीत

करुणा प्रभो! मेरी एक प्रार्थना सुनिये।'
अहिभूषणने बद्धाञ्जलि हो अत्यन्त विनयपूर्वक
ने हुए निवेदन किया—'शैलजा उत्तम
कामय पुत्र एवं पति-सौभाग्यकी कामना
 सर्वज्ञ एवं सर्वान्तर्यामी हैं। आप
 आज्ञा प्रदान करें।'

 पुनः श्रीकरुणामय प्रभुकी स्तुति की और
 देखकर मौन हो गये।

 ब्रह्मर्षियोंकी संतान प्राप्तिके लिये
 चाहती हैं, वह व्रतोंका
सारतत्त्व, दुराराध्य, सम्पूर्ण अभीष्ट फलको देनेवाला, सुखदायक एवं मोक्षप्रद है।' स्वर्गापवर्गदाता सर्वभूतपति शिवके वचन सुनकर श्रीहरि ठठाकर हँस पड़े। फिर उन्होंने महादेवजीसे कहा—'साध्वी शिवा पुण्यक-व्रतका अनुष्ठान करें। इस व्रताचरणसे सहस्रों राजसूय यज्ञोंका पुण्य प्राप्त होता है।'

'त्रिनेत्र!' श्रीनारायणने आगे कहा—"इस व्रतमें सहस्रों राजसूय यज्ञोंके समान धनका व्यय होता है, अतः यह व्रत सभी साध्वी महिलाओंद्वारा साध्य नहीं है। इस पुण्यमय पुण्यक-व्रतके प्रभावसे स्वयं परब्रह्म गोलोकनाथ श्रीकृष्ण पार्वतीके अङ्कमें क्रीडा करेंगे। उनका नाम 'गणेश' होगा; उनके स्मरणसे ही विघ्नोंका नाश हो जाया करेगा।"

श्रीनारायणके वचन सुनकर त्रैलोक्यपावन त्रिलोचन हर्षसे गद्गद हो गये। उन्होंने वह माङ्गलिक वार्तालाप अपनी प्राणप्रिया पार्वतीको सुनाया तो उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। मुदितमन पार्वती व्रतारम्भके लिये प्रस्तुत हुईं, उसी समय भगवान् शङ्करकी प्रेरणासे विविध प्रकारके देववाद्य बज उठे।

सत्यस्वरूपा उमाने स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण करनेके अनन्तर चावलपर सविधि रत्नकलश स्थापित किया। फिर रत्नसिंहासनोंपर समासीन श्रेष्ठ मुनियों एवं रत्नसिंहासनासीन पुरोहितकी विधिपूर्वक पूजा की। इसके साथ ही त्रैलोक्यतारिणी गिरिजाने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी अर्चना की।

इस प्रकार भगवती शैलजाने स्वस्तिवाचनपूर्वक व्रतारम्भ किया। तदनन्तर उन्होंने मङ्गल-कलशपर श्रीकृष्णका आवाहन कर उनका भक्तिपूर्वक षोडशोपचारसे पूजन किया। व्रतके विधानानुसार देवी उमाने त्रैलोक्यदुर्लभ पदार्थोंको अत्यन्त प्रीतिपूर्वक समर्पित किया। फिर उन्होंने तिल और घीकी तीन लाख आहुतियोंसे हवन कराया और देवताओं, अतिथियों एवं ब्राह्मणोंको बहुमूल्य व्यञ्जनोंके भोजनसे तृप्त किया। इस प्रकार परम सत्या साध्वी शिवप्रिया पुण्यक-व्रतके पालनीय प्रत्येक नियमोंका वर्षपर्यन्त श्रद्धा एवं विश्वासके साथ तत्परता पालन करती रहीं।

अद्भुत याचिक दक्षिणा

'सुव्रते! मुझे दक्षिणा चाहिये।' व्रत-समाप्तिपर पुरोहितने देवी पार्वतीसे कहा।

…गोलोकवासी श्रीकृष्ण गणेशके रूपमें आपके अङ्कमें …होकर क्रीड़ा करते हैं।'

इतना कहते-कहते अचानक वृद्ध ब्राह्मण वहीं अन्तर्धान …ये। वे परमेश्वर इस प्रकार अन्तर्हित होकर परम …ती, परम मङ्गलमयी एवं परम धन्या माता पार्वतीकी …पर नवजात शिशुके रूपमें लेटकर उनकी ओर …ने लगे—

शुद्धचम्पकवर्णाभः कोटिचन्द्रसमप्रभः।
सुखदृश्यः सर्वजनैश्चक्षुरश्मिविवर्द्धकः॥
अतीव सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः।
मुखं निरुपमं बिभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम्॥
सुन्दरे लोचने बिभ्रच्चारुपद्मविनिन्दके।
ओष्ठाधरपुटं बिभ्रत् पक्वबिम्बविनिन्दकम्॥
कपालं च कपोलं च परमं सुमनोहरम्।
नासाग्रं रुचिरं बिभ्रत् खगेन्द्रचञ्चुनिन्दकम्॥
त्रैलोक्येषु निरुपमं सर्वाङ्गं बिभ्रदुत्तमम्।
शयानः शयने रम्ये प्रेरयन् हस्तपादकम्॥
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिख० ८। ८५—८९)

'उस बालकके शरीरकी आभा शुद्ध चम्पकके समान …। उसका प्रकाश करोड़ों चन्द्रमाओंकी भाँति उद्दीप्त था। …लोग सुखपूर्वक उसकी ओर देख सकते थे। वह नेत्रोंकी …योतिको बढ़ानेवाला था। उसका अत्यन्त सुन्दर शरीर …कामदेवको विमोहित करनेवाला था। उसका अनुपम मुख …शरदीय पूर्णिमाके चन्द्रका उपहास कर रहा था। उसके …सुन्दर नेत्र मनोहर कमलको तिरस्कृत करनेवाले थे। ओठ …और अधरपुट ऐसे लाल थे कि उसे देखकर पका हुआ …बिम्बफल भी लज्जित हो जाता था। कपाल और कपोल परम …मनोहर थे। रुचिर नासिका गरुड़की चोंचको भी तिरस्कृत …करनेवाली थी। उसके सभी अङ्ग उत्तम थे। त्रिलोकीमें कहीं …उसकी उपमा नहीं थी। इस प्रकार वह रमणीय शय्यापर …सोया हुआ शिशु हाथ-पैर उछाल रहा था।'

किंतु अत्यन्त कृशकाय वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी अतिथिके …अकस्मात् अन्तर्हित हो जानेपर परमादर्श गृहिणी पार्वती …व्याकुल हो गयी। उन्होंने अपने प्राणपति शिवजीको उन्हें …ढूँढ़नेके लिये कहा और स्वयं दुःखी होकर कहने लगीं— …'क्षुधासे आकुल ब्रह्मन्! आप कहाँ चले गये? भूखसे …पीड़ित अतिथिके द्वारसे चले जानेपर गृहस्थका … …सर्व नष्ट हो जाता है।'

'जगज्जननी! शान्त हो जाओ।' अतिथिदेव अचानक अन्तर्हित हो जानेपर छटपटाती हुई अम्बिका आकाशवाणी सुनी—'और मन्दिरमें जाकर अपने पुत्रको देखो। पुण्यक-व्रतके फलस्वरूप परिपूर्णतम परात्पर श्रीकृष्ण ही तुम्हारे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए हैं।'

यत्तेजो योगिनः शश्वद् ध्यायन्ते सततं मुदा॥
ध्यायन्ते वैष्णवा देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
यस्य पूज्यस्य सर्वाग्रे कल्पे कल्पे च पूजनम्॥
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नो विनश्यति।
पुण्यराशिस्वरूपं च स्वसुतं पश्य मन्दिरे॥
कल्पे कल्पे ध्यायसे यं ज्योतीरूपं सनातनम्।
पश्य त्वं मुक्तिदं पुत्रं भक्तानुग्रहविग्रहम्॥
तव वाञ्छापूर्णबीजं तपःकल्पतरोः फलम्।
सुन्दरं स्वसुतं पश्य कोटिकन्दर्पनिन्दकम्॥
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिख० ९। ९—१३)

'योगीलोग जिस अविनाशी तेजका प्रसन्न मनसे निरन्तर ध्यान करते हैं, वैष्णवगण तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता जिसके ध्यानमें लीन रहते हैं, प्रत्येक कल्पमें जिस पूजनीयकी सर्वप्रथम पूजा होती है, जिसके स्मरणमात्रसे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं तथा जो पुण्य-राशिस्वरूप है, मन्दिरमें विराजमान अपने उस पुत्रकी … तो दृष्टि डालो। प्रत्येक कल्पमें तुम जिस सनातन … रूपका ध्यान करती हो, वही तुम्हारा पुत्र है। … मुक्तिदाता तथा भक्तोंके अनुग्रहका मूर्तरूप है। जरा उसकी ओर तो निहारो। जो तुम्हारी कामनापूर्तिका बीज, तपरूपी कल्पवृक्षका फल और सुन्दरतामें करोड़ों कामदेवोंको तिरस्कृत करनेवाला है, अपने उस लावण्यमूर्ति पुत्रको तो देखो।'

आकाशवाणीने, आगे अम्बिकाका भ्रम निवारण करते हुए कहा—'वे क्षुधार्त्त अतिथि वृद्ध ब्राह्मण नहीं थे, उस वेषमें तुम्हारे सम्मुख साक्षात् जनार्दन ही उपस्थित हुए थे।'

'तुम प्रसन्नचित्त हो अपने देवाग्रगण्य सुन्दरतम पुत्रको देखो'—आकाशवाणीके द्वारा इस प्रकारकी प्रेरणा प्राप्त होते ही माता पार्वती शीघ्रतासे अपने महलमें पहुँचीं। वहाँ उन्होंने अत्यन्त अद्भुत, परम सुन्दर, पद्मपत्राक्ष शिशुको

दिव्य तेज फैल रहा था। वह इधर-उधर अपने हाथ-पैर फेंक रहा था। परमपावनी माताका स्तनपान करनेके लिये वह क्रन्दन कर रहा था।

'प्राणनाथ! आप घर चलकर मन्दिरके भीतर तो देखिये।' हर्षोल्लासपूर्ण हृदयसे पुत्रवत्सला भगवती उमाने दौड़कर त्रिलोकैश्वर्यदायक भक्तवाञ्छाकल्पतरु शिवसे कहा—'सद्यः फलदायिनी आपकी ध्यानमूर्ति ही पुत्रके रूपमें प्रकट हुई है।'

भुजङ्गभूषण भी हर्षमग्न हो गये। वे तुरंत उठकर अपनी प्राणप्रियाके घर गये। वहाँ उन्होंने शय्यापर तप्त-स्वर्ण-तुल्य कान्तिमान् अपने पुत्रको देखा। घोरदैत्यघ्न शिव प्रसन्न और चकित होकर सोच रहे थे—'अरे! मैं जिस परम तेजस्विनी और परम मङ्गलमयी मूर्तिका ध्यान करता रहता हूँ, वह तो प्रत्यक्ष मेरे पुत्रके रूपमें मेरे सम्मुख मुस्कराती हुई क्रीडा कर रही है।'

सर्वानन्दप्रदायिनी पार्वतीके आनन्दकी सीमा न थी। उन्होंने पुत्रको अङ्कमें ले लिया और हर्षके आवेगमें उसका चुम्बन करने लगीं। आनन्दमग्ना नित्यरूपा पार्वतीने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—

> सम्प्राप्यामूल्यरत्नं त्वां पूर्णमेव सनातनम्।
> यथा मनो दरिद्रस्य सहसा प्राप्य सद्धनम्॥
> कान्ते सुचिरमायाते प्रोषिते योषितो यथा।
> मानसं परिपूर्णं च बभूव च तथा मम॥
>
> (ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० ९। २७-२८)

'बेटा! जैसे दरिद्रका मन सहसा उत्तम धन पाकर संतुष्ट हो जाता है, उसी तरह तुझ सनातन अमूल्य रत्नकी प्राप्तिसे मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। जैसे चिरकालसे प्रवासी हुए प्रियतमके घर लौटनेपर स्त्रीका मन पूर्णतया हर्षमग्न हो जाता है, वही दशा मेरे मनकी भी हो रही है।'

इस प्रकार कहती हुई माता पार्वतीने शिशुको अत्यन्त प्रेमसे गोदमें ले लिया और उसे परमदुर्लभ, परमपावन अमृतमय दुग्धपान करानेके लिये अपना स्तनाग्र उसके मुँहमें दे दिया।

इसके अनन्तर चराचर प्राणियोंके आश्रय भगवान् शंकरने भी अत्यन्त प्रसन्नतासे अपने पुत्रको गोदमें उठा लिया।

प्राकट्योत्सवपर

पुत्रोत्पत्तिकी प्रसन्नतामें स्वर्गापवर्गदाता पञ्च[illegible] प्रेरणासे विविध प्रकारके मनोहर वाद्य बजने लगे। मङ्गल-कामनासे परमपिता शिवने ब्राह्मणों, बन्दि[illegible] भिक्षुकोंको नाना प्रकारके अपरिमित रत्नादि और सम्पत्तिका दान किया।

हिमगिरिने अपने दौहित्रके जन्मोत्सवपर हर्षोत्साहसे ब्राह्मणोंको एक लाख रत्न, एक [illegible] हाथी, तीन लाख घोड़े, दस लाख गायें, पाँच [illegible] मुद्राएँ, मुक्ता हीरे-रत्नादि मणियाँ, वस्त्र, आभूषण [illegible] क्षीराब्धिसे उत्पन्न सभी प्रकारके अनमोल रत्नोंका [illegible] दिया।

क्षीरोदधिशायी विष्णुने कौस्तुभमणिका दान [illegible] हर्षातिरेकमें उन्होंने श्रेष्ठतम मुनियोंको बुलवाकर [illegible] पूजा की। उनसे समस्त माङ्गलिक कार्य करवाये, पार्वती[illegible] रूपमें प्रकट उस नव शिशुको आशीर्वाद दिलवाया, वेदों[illegible] पुराणोंका पाठ करवाया एवं देव दुर्लभ मनोहर नृत्य [illegible] मन्त्रमुग्धकर मधुर संगीतका आयोजन किया।

अनुग्रहस्वरूप शिव-पुत्रके प्राकट्योत्सवपर [illegible] सृष्टिमें परम दुर्लभ वस्तुएँ ब्राह्मणोंको दीं। परम महिम[illegible] शिवप्रियाके परम मङ्गलकर पुत्र-जन्मके अवसरपर [illegible] समुदाय आनन्दोदधिमें निमग्न हो गया था। धर्म, [illegible] शचीपति इन्द्र, सुरगण, मुनिगण, गन्धर्व, पर्व[illegible] देवियोंने अत्यन्त प्रसन्नतासे विविध प्रकारकी बहुमू[illegible] वस्तुओंका दान किया। हर्षातिरेकसे क्षीरसागरके दिये [illegible] एक सहस्र माणिक्य, एक सौ कौस्तुभमणियाँ, हीरक, [illegible] मणियाँ, गो-रत्न, गज रत्न, श्वेतवर्णके अन्यान्य अद्[illegible] रत्न, स्वर्णमुद्राओं एव वस्त्राभरणोंके मूल्यका अनुमान कर[illegible] सम्भव नहीं।

इसी प्रकार भगवती सरस्वती, सावित्री और धनाध्यक्ष कुबेरने ब्राह्मणोंको परम दुर्लभ एवं अद्भुत वस्तुओंका दान किया।

प्राणिमात्रके सच्चे शुभैषी एवं देवताओंके [illegible] शुभचिन्तक जगदम्बा शिवाके घरमें शिशुके प्रकट [illegible] सभी देवता आनन्दोन्मत्त हो गये थे। उस शुभ[illegible] उत्सवके मङ्गलके लिये जो जहाँ था, वहीं ब्राह्मणोंको [illegible]

समर्पित करने लगा। सबने दान दिये और सभी [illegible]ताओंने उस बालकको दुर्लभतम आशीः प्रदान की। 'बालक! तुम दीर्घायु, ज्ञानमें शिवके सदृश, पराक्रममें [illegible] तुल्य और सम्पूर्ण सिद्धियोंके ईश्वर होओ।' विष्णुने आशीर्वाद दिया।

'तुम यशस्वी यशस्वी, सर्वपूज्य एवं अग्रपूज्य होओ।' [illegible]ने आशीर्वचन कहा।

इसी प्रकार धर्म, महादेव, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, [illegible]लय, मेनका, वसुंधरा और पार्वतीने उस नवोदित [illegible], अलौकिक, पद्मपत्राक्ष शिशुके धार्मिक, सर्वत्र [illegible], हरिभक्त, श्रीहरिके समान दुर्लभ, बुद्धिमान्, विद्वान्, [illegible]वान्, शान्त, जितेन्द्रिय, स्थिर लक्ष्मीवान्, एवं शान्त [illegible] मङ्गल कामना की। उसे मनोहर रूपवाली पत्नी, [illegible] कवित्व शक्ति, धारणा-शक्ति, स्मरण-शक्ति, [illegible]चन-शक्ति, वेदज्ञान, सागरतुल्य गम्भीरता, कामदेव-तुल्य [illegible] प्रेम होनेका वर दिया। उसके धर्ममें धर्म-तुल्य, [illegible], शरणदाता, शुभाश्रय, विघ्नरहित, विघ्ननाशक, [illegible] समान महान् योगी, सिद्ध, सिद्धियोंके दाता, शुभ-[illegible], मृत्युंजय, ऐश्वर्यशाली होने एवं अत्यन्त निपुणता [illegible] करनेके लिये अपने अन्तर्हृदयकी शुभ कामना व्यक्त की।

इसके अनन्तर वहाँ पधारे सभी ऋषियों, मुनियों और [illegible] नवजात शिशुको अनेक प्रकारके मङ्गलमय आशीर्वचन [illegible]। [illegible] प्रसन्न होकर अपने हृदयका सम्पूर्ण [illegible] एवं वन्दियोंने समस्त मङ्गलकामनाएँ प्रकट कीं।*

अनन्तानन्तसुखद नवोदित शिशुको शुभाशीः प्रदानकर श्रीहरि देवर्षियोंके साथ श्रेष्ठ रत्न सिंहासनपर आसीन हुए। उनके दायें आशुतोष शिव, बायें लोकस्रष्टा ब्रह्मा और सम्मुख श्रेष्ठ धर्मात्मा धर्म आसनासीन हुए। धर्मके समीप सूर्य, देवेन्द्र, चन्द्रमा, देव-समुदाय, मुनिगण एवं गिरि-समुदाय सुन्दर एवं सुखद आसनपर बैठे।

पार्वती-नन्दनका छिन्न मस्तक

उसी समय गौरीनन्दनके दर्शनार्थ प्रज्वलित अग्निशिखा तुल्य दीप्तिमान्, पीताम्बरधारी, श्यामल सूर्यपुत्र शनैश्चर वहाँ पधारे। विनम्र शनिदेवके नेत्र कुछ बंद थे और वे मन-ही-मन परमप्रभुका ध्यान एवं उनके नामका जप कर रहे थे। वहाँ उन्होंने श्रीहरि, विधाता एवं शूलपाणि तथा उपस्थित समस्त देवताओं एवं मुनियोंके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उनकी आज्ञासे क्षिप्रक्षेमकर शंकरनन्दनको देखनेके लिये भीतर पहुँचे।

सूर्यपुत्र शनैश्चरने अलौकिक भवनमें उस समय प्रवेश किया, जब वस्त्रालंकारभूषिता मङ्गलमयी जननी पार्वती नवागत शुभानन शिशुको गोदमें लेकर रत्नसिंहासनपर बैठकर सुवासित ताम्बूल चबाती हुई प्रसन्नतासे मुस्करा रही थीं। पाँच सखियाँ उनके समीप खड़ी होकर श्वेत चँवर डुला रही थीं। महायोगी शनैश्चरने त्रैलोक्यदुर्लभ जननी पार्वतीके पाद-पद्मोंमें मस्तक झुकाये श्रद्धा एवं प्रीतिपूर्वक

* ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इस मङ्गलाशीर्वचन-विषयक अध्यायको '[illegible]' कहा गया है और इसका माहात्म्य इस प्रकार [illegible] है—

[illegible]

यात्राकाले च पुण्याहे यः शृणोति समाहितः।
सर्वाभीष्टं स लभते श्रीगणेशप्रसादतः॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिख० १०। ३४–३७, ३९–४०)

'जो मनुष्य अत्यन्त समाहित होकर इस शुभमङ्गलाध्यायको सुनता है, वह सम्पूर्ण मङ्गलोंसे युक्त होकर मङ्गलोंका आवास-स्थान हो जाता है। इसके श्रवणसे पुत्रहीनको पुत्र, निर्धनको धन, कृपणको निरन्तर धन-प्रदान करनेकी शक्ति, भार्याहीनको भार्या, प्रजाकामीको प्रजा और रोगीको आरोग्य प्राप्त होता है। दुर्भगा स्त्रीको सौभाग्य, भूला हुआ पुत्र, नष्ट हुआ धन और प्रवासी पति मिल जाता है तथा शोकमग्नोंको सदा आनन्दकी प्राप्ति हो[illegible] है, इसमें संशय नहीं है।…… यह मङ्गलाध्याय जिसके घरमें विद्यमान रहता है, वह सदा मङ्गलयुक्त रहता है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। यात्राकालमें अथवा पुण्यपर्वपर जो मनुष्य [illegible] इसका श्रवण करता है, [illegible]

प्रणाम किया। जगदम्बाने उन्हें आशिष् देकर उनसे कुशल-समाचार पूछा।

'ग्रहेश्वर! आपके नेत्र कुछ मुँदे हैं और आपने सिर झुका रखा है', सम्पूर्ण शक्तियों एवं कलाओंके अधिपतिकी जननी पार्वतीने पीताम्बरधारी शनैश्चरसे पूछा—'आप मेरी ओर और मेरे पुत्रकी ओर देख नहीं रहे हैं। इसका क्या हेतु है?'

'माता! सम्पूर्ण प्राणी अपने कर्मका ही फल भोगते हैं।' शनैश्चरदेवने सिर झुकाये कहा—'वे अपने शुभाशुभ कर्मोंसे ही सुख दुःख प्राप्त करते हैं। मेरी कथा गोपनीय है और माताके सम्मुख कहनेयोग्य नहीं है; तथापि आपकी आज्ञासे मैं उसे प्रकट कर दे रहा हूँ।'

'शंकरवल्लभे!' शनैश्चरदेवने आगे कहा—'बाल्यकालसे ही मेरे मनमें श्रीकृष्ण-पद-पद्मानुरक्ति थी। मैं प्रायः उन्हींके अत्यन्त सुखद ध्यानमें तल्लीन रहता था। सर्वथा विरक्त एवं तप निरत था, किंतु मेरे पिताने चित्ररथकी पुत्रीसे मेरा परिणय करा दिया। मेरी पत्नी साध्वी, तेजस्विनी एवं तपस्विनी थी।

'एक दिनकी बात है; मेरी सहधर्मिणी ऋतुस्नानके अनन्तर उस समय मेरे समीप आयी, जब मैं भगवच्चरणोंके ध्यानमें तल्लीन सर्वथा बाह्यज्ञानशून्य था।

''तुम जिसकी ओर दृष्टिपात करोगे, वही नष्ट हो जायगा।'' ऋतुकालके विफल होनेपर उसने दुःखी मनसे मुझे शाप दे दिया।

'यद्यपि ध्यानसे विरत होनेपर मैंने उसे संतुष्ट किया, किंतु वह पश्चात्ताप करनेपर भी शाप लौटानेमें समर्थ नहीं थी। इसी कारण मैं जीवहिंसाके भयसे अपने नेत्रोंसे किसीकी ओर नहीं देखता और सहज ही सदा सिर झुकाये रहता हूँ।'

शनैश्चरदेवकी बात सुनकर नर्तकियों और किंनरियोंके समुदायके साथ अनन्तानन्दसुखदायिनी जगदम्बा हँसने लगीं।

'सम्पूर्ण विश्व ईश्वरेच्छाके अधीन है।' सर्वकामात्ममहाम्नि जगदीश्वरीने ऐसा कहते हुए शनैश्चरदेवसे कहा—'तुम मेरी तथा मेरे शिशुकी ओर देखो।'

'मैं पार्वतीनन्दनकी ओर देखूँ या नहीं?' शनैश्चरदेव मन ही मन सोचने लगे। 'यदि मैं इस दुर्लभ बालककी ओर देखूँगा तो निश्चय ही इसका अनिष्ट हो जायगा; किंतु [illegible]

इस प्रकार सोचते हुए धर्मात्मा शनैश्चरदेवने [illegible] साक्षी देकर गिरिजाकी ओर तो नहीं, किंतु उनके [illegible]हरण पुत्रकी ओर देखनेका निश्चय किया।

पहलेसे ही खिन्न शनैश्चरके कण्ठोष्ठतालु शुष्क हो [illegible] थे। फिर भी उन्होंने वामनेत्रके कोनेसे पार्वतीनन्दनकी ओर दृष्टिपात किया। शनैश्चरदेवकी [illegible] दृष्टि [illegible] ही भगवान् शिव एवं भगवती उमाके [illegible] पुत्रका मस्तक धड़से पृथक् होकर गोलोकमें जाकर अपने [illegible] परात्पर श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हो गया। अत्यन्त दुःखी शनैश्चरदेव अपनी आँख फेर ली और सिर झुकाकर खड़े हो गये।

अपने अङ्कमें दुर्लभतम कम्बुकण्ठ शिशुका [illegible] रक्तपथ शरीर देखकर माता पार्वती चीत्कार कर उठीं। बालकका धड़ वक्षसे सटाये रोती-कलपती और विलाप करती उन्मत्तकी तरह इधर-उधर घूमती हुई मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ीं। यह आश्चर्यजनक दृश्य देखकर वहाँ उपस्थित सभी देवता, देवियाँ, पर्वत, गन्धर्व, [illegible] समस्त कैलासवासी अवसन्न हो गये। वे सभी निष्प्राण-से प्रतीत होने लगे।

पार्वती-पुत्र गजमुख हुए

मस्तकहीन रक्तस्नात पार्वतीनन्दनपर दृष्टिपात कर श्रीहरि[illegible]ने सबको मूर्च्छित देखा तो तुरंत गरुड़पर विराजमान हो शीघ्रगतिसे उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े। वहाँ उन्होंने पुष्पभद्रा नदीके तटपर एकान्त वनमें अपनी हथिनी और बच्चोंके साथ एक गजेन्द्रको सोते हुए देखा। उसका सिर उत्तर दिशाकी ओर था। सर्वमङ्गलकर श्रीहरिने तुरंत अपने सुदर्शनसे उसका मस्तक उतारकर गरुड़पर रख लिया।

गजके कटे अङ्गके गिरनेसे हथिनीकी नींद टूट गयी। अपने स्वामीकी निर्जीव देह देखकर वह चीत्कार करने लगी। उसके बच्चे भी अपनी माताके रुदनसे व्याकुलतासे क्रन्दन करने लगे। हथिनीने गरुड़स्कन्ध विराजमान सम्पूर्ण निषेक (कर्मफलयोग) का खण्डन करनेमें समर्थ शङ्ख-चक्र-गदा पद्मधर नवजलधरवपु श्रीहरिके अचिन्त्य सौन्दर्यमयी मूर्तिको देखा तो वह [illegible] स्तवन करने लगी।

हथिनीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सर्वसमर्थ प्रभुने [illegible]

भाग्यवान् गज ! तू एकुड्डम्न कल्पपर्यंन्त जीवित रह !'

मङ्गलमय चरणोंसे उसके सर्वाङ्गका स्पर्श करते हुए नुने उसके परम मङ्गलके लिये वरदान प्रदान किया। र गरुड़ वायुवेगसे उड़कर तुरंत कैलासपर पहुँच गये। श्रीहरिने पार्वती-पुत्रको उठाकर अपने वक्षसे सटा और गज-मुखको सुन्दर बनाकर शिवनन्दनके धड़से देया।

है।' परम प्रभुके इस उच्चारणसे ही वह बालक जीवित या। फिर तो उन्होंने मोहनिवारिणी अम्बिकाको कर उनका पुत्र उनके अङ्कमें रख दिया।

दिसरूपा शिवे! तुम अच्छी प्रकार जानती हो कि लेकर कीटपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् अपने-अपने कर्मानुसार ता है।' श्रीहरिने शोकमग्न उमाको समझाते हुए प्राणियोंके स्वकर्मार्जित भोग सैकड़ों कल्पोंतक प्रत्येक भोगने पड़ते हैं। सुख-दुःख, भय-शोक, आनन्द— के ही फल हैं। इनमें सुख और हर्ष उत्तम कर्मके य पापकर्मके परिणाम हैं।* स्वयं परब्रह्म परमात्मा कर्मके फलदाता, सृजन, पालन एवं संहार करनेवाले रे गजकर्ण पुत्र उन्हीं परमात्मामें स्थित हैं।'

हरिकी वाणी सुनकर वात्सल्यमयी जननी पार्वती गयीं और उन परम प्रभुके अरुणोत्पल-चरणोंमें र अपने शिशुको गोदमें उठा उसे स्तनपान कराने फिर उन्होंने अपने प्राणवल्लभ शिवकी प्रेरणासे कर भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी स्तुति प्रार्थना की।

तपस्विनी उमाके स्तवनसे प्रसन्न होकर लक्ष्मी- नुने अपना कौस्तुभ उस लम्बोष्ठ बालकके गलेमें र उसे तथा जगदीश्वरी पार्वतीको शुभाशीर्वाद या।

कर्म पार्वती पुत्रके जीवित हो जानेपर इन्द्रादिदेवोंने उसे अपना किरीट और यमने रत्नाभूषण या। इसके अनन्तर देवियों, उपस्थित सभी मुनियों, पर्वतों, गन्धर्वों और एकत्र समस्त प्रसन्न मनसे बहुमूल्य रत्नादि उस शम्भुकुमारको ये।

* इदं सर्वं ... कर्मज ... कृतम्।
... इदं ... पापकर्मजः॥
(ब्रह्मवै० ...

अपने सुमङ्गलमङ्गल बालकके जीवित होनेकी प्रसन्नतामें सर्वलोकमहेश्वर शिव एवं निखिलसृष्टि-संचालिका पार्वतीने असंख्य रत्नोंका दान किया। हिमगिरिने वन्दियोंको सौ गज तथा एक सहस्र अश्व प्रदान किये। देवताओंने सभी ब्राह्मणोंको दान दिया और स्त्रियोंने भी अपने दानोंसे वन्दियोंको संतुष्ट कर दिया।

क्षीरोदधिशायी लक्ष्मीपतिने समस्त माङ्गलिक कार्योंके साथ वेदों और पुराणोंका पाठ करवाया तथा समस्त ब्राह्मणोंको अत्यन्त आदरपूर्वक दुर्लभ सुमिष्ट पक्वान्नोंके भोजनसे पूर्ण तृप्त कर दिया।

'तुम अङ्गरहित हो जाओ।' उक्त सभाके बीच लज्जावश शनैश्चरको सिर झुकाये देखकर माता पार्वतीने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दे दिया।

गजमुखको प्रथमपूज्यताका आशीर्वाद

कुछ समय व्यतीत हुआ। क्षीराब्धिशायी लक्ष्मीपति विष्णु शुभ मुहूर्तमें देवताओं और मुनियोंके साथ भगवान् शंकरके सदनमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रेष्ठतम उपहारोंसे पद्मसदृशनयन गजाननकी पूजा की और आशीः प्रदान की—

> सर्वाग्रे तव पूजा च मया दत्ता सुरोत्तम।
> सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भव वत्सेत्युवाच तम्॥
> (ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० १३। २)

'सुरश्रेष्ठ! मैंने सबसे पहले तुम्हारी पूजा की है, अतः वत्स! तुम सर्वपूज्य तथा योगीन्द्र होओ।'

प्रसन्न कमलनयन विष्णुने रुद्रप्रिय बालकके कण्ठमें वनमाला पहनायी और मोक्षदायक ब्रह्मज्ञान तथा सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान कर उसे अपने समान बना दिया। फिर षोडशोपचारकी सामग्रियाँ देकर देवताओं और मुनियोंके साथ उसका नामकरण किया—

> विघ्नेशश्च गणेशश्च हेरम्बश्च गजाननः।
> लम्बोदरश्चैकदन्तः शूर्पकर्णो विनायकः॥
> (ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० १३।

'विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त, शूर्पकर्ण और विनायक—ये उस बालकके नाम रखे गये।'

देवियों एवं मुनियों आदिने [illegible] शिवपुत्रको विविध प्रकारके उपहार प्रदान किये और बार-बार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनका पूजन किया।

फिर सर्वव्यापिनी जननीने अपने प्राणधन पुत्रको रत्नसिंहासनपर बैठाकर समस्त तीर्थोंके जलपूरित सौ कलशोंसे स्नान कराया। उस समय मुनिगण वेदके मन्त्रोंका उच्चारण कर रहे थे। इसके अनन्तर उन्होंने अपने दुःख भञ्जनकारक पुत्रको अग्निशुद्ध दो वस्त्र दिये। फिर जननीने पुण्यतोया गोदावरीके जलसे पाद्य, पापनाशिनी गङ्गाजीके जलसे अर्घ्य एवं दूर्वा, अक्षत, पुष्प और चन्दनमिश्रित पवित्र तीर्थ पुष्करके जलसे आचमन कराया। फिर माता पार्वतीने गणेशको रत्नपात्रमें रखा हुआ मधुपर्क एवं शर्करायुक्त द्रव प्रदान किये।

इसके अनन्तर स्वर्गलोकके वैद्य अश्विनीकुमारद्वारा निर्मित स्नानोपयोगी विष्णु-तैल, बहुमूल्य-रत्नाभरण, विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्प, पारिजातकी पुष्पमालाएँ, अनेक प्रकारके सुगन्धित चन्दन तथा दिव्य सुगन्धमय धूप-दीप प्रदान किये। फिर पशुपाशविमोचन गणाधिराजको उनका प्रिय लड्डू तथा उनको प्रिय लगनेवाले विविध प्रकारके व्यञ्जन अर्पित किये। उन पुष्कल व्यञ्जनोंका पर्वत तुल्य ढेर लग गया। तदनन्तर ढेर-के-ढेर अनार, बेलके फल, भाँति-भाँतिके खजूर, कैथ, जामुन, कटहल, आम, केला और नारियलके फल दिये। फिर आचमन और सुवासित ताम्बूल समर्पित करके जननीने सुन्दर पानके बीड़े और वायनपूरित सैकड़ों स्वर्णपात्र लड्डुकप्रिय गणेशको अर्पित किये।

इसके अनन्तर मेनका, हिमालय, हिमालयके पुत्र, वहाँ उपस्थित ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने—

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मस्वरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः॥
(ब्रह्मवैवर्त॰, गणपतिखं॰ १२।१२)

—इस मन्त्रसे प्रणताज्ञानमोचन गिरिजापुत्रकी पूजा की और उन्हें भाँति-भाँतिकी दुर्लभ वस्तुएँ प्रदान कर वे आनन्दमें निमग्न हो गये।

श्रीविष्णुद्वारा गणेश-स्तुति

फिर क्षीरोदधिशायी विष्णु शिवप्रिया पार्वतीके [illegible] अजरामर, [illegible] भुवनपति, इच्छाशक्तिधर, महोदय, सर्वेश्वरात्मा पुत्रको श्री[illegible] भक्तिभावसे उनकी स्तुति करने लगे—

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि ब्रह्मज्योतिः स[...]
निरूपितुमशक्तोऽहमनुरूपमनीहकम्
प्रवरं सर्वदेवानां सिद्धानां योगि[...]
सर्वस्वरूपं सर्वेशं ज्ञानराशिस्वरू[...]
अव्यक्तमक्षरं नित्यं सत्यमात्मस्वरू[...]
वायुतुल्यातिनिर्लिप्तं चाक्षतं सर्वसाक्षि[...]
संसारार्णवपारे च मायापोते सु[...]
कर्णधारस्वरूपं च भक्तानुग्रहका[...]
वरं वरेण्यं वरदं वरदानामपी[...]
सिद्धं सिद्धिस्वरूपं च सिद्धिदं सिद्धिसाध[...]
ध्यानातिरिक्तं ध्येयं च ध्यानासाध्यं च धार्मि[...]
धर्मस्वरूपं धर्मज्ञं धर्माधर्मफलप्र[...]
बीजं संसारवृक्षाणामङ्कुरं च तदाश्र[...]
स्त्रीपुंनपुंसकानां च रूपमेतदतीन्द्रिय[...]
सर्वाद्यमग्रपूज्यं च सर्वपूज्यं गुणार्ण[...]
स्वेच्छया सगुणं ब्रह्म निर्गुणं चापि स्वेच्छय[...]
स्वयं प्रकृतिरूपं च प्राकृतं प्रकृतेः पर[...]
त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन [...]
न क्षमः पञ्चवक्त्रश्च न क्षमश्चतुरान[...]
सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ
न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिन[...]
(ब्रह्मवैवर्त॰, गणपतिखं॰ १३।४[...]

'ईश! मैं सनातन ब्रह्मज्योतिःस्वरूप आपकी [...] करना चाहता हूँ; परंतु आपके अनुरूप निरूपण करने[...] सर्वथा असमर्थ हूँ; क्योंकि आप इच्छारहित, सम्पूर्ण [...] श्रेष्ठ, सिद्धों और योगियोंके गुरु, सर्वस्वरूप, स[...] ज्ञानराशिस्वरूप, अव्यक्त, अविनाशी, नित्य, [...] आत्मस्वरूप, वायुके समान अत्यन्त निर्लेप, क्षतरहित, [...] साक्षी, संसार-सागरसे पार होनेके लिये परम दुर्लभ माया[...] नौकाके कर्णधारस्वरूप, भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले, [...] वरणीय, वरदाता, वरदानियोंके भी ईश्वर, सिद्ध, सिद्धिस्व[...] सिद्धिदाता, सिद्धिके साधन, ध्यानातीत, ध्ये[...] ध्यानद्वारा असाध्य, धार्मिक, धर्मस्वरूप, धर्मके ज्ञा[...] धर्म और अधर्मका फल प्रदान करनेवाले, संसार[...] बीज, अङ्कुर और उसके आश्रय, स्त्री, पुरुष और नपुंस[...]

...में विराजमान तथा उनकी इन्द्रियोंसे परे, सबके ... हैं, अग्रपूज्य, सर्वपूज्य, गुणके सागर, स्वेच्छासे निर्गुण तथा स्वेच्छासे ही सगुण ब्रह्मका रूप धारण करनेवाले, ... प्रकृतिरूप और प्रकृतिसे परे प्राकृतरूप हैं। शेष ... अपने सहस्रों मुखोंसे भी आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ ... आपके स्तवनमें न पञ्चमुख महेश्वर समर्थ हैं न ... ब्रह्मा ही; न सरस्वतीकी शक्ति है न मैं ही ... स्तवन कर सकता हूँ। और जब चारों वेदोंकी ही ... नहीं है, तो फिर उन वेदवादियोंकी तो क्या गणना।' ... स्तुतिकी ब्रह्मवैवर्तपुराणमें बड़ी महिमा बतायी गयी है।*

'करुणामय प्रभो! मायाशक्तिने मुझे शाप दे दिया है।' ... उत्सवमें विघ्ननिघ्न स्कन्दपुत्रकी पूजा हो जानेपर शनैश्चरने ... विनीत वाणीमें लक्ष्मीपति विष्णुसे निवेदन किया। ... अब आप कृपापूर्वक सम्पूर्ण विघ्नोंके शमन और दुःखकी निवृत्तिके लिये गणेश-कवचका वर्णन करनेका अनुग्रह करें; मैं उसे धारण करना चाहता हूँ।'

गणेश-कवच और उसकी महिमा

'सूर्यनन्दन! इस कवचकी बड़ी महिमा है।' शनैश्चरके विनययुक्त वचन सुनकर सजल जलधरवपु श्रीविष्णुने कहा—'दस लाख जप करनेसे कवच सिद्ध हो जाता है। कवच सिद्ध कर लेनेपर मनुष्य मृत्युपर विजय प्राप्त करनेमें समर्थ हो जाता है। यह सिद्ध-कवच धारण करनेपर मनुष्य वाग्मी, चिरजीवी, सर्वत्र विजयी और पूज्य हो जाता है। इस मालामन्त्र तथा कवचके प्रभावसे मनुष्यके सारे पातकोपपातक ध्वस्त हो जाते हैं। इस कवचके शब्द-श्रवणमात्रसे ही भूत-प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, डाकिनी, योगिनी, बेताल आदि बालग्रह, ग्रह तथा क्षेत्रपाल आदि दूर भाग जाते हैं। कवचधारी पुरुषको आधि (मानसिक रोग), व्याधि (शारीरिक रोग) और भयप्रद शोक स्पर्श नहीं कर पाते।'

इस प्रकार सर्वविघ्नैकहरण गणेश-कवचका माहात्म्य गान करके लक्ष्मीपति विष्णुने सूर्यपुत्र शनैश्चरको कवचका उपदेश देते हुए कहा—

संसारमोहनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः।
ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवो लम्बोदरः स्वयम्॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः॥
सर्वेषां कवचानां च सारभूतमिदं मुने।
ॐ गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा मे पातु मस्तकम्॥
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो ललाटं मे सदावतु।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं गमिति च सततं पातु लोचनम्।
तालुकं पातु विघ्नेशः संततं धरणीतले॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीमिति परं संततं पातु नासिकाम्।
ॐ गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा पात्वधरं मम।
दन्तानि तालुकां जिह्वां पातु मे षोडशाक्षरः॥
ॐ लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदावतु।
ॐ क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा कर्णं सदावतु॥
ॐ श्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्धं सदावतु।
ॐ ह्रीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठं सदावतु॥
ॐ क्लीं ह्रीमिति कङ्कालं पातु वक्षःस्थलं च गम्।
करौ पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननिघ्नकृत्॥
प्राच्यां लम्बोदरः पातु आग्नेय्यां विघ्ननायकः।
दक्षिणे पातु विघ्नेशो नैर्ऋत्यां तु गजाननः॥
पश्चिमे पार्वतीपुत्रो वायव्यां शंकरात्मजः।
कृष्णस्यांशश्चोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च॥
ऐशान्यामेकदन्तश्च हेरम्बः पातु चोर्ध्वतः।
अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः॥

---

* [illegible] स्तोत्रं गणेशस्य च यः पठेत्।
[illegible] ... समाहितः॥
[illegible] ... सततं मुने।
[illegible] ... सदा॥
• • •
[illegible] ... पुत्रपौत्रविवर्धिनः।
[illegible] ... विष्णुपदं लभेत्॥
[illegible] ... महदैश्वर्यं ध्रुवम्।
[illegible] ... श्रीगणेशप्रसादतः॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिख० ११।५१-५३, ५७-५८)

[illegible]

...ब माता पार्वतीने श्रीहरिके द्वारा यह समाचार सुना ...अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने अपने पुत्रका सम्पूर्ण ... सुनकर हर्षातिरेकसे ब्राह्मणोंको करोड़ों रत्न, ...मित धन एवं विविध प्रकारके बहुमूल्य वस्त्रोंका दान ... विष्णु आदि समस्त देवताओं एवं लक्ष्मी, सरस्वती, ...ी आदि देवियोंने भी हर्षातिरेकसे ब्राह्मणोंको ...िया।

...र माता पार्वतीसहित विष्णु, देवगण एवं मुनियोंकी ... समदर्शी भूतनाथने अपने पुत्रको ले आनेके लिये ...रके साथ अपने सहस्रों गणोंको भेजा। नन्दिकेश्वरकी ... जब कार्तिकेय अपने माता-पिताके समीप चलनेके ...स्तुत हुए तो कृत्तिकाएँ विकल-विह्वल हो गयीं। ... कार्तिकेयने सम्पूर्ण सिद्धियोंकी ज्ञाता, परमैश्वर्य- ... एवं त्रैलोक्यपूज्या कृत्तिकाओंको अत्यन्त प्रीतिपूर्वक ... और उनके चरणोंमें प्रणाम कर, उन्हें साथ ले ...व अलौकिक रथमें बैठ गये। उस समय सर्वत्र शुभ ...ने लगे।

...मार कार्तिकेय अपनी माताओं एवं पार्षदोंसहित ... पहुँचे। वे अपने माता-पिताके निवासका अद्भुत, ...िक एवं अप्रतिम सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो रहे थे ... महिमामयी देवियोंके साथ माता पार्वती वहाँ पहुँच ...। देवता, मुनि, पर्वत, गन्धर्व तथा किंनर आदि भी ...न्दातिरेकसे कुमारका सादर अभिनन्दन करने वहाँ आ ...। सर्वसाक्षी लोकपावन भगवान् शिव भी नाना प्रकारके ...ों, रुद्रगणों, पार्षदों, भैरवों तथा क्षेत्रपालोंसहित ... पधारे।

...परमपावन कार्तिकेयने अपनी ब्रह्मस्वरूपा जननी पार्वती- ...देखा तो हर्ष-गद्गद होकर रथसे उतर पड़े और उन्होंने ...के निखिल-कल्मषापहारी चरणोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम ...। भगवती पार्वतीने स्नेहातिरेकसे अपने परमसुन्दर ...को गोदमें उठा लिया और उसका चुम्बन लेने लगीं। ...ने मृत्युञ्जय नीलकण्ठ, देवगण, पर्वत, पर्वतोंकी ...रे, पत्नी, देवियों तथा मुनियोंने कुमारको अपने ...मङ्गलमय शुभाशीर्वाद प्रदान किया। इसके अनन्तर कुमार ... भवन पहुँचे।

...वहाँ उन्होंने सुर-समुदाय एवं मुनियोंके मध्य ...रत्नसिंहासनपर रत्नालंकारविभूषित श्रीहरिको ...

तो उनके सर्वाङ्गमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने श्रद्धा भक्तिपूर्ण हृदयसे श्रीहरिके पाप-तापसंहारक, भक्तप्राणधन, परमपावन पादपद्मोंमें प्रणाम किया। इसके अनन्तर उन्होंने चतुर्मुख, धर्म, देवताओं एवं तपस्वी मुनियोंके चरणोंमें बारी-बारीसे प्रणाम किया और सबने उन्हें मङ्गलमय आशीर्वाद प्रदान किया। फिर कुमारने प्रत्येक देवता और मुनिसे उनका कुशल-समाचार पूछा और फिर वे एक रत्नसिंहासन-पर बैठ गये। अपने अनुपम योग्यतम पुत्रको देखकर कलिकल्मषहन्त्री पार्वती एवं अनुग्रहस्वरूप महादेवने ब्राह्मणों-को हृदय खोलकर दान दिया।

फिर एक दिन क्षीरोदधिशायी विष्णुने शुभ मुहूर्तमें कुमारको रत्नसिंहासनपर बैठाकर उनका मङ्गलमय अभिषेक करवाया। उस समय अद्भुत वाद्य बज रहे थे। फिर हर्षित मनसे विष्णु, ब्रह्मा, धर्म एवं शिव आदि देवताओं एवं परमानन्दमें निमग्न माता पार्वती तथा सभी देवियोंने उन्हें दुर्लभ उपहार प्रदान किये। कुमारका वेद-मन्त्रोच्चारणपूर्वक मङ्गलाभिषेक कर सभी देवता, मुनिगण और गन्धर्वादि प्रसन्न मन हो अपने-अपने घरके लिये प्रस्थित हुए। भगवान् शंकरने गिरिराज हिमालयका बड़ा सत्कार किया। वे भी अपने गणोंसहित प्रसन्न मनसे अपने भवन पधारे। इस प्रकार पुलकित-तन-मन प्राण सभी आगन्तुक प्रेमपूर्वक विदा हुए।'

सर्वात्मा शिव एवं त्रैलोक्यवन्दनीया पार्वतीके दोनों परम सुन्दर अद्भुत बालक प्रतिदिन अलौकिक, मधुर एवं मनोहर बाल-लीलाएँ करते, जिन्हें देखकर शिव-पार्वती मन-ही-मन हँसते और मुदित होते रहते थे।

परशुरामका कैलास-दर्शन

एक दिनकी बात है, जब जमदग्निनन्दन परशुरामने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित कर दिया, तब वे अपने गुरु भूतनाथके चरणोंमें प्रणाम करने और गुरुपत्नी अम्बा शिवा तथा उनके नारायण-तुल्य दोनों गुरुपुत्र कार्तिकेय और गणनायकको देखनेकी लालसासे कैलास पहुँचे।

वहाँ उन्होंने अत्यन्त अद्भुत कैलासपुरीका दर्शन किया। उस परम रमणीय पुरीकी सुविस्तृत सड़कें सोनेकी बनी थीं और उनपर ...

इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करनेवाले
न कुपित हो गये और उनका गणाधिराजसे विवाद ही
यापाई होने लगी। कुमार कार्तिकेयने उन्हें समझानेका
किया; किंतु क्रुद्ध क्षत्रियद्रोही परशुरामने परम विनयी
ारद ईशानपुत्रको धक्का दे दिया, जिससे वे
।

वपुत्र गणेशने उठकर परशुरामकी उद्दण्डताके लिये
भर्त्सना की तो क्रुद्ध परशुरामने अपना तीक्ष्ण परशु
या। तब अजरामर गौरीतेज गणेशने अपनी सूँड़
परशुरामको उसमें लपेट लिया और उन्हें घुमाने
योगाधिप गणेशकी महान् सूँड़में लिपटे परशुराम
असहाय और निरुपाय थे। धरणीधर गणेशके
परशुराम स्तम्भित हो गये थे।

न्त शक्तिशाली गणेशने जमदग्निनन्दन परम वीर
को सप्तद्वीप, सप्त-पर्वत, सप्तसागर, भूर्लोक, भुवर्लोक,
जनलोक, तपोलोक, ध्रुवलोक, गौरीलोक और
दिखाते हुए गम्भीर समुद्रमें फेंक दिया।

राम तैरने लगे तो निरामय गणनाथने उन्हें पुनः
ड़में उठा लिया और घुमाते हुए वैकुण्ठधाम
गोलोकधामका दर्शन करा दिया। वहाँ परशुरामने
मुस्कराते हुए वंशीविभूषित नव-नीरद श्रीकृष्णके
रासेश्वरी श्रीराधाका दर्शन किया तो वे बार-बार
मय चरण-कमलोंमें प्रणाम करने लगे।

जनित यातना कर्मभोगसे ही समाप्त होती है, किंतु
गणेशने परशुरामको सम्पूर्ण पापोंका पूर्णतया नाश
श्रीकृष्णका दर्शन कराकर उनका भ्रूणहत्याजनित
ही नष्ट कर दिया।

गजमुख एकदन्त हुए

ही देर बाद परशुराम सचेत होकर पृथ्वीपर गिर
उस समय उनका प्रतिवादिमुखस्तम्भक गणेशजी
हुआ स्तम्भन भी दूर हो गया। तब उन्होंने
इष्ट देवता श्रीकृष्णके अमृत्र शिवद्वारा प्रदत्त
स्तोत्र एवं कवचका स्मरण किया और सम्पूर्ण
महादेव मध्याह्न सूर्यकी प्रभाके तुल्य तीक्ष्णतम
से सर्वार्तिनिवारक गौरीनन्दनपर प्रहार कर
...पने अपने परमपूज्य पिता...

शिव-शक्तिके प्रभावसे वह तेजस्वी परशु गणेशके बायें
दाँतको समूल काटकर पुनः रेणुकापुत्र परशुरामके हाथमें
लौट आया।

सिद्धि-बुद्धि-प्रदायक गणेशका दाँत टूटते समय
भयानक शब्द हुआ और सत्यसंकल्प गिरिजानन्दनके
रक्तका फव्वारा छूट पड़ा। मुँहसे निकलकर रक्तसे सना
दाँत भूतलपर गिर पड़ा। उस समय धरित्री काँप उठी। यह
दृश्य देखकर वीरभद्र, कार्तिकेय, क्षेत्रपाल आदि पार्षद तथा
शून्यमें देवगण अत्यन्त भयाक्रान्त हो हाय-हाय करने लगे।
कैलासवासी डरसे मूर्च्छित हो गये। निद्रापति शुद्धात्मा
शिवकी निद्रा भङ्ग हो गयी।

'बेटा! यह क्या हुआ!' दौड़ी हुई परमाद्या भगवती
पार्वती आयीं तो उन्होंने अपने प्राणप्रिय पुत्र गणेशके टूटे
दाँत तथा रक्तमें डूबे हुए मुँहको देखा और देखा कि उनके
हृदयखण्ड गणेश क्रोधशून्य, परमशान्त, लज्जासे सिर झुकाये
खड़े हैं। अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने स्कन्दसे पूछा—
'क्या बात है! यह कैसे हुआ!'

स्कन्दके द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर महामोहशमनी
सती पार्वती अत्यन्त क्रुद्ध हुईं और अपने प्राणाधिक प्रिय
सुकुमार पुत्र गणेशको अङ्कमें लेकर क्रन्दन करने लगीं।

'समदर्शी प्रभो!' दुःख और शोकसे अभिभूत देवी
पार्वतीने डरते डरते अपने पति दयासिन्धु शूलपाणिसे कहा—
'मेरे पुत्र गणेश और आपके शिष्य परशुराममें किसका दोष
है, आप ही निर्णय करें। उत्तम कुलमें पैदा हुई स्त्री अपने
निन्दित, पतित, मूर्ख, दरिद्र, रोगी और जड़ पतिको भी
सदा विष्णुके समान समझती है। समस्त तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ
अग्नि अथवा सूर्य पतिव्रताके तेजकी सोलहवीं कलाकी समानता
भी नहीं कर सकते। महादान, पुण्यप्रद व्रतोपवास और तप—
ये पति-सेवाके सोलहवें अंशकी समता करनेयोग्य नहीं हैं।*

---

* कुत्सितं पतितं मूढं दरिद्रं रोगिणं जडम्।
कुलजा विष्णुतुल्यं च कान्तं पश्यति संततम्॥
हुताशनो वा सूर्यो वा सर्वतेजस्विनां वरः।
पतिव्रतातेजसश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

मङ्गल ध्यान

तात संभु, जननी उमा, षडानन बंधु सुजान ।
सहित उदित मन में मुदित करौं गनपति-ध्यान ॥

। तुम्हें भी असुर पति प्राप्त होगा ।' एकदन्त
। तुरंत तुलसीको शाप दिया—'उसके अनन्तर
के शापसे तुम वृक्ष हो जाओगी ।'

ीनन्दनके अमोघ शापके भयसे तुलसीदेवी
। हेरम्बका स्तवन करने लगीं ।

े ! तुम पुष्पोंकी सारभूता एवं कलांशसे नारायण-
प्रिया बनोगी !' भक्तसुलभ मूषक-वाहनने तुलसीकी स्तुति
प्रसन्न होकर उनसे कहा—'यों तो सभी देवता तुमसे संतु
होंगे, किंतु श्रीहरिके लिये तुम विशेष प्रिय होओगी। तुम्हारेद्वा
श्रीहरिकी अर्चना कर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करेंगे। किंतु मे
लिये तुम सर्वदा त्याज्य रहोगी । इतना कहकर भालचन
गणनाथ तपश्चरणार्थ बदरीनाथके सनिकट चले गये ।●

(ख) शिवपुराणसे

श्वेतकल्पकी गणेशोत्पत्तिकी कथा

तकल्पमें गणेशोत्पत्तिकी मङ्गलमयी कथा इससे
भिन्न है। उस कल्पमें स्वयं भगवान् शंकरने ही अपने
शजीका मस्तक काट दिया था। वह पापनाशिनी कथा
राण'में इस प्रकार वर्णित है—

गवती पार्वती अपने प्राणपति भगवान् शंकरके साथ
ल्लासपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थीं। उनकी
र रूपवती, गुणवती एवं मधुरहासिनी जया और
—ये दो सखियाँ थीं।

'सखी ! सभी गण रुद्रके ही हैं।' एक दिन उन दोनों
योंने भगवती उमाके समीप आकर कहा—'नन्दी, भृङ्गी
जो हमारे हैं, वे भी भगवान् शंकरकी ही आज्ञामें तत्पर
हैं। असंख्य प्रमथगणोंमें भी हमारा कोई नहीं है। वे
की अनन्यताके कारण ही द्वारपर खड़े रहते हैं। यद्यपि
भी हमारे भी हैं, तथापि आप कृपापूर्वक हमलोगोंके
भी एक गणकी रचना कर दीजिये।'

माता पार्वती उन सहचरियोंकी बात ध्यानपूर्वक सुनकर
चार करने लगीं।

एक दिनकी बात है। भगवती उमा स्नानागारमें थीं।
लवपु भगवान् कामारि अपनी प्राणप्रियाके द्वारपर पहुँचे।

'माता स्नान कर रही हैं।' नन्दीने महेश्वरसे निवेदन
कया।

किंतु भगवान् भूतभावनने नन्दीके निवेदनकी उपेक्षा कर
दी। वे सीधे स्नानागारमें पहुँचे।

परम प्रभु शिवको देखकर स्नान करती हुई माता
पार्वती लज्जित होकर खड़ी हो गयीं। वे चकित थीं।

'जया विजया ठीक ही कह रही थीं।' शिवप्रियाने मन ही-
मन विचार किया—'द्वारपर यदि मेरा कोई गण होता तो मेरे
प्राणनाथ सहसा स्नानागारमें कैसे आ जाते ? निश्चय ही इन
गणोंपर मेरा पूर्ण अधिकार नहीं है। मेरा भी कोई ऐस
सेवक होना चाहिये, जो परम शुभ, कार्यकुशल एवं मेरी
आज्ञाका सतत पालन करनेमें कभी विचलित न हो।'

इस प्रकार सोचकर त्रिभुवनेश्वरी उमाने अपने मङ्गलमय
पावनतम शरीरके मैलसे एक चेतन पुरुषका निर्माण किया—

> विचार्येति च सा देवी वपुषो मलसम्भवम्।
> पुरुषं निर्ममौ सा तु सर्वलक्षणसंयुतम्॥
> सर्वावयवनिर्दोषं सर्वावयवसुन्दरम्।
> विशालं सर्वशोभाढ्यं महाबलपराक्रमम्॥
> वस्त्राणि च तदा तस्मै दत्त्वा सा विविधानि हि।
> नानालंकरणं चैव बह्वाशिषमनुत्तमाम्॥
> मत्पुत्रस्त्वं मदीयोऽसि नान्यः कश्चिदिहास्ति मे।
>
> (शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १३। २०—२३)

"वह शुभ लक्षणोंसे संयुक्त था। उसके सभी अङ्ग
दोषरहित एवं सुन्दर थे। उसका वह शरीर विशाल, परम
शोभायमान और महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था। देवीने
उसे अनेक प्रकारके वस्त्र, नाना प्रकारके आभूषण और
बहुत-से उत्तम आशीर्वाद देकर कहा—'तुम मेरे पुत्र हो।
मेरे अपने ही हो। तुम्हारे समान प्यारा मेरा यहाँ कोई दूसरा
नहीं है।'"

परम सुन्दर, परम बुद्धिमान् और परम पराक्रमी उस
पुरुषने आदिशक्ति माता पार्वतीके चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धा और
भक्तिके साथ प्रणाम करके अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—
'माता ! आपका प्रत्येक आदेश शिरोधार्य है। आप क्या
चाहती हैं, आज्ञा प्रदान करें। मैं आपका बताया प्रत्येक कार्य
अवश्य करूँगा।'

'तुम मेरे पुत्र हो, सर्वथा मेरे हो।' महाशक्ति देवी

* कथान्तरमें तुलसीदेवी दनुवंशी शङ्खचूड नामक असुरकी पत्नी हुईं। शङ्खचूड भगवान् शंकरके त्रिशूलसे मरा,
बाद नारायणप्रिया तुलसी कलांशसे वृक्षरूपको प्राप्त हो गयीं। यह कथा पुराणोंमें विस्तारसे आती है।

चतुर्दिक् असंख्य शस्त्रास्त्र देवता, गण एवं भूत प्रेत। उनके मध्य सर्वांग पवित्र दण्डपाणि पार्वती-पुत्र गणेश। सबने एक साथ बुद्धिविशारद गणेशपर भयानक आक्रमण कर दिया, किंतु महाशक्तिके पुत्र कुमार गणेश असीम शौर्य-वीर्यसम्पन्न एवं प्रबलपराक्रमी थे। उन्होंने शत्रु-पक्षके तीक्ष्णतम प्रहारको शिरीष सुमनके तुल्य समझा और स्वयं वे शिवप्रेषित वाहिनीका वीरतापूर्वक संहार करने लगे। देव समुदाय, शिवगण एवं भूत प्रेतादि भयभीत और आश्चर्यचकित विस्फारित नेत्रोंसे उनकी ओर देख रहे थे। कुमार गणेश घूमकर जिधर प्रहार करते, वीरोंका समुदाय भू-लुण्ठित हो जाता। उनके शरीरसे रुधिर-धारा बहने लगती और उनमें हाहाकार मच जाता। शत्रु प्राण लेकर भागते।

शचीपति एवं अजेय तारक असुरका संहार करनेवाले षडाननके भी आयुध निष्फल हो गये। शक्तिपुत्रकी शक्तिके सम्मुख सबकी शक्ति व्यर्थ हो गयी थी। त्रैलोक्यमें हाहाकार मच गया। समस्त देवगण आश्चर्यचकित थे।

सर्वशक्तिप्रदायिनी ज्ञानरूपिणी शिवाको यह वृत्तान्त विदित हुआ तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हुईं। एकाकी प्राणप्रिय कुमारपर असंख्य शस्त्र प्रहार किये जायँ, यह वात्सल्यमयी जननी कैसे सह सकती थीं। अपने एकाकी पुत्रकी सहायताके लिये उन्होंने तत्क्षण दो महान् शक्तियोंकी रचना की।

एक शक्ति कज्जलगिरि-तुल्य थी। उसने अपना भयानक मुख-विवर खोल दिया। दूसरी विद्युत्-तुल्य थी। उसके अनेक हाथ थे। देव-समुदाय एवं शिवगण कुपित होकर अपने जिन जिन आयुधोंसे प्रहार करते, पहली शक्ति उन्हें अपने मुखमें ले लेती और उनपर भीषण अस्त्र-वर्षा करती। दूसरी भयंकर महादेवी प्रतिपक्षके शूरोंको भयानक यन्त्रणा देने लगी। इन देवियोंके आयुध भी सटीक प्रहार करनेवाले, मञ्जुल, अलौकिक एवं अमोघ थे।

एकेन शिशुना सर्वे ... ...
संहरन् ... ...
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० ...)

'जैसे मन्दरगिरिने सागरका मन्थन कि... प्रकार एक बालकने दुस्तर सैन्य-समुदायका ... पाते ही इन्द्रादिक समस्त देवताओंमें ... तब शिवजीके गण भी व्याकुल हो गये।'

शर्वाणी सुत गणेशके प्रहारसे अधीर ... आदि परस्पर कहने लगे—

किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं न ज्ञायन्ते दिशो ...
परिघं भ्रामयत्येष सव्यापसव्यं ...
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० ...)

'क्या करें! कहाँ जायँ! दिशाएँ ... यह बालक दायें-बायें दोनों ओर परिघ घुमाता है।'

उस समय नारद आदि ऋषि तथा ... हाथमें पुष्प और चन्दन लेकर उक्त भयानक ... देख रही थीं। युद्धके दर्शनार्थियोंसे आकाश आच्छ... गया था। चकित होकर सभी परस्पर कहते—'ऐसा संग्राम तो हमने कभी नहीं देखा।' सर्वेश्वरीकुमार ... असह्य प्रहारसे सभी देवता और शिवगण अपने ... रक्षाके लिये भाग गये। वहाँ केवल महावीर कार्ति... अडिग रहकर युद्ध कर रहे थे; किंतु उनके ... विफल होते जा रहे थे। पार्वतीकी शक्तियोंने उनके ... नष्ट कर दिये।

'प्रभो! यह कौन सा श्रेष्ठ गण है?' युद्धसे ... देवता और गणोंने नीलकण्ठके चरणोंमें बारंबार ... निवेदन किया। 'हमने अनेक युद्ध देखे हैं, पर ऐसा ... न कभी ...

अध्यक्षो भवेदस्य पूर्वं कुरुत तद्यदि।
शान्तिर्भवेल्लोके नान्यथा सुखमाप्स्यथ ॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १७। ४२-४३)

…प्रेये! यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय और वह …के मध्य पूजनीय मान लिया जाय तो संहार नहीं …त आपलोग उसे 'सर्वाध्यक्ष'का पद प्रदान कर … लोकमें शान्ति हो सकती है, अन्यथा आपलोगोंको … प्राप्त हो सकता।'

दण्डपाणि गजमुख हुए

…क है, जिस प्रकार त्रैलोक्य सुखी हो, वही करना …' ऋषियोंने निखिलसृष्टिनियामिका जननीका कथन देवताओंको सुनाया। वे सभी उदास और दुःखी मनसे …के समीप पहुँचे। उन्होंने श्रद्धा भक्तिपूर्वक …ति शिवके चरणोंमें प्रणाम कर माताकी बात कही। …र्वान्तर्यामी कर्पूरगौरने देवताओंसे कहा—'अब …दिशाकी ओर जाना चाहिये और जो जीव पहले मिले, …सिर काटकर उस बालकके शरीरपर जोड़ देना …।'

…देश्वरकी आज्ञासे उन देवताओंने तत्काल …विमोचनी पार्वतीके शिशु गणेशका कबन्ध (मस्तकरहित …) धो-पोंछकर विधिपूर्वक उसकी पूजा की और फिर …दिशाकी ओर चल पड़े।

…हाँ मार्गमें सर्वप्रथम एक गज मिला, जिसके एक …त था। देवताओंने उसका सिर लाकर गणेशके …र जोड़ दिया।

…हमने अपना काम पूरा कर लिया।' देवताओंने ब्रह्मा, … और महेश—त्रिदेवोंके चरणोंमें प्रणाम कर निवेदन …—'अब शेष करणीय आपलोग करें।'

…हामहेश्वरकी आज्ञा-पूर्ति हो गयी—इस संवादसे देवता …पार्षद सभी आनन्दित हुए। फिर ब्रह्मा, विष्णु तथा …देवताओंने निर्विकार नीलकण्ठके चरणोंमें भक्तिपूर्वक … किया और कहने लगे—'प्रभो! आपके जिस …हम सब प्रकट हुए हैं, आपका वही तेज वेदमन्त्रोंके इस शिशुमें प्रवेश करे।'

…स प्रकार समस्त देवताओंने वेद-मन्त्रोंसे उस जलको …न्त्रित किया। फिर सर्वात्मा शिवका स्मरण कर उक्त जल उस बालकपर छिड़क दिया। उस अभिमन्त्रित जलका स्पर्श होते ही सर्वदेवमय शिवकी इच्छासे उस बालककी चेतना लौट आयी। वह जीवित हो गया और इस प्रकार उठ बैठा, जैसे निद्रा त्यागकर उठा हो—

सुभगः सुन्दरतरो गजवक्त्रः सुरक्तकः।
प्रसन्नवदनश्चाति सुप्रभो ललिताकृतिः ॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० ख० १७। ५७)

'वह सौभाग्यशाली बालक अत्यन्त सुन्दर था। उसका मुख हाथीका-सा था। उसके शरीरका रंग लाल था, चेहरेपर अत्यन्त प्रसन्नता खेल रही थी। उसकी कमनीय आकृतिसे सुन्दर प्रभा फैल रही थी।'

उस परमतेजस्वी एवं सुन्दर पार्वती-पुत्रको जीवित देखकर उपस्थित सुर-समुदाय एवं शिवगण आनन्द-विभोर हो गये। सबका दुःख दूर हो गया। सबने यह सुखद संवाद हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीको सुनाया। जननी दौड़ी आयीं और अपने योग्यतम शिशुको जीवित देखा तो जैसे सब कुछ भूल गयीं। उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही।

सर्वमाङ्गल्यप्रदायिनी शिवाके अश्रुतपूर्व एवं अभूतपूर्व वीर मातृभक्त पुत्रके जीवित हो जानेपर वहाँ अद्भुत आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा। समस्त देवताओं और गणाध्यक्षोंने गजाननका अभिषेक किया।

आनन्दोत्सव और गजमुखको वर-प्रदान

जननीने तो हर्षविह्वल होकर अपने प्राणप्रिय पुत्रको दोनों हाथोंसे उठाकर अपनी गोदमें लेकर छातीसे सटा लिया। पुत्रके पुनर्जीवित हो जानेसे उनका प्रज्वलित हृदय शीतल हो रहा था। हर्षातिरेकसे जगदीश्वरीके नेत्र मुँद-से गये थे। कुछ देर बाद योगमार्गप्रदर्शिनी माता पार्वतीने प्रसन्न होकर अपने प्राणाधिक पुत्र गजमुखको अनेक प्रकारके वस्त्र और आभूषण प्रदान किये।

सिद्धियोंने उनकी विधिपूर्वक पूजा की तथा क्लेशनाशिनी करुणामूर्ति जगदम्बाने अपने सर्वदुःखहारी कर-कमलोंसे उनके अङ्गोंका स्पर्श किया। अत्यधिक स्नेहके कारण जननी अपने पुत्र गजाननका मुख बारंबार चूमने लगीं।

'प्रेय! इस समय तुम्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा।' फिर अत्यन्त प्रेमपूर्वक शिवज्ञानस्वरूपिणी शिवप्रियाने अपने

अद्वितीय पुत्रको वर प्रदान करते हुए कहा—'वत्स! अब तू कृतकृत्य हो गया है। तू धन्य है। अबसे सम्पूर्ण देवताओंमें तेरी अग्रपूजा होती रहेगी और तुझे कभी दुःखका सामना नहीं करना पड़ेगा।'

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पूर्वपूज्यो भवाधुना।
सर्वेषाममराणां वै सर्वदा दुःखवर्जितः॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। ८)

संसारतारिणी दयामयी जननीने अपने आत्मज गजवक्त्रको अमोघ वर प्रदान करते हुए आगे कहा—

आनने तव सिन्दूरं दृश्यते साम्प्रतं यदि।
तस्मात्त्वं पूजनीयोऽसि सिन्दूरेण सदा नरैः॥
पुष्पैर्वा चन्दनैर्वापि गन्धेनैव शुभेन च।
नैवेद्येन सुरम्येण नीराजेन विधानतः॥
ताम्बूलैरथ दानैश्च तथा प्रक्रमणैरपि।
नमस्कारविधानेन पूजां यस्ते विधास्यति॥
तस्य वै सकला सिद्धिर्भविष्यति न संशयः।
विघ्नान्यनेकरूपाणि क्षयं यास्यन्त्यसंशयम्॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। ९—१२)

'इस समय तेरे मुखपर सिन्दूर दीख रहा है, इसलिये मनुष्योंको सदा सिन्दूरसे तेरी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य पुष्प, चन्दन, सुन्दर गन्ध, नैवेद्य, रमणीय आरती, ताम्बूल और दानसे तथा परिक्रमा और नमस्कार करके विधिपूर्वक तेरी पूजा करेगा, उसे सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँगी और उसके सभी प्रकारके विघ्न नष्ट हो जायँगे—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।'

इसके अनन्तर भुक्ति-मुक्ति-प्रदायिनी सर्वेश्वरीने अनेक प्रकारकी वस्तुएँ देकर फिर उनका सत्कार किया। तब सर्वथा निश्चिन्त होकर इन्द्रादि देवगण पार्वतीके प्रिय पुत्र गजमुखको लेकर आशुतोष शिवके पास पहुँचे और उन्हें परमपिता शिवकी गोदमें बैठा दिया। तब सर्वसमर्थ भगवान् वृषभध्वजने भी उनके मस्तकपर अपना वरद कर-कमल रखते हुए कहा—'पुत्रोऽयमिति मे परः—यह मेरा दूसरा पुत्र है।'

अग्रगण्य गणेशने भी उठकर अपने पिता नीलकण्ठके अभय पद-पद्मकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्होंने अपनी [illegible] माता [illegible] ब्रह्मा, विष्णु तथा नारदादि समस्त ऋषियोंके चरणोंमें प्रणाम कर कहा—

'क्षन्तव्यश्चापराधो मे मानरूपो [illegible]
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० [illegible]

'यों अभिमान करना मनुष्यों[illegible] आपलोग मेरा अपराध क्षमा करें।' तब [illegible] शिव—त्रिदेवोंने प्रसन्न होकर शिव-पुत्र [illegible] वर प्रदान किया—

त्रयो वयं सुरवरा यथा पूज्या [illegible]
तथायं गणनाथश्च सकलैः प्रतिपू[illegible]
एतत्पूजां पुरा कृत्वा पश्चात्पूज्या वयं [illegible]
वयं च पूजिताः सर्वे नायं च पूजितो [illegible]
अस्मिन्नपूजिते देवाः परपूजा कृता [illegible]
तदा तत्फलहानिः स्यादत्र कार्या [illegible]
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० ख० १८। [illegible]

'अमरवरो! जैसे त्रैलोक्यमें हम तीनों देवों[illegible] है, उसी तरह तुम सबको इन गणेशकी भी पू[illegible] चाहिये।'''मनुष्योंको चाहिये कि पहले इनकी पू[illegible] तत्पश्चात् हमलोगोंका पूजन करें। ऐसा करनेसे [illegible] पूजा सम्पन्न हो जायगी। देवगणो! यदि कहीं [illegible] पहले न करके अन्य देवोंका पूजन किया गया तो [illegible] फल नष्ट हो जायगा—इसमें अन्यथा विचार [illegible] आवश्यकता नहीं है।'

इतना ही नहीं, अमित महिमाशालिनी पार्वती[illegible] करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी [illegible] उनके पुत्र शूर्पकर्णको 'सर्वाध्यक्ष' घोषित कर दिया। [illegible] समय लोकपावन वृषवाहनने अत्यन्त प्रसन्न होकर मङ्गल[illegible] गणेशको सतत सुख प्रदायक अनेकों वर प्रदान कि[illegible]

हे गिरीन्द्रसुतापुत्र संतुष्टोऽहं न संश[illegible]
मयि तुष्टे जगत्तुष्टं विघ्न कोऽपि नो भवे[illegible]
बालरूपोऽपि यस्मात्त्वं महाविक्रमकार[illegible]
शक्तिपुत्र सुतेजस्वी तस्मात्त्वं सदा सुखी[illegible]
त्वन्नाम विघ्नहन्तृत्वे श्रेष्ठं चैव भविष्यति।
मम सर्वगणाध्यक्ष सम्पूज्यस्त्वं भवाधुना।
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। १२—[illegible]

'गिरिराजनन्दन! निस्संदेह मैं तुमसे आनन्दि[illegible] हूँ। मेरे प्रसन्न हो जानेपर अब तू सारे जगत्‌से [illegible] हुआ समझ। अब कोई भी तेरा विरोध नहीं कर सक[illegible] तू शक्तिका पुत्र है, बड़ा अत्यन्त तेजस्वी है। [illegible]

इस मोदक (लड्डू) का गुण सुनो।' माताने कहा—'इस मोदककी गन्धसे ही अमरत्वकी …ती है। निस्संदेह इसे सूँघने या खानेवाला सम्पूर्ण …मर्मज्ञ, सब तन्त्रोंमें प्रवीण, लेखक, चित्रकार, …न विज्ञान विशारद और सर्वज्ञ हो जाता है।'

पार्वतीने आगे कहा—'मेरे साथ तुम्हारे पिताकी …है कि तुम दोनोंमेंसे जो धर्माचरणके द्वारा अपनी …द्ध कर देगा, वही इस मोदकका अधिकारी होगा।'

…की आज्ञा प्राप्त होते ही चतुर कार्तिकेय अपने वाहन मयूरपर आरूढ़ हो त्रैलोक्यके तीर्थोंके लिये चल पड़े और मुहूर्तभरमें ही उन्होंने समस्त …स्नान कर लिया। इधर मूषकवाहन लम्बोदरने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक माता-पिताकी परिक्रमा की और …कर उनके सम्मुख खड़े हो गये।

…मोदक मुझे दीजिये।' कुछ ही देर बाद स्कन्दने सम्मुख उपस्थित होकर निवेदन किया।

…समस्त तीर्थोंमें किया हुआ स्नान, सम्पूर्ण देवताओंको …हुआ नमस्कार, सब यज्ञोंका अनुष्ठान तथा सब …के व्रत, मन्त्र, योग और संयमका पालन—ये …साधन माता पिताके पूजनके सोलहवें अंशके बराबर …हीं हो सकते।' माता पार्वतीने दोनों पुत्रोंकी ओर …र कहा—'अतएव यह गजानन सैकड़ों पुत्रों और …ों गणोंसे भी बढ़कर है। इस कारण यह देवनिर्मित …मय मोदक मैं गणेशको ही देती हूँ। माता पिताकी …के कारण यह यज्ञादिमें सर्वत्र अग्रपूज्य होगा।'

…'इस गणेशकी अग्रपूजासे ही समस्त देवगण प्रसन्न …' पिता कर्पूरगौर शिवने भी कह दिया।

…माता पार्वतीने सर्वगुणदायक पवित्र मोदक गणेशजीको …दिया और अत्यन्त प्रसन्नतासे उन्होंने समस्त देवताओंके …मुख ही उन्हें गणोंके अध्यक्ष पदपर प्रतिष्ठित कर दिया।

कुशाग्रबुद्धि

दूसरे स्थलपर इसी प्रकारकी एक कथा और मिलती …जिससे गुणगान निरत् गणेशकी पितृभक्ति एव असीम …ग्रबुद्धिताका परिचय प्राप्त होता है। वह कथा …ससे इस प्रकार है—

ग० अं० २०—

एक बारकी बात है। चन्द्रार्धभूषण भगवान् शंकरने एक यज्ञ करनेका निश्चय किया। उक्त पावन यज्ञमें उन्हें समस्त देवताओंको निमन्त्रण देना आवश्यक था। उन्होंने यह भार अपने पुत्र कार्तिकेयको दिया; किंतु निश्चित अवधिके भीतर प्रत्येक देवताके समीप जाकर उन्हें आमन्त्रण दे देना सम्भव नहीं था। तब पार्वतीश्वरने यह भार महाकाय गजाननको दिया। वे अपने वाहन क्षुद्र मूषकपर सर्वत्र कैसे पहुँचते? पर उन्होंने उपाय ढूँढ़ निकाला, वे विद्या बुद्धि-वारिधि जो ठहरे।

'मेरे परम पिता महादेवके पावनतम अङ्गमें समस्त देवता निवास करते हैं।'—यह सोचकर उन्होंने सर्वदेवमय पशुपतिकी तीन बार प्रदक्षिणा की और वहीं प्रत्येक देवताको यज्ञमें पधारनेका निमन्त्रण दे दिया। फलतः समस्त देवताओंको सर्वलोकमहेश्वर शिवके यज्ञकी सूचना प्राप्त हो गयी और सभी देवता यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये ठीक समयपर पहुँच गये।

सर्वहितकारी

एक बारकी बात है। मनु-कुलोत्पन्न राजर्षिश्रेष्ठ राजा रिपुंजयने अविमुक्त-क्षेत्रमें कठोर तप प्रारम्भ किया। उन्होंने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर लिया था। उस वीर एवं क्षत्रियधर्मके मूर्तिमान् विग्रह रिपुंजयनरेशके तपश्चरणसे संतुष्ट हो प्रजापति ब्रह्माने उनके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'बुद्धिमान् नरेश! तुम वनों, पर्वतों एवं समुद्रोंसहित सम्पूर्ण वसुंधराका पालन करो। तुम्हारे धर्मनिष्ठ राज्यसे प्रसन्न होकर देवगण सदा तुम्हें स्वर्गीय रत्न और पुष्प प्रदान करते रहेंगे। मैं तुम्हें दिव्य सामर्थ्य प्रदान करूँगा।'

लोकस्रष्टाने अत्यन्त स्नेहपूर्वक तपस्वी रिपुंजयसे आगे कहा—''नागराज वासुकि अपनी अनुपम लावण्यवती नागकन्या अनङ्गमोहिनी तुम्हें अर्पित करेंगे। तुम उसे सहधर्मिणीके रूपमें स्वीकार कर लेना और उसके साथ धर्मपूर्वक धराका शासन करना। 'दिवो दास्यन्ति'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार तुम्हारा नाम 'दिवोदास' होगा।''

'पितामह! इस विशाल धरणीपर अनेक नरेश हैं।' अत्यन्त विनयपूर्वक रिपुंजयनरेशने विधातासे निवेदन किया—'फिर प्रजा-पालनका आदेश मुझे ही क्यों दिया जा रहा है?'

अपने मङ्गल परिणयसे सर्वानन्दप्रदाता गजमुख भी बड़े आनन्दित हुए। अत्यन्त सुशीला एवं मधुरभाषिणी पत्नियोंके साथ उनका जीवन बड़ा सुखद था। समयपर गणेश-पत्नी सिद्धिकी कोखसे 'क्षेम' और बुद्धिके उदरसे 'लाभ' नामक अतिशय सुन्दर दिव्य बालकोंने जन्म लिया। इस प्रकार सर्वकारणकारण गणाध्यक्ष आनन्द निवास करने लगे।

खिन्न कार्तिकेय

उधर सम्पूर्ण धरित्रीकी परिक्रमा करके गजानन भ्राता कार्तिकेय लौटे तो देवर्षि नारदके द्वारा गजवदनके विवाहका समाचार पाकर अत्यन्त खिन्न हुए। उन्होंने दुःखी मनसे अपने परम पूज्य पिताके चरणोंमें प्रणाम कर शिव-सदन त्याग देनेका निश्चय कर लिया। शिवा और शिवने उन्हें बहुत समझाया, किंतु वे अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुए। क्रौञ्च पर्वतपर चले गये।

> तद्दिनं हि समारभ्य कार्तिकेयस्य तस्य वै।
> शिवपुत्रस्य देवर्षे कुमारत्वं प्रतिष्ठितम्॥
> तन्नाम शुभदं लोके प्रसिद्धं भुवनत्रये।
> सर्वपापहरं पुण्यं ब्रह्मचर्यप्रदं परम्॥
> (शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० २०। २७-२८)

'उसी दिनसे शिव पुत्र स्वामिकार्तिकका कुमारत्व (कुँआरपना) प्रतिष्ठित हुआ।* उनका 'कुमार'-नाम त्रैलोक्यमें विख्यात हो गया। वह नाम शुभदायक, सर्वपापहारी, पुण्यमय और उत्कृष्ट ब्रह्मचर्यकी शक्ति प्रदान करनेवाला है।'

प्रत्येक कार्तिक पूर्णिमाके पावन पर्वपर देवता, ऋषि, तीर्थ और मुनीश्वर स्वामिकार्तिकेयके दर्शनार्थ क्रौञ्च-पर्वतपर जाया करते हैं। कार्तिक-पूर्णिमाके दिन कृत्तिकानक्षत्रका योग होनेपर कुमार कार्तिकेयका दर्शन करनेसे मनुष्यके सारे पातक धुल जाते हैं और उसकी समस्त कामनाओंकी पूर्ति होती है।

एक दिन अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने [illegible] शिवसे दीन वाणीमें कहा—'स्वामिन्! [illegible] है, वहाँ मुझे भी ले चलिये।'

भगवान् शिव अपनी प्राणप्रिया [illegible] प्रमुदित करनेके लिये अपने अंशसे [illegible] पर्वतपर पहुँचे और वहाँ सर्वसुन्दर [illegible] ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें प्रतिष्ठित हो गये। [illegible] भक्तवाञ्छाकल्पतरु परमप्रभु शिव आज [illegible] प्रियाके साथ वहाँ विद्यमान हैं।

उधर कुमार कार्तिकेयने अपने माता [illegible] समाचार सुना तो वहाँसे चल देनेका विचार [illegible] तीन योजन दूर हो गये थे कि देवताओं [illegible] उनसे रुक जानेकी प्रार्थना की। इस कारण [illegible] आगे न जाकर वहीं रुक गये।

अपने प्राणप्रिय पुत्र कार्तिकेयके स्नेहसे [illegible] प्रत्येक पर्वपर उन्हें देखने जाते हैं। [illegible] करुणामूर्ति कर्पूरगौर और पूर्णिमाके दिन [illegible] माता पार्वती वहाँ पधारती हैं।*

सर्वपूज्य बुद्धिसिन्धु गणेशके परम [illegible] परिचायिका इसी प्रकारकी कथा पद्मपुराणमें [illegible] आती है—

महिमामय मोदक-प्राप्ति

एक बारकी बात है। अत्यन्त सुन्दर [illegible] एवं तेजस्वी गजानन और षडाननके दर्शन [illegible] अत्यन्त प्रसन्न हुए। माता पार्वतीके चरणोंमें [illegible] श्रद्धा हुई। उन्होंने सुधामिश्रित [illegible] पार्वतीके हाथमें दिया। [illegible] देखकर दोनों बालक [illegible]

* पद्मपुराण [illegible]

ुतोष शिवकी आज्ञा शिरोधार्य करके सूर्यदेव
ी काशीपुरीमें गये । वहाँ बाहर-भीतर विचरते
होंने राजामें तनिक भी धर्मका व्यतिक्रम नहीं
भगवान् सूर्यने कभी, कहीं, किसी मनुष्यमें भी
द्र नहीं देखा । इस प्रकार तिमिरारि लोकचक्षु
बारह रूपोंमें व्यक्त होकर महिमामयी काशीपुरीमें
ो गये । इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—
उत्तरार्क, साम्बादित्य, द्रौपदादित्य, मयूखादित्य,
ादित्य, अरुणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य,
त्य, गङ्गादित्य और यमादित्य ।

मलोद्भव ! मैंने काशीका समाचार जाननेके लिये
योगिनियोंको और फिर सूर्यदेवको भेजा; पर वे
क नहीं लौटे ।' काशीको अत्यन्त प्रिय समझनेवाले
, कर्पूरगौरने ब्रह्माजीसे कहा—'अतः अब आप
आपका मङ्गल हो ।'

गवान् पार्वतीवल्लभके आदेशानुसार लोकपितामह
ाह्मणके वेषमें काशी पहुँचे तो उस मनोहर पुरीका
कर उनका हृदय हर्षोल्लाससे भर गया । वृद्ध
रूपधारी ब्रह्मा राजा दिवोदासके समीप पहुँचे । राजाने
चरणोंमें प्रणाम कर प्रत्येक रीतिसे उनकी पूजा
ौर उनके शुभागमनका कारण पूछा ।

राजन् ! इस समय मैं यहाँ यज्ञ करना चाहता हूँ ।'
राजा दिवोदासके धर्मपूर्ण शासन एवं काशीकी
का गान करते हुए कहा—'और इस कार्यमें तुम्हें
क बनाना चाहता हूँ ।'

यज्ञेच्छु श्रेष्ठ ब्राह्मण ! मैं आपका दास हूँ ।' धर्ममूर्ति
ासने विनयपूर्वक निवेदन किया—'आप मेरे
ारसे समस्त यज्ञ-सामग्रियोंको ले जायँ और एकाग्रचित्त
यज्ञ करें ।'

धर्मपरायण राजा दिवोदासके श्रद्धा भक्तिपूर्ण विनीत
से लोकस्रष्टा अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने दिवोदासकी
ताासे यज्ञ-सामग्रियोंका संग्रह करके दस अश्वमेध नामक
ज्ञोंद्वारा भगवान्का यजन किया और तभीसे वाराणसीमें
ुद्धायक 'रुद्रसरोवर' नामक तीर्थ दशाश्वमेधके नामसे
ात हुआ । तदनन्तर पुण्यसलिला गङ्गाके पधारनेपर वह
और अधिक पुण्यजनक हो गया । ब्रह्माजी वहाँ
श्वमेधेश्वर-लिङ्गकी स्थापना कर स्थित हो गये । चतुर्मुख

ब्रह्मा धर्मानुरागी राजा दिवोदासमें कोई छिद्र नहीं पा सके;
फिर वे भगवान् शंकरके समीप जाकर क्या कहते ।
उन्होंने उक्त क्षेत्रका प्रभाव समझकर वहाँ ब्रह्मेश्वरलिङ्गकी
स्थापना की और भगवान् विश्वनाथका ध्यान करते हुए
परम पावनी काशीपुरीमें ही रह गये ।

मङ्गलमूर्ति ज्यौतिषी बने

इसके अनन्तर आशुतोषकी आज्ञा प्राप्तकर मङ्गलमूर्ति
गणेशजी मन्दरगिरिसे काशीपुरीके लिये प्रस्थित हुए ।
श्रीगणेशजीने काशीमें प्रविष्ट होते समय वृद्ध ब्राह्मणका
वेष धारण कर लिया । वे वृद्ध ज्योतिषीके रूपमें अविमुक्त-
क्षेत्रके निवासियोंके घरोंमें जा जाकर उन्हें प्रसन्न करते ।
वृद्ध ज्योतिषीके वेषमें श्रीगणेशजीकी वाणी अत्यन्त मधुर
थी । उनके प्रत्येक वचन सत्य सिद्ध होते थे । इस प्रकार
कुछ ही समयमें उनकी सर्वत्र ख्याति फैल गयी । ख्यातिप्राप्त
वृद्ध ज्योतिषी राजाके अन्तःपुरमें बुलाये गये । सर्वान्तर्यामी
वयोवृद्ध ज्योतिषीने सर्वथा सत्य घटनाओंका उल्लेख किया ।
उसने रानियोंके प्रत्येक प्रश्नका प्रत्यक्ष द्रष्टाकी तरह उत्तर
दिया । इस प्रकार वे सभी स्त्रियोंके विश्वासभाजन ही नहीं,
श्रद्धाके केन्द्र भी हो गये ।

'राजन् ! एक अद्भुत विद्वान् एवं वेदोंकी मूर्तिमान्
निधि वृद्ध ब्राह्मण-ज्योतिषी पधारे हैं ।' एक दिन राजा
दिवोदासकी पत्नी लीलावतीने अपने पतिसे निवेदन किया—
'वे सद्गुणसम्पन्न, अत्यन्त बुद्धिमान् ब्राह्मण गुणज्ञ हैं ।
आप भी उनका दर्शन कीजिये ।'

दूसरे दिन धर्मात्मा नरेश दिवोदासने उक्त परम गुणज्ञ
वृद्ध ज्योतिषीको अत्यन्त आदरपूर्वक बुलवाया । राजाने
वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी पार्वतीनन्दनका यथावत् सत्कार किया ।

'मेरी दृष्टिमें आप तत्त्वज्ञान-सम्पन्न श्रेष्ठ द्विज हैं ।'
एकान्तमें राजा दिवोदासने अत्यन्त विनयपूर्वक वृद्ध ब्राह्मण-
ज्योतिषीसे निवेदन किया—'इस समय मेरा मन जागतिक
पदार्थों एवं सभी कर्मोंसे विरक्त हो रहा है । अतएव आप
भलीभाँति विचारकर मेरे शुभ भविष्यका वर्णन करें ।'

'धर्ममूर्ति नरेश ! आजके अठारहवें दिन उत्तर
दिशासे एक तेजस्वी ब्राह्मण पधारेंगे ।' वृद्ध ज्योतिषीने
राजासे कहा—'यदि तुम श्रद्धापूर्वक उनसे प्रार्थना करोगे
तो वे निश्चय ही तुम्हें उपदेश देंगे । तुम यदि उनकी

'तुम धर्माचरण-सम्पन्न आदर्श वीर पुरुष हो।' पितामहने उन्हें प्रेमपूर्वक समझाया—'तुम्हारा राज्य धर्मपर आधृत होगा; इस कारण तुमपर संतुष्ट होकर देवराज इन्द्र सुवृष्टि करेंगे; सुवृष्टि होगी तो प्रजा धन-धान्यसे सम्पन्न रहेगी एवं धर्मप्राण प्रजासे देवता, पितर एवं सम्पूर्ण प्राणी सुखी रहेंगे। किसी अन्य धर्मविहीन नरेशके द्वारा अनावृष्टि आदिके कारण सर्वत्र दुःख दारिद्र्यका साम्राज्य फैल जायगा।'

'महामान्य पितामह! त्रैलोक्यकी रक्षा करनेमें आप स्वयं समर्थ हैं।' रिपुंजयनरेशने विधाताकी स्तुति करते हुए कहा—'किंतु आप कृपापूर्वक मुझे यश प्रदान कर रहे हैं; अतएव आपका आदेश मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ। पर यदि आप मेरा एक निवेदन स्वीकार कर लें तो सोत्साह आपके आज्ञा पालनमें मुझे सुविधा रहेगी।'

'राजन्! तुम्हें जो कहना हो, अवश्य कहो।' पद्मोद्भवने तुरंत कहा—'मैं तुम्हारी प्रत्येक इच्छाकी पूर्ति करना चाहता हूँ।'

'परमपूज्य पितामह! यदि मैं धरतीका शासन-सूत्र ग्रहण करूँ तो सुर समुदाय स्वर्गमें ही निवास करें; पृथ्वीपर न आयें।' राजा रिपुंजयने अपने मनकी बात स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दी—'इस प्रकार मैं धरणीका निष्कण्टक राज्य कर सकूँगा।'

'तथास्तु!' सृष्टिकर्ताने तत्क्षण वचन दिया और वहीं अन्तर्धान हो गये।

'मनुष्योंके स्वस्थ और सुखी रहनेके लिये आवश्यक है कि देवगण इस पृथ्वीको छोड़कर अमरावती पधारें और वहीं रहें। वे इच्छापूर्वक इस धरतीपर न आयें।' राजा दिवोदासके आदेशसे दुन्दुभि बजा-बजाकर घोषणा कर दी गयी। 'भगवान् भी यहाँ पधारनेकी कृपा न करें।' ऐसे शासनकालमें सुर समुदाय स्वर्गमें और मनुष्य धरतीपर आनन्द [illegible]

पृथ्वीसे देवताओंके चले जानेपर [illegible] दिवोदासने यहाँ निर्द्वन्द्व राज्य किया। [illegible] अपनी राजधानी बनाया और धर्मपूर्वक [illegible] लगे। उनके शासनकालमें प्रजा धन-[illegible] समृद्धिसे पूर्ण हो गयी। प्रत्येक दिवस [illegible] था। उनके राज्यमें अपराधका कहीं [illegible] असुर भी मनुष्यके वेषमें राजा दिवोदासकी [illegible] होते एवं उनकी आज्ञाके पालनमें [illegible] धर्मपरायण नरेश दिवोदासके राज्यमें सभी [illegible] ईति-भीतिसे रहित थे। सर्वत्र धर्मकी [illegible] अधर्मका कहीं नाम भी नहीं था। [illegible] दिवोदासको शासन करते अस्सी लाख [illegible] हो गये।

देवताओंका छिद्रान्वेषण

राजा दिवोदासकी इस व्यवस्थासे कि देव[illegible] छोड़ अपने-अपने स्थानमें जाकर रहें; [illegible] जानेके कारण भगवान् शंकर तथा अन्य देव[illegible] और राजाका छिद्र इसलिये ढूँढ़ रहे थे कि [illegible] समाप्त कर दिया जाय। उक्त धर्मप्राण नरेशका [illegible] लिये देवताओंने बड़ा प्रयत्न किया; किंतु वे [illegible] इन्द्रादि देवताओंने तपस्वी नरेश दिवोदासका [illegible] करनेके लिये अनेक बाधाएँ उपस्थित कीं [illegible] तपोबलके सम्मुख वे सफलमनोरथ न हो सके। [illegible] भगवान् शंकरने मन्दरगिरिसे चौंसठ योगिनियोंको छिद्रान्वेषणके लिये भेजा। वे योगिनियाँ [illegible] मासतक रहकर निरन्तर प्रयत्न करनेपर [illegible] राजामें कोई छिद्र (दोष) नहीं पा सकीं। [illegible] कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे वहीं रह गयीं।

'समाधान! [illegible] यथाशीघ्र [illegible]

—रण करते ही भक्तवाञ्छाकल्पतरु श्रीगणेशजी व्यासजीके सम्मुख उपस्थित हो गये । महर्षि अत्यन्त आदर और प्रेमपूर्वक उनका अभिनन्दन कर पार्वतीनन्दन श्रीगणेशजीके बैठनेपर उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक निवेदन किया—

लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक ।
मयैव प्रोक्तग्रन्थस्य मनसा कल्पितस्य च ॥

(महा०, आदि० १ । ७७)

'गणनायक ! आप मेरेद्वारा निर्मित इस महाभारत ग्रन्थके लेखक बन जाइये; मैं इसे बोलकर लिखाता जाऊँगा । मैंने मन ही मन इसकी रचना कर ली है ।'

महर्षि व्यासकी बात सुनकर बुद्धिराशि श्रीगणेशजीने उत्तर दिया—'व्यासजी ! यदि लिखते समय क्षणभरके लिये भी मेरी लेखनी न रुके तो मैं इस ग्रन्थका लेखक बन सकता हूँ ।'

……………यदि मे लेखनी क्षणम् ।
लिखतो नावतिष्ठेत तदा स्यां लेखको ह्यहम् ॥

(महा०, आदि० १ । ७८)

'आप किसी भी प्रसङ्गको बिना समझे एक अक्षर भी मत लिखियेगा ।' व्यासजीने कहा—

'ॐ'—कहकर बुद्धिराशि, शुभगुणसदन अरुणवर्ण श्रीगणेशजीने इसे लिखना स्वीकार कर लिया और उनके अनुग्रह से महाभारत-जैसा लोकपावन ग्रन्थ-रत्न जगत्‌को प्राप्त हुआ ।

(च)—गणेशपुराणमें

ब्रह्माद्वारा गणेश-पूजा

गणेशपुराणके उपासना-खण्डमें आता है कि एक बार श्रीब्रह्माके मनमें सृष्टिकर्तापनका अभिमान हो गया । तब उनके सम्मुख इतनी आपदाएँ उपस्थित हुईं कि वे किंकर्तव्यविमूढ हो गये । अन्ततः उन्होंने एकदन्तधारी की आराधना की । विधाताके तपसे सन्तुष्ट होकर विघ्ननाशन महामना गणेश उनके सम्मुख उपस्थित हुए । चतुराननने सृष्टिके आदिप्रवर्तक, परम तेजस्वी, सिन्दूर गजकर्णकी भक्तिपूर्ण स्तुति की । सुराग्रजने प्रसन्न होकर उन्हें इच्छित वर प्रदान किया । मूषकारोही गणेशके वरके प्रभावसे पद्मयोनिने पुनः सृष्टि रचना प्रारम्भ की ।

विष्णुकी गणेशोपासना

वेदगर्भ ब्रह्मा जब जगत्‌की सृष्टिमें तल्लीन थे, तब योगनिद्रायी विष्णुके कानोंसे मधु और कैटभ-नामक घोर-वीर असुर उत्पन्न हुए । उन प्रबल पराक्रमी असुरोंके उपद्रवोंसे ऋषि-मुनि एवं देवगण अत्यन्त व्याकुल हो गये । विधाताने व्याकुल होकर योगमायासे प्रार्थना की । योगमायाकी प्रेरणासे लक्ष्मीपति विष्णुकी निद्रा भङ्ग हुई ।

मधु कैटभके उपद्रवको शान्त करनेके लिये अद्भुत किरीट-कुण्डल एवं शङ्ख चक्र-गदा पद्मधारी, नवघनश्यामवपु विष्णुने शङ्खध्वनि की । पाञ्चजन्यकी भयानक ध्वनिसे त्रैलोक्य काँप उठा । वीरवर मधु और कैटभ एक साथ ही लक्ष्मीपति विष्णुपर टूट पड़े । पाँच सहस्र वर्षोंतक सुरत्राता विष्णु उन दोनों असुरोंसे युद्ध करते रहे, पर उन्हें पराजित न कर सके ।

तब श्रीविष्णुने संगीतज्ञ गन्धर्वका अत्यन्त सुन्दर रूप धारण कर लिया और दूसरे वनमें जाकर वीणाकी मधुर तान छेड़ दी तथा लोकोत्तर श्रुतिमधुर गीत गाने लगे । भगवान् लक्ष्मीपतिका वह गीत सुनकर मृग, पशु पक्षी, देव गन्धर्व और राक्षस—सभी मुग्ध हो गये । क्षीराब्धिशायीका वह भुवनमोहन आलाप कैलासमें बार बार सुनायी देने लगा । उस संगीतसे मुदित होकर भगवान् चन्द्रशेखरने उक्त गायकको बुला लानेके लिये भेजा ।

निकुम्भ और पुष्पदन्त उक्त स्वर-लहरीके सहारे गन्धर्व वेषधारी विष्णुके समीप पहुँचे और उन्होंने उनसे सदाशिवके समीप चलनेका अनुरोध किया । श्रीविष्णु प्रसन्नतापूर्वक कैलासके लिये प्रस्थित हुए । कैलासमें पहुँचकर गन्धर्वने प्रणतार्तिविनाशन कर्पूरगौरके चरण-कमलोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया । भगवान् पार्वतीकान्तने अधोक्षजको अपने कर-कमलोंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया और फिर उन्हें सुन्दर आसनपर बैठाकर उनकी पूजा की । शेषशायीने अत्यन्त मुदित होकर देवाधिदेव महादेवसे कहा—'आज धर्म-काम-अर्थ-मोक्ष प्रदान करनेवाले परम प्रभुका दर्शन कर मैं धन्य हो गया ।'

फिर जनसुखदायक विष्णुने जब वीणाके तारोंका स्पर्श किया तो उसकी मधुर ध्वनिसे वृषभध्वज, माता पार्वती, गजमुख, स्वामिकार्तिक और सभी देवता मुग्ध हो गये । आनन्दघन विष्णुके गीत सुनकर पार्वतीवल्लभ आत्मविभोर हो गये । उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-

गणनायकका ध्यान करने लगे। अत्यन्त संयतेन्द्रिय प्रथमेश्वर गणेशका जप करते हुए केवल वायुके एक सहस्र दिव्य वर्षतक घोर तपश्चरण किया। उन्होंने एक जीर्ण पत्ता खाकर पंद्रह हजार वर्षतक ...या की।

...गाय अपने बछड़ेका रँभाना सुनकर दौड़ती चली उसी प्रकार गृत्समदके अत्यन्त कठोर तपसे संतुष्ट ...ग्रहमूर्ति गणेशजी अत्यन्त शीघ्रतासे उनके समीप ...स समय उनका तेज सहस्रों सूर्योंके समान था, सम्पूर्ण विश्वको उद्भासित कर रहे थे। तालपत्रके ...नके कान हिल रहे थे। वे विशाल गजराजकी सी ...रहे थे और आनन्दक क्रीड़ामें सानन्द आसक्त थे। ...पर चन्द्रमा शोभायमान था, गलेमें विशाल कमल-...शोभित थी। उनके एक हाथमें सनाल कमल था ...सिंहपर आरूढ़ थे। उनके दस भुजाएँ थीं। वे ...ज्ञोपवीत धारण किये हुए थे। उनके विग्रहपर ...गर, कस्तूरी और शुभ्र चन्दनका लेप था। उन ...प्रभुकी दोनों पत्नियाँ सिद्धि और बुद्धि उनके साथ ...का स्वरूप अनिर्देश्य था और वे लीलासे ही मुनि ...( ) के सम्मुख प्रकट हो गये। बुद्धिसिन्धु गणनाथने ...नेहपूर्ण स्वरसे कहा—'तुम्हारे कठोर तपसे मैं प्रसन्न ...अपनी इच्छा व्यक्त करो; मैं उसे पूर्ण करूँगा।'

...सर्वशक्तिसम्पन्न प्रभो! आप मुझे अपनी सुदृढ़ भक्ति ...और यथार्थ ज्ञान प्रदान कीजिये।' गृत्समदने भगवान्‌के ...चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम कर करबद्ध याचना की—...मङ्गलकारी मङ्गलमय प्रभो! यह 'पुष्पकवन' गणेशपुरके ...स्थान हो और आप यहाँ रहकर भक्तोंकी वाञ्छा ...रहें।'

...म मेरे नैष्ठिक भक्त होओगे और तुम्हारी समस्त ...पूरी होंगी।' भक्तवत्सल वरदमूर्तिने वर प्रदान करते ...—'तुम्हें त्रैलोक्यविख्यात अत्यन्त शक्तिशाली पुत्रकी ...गी। उसे केवल कालनाथ शिव ही पराजित कर ...कृतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुगमें इस क्षेत्रके ...नाम क्रमशः पुष्पक, मणिपुर, मानक और भद्रक होंगे। ...यहाँ स्नान दानसे मनुष्यकी समस्त कामनाएँ पूरी होंगी।'

...यों कहकर सर्वकौतुकधारी गजानन अन्तर्धान हो गये।

गृत्समदमुनिने अत्यन्त हर्षित होकर वहाँ एक सुन्दर मन्दिरका निर्माण करवाया और उसमें अपने आराध्य प्रथमेश्वर गजमुखकी प्रतिमा स्थापित की। उसका नाम 'वरद' प्रसिद्ध हुआ।

ब्राह्मणों एवं ऋषियोंसे सम्मानित गृत्समदमुनि अपने आराध्यके ही ध्यान, पूजन एवं भजन स्मरणमें अपना समय व्यतीत करने लगे। एक दिनकी बात है, उनके सम्मुख एक अत्यन्त तेजस्वी वस्त्रालंकारभूषित बालक प्रकट हुआ।

त्रिपुरकी गणेशोपासना

आश्चर्यचकित मुनिके प्रश्न करनेपर उस बालकने कहा—'मैं आपका पुत्र हूँ। आपकी छींकसे मेरी उत्पत्ति हुई है। आप कृपापूर्वक मेरा कुछ दिन पालन करें। मैं अपने पौरुषसे इन्द्रादि देवताओंसहित त्रैलोक्यपर विजय प्राप्त करूँगा।'

उस तेजस्वी बालककी वाणीसे भयभीत मुनिने उसे अपने इष्टदेवकी उपासना करनेकी प्रेरणा दी। देवप्राता गणेशका मन्त्र भी उन्होंने उसे बता दिया।

पिताकी प्रेरणासे वह बालक एकान्त शान्त वनमें चला गया और वहाँ वह एक अँगूठेपर खड़े होकर अज, अनादि और अनन्त विनायकका ध्यान करते हुए उनके मन्त्रका जप करने लगा। इस प्रकार उसे निराहार रहकर कठोर तप करते हुए पंद्रह सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

भक्तवत्सल गजमुख प्रसन्न हुए। दयाधाम एकदन्तने तपस्वी बालकके सम्मुख प्रकट होकर भयानक शब्द किया।

मुनिपुत्रने देखा—सम्मुख नाना प्रकारके वस्त्राभरणोंसे अलङ्कृत, चतुर्भुज महाकाय इष्टदेव खड़े हैं। उनके कर-कमलोंमें परशु, कमलमाला एवं मोदक सुशोभित हैं—

> चतुर्भुजं महाकायं कनकभूषणविभूषितम् ॥
> परशुं कमलं मालां मोदकान् बिभ्रतं करैः ।
>
> (गणेशपु० १ । ३८ । १५ १६)

'प्रभो! आपके अलौकिक तेजसे मैं भयभीत हो रहा हूँ। आप कृपापूर्वक प्रसन्न होकर मेरी कामना पूर्ण कीजिये।' चरणोंमें प्रणाम कर मुनिपुत्रने डरते हुए भक्तवत्सल, सर्वेश्वर, समस्त जीव जगत्के स्वामी गजाननसे प्रार्थना की।

'मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हूँ। तुम इच्छित वर माँगो।' सिन्दूरवर्णने अपना तेज समेटकर अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा।

मः कारणिकोत्तमाय नमो नमो ज्ञानमयाय तेऽस्तु ।
नमोऽज्ञानविनाशनाय नमो नमो भक्तविभूतिदाय ॥
नमोऽभक्तविभूतिहन्त्रे नमो नमो भक्तविमोचनाय ।
नमोऽभक्तविबन्धनाय नमो नमस्ते प्रविभक्तमूर्ते ॥
नमस्तत्त्वविबोधकाय नमो नमस्तत्त्वविदुत्तमाय ।
नमस्तेऽखिलकर्मसाक्षिणे नमो नमस्ते गुणनायकाय ॥

(गणेशपु० २ । ४० । ४२–४९)

परमार्थस्वरूप ! आपको नमस्कार है, नमस्कार आप सबके कारण हैं; आपको नमस्कार है, र है । आप सबके कर्ता हैं; आपको नमस्कार है । इन्द्रियोंमें निवास करते हैं; आपको नमस्कार है । समस्त प्राणिमय हैं, आपको नमस्कार है, र है । सुरेश ! आप भूत-सृष्टिके कर्ता (और संहारक) आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप समस्त बुद्धियोंके रूप हैं, संसारकी उत्पत्ति और लय करनेवाले हैं; नमस्कार है, नमस्कार है । हे अखिलेश ! आप पालक हैं, कारणोंके भी कारण हैं; आपको र है, नमस्कार है । आप वेदज्ञोंके लिये भी अदृश्य आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप सबको वर हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप विचारसे परे हैं—वाणीसे आपके स्वरूपका कथन किया जा सकता; आपको नमस्कार है, नमस्कार आप विघ्नोंका निवारण करते हैं; आपको नमस्कार है, र है । आप अभक्तके मनोरथको नष्ट करनेवाले हैं; नमस्कार है, नमस्कार है । आप भक्तोंके मनोरथों- करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । भक्तोंके मनोरथोंके स्वामी हैं (उनके मनोरथोंको सिद्ध करते हैं); आपको नमस्कार है, नमस्कार है । सबकी सृष्टि करनेमें कुशल हैं; आपको नमस्कार है, र है । आप दैत्योंके विनाशके कारण हैं; आपको र है, नमस्कार है । आप संकटोंको नष्ट करनेवाले हैं; नमस्कार है, नमस्कार है । आप करुणा करनेवालोंमें हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आपका ज्ञानमय है; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । अज्ञानको नष्ट करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, र है । आप भक्तोंको ऐश्वर्य प्रदान करते हैं; आपको र है, नमस्कार है । आप अभक्तोंका ऐश्वर्य नष्ट करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप भक्तोंको मुक्ति देनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप अभक्तोंको बन्धनमें डालनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप पृथक्-पृथक् मूर्तिमें व्याप्त हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप तत्त्व-बोध करानेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप तत्त्वज्ञोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप समस्त कर्मोंके साक्षी हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप गुणोंके स्वामी हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है ।'

'देवताओ ! मैं तुम्हारी तपस्या एवं स्तुतिसे प्रसन्न हूँ ।' करुणामय वरदाता गजकर्णने सुर-समुदायको आनन्द प्रदान करते हुए कहा—'तुम वर माँगो । मैं तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूरी करूँगा ।'

'सर्वेश्वर !' देवताओंने अपनी व्यथा-कथा सुनाते हुए निवेदन किया—'अमित शक्तिसम्पन्न त्रिपुरके भयसे हम गिरि-गुहामें रहनेके लिये विवश हैं । अमरावतीका उपभोग दुर्दान्त दानव कर रहा है । आप उद्दण्ड त्रिपुरका वध करके हमारी विपत्ति दूर करें ।'

'मैं निश्चय ही क्रूरकर्मा त्रिपुरसे आपलोगोंकी रक्षा करूँगा ।' द्विरदाननने सुरोंको आश्वस्त करते हुए कहा—"आपलोगोंके द्वारा किया हुआ यह 'संकटनाशनस्तोत्र' सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला होगा ।" *

यह कहकर गजानन अन्तर्धान हो गये । वे बुद्धिराशि प्रभु ब्राह्मणके वेषमें त्रिपुरासुरके समीप पहुँचे और परिचय देते हुए बोले—

'कल्याधर मेरा नाम है ।' त्रिपुरासुरने उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी पूजा की । उनके पूछनेपर सर्वथा निःस्पृह ब्राह्मण-वेषधारी गणनाथने उसके वैभवकी प्रशंसा करते हुए कहा—'भगवान् शिवद्वारा पूजित सर्वकामप्रद अद्वितीय गणेश-प्रतिमा कैलासमें है; मैं उस त्रैलोक्यदुर्लभ मूर्तिकी कामनासे तुम्हारे पास आया हूँ ।'

'मैं निश्चय ही वह मूर्ति आपको दूँगा ।' त्रिपुरने ब्राह्मणको गणेश-प्रतिमा प्रदान करनेके लिये वचन देनेके साथ उन्हें वस्त्रा-

---

* भक्त्याऽऽनमिदं स्तोत्रमभीष्टफलदायकं मम ।
सङ्कटनाशनमिति विख्यातं च भविष्यति ॥
पठतां शृण्वतां चैव सर्वकामप्रदं नृणाम् ।
[illegible] वः पठेदेतत् सङ्कटं नाशमेष्यति ॥

(गणेशपु० २ । ४० । ५५-५६)

[illegible] हूँ। [illegible] नहीं [illegible]।' दानवके पुत्रने [illegible] गजाननसे उसकी प्रार्थना की—'आप प्रसन्न होकर मुझे त्रैलोक्यको आयत्त करनेकी शक्ति प्रदान कीजिये। देव, दानव, गन्धर्व, मनुष्य, नाग और [illegible] मैं अपने वशमें कर लूँ। इन्द्रादि [illegible] सदा मेरी सेवा करें और मेरी इच्छा [illegible] प्राप्त होती रहें। इस जीवनमें समस्त सुखोंका उपभोग कर मैं मृत्युके समय मोक्ष प्राप्त कर लूँ। मेरी यह तपोभूमि पवित्र 'गणेशपुर'के नामसे प्रसिद्ध हो।'

'तुम सदा निर्भय एवं त्रैलोक्यविजयी होओगे।' रक्ताम्बरधर गजदन्तने वर प्रदान करते हुए कहा—'लौह, रजत एवं स्वर्णके तीन नगर मैं तुम्हें देता हूँ। भगवान् शूलपाणिके अतिरिक्त अन्य कोई इन्हें नष्ट नहीं कर सकेगा। तुम्हारा नाम 'त्रिपुर' होगा। जब भूतभावन महादेव अपने एक ही शरसे इन तीनों पुरोंको ध्वस्त करेंगे, तब तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी। मेरी कृपासे तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूरी होंगी।'

ऐसा कहकर मूषकारोही अन्तर्धान हो गये। त्रिपुरासुरकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उसने वहाँ मूषकध्वजका अत्यन्त भव्य मन्दिर बनवाया और फिर आदिदेव गणेशकी प्रतिमा स्थापित कर उसकी श्रद्धा और विधिपूर्वक षोडशोपचारसे पूजा की। उसने गद्गद कण्ठसे धन धान्यपति सिद्धि-सदनकी स्तुति कर उनके चरणोंमें दण्डकी भाँति लोटकर बार-बार प्रणाम किया। फिर उसने गजमुखसे क्षमा याचना कर ब्राह्मणों-को दान दिया। तदनन्तर वह त्रैलोक्य विजयके लिये निकल पड़ा।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

देवताओंद्वारा ग[illegible]

स्वर्गसे निर्वासित गिरि-कन्दर[illegible] एवं दुःखी थे। 'असुर कैसे पर[illegible] करें।' किंतु वे सर्वथा असहाय [illegible] बुद्धि काम नहीं कर रही थी।

एक दिन उनके समीप [illegible] सुरोंको बताया—'त्रिपुरकी अजेयता विनायकका वर है। आपलोग भी [illegible] परिपूर्णतम गजमुखको संतुष्ट कर [illegible] हो सकेगा।'

देवर्षिने देवताओंको [illegible] और वे अपनी वीणापर हरि-[illegible]

देव-समुदाय आदिदेव [illegible] आराधनामें प्रवृत्त हुआ।

…खर्व (छोटे कदवाले), लम्बोदर, स्थूलकाय, … उद्भासित, गजमुख, अग्नितुल्य कान्तिमान्, … और अनन्त हैं; जो सिद्धों, योगियों और ज्ञानियों-के गुरु हैं; ब्रह्मा, शिव और शेष आदि देवेन्द्र, मुनीन्द्र, … मुनिगण तथा संतलोग जिनका ध्यान करते हैं; जो …वाली, सनातन, ब्रह्मस्वरूप, परम मङ्गल, मङ्गलके … सम्पूर्ण विघ्नोंको हरनेवाले, शान्त, सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके … कर्मयोगियोंके लिये भव-सागरमें मायारूपी जहाजके …स्वरूप, शरणागत दीन दुःखीकी रक्षामें तत्पर, ध्यान-…धना करनेयोग्य, भक्तोंके स्वामी और भक्तवत्सल …न गणेशका ध्यान करना चाहिये।'

…स प्रकार ध्यान करनेके अनन्तर परमसती राधाने …पका अपने मस्तकसे स्पर्श कराकर फिर सर्वाङ्गशुद्धिके …तीक न्यास किया। तदनन्तर ब्रह्मस्वरूपा राधारानीने …र्युक्त कल्याणकर ध्यानके द्वारा उक्त पुष्प शूर्पकर्णके … अर्पित कर दिया। फिर परम महिमामयी श्रीकृष्ण-…लभा श्रीराधाने सुगन्धित सुशीतल तीर्थजल, दूर्वा, … सुगन्धित श्वेत पुष्प, सुगन्धित चन्दनयुक्त अर्घ्य, …-पुष्पोंकी माला, कस्तूरी केसरयुक्त चन्दन, उत्तम …तदीप, सुस्वादु रमणीय नैवेद्य, चतुर्विध अन्न, विविध प्रकारके मोदक और व्यञ्जन, अमूल्य …मत सिंहासन, दो सुन्दर वस्त्र, मधुपर्क, सुवासित … पवित्र तीर्थजल, ताम्बूल, अमूल्य श्वेत चँवर, मणि-…वाले सुसज्जित सुन्दर सूक्ष्मवस्त्रद्वारा सुशोभित शय्या, … कामधेनु गौ और पुष्पाञ्जलि अर्पित कर अत्यन्त …र विधिपूर्वक शिवप्रिया पार्वतीके प्राणप्रिय पुत्रकी …स्तारसे पूजा की। इसके बाद श्रीकृष्णहृदयाधिकारिणी …ने गणेशके इस षोडशाक्षर मन्त्रका एक सहस्र …या।

…ॐ गं गौं गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा'॥'

(ब्रह्मवैवर्तपु०, कृ० ज० खं० १२१ । १००)

…के अनन्तर परात्परा भगवती राधाके कमल-सरीखे …आँसू भर आये। वे सिर झुकाये पुलकित होकर गद्गद-… गणेशजीका स्तवन करने लगीं—

… धाम परं ब्रह्म परेशं परमीश्वरम्।
…विघ्नकरं शान्तं पुष्टं कान्तमनन्तकम्॥

सुरासुरेन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः स्तुतं स्तौमि परात्परम्।
सुरपद्मदिनेशं च गणेशं मङ्गलायनम्॥[1]

(ब्रह्मवैवर्तपु०, श्रीकृ० ज० खं० १२१ । १०३-१०४)

'जो परमधाम, परब्रह्म, परेश, परम ईश्वर, विघ्नोंके विनाशक, शान्त, पुष्ट, मनोहर और अनन्त हैं, प्रधान-प्रधान सुर-असुर तथा सिद्धेन्द्र जिनका स्तवन करते हैं, जो देवरूपी कमलके लिये सूर्य और मङ्गलोंके आश्रयस्थान हैं, परात्पर गणेशकी मैं स्तुति करती हूँ।'

सर्वेश्वरी श्रीराधाने विधिवत् गणेशकी पूजा एव भक्तिपूर्वक उनकी वन्दना की। उनके मङ्गलमय सर्वाङ्गमें धारण करनेयोग्य बहुमूल्य रत्नोंके आभूषण प्रदान किये।

'जगज्जननी! तुम्हारा यह अर्चन-वन्दन जगत्को शिक्षा देनेके लिये है।' सत्यस्वरूपा श्रीराधाकी श्रद्धा भक्ति एवं पूजोपकरणोंसे संतुष्ट होकर वरद गणेशने कहा—'तुम स्वय ब्रह्मस्वरूपा एवं श्रीकृष्ण वक्षःस्थलपर वास करनेवाली हो।'

महामहिमामयी श्रीराधाकी कल कीर्तिका गान करते हुए परम प्रसन्न गणपतिने कहा—'मातः! तुमने मुझे जिन-जिन वस्तुओंको समर्पित किया है, उन सबको सार्थक कर डालो अर्थात् अब मेरी प्रसन्नताके लिये उन्हें ब्राह्मणोंको दे दो। तब मैं उसका भोग लगाऊँगा; क्योंकि देवताओंको देनेयोग्य दान या दक्षिणा ब्राह्मणको दे देनेसे अनन्त हो जाती है। राधे! ब्राह्मणोंका मुख ही देवताओंका प्रधान मुख है; क्योंकि ब्राह्मण जिस पदार्थको खाते हैं, वह देवताओंको मिलता ही है[3]।'

तब गोलोकवासिनी श्रीराधाने वह सारा पदार्थ ब्राह्मणोंको खिला दिया। इससे मङ्गलमूर्ति गणेश तत्क्षण परम प्रसन्न हो गये।

इस प्रकार अभीष्ट-पूर्त्यर्थ प्रायः देवताओंने समय-समय-पर इन विघ्नविनाशन मोदकप्रिय आदिदेवकी पूजा अर्चा की।

…शजीका यह मन्त्र भक्त कल्पतरुके समान है। (१२१ । १०१)

इस स्तोत्रका माहात्म्य यों है—

२. इदं स्तोत्रं महापुण्यं विघ्नशोकहरं परम्।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय सर्वविघ्नात् प्रमुच्यते॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, श्रीकृ० ज० खं० १२१ । १०५)

'जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण विघ्नोंसे विमुक्त हो जाता है।'

३. ब्राह्मणानां मुखं राधे देवानां मुखमुख्यकम्।
विप्रभुक्तं च यद् …

(… ज० … ११)

> भो भो न यावद्गजवक्त्रर्चितोऽसौ विनायकः ।
> पुराणि जगदीश सम्प्रतं न हनिष्यसि ॥
>
> (शिवपु०, रुद्रसं०, युद्धखं० १० । ६)

'हे जगदीश ! हे भगवन् ! जबतक आप विनायककी पूजा नहीं करेंगे, तबतक इन तीनों पुरोंको नष्ट नहीं कर सकेंगे ॥'

तब अन्धकासुरसंहारी त्रिलोचनने भद्रकालीको बुलाकर गणेशजीकी पूजा की, भगवान् पशुपतिकी हर्षपूरित पूजासे विनायक संतुष्ट हुए, तब लोकनाथ हरने महात्मा तारकपुत्रोंके तीनों पुरोंको देखा ।* तब उन्होंने अभिजित् मुहूर्तमें अपने अद्भुत धनुषकी प्रत्यञ्चाको खींचा । उससे अत्यन्त भयानक शब्द हुआ । देवदेव शिवने असुरोंको अपना नाम सुनाते हुए कोटिसूर्यसमप्रभ उग्र शर छोड़ दिया । † उक्त परम तेजस्वी अग्नितुल्य दहकते हुए तीक्ष्ण शरके स्पर्शसे समस्त दैत्योंसहित त्रिपुर भस्म हो गया ।

शिवप्राणवल्लभा भगवती उमाने भी गुडलड्डुभोजी गजाननकी श्रद्धा और भक्तिसे पूजा की थी । रेणुकानन्दन परशुराम भी इन गण्डजलरसास्वादचतुर गजमुखकी उपासनासे शक्ति अर्जित करनेमें समर्थ हुए ।

त्रैलोक्यपावनी रासेश्वरी राधाने भी अत्यन्त भक्तिपूर्वक गौरीहृदयनन्दनकी विधिपूर्वक अर्चना की थी । ब्रह्मवैवर्तपुराणकी वह मङ्गल-मोद-प्रदायिनी कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीराधाकी गणेशोपासना

पुण्यमय शुभ क्षेत्र सिद्धाश्रमकी बड़ी महिमा है । अनन्तकालसे वहाँ सिद्धि प्राप्त की थी । स्वयं लोकपितामहने भी वहाँ तपश्चरण किया था और [illegible] कपिल और महेन्द्रने भी वहीं सिद्धि प्राप्त की [illegible] उस दुर्लभ पावन क्षेत्रका नाम 'सिद्धाश्रम' [illegible] पुण्यमय क्षेत्रमें नित्यदेवता गजानन [illegible]

वहाँ वैशाखी पूर्णिमाके अवसरपर [illegible] मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, सिद्धेन्द्र [illegible] और सनकादि भी वरद गणपतिकी पूजा करते हैं ।

एक बारकी बात है । पवित्र वैशाखी [illegible] उस पुनीत अवसरपर हिमगिरिनन्दिनी [illegible] कल्याणकारी जगत्पति शिव, मयोभव [illegible] पद्मयोनि भी सिद्धाश्रम पहुँचे । भगवान् [illegible] करनेके लिये सभी देवता, मनु, मुनिगण और [illegible] वहाँ उपस्थित हुए । द्वारकापुरीके निवासी [illegible] श्रीकृष्ण और गोकुलवासियोंके साथ नन्द भी वहाँ [illegible] सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर श्रीकृष्णप्राणवल्लभा [illegible] श्रीराधारानीका भी गोलोकवासिनी गोपकुमारियोंके [illegible] वहाँ शुभागमन हुआ । भक्तानुग्रहमूर्ति [illegible] स्नान करके शुद्ध साड़ी और कञ्चुकी [illegible] त्रैलोक्यपावनी कृष्णप्रियाने अपने चरणोंको [illegible] धोया । इसके अनन्तर उन्होंने निराहार [illegible] मणि मण्डपमें प्रवेश किया ।

वहाँ गोलोकविहारिणी श्रीकृष्णप्रियाने [illegible] श्रीकृष्णकी प्राप्तिकी कामनासे विघ्नराज [illegible] तदनन्तर उन्होंने परमपावनी सुरसरिके निर्मल [illegible] गजाननको स्नान कराया । फिर [illegible] राधा अपने कर-कमलोंमें श्वेत पुष्प लेकर [illegible] लम्बोदरका [illegible]

---

* अप्रमूल्य ... ...

श्रीगणेशके विभिन्न अवतार

(श्रीगणेशपुराणके आधारपर)

।-जब आसुरी शक्तियोंके प्रबल होनेसे जन-जीवन कण्टकाकीर्ण हो जाता है, निर्दय दैत्य सत्त्वगुण-
र-समुदायका सर्वस्व हरणकर निरन्तर उन्हें पीड़ित करते हैं, धराधामपर सर्वत्र
अनाचार और दुराचारका साम्राज्य स्थापित हो जाता है, धर्मका ह्रास एवं अधर्मकी वृद्धि
ी है, तब-तब मङ्गल-मोद-निधान श्रीगणेशजी भू-भार-हरणार्थ अवतार ग्रहण करते हैं । वे
त्रिपक आदिदेव गजमुख दैत्योंका विनाश कर देवताओंका अपहृत अधिकार उन्हें लौटाते हैं तथा
तिसे सद्धर्मकी स्थापना करते हैं, जिससे समस्त प्राणियोंको सुख-शान्तिकी अनुभूति होती है ।

त्येक युगमें उन महामहिम प्रभुके नाम, वाहन, गुण, लीला और कर्म आदि पृथक्-पृथक् होते हैं
के द्वारा जिन दैत्योंका संहार होता है, वे भी भिन्न-भिन्न ही होते हैं ।

तयुगमें ये परमप्रभु गजानन सिंहारूढ़ 'महोत्कट विनायक'के नामसे प्रख्यात हुए, उन महा-
भुके दस भुजाएँ थीं। त्रेतामें ये मङ्गल-मोद-प्रदाता गणेश मयूरारूढ़ 'मयूरेश्वर'के नामसे प्रसिद्ध
की कान्ति शुभ्र और भुजाएँ छः थीं। द्वापरमें मूषकवाहन शिवपुत्रको 'गजानन' या 'गौरीपुत्र'के नामसे
है। उनकी अङ्ग-कान्ति अरुण थी एवं उनके चार भुजाएँ थीं, तथा कलिके अन्तमें ये धर्मरक्षक गजानन
े 'धूम्रकेतु'के नामसे प्रसिद्ध होंगे, उनके दो भुजाएँ होंगी तथा उनकी अङ्ग-कान्ति धूम्रवर्णकी होगी ।

(१) महोत्कट विनायक

सुर देवान्तक और नरान्तकका जन्म

देशके एक प्रसिद्ध नगरमें* रुद्रकेतु-नामक एक
ण निवास करते थे । वे अग्निहोत्री, सर्वागम-
सुर-गो-द्विज-पूजक एवं ईश्वरोपासक थे । उनकी
रूप-लावण्य-सम्पन्ना सदाचारिणी पत्नीका नाम
ा । कुछ दिनों बाद शारदोत्पलंलोचना सती
र्भवती हुई । पत्नीमें अत्यधिक प्रीतिके कारण
धा-बुद्धि-सम्पन्न पति (द्विजवर रुद्रकेतु) ने
्येक दोहद (मनोरथ) पूर्ण किया ।

प्रकार पतिपरायणा शारदाके गर्भसे नवें मासमें
कान्तिमान् दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए। विशाल
भाजानुबाहु सुन्दर पुत्रोंको देखकर रुद्रकेतु अत्यन्त
ए । उन्होंने मन-ही-मन कहा—'मेरा मनुष्य-
ौर मेरी तपस्या धन्य है । आज मेरा वंश धन्य
जो मुझे अलौकिक दो पुत्र-रत्नोंकी प्राप्ति हुई है ।'
केतुने अर्घ्यादिके द्वारा ब्राह्मणोंका सत्कार किया ।

उन्होंने आदिदेव मङ्गलमूर्ति गणेशकी पूजा तथा स्वस्ति-
वाचन करवाया । ब्राह्मणोंके द्वारा मातृका-पूजन, भक्तिपूर्वक
आभ्युदयिक श्राद्ध एवं जातकर्मादि संस्कार करवाये ।
तदनन्तर उन्होंने अत्यन्त भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा की
और उन्हें धन एवं रत्नोंका दान दिया । अनेक प्रकारके
मुखद वाद्य बजवाये और घर-घर शर्करा वितरण कराया ।

श्रेष्ठ द्विज रुद्रकेतुके आमन्त्रणपर ज्योतिषी आये ।
रुद्रकेतुने अर्घ्यादिके द्वारा उनका सत्कार किया । दैवज्ञोंने
बालकोंका नाम देवान्तक और नरान्तक रखते हुए कहा—
'निस्संदेह ये बालक परम पराक्रमी सिद्ध होंगे ।'

देवान्तक और नरान्तक परम सुन्दर एवं तेजस्वी
बालक थे । उनकी मनोहारिणी बाल-क्रीड़ासे माता-पिता
मन-ही-मन मुदित होकर अपने भाग्यकी सराहना करते।
माता पिता ही नहीं, उन दोनों बालकोंकी सुन्दर मुखाकृति,
सुन्दर देहयष्टि एवं मनोहर मुस्कान देखकर सभी उनकी ओर
आकृष्ट हो जाते थे । उनकी बाल-क्रीड़ाएँ मनोहर ही नहीं,
साहसपूर्ण भी होतीं । यह देखकर सभी चकित होते और
मन ही मन कहते—'ये दोनों बालक निश्चय ही महान् पराक्रमी,
साहसी और यशस्वी होंगे ।' शारदाके पुत्रद्वयकी प्रशंसा

* कहते हैं, यह नगर बंगालमें पुष्पवती या जाह्नवीके तटपर
था ।

श्रीगणेशके विभिन्न अवतार

(श्रीगणेशपुराणके आधारपर)

आसुरी शक्तियोंके प्रबल होनेसे जन-जीवन कण्टकाकीर्ण हो जाता है, निर्दय दैत्य सत्त्वगुण-मुदायका सर्वस्व हरणकर निरन्तर उन्हें पीड़ित करते हैं, धराधामपर सर्वत्र ार और दुराचारका साम्राज्य स्थापित हो जाता है, धर्मका ह्रास एवं अधर्मकी वृद्धि तब-तब मङ्गल-मोद निधान श्रीगणेशजी भू-भार-हरणार्थ अवतार ग्रहण करते हैं। वे आदिदेव गजमुख दैत्योंका विनाश कर देवताओंका अपहृत अधिकार उन्हें लौटाते हैं तथा द्धर्मकी स्थापना करते हैं, जिससे समस्त प्राणियोंको सुख-शान्तिकी अनुभूति होती है।

युगमें उन महामहिम प्रभुके नाम, वाहन, गुण, लीला और कर्म आदि पृथक्-पृथक् होते हैं ा जिन दैत्योंका संहार होता है, वे भी भिन्न-भिन्न ही होते हैं।

ये परमप्रभु गजानन सिंहारूढ 'महोत्कट विनायक'के नामसे प्रख्यात हुए, उन महा-स भुजाएँ थीं। त्रेतामें ये मङ्गल-मोद-प्रदाता गणेश मयूरारूढ 'मयूरेश्वर'के नामसे प्रसिद्ध त शुभ्र और भुजाएँ छः थीं; द्वापरमें मूषकवाहन शिवपुत्रको 'गजानन' या 'गौरीपुत्र'के नामसे तिअङ्ग-कान्ति अरुण थी एवं उनके चार भुजाएँ थीं, तथा कलिके अन्तमें ये धर्मरक्षक गजानन केतु'के नामसे प्रसिद्ध होंगे, उनके दो भुजाएँ होंगी तथा उनकी अङ्ग-कान्ति धूम्रवर्णकी होगी।

(१) महोत्कट विनायक

न्तक और नरान्तकका जन्म

क प्रसिद्ध नगरमें* रुद्रकेतु-नामक एक स करते थे। वे अ[illegible] गम-ज[illegible]

उन्होंने आदिदेव मङ्गलमूर्ति गणेशकी पूजा तथा स्वस्ति-वाचन करवाया। ब्राह्मणोंके द्वारा मातृका-पूजन, भक्तिपूर्वक आभ्युदयिक श्राद्ध एवं जातकर्मादि संस्कार करवाये। तदनन्तर उन्होंने अत्यन्त भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा की उन्हें धन एवं रत्नोंका दान दिया। अनेक प्रकारके ये और घर-घर [illegible]

[illegible] आमन्त्रण [illegible]
द्वारा [illegible]
[illegible] और [illegible]

ने
नाम
[illegible]

सुनकर उन्हें देखनेके लिये कितने ही संत रुद्रकेतुके घर जाया करते थे।

तपस्वी रुद्रकेतुके पुत्रोंकी प्रशंसा सुनकर महामुनि नारद उनके यहाँ पधारे। मुनिवर रुद्रकेतु एवं उनकी सती पत्नी शारदाने ब्रह्मपुत्र देवर्षिके चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर उन्हें आसन दिया। उन्होंने अर्घ्यादिसे उनकी विधिवत् पूजा की। फिर अपने दोनों पुत्रोंको बुलाकर उन्हें प्रणाम करवाया।

देवर्षिने उन बालकोंको ध्यानपूर्वक देखा और फिर विप्रवर रुद्रकेतुसे कहा—'मैं आपके इन पुत्रोंकी प्रशंसा सुनकर ही इन्हें देखने आया हूँ। ये बालक वीर, धीर, पराक्रमी, त्रैलोक्यविजयी एवं यशस्वी होंगे। आप भाग्यशाली हैं, जो आपके यहाँ ऐसे पुत्र उत्पन्न हुए।'

ब्रह्मपुत्रके वचन सुनकर सपत्नीक रुद्रकेतु अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने विनयपूर्वक देवर्षिसे कहा—'मुनिवर! आप इन बच्चोंपर अनुग्रह करें। ये बालक बल-वीर्य एवं ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न दीर्घजीवी हों। ये शत्रुओंको पराजित करनेवाले हों तथा त्रैलोक्यव्यापिनी कीर्ति अर्जित करें।'

मुनिवर रुद्रकेतु एवं उनकी साध्वी पत्नी शारदाके श्रद्धा-विश्वासपूर्ण वचन सुनकर देवर्षिने उन बालकोंके मस्तकपर अपना वरदहस्त फेरकर कहा—'ये देवान्तक और नरान्तक तपश्चरणके द्वारा देवाधिदेव महादेवको संतुष्ट करें।' महामुनि नारदने उन्हें पञ्चाक्षरी मन्त्र (नमः शिवाय)का उपदेश भी कर दिया। फिर वे अपनी वीणापर मधुर हरि-नामका कीर्तन करते हुए ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थित हुए।

बन्धुद्वयका तप और वर-प्राप्ति

देवान्तक और नरान्तकने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उनकी अनुमति प्राप्तकर भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये तपश्चरणार्थ एकान्त वनमें पहुँचे। वहाँ विशाल गिरि-कन्दराएँ थीं; पत्र पुष्प और लता-जालसे मण्डित अत्यन्त शान्त वनप्रदेश था; समीपस्थ निर्झरसे सदा जल झरता रहता था। दोनों मुनि-कुमारोंने वहीं शिवकी आराधना करनेका निश्चय किया।

मुनिवर रुद्रकेतुके पुत्र देवान्तक और नरान्तक एक पैरके अँगूठेपर स्थिरभावसे खड़े हो गये। वे पार्वती-वल्लभ शिवका ध्यान करते हुए देवर्षिप्रदत्त महिमामय पञ्चाक्षरी मन्त्रका जप करने लगे। इस प्रकार भगवान्

शशाङ्कशेखरका ध्यान एवं उनके मन्त्र

उन दोनों भाइयोंने दो सहस्र वर्षोंतक

आहार किया। फिर एक हजार वर्षोंतक केवल

श्वासपर रहे। इस प्रकार उन मुनिकुमारोंने

सहस्र वर्षोंतक अत्यन्त कष्ट सहते हुए

पञ्चाक्षर मन्त्रका जप किया। फलस्वरूप

कलेवर दीप्तिमान् हो उठा। उनके तेजसे

प्रभा मन्द पड़ने लगी।

उनकी तपस्यासे भक्तवत्सल

प्रकट हुए। वृषारूढ़, व्याघ्रचर्माम्बरधारी

पञ्चमुख, त्रिलोचन, दशबाहु, गङ्गाधर

भस्मलिप्त कण्ठमें फणिहार, मुण्डमाल एवं

डमरू सुशोभित था। देवाधिदेव

अङ्गोंपर नाना प्रकारके अलंकार शोभा पा रहे थे।

देवान्तक और नरान्तकने जब गिरिजावल्लभके

दर्शन किया, तब वे आनन्दातिरेकसे नृत्य करने लगे।

मनोरथ मुनिकुमारोंने नृत्यके बाद

त्रिपुरारिके वाञ्छाकल्पतरु चरण-कमलोंमें प्रणाम किया।

फिर उन्होंने बद्धाञ्जलि हो त्रिपुर त्रिलोचन

करते हुए कहा—

'देवाधिदेव प्रभो! हम आपकी

देवदुर्लभ मञ्जुल-मूर्तिके दर्शन कर रहे हैं,

पितर, वंश, जीवन, जन्म, देह, नेत्र और तप—

हुए—सभी धन्य हुए। सनकादि मुनि एवं

शेष भी आपकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं।

दीन हीनको सर्वाङ्गसुन्दर, धनाढ्य और

राजा बना सकते हैं। आप मृतकको जीवित और

मृतक-तुल्य करनेमें समर्थ हैं। सर्वसमर्थ

करुणावरुणालय! आपके लिये कुछ भी असम्भव

आप हमपर कृपा करें।'

'मैं तुम्हारे तप और स्तवनसे संतुष्ट हूँ।'

सर्वसौभाग्यमूल वृषभध्वजने मुनि रुद्रकेतुके पुत्रोंसे

'तुम अभीष्ट वर माँगो।'

'देवाधिदेव! सर्वेश्वर! जगदीश्वर! यदि

हमारे तपसे संतुष्ट हैं तो हमें वर प्रदान करें

और किंनरोंसे, सभी शस्त्रोंसे, पशु, ग्रह, नक्षत्र, मे, कीट (विधातारचित सृष्टिमें किसी भी न या ग्राममें हमारी मृत्यु न हो। देवेश्वर ! का राज्य एवं अपने चरणोंकी सुदृढ़ भक्ति

नाथने अपना पाणिपङ्कज देवान्तक और कपर फेरते हुए कहा—'तुम्हारी सारी गी। तुमलोग त्रिलोकीपर शासन करते हुए यों से निर्भय रहोगे।'

दे आशुतोष अन्तर्धान हो गये। सफल और नरान्तक घर लौटे। उन्होंने अपने णोंमें प्रणाम कर उन्हें अपने तप, शिव ासिका विवरण सुनाया।

अपने जीवनको पवित्र एवं कुलको यशस्वी मस्तक सूँघकर पिताने उन्हें अपने अङ्कमें भर

मुनि रुद्रकेतु एवं उनकी पतिपरायणा ाने ब्राह्मणों एवं तपस्वियोंको आदरपूर्वक उनकी पूजा की। उन्हें सुन्दर-सुस्वादु नेक प्रकारकी बहुमूल्य दक्षिणा प्रदान की। होकर रुद्रकेतुके यशस्वी पुत्रोंको आशीर्वाद ग-दम्पतिकी प्रशंसा करते हुए वे अपने-अपने स्थित हुए।

शिवके वर-प्रभावसे त्रैलोक्य विजयी देवान्तक अत्यन्त शक्तिशाली और पराक्रमी हो गये। न्तकने भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा की। शिगणसे संतुष्ट कर उनका आशीर्वाद प्राप्त ने अपने भाई नरान्तकसे कहा—'भगवान् से मैं स्वर्गपर विजय प्राप्त करने जाता क और पतालको अपने अधीन कर लो।'

न दिन और शुभ मुहूर्त देखकर अमरावती वहाँ वह नन्दनवनको नष्ट करने लगा। ने युद्ध किया, पर वे सभी पराजित हो मायुध सर्वाङ्गने उसका सामना किया, दैत्यके सम्मुख वे टिक नहीं सके। उनका त हो गया। सुरेन्द्रने सत्वरपूर्वक प्राण-रक्षा गयी। देवताओंने आकर सुमेरु-गिरि-गह्वरमें शरण ली।

वे कन्द-मूलका आहार करते हुए दुःखपूर्वक जीवन व्यतीत करनेको विवश हुए*।

पृथ्वीसे असंख्य असुर स्वर्ग पहुँचे। उन असुरों एवं अधीनस्थ सुरोंको देवान्तकने धन और अलंकार प्रदान किये। अनेक तीर्थोंसे जल आये। शङ्ख, भेरी, दुन्दुभि और मृदङ्गादि वाद्य बजने लगे। ऋषियोंने मन्त्रपाठ करते हुए वीरवर देवान्तकको स्वर्गाधिप पदपर अभिषिक्त किया।

इधर असुर-सैन्य लेकर नरान्तकने पृथ्वीके नृपतियोंपर आक्रमण किया। कितने नरेश पराक्रमी असुरके हाथों मारे गये और कितने राजाओंने उसकी शरण ग्रहण की। प्रबल असुरके आतङ्कसे कितने नरपाल अपना राज्य छोड़कर यत्र तत्र पलायित हो गये। समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण भूमण्डल नरान्तकके अधीन हो गया। ऋषि-मुनियोंने यज्ञ और स्वाध्याय छोड़कर पर्वतोंकी गुफाओंमें आश्रय लिया।

तदनन्तर नागलोकपर विजय प्राप्त करनेके लिये नरान्तकने असुरोंकी युद्ध-कुशल वीर वाहिनी और कूटनीतिमें दक्ष एवं परमधूर्त कपटशिरोमणि असुरोंको भेजा। असुरोंने गरुड़का वेष धारण किया और नागलोकमें उपद्रव प्रारम्भ कर दिया। असंख्य वीर नाग काल कवलित हुए। नागलोक त्रस्त हो गया। नागपत्नियाँ क्रन्दन करने लगीं। इससे विवश होकर नागलोकने नरान्तककी अधीनता स्वीकार की। सहस्र फणधारी शेषनागने नरान्तकको वार्षिक कर देना स्वीकार किया।

नरान्तकने एक वीर दैत्यको नागलोकका अधिपति बनाया। उसने सम्पूर्ण पातालमें घोषणा की—'असुर शासनमें सभी नाग शान्तिपूर्वक रहें। किसी भी नागके द्वारा नियमोल्लङ्घन होनेपर सम्पूर्ण नागजाति दण्डित होगी।'

भूतल और रसातलमें नरान्तकके शासनका संवाद प्राप्तकर देवान्तक अत्यन्त पुलकित हुआ और अपने भाईके स्वर्गाधिप होनेके समाचारसे नरान्तकको प्रसन्नताकी भी सीमा न रही। असुर भ्रातृद्वय त्रैलोक्यका निष्कण्टक राज्य करने लगे। देवान्तक स्वर्गकी दुर्लभ बहुमूल्य वस्तुओंका उपहार पृथ्वीपर अपने भाईके पास भेजता और नरान्तक पृथ्वी एवं रसातलकी उत्तमोत्तम सामग्रियाँ अपने स्वर्गाधिप बन्धुके पास भेजता रहता। इस प्रकार देवान्तक और नरान्तकका सर्वत्र

---

* एवं दृष्ट्वा वयं [illegible] ।
[illegible] ॥
([illegible])

एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित हो गया। देवगण, तपस्वी, ऋषि-मुनि एवं सदाचारी … कष्टपूर्वक जीवन निर्वाह कर रहे थे।

● ● ●

महोत्कटका प्राकट्य

महामुनि कश्यप ब्रह्माके मानसपुत्र थे। वे अत्यन्त बुद्धिमान्, पुण्यात्मा, धर्मशील, तपस्वी, संयतेन्द्रिय, कारुणिक, दुःखशोकावमर्दन, भूत भविष्य और वर्तमानके ज्ञाता, वेद-वेदान्त-शास्त्रोंमें निष्णात, धर्मशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ एवं मनोनिग्रही थे। उनकी परम पतिव्रता पत्नी अदिति समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एव अदीना थीं। अद्भुत शीलवती होनेके कारण वे महर्षि कश्यपकी विशेष कृपाभाजन थीं। उन्हीं अनुपमगुणगणसम्पन्ना अदितिकी कोखसे इन्द्रादि देव उत्पन्न हुए थे। माता अदिति अपने देवपुत्रोंके पराभव एवं यातनासे मन ही-मन चिन्तित-दुःखी रहने लगीं।

एक बारकी बात है, महर्षि कश्यप अग्निहोत्र कर चुके थे। सुगन्धित यज्ञ-धूम आकाशमें फैला हुआ था। इसी समय पुण्यमयी अदिति पतिके समीप पहुँचीं। परम तपस्वी पति कश्यपके चरणोंमें प्रणाम कर उन्होंने निवेदन किया—'स्वामिन्! साध्वी स्त्रियोंके लिये पतिके बिना कोई गति नहीं। अतएव मैं कुछ निवेदन करना चाहती हूँ। यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो प्रार्थना करूँ।'

'कल्याणि! तुम्हारे मनमें जो कुछ हो, निस्संकोच कहो।' महर्षि कश्यपने स्नेहसिक्त वाणीमें उत्तर दिया।

'इन्द्रादि देवगणोंको तो मैंने पुत्ररूपमें प्राप्त किया है।' साध्वी अदितिने अपने पति महर्षि कश्यपसे विनयपूर्वक कहा—'किंतु पूर्ण परात्पर, सच्चिदानन्द परमात्मा मेरे पुत्ररूपसे प्राप्त हों और मैं उनकी सेवा करूँ, यह कामना मेरे मनमें बार-बार उदित हो रही है। वे परम प्रभु किस प्रकार मेरे पुत्र होकर मुझे कृतकृत्य करेंगे, आप कृपापूर्वक बतलानेका कष्ट कीजिये।' ●

'प्रिये! ब्रह्मादि देवताओं और … परमेश्वर, निर्गुण, निराकार, निरञ्जन … आधार, मायातीत, सर्वनियामक … स्व प्रभु कठोर तपश्चरणके बिना … करेंगे।' अपनी पतिव्रता पत्नीकी … प्रसन्न होकर महर्षि कश्यपने उत्तर दिया।

'देव! वह परिश्रम अनुष्ठान मैं … कहीं अदितिने सोल्लास पूछा—किस … मन्त्रका जप करूँ।'

महर्षि कश्यपने अपनी प्रिय पत्नी अदिति … ध्यान, उनका मन्त्र और न्यासविधि … विस्तारपूर्वक बता दी और उन्हें … प्रोत्साहित भी किया।

महाभागा अदिति अत्यन्त प्रसन्न हुईं। … परम पवित्र तपस्वी पतिके चरणोंमें साष्टाङ्ग … आदरपूर्वक उनकी पूजा की। फिर उनकी … कठोर तप करनेके लिये प्रस्थित हुईं।

देवमाता अदिति एकान्त शान्त अरण्यमें … उन्होंने स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण किये। … बैठकर उन्होंने अपने मन और इन्द्रियोंका निरोध … फिर सविधि न्यास कर देवाधिदेव विनायकका … हुई प्रीतिपूर्वक उनके मन्त्रका जप करने लगीं।

भगवती अदिति देवदेव विनायकके ध्यान … अत्यन्त तन्मय हो गयीं। वे जप … अदिति सर्वथा निराहार रहती थीं; केवल वायुपर … टिका हुआ था। उनकी उस कठिन तपस्याके … समस्त प्राणी अपना स्वाभाविक वैरभाव त्यागकर … हो गये।

'पता नहीं, माता अदिति क्या चाहती हैं?' … देवता भयभीत होने लगे। इस प्रकार उन्हें कठोर तप … दुस्सह कष्ट सहते हुए सौ वर्ष व्यतीत हो गये।

भगवती अदितिकी सुदृढ़ प्रीति एवं कठोर तप … कोटि भुवनभास्करकी प्रभासे भी अधिक … कामदेवसे भी अधिक सुन्दर देवदेव गजानन विनायक … प्रकट हो …

● परमात्मा चिदानन्द ईश्वरो यः परात्परः।
कदा प्राप्स्यामि … मे … मनः॥
… तस्य सेवां … मे …
… मनो …
गणेशपु० २ …

र बुद्धि उनके साथ थीं। उनके मङ्गल कण्ठमें मला सुशोभित थी। उन्होंने परशु और कमल थे थे। उनकी कटिमें स्वर्णिम कटिसूत्र एवं उनके कस्तूरीका तिलक लगा था। उन्होंने नाभिपर सर्प र रखा था। उन मङ्गल विधायक प्रभुके मङ्गल-दिव्याम्बर शोभा दे रहे थे।*

धर दशभुज विनायकके इस परम तेजस्वी रूपको ते ही महिमामयी तपस्विनी अदिति भयभीत होकर ईं। उनके नेत्र मुँद गये और वे मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं।

म दिवारात्रि जिनका ध्यान एवं जप करती हो, मैं ।' माता अदितिको चेतना एवं धैर्य प्रदान करते मप्रभु विनायकने कहा—'मैं तुम्हारे अत्यन्त घोर ष्ट होकर तुम्हें वर प्रदान करने आया हूँ। तुम वर माँगो। मैं तुम्हारी कामना अवश्य पूरी करूँगा।'

भो! आप ही जगत्‌के स्रष्टा, पालक और संहारकर्ता अपने इष्टको सम्मुख देखकर देवमाता अदितिने चरण-कमलोंमें प्रणाम किया और फिर दोनों हाथ प्रेमगद्गद वाणीमें कहने लगीं—'आप सर्वेश्वर, निरञ्जन, प्रकाशस्वरूप, निर्गुण, निरहंकार, नाना रूप करनेवाले और सर्वस्व प्रदान करनेवाले हैं। सौम्यरूप यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मेरी आकाङ्क्षाकी करना चाहते हैं तो कृपापूर्वक मेरे पुत्ररूपमें प्रकट मुझे कृतार्थ करें। आपके द्वारा दुष्टोंका विनाश एवं रित्राण हो और सामान्य-जन कृतकृत्य हो जायँ।'†

'मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।' वाञ्छाकल्पतरु विनायकने तुरंत कहा—'साधुजनोंका रक्षण, पृथ्वीके कण्टकरूप दुष्टोंका विनाश एवं तुम्हारी इच्छाकी पूर्ति करूँगा।'‡

इतना कहकर देवदेव विनायक अन्तर्धान हो गये।

देवमाता अदिति अपने आश्रमपर लौटीं। उन्होंने अपने पतिके चरणोंमें प्रणाम कर उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। महर्षि कश्यप आनन्दमग्न हो गये।

*　　　*　　　*

देवान्तक और नरान्तकके कठोरतम क्रूर शासनमें समस्त देव-समुदाय और ब्राह्मण अत्यन्त भयाक्रान्त हो कष्ट पा रहे थे। वे अधीर और अशान्त हो गये थे। दुष्ट दैत्योंके भारसे पीड़ित व्याकुल धरित्री कमलासनके समीप पहुँची। हाथ जोड़े साश्रुनयना धराने चतुर्मुखसे निवेदन किया—'समस्त देवताओंसहित सहस्राक्ष एवं ऋषिगण गिरि-गुफाओंमें छिपकर यन्त्रणा पा रहे हैं। यज्ञ-व्रतादि स्थगित हो गये। दानवकुलके असह्य भारसे व्यथित होकर मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। आप दुष्ट दैत्योंके विनाशका यत्न कीजिये, अन्यथा मैं वनों, पर्वतों और सृष्टिके सम्पूर्ण प्राणियोंसहित रसातलमें चली जाऊँगी।'

'स्वयं मैं, समस्त लोकपाल, इन्द्रादि देवगण और ऋषिगण स्वधा-स्वाहारहित हो अतिशय दुःख पा रहे हैं।' विधाताने धरित्रीकी वाणी सुनकर कहा—'देवि! हम सभी स्थान, मन्त्र और आचारसे भ्रष्टप्राय हो गये हैं; अतएव इस विपत्तिसे त्राण पानेके लिये हम सभी करुणामय देवदेव विनायककी प्रार्थना करें।'

ब्रह्माके वचन सुन आदिदेव विनायकको संतुष्ट करनेके लिये उनके साथ पृथ्वी, देवता और ऋषिगण हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे—

नमो नमस्तेऽखिललोकनाथ नमो नमस्तेऽखिललोकधामन्।
नमो नमस्तेऽखिललोककारिन्नमो नमस्तेऽखिललोकहारिन्॥
नमो नमस्ते सुरशत्रुनाश नमो नमस्ते हृतभक्तपाश।
नमो नमस्ते निजभक्तपोष नमो नमस्ते लघुभक्तितोष॥
निराकृते नित्यनिरस्तमाय परात्पर ब्रह्ममयस्वरूप।
क्षराक्षरातीतगुणैर्विहीन दीनानुकम्पिन् भगवन्नमस्ते॥

---

*...शिः　　पुरस्तस्याः　　सूर्यकोटिसमप्रभः।
...ाननो　दशभुजः　कुण्डलाभ्यां　विराजितः॥
...मातिसुन्दरतनुः　　सिद्धिबुद्धिसमायुतः।
...ुक्तमालां　च　परशुं　बिभ्रत्　मेचपुष्पकम्॥
...ञ्चनं　कटिसूत्रं　च　तिलकं　मृगनाभिजम्।
...र्पं　नाभिदेशे　तु　दिव्याम्बरविराजितम्॥
(गणेशपु० २।५।२९-३१)

† यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि देयो वरो मम।
... ... मे कृतकृत्यता॥
... भवेत्।

‡ अहं ते पुत्रतां यास्ये पास्ये साधूंश्च कण्टकान्।
हनिष्ये सकलां वाञ्छां पूरयिष्ये तवापि च॥
(गणेशपु० २।५।४१)

निरामयायाखिलकामपूर निरञ्जनायाखिलदैत्यदारिन् ।
नित्याय सत्याय परोपकारिन् समाय सर्वत्र नमो नमस्ते ॥
(गणेशपु० २ । १ । १०–११)

'हे सर्वलोकेश्वर ! आपको नमस्कार है । हे सर्वलोकाधार प्रभो ! आपको बार-बार नमस्कार है । हे निखिल सृष्टिके कर्ता एवं निखिल सृष्टिके संहारक ! आपको नमस्कार है । देव-शत्रुओंके विनाशक एवं भक्तोंका पाश नष्ट करनेवाले प्रभो ! आपको नमस्कार है । आप अपने भक्तोंका पोषण करते एवं उनकी थोड़ी-सी भक्तिसे संतुष्ट हो जाते हैं; आपको नमस्कार है । आप निराकार एवं परात्पर ब्रह्मस्वरूप, क्षर-अक्षरसे अतीत, सत्त्वगुणादिसे रहित एवं दीनजनोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं; आपको बार-बार नमस्कार है । आप निरामय, सम्पूर्ण कामनाओंसे पूर्ण, निरञ्जन, सम्पूर्ण दैत्योंका दलन करनेवाले, नित्य, सत्य, परोपकारी और सर्वत्र समरूपसे निवास करते हैं; आपको हमारा बार-बार नमस्कार है ।'

इस प्रकार स्तवन करते हुए देवता और मुनियोंने दुःखसे अत्यन्त व्याकुल होकर पुनः विनायककी स्तुति करते हुए कहा—

हाहाभूतं जगत्सर्वं स्वधास्वाहाविवर्जितम् ।
वयं मेरुगुहां याता आरण्याः पशवो यथा ॥
अतोऽमुं त्वं महादैत्यं जहि विश्वम्भराधुना ।
(गणेशपु० २ । ६ । १५-१५½)

'देव ! सम्पूर्ण जगत् हाहाकारसे व्याप्त एवं स्वधा और स्वाहासे रहित हो गया है । हम सब पशुओंकी तरह सुमेरु-पर्वतकी कन्दराओंमें रह रहे हैं । अतएव हे विश्वम्भर ! आप इन महादैत्योंका विनाश करें ।'

इस प्रकार करुण प्रार्थना करनेपर देवताओं और ऋषियोंने आकाशवाणी सुनी—

कश्यपस्य गृहे देवोऽवतरिष्यति साम्प्रतम् ।
करिष्यत्यद्भुतं कर्म पश्यन्ति वः प्रयास्यति ॥
दुष्टानां निधनं चैव साधूनां पालनं तथा ।
(गणेशपु० २ । ६ । १०-१२½)

'शीघ्र ही देवदेव गणेश महर्षि कश्यपके घरमें अवतार लेंगे और अद्भुत कर्म करेंगे । वे ही आप लोगोंको दुर्लभ भी प्रदान करेंगे । वे दुष्टोंका संहार एवं साधुओंका पालन करेंगे ।'

'देवि ! तुम धैर्य धारण करो ।' आकाशवाणीसे आश्वस्त होकर पद्मयोनिने मेदिनीसे कहा—' पृथ्वीपर जायँगे और निस्संदेह महाप्रभु विनायक ग्रहणकर तुम्हारा कष्ट निवारण करेंगे ।'

पृथ्वी, देवता तथा मुनिगण विधाताके वचनसे संतुष्ट होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये ।

* * *

कुछ समय बाद सती कश्यपपत्नी अदितिने गर्भ धारण किया । उनके शरीरका तेज उत्तरोत्तर बढ़ने लगा । इस प्रकार नौ मास पूरे हुए । शुभ मुहूर्त, मङ्गलमय वेलामें महाभागा अदितिके सम्मुख अद्भुत, अलौकिक बालक प्रकट हुआ ।

दशभुजो महाबलः कर्णकुण्डलमण्डितः ।
कस्तूरीतिलकभ्राजो मुकुटभ्राजितः ।
सिद्धिबुद्धियुतः कण्ठे रत्नमालविभूषितः ।
चिन्तामणिलसद्वक्षा जपापुष्पसमाधरः ।
उन्नसो भ्रुकुटीधारललाटो दन्तदीप्तिमान् ।
देहकान्त्या हततमा दिव्याम्बरयुतः शुभः ।
(गणेशपु० २ । १ । ११-)

'वह अत्यन्त बलवान् था । उसके दस भुजाएँ थीं । कानोंमें कुण्डल, ललाटपर कस्तूरीका शोभाप्रद तिलक और मस्तकपर मुकुट सुशोभित था । सिद्धि-बुद्धि साथ थीं और कण्ठमें रत्नोंकी माला शोभा देती थी । वक्षपर चिन्तामणिकी अद्भुत सुषमा थी और अधरोष्ठ जपापुष्प तुल्य अरुण थे । नासिका ऊँची थी और सुन्दर भ्रुकुटिके संयोगसे ललाटकी सुन्दरता बढ़ गयी थी । वह दाँतोंसे दीप्तिमान् था । उसकी अपूर्व देहकान्ति अन्धकारको नष्ट करनेवाली थी । उस शुभ बालकने दिव्य वस्त्र धारण कर रखा था ।'

महिमामयी अदिति उस अलौकिक सौन्दर्यको देखकर चकित और आनन्द विह्वल हो रही थीं । उस समय उस तेजस्वी अद्भुत बालकने कहा—'माता ! तुम्हारी तपस्याके फलस्वरूप मैं तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे आया हूँ । मैं दुष्ट दैत्योंका संहार कर साधुपुरुषोंका हित एवं तुम्हारी कामनाओंको पूर्ण करूँगा ।'

'आज मेरे बहुत पुण्य उदित हुए हैं, जो स्वयं भगवान् मेरे यहाँ अवतरित हुए' ... माता अदिति ने विनायकदेवसे कहा ... है ।

त, निराकार, नित्यानन्दमय, सत्यस्वरूप परब्रह्म
न मेरे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए। किंतु अब
लौकिक एवं परम दिव्य रूपका उपसंहार कर
की भाँति क्रीड़ा करते हुए मुझे पुत्र-सुख

दितिके सम्मुख अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट सशक्त बालक
क्रन्दन करने लगा। उसके रुदनकी ध्वनि
ल और धरतीपर दसों दिशाओंमें व्याप्त हो
द्भुत बालकके रोदनसे धरती काँपने लगी।
गर्भवती हो गयीं। नीरस वृक्ष सरस हो
दायसहित इन्द्र आनन्दित और दैत्यगण
ये।

श्यपकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उन्होंने
शास्त्र-विधिसे बालकका जातकर्म-संस्कार
नालच्छेदन आदि कराये। उन्होंने ब्राह्मणों
विविध प्रकारके तुष्टिकर दान दिये और घर-
न भिजवाये।

श्यपकी पत्नी अदितिके अङ्कमें बालक आया
मुनि एवं ब्रह्मचारी आदि आश्रमवासी तथा
प्रसन्न थे। बालक अद्भुत और तेजस्वी तो था
त बलवान् था। उसकी मांसपेशियाँ सुदृढ़ थीं एवं
मुख प्रभावशाली था। बालकके स्वरूपके अनुसार
उसका नामकरण किया—'महोत्कट।'

महोत्कटकी ख्याति सुनकर उनके दर्शनार्थ
आदि परमर्षि भी महर्षि कश्यपके आश्रमपर
कश्यपने उनकी आसन, पाद्य और अर्घ्यके द्वारा
की। उन्हें गायें प्रदान कीं; फिर हाथ जोड़कर
दोंमें कहा—'मेरा परम सौभाग्य है, जो आप-
यहाँ पधारनेका अनुग्रह किया। मुझे आज्ञा
मैं आपका क्या कार्य करूँ।'

! देवर्षि नारदके द्वारा आपके अद्भुत,
म तेजस्वी और लोकोद्धारक पुत्र महोत्कटके
चार पाकर हम उसे देखने आये हैं।' वसिष्ठने
आनेका यही प्रयोजन है।'

माता अदिति तुरंत अपने प्राणप्रिय पुत्र महोत्कटको
ले आयीं। वसिष्ठने बालकके भाल, कर-कमल एवं पाद-पङ्कजोंको
ध्यानपूर्वक देखा और वे बोले—'इस बालकमें शुभ बत्तीस
गुण विद्यमान हैं। यह महोत्कट जगत्के मङ्गलके लिये
अत्यन्त भयानक कर्म करेगा। इस परम तेजस्वी एवं बल-
पौरुष-सम्पन्न पराक्रमी बालकके रूपमें आदि-मध्यान्तहीन
साक्षात् विनायक ही अवतरित हुए हैं। इस बालकके जीवनमें
रह-रहकर अनेक आपदाएँ आयेंगी; किंतु वे सभी शान्त हो
जायँगी। आपलोग सावधानतापूर्वक इसकी रक्षा करें।'

महर्षि वसिष्ठने कश्यपनन्दन महोत्कटके ध्वज-वज्राङ्कुश-
शोभित अरुण चरण-कमलोंकी पूजा की; फिर उन्होंने महोत्कटकी
स्तुति करते हुए कहा—'हे देव! असुरोंके अनाचारसे
त्रैलोक्य पीड़ित है। आप कृपापूर्वक दुष्ट दानव-कुलका दलन
कर साधु-परित्राण करें और भूतलका भार उतारें*।'

समागत मुनियोंने पुनः-पुनः अदितिनन्दन महोत्कटके
चरणोंमें प्रणाम किया और फिर अपने-अपने आश्रमोंके
लिये लौट गये।

प्रख्यात महर्षि वसिष्ठ वामदेवादिके आगमन एवं उनके
शुभ वचनसे कश्यपाश्रमके समीप रहनेवाले सभी ब्रह्मचारियों,
ऋषियों एवं उनकी पत्नियोंके मनमें यह दृढ़ विश्वास हो गया
कि निश्चय ही भाग्यवती अदितिके अङ्कमें चराचरनायक
आदिदेव विनायक ही महोत्कटके रूपमें क्रीड़ा कर
रहे हैं और इनके द्वारा अनीति-अधर्मके मूलभूत असुरोंका
उच्छेद होगा। उनका कुटिल-क्रूर शासन समाप्त हो जायगा
और त्रैलोक्यमें सुख-शान्ति स्थापित होगी। पुनः वेदपाठ
और यज्ञादि कर्म निर्विघ्न होने लगेंगे।

महोत्कटकी बाल-लीला

इतना ही नहीं, यह संवाद कश्यपाश्रमसे देश-देशान्तरोंमें
फैल गया। असुरोंके मनमें अदितिके कठोर तपके
समय ही शङ्का हुई थी; किंतु इस समाचारसे तो उनके मनमें
दृढ़ निश्चय हो गया कि 'यह ऋषिपुत्र दनुजकुलका शत्रु
सिद्ध होगा। यह महोत्कट देवताओंद्वारा हमारे राज्यपर
आक्रमण करनेका माध्यम बन सकता है।' इस कारण
असुरोंने परामर्श कर यह निर्णय किया कि 'घातक तरुका अङ्कुर
बढ़कर विशाल वृक्ष हो, इसके पूर्व ही उसे नष्ट कर दिया जाय।'

रूपं परं दिव्यमुपसंहर साम्प्रतम्।
रूपमास्थाय लौकिकं कुरुष्व यथा॥
(गणेशपु० २।९।२५)

* मारयासुरान् सर्वान् भूभारहरणं कुरु।
साधूनां पालनं देव दुष्टदानवघातनम्॥
(गणेशपु० २।७।१०)

असुरराजने महोत्कटको मार डालनेके लिये 'विरजा' नामकी एक क्रूर राक्षसीको भेजा। वह अत्यन्त शक्तिशालिनी, परम धूर्त्ता एवं कुटिला थी। राक्षसराजके मनस्तके लिये उसने कश्यपाश्रममें प्रवेश किया। महोत्कटका तो कुछ नहीं बिगड़ा, किंतु विरजाको ही मृत्यु मुखमें प्रवेश करना पड़ा। उन्होंने उसे निजधाम प्रदान किया।

शक्तिशालिनी विरजाकी मृत्युसे असुर चिन्तित हुए। उन्होंने 'उद्धत' और 'धुन्धुर' नामक दो क्रूर राक्षसोंको महोत्कट-की हत्याके लिये भेजा। उन दोनों असुरोंने अत्यन्त मनोहर शुकका रूप ग्रहण किया। उनके विपाक चञ्चुपुट अत्यन्त तीक्ष्ण थे। वे महर्षि कश्यपके आश्रममें वहाँ पहुँचे, जहाँ माता अदिति महोत्कट विनायकको स्तन-पान करा रही थीं।

'मुझे खेलनेके लिये ये शुक दे।' सुन्दर शुकोंको देखते ही महोत्कटने दुग्धपान छोड़कर अपनी माँ अदितिसे कहा।

वह बोलीं—'ये शुक आकाशमें उड़नेवाले पक्षी हैं; केवल भूमिपर चल सकनेवाली कोई स्त्री इन्हें कैसे पकड़ सकती है?'

बालकको इस उत्तरसे संतोष नहीं हुआ। उसने माताकी गोदसे उतर बाजकी तरह झपट्टा मारकर दोनों पक्षियोंको पकड़ लिया। यह देख उन दोनोंने पंखों और चोंचोंसे मार-मारकर महोत्कटको अत्यन्त घायल कर दिया। तब मुनिकुमारने उन शुकोंको बलपूर्वक धरतीपर दे मारा। वे शुक अपने असुररूपको प्रकट करके प्राणशून्य हो गये। माताने असुरके विशाल शवपर स्थित हुए अपने बालकको शीघ्रतापूर्वक उठा लिया। कश्यपमुनिने बालकके अभ्युदयके लिये शान्तिकर्म किया। बालकका अलौकिक पराक्रम देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने अदितिको उपालम्भ देते हुए कहा—'तुमने बच्चेको अकेले छोड़ दिया। जगदीश्वरने आज इसकी रक्षा की है। यह निशाचरोंके रहनेका स्थान है, यहाँ मेरा शिशु कैसे जीवित रह सकेगा?'

यों पश्चात्ताप करके मुनि कश्यपने बालकको नहलाया और स्वयं भी स्नान करके वे आश्रममें जा विश्राम करने लगे।

महोत्कट पाँच वर्षके हुए। उनकी बुद्धि कौशल एवं अलौकिक कर्मोंसे वे आश्चर्यजनक दर्शनीय और सम्पूर्ण आश्रमोंके [illegible]

आश्रमके निकट ही तमाल, देवदारु, [illegible] कटहलके सघन वृक्ष थे। उनके मध्य [illegible] सरोवरका जल अत्यन्त निर्मल और [illegible] किंतु उसमें बहुत-से मत्स्य और मगर रहते थे। [illegible] वासियोंको बड़ा कष्ट होता था। [illegible] उसमें स्वच्छन्द स्नान तो कर ही नहीं सकते थे, [illegible] संध्या-वन्दन करने एवं जल भरनेमें भी डरते थे।

एक दिनकी बात है। सोमवती अमावस्या [illegible] व्यतीपातका योग। इस उत्तम पर्वपर अदिति [illegible] स्नान करनेके लिये आयीं। माताके साथ शिशु [illegible] भी वहाँ आया था। माँने उसे जलके [illegible] दिया और वे स्वयं आकण्ठ-जलमें स्नान करने उतर गयीं। तब बालकने भी उछलकर [illegible] जानेकी चेष्टा की, परंतु वह पानीमें गिर पड़ा और [illegible] खेलने लगा। इतनेमें ही एक नक्रने आकर उसे [illegible] लिया। जलके भीतर खड़ी हुई माताने [illegible] यह दशा देखी, तब वे घबरा गयीं और [illegible] रक्षाके लिये लोगोंको पुकारने लगीं—दौड़ो, दौड़ो, [illegible]

अदिति स्वयं भी बच्चेको पकड़नेके लिये [illegible] उसके पास गयीं, पर वे उसे पकड़ न सकीं। [illegible] पकड़से बाहर रखते हुए ही महोत्कटको जलके भीतर [illegible] लिये जा रहा था। माता भी दूरतक उसके साथ [illegible] चली गयीं।

महोत्कट और उसकी माताको सरोवरमें [illegible] मग्न देख मुनिके शिष्य उछल-उछलकर जलमें कूद [illegible] किंतु वे भी उस बलवान् नक्रकी पकड़से बालकको [illegible] सके। तब बालकने असीम बलका परिचय दिया। [illegible] ओठ-रोकनेसे ही नक्रको जलसे बाहर पृथ्वीपर फेंक दिया। उसका शरीर चूर-चूर होकर गिर पड़ा, वह निश्चेष्ट हो गया और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

बालककी माता और आश्रमके सभी लोग आश्चर्य[illegible] थे। महोत्कटके सम्मुख एक वस्त्राभरणभूषित तेजस्वी पुरुष [illegible] कह रहा था—'प्रभो! पहले मैं विद्याधरोंका गन्धर्वोंका राजा था। मेरे [illegible] अपराधपर सभी गन्धर्व उपस्थित हुए। मैं [illegible]

लगा। मेरी करुण प्रार्थना सुनकर दयालु
ा—'कश्यपनन्दन! गजाननके स्पर्शसे तुम
ोनिसे मुक्त हो जाओगे।'

कर उक्त गन्धर्व देवदेव गजाननकी स्तुति
। फिर उसने बालरूपी गजाननके चरणोंमें
र-बार उनकी प्रदक्षिणा की। तदनन्तर वह
ने लोकको चला गया।

ननीके आश्चर्यकी सीमा न थी। उन्होंने
अपने पुत्रको गोदमें लेकर उसके मुखमें
लगा दिया। बालक विनायक प्रेमपूर्वक
लगे।

* *

ी बात है। संगीतविशारद हाहा, हूहू और
न्धर्व पीताम्बर धारण किये, गोपीचन्दनका
वीणापर मधुर स्वरोंमें हरिगुण गाते
करते हुए महर्षि कश्यपके आश्रमपर पहुँचे।
स्वागत किया और उनसे भोजन ग्रहण
की।

ंधर्वोंने स्नान कर देवी पार्वती, शिव, विष्णु,
सूर्यकी पूजा की और फिर अपने इष्टका
थे। उसी समय महोत्कट बाहरसे खेलकर
दृष्टि पञ्चदेवोंके विग्रहपर पड़ी तो उसने
जाकर फेंक दिया। नेत्र खुलनेपर देवताओंकी
गन्धर्व व्याकुल हो गये। उन्होंने यह बात
कही।

श्यप चकित और चिन्तित थे। सम्मानित
देव प्रतिमाएँ ढूँढ़नेके लिये वे चारों ओर
रहे थे। उन्हें अपने चञ्चल पुत्र महोत्कटपर
उन्होंने हाथमें छड़ी लेकर क्रोधसे काँपते
पूछा—'अतिथियोंकी प्रति[illegible]'

'मैं तो बाहर बालकोंके साथ खेल रहा था।'
भयभीत नेत्र महोत्कटने भयकी मुद्रामें उत्तर दिया।

'तू शीघ्र ही मूर्ति ला दे, नहीं तो तुझे बुरी तरह
पीटूँगा।' कुपित कश्यपने पुनः कहा।

'मैंने मूर्ति नहीं ली है।' महोत्कट रोने लगा। रोते
रोते वह पृथ्वीपर लेट गया। माता अदिति भी वहाँ
पहुँच गयीं।

'यदि मैंने मूर्ति खा ली है तो मेरे मुँहमें देख लो।'
महोत्कटने अपना मुखारविन्द खोल दिया। अत्यन्त
आश्चर्य! माता अदिति मूर्च्छित हो गयीं। महर्षि कश्यप
और हरिभक्तिपरायण गन्धर्वत्रयने आश्चर्यचकित होकर
देखा—बालक महोत्कटके छोटेसे मुखाब्जमें कैलास, शिव,
वैकुण्ठसहित विष्णु, सत्यलोक, अमरावतीसहित सहस्राक्ष,
पर्वतों, वनों, समुद्रों, सरिताओं, यक्षों, पन्नगों एवं वृक्षोंसहित
सम्पूर्ण पृथ्वी, चौदह भुवन, समस्त लोकपाल, पाताल,
दसों दिशाएँ तथा अद्भुत सृष्टि दीख रही थी।

सचेत होनेपर माता अदितिने तुरंत बालक
महोत्कटको अङ्कमें उठा लिया और उसे स्तनपान कराने
लगीं। महर्षि कश्यपने मन ही मन कहा—'अरे! यह तो
अखिलेश्वर प्रभुने ही मेरे पुत्ररूपमें जन्म लिया है। मैंने इन्हें
दण्ड देनेका विचार कर बड़ी भूल की।'

'मैं तो इस बालकको दण्ड दे नहीं सकता। अब आप
लोग जैसा उचित समझें, वैसा करें।' कश्यपने गन्धर्वोंसे
स्पष्ट कह दिया।

'देव प्रतिमाओंके मिले बिना हमलोग भारका अन्न,
फल और कन्द मूल आदि कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे।' अत्यन्त
दुःखी होकर गन्धर्वोंने महर्षि कश्यपसे इतना कहा ही था कि
उन्होंने महोत्कटके स्थानपर देवी पार्वती, शिव, विष्णु,
विनायक और सूर्यका प्रत्यक्ष दर्शन किया। वहाँ बालक
क्षण-क्षणमें पञ्चदेवके रूपमें दीख रहा था।

तो हाहा, हूहू और तुम्बुरुने महोत्कटके चरणोंमें
और वे महर्षि कश्यप प्रदत्त अन्नादिको प्रेमपूर्वक
[illegible]। उस समय उन्होंने महोत्कटमें अनेक
[illegible]। वह [illegible] पुत्र महोत्कट एक दूसरे ही
[illegible]। उसने अत्यन्त
[illegible] देवकरने उसका दर्शन

...कर देकर उन्हें 'विरूपाक्ष' कहा और फिर उन्हें ...' नामसे सम्बोधित करते हुए चन्द्रकला दे दी।

...'हेरम्ब !' कहती हुई परशुराम जननी सती रेणुकाने ...को अदितिके बालकको परशु प्रदान किया और ... नाम रखा। फिर उनकी पूजा करके उन्होंने वाहन- ...सिंह देकर उन्हें 'सिंहवाहन' नाम दिया। तदनन्तर महोत्कट विनायकको उपदेश दिया—'विनायक ! ...ही दुष्टोंका संहार करो।•

...विपकारी मनुद्रने विनायककी पूजा कर उन्हें ... प्रदान करते हुए 'मालाधर' कहा। शेषनागने ...उनके लिये अपना शरीर समर्पण कर दिया ...। इसलिये उन्हें 'फणिराजासन' कहा। 'धनंजय' हुए अग्निदेवने उन्हें अपनी दाहिका-शक्ति प्रदान ...'प्रभञ्जन' नामसे सम्बोधित कर वायुदेवने अपनी ...ति कर दी।†

...नन्तर सभी लोगोंने अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार ... उत्तमोत्तम वस्तुएँ प्रदान कीं; किंतु सहस्राक्ष ...कुछ दिया और न उन्हें प्रणाम ही किया। ...न—'मुझ देवाधिपके सम्मुख सभी नतमस्तक ...हैं इस छोटे-से बालकके सामने मस्तक क्यों

है।' महात्मा कश्यपने इन्द्रको समझाया। 'अनिर्वचनीय गुणसम्पन्न पुरुषको छोटा समझकर तिरस्कार करना उचित नहीं। इस छोटे-से तेजस्वी बालक महोत्कटने इसी आयुमें कितने अद्भुत कर्म कर डाले। इसने विरजा-नामकी भयानक राक्षसीको खेलमें ही मार डाला। शुकरूपधारी प्रचण्ड उद्धत और धुन्धुर राक्षसोंको इसीने मारा। सरोवरका शापग्रस्त चित्रगन्धर्व इसीके स्पर्शसे मुक्त हुआ। हाहा-हूहू और तुम्बुरु गन्धर्वोंने इसीके दिव्य कलेवरमें पञ्चदेवोंका दर्शन प्राप्त किया। आप सबके सम्मुख भयानक पाँचों राक्षसोंको इसने मारा ही है।'

'मैंने तो प्रत्यक्ष कुछ देखा नहीं।' मदविमोहित सुरेन्द्रने कहा ही था कि महोत्कटके संकेतपर प्रचण्ड प्रलयकर झंझावात उठा। सर्वत्र त्राहि त्राहि मच गयी। व्याकुल सुरेन्द्रने महोत्कटकी ओर देखा तो उनके नेत्रोंसे अग्नि ज्वाला निकल रही थी। सहस्राधिक मस्तक, नेत्र, नासिका, कान, कर और चरण थे उनके। सूर्य और चन्द्र उनके नेत्रोंमें दीख रहे थे। महोत्कटके रोम-रोममें अनन्त ब्रह्माण्ड एवं उनके विराट् रूपका दर्शन कर इन्द्रने व्याकुल हो उनकी स्तुति की और उनसे बार-बार क्षमाकी याचना की।

प्रबल प्रभञ्जन शान्त हुआ। इन्द्रने अचिन्त्य गुणगणनिलय महोत्कटकी स्तुति कर बार बार उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर उनकी जय-जयकार करते हुए उन्हें अपना अङ्कुश और कल्पवृक्ष प्रदान कर उन्होंने अत्यन्त भक्तिपूर्वक कहा—'विनायक'।

फिर सब लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धामको पधारे।

अत्यन्त मेधावी और प्रतिभा सम्पन्न विनायककी शिक्षा प्रारम्भ हुई। विद्या-बुद्धि विशारद विनायक अत्यल्पकालमें ही सारे वेद-वेदाङ्ग, व्याकरण, गणित, ज्योतिष आदि शास्त्रोंके साथ अस्त्र शस्त्रोंका सम्यक् ज्ञान प्राप्तकर उसमें निष्णात हो गये। शास्त्रीय सिद्धान्तोंपर विलक्षणबुद्धि महोत्कटकी अद्भुत व्याख्या सुनकर महान् शास्त्रज्ञ भी चकित होकर कहने लगे—'निश्चय ही विनायक कश्यपनन्दनके रूपमें अवतरित हुए हैं।'

महोत्कटने सातवें वर्षमें प्रवेश किया। अब वे बल, बुद्धि, विद्या आदिमें पूर्ण पारंगत होकर अपने पिताके कार्योंमें सहयोग देने लगे थे। अवसर प्राप्त होते ही वे उपवनके

...में किसी महान् अवतारी पुरुषने जन्म लिया

...देकर हुए वीर्य विनायक।

(गणेशपु० २।१०।३०)

...पंदत्र बचपनके समय दिया हुआ आशीर्वाद भी ...दुष्टोंका नाश करनेवाला होवे'—ऐसा तेजस्वी होता ...को 'शस्त्रका उपयोग न करे'—ऐसा न कहकर ...शस्त्र देकर उनका प्रयोग कैसे किया जाय, ... जाता था और वह भी ब्राह्मण-बालकको—यह ...है। अदितिके बालकको कहा जाय तो उसमें ...नहीं। परंतु दमनशील कश्यपऋषिके बालकको ...इस सिद्धके शस्त्र मिलते हैं और उन्हें प्रयोग ...के लिये दी जाती है उस आशीर्वादसे भी 'अपने ...र'-ऐसा अभिप्राय सूचित किया जाता है; यह भी ... कीजिए, यह सब ध्यानमें रखनेयोग्य है। ...हमारे सोलहों संस्कार भी ऐसा तेजोवर्धक होना ... देकर उपवेशन करानेका

…या तो उनके क्रोधकी सीमा न रही । काल-तुल्य [illegible]सुलोचन अधम जवन और मनुने कुछ ही देरमें [का]शिराजका रथ घेर लिया और अत्यन्त क्रोधपूर्वक उन्होंने [का]शीनरेशसे कहा—'राजन् ! तूने ब्राह्मण-पुत्रको लाकर हमारे [पि]ताकी हत्या कैसे करवायी । कृतघ्न ! पहले असुरराज [नरा]न्तकके कोपसे हमारे पिताने ही तुम्हारी रक्षा की थी । [उन्हीं]की कृपासे तू काशीनरेश बना हुआ है । हमारे पिताको [मरवा]कर तू जीवित कैसे रह सकता है ?'

अत्यन्त शक्तिशाली धूम्राक्ष पुत्रोंकी क्रुद्ध वाणी सुनकर [का]शिराज काँप उठे । उन्होंने मन-ही-मन सोचा—'अरसार[अ]की तरह मैं कहाँसे इस पुरोहित कुमारको ले आया ? यदि [नरा]न्तक कुपित हुआ तो क्षणार्द्धमें ही मेरा राज्य ध्वस्त [हो] जायगा ।'

भयाक्रान्त काशिराजने ब्राह्मण और ईश्वरकी शपथ लेक[र] कहा—'मैं सर्वथा निर्दोष हूँ । मैं तो इस मुनि-कुमारको [अप]ने पुत्रका विवाह करानेके लिये ले जा रहा हूँ । आप [कृपा]पूर्वक मेरे शुभकार्यमें व्यवधान उपस्थित न करें । आप [इ]स पुरोहित पुत्रको ले जायँ । मुझे छोड़ दें ।'

'राजन् ! मुझ छोटे बच्चेको गहन वनमें लाकर आप [म]ुझे छोड़े कैसे दे रहे हैं ?' महोत्कटने चकित होकर [का]शिराजसे कहा—'आपने मेरी माताको क्या वचन दिया [था] ? क्या क्षत्रिय धर्म यही है ? यदि मेरे पिताने यह बात [सुनी] तो निश्चय ही वे आपको शाप दे देंगे और आप [स]पर्वाह भस्म हो जायँगे ।'

इस प्रकार महोत्कट राजासे कह ही रहे थे कि जवन [औ]र मनुने उनपर आक्रमण कर दिया । क्रुद्ध हुए महोत्कटने [भया]नक गर्जना की । विनायकके निःश्वास वेगसे पृथ्वीपर [भ]ूकम्प आ गया । उस भीषण ध्वनि एवं वायुवेगके [क]ारण जवन और मनु अन्तरिक्षमें चक्कर खाते हुए [नरान्त]कके नगरमें शिलाखण्डकी तरह गिर पड़े । उनके [अ]ङ्ग-अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये ।

'यह कैसे, क्या हुआ ?' सम्पूर्ण नरान्तक नगरमें जैसे [को]लाहल-सा हो गया था और प्रमुख असुरोंके साथ नरान्तक [विचा]र कर ही रहा था कि दौड़ता हुआ दूत आ पहुँचा । [उस]ने दैत्यराजसे कहा—'कश्यपपुत्रके हाथोंसे धूम्राक्ष वध [हुआ] जानकर जवन और मनुने उनपर आक्रमण करना चाहा तो उनकी यह दुर्गति हुई । वह कश्यपेय काशिराजके साथ उनके पुत्रका विवाह कराने जा रहा है ।'

'ब्राह्मणपुत्र और काशिराजको तुरत पकड़ो ।' अत्यन्त कुपित होकर क्रूरतम नरान्तकने अपने सैनिकोंको आज्ञा दी । 'यदि वे युद्ध करें तो उन्हें मार डालो ।'

शस्त्रसज्ज वीर असुर-वाहिनी द्रुतगतिसे दौड़ पड़ी । काशिराजने असुर-सेनाको देखा तो वे काँपने लगे । किंतु योगसिद्ध महोत्कटने विकट गर्जना की । वज्रपात-तुल्य उस भयंकर एवं प्रचण्ड स्वरसे कितने ही असुर-वीर मृत्यु-मुखमें चले गये । कुछ सैनिकोंके शरीर महोत्कटके तीक्ष्ण शरों एवं आयुधोंसे कट-कटकर गिर पड़े । महोत्कटका अद्भुत शस्त्र-वर्षामें असुरोंको कुछ सूझ नहीं रहा था । कुछ ही देरमें असुरोंके रुण्ड-मुण्डसे वहाँकी धरती पट गयी । कुछ प्राण लेकर भागते हुए असुर नरान्तकके समीप पहुँचे और उसे सारा समाचार सुनाया ।

'काशिराजके कुछ ही अङ्गरक्षकोंके साथ कश्यपकुमारने हमारे वीर सैनिकोंका संहार कैसे कर दिया ?' क्रोधोन्मत्त नरान्तक सोच रहा था कि 'कुटिल काशिराजको दण्डित करना ही चाहिये ।' यह निश्चय कर उसने काशीनरेशको पराजित करनेके लिये एक वीर असुरके सेनापतित्वमें पदकमी असुरों की सुशिक्षित सशस्त्र सैन्य-दल प्रेषित किया । नरान्तकने अपने सेनापतिको कश्यपेयसहित काशिराजको जीवित ही पकड़ लेनेकी कठोर आज्ञा प्रदान कर दी थी । असुर-वाहिनी काशीके लिये प्रस्थित हुई ।

इधर विनायकने काशिराजके साथ उनकी राजधानीमें प्रवेश किया । कश्यपेयकी सहायतासे ही नरेश निर्विघ्न सकुशल लौटे हैं, इस कारण विनायकका [illegible] स्वागत किया गया । नगर सुन्दर [illegible] [illegible] विविध प्रकारकी पुष्पमालाओंसे सुसज्जित था । दुंदुभि आदि अनेक बाजे बज रहे थे । विविध प्रकारके [illegible] [illegible] नर-नारियोंने विनायकका [illegible] [illegible] विनायकका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सुमधुर [illegible] [illegible] हुई [illegible] [illegible] प्रकारके पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे । [illegible] [illegible] बालकोंने अपने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दिया । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible]

रूपमें दीखता है, उसी प्रकार जिसकी जैसी भावना थी, उसीके अनुसार उन्हें महाप्रभु विनायकके दर्शन हो रहे थे।*

नगरके मध्य विघण्ट और दन्तुर-नामक दो असुरोंने बाल-वेषमें उन्हें अपने समीप खेलनेके लिये सादर बुलाया। विनायकने समीप पहुँचते ही उनकी चेष्टाओंसे उनका दुरुद्देश्य समझ लिया। फिर क्या था! विनायकने आलिङ्गन करते हुए हाथके पुष्पकी तरह उन्हें मसलकर फेंक दिया। निष्प्राण विशाल असुर अपने असली रूपमें दूर जा गिरे। यह दृश्य देखकर काशिराज तथा अन्य नगर निवासी चकित हो गये। अन्तरिक्षसे देवगण विनायकपर सुमनवृष्टि करते हुए धन्य! धन्य! एवं जय जयकार करने लगे।*

रथ आगे बढ़ा। कुछ ही दूर जानेपर पतंग और विद्युल-नामक दो असुर झंझावातके रूपमें आये। उनके वेगमें वृक्ष गिरने लगे, नागरिकोंके वस्त्र आकाशमें उड़ गये एवं जन-समुदाय व्याकुल हो उठा। विनायकका रथ भी ऊपर उठने लगा, तब विनायकने स्तम्भन किया। एक असुर अशक्त होकर पृथ्वीपर गिरा ही था कि विनायकने उसे पकड़कर वज्र तुल्य मुष्टिप्रहारसे अधमरा कर दिया। फिर उसे घुमाकर इतने जोरसे पटका कि उसके प्राणपखेरू उड़ गये। राक्षसकी निष्प्राण विशाल देह देखकर जन समुदाय आश्चर्यचकित हो गया। सब लोग मन ही मन कह रहे थे—'यह कश्यपकुमार कौन शक्तिशाली देवता है, जिसने इन अजेय असुरोंको देखते ही देखते वध कर दिया!'

चकित काशिराजने विनायकके चरणोंमें प्रणाम कर रथ आगे बढ़ाया ही था कि बालक विनायकने पाषाणरूपी असुरको देखा। विनायकने तुरंत रथसे कूदकर उसपर

* [illegible] विनायकम्।
[illegible] पश्यन्ति स्म [illegible]॥
[illegible]।
[illegible]॥
[illegible]।
[illegible]॥
(गणेशपु० २।१४।१९-२१)

अपने तीक्ष्ण परशुका प्रहार किया। उक्त शिला[illegible] शतधा छिन्न हो गया। फिर तो उस शिलाखण्डसे [illegible] भयानक पिङ्गलवर्ण विशालकाय कूट-नामक असुर नि[illegible] उसके मुख-दाँत, श्मश्रुजाल एवं नेत्र अत्यन्त भ[illegible] थे। उसे देखकर नगरनिवासी भयभीत होकर [illegible] उधर भागने लगे; किंतु अमित साहसी कश्यपनु[illegible] उसे तुरंत पकड़ लिया और मुष्टिप्रहारसे ही उसे [illegible] डाला। यह दृश्य देखकर काशीवासियोंके मनमें [illegible] निश्चय हो गया कि 'यह लोकोत्तर बालक अवश्य असुरोंका सर्वनाश करनेमें समर्थ सिद्ध होगा।'

काशिराज विनायकको सम्मान प्रदान करनेके लि[illegible] रथसे उतर पड़े। वे विनायकको राजभवनमें ले गये। उन्[illegible] षोडशोपचारसे पूजा एवं स्तुति की। उन्हें बहुमूल्य वस्त्र ए[illegible] अलंकरण प्रदान किये। अत्यन्त आदरपूर्वक विवि[illegible] प्रकारके सुस्वादु व्यञ्जनोंका भोजन कराकर उन्हें एक [illegible] कक्षमें सुन्दरतम पर्यङ्कपर शयन कराया। दिनभरके थके विनायक रात्रिमें सो गये।

प्रातःकाल विनायकने शय्या त्यागकर स्नानादि किया। वे अग्निहोत्रादिसे निवृत्त हुए ही थे कि धर्मदत्त नामक एक ब्राह्मणदेवता उन्हें अपने घर लिवा जानेके लिये आये। विनायक उनके साथ जा ही रहे थे कि मार्गमें नरान्तकके भेजे हुए काम और क्रोध-नामक दो राक्षस उन्हें मारनेके लिये आ गये। वे गर्दभरूपधारी राक्षस परस्पर लड़ते हुए विनायकके ऊपर गिर पड़े। विनायक उन दोनोंको मारकर ज्यों ही आगे बढ़े, त्यों ही उन्होंने सामने एक मदमत्त गजराजको देखा, जो नगरमें सर्वनाश करनेपर तुला हुआ था। नगरकी कुछ जनता घरोंमें छिप गयी थी और कुछ यत्र तत्र प्राण लेकर भाग रही थी। उस गजसे बचनेका कोई उपाय नहीं था। विनायक दौड़े। उसके समीप पहुँचते ही उन्होंने विद्युत् गतिसे उसकी सूँड़ पकड़ ली। फिर व्याकुल गजके गण्डस्थलपर इतना तीव्र प्रहार किया कि वह चिग्घाड़ता हुआ धरतीपर आ गिरा। लोगोंने प्रत्यक्ष देखा, वह क्रूरतम महाबली कुम्भ दैत्य था। नगर निवासी निश्चिन्त हुए।

लिया था। वह पीताम्बर, कङ्कण तथा आकर्षक अलंकार धारणकर विनायकके समीप पहुँची और कहा—'तुम्हारे माता पिता धन्य हैं, जो तुम्हारे-से शूरवीर पुत्र उन्हें प्राप्त हुआ। तुमने कितने ही राक्षसोंका वध कर कितना शुभ किया। यह श्रम निवारक सुगन्धित तैल मैं तुम्हारे लिये लायी हूँ। आओ, इसे धारण करो।'

देवोरूपिणी जृम्भाकी मधुर वाणीसे मुस्कराते हुए विनायकने तेल लगवाना स्वीकार कर लिया; किंतु तेलका स्पर्श होते ही उनके शरीरमें दाह उत्पन्न होने लगा। विनायकने तुरंत पासमें पड़ा हुआ नारिकेल उठाकर उस राक्षसीके सिरपर दे मारा। राक्षसीका सिर फट गया। तड़पकर प्राण-त्याग करते समय उसका असली स्वरूप प्रकट हो गया। तब लोगोंकी समझमें आया कि यह राक्षसपत्नी सुन्दर नारीके वेषमें विषमिश्रित तैलके द्वारा बालकका जीवन नष्ट करने आयी थी।

दूसरे दिन काशिराज जन प्रतिनिधियों, विनायक, मित्रों और अमात्योंके साथ सभामें पहुँचे। वे युवराजके विवाहके लिये पुरोहित पुत्र विनायकको किस प्रकार ले आये तथा विनायकने किस किस असुरका किस प्रकारका विनाश किया, इसका भी विस्तृत वर्णन करते हुए उन्होंने विनायककी वीरता एवं विलक्षण बुद्धिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। फिर उन्होंने युवराजके विवाहका मुहूर्त निश्चित करनेकी इच्छा व्यक्त की।

राजाकी बात सुनकर एक वरिष्ठ अमात्यने निवेदन किया—'राजन्! जबसे यहाँ विनायकका आगमन हुआ है, तभीसे असुरोंके नये नये उपद्रव हो रहे हैं और मेरे विचारसे इनके यहाँ रहते यहाँ शान्ति भी नहीं होगी। अतएव विवाह एकाध मासके लिये टाल देना अधिक उचित होगा।'

नरेशने इसका कोई विरोध नहीं किया। वे लौट आये। विनायकके साथ भोजन किया। फिर दोनों शयन करने चले गये।

अनेक दैत्योंका वध

घोर निशीथ! काशीनरेश, विनायक एवं समस्त प्रजा सो रही थी; किन्तु नरान्तकके अत्यन्त क्रूर सेनापति ज्वालामुख, व्याघ्रमुख और दारुण अपने विशाल सैन्यके साथ काशीको घेरकर उसका ध्वंस करनेकी योजना बना रहे थे।

भयंकर ज्वालामुखने दारुणके सहयोगसे काशीके चारों ओर आग लगा दी। नगर धायँ धायँ जल उठा। काशी-नरेशकी प्रजा व्याकुल होकर इधर-उधर भागने लगी, पर उसे कोई मार्ग नहीं मिल रहा था। जो नगर निवासी बाहर निकलते, व्याघ्रमुख उन्हें समाप्त कर देता। काशीमें हाहाकार व्याप्त हो गया।

नरेशने राज्यमें सर्वत्र घूमकर देखा, नगरकी सम्पूर्ण सीमा अग्निकी भयानक लपटोंमें जल रही थी। बाहर निकलनेका कोई मार्ग नहीं था। अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने कहा—'सम्पूर्ण विपत्तियोंके मूल इस विनायकको मैं क्यों ले आया!* अब मेरा सर्वस्व नष्ट हो जायगा।'

फिर आकुलचित्त नरेशने अपने दुर्गपर चढ़कर नगरकी ओर दृष्टिपात किया तो उनकी बुद्धि निष्क्रिय हो गयी। वे विनायकको ढूँढ़ने लगे। राजा और सम्पूर्ण प्रजा विनायकको पुकार रही थी।

उसी समय पूर्व क्षितिजपर रक्तबिम्ब उदित हुआ। अमित शक्तिसम्पन्न परम तेजस्वी और परम शान्त विनायकने नगरकी दारुण दशा और नरेशकी अधीरता देखी तो उन्होंने योगमायाका आश्रय लिया। वे दौड़े और परम शूर-वीर, परम निष्ठुर, क्रूर व्याघ्रमुखको पकड़ लिया और उसे वहीं मार डाला। उसके शरीरके टुकड़े कर उसे आकाशमें दूर फेंक दिया।

फिर क्रोधानलकी प्रतिमा विनायक ज्वालामुखके समीप पहुँचे। उसका विशाल सैन्य दल कुछ समझ नहीं पा रहा था कि वहाँ क्या हो रहा है! महोत्कटने ज्वालामुखका शरीर चीरकर रख दिया। भयानक दारुण भी उनके हाथों मारा गया।

असुर सैन्यमें हाहाकार मचा। सिंहारूढ विनायकके अद्भुत शस्त्र-वर्षासे असुरोंकी सारी सेना गाजर-मूलीकी तरह कट मरी। कुछ ही असुर प्राण बचाकर भाग सके।

* कथं मया बाल एव सर्वारिष्टकरोऽत्र।
सर्वसंहारको भीमश्च दुर्निरीक्ष्य आनयः॥
(गणेशपु० २।१५।२८)

विनायकने मर्दन था। इसे सुनकर सारी प्रजा प्रसन्न हुई। विनायक नगरके समीप पहुँचे। उन्होंने नागरिकोंपर काशिराजके सैनिकोंके गहदान एवं अपनी अद्भुत शक्तिसे भरा बनाया। पुनः निर्माण करा दिया। उन्होंने काशिराजके सैनिकोंको सावधान किया। उन्हें अनेक प्रकारके आयुधोंका सञ्चालन एवं प्रयोग भी सिखा दिया।

काशीमें नवजीवन एवं नवोल्लासकी लहर दौड़ पड़ी। नरान्तकके विशाल सैन्यके पराजित परावसे महामहिम विनायकके साथ काशिराजकी भी कीर्ति और ख्याति सुदूर देशतक फैल गयी। गिरि-कन्दराओंमें निवास करनेवाले राजाओं, देवताओं एवं ऋषि मुनियोंका मन प्रसन्न होने लगा। वे सभी असुर विनाशकी विनायक योजनामें सहयोग देनेका विचार करते हुए आशा और विश्वासके साथ विनायककी महिमाका गान करने लगे।

काशिराजने प्रसन्न होकर विनायककी पूजा की तथा ब्राह्मणोंको विविध प्रकारके दान दिये। विनायकने भी ब्राह्मणोंको तृप्तिकर उपहार भेंट किये। काशिराजकी राजधानीमें सर्वत्र आनन्द और उत्साह छा गया। नरेश प्रसन्न रहने लगे; किंतु परम बुद्धिमान् विनायक नरान्तक और देवान्तककी अपरिमित शक्ति, उनकी कुटिलता और उनकी पराक्रमी वीर वाहिनीसे प्रतिक्षण सचिन्त और सशङ्क थे।

* * *

दूसरे दिन नित्यकर्मसे निवृत्त होकर विनायक बालकोंके साथ खेलने चले गये और नरेश राजसिंहासनपर पहुँचे। उसी समय वहाँ एक दीर्घश्मश्रुधर ज्योतिषी पहुँचा। उसने रेशमी वस्त्र धारण किये थे और सिरपर विशाल पगड़ी बाँध रखी थी। उसके बायें हाथमें पुस्तक और दाहिने हाथमें रुद्राक्षकी माला थी। ललाटपर गोपीचन्दनका तिलक था।

राजाने उसे प्रणाम किया; फिर समीपस्थ आसनपर बैठाकर उसका परिचय एवं उसके आगमनका हेतु पूछा।

'राजन्! मेरा नाम हेमज्योतिर्विद् है और मैं गन्धर्व-लोकसे आ रहा हूँ।' काशिराजको आशीर्वाद देकर गणकने कहा—'मैं भूत, वर्तमान और भविष्यका ज्ञाता हूँ। आपकी कल्याण-कामनासे यहाँ आया हूँ। आप अकण्टक राज्य कर रहे थे; किंतु अब नित्य नूतन उपद्रव हो रहे हैं और भविष्यमें और भी अधिक दुःख होंगे। ... महोत्कटका आगमन आपके ... लिये ... नहीं तो बलवान् महोत्कट ही आपके ... राज्यपर अधिकार कर लेगा। ... महोत्कटको यहाँसे शीघ्र ... दें; यही कल्याणकर है।'

'आपके वचन सुनकर तो मुझे अत्यन्त ... सहित प्रतीत होता है।' काशिराजने गणकसे ... 'स्वामी पधारनेके पूर्वसे ही महोत्कटने कितने उत्कट ... का संहार किया है और सम्पूर्ण प्रजा कितनी सुखी ... तो प्रत्यक्ष ही है। आप निश्चयपूर्वक सर्वथा ... अन्यथा ऐसा नहीं कहते। वे छोटा रूप धारण ... विष्णु, शिव और निखिल ब्रह्माण्डकी रचना करने ... हैं। वे इन्द्रको अनिन्द्र, असमर्थको समर्थ, ... बड़ेको छोटा, नीचको उच्च और ईश्वरको अनीश्वर ... सकते हैं।* जब इन्होंने दुष्टता करनेवाले भयानक ... को मार डाला, तब दूसरे द्वेष करनेवालोंको किस प्रकार ... देंगे। आपको ऐसा वचन नहीं कहना चाहिये।'

राजाकी वाणी सुनकर ज्योतिषीका मुख कुछ ... गया। उसने क्रोधके आवेशमें फिर कहा—'राजन्! ... तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ, किंतु सुनिश्चित भविष्य ... भी कैसे सकता है! तुम जरा उस बालकको बुलाओ। ... उसकी भी रेखाएँ देखकर फल बता देता हूँ।'

उसी समय बाल समुदायके साथ विनायक वहाँ पहुँच गये। वे गणकको प्रणामकर राजाके समीप जा बैठे। ... अत्यन्त बलवान् कश्यपनन्दनको देखकर ज्योतिषी ... गया। उसकी मुखाकृति म्लान हो गयी। 'इस बालककी ... दृष्टिमें आकर कोई भी राक्षस अबतक जीवित नहीं ... पाया'—यह सोचते ही उसके भालपर स्वेद बिन्दु निकल आये।

अदितिकुमारकी ओर देखकर फल बताते हुए ... वह प्रलाप करने लगा—'तू चार दिनमें कुएँमें गिर ... यदि उससे बच गया तो समुद्रमें डूब जायगा। इससे ...

---

* ब्रह्माणं कमलाकान्तमपरं शूलिनं हरम्।
अनयिष्यति ब्रह्माण्डं भेद् ब्रह्माण्डानि बहूनि सः॥
करोतीन्द्रमनिन्द्रं वाचक्त शक्तं लघु गुरुम्।
उच्चं नीचं तथा नीचमुच्चमीशमनीश्वरम्॥
(गणेशपु० २। १४। १५, १६)

तो तुमपर पहाड़ टूट पड़ेगा। तुझे कर्मानुसार फल
यह सब निश्चय ही होगा, इसमें संदेह नहीं। यदि
इनचवोंसे बचना चाहता है तो चार दिनोंके लिये
नमें चल। मैं तुझे फिर नहीं पहुँचा दूँगा।'

पीकी अनुकूलता तथा उसमें कम्पादि भार-
कर विनायकने उसके मुखिरपर वज्र-तुल्य मुष्टिका
प्रहार किया। उसका वध विदीर्ण हो गया और
का फव्वारा छूट पड़ा। चीत्कार करता हुआ
वह वीर असुर पृथ्वीपर रक्त फेंकता मृत्युमुखमें

ा देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये। देव-
होकर दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे।
महोत्कटकी पूजा एवं उनके चरणोंकी वन्दना
विप्र मानवर्ग अनेक प्रकारके दान दिये।

* * *

रधारी असुरके मारे जानेपर नरान्तकने
प्रतिशोध लेनेके लिये कूपक और कन्दर-नामक दो
दैत्योंको अनेक प्रकारके रत्नालंकार प्रदान कर भेजा।
प्रबल कूपक और कन्दरके साथ विशाल असुर-सेना
पनी सैन्य-सामग्रियाँ थीं।

कूपक काशिराजके आँगनमें कूप बना और कन्दरने
कन्दरा बनकर बालकोंको एकत्र किया। खेलके मिस
हृदय विनायकका प्राण हरण करना चाहते थे; किंतु
उनके सम्मुख उनकी एक न चली। दोनों महादैत्य
गये। फिर विनायककी कूटनीतिसे कूपक और कन्दरकी
परस्पर युद्ध करके मर मिटीं।

* * *

कूपक और कन्दर-जैसे प्रबल दैत्योंके निधनसे क्षुब्ध
कर नरान्तकने अन्धक, अभ्रकासुर और तुङ्ग—तीन प्रचण्ड
असुरोंको महोत्कटका विनाश करनेके लिये भेजा। इन
असुरोंका नाम सुनकर ही भयवश ब्रह्मादि देवगण पलायित
गये थे। इन असुरोंने त्रैलोक्यके प्रख्यात वीरोंका मान-
मर्दन कर दिया था।

इन प्रसिद्ध तीनों असुरोंने यह प्रतिज्ञा की थी—'हम काशी-
पुरीका ध्वंस कर उसे जलमें डुबो देंगे। निश्चय ही महोत्कट
मर जायगा; बस, वह दृष्टिमें पड़ जाय। शत्रु-संहारके
बिना हम जीवित घर नहीं लौटेंगे।'

तीनों मायावी प्रबल दैत्योंने अपनी शस्त्र-वर्षासे काशी-
नगरको आच्छादित कर देनेका निर्णय कर लिया। यह दृढ़
निश्चय लेकर अपनी महान् सेनाओंके साथ वे तीनों असुर
काशीके समीप पहुँचे। उनके गर्जनसे त्रैलोक्य कम्पित
हो रहा था।

अन्धकासुरने अपनी मायासे भगवान् भुवनभास्करको
आच्छादित कर लिया। सर्वत्र गहन अन्धकार व्याप्त हो
गया। जो द्विज स्नान, संध्या-वन्दन, जप-तप, वेद-पाठ,
पुराण-पाठ, कथा-कीर्तन और पूजन आदि कर्ममें तल्लीन थे,
वे सहसा घोर अन्धकारसे चकित हो गये। गृहिणियाँ दुग्ध
गर्म करने आदि घरके कार्य प्रारम्भ ही करने जा रही थीं कि
अचानक प्रगाढ़ तमसे व्याकुल हो गयीं। इसी प्रकार चारों
वर्णोंके बालक-युवा-वृद्ध नर-नारी—सबके कार्य रुक गये।
दिनमें ही घरोंके भीतर दीप जला दिये गये।

'यह कैसे क्या हो गया? प्रकृतिका अविचल नियम
सहसा कैसे परिवर्तित हो गया? विन्ध्यगिरिने क्या पुनः
सूर्यमण्डलको अवरुद्ध कर दिया है?'—इस प्रकारकी चिन्तासे
काशीकी प्रजा चिन्तित हो रही थी।

सहसा अभ्रकासुरके क्रोधसे प्रबल झंझावात उठा।
गिरि-शिखर भू-लुण्ठित होने लगे। वृक्ष समूल उखड़कर
पृथ्वीपर गिर पड़े। तमसाच्छन्न नगरमें भयानक अंधड़से
और विपत्ति आ गयी। इतना ही नहीं, आकाशमें दल-के-दल
भयानक मेघोंका गर्जन होने लगा। चपला चमकने लगी
और कुछ ही क्षणोंमें मूसलाधार वृष्टि प्रारम्भ हो गयी।

प्रगाढ़ तम, प्रबल प्रभञ्जन और प्रलयकालीन वृष्टि।
काशीकी प्रजाके कष्टकी सीमा नहीं थी। वन-उपवन और
वाटिकाएँ ध्वस्त हो रही थीं। भयानक वृष्टिसे त्राण पानेके
लिये समस्त स्त्री-पुरुष घरोंमें चले गये, पर गृहोंके धराशायी
होनेसे कितनी प्रजा मृत्युमुखमें चली गयी। वृष्टि उत्तरोत्तर
तीव्र होती गयी और सब कुछ तीव्र गतिसे जलमग्न होता
था। सभी लोग त्रस्त थे, सभी भयसे काँप रहे थे, सभी
अशान्त और किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये थे तथा
निष्क्रिय हो गयी थी।

निर्मम दैत्योंकी प्रलयंकर मायासे पीड़ित पुरवासि
कष्ट देखते ही आर्तत्राणपरायण विनायकने अपनी मायासे
लता-गुल्म-सुशोभित एक अत्युच्च वटका निर्माण किया। उसकी
शाखाएँ सौ योजनतक फैली हुई थीं। उस समय विनायक

हूँ ! युवराजका मतबन्ध, विवाह और यज्ञादिक कर अपने आश्रमको लौट जाऊँगा । मेरी समझमें आ, आपलोग यह व्ययसाध्य आयोजन क्यों कर रहे हो नागरिकोंके यहाँ मैं एक बालक कैसे जाऊँगा बालकसे वाञ्छितार्थ-प्राप्तिकी कामना आपलोग रहे हैं ?'

आप कृपापूर्वक हमारे हृदयमें भ्रम उत्पन्न मत ।' नगरप्रमुखने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक निवेदन आप सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले, अन्यथाकर्तुंसमर्थ, समस्त प्राणियोंकी चित्तवृत्तिसे एवं सर्वान्तर्यामी चिदानन्दस्वरूप परमप्रभु हैं । पूजा हमारे लिये नितान्त उपयोगी है । भक्तिप्रिय शास्त्र-वचनोंको अन्यथा न कर दयापूर्वक हमारी पूर्ति कर दें ।'

भक्तोंकी प्रीति और राजाज्ञाके सम्मुख मैं नतमस्तक भक्तवाञ्छाकल्पतरु देवदेव विनायकने अपनी स्वीकृति

प्रभु विनायककी जय !' हर्षोल्लासपूर्वक समस्त अपने-अपने घर लौटे ।

तो काशी-नगरीमें घर-घर अद्भुत, आकर्षक मण्डप । तोरण, वन्दनवार और पुष्पमालाओंसे प्रत्येक सजाये गये । बहुमूल्य वस्त्र, आभरण, मनोहर वाद्य, एवं षड्रसयुक्त विविध पकवान प्रस्तुत होने लगे । में विनायककी मूर्ति प्रतिष्ठित हुई । चन्दन, अक्षत, दीप और नैवेद्य आदिसे उसकी पूजा की गयी । र स्वच्छ करके सजा दिया गया । घर-घर विनायकका होने लगा । सर्वत्र महोत्सवके सुयोग्य कीर्तन होने मधुर वाद्य बजने लगे । इस प्रकार विनायकके स्वागत के लिये काशीमें अभूतपूर्व और अद्भुतपूर्व किया गया । सभी लोग विनायकके पधारनेकी उत्सुकतासे उनके आगमनकी उत्सुकतासे प्रतीक्षा थे ।

[illegible]

अत्यन्त निःस्पृहा, ज्ञानसम्पन्ना, अनुपम रूपवती एवं अद्भुत पतिपरायणा थी ।

विप्रवर शुक्ल दरिद्र थे । उनका घर इतना टूटा-फूटा और जीर्ण था कि आकाशके नक्षत्र उससे सहज ही दीखते रहते थे । उनके घरमें सोने, चाँदी और ताँबेके पात्र कहाँसे आते, जब कि उनकी गौरवर्णा लावण्यमयी पत्नी वल्कल धारण कर अपने दिन काटती थी; किंतु वह साध्वी अपनी उस गम्भीर दीनावस्थामें भी संतुष्ट रहकर अत्यन्त विनयावनत पतिकी सेवा करती रहती थी ।

धनहीन शुक्ल भिक्षाटनके लिये निकले । उन्होंने देखा—नगर सुसज्जित हो रहा है और प्रत्येक व्यक्तिके मनमें विनायक-पूजाका उत्साह छाया है । शुक्लने भी महोत्कट-पूजनकी इच्छा व्यक्त की तो लोग हँस पड़े—'अरे ! आप क्यों व्यर्थ प्रयास करेंगे ? आप महामहिम महोत्कटका स्वागत किस प्रकार करेंगे ? आपके घरमें है भी कुछ ?'

भिक्षामें जो कुछ प्राप्त हुआ, लेकर शुक्ल चुपचाप घर पहुँचे । उन्होंने अपनी सहधर्मिणीसे कहा—'देवदेव विनायक भूभार हरणार्थ महर्षि कश्यपके घर अवतीर्ण हुए हैं, वे आज प्रत्येक घरमें पधारेंगे । उनके अभिनन्दनके लिये प्रत्येक घरमें अद्भुत आयोजन किये जा रहे हैं । हम भी उनकी पूजा करके अपना जीवन सफल कर लें ।'

विद्रुमाने उदास होकर कहा—'प्रभो ! पहले तो हमारे जैसे दरिद्रतम व्यक्तिके घर विनायक क्यों पधारेंगे और कदाचित् वे कृपापूर्वक आ ही गये तो उनके सत्कारके लिये धूप, पुष्प, पकवान तथा विविध मधुर पदार्थ हमारे पास कहाँ हैं ? हमारे यहाँ आनेसे उनका कौन प्रयोजन सिद्ध होगा ?'

[illegible]

[illegible]

[illegible]

दृश्य उपस्थित जन चकित होकर देख रहे थे। लोगोंने विनायकके साथ उस भक्त ब्राह्मणका अन्न किया, वे सभी देवस्वरूप हो गये। यह देखकर करनेवाले बालक मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगे।

र सम्पूर्ण नगरवासी उत्सुकतापूर्वक परस्पर पूछ 'विनायक कहाँ हैं?' और जब उन्हें विदित महामहिम विनायक दरिद्र ब्राह्मण शुक्लशर्माके हाथोंसे उसका माँड़-भात खा रहे हैं तो उनके सीमा न रही।

नोपरान्त करुणामयने शुक्लशर्माके दिये जलसे और मुखशुद्धि ली। तब अत्यन्त प्रसन्न होकर शुक्लशर्मासे कहा—'अनघ! आपकी अद्भुत पूर्ण प्रसन्न हूँ। महाभाग्यवान्! आप इच्छित ।'

रेकसे शुक्ल-दम्पतिकी वाणी अवरुद्ध थी। य नहीं जा रहा था। देवी विद्रुमा हाथ जोड़े। उनके नेत्र सजल थे। बद्धाञ्जलि शुक्लशर्माने कार कहा—'प्रभो! आपने सम्पन्न लोगोंकी र सर्वप्रथम मुझे अपना दुर्लभ दर्शन दिया दरिद्र ब्राह्मणका कदन्न हर्षपूर्वक स्वीकार किया, य ही मेरा परम सौभाग्य है।'

र्माकी हिचकी बँध जाती थी। सँभलकर र्थना की—'मैं आपकी सुदृढ़ भक्तिकी याचना आपके बिना मेरा मन संसारके सुखोंमें कभी न हमें मोक्ष प्रदान कर दें, जिससे न सहनी पड़े।'

पुनः द्विभुज बालक अत्युत्तम स्वरूप, ब्राह्मण-दम्पतिकी

ढूँढ़े जा विनायक तो साथ उसे

इस प्रकार दम्भ करनेवाले जब विनायकसे अपने घर भोजन किया तो सर्वान्तर्यामी विनायकदेवने फेरकर डकार लेते हुए ब्राह्मण शुक्लशर्माके अत्यन्त मेरा पेट इतना भर गया है रहा है। अब तो मैं एक

यह सुनकर भ्रष्ट हो गये और कुपित होकर किंतु जिन विनायकके सहकर पवित्रतापूर्वक करते हुए विनायकका एक विनायकने कामना पूर्ण की।

सर्वज्ञानसम्पन्न, प्रत्येक भक्तकी रुचिके भावानुसार किसीके करने लगे, कहीं कहीं शास्त्रार्थ करते तो कहीं कहीं भोजनके लिये अत्यन्त इस प्रकार नाना रूपोंमें वे सफल करने लगे।‡

विनायकके चरणोंमें प्रीति रखने समझ रहे थे कि 'सर्वसंतापहारी पधारे हैं। विनायक तो प्रत्येक रीतिसे अपना ही समझते हैं। उनके मनमें मेरे आदर, कितना प्रेम और कितनी सद्भावना है लोगोंने परमदेव विनायकके दिव्य अङ्गपर तेल उद्वर्तन लगाया। उन्हें स्नान कराकर सुन्दर वस्त्र को दिये। फिर विविध प्रकारसे उनकी पूजा की।

* बुभुजुस्तान् स्वयं दृष्ट्वा दाम्भिका भक्तिवर्जिताः॥ (गणेशपु० २। २४। १४)

† एको नानास्वरूपोऽभूत्'''।' (गणेशपु० २। २४। १६)

‡ क्वचित्पाठयते शिष्यान् साङ्गं वेदं सहार्थकम्। क्वचिद् व्याकुरुते शास्त्रं क्वचित् पठति स्वयम्॥ एवं नानास्वरूपैः स नानागृहगतो बभौ। (गणेशपु० २। २४। १८-१९)

लाती। कभी कभी तो उसे उपवास ही रहना पड़ता। उस दिन शुक्लशर्माने उस अन्नको देकर विनायक-पूजनके लिये गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, चन्दन, पत्रक और पुष्पगुच्छ सूखा आँवला आदि वस्तुएँ ले ली।

विनायकके चरणोंमें अमित श्रद्धा-भक्ति रखनेवाली उनकी सहधर्मिणी विद्रुमाने अपने छोटे-से घरको झाड़-पोंछकर स्वच्छ किया। सुन्दर चौक पूरा और दर्भ बिछाकर उसपर पूजोपकरण रख लिया। पत्तोंका तोरण द्वारपर बाँधा और पत्तोंकी ही ध्वज खड़ा कर लिया। फिर अत्यधिक जलमें उपलब्ध थोड़े-से चावलका भात बनाया। सर्वेश्वर विनायकको अर्पित करनेके लिये उस श्रद्धामयी विद्रुमा और भक्तहृदय शुक्लशर्माके घर यही पानी-मौंड़से भरा थोड़ा-सा भात था।

पहले शुक्लशर्माने नैवेद्य और वैश्वदेव किया। फिर घरमें धूप जलाकर सहधर्मिणीके साथ विनायकका ध्यान करते हुए द्वारपर बैठ गये। परम प्रभु विनायकका नाम-जप करते हुए दम्पतिके नेत्रोंसे अविरल प्रेमाश्रु प्रवाहित होता जा रहा था।

अदितिनन्दन विनायक बालकोंके साथ मणिकर्णिकापर स्नान कर रहे थे। वे जलसे निकले, नवीन वस्त्र धारण किये और बालकोंके साथ सीधे शुक्लशर्माके द्वारपर पहुँचे।

'विनायक हमारे द्वारपर पधारे!'—ब्राह्मण-दम्पतिके आनन्दकी सीमा न रही। हर्षविभोर होकर वे नृत्य करने लगे। विद्रुमा आश्चर्यचकित हाथ जोड़े विनायकको अपलक दृष्टिसे देख रही थी। उसके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बह रहे थे।

किसी प्रकार शुक्लशर्माका नृत्य बंद हुआ तो उनकी वाणी जैसे अवरुद्ध हो गयी। जगद्वन्द्य त्रैलोक्यनायक विनायककी अभ्यर्चनाके लिये क्या करूँ, क्या न करूँ? कुछ समझमें नहीं आ रहा था उनकी।

फिर भी उन्होंने प्रभुको आसनपर बिठाकर धीरे-धीरे उनके चरण-कमलोंको दबा-दबाकर धोया। प्रभु-पद-पद्मका धोवन उन्होंने अपने माथेपर चढ़ाया, विद्रुमाके मस्तकपर छिड़का और शेष जल दोनों पी गये।

'आज मेरा जन्म, तप, ज्ञान, वंश, वय आदि सभी सफल हुए, जो पापोंका नाश करनेवाले दीननाथ मुझ अकिंचनकी कुटियापर पधारे।'—शुक्लशर्माने हाथ जोड़कर कहा और गन्ध, अक्षत, पुष्पमाला, धूप, दीप, दूर्वाङ्कुर, शमीपत्र,

उपला तेल आदि विनायकको अर्पित किये, फिर चन्दन लगाकर, पुष्पाञ्जलि समर्पित करके स्तवन ...

भक्त शुक्लशर्मा अत्यन्त दीन ... परणोंमें अर्पित हो रहे थे। ... हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

सर्वान्तर्यामी विनायकदेवने अत्यन्त ... कहा—'माता! तुमने क्या भोजन बनाया है? ... तुम्हारे पात्र तैयार हो, मुझे वही निस्संकोच ... भक्तिपूर्वक प्रदत्त कदन्न भी मुझे अमृतसे अधिक ... तृप्तिकर प्रतीत होता है, श्रद्धाहीन सुस्वादु ... मेरे लिये विष-तुल्य है।'

'माता!' विद्रुमा तो निहाल हो गयी। ... विनायकने मुझे 'माता' कह दिया। बालक ... माताका दिया सब कुछ खायेगा ही। फिर ... नहीं खायेगा! सफलमनोरथ विद्रुमा भातका ... ही उठा लायी। कुछ बालक विनायकके साथ ... रहे थे; किंतु कुछ विनायककी यह लीला ... ठहाका मारकर हँसने लगे।

शुक्लशर्माने अनेक अन्नोंकी पीठी परोसी। ... उक्त अन्नकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके बड़े चावसे ... थे। बीच-बीचमें जल भी ग्रहण करते जाते। फिर ... शर्माने माँड़-भात परोसना आरम्भ किया।

'घुटनेभर पानीमें भात बनाया है क्या, ... दरिद्र ब्राह्मणका अन्न न खानेवाले बालकोंने ... और हँस पड़े।

'आजतक मैंने इतना सुस्वादु भोजन कभी नहीं किया'—अत्यन्त प्रसन्न होकर उल्लासपूर्वक महोत्कटने ब्राह्मण-दम्पतिसे कहा—'माँड़-भात और दीजिये।'

ब्राह्मणने पूरा पात्र पत्तलपर उलट दिया। भात बिखर गया और माँड़ बहने लगा। बालक विनायक उसे अपने नन्हे दो हाथोंसे नहीं रोक सके; अतएव वे तुरंत ... हो गये और अपने दसों हाथोंसे माँड़-भात खाने लगे। भक्तिप्रिय विनायकको अपना वर्तमान स्वरूप विस्मृत हो गया।

* तत्काल चकितं दिग्धं बालो रोद्धुं न चाशकत्।
दशोऽभवत्तदा नो प्रभुजे चौदनं च ते।
(गणेशपु० २। ११। ४१-४२)

[ब]ालकोंमें क्रीड़ा करने गये हैं । राजा चकित थे । [उन]की समझमें कुछ नहीं आ रहा था । अन्तमें उन्हें पता [चला] कि महोत्कट दरिद्र शुक्लशर्माके घर गये हैं । काशिराज [शुक्लश]र्माके घर पहुँचे तो वहाँ देखा, 'बाल विनायक [सूर्यके त]ुल्य वृषभपर आरूढ़ होकर हँसते हुए खेल रहे हैं ।'

राजाने विनायकको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और [कहा]—'शिशुओंमें क्या आपका साधु-स्वभाव, ज्ञान और [विवेक] नष्ट हो गया ? आपने मुझे छोड़कर अकेले ही मिष्टान्नका [भोजन] कहाँ खा लिया ?'

हँसते हुए बालक महोत्कटने तुरंत उत्तर दिया—'[महा]राज ! बच्चोंकी तरह मिथ्या भाषण नहीं करना चाहिये । [इन] किसीसे पूछ लें, मैंने जहाँ-जहाँ भोजन किया, वहाँ-वहाँ [ये] मेरे साथ थे ।'

वहाँ उपस्थित लोगोंने भी राजासे कहा—'वयोवृद्ध महाराज ! आपको असत्य शोभा नहीं देता । आपने [हमारे] सामने घर-घर विनायकके साथ बैठकर भोजन [किया] है ।'

आश्चर्यचकित राजाने कहा—'प्रभो ! आपकी परम दुर्विज्ञेय [मायासे] योगिराज भी मोहित हो जाते हैं । समस्त रूपोंमें [सर्व]मान्य आप धन्य हैं ।'

[र]ाजाके शरीरमें रोमाञ्च हो आया । उन्होंने ध्यानपूर्वक [देखा त]ो उन्हें भय-तापहारी विनायकके दर्शन हुए । जल[में] उसकी वीचियोंकी तरह उन्हें सम्पूर्ण सृष्टि एवं [विनाय]कमें सर्वथा अभेदका दर्शन हुआ । फिर मायाके [कारण]से उन्हें बालक विनायक दीखने लगे ।

[र]ाजाने विनायकको शिविकामें बैठाया । अनेक प्रकारके [बाजे ब]ज रहे थे । नृत्य और गान हो रहा था । इस प्रकार [बाल] विनायक राजभवनकी ओर चले । दीन-दीन [शुक्लदम्प]ति भी उनके पीछे धीरे-धीरे चल रहे थे । विनायक [राजभ]वन पहुँचे ।

[उ]न्होंने बालकोंको घर लौटा दिया और जब उन्होंने [पीछेकी] ओर करुण दृष्टिसे निहारते शुक्ल-दम्पतिको देखा [तो वे] व्यथित हो गये । 'मैंने इन भक्त-भक्तिकी दिव्य [मूर्ति]योंको कुछ नहीं दिया । इन दीप्ति प्रतिमाओंको [...] हूँ ? यद्यपि इनके लिये कुछ भी अदेय नहीं, किंतु [...]देना मेरे सम्मुख मैत्रेयसकी · 　　　 ?
[...] रहे हैं ।'

कुछ क्षण बाद विनायकने उन्हें अपनी उत्तम सम्पत्ति त[ो] दे ही दी, धनपति कुबेरसे भी श्रेष्ठ धन-वैभव प्रदा[न] कर दिया ।

शुक्लशर्मा और उनकी धर्मपत्नी विद्रुमाको प्रत्यक्ष[तः] तो कुछ मिला नहीं, पर वे सर्वथा निःस्पृह ब्राह्मण प्रसन्न-मन विनायकका स्मरण करते हुए अपने घर लौटे ।

ब्राह्मण-दम्पतिके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी । उनके जीर्ण घरका अस्तित्व ही नहीं रह गया था; वहाँ उसके स्थानपर अमरावतीके इन्द्र-भवनसे भी श्रेष्ठ भवन प्रस्तुत था । ब्राह्मण-दम्पति अत्यन्त चिन्तित हुए ही थे कि भवनसे सुन्दर वस्त्राभरणभूषित सेवक निकले ।

वे ब्राह्मण-दम्पतिको भवनके भीतर ले जाकर तैल-मर्दन करने लगे । उन्हें स्नान कराया । उनके सुनहले वस्त्र और आभूषण पहनाये । इसी प्रकार स्त्री-सेविकाओंने विद्रुमाको स्नानादिके उपरान्त वस्त्राभूषणसे भूषित किया । उन्हें विविध पक्वान्न परोसा और प्रत्येक रीतिसे वे प्रतिक्षण उनके सेवार्थ प्रस्तुत रहे ।

सहसा सर्वथा अकल्पित, अकल्पनीय, दुर्लभ सम्पत्ति प्राप्तकर ब्राह्मण-दम्पति चकित थे । ब्राह्मणका वह भवन विशाल एवं समस्त सुविधाओंसे भरपूर था । उस भवनकी दीवारें सोनेकी थीं । उसमें अनेक प्रकारके बैठनेयोग्य रत्नोंके सुन्दरतम मञ्च बने थे । उनके घरमें सभी पात्र सोनेके थे और विविध प्रकारकी अक्षय, दुर्लभ खाद्य-सामग्रियाँ वहाँ एकत्र थीं ।

'मेरी यह क्षुद्र कुटिया सहसा इन्द्रभवनकी तरह कैसे हो गयी ?' चकित होकर विद्रुमाने अपने पतिसे पूछा तो उन्होंने विनायकका स्मरण करते हुए कहा—'सुन्दरी ! निश्चय ही यह भक्तवत्सल करुणामूर्ति विनायकका कृपा-प्रसाद है । उन सर्वेश प्रभुने हमें सामने तो कुछ नहीं दिया, किंतु तुम्हारे और मेरे भावसे ही संतुष्ट होकर कौतुकमें सब कुछ दे दिया । वे दयामय प्रभु अपने भक्तकी दी हुई स्वल्प वस्तुको भी अत्यधिक मानकर उसे महान् वस्तु प्रदान कर देते हैं और अपनी दी हुई महान् वस्तुको भी स्वल्प ही समझते हैं । इस कारण कल्याणेच्छुको चाहिये कि भय, स्नेह, काम अथवा शत्रु-भावसे भी उनका सदा स्मरण करता रहे । भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करे,

ञ्चोंमें क्रीड़ा करने गये हैं । राजा चकित थे ।
समझमें कुछ नहीं आ रहा था । अन्तमें उन्हें पता
महोत्कट दरिद्र शुक्लशर्माके घर गये हैं । काशिराज
के घर पहुँचे तो वहाँ देखा, 'बाल विनायक
य वृषभपर आरूढ़ होकर हँसते हुए खेल रहे हैं ।'

ाने विनायकको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और
शिशुओंमें क्या आपका साधु-स्वभाव, ज्ञान और
हो गया ? आपने मुझे छोड़कर अकेले ही मिष्टान्नका
ाँ ख्या लिया ?'

े हुए बालक महोत्कटने तुरंत उत्तर दिया—
बच्चोंकी तरह मिथ्या-भाषण नहीं करना चाहिये ।
ासे पूछ लें, मैंने जहाँ-जहाँ भोजन किया, वहाँ-वहाँ
साथ थे ।'

उपस्थित लोगोंने भी राजासे कहा—'वयोवृद्ध
राज ! आपको असत्य शोभा नहीं देता । आपने
मने घर-घर विनायकके साथ बैठकर भोजन
।'

ार्यचकित राजाने कहा—'प्रभो ! आपकी परम दुर्विज्ञेय
ोगिराज भी मोहित हो जाते हैं । समस्त रूपोंमें
य आप धन्य हैं ।'

के शरीरमें रोमाञ्च हो आया । उन्होंने ध्यानपूर्वक
न्हें भव-तापहारी विनायकके दर्शन हुए । जल
की वीचियोंकी तरह उन्हें सम्पूर्ण सृष्टि एवं
सर्वथा अभेदका दर्शन हुआ । फिर मायाके
न्हें बालक विनायक दीखने लगे ।

े विनायकको शिविकामें बैठाया । अनेक प्रकारके
रहे थे । नृत्य और गान हो रहा था । इस प्रकार
िनायक राजभवनकी ओर चले । दीन दीन
भी उनके पीछे धीरे-धीरे चल रहे थे । विनायक
पहुँचे ।

े बालकोंको घर लौटा दिया और जब उन्होंने
अपलक दृष्टिसे निहारते शुक्ल-दम्पतिको देखा
ग्र हो गये । 'मैंने इन श्रद्धा-भक्तिकी दिव्य
ोंको कुछ नहीं दिया । इन मीठी प्रतिमाओंको
यद्यपि इनके लिये कुछ भी अदेय नहीं, किंतु
प्रेमके सम्मुख त्रैलोक्यकी अनन्त सम्पदा भी
ाच है ।'

कुछ क्षण बाद विनायकने उन्हें अपनी उत्तम सम्पत्ति तो दे ही दी, धनपति कुबेरसे भी श्रेष्ठ धन-वैभव प्रदान कर दिया ।

शुक्लशर्मा और उनकी धर्मपत्नी विद्रुमाको प्रत्यक्ष तो कुछ मिला नहीं, पर वे सर्वथा निस्पृह ब्राह्मण प्रसन्न-मन विनायकका स्मरण करते हुए अपने घर लौटे ।

ब्राह्मण-दम्पतिके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी । उनके जीर्ण घरका अस्तित्व ही नहीं रह गया था; वहाँ उसके स्थानपर अमरावतीके इन्द्र-भवनसे भी श्रेष्ठ भवन प्रस्तुत था । ब्राह्मण-दम्पति अत्यन्त विस्मित हुए ही थे कि भवनसे सुन्दर वस्त्राभरणभूषित सेवक निकले ।

वे ब्राह्मण-दम्पतिको भवनके भीतर ले जाकर तैल-मर्दन करने लगे । उन्हें स्नान कराया । उनके सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहनाये । इसी प्रकार स्त्री-सेविकाओंने विद्रुमाको स्नानादिके उपरान्त वस्त्राभूषणसे भूषित किया । उन्हें विविध पक्वान्न परोसा और प्रत्येक रीतिसे वे प्रतिक्षण उनके सेवार्थ प्रस्तुत रहे ।

सहसा सर्वथा अकल्पित, अकथनीय, दुर्लभ सम्पत्ति प्राप्तकर ब्राह्मण-दम्पति चकित थे । ब्राह्मणका वह भवन विशाल एवं समस्त सुविधाओंसे भरपूर था । उक्त भवनकी दीवारें सोनेकी थीं । उसमें अनेक प्रकारके बैठने-योग्य रत्नोंके सुन्दरतम मञ्च बने थे । उनके घरमें सभी पात्र सोनेके थे और विविध प्रकारकी अपार, दुर्लभ खाद्य-सामग्रियाँ वहाँ एकत्र थीं ।

'मेरी यह क्षुद्र कुटिया सहसा इन्द्रभवनसे उत्कृष्ट कैसे हो गयी ?' चकित होकर विद्रुमाने अपने पतिसे पूछा ।
उन्होंने विनायकका स्मरण करते हुए कहा—'प्रिये ! निश्चय ही यह भक्तवत्सल करुणामूर्ति विनायकका प्रसाद है । उन सर्वज्ञ प्रभुने हमें सामने तो कुछ नहीं दिया, किंतु तुम्हारे घर आते ही संतुष्ट होकर संकोचवश सब कुछ दे दिया । वे दयामय प्रभु अपने भक्तकी दी हुई स्वल्प वस्तुको भी अत्यधिक मानकर उसे महान् वस्तु प्रदान कर देते हैं और भक्तकी दी हुई नगण्य वस्तुसे भी संतुष्ट हो जाते हैं । इस कारण कल्याणेच्छुको चाहिये कि भय, स्नेह, काम अथवा शत्रुभावसे भी उनका सदा स्मरण करता रहे । श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा करे,

...ोंके मुखसे यह संवाद सुनकर नरान्तकने क्रुद्ध ... कहा—'वृक्षोंपर कूदनेवाला बंदर वनराजका कुछ ...बिगाड़ पाता; शरीर निगल जानेवाला अजगर वसुधापर ...रहता है; जुगनूका प्रकाश चन्द्रोदयके अनन्तर नहीं ...; सूर्यका तेज राहुके पहुँचते ही मन्द पड़ जाता ... अतएव काशिराजका मान-मर्दन करने मैं स्वयं चलूँगा। ... वाहिनी एकत्र हो।'

...राक्षसराजका आदेश पाते ही विशाल सशस्त्र सेना ... ही देरमें तैयार हो गयी। मदमत्त गज एवं ...पर आरूढ़ योद्धाओं तथा असंख्य पैदल-सैनिकोंने ढाल, ...र, खट्वाङ्ग, शक्ति, परशु, गदा, मुद्गर, चक्र, ...र, धनुष-बाण, पाश और अङ्कुश आदि विविध प्रकारके ...के अस्त्र धारण कर रखे थे। इस प्रकारकी शस्त्र-सज ...रङ्गिणी सेनाके साथ पृथ्वीको कम्पित करता हुआ नरान्तक ...शीकी ओर चला। उसके साथ वीरोंको प्रोत्साहित ...नेवाले दिगन्तव्यापी वाद्य बज रहे थे।

..., महान् दैत्य नरान्तककी झूमती विशाल सेना काशीके पूर्व-...गमें पहुँची। आकाश धूलिसे आच्छादित हो गया था ...र रण-दुन्दुभियाँ बज रही थीं। यह देखकर एक दूत ...शिराजके पास दौड़ा आया। उस समय काशिराज भोजनके ...लिये थालके सम्मुख बैठे ही थे कि दूतने कहा—'महाराज! ...सुरराज नरान्तक अपनी चतुरङ्गिणी सेनाके साथ हमारी ...भूमिके पूर्वभागमें आ गया है।'

महाराज भोजनको स्पर्शकर खड़े हो गये। उन्होंने ...पने सैनिकोंको तत्काल शस्त्रसज्ज होनेकी आज्ञा दी और ...स्वयं शिरस्त्राण एवं कवच आदि धारणकर वीर-वेषमें ...विनायकके समीप पहुँचे तथा उनकी पूजा की। तदनन्तर ...बोले—'जय विनायक!'

नरेशकी सेना कुछ ही क्षणोंमें अस्त्र शस्त्र धारण करके ...एकत्र हो गयी। दुन्दुभियाँ बजने लगीं। महाराजने ...विनायकके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने अश्वपर जा ...बैठे। सेनाके विभिन्न अङ्गोंके सेनापति अश्व, रथ और ...गजपर आरूढ़ हो पहलेसे ही तैयार थे।

काशीनरेशकी सेना पैशाचिक आक्रमण करनेवाली ...असुर सेनाका दर्प-दलन करने अत्यन्त उत्साहसे प्रस्थित ...हुई। काशीकी पूर्वी सीमापर पहुँचकर नरेशने सेनापतियों ...व सैनिकोंको पुरस्कृत कर उन्हें अपनी पवित्र मातृभूमिकी रक्षाके लिये प्रोत्साहित करते हुए कहा—'अनेक असुर-योद्धाओंने हमपर क्रूरतम आक्रमण किया, किंतु विनायककी कृपासे वे सभी मारे गये। विनायकके यहाँ रहते हमें चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं; हमारी विजय निश्चित है।'

काशिराजने इतना कहा ही था कि समुद्रकी लहरोंकी तरह आती हुई असुरराज नरान्तककी सेनापर उनकी दृष्टि पड़ी। नरेश काँप उठे। अपने सैनिकोंको उत्साह प्रदान करनेके स्थानपर वे कहने लगे—'किंतु असुर-शक्ति असीम है। उनके साधन अपरिमित हैं। उन्होंने अपने पराक्रमसे त्रैलोक्यपर अधिकार कर लिया है। उनके विशाल सैन्यके सम्मुख हमारी संख्या नगण्य है। प्रचण्ड सूर्यके सम्मुख खद्योतकी क्या गणना! अतएव यदि वे राक्षसराज अनुग्रह करें, तभी हम जीवित रह सकते हैं। उनके सम्मुख हमसे अपराध भी बहुत हुए हैं। केवल विनायकके बलसे हम इनको कैसे परास्त कर सकते हैं! अतएव आपलोग हितकर विचार करें।'

भयविह्वल राजाकी बात सुनकर महामात्यने कहा—"हमारे चार प्रतिनिधि सन्धिके लिये असुरराज नरान्तकके पास जायँ। अपने हितके लिये नीच पुरुषके भी समीप जानेमें आपत्ति नहीं। आचार्य बृहस्पतिने नीति वचन कहा है—'प्रबल शत्रुको अनुकूल बनानेके लिये कन्यादान, सहभोजन, प्रेम, सम्भाषण, वस्त्रदान, नमस्कार तथा उसकी स्तुति भी कर लेनी चाहिये।' यदि असुरराज विनायकको भी माँगें तो उन्हें दे देना चाहिये। तात्पर्य यह कि जैसे भी हो, अपना हित-साधन करना चाहिये।" *

'यही उत्तम है।' सब लोगोंने कहा—'प्रबलतम असुरराजसे वैर समाप्त हो जाय, यही अच्छा है।'

इस प्रकार राजा परामर्श कर ही रहे थे कि टिड्डी-दलकी तरह नरान्तकके सैनिकोंने ... आक्रमण कर दिया। उन्होंने चारों ओर ... आकाश धूम्राच्छन्न हो गया। जो भी ... लिये घरसे बाहर निकले, क्रूर राक्षस उन्हें ... उन्हें स्त्रियोंके सतीत्व पर आक्रमण करते दे... स्त्रियाँ छतोंसे कूदकर और कुछ विष-पानकर ...

* स चेद् विनायकं याचेत्तस्मै दातव्य एव्यम्।
कार्यसिद्धिर्हि मे भाति स्वहितं च विशिष्यताम्॥
(गणेशपु० २।५७।१८)

ो करे और उनके कल्याणमय चरण-कमलोंमें बारंबार म निवेदन करता रहे ।॥

नरान्तकका आक्रमण

देवरिपु नरान्तकके शूर और चपल-नामक दो गुप्तचर क समयसे काशीमें रहते हुए नागरिकोंमें इतने घुल-मिल थे कि उनपर संदेह करना सम्भव नहीं था । वे दोनों ोही असुर अत्यन्त बलवान् थे और काशीकी प्रत्येक की सूचना राक्षसराज नरान्तकके पास भेजते तथा कको मार डालनेके लिये अवसरकी ताकमें लगे रहते थे ।

एक दिनकी बात है । महोत्कट शिविकामें बैठकर नभवनकी ओर लौट रहे थे कि उन महावीर शूर और नामक असुरोंने उन्हें घेरकर घोर गर्जना की । उस से शिविका ले जानेवाले कर्मचारी काँप उठे, किंतु क तुरंत शिविकासे उतर पड़े ।

ाक्षसोंका दुष्टतापूर्ण उद्देश्य समझते ही विनायकने तुरंत अपने सबल हाथोंमें उठा लिया और घुमाते हुए र पटककर अपने कठोर पाशमें बाँध लिया । अत्यन्त ् असुरोंके मनमें बालक विनायककी इस शक्ति और ी कल्पना भी नहीं थी । वे भयवश काँपने लगे और विनायककी स्तुति करते हुए उनसे अपने प्राणोंकी माँगने लगे ।

िनायकने उनसे कहा—'तुमलोग कौन हो और ्सलिये रहते हो ? यदि सच-सच बता दोगे तो तुम्हारे ोड़ दूँगा, अन्यथा मृत्यु निश्चित है ।'

'भो ! आप करुणासागर, दीनोंके नाथ एवं हमारे ।' असुरोंने हाथ जोड़े विनायकसे निवेदन किया— गर्भाधान करनेवाले, उपनयन करानेवाले, विद्या- नभयदाता और अन्नदाता—ये पाँच ...

सर्वे जानीहि सुभगे न
ददाति तु परोक्षेण
... ददत्
... त्योपपादितं ...
... स्मात् भयेन
... स्वर्गो नमनीयश्च

... कहे गये हैं ।॥ हमें कृपापूर्वक क्षमा करें । नरान्तकके गुप्तचर हैं । यहाँकी घटनाएँ उन्हें दिया ही करते हैं, आपको किसी ... डालना भी हमारा उद्देश्य था । हम ... विघ्न उत्पन्न करते रहते थे ।'

विनायकपर आक्रमणका समाचार ... फैल गया । अतएव शीघ्र ही नागरिक... एकत्र हो गयी । नागरिकोंने विनायकसे ... दुग्धपान करानेसे उनका विष ही बढ़ता है । ... अविलम्ब वध करें ।'

'मैंने इन्हें अभयदान दे दिया है ।' ... असुरोंको तुरंत काशीसे चले जानेकी आज्ञा दी ... शिविकारूढ़ होकर राजभवन पहुँचे ।

शूर और चपल राक्षसराज नरान्तकके ... नरान्तक मणिमय सिंहासनपर आसीन था । उ... उसके समीप ही सावधानीसे बैठे थे । दूतोंने ... सम्मुख मस्तक झुकाकर उसका अभिवादन कि... डरते हुए उन्होंने कहा—'राजन् ! आपके ... हम काशीकी प्रजामें उनके स्वजन और आत्मीय ... रहते हुए प्रत्येक रीतिसे व्यवधान उत्पन्न करनेके ... करते थे; किंतु ऋषिपुत्रकी कुशाग्र बुद्धि, ... सावधानी, सजगता एवं अद्भुत शक्तिके सम्मुख ... जाते थे । आपके भेजे हुए एक-से-एक वीर ... हाथों मारे गये । कोई भी बचकर नहीं आ सका । ... भी अवसर देखकर उसपर आक्रमण कि... चपलतासे उस ब्राह्मण-बालकने हमें ... जकड़ लिया, उसे देखकर हमारी बुद्धि ... हम किसी प्रकार अपने प्राण बचा... हमने तो ऐसी शूरता, ऐसी शक्ति ... न कहीं देखा और न सुना है । ... ...ा करें । हमारी ... नहीं ...

…के सैनिक अत्यन्त शूर-वीर और भयानक थे। …न्त भयानक मुख, हल-तुल्य दाँत, सर्प-तुल्य जिह्वा …तुल्य मस्तक थे। उनके नेत्रोंसे अग्निकी भयानक …कल रही थी और उनके विकट नासारन्ध्रमें महागज … सकते थे। उनके क्रूर नायकने विनायकके समीप …विनयपूर्वक प्रार्थना की—'प्रभो! हमें क्या आज्ञा …म बुभुक्षित हैं। कृपया भक्ष्य प्रदानकर हमें …।'

…नायक बोले—'तू महादैत्य नरान्तककी विशाल …का भक्षण कर। समस्त सैनिकोंको उदरस्थ करके …का मस्तक मेरे समीप ले आ। इतनेपर भी तेरी तृप्ति … मैं तुझे अन्य भक्ष्य बताऊँगा।'

…नायककी अनुज्ञा प्राप्तकर उक्त महाभयानक …ने उनके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर भयानक गर्जन … उक्त गर्जन सुनकर दैत्यराज नरान्तकका हृदय …।

…ओंका युवक-वर्ग और सैनिक विजयोन्मत्त नरान्तकके …ध्यमें पहुँचनेकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि विनायककी … सेना उसपर टूट पड़ी। वे अतुलित बलशाली योद्धा … गर्जन करते हुए नरान्तकके सैनिकोंको पकड़कर …विशाल मुखमें फेंकने लगे। आकाशमें इतनी धूल … कि सर्वत्र अन्धकार सा व्याप्त हो गया; किसीको …स नहीं रहा था।

…धनान्धकारमें वे घोर पुरुष असुर-सैन्यका निर्ममता-…र्दन करते हुए सैनिकोंको भक्षण करते जा रहे थे। वे …सुरको पैरोंसे मसल देते, किसीको आकाशमें गेंदकी …छाल देते और किसीको पटककर पुनः अपने कराल-…गाल लेते।

…य-सेना प्राण लेकर भागना चाहती थी, किंतु इन …रोंसे बचकर भागना शक्य नहीं था। वे असुरोंको …ही चबाते, जितना ही खाते, उतनी ही उनकी क्षुधा …ती जा रही थी। इस कारण वे गजसहित गजारोहीको …रथसमेत अश्वारोहीको अपने मुँहमें डाल लेते। इस …छ ही देरमें उस निर्मम घोर पुरुषने असुर-सैन्यको …ष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

…ग्नि-तुल्य घोर पुरुषके द्वारा अपने सैन्य-दलका विनाश … नरान्तक घबरा गया। अवशिष्ट सैनिकोंको भक्षण करते

देखकर वह अपना धनुष लेकर तीक्ष्णतम शरोंकी वर्षा करने लगा। नरान्तकके असंख्य शर उस घोर पुरुषके शरीरमें प्रविष्ट होकर बाहर निकल गये। उनसे रुधिर बहने लगा, पर जैसे उस पुरुषको कुछ उनका पता ही नहीं था। वह तो अपने सैनिकोंके साथ निरन्तर असुरोंको भक्षण करनेमें व्यस्त था।

नरान्तकके सारे अस्त्र निष्फल सिद्ध हुए। जब एक भी शर नहीं बचा, तब अपनी शक्तिके सर्वथा नष्ट हो जानेपर वह प्राण लेकर भागा, किंतु वह कालपुरुष भी उसके पीछे दौड़ा। नरान्तक पृथ्वीपर द्रुतगतिसे भागता हुआ जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ वह कालपुरुष उसके पीछे दीख पड़ा। भयाक्रान्त नरान्तक भागकर स्वर्ग पहुँचा तो वहाँ भी उसे पीछे लगा कालपुरुष दिखायी दिया। नरान्तक फिर पृथ्वीपर लौटा, किंतु वहाँ भी कालपुरुष उसे निगल जाना चाहता था। तब अत्यन्त भयभीत दैत्यराज पातालमें प्रविष्ट हुआ तो वहाँ भी जैसे भागते हुए सर्पको गरुड़ सरलतापूर्वक दबोच लेता है, उसी प्रकार काल-पुरुषने नरान्तकके केश पकड़ लिये और कहा—'दुष्ट! मेरी दृष्टिमें पड़कर तू कहाँ भाग सकता है? महाखल! तूने परमात्मासे वर प्राप्तकर देवताओं और ऋषियोंको बहुत पीड़ित किया; कितने ही निर्दोष मनुष्योंका सर्वनाश कर दिया; अब तेरा संहार करनेके लिये विनायक अवतरित हुए हैं। तू अहंकार छोड़कर उनके चरणोंकी शरण ग्रहण कर ले। उन देवदेव विनायकके पद-पङ्कज तेरे पापोंको मिटा देंगे।'

इस प्रकार कहते हुए कालपुरुष नरान्तकको विनायकके पास ले आया। फिर विनायकके चरणोंमें प्रणाम कर उसने अत्यन्त विनीत भावसे निवेदन किया—'स्वामिन्! मैंने आपके आज्ञानुसार इसकी समस्त सेनाका भक्षण कर लिया और इसे भी बड़ी कठिनाईसे पकड़ लिया। हे प्रभो! श्रम निवारणार्थ आप मुझे सोनेके लिये स्थान दें और सर्वानन्दप्रदाता दयामय! इसे मुक्ति प्रदान करें।'

'तुम मेरे मुँहमें इच्छानुसार विश्राम करो।' परम प्रभु विनायकने अपना मुँह खोल दिया और जिस प्रकार पृथ्वीसे उत्पन्न गन्ध पृथ्वीमें ही विलीन हो जाती है, उसी प्रकार वह प्रलयंकर कालपुरुष उन देवदेवके मुखमें प्रवेशकर उन्हींके स्वरूपमें मिल गया।

● ● ●

काशीनरेश विनायकके चरणोंपर गिर पड़े। करुणामयकी स्तुति करनेके अनन्तर उन्होंने हाथ जोड़कर पूछा—'प्रभो!

विनाशकालमें बुद्धि विपरीत हो जाती है और
तु हो जाया करते हैं। अब तेरे जैसे महान्
कर पृथ्वीका भार हल्का करनेके लिये ही परमात्मा
रूपमें अवतरित हुए हैं और तेरे कुकर्मोंके
देवप्रात वर एवं पुण्य समाप्त हो चुके हैं।'
कहा ही था कि अपने गर्जनसे पृथ्वीको कम्पित
न्तकने काशिराजका धनुष-बाण छीनकर उसके
कर दिये और फिर स्वयं उन्हें पकड़कर धरतीपर
पर्वताकार नरान्तक काशिराजके वक्षपर चढ़कर
डनेका प्रयत्न कर रहा था।

दैत्यके सम्मुख नरेशकी दयनीय दशा देखकर
शु लेकर दौड़े। उनकी गर्जनासे धरती, आकाश
दिशाएँ काँपने लगीं। सर्वशक्तिसम्पन्न
सबकी दृष्टिशक्ति क्षीण करनेवाले तेजसे धधकते
शुका दैत्यराजके विशाल मस्तकपर प्रहार किया।
हत होकर क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गया।

दूसरे ही क्षण क्रुद्ध दैत्य उठकर विनायकपर
पर्वतोंसे प्रहार करने लगा। यह
त था कि वे पर्वत और वृक्ष विनायकके
र्श करनेके पूर्व ही उनके दिव्य परशुकी प्रखर
न शरीरसे चूर्ण विचूर्ण होकर बिखर जाते हैं।
वज्रदेहपर उनका किंचित् भी प्रभाव नहीं पड़

यने अनेक प्रकारके रूप धारणकर युद्ध करना
ा; किंतु वह जो-जो रूप धारण करता, योगिराज
उसी रूपमें युद्ध कर उसका दर्प-दलन करते जा
न्होंने नरान्तकके अस्त्रोंका अस्त्रोंसे, शस्त्रोंका
ारण किया। निराश होकर महासुर मल्लयुद्ध करने
समें भी उसका वश नहीं चला तो उसने पुनः पर्वतों
की वृष्टि प्रारम्भ कर दी। विनायक उन सबका
अङ्कुश और परशुके प्रहारसे निवारण करते जा
तु उनके मनमें चिन्ता हुई—'इस नरान्तकका
दायक है; किंतु मैं जिन देवतादिकोंकी अधिकार-रक्षा
निरापद सुखमय जीवनके लिये युद्धरत हूँ, वे
?'

व विनायकके चिन्तित होते ही उनके कर-कमलोंमें
सम शरपूरित तूणीर और सुवर्णमय पिनाक आ
गया। उसके तेजसे समस्त दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं।
प्रसन्नमन विनायकने उस धनुषका टङ्कार किया तो त्रैलोक्य
काँपने लगा।

उस समय देवदेव विनायक साक्षात् काल-तुल्य
प्रतीत हो रहे थे। उन्होंने नरान्तकपर शर-वर्षा प्रारम्भ
की। नरान्तकके दोनों हाथ कटकर दूर जा गिरे और
मस्तक उसके पिता रुद्रकेतुके सम्मुख गिरा। किंतु अत्यन्त
आश्चर्यकी बात यह हुई कि उस वर प्राप्त असुरकी नयी
भुजाएँ और नया मस्तक पुनः निकल आया।

असुरने क्रुद्ध होकर पुनः पर्वतोंकी वृष्टि प्रारम्भ कर
दी। वृक्षोंकी वर्षासे अन्धकार फैल गया। विनायकने
धनुषकी प्रत्यञ्चा कानतक खींचकर तीक्ष्ण शर छोड़ा।
असुरके दोनों पैर कट गये। वे पैर आकाशमें उड़ते हुए
देवान्तकके समीप गिरे। नरान्तक बिना पैरके ही दौड़ा,
किंतु उस मायावीके दोनों पैर पुनः निकल आये।
क्रोधोन्मत्त असुरने विनायकसे कहा—'तुमने मेरा अङ्ग-
भङ्गकर अपना पौरुष दिखला दिया; अब मैं तुमपर
आक्रमण करता हूँ; मेरा पराक्रम देखो!'

क्रुद्ध नरान्तकने असंख्य बाण वृष्टि की, किंतु धनुर्वेद-
विशारद बालकने भी अद्भुत कौशलका परिचय दिया।
उस असुरके सारे अग्निमुखी बाण बीचमें ही कट गये। फिर
विनायकने एक बाणसे उसका मस्तक काट दिया। वह
मस्तक चीत्कार करता हुआ पुनः उसके पिता रुद्रकेतुके
सम्मुख गिरा। वहाँ उसे फिर नया सिर प्राप्त हो गया।
इस प्रकार सहस्राधिक बार विनायकने उसका शिरश्छेद
किया, किंतु पुनः-पुनः नये-नये सिर निकलते आये।

यह देखकर विनायक चिन्तित हुए। 'वर प्राप्त असुर
कैसे मरे?'—वे सोचने लगे। अन्ततः उन्होंने
मोहित किया। मोहग्रस्त नरान्तकको 'स्व' और 'पर'का भे
नहीं रहा। उसे दिन-रातमें भी अन्तर नहीं दीखता था
एक क्षण वह समझता था कि दिन है, किंतु दूसरे
क्षण उसे रात्रि प्रतीत होती। वह क्षणभर स्वर्गमें
क्षणभर पातालमें, क्षणभर जगत् तो क्षणभर सुषुप्तिका
अनुभव करता। विनायक स्त्री हैं या पुरुष, अपने हैं
या पराये, निर्जीव हैं या सजीव—नरान्तकको कुछ भी
ज्ञान नहीं रहता था; उसे मतिविभ्रम हो गया।

उसने मन ही-मन कहा—'शूलपाणि शिवने वर-प्रदान करते हुए कहा था कि ऐसे ही समय तुम्हारी मृत्यु होगी।'*

उसी समय विराट्‌रूपधारी विनायकने उस महादैत्य नरान्तकको अपने हाथोंसे सुकोमल पुष्पकी तरह मसलकर फेंक दिया।

'विनायककी जय हो! जय हो!! जय हो!!!'—पुष्प-वृष्टिके साथ देवगण विनायकके चरणोंमें प्रणामकर उनका स्तवन करने लगे।

तदनन्तर काशिराजने पुनः देवदेव विनायककी पूजा की और अत्यन्त विनयपूर्वक स्तवन करते हुए कहने लगे—'प्रभो! मेरे अत्यधिक पुण्य उदित हुए हैं, जिससे मैंने आपके मन और वाणीसे अगोचर विराट्‌रूपका दर्शन प्राप्त किया। आपने तैंतीस कोटि देवताओंको पराजित करनेवाले महान् नरान्तकका अन्त कर जगत्‌का बड़ा उपकार किया। प्रभो! आप मुझे अपनी भक्ति प्रदान करें और मैं आपसे कभी पृथक् न होने पाऊँ।'

'विनायककी जय!' बोलते हुए काशिराजने प्रसन्न होकर ब्राह्मणोंको दान दिया। फिर उन्होंने पृथ्वी और नागलोकके राजा-महाराजाओंको अपने-अपने राज्योंकी सुव्यवस्था करनेकी प्रेरणा प्रदान कर दी। इस प्रकार धरती और नागलोक क्रूरतम असुरसे मुक्त हुए। वसुधाका आधा भार उतर गया।

● ● ● ●

मुनिवर रुद्रकेतु और उनकी साध्वी सहधर्मिणी, दोनों तपस्वी और धर्माचरण-सम्पन्न थे। उन्हें पहले तो अपने पुत्रोंका आचरण अच्छा नहीं प्रतीत हुआ, किंतु जब उनके दोनों पुत्रोंने त्रैलोक्यपर विजय प्राप्त कर ली, अपार धन एवं त्रैलोक्यव्यापी कीर्ति अर्जितकर माता-पिताके लिये अपरिमित सुख-सामग्री और साधन एकत्र कर दिये, तब वे बड़े प्रसन्न हुए। फिर देवान्तक और नरान्तकके दैत्याचरण उन्हें अप्रिय नहीं लगते थे। वे सुखमय जीवन व्यतीत करनेके अभ्यस्त हो गये थे।

इस कारण जब शारदा और रु...
पातालपर शासन करनेवाले अपने प्रिय...
निस्तेज छिन्न मस्तक देखा तो दोनों...
पृथ्वीपर गिर पड़े। कुछ देर बाद मू...
दूर हुई तो मृतवत्सा गौकी तरह...
नरान्तकका मस्तक गोदमें लेकर विला...
नरान्तकके वीरत्व और वैभवपूर्ण...
हुई रो रही थी; सिर धुन रही थी।

रुद्रकेतु भी व्याकुल होकर रोने लगे...
गुणोंका बखान करते हुए कह रहे थे—...
पिताको छोड़कर कहाँ चला गया! तुम्हारे...
पर्वत और शत्रु थर-थर काँपा करते थे; देव...
तू भू-लुण्ठित क्यों है! सचमुच क्रूर काल...
वक्र होती है—दैवं हि बलवल्लोके केवलं...
हाय! मेरे वंश और पृथ्वीका भूषण कहाँ...

अत्यन्त दुःखी रुद्रकेतु अपनी पत्नी...
स्वर्गमें देवान्तकके पास पहुँचे। वहाँ अपने...
लिये शारदा क्रन्दन करने लगी। अनुजका...
देवान्तकका हृदय काँप उठा। वधात...
मृत्यु सहज नहीं; पर विश्वास हो जानेपर...
सिर हाथमें लेकर स्वयं रोदन करने लगा। ...
ही उत्पन्न हुए, साथ ही खेले, साथ ही...
हमने तप किया, साथ ही जप किया और साथ ही...
विजय प्राप्त की। मेरे लिये सदैव प्राण देनेके लिये...
अब तू अचानक मुझे छोड़कर एकाकी कैसे चला...

इस प्रकार भ्रातृ-स्नेहसे व्याकुल देवान्तकको...
करते देख वीर सैनिकोंने उससे कहा—...
पुरुष युद्धमें शरीर-त्याग करनेकी चिन्ता नहीं...
तो सुनिश्चित होती है। प्रत्येक जीवधारीको...
तो सौ वर्षों बाद मरना ही पड़ेगा। हमें...
लेना चाहिये। प्रतिशोध!!'

यह सुनकर देवान्तकने अपने...
'आपलोग चिन्ता छोड़कर विश्राम करें। ...
हत्यारेका वध कर डालूँगा या स्वयं मर...
वक्र भृकुटि देखकर त्रैलोक्य काँप उठता है...
कुपित होनेपर उस क्षुद्र नरेश और...
कौन कर सकता है?'

---

* [illegible] च [illegible] [illegible] [illegible] ।
एवं वै [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] च [illegible] [illegible] [illegible] ।
([illegible])

ांतु और शारदा आश्वस्त हुए । देवान्तकने
ाम्पित करनेवाली गर्जना की । उसने माता-पिताके
प्रणामकर तत्काल सशस्त्र वाहिनी प्रस्तुत करनेके
ापतिको आज्ञा दी । देवान्तककी सेना समस्त
सज्जित होकर काशीके लिये प्रस्थित हुई । देवान्तक
त पीस रहा था । उसकी भुजाएँ शत्रुका सर्वनाश
लिये फड़क रही थीं । इस प्रकार परम वीर रुद्रकेतु-
ान्तक अपने असंख्य सैन्यसहित पृथ्वीके सहिष्णु
न्च गाँवों और नगरोंको जलाता, लूटता तथा
लता काशीके समीप पहुँचा ।

देवान्तककी पराजय

ल्लभ असुर नरान्तककी पराजय और वधसे पृथ्वी
ताल-लोकमें नवजीवनका संचार हो गया था,
तना उत्पन्न हो गयी थी । काशिराजकी प्रजामें तो
व आत्मबल उदित हुआ था । पृथ्वीके पराजित
ीड़ित नरपति तथा देवगण विनायकके चरणोंमें
होने लगे थे । वे त्रैलोक्य त्राता विनायकके संकेतपर
करनेके लिये प्रतिक्षण प्रस्तुत हो गये । नरान्तककी
संवाद पाते ही उसका भाई देवान्तक काशिराजपर
आक्रमण करेगा, यह पहलेसे ही निश्चय था । इस
काशीमें सर्वत्र सावधानी थी । युद्धभूमिमें देवान्तकको
कर देनेके लिये सभी प्रस्तुत थे । विनायकके
ुसार यथाशीघ्र समुचित व्यवस्था कर ली गयी थी ।
कारण असुर-सैन्यद्वारा काशीको घेर लेनेके
कोई आश्चर्य नहीं हुआ; किंतु काशिराज देवान्तकके
स्मृतिसे काँप उठे । वे तुरंत वहाँ पहुँचे, जहाँ
विनायक बालकोंके साथ खेल रहे थे । राजाने हाथ
निवेदन किया—'लीलारूपधारी जगदीश्वर ! आपके
प्रणाम है । अनेक प्रकारकी मधुर मनोहर लीला
ले चराचर-गुरु ! आपके चरणोंमें बारंबार नमस्कार
आपने बालरूपमें ही अनेक अवसरोंपर हमारी रक्षा
अब महादैत्य देवान्तकसे भी हमें बचाइये । उसने
सैनिकोंके साथ राज्यको घेर लिया है ।'

जकी प्रार्थना सुनते ही बाल विनायकने परम तेजस्वी
स्वरूप धारण कर लिया । वे सिंहारूढ थे । उनके
धनुष-बाण, तलवार और परशु आदि आयुध
सिद्धि, बुद्धि उनके साथ थीं । उनके तेजके सम्मुख
सूर्य म्लान हो रहे थे । उनके नेत्रोंसे अंगारे बरस रहे
थे । उनकी भयंकर ध्वनिसे दिशाएँ थर्रा उठीं ।

महोत्कट विनायकने अगणित सैनिकोंके साथ नगरपर
घेरा डाले देवान्तकके विशाल सैन्यको देखा तो उन्होंने
सिद्धिदेवीसे कहा—'तुम इनके विनाशके लिये विशाल
सेनाकी व्यवस्था करो ।'

सिद्धिदेवीने विनायकके चरण-कमलोंमें प्रणाम किया
और उन्होंने तुरंत देवान्तककी सेनाके समीप जाकर
भयानक गर्जना की । उनके गर्जनकी जो भयावनी प्रतिध्वनि
हुई, उससे पर्वत और वृक्ष काँप उठे । उनके स्मरण
करते ही अणिमा, गरिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य,
वशित्व और ईशित्व-नामवाली आठ महादेवियाँ उपस्थित
हो गयीं । वे सभी गज, अश्व, रथ और पैदल नाना प्रकार-
के सशस्त्र स्त्री-सैनिकोंके साथ थीं ।

उन आठों देवियोंने अपनी-अपनी सेनाओंका अद्भुत
व्यूह निर्माणकर अत्यन्त भयानक गर्जना की । वीर रमणियों-
की विचित्र व्यूह-रचना एवं उन्हें युद्धके लिये प्रस्तुत देखकर
देवान्तकने सिर थाम लिया । उसने सोचा—'कहाँ तो मैं
काशिराज और महोत्कटको मिट्टीमें मिला देनेके लिये आया
था और कहाँ मुझे सर्वप्रथम नारी-जातिके प्रतिरोधका सामना
करना पड़ रहा है । बाल विनायककी चकित कर देनेवाली
अत्यन्त विलक्षण नीति है । ये नारियाँ हमें समाप्त कर देने
या मर मिटनेके लिये प्रस्तुत हैं । यदि मैंने इन्हें पराजित
भी कर दिया तो यश तो मिलनेसे रहा, किंतु यदि इनके
पराक्रमसे मैं विजय नहीं प्राप्त कर सका, तब कितना
अयश होगा ।'

इस प्रकार देवान्तक अपने मनमें विचार कर ही रहा
था कि उसके एक सेनापतिने कहा—'स्वामिन् ! आप
पीछे चले जायँ, वहाँकी व्यवस्थापर दृष्टि रखें; यहाँ
इन्हें यथाशीघ्र परास्त करते हैं ।'

सेनापतिके वचनसे प्रसन्न होकर देवान्तकने अपने
सैनिकोंको प्रोत्साहित किया—'वीरो ! तुम अपने साम्राज्यकी
रक्षाके लिये युद्ध करने आये हो । यह तुम्हारा पुण्यकर्म
है । निश्चय ही विजयश्री तुम्हें वरण करेगी ।'

देवान्तकके कर्दम, दीर्घदन्त, धात्रजङ्घ, पत्त, धन्वासुर,
रक्तकेतु, कालान्तक और दुर्बल-नामक असुर दुर्जय योद्धा

के ऊपर भयानक बाण-वर्षा करने लगा। शर वर्षणमें अद्भुत हस्तलाघवका परिचय दे रहा था। अनवरत ..शर उक्त भयानक देवीके शरीरसे टकराकर गिर शरोंका उनकी वज्रदेहपर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ रहा देवान्तकके समस्त शर समाप्त हो गये, किंतु उन अद्भुत र उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

तू भी मेरे उदरमें चला आ!' कहती हुई देवी उसकी ओर बढ़ीं। देवान्तकने देखा, दैत्य-सेनाका पता नहीं। सभी मार डाले गये और यदि कुछ बचे प्राणभयसे भाग गये और वह साक्षात् मृत्यु सिरपर आ रही है। सर्वथा निराश, उदास और हतप्रभ न्तक प्राण भयसे सिरपर पैर रखकर समर-भूमिसे भाग हुआ।

बुद्धिदेवीने विनायकके चरणोंमें प्रणामकर निवेदन —'प्रभो! मैंने दैत्य-दलका भक्षण कर लिया है। अब विश्राम करनेके लिये स्थान दीजिये।'

'दैत्यनाशिनी देवि!' देवदेव विनायकने बुद्धिदेवीसे —'तुमने इन्द्रसे भी अधिक पौरुष दिखाया है। अब विश्रामके लिये मेरे मुखमें चली आओ।'

परमप्रभु विनायककी आज्ञा पाते ही बुद्धिदेवी अत्यन्त हुईं और जैसे बालक अपनी माताकी गोदमें सुखपूर्वक न करता है, उसी प्रकार वे विश्राम करनेके लिये लोकाश्रय विनायकके उदरमें चली गयीं।

* * *

घोर विनायक समर-क्षेत्रमें

शारदा और रुद्रकेतुने रात्रिमें देखा कि म्लानमुख न्तक मुँह ढककर सो रहा है। रुद्रकेतुने क पूछा—'बेटा! त सोया है प्रयत्न

भेज दिया। अन्तमें अत्यन्त विकट, वीभत्सरूपा कृत्या आयी। उसने मेरे असुर-वीरोंके समूह-का समूह भक्षण करना आरम्भ किया। उसे मारनेमें मैंने कोई प्रयत्न नहीं छोड़ा; किंतु उसके वज्रशरीरपर मेरे तीखे शर तथा अन्य शस्त्रास्त्र सुकोमल सुमनकी तरह टूट-टूटकर बिखर जाते थे। मेरी सारी सेना समाप्त हो गयी और मैं नहीं भागता तो मेरे प्राण भी नहीं बचते। अब मैं क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता।'

'बेटा! तुम चिन्ता मत करो। मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ।' रुद्रकेतुने देवान्तकको समझाते हुए कहा—'तुम सबीज अघोर मन्त्रका अनुष्ठान करो। शिवका ध्यान और उनकी पूजा कर यह उत्तम अनुष्ठान करना चाहिये। इसके अनन्तर जपका दशांश होम, होमका दशांश तर्पण और तर्पणका दशांश ब्राह्मण-भोजन कराओ। शंकरके प्रसादसे हवनकुण्डसे एक अश्व निकलेगा। तुम उसपर आरूढ़ होकर युद्धभूमिमें जाओ; तुम्हें निश्चित विजय प्राप्त होगी।'

देवान्तक प्रसन्न हुआ। उसने स्नानोपरान्त लाल वस्त्र धारण किये और लाल पुष्पोंसे शिवकी पूजा की। इस प्रकार वह दीर्घकालतक आदरपूर्वक अनुष्ठान करता रहा। इसके अनन्तर उसने कुण्डमें विधिवत् अग्निकी स्थापना की, फिर आहुति देकर अग्निदेवको तृप्त किया। इस प्रकार बलि आदि घोर तामसिक विधियोंसे उसने अनुष्ठानकी पूर्ति की।

अरुणोदयके समय उसके सम्मुख अत्यन्त बलवान् स्निग्धाङ्ग काला घोड़ा उपस्थित हुआ। उस चपल अश्वकी ध्वनि बड़ी भयानक थी। देवान्तकने प्रसन्न होकर उस अश्वकी पूजा की और फिर उसे मणि-मुक्तामय अलंकारोंसे सजाया। उसने ब्राह्मणोंको नमस्कार किया, चरणोंमें मस्तक झुकाया और फिर उस वेगशाली हुआ।

हृष्ट-पुष्ट सैनिकोंको तुरंत युद्धके लिये संनद्ध उसका सम्पूर्ण असुर-सैन्य शस्त्रास्त्रसे अश्वारूढ़ देवान्तककी अमित ही वाद्य बज उठे, देवगण कॉँपने लगे।

यकसहित काशिराजने

करनेके

लिये आतुर हो रहा था। इस प्रकार असुर वाहिनी काशीके समीप पहुँची।

इस बार देवान्तकने अपनी सम्पूर्ण सेनाके साथ काशीपर भीषण आक्रमण किया। सिद्धिदेवी अपने सैनिकोंके साथ प्रत्याक्रमण कर बैठीं। भयानक युद्ध हुआ। असुर प्रबल थे, देवान्तकने नयी शक्ति अर्जित कर ली थी, इस कारण सिद्धिदेवीकी सेना व्याकुल हो गयी। सिद्धिदेवीने असुरोंका अत्यधिक विनाश तो किया, पर वे शिथिल होने लगीं। उनकी सेना पीछे हटने लगी।

देवान्तककी मुक्ति

यह समाचार सुनते ही देवदेव विनायक देव-सेना एवं काशिराजकी सुरक्षित सेना असुरोंपर प्रहार करनेके लिये भेजकर स्वयं सिंहारूढ हुए। उन्होंने धनुष-बाण, पाश और परशु आदि अपने अस्त्र धारण किये और समरभूमिमें देवान्तकके सम्मुख जा डटे। विनायकने भयानक गर्जना की। समस्त सैनिकोंसहित देवान्तकका हृदय हिल गया।

अपने प्रबलतम शत्रु विनायकको देखकर देवान्तकने कहा—'अरे बालक! तू रणाङ्गणमें कैसे आ गया? जा, अपनी माताका दुग्धपान कर। मेरी दृष्टिमात्रसे काल भी भयभीत हो जाता है, तू यहाँ क्यों मरने चला आया? तुम्हारा अत्यन्त कोमल शरीर तो मेरा एक ग्रासमात्र ही है।'

दैत्यके वचन सुन क्रोधारुणलोचन विनायकने उत्तर दिया—'अरे मूढ़! तू मद्यपों और संनिपातके रोगियोंकी तरह असम्बद्ध प्रलाप क्यों कर रहा है? एक अग्निकण ही विशाल नगरको ध्वस्त करनेके लिये पर्याप्त होता है। सम्पूर्ण जगत्‌को पीड़ित करनेवाले अधम असुर! तू मुझे नहीं जानता। तेरे जीवनकी अवधि समाप्त हो गयी है और तेरा वध करनेके लिये ही मैंने मनुष्यशरीर धारण किया है। अधिक कहनेसे क्या लाभ; तू अपना पौरुष दिखा।'

इतना कहकर अदितिनन्दनने अपने धनुषकी प्रत्यञ्चा खींची। उसके भीषण रवसे त्रिभुवन संत्रस्त हो गया। विनायक शर-वर्षण करने लगे। देवान्तकने भी भयानक युद्ध किया।

विनायकके विविध प्रकारके अस्त्रोंसे देवान्तककी सेना गाजरमूलीकी भाँति कटती जा रही थी। यह देखकर क्रुद्ध देवान्तकने मन्त्रका आश्रय लि[...] धूम्रास्त्र और अग्न्यस्त्रने वहाँ छिन्न करके क[...] वहीं उनपर प्रचण्ड प्रहार करते। देवान्तक पड़ा था और देवदेव विनायकके सै[...] असुरोंपर जय-पुष्पकी भाँति बरस रह [...] अनन्तर देवान्तकने मोहास्त्रका प्रयोग कि[...] देवताओं और काशिराजके सैनिकोंके साथ वि[...] रणाङ्गणमें निद्रित हो गये।

देवान्तकने भयानक गर्जन किया और उ[...] देव-सैनिकोंके चारों ओर समग्र वीर खड़े कर दिये।

तदनन्तर उसने चक्रके मध्य त्रिकोणाकार कु[...] किया। फिर उसने पद्मासनपर बैठकर [...] कर्म प्रारम्भ किया। वह मन्त्रोच्चारणके साथ हवन कर रहा था।

उसी समय जब काशिराजको निद्रासे सैन्यका पता चला तो वे व्याकुल होकर इकट्ठे कि[...] प्रकार विनायकके पास पहुँचे। उन्होंने विनायकको [...] करते हुए कहा—'त्रिकालज्ञ देव! आप असुरके मो[...] कैसे निद्रित हो रहे हैं? दैत्यराज देवान्तकका अभिचा[...] पूर्ण हो चला है। अब वह समस्त देव-सैन्यका [...] डालेगा! आप कृपापूर्वक सावधान हो जाइये।'

नरेशके वचन सुन विनायक सावधान हो ग[...] उन्हें असुरकी माया विदित हुई तो उन्होंने [...] अपने दो बाण बाहर निकाले और उन्हें ब्रह्मास्त्र [...] खगास्त्रसे अभिमन्त्रितकर धनुषपर रखा। फिर प्रत्यञ्चा कानतक खींचकर उन दोनों बाणोंको आकाशकी [...] छोड़ दिया।

विनायकके हाथोंसे उन बाणोंके छूटते ही उनसे मेघ-गर्जन जैसा शब्द हुआ। घण्टास्त्रने भयानक घण्टानाद होने लगा जिससे देवताओंके सैनिकोंकी निद्रा भङ्ग हो गयी। उन्होंने तुरंत उठकर अपने अपने शस्त्रास्त्र ले लिये और राक्षसोंसे युद्ध करने लगे। दूसरे बाणसे आकाशमें असंख्य भयानक पक्षी उत्पन्न हुए। उनकी पाँखोंसे सर्वत्र अन्धकार व्याप्त हो गया। उन्होंने [...]के गन्धर्वास्त्रको नष्ट कर दिया और उ[...] भयानक [...] खाने लगे। दैत्योंने

पत्नी-पुत्र-सहित श्रीगणेश

(पत्नियाँ—सिद्धि और बुद्धि, पुत्र—क्षेम एवं लाभ)

[पृष्ठ २११-२१२

तब तो कुपित होकर देवान्तकने भीषण संग्राम किया; विनायकके सम्मुख उसकी एक नहीं चल पाती थी। र मृत्यु-मुखमें प्रवेश करते जा रहे थे और न्तककी व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। उस वी असुरने अनेक प्रकारसे मायामय युद्ध किया, किंतु नन्दि विनायकने उन्हें भी विफल कर दिया।

'इस विलक्षण बालकसे पार पाना कठिन प्रतीत होता है।' सोचकर उस मायावीने अपनी मायासे विनायक-जननी दितिकी रचना की। वे विलाप कर रही थीं और असुर षिको अपमानित कर रहे थे। यह देखकर विनायक धिक अशान्त और विकल-विह्वल हुए ही थे कि काशवाणी हुई—'देव! यह दुष्टबुद्धि असुरोंकी मायामयी चा है। आप सावधान होकर दुष्ट दैत्यके संहारकी ओर न दें।'

आकाशवाणी सुनते ही विनायक निश्चिन्त होकर करनेके लिये प्रस्तुत हो गये। भीषण युद्ध हुआ, असुर विचलित नहीं होता था। अचानक उसे कई विनायक ने लगे। वह जिधर मुड़ता, उधर ही उसका र करनेके लिये क्रुद्ध विनायक अपने प्रचण्ड अस्त्रोंका र करते दिखायी देते। देवान्तकको दायें-बायें, आगे-पीछे न विनायक ही दीखते। किसे मारूँ, किससे युद्ध करूँ, की बुद्धि काम नहीं कर रही थी।

पुनः देवान्तकने प्रभुके अत्यन्त पराक्रमी स्वरूपका न किया। देवदेव गजमुख विनायकने उत्तम वस्त्र धारण कर थे। उनके माथेपर अद्भुत अलौकिक मुकुट चमक था और कानोंमें तेजपूर्ण कुण्डल सुशोभित थे। उनके से अग्नि-वर्षा हो रही थी और दन्त-पङ्क्तियाँ विद्युल्लता-सी मक रही थीं। उनके मङ्गलमय कण्ठमें मोतियोंकी ला शोभा दे रही थी। उन परम तेजस्वी प्रभुका मस्तक तरिक्षको स्पर्श कर रहा था।

'अत्यन्त आश्चर्य! आधा मनुष्य और आधा गजकाय, र कौन है?' इस प्रकार मनमें कहता हुआ देवान्तक पाकान्त हो गया। देवान्तककी यह मनःस्थिति देखकर नायक पूर्ववत् बालक हो गये। वे पद्मासन लगाकर ठ गये। फिर उन्होंने देवान्तकसे कहा—'असुरराज! म अपने शुभ वरको स्मरण करो।'

देवान्तकने कुपित होकर विनायकके दोनों दाँत पकड़ लिये। वह अपनी पूरी शक्तिसे दाँतोंको उखाड़ फेंकना चाहता था। वह कभी विनायकको पीछे ढकेलता और कभी विनायक उसे पीछे ढकेल देते। इस प्रकार देवान्तक बार-बार करुणासिन्धु विनायकके दाँतोंको तोड़ डालनेके लिये अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे झटका देता।

अचानक एक टूटे दाँतके साथ देवान्तक धरतीपर गिर पड़ा। तब विनायकने कुपित होकर तुरंत अपने दाँतसे उसके मस्तकपर भयानक प्रहार किया। व्याकुल देवान्तकने वज्र-कर्कश ध्वनिमें गर्जना की। उस गर्जनसे पृथ्वी, आकाश, पाताल और दसों दिशाएँ काँपने लगीं। किंतु तत्क्षण देवता, ऋषि और मनुष्य-जातिके उत्पीड़क त्रैलोक्यविजयी देवान्तकका सिर शतधा विदीर्ण हो गया। देवान्तकके पृथ्वीपर गिरते हुए शरीरसे एक ज्योति निकली और वह समस्त देवताओंके समक्ष परम प्रभु विनायकके स्वरूपमें विलीन हो गयी।

महान् दैत्य देवान्तककी मृत्यु देखते ही अवशिष्ट असुर-सेना यत्र-तत्र पलायन कर गयी।

देव-दुन्दुभियाँ बज उठीं। अन्तरिक्षसे सुगन्धित सुमनोंकी वृष्टि होने लगी। धरतीपर काशिराजकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। दिशाएँ निर्मल हो गयीं। सुखद समीर चलने लगा। अग्निका तेज सबको मुदित करनेवाला हो गया। प्रतिकूल प्रवाहित होनेवाली सरिताएँ अनुकूल पथमें बहने लगीं।

इन्द्रादि देवगण तथा मुनियोंने प्रसन्नमन परम प्रभु विनायककी अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजा की और फिर उनकी स्तुति करने लगे—"प्रभो! आपने हमें देवान्तकके बन्धनसे मुक्त कर दिया। आपने देव-कार्यके लिये उपेन्द्रकी तरह पराक्रम किया है, इस कारण जगत्‌में आपका 'उपेन्द्र' नाम प्रख्यात होगा। अब हमलोग निर्भय होकर अपने-अपने अधिकारका उपभोग कर सकेंगे और 'स्वाहा' तथा 'वषट्कार'के स्वर पूर्ववत् घर-घरमें सुनायी देंगे।*

---

* ... ... देवदेवं विनायकम्।
विमोचिता वयं बन्धाद्देवान्तककृताद् विभो॥
उपेन्द्र इव देवेन्द्र कार्यं यस्मात् कृतं त्वया।
उपेन्द्र इति नाम्ना त्वं ख्यातिं लोके गमिष्यसि॥
वयं स्वस्वाधिकारेषु निर्भयाश्च बभूविम।
स्वाहास्वधावषट्कारा भविष्यन्ति गृहे गृहे॥
(गणेशपु० २। ७०। १४-१६)

ये विनायकके कश्यपाश्रम-गमनका संवाद क्षणभरमें ही नगरीमें सर्वत्र फैल गया। बालक, युवा, वृद्ध—सभी दौड़े। रोते हुए उनके रथको घेरकर कहा—'देवदेव विनायक! हमें कल्पना भी नहीं थी कि आप इस प्रकार हमें त्यागकर चले जायँगे। आप हमारा मन चुराकर हमें जलहीन मीनकी तरह तड़पानेका कार्य क्यों कर रहे हैं! आपके बिना हम जीवित नहीं रह सकते।'

विनायकके साथ अनेक प्रकारकी क्रीडा करनेवाले बालक उनके चरणोंको पकड़कर रोने लगे।

विविध वस्त्रालंकारभूषित करुणामय विनायकके नेत्र भी सजल हो गये। रथसे उतरकर उन्होंने अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा—'मैं यहाँ युवराजके विवाहके लिये दस-पाँच दिनके लिये ही आया था। वहाँ मेरे माता-पिता उदास मनसे प्रतीक्षा करते हुए मेरी प्रतीक्षा करते होंगे। यहाँ रहकर मैं आपलोगोंका आत्मीय हो गया। आपलोगोंकी स्मृति मुझे बनी रहेगी। आपलोगोंके सम्मुख मुझसे जो भी दोष हुए हों, कृपापूर्वक मुझे अपना समझकर क्षमा करेंगे।'

समस्त बालक, युवा, वृद्ध स्त्री-पुरुषोंका समुदाय शान्त था। विनायकके एक-एक शब्द जैसे उनके तन-मन-में ही नहीं, रोम-रोममें समाये जा रहे थे। उनके नेत्रोंसे अनवरत अश्रु धारा बहती जा रही थी। आनन्दस्वरूप अन्तर्यामी विनायकने उन प्रेममूर्तियोंसे आगे कहा—'यदि मेरी स्मृतिसे आपलोगोंकी तुष्टि न हो तो आपलोग घर-घर मेरी मिट्टीकी प्रतिमा स्थापितकर उसकी पूजा करें।* कभी आपपर कोई आपत्ति आयेगी, सूचना प्राप्त होते ही मैं यहाँ तुरंत आ जाऊँगा। आप विश्वास करें।'

'जय विनायक!' आनन्दपूरित गगन-स्पर्शी स्वर गूँजा। प्रभु विनायक रथारूढ़ हुए। काशिराज भी उनके साथ रथपर बैठे। समस्त उपस्थित जनोंने रथकी अनेक परिक्रमा की।

'जय विनायक!' दिगन्तव्यापी स्वर पुनः गूँज उठा। रथ धीरे-धीरे चल रहा था और इस स्वरसे आकाश गूँजता ही रहा था। प्राणधन विनायकका रथ अदृश्य हुआ तो लुटे वणिक्‌की भाँति रोते-बिलखते, अपने आँसू पोंछते आबाल-वृद्ध नर-नारी अपने-अपने घर लौटे।

विनायक अपने माता-पिताके दर्शनकी तीव्र लालसासे आतुर हो रहे थे। रथ वायुवेगसे भागा जा रहा था। इस प्रकार वे काशिराजके साथ शीघ्र ही अपने आश्रमपर पहुँच गये। उन्होंने अपनी जननी अदितिके चरणोंमें प्रणाम किया तो उनके नेत्रोंसे अनवरत अश्रु-प्रवाह चल पड़ा। उन्होंने सिसकते हुए अपने बिछुड़े बच्चेको गले लगा लिया।

फिर विनायक दौड़कर अपने पिता महामुनि कश्यपके चरणोंपर गिर पड़े। पिताने स्नेह-गद्गद-कण्ठसे अपने आत्मजको शुभाशीर्वाद प्रदान किया। फिर विनायक समस्त आश्रमवासियोंके समीप पहुँचे। कश्यपाश्रममें सर्वत्र आनन्द छा गया।

जब काशिराजने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक भगवती अदिति और महामुनि कश्यपके चरणोंमें प्रणाम किया तो उन्होंने आशिष् प्रदान करते हुए उनसे कहा—'काशिराज! आप कुछ ही दिनोंके लिये विनायकको ले गये थे, किंतु उसे इतने दिनोंतक रखकर आपने हमें बच्चेके वियोगका अधिक कष्ट प्रदान किया। हमलोगोंका जलता हृदय आज शान्त हुआ है।'

नरेशने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'पूज्यवर! विनायकको मेरे यहाँ अवश्य देर हो गयी, पर मेरी विवशताके लिये आपलोग मुझे कृपापूर्वक क्षमा-प्रदान करें। मैं विनायकको युवराजके विवाहके लिये ही ले गया था, किंतु ये सम्पूर्ण नगरवासियोंको उत्तरोत्तर प्रेमामृत प्रदान करते थे और प्रबल असुर अनुदिन उपद्रव मचाते जा रहे थे। इन्होंने असंख्य अजेय असुर सैनिकोंका सर्वनाश कर सर्वत्र सुख शान्ति और सद्धर्मकी स्थापना की है। देवगण हर्षित हुए और इनकी अमित कीर्ति सर्वत्र व्याप्त हुई। फिर आप्तकाम विनायक शीघ्र ही युवराजका विवाह सम्पन्न कराकर यहाँ उपस्थित हो गये।'

अपने पुत्रके पराक्रम और उसके सद्गुणोंकी प्रशंसा सुनकर कश्यप और अदिति अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने काशिराजको विविध प्रकारके भोजन और फलोंसे संतुष्टकर विश्राम करनेकी आज्ञा दी।

प्रातःकाल नरेशने कश्यप और अदितिके चरणोंमें प्रणाम कर काशी लौटनेकी आज्ञा माँगी। मुनि-दम्पतिने उन्हें ... उन्होंने पुनः-पुनः विनायकसहित कश्यप

---

* न चित्तस्य समाधाने भवेद् वै चिन्तनेन मे।
मम मूर्तिं मृदा कृत्वा पूजयन्तु गृहे गृहे॥
(गणेशपु० २। ७१। १५)

(२)

श्रीमयूरेश्वर

सिन्धुका जन्म

…युगकी बात है। मैथिल देशमें गण्डकी-नामसे प्रसिद्ध …र था। वहाँ चक्रपाणि-नामक सद्धर्मपरायण नरेश राज्य … थे। वे नरेश रूप-गुणसे सम्पन्न तथा परम पराक्रमी थे। … परम बुद्धिमान् एवं धन-वैभवसे सम्पन्न तो थे ही, रथों, … सवों एवं पैदल वीर सैनिकोंकी अजेय वाहिनी उनके … । सम्पूर्ण पृथ्वी उनके वशमें थी और सभी राजा …की सेवाके लिये प्रस्तुत रहते थे। गौओं और गोविन्दके … भक्त नरेश प्रतिदिन नियमितरूपसे भक्तिपूर्वक …वण करते थे।

…नके अत्यन्त बुद्धिमान् एवं परमनीतिज्ञ दो अमात्य थे, … नाम थे—साम्ब और सुबोधन। वे नरेशकी सेवाके … अपना बहुमूल्य जीवन तृण-तुल्य समझते थे। राजा …णकी साध्वी पत्नीका नाम उग्रा था। उग्रा अनिन्द्य …, सरला, पतिपरायणा, सुशील एवं बुद्धिमती थी। … जीवन चर्या सतत पतिके मनोनुकूल थी।

…स प्रकार नरेश चक्रपाणि प्रत्येक दृष्टिसे सुखी थे, …क दुःखसे वे रात दिन दुःखी भी रहते थे। उनके …त्र नहीं था। एतदर्थ उन्होंने अनेक यज्ञ और व्रत … ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक पुष्कल दान दिया, किंतु इन …का कोई परिणाम नहीं निकला। संतति होती, पर …विलिन हो जाती। इस कारण सर्वसुख सम्पन्न दम्पतिका … अत्यन्त अशान्त और व्याकुल रहा करता था।

…पुत्रके बिना राज्य व्यर्थ है।' एक दिन अत्यन्त दुःखी …पतिने राज्य छोड़कर वनमें चले जानेका विचार किया। … उसी समय वहाँ त्रैलोक्यविश्रुत वेद-वेदाङ्ग शास्त्रोंके … महामुनि शौनक पधारे। राजाने उनके चरणोंमें भक्तिपूर्वक …कर उन्हें सुखद आसनपर बैठाया। फिर पाद्य अर्घ्यादि-…मुनिकी पूजा की और हाथ जोड़कर कहा—'आज …केत महान् पुण्यका उदय हुआ है, जिससे मुझे … पुरुषोंके लिये दुर्लभ, सर्वपापहर, सर्व-कामद और …भद आपके चरण कमलोंका दर्शन प्राप्त हो गया।'

…मैं तुम्हारी भक्तिसे संतुष्ट हूँ।' महामुनि शौनकने … कहा—'राजन्! तुम निश्चिन्त हो जाओ और …न्तम विचार त्याग दो। मैं सत्य कहता हूँ कि …ही तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी।'

परम तपस्वी शौनक ऋषिकी अमृतमयी वाणीसे प्रसन्न होकर चक्रपाणि नरेशने ऋषि-चरणोंमें बहुमूल्य रत्न, स्वर्ण एवं वस्त्रादि समर्पित किये, किंतु परम निःस्पृह महामुनिने उन्हें लौटाते हुए राजासे कहा—'समस्त प्राणियोंका यथार्थ हित चाहनेवाले वल्कलधारी विरक्त ऋषियोंको भोग सामग्रियोंकी अपेक्षा नहीं होती। मैं तो तीर्थयात्रा करते हुए तुम्हारे यहाँ आ गया था। सच्चे मुनियोंके मनमें तो साधु दर्शनकी लालसा तीव्र होती है। उनकी दृष्टिमें मिट्टीका ढेला और सोना समान होता है।'

महामुनिने पत्नीसहित राजा चक्रपाणिसे आगे कहा—'तुम सूर्यदेवकी उपासना करो। एक महीनेका व्रत है। व्रतारम्भ सूर्य-सप्तमीसे होता है। आभ्युदयिक श्राद्ध और मातृका-पूजनपूर्वक विघ्नेश्वर गणेशकी पूजा कर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराना चाहिये। फिर स्वर्ण-कलशपर स्वर्णका ही सूर्य-मण्डल स्थापित कर भक्तिपूर्ण हृदयसे षोडशोपचारसे पूजा करनी चाहिये। रक्तचन्दनमिश्रित तन्दुल, रक्त पुष्प, नाना प्रकारके रत्न, विविध फल और बारह अर्घ्य प्रदान कर नमस्कार और प्रदक्षिणा करना उचित है। फिर भगवान् सूर्यदेवकी भक्तिपूर्ण हृदयसे स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये।

'तदनन्तर भगवान् सूर्यके चरणोंमें एक लाख बार नमस्कार स्वयं करे और दूसरोंको भी नमस्कार करनेकी प्रेरणा दे। प्रतिदिन अत्यन्त आदरपूर्वक एक लाख ब्राह्मणोंको भोजन कराकर वेदज्ञ, कुटुम्बी ब्राह्मणको प्रतिदिन एक दुधारू गाय देनी चाहिये। पत्नीसहित ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए दीन, दरिद्र, नेत्रहीन और असहाय स्त्री पुरुषोंकी अन्नादिसे सेवा करनी चाहिये। इस प्रकार एक मासका व्रत सम्पन्न हो जानेपर तुम्हें प्रख्यात सूर्यभक्त एवं पवित्र पुत्र प्राप्त होगा।'

महामुनि शौनक विदा हुए और सहधर्मिणीसहित राजा चक्रपाणिने सूर्यदेवकी आराधना प्रारम्भ की। व्रतका सविधि पालन हो रहा था। चक्रपाणि-पत्नी उग्रा निरन्तर सूर्य-मन्त्रका जप कर रही थी। किंतु एक दिन उसने स्वप्नमें सूर्यदेवको अत्यन्त मनोहर अपने पतिके रूपमें देखा। उग्राका ब्रह्मचर्य स्खलित हो गया।

अपनी पत्नीके मुखसे उसके ब्रह्मचर्यभङ्गका समाचार सुनकर कठोर व्रती चक्रपाणि अत्यन्त चकित हुए। उन्होंने

। जिस अवतारी पुरुषके अङ्गुष्ठके नखाग्रपर ब्रह्माण्ड निवास करते होंगे, तुम उसीके द्वारा गे; अन्यत्र तुम्हें सर्वत्र अभय है । मेरे प्रसादसे न-विजयी होओगे ।›

प्रकार वर प्रदान कर सूर्यदेव अन्तर्धान हो गये ।

सुरने विधिवत् अमृत पात्र कण्ठमें धारण किया । भवनमें पहुँचकर जब उसने अपने माता-पिताके प्रणाम किया तो उन्होंने उसे वक्षसे लगा लिया और जब सुना कि 'मेरे पुत्रने भगवान् अंशुमालीका साक्षात्कार- से त्रैलोक्य-विजय और अमरणका वर प्राप्त कर लिया' तो उनके आनन्दकी सीमा न रही ।

रा पुत्र सिन्धु वीर, धीर, पराक्रमी, बुद्धिमान् और व अद्भुत वरसे पूर्णतया समर्थ है; इस कारण अब शेष जीवन वनमें तपश्चरण करते हुए व्यतीत करना म है ।'—इस प्रकार विचारकर नरेश चक्रपाणिने से परामर्श किया और फिर उग्रेक्षणका राज्याभिषेक कर सम्पूर्ण सेनाका आधिपत्य प्रदान कर दिया । इसके जा चक्रपाणि अपनी पत्नी उग्राके साथ राज्य त्यागकर में चले गये ।

सिन्धुका आक्रमण

अद्भुत शक्तिशाली युवक सिन्धु राजा हुआ । उसे तेका अमोघ वर प्राप्त तो था ही, अगणित असुर भी उसके अधीन थे । उसने राज्य संचालनका ल अमात्योंको सौंपा और स्वयं सशस्त्र सैनिकोंके साथ जयके लिये निकला ।

दर्पोन्मत्त उग्रेक्षण जिधर जाता, उधर ही हाहाकार मच । राजे-महाराजे उसके चरणोंमें शीश झुकाते और सहर्ष नता स्वीकार कर लेते थे । निमन्त्रितरूपसे समयपर कर देते का वचन देकर वे उसे बहुमूल्य उपहार प्रदान करते थे ।

धीरे-धीरे सिन्धुकी सेनामें असुरों और दैत्योंका बाहुल्य या । उग्र-पुत्र उग्रेक्षणका जीवन असुर-तुल्य था । न्याय धर्म उसकी बुद्धिको स्पर्शतक नहीं कर पाते थे । इस न शक्ति-मद-मत्त सिन्धु अनर्थोंको प्रश्रय करते, आबाल- नर-नारियोंकी हत्या करते और पृथ्वीपर रक्तकी सरिता हुए सर्वत्र अधिकार प्राप्तकर स्वर्गपर आ चढ़ा ।

वज्रायुध सुरेन्द्रने ऐरावतपर चढ़कर उग्रेक्षणका सामना किया, किंतु असुरकी वज्र-मुष्टिके प्रहारसे ऐरावतका गण्डस्थल विदीर्ण हो गया । वह रक्त-वमन करता हुआ पृथ्वीपर लोट गया । शचीपति मूर्च्छित हो गये । वे किसी प्रकार प्राण बचाकर भागे । यह दृश्य देखकर समस्त देवगण तीव्रतम गतिसे पलायित हुए ।

श्रीविष्णु बन्दी हुए

पराजित शचीपति वैकुण्ठ पहुँचे । उन्होंने श्रीविष्णुके चरणोंमें मस्तक झुकाकर निवेदन किया—'गोविन्द ! प्रबलतम राक्षस सिन्धुने अमरावतीपर अधिकार कर लिया और अनाश्रित सुर-समुदाय यत्र-तत्र छिप गया । हमारे लिये कहीं स्थान नहीं रहा । आप कृपापूर्वक असुरका मान-मर्दन कर देवताओंको उनका पद प्रदान कीजिये ।'

शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीहरि गरुड़पर विराजमान हुए । असंख्य देव-सैन्यके साथ गरुडध्वज स्वर्ग पहुँचे । उनका असुरोंसे भयानक संग्राम हुआ । देवताओंको शिथिल होते देख स्वयं श्रीविष्णु असुरपति उग्रेक्षणसे युद्ध करने लगे । माधवने अपने चक्रका प्रहार किया ही था कि दैत्यने चक्रधारपर वज्र-मुष्टिसे आघात किया । चक्र पृथ्वीपर दूर जा गिरा, तब विष्णुने असुरके मस्तकपर वज्र-तुल्य कौमोदकी गदासे प्रहार किया । महाबलशाली सिन्धुने कौमोदकी गदा पकड़ ली और उसे टुकड़े-टुकड़े करके दूर फेंक दिया ।

अत्यन्त चकित होकर नीतिज्ञ श्रीविष्णुने सिन्धुसे कहा—'दैत्यराज ! मैंने तुम-जैसा पराक्रमी असुर नहीं देखा; अतएव तुम मुझसे कोई वर माँगो ।'

आनन्द-मग्न दैत्यराजने कहा—'देवाधिदेव ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो सपरिवार मेरे गण्डकी-नगरमें निरन्तर निवास करें । मुझे अन्य किसी वरकी अपेक्षा नहीं है ।'

विष्णु बोले—'अपने वचनके अनुसार मैं तुम्हारे नगरमें निवास करूँगा ।'

तदनन्तर सिन्धुने कैलास और वैकुण्ठके पदपर अपने श्रेष्ठ असुरोंको आसीन किया और स्वयं शचीपतिके सिंहासनपर आरूढ़ हुआ । फिर अमरावतीमें भी दूसरे असुरको नियुक्तकर वह महान् असुर सिन्धु लक्ष्मीपतिके साथ अपनी राजधानी गण्डकी-नगर लौट आया । वहाँ विविध वाद्यों और जयघोषके साथ उसका स्वागत अभिनन्दन हुआ ।

सिन्धुने श्रीहरिको सर्वोत्तम भवनमें ले जाकर कहा—'आप यहाँ देवताओंसहित सुखपूर्वक स्वच्छन्द विहार करें।'

इसके अनन्तर इन्द्र, वरुण, कुबेर तथा अन्य प्रमुख देवताओंने प्रभुके समीप आकर निवेदन किया—'भक्तवत्सल! यह क्या हुआ! आपका अमित पराक्रम कहाँ गया! आप मर्त्यधामके कारागारमें कैसे आ गये! जगदीश्वर! हम लोगोंकी दुर्दशा कैसे दूर होगी?'

'कालका उल्लङ्घन किसीके लिये शक्य नहीं।' लक्ष्मीपतिने देवताओंको आश्वस्त करते हुए कहा—'कालके प्रभावसे ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते, बढ़ते और नष्ट हो जाते हैं। तुमलोग कालकी प्रतीक्षा करो। वही काल इसे निगल जायगा।'•

सर्वाधारप्रभुके अभयद चरण-कमलोंमें प्रणाम कर देवगण चले गये। उधर हर्षमग्न विप्रप्रसादन वनमें अपने माता-पिताके समीप पहुँचा। उसने तपस्वी चक्रपाणि और उग्राके चरणोंमें प्रणाम कर उन्हें वैकुण्ठ, स्वर्ग एवं कैलाससहित सम्पूर्ण धरित्रीके विजयका विस्तृत संवाद सुनाया। पुत्रके अद्भुत पराक्रमसे अत्यन्त आनन्दित होकर माता-पिताने उसे शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

उग्रेक्षणका शासन अत्यन्त उग्र था। अपनी इच्छाके तनिक भी विपरीत उसे कुछ भी सह्य नहीं था। वैभव सम्पन्न सर्वथा निरङ्कुश सिन्धु उद्दण्ड तो बाल्यकालसे ही था, अब अमितशक्ति-सम्पन्न होकर उन्मत्त-सा हो गया। धर्मात्मा पिता एवं साध्वी मातासे असमयमें उत्पन्न दुष्टबुद्धि पुत्रने धर्म-विरुद्ध घोषणा कर दी—'यज्ञ, दान, स्वधा, स्वाहा और वषट्कार त्याग दिये जायँ। देवता, ब्राह्मण और गुरुओंकी कहीं पूजा न की जाय। प्रत्येक उपासना गृहसे देव-प्रतिमाएँ हटाकर अगाध जलमें डुबा दी जायँ और उनके स्थानपर मेरी मूर्ति स्थापित कर उसे देवताओंकी तरह पूजी जाय।'

[illegible] मनसे ही नहीं, दुष्टतम सिन्धुका अनुमोदन करनेवाले ब्राह्मणोंके अतिरिक्त [illegible] मुनि पर्वत तथा अरण्योंमें चले गये। [illegible] प्रतिमाएँ जलमें फेंककर मन्दिरोंमें असुरराजकी [illegible] कर दी। त्रैलोक्यमें सर्वत्र देवताओंके [illegible] धार्मिक कृत्य स्थगित हो गये। असुरोंकी [illegible] आसुरी क्रियाकी ही प्रधानता हो गयी।

देवताओंद्वारा संकट-नाश [illegible]

चिन्तित देवगण सिन्धु-वधका उपाय [illegible] हुए। सहस्राक्षने कहा—'सर्वसमर्थ [illegible] लिये क्या किया जाय? आपलोग अन्य [illegible] करें।' ब्रह्मा बोले—'सर्वसमर्थ परमात्मा [illegible] अतएव हमलोग उन्हें ही प्रसन्न करें। वे [illegible] असुरका वध कर हम सबको पूर्व पद पर [illegible] उपस्थित देवगुरु बृहस्पतिने कहा—'वे [illegible] पूजासे ही शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं।‡ अत [illegible] संहारक परमेश्वरकी हमलोग शीघ्र स्तुति [illegible]

'हमलोग अपने पदकी प्राप्तिके लिये [illegible] स्तुति करें?' देवताओंके इस प्रश्नका उत्तर [illegible] प्रकार दिया—'जो प्रभु सृष्टि, पालन एवं [illegible] जो अनादि, बीजरूप, नित्य, ब्रह्ममय, ज्योति[illegible] एवं मन-वाणी आदिसे सर्वथा अगोचर, निर्गु[illegible] मय एवं एकरूप हैं और जिनके [illegible] मनुष्यकी कामना-पूर्ति हो जाती है, वे परम [illegible] पूजा करनेसे ही संतुष्ट होकर दुःख निवारण [illegible] अतएव आपलोग अपनी सिद्धिके लिये उन्हीं [illegible] करें।'

बृहस्पतिने सुर-समुदायसे आगे कहा—'[illegible] कृष्णपक्ष प्रारम्भ हो चुका है। इस पक्षकी [illegible]

• [illegible] हि [illegible]।
[illegible] [illegible] वा॥
[illegible]।
([illegible])

† यहाँ एक विचारणीय प्रश्न है कि 'साम्राज्यवादी [illegible] का वर्चस्व कम करनेकी छटपट क्यों करते हैं?' [illegible] होनेके कारण अनेक प्रयत्नोंसे ऐसे दुष्ट राजाको [illegible] देते हैं, जनतामें क्रान्तिके विचार फैलाते हैं और अत्याचार [illegible] चुप नहीं बैठते हैं; इसीलिये अत्याचारी सम्राट् [illegible] चाहता। इन्हीं नियमोंका अनुसरण करके सम्राट् सिन्धु [illegible] करने लगा।

—पं० श्रीपाद दामोदर [illegible]

‡ [illegible] पूजया सद्यः प्रसन्नो भवति [illegible]

। उन विघ्नेश्वरको अत्यधिक प्रिय और विघ्नोंका ...रनेवाली है। अतएव आपलोग उन सिंहवाहन ...नायककी पूजा-प्रार्थना करें। वे करुणासिन्धु ...कर असुरका वध करेंगे। इससे धराका भार उतरेगा ...वोंके पद भी पुनः प्राप्त हो जायँगे।'

...के वचन सुन इन्द्र, वरुण, कुबेर, मधुसूदन, ..., चन्द्रमा, यम, अग्नि, वायु आदि सभी देवता ...त्र, पुष्प, शमी, दूर्वा, पल्लव, वन्यफल तथा अन्य ...के फल और मृत्तिका लेकर गण्डकी नदीके तटपर ...। उन्होंने वृक्षोंको तोड़कर मण्डपका निर्माण ...दली-स्तम्भ एवं लताओंसे आच्छादित वह भव्य ...न्त शीतल था।

...ओंने स्नानादिसे निवृत्त होकर सिद्धि-बुद्धियुक्त ...दशायुधधारी दशभुज, गजमुख, किरीट-कुण्डल-...वस्त्रालंकारविभूषित विनायककी मूर्ति मण्डपमें ... स्थापित की और अत्यन्त भक्तिपूर्वक पञ्चामृत, शुद्ध ..., गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नाना प्रकारके नैवेद्य, ...प्रकारके फल और मङ्गल आरती आदिसे उनकी ...र पूजा की।

...न्तर देवगण विघ्नविनाशन प्रभुकी तुष्टिके लिये ...का जप करने लगे। सूर्यास्तके समय उन्होंने ...फिर इस प्रकार उन परम प्रभुकी स्तुति-प्रार्थना की—

...नाथ दयासिन्धो योगिहृत्पद्मसंस्थित।
...परिमितरहितस्वरूपाय नमो नमः॥
...कास विद्राधाम ज्ञानगम्य नमो नमः।
...मायमविद्याय नमो दैत्यविघातिने॥
...लोकेश गुणातीत गुणक्षोभ नमो नमः।
...भुवनपालन विभो विश्वव्यापिन्
...

प्रविष्ट, दैत्योंका विनाश करनेवाले देव! आपको नमस्कार है। हे त्रैलोक्यके स्वामी! हे गुणातीत! हे गुण-क्षोभक! आपको नमस्कार है। हे त्रिभुवनपालक! हे विश्वव्यापिन् विभो! आपको नमस्कार है। हे मायातीत! हे भक्तोंकी कामना-पूर्ति करनेवाले प्रभो! आपको नमस्कार है। चन्द्र, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं और जो विश्वका भरण करनेवाले हैं, उन्हें नमस्कार है। अमित शक्तिसम्पन्न आप चन्द्रमौलिको नमस्कार है। चन्द्रोपम गौर, शुद्ध स्वरूप एवं शुद्ध ज्ञान प्रदाता आपको नमस्कार है।'

देवगण भक्तिपूर्वक स्तवन कर ही रहे थे कि उनके समक्ष एक दिव्यतम तेज प्रकट हुआ। उस तेजके प्रभावसे सुरोंकी आँखें चौंधिया गयीं। वे अत्यन्त विस्मित हुए ही थे कि उनके सम्मुख सौम्य तेजयुक्त करुणामय सिंहवाहन विनायक प्रकट हो गये। वे अद्भुत वस्त्राभूषणोंसे विभूषित थे। देवताओंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहने लगे—'गुरुके कथनानुसार हम जिस मन वाणीसे अगोचर प्रभुकी पूजा कर प्रार्थना कर रहे थे, उन दयामय विनायकने प्रत्यक्ष दर्शन देकर हमें कृतार्थ कर दिया। हम निश्चय ही सौभाग्यशाली हैं।'

परम प्रभु विनायक बोले—'देवताओ! तुमलोगोंके सच्चे मनसे मैं संतुष्ट हुआ। तुम्हारा स्तवन 'संकष्टहर' नामसे प्रसिद्ध होगा। जो पवित्र होकर प्रतिदिन इसका पाठ करेंगे, वे निर्विघ्न सांसारिक सुखोंका उपभोग करते हुए अन्त समयमें मोक्ष प्राप्त कर लेंगे।'

देवदेव विनायकने देवताओंसे आगे कहा—'जिस प्रकार मैंने महामुनि कश्यपकी परम साध्वी पत्नी अदितिके गर्भसे जन्म लिया था, उसी प्रकार पुनः धराधामपर अवतरित होकर सिन्धुदैत्यका वध और तुम सबको अपना अपना पद प्रदान करूँगा। इस अवतारमें मेरा नाम 'मयूरेश्वर' ...।'

... परम प्रभु विनायक अन्तर्धान हो गये।

—विघ्नविनायक अङ्कमें

सिन्धुने देवताओंपर विजय ...
... सुनते ही भूतभावन भगवान् ...
... पर्वती ...
...

प्रियाके वचन सुन मोदफुल्लनयन शिवने प्रसन्नता [से कह]ा—'देवि ! तुमने जिनका दर्शन किया है, वे [तु]म्हारे यहाँ अवतरित होंगे । वे महादैत्यका वध कर [भू]मि भार उतारेंगे और इन्द्रादि लोकपालोंको उनका [अधिका]र प्रदान कर देंगे ।'*

[इध]र भगवान् शंकर तो प्रसन्न थे ही, जगज्जननी शिवा भी [अत्य]न्त आह्लादित हुईं । 'शिवप्रिया भगवती पार्वतीकी [कुक्षिमें] धर्मोत्थानार्थ अनन्त ब्रह्माण्डपति साक्षात् गणेश [अवत]रित होंगे ।'—यह समाचार तुरंत ऋषि-मुनियोंके [पवित्र] आश्रमोंमें पहुँच गया । देवता, ऋषि एवं ब्राह्मण-[सहित स]द्धर्मपरायण नर-नारी अत्यन्त प्रसन्न होकर देवदेव [गणेश]की पूजा-प्रार्थना करते हुए निरन्तर उनके नामका [जप क]रने लगे और यही क्रम भगवती पार्वतीका भी था । उनके [हृदय]में निरन्तर गणेशकी दिव्य मङ्गलमूर्ति नाचती रहती थी । [इस] प्रकार गणेशके ध्यान एवं उनके आगमनमें कुछ समय [व्यती]त हुआ ।

भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थी आयी । उसमें चन्द्रवार, स्वाती-नक्षत्र [और] सिंहलग्नका योग । पाँच शुभग्रह एकत्र थे । महिमामयी देवी [पार्व]तीने गणेशकी षोडशोपचारसे पूजा की । वे भक्तिपूर्वक प्रार्थना [कर] ही रही थीं कि उनके सम्मुख परम तेजस्वी, असंख्य मुख, [असं]ख्य नेत्र, असंख्य कर्ण, असंख्य नासिका और असंख्य हस्त-[पाद]युक्त महामहिम सच्चिदानन्दघन प्रकट हुए ।

'शुभे ! आपने जिसके लिये कठोर तप किया था और [जि]सकी निरन्तर आराधना कर रही हैं, मैं वही गणेश [आ]पके घर अवतरित हुआ हूँ ।'

परम प्रभुकी अमृतमयी वाणीसे आप्यायित [हो]कर महाभाग्यशालिनी गौरीने निवेदन किया—'प्रभो ! [आ]प अपने इस विराट् रूपको त्यागकर मुझे पुत्रका सुख [प्रद]ान करें ।'

पार्वतीके सम्मुख स्फटिकमणि-तुल्य षड्भुज त्रिनयन शिशु [क्री]ड़ा करने लगा । उसकी नासिका सुन्दर थी । उसके [मुख]ारविन्दकी शोभा अवर्णनीय थी और उसका वक्षःस्थल विशाल था । उसके चरण-कमलोंमें ध्वज, अङ्कुश, और ऊर्ध्वरेखायुक्त कमल आदि परम शुभ चिह्न थे । उसका मङ्गल-वपु कोटि-कोटि शशिके तुल्य था ।

पार्वतीनन्दनके प्रथम शब्दसे ही प्रकृति मनोरम हो गयी । शुष्क वृक्ष हरित पत्रयुक्त हो गये । दुन्दुभि बज उठी । आकाशसे सुमन वृष्टि होने लगी । ऋषियोंके आश्रमोंमें हर्षकी लहर दौड़ गयी ।

उधर गणोंसे संवाद पाकर प्रसन्न शिव पार्वतीके समीप पहुँचे । वे स्फटिक-सदृश, कुन्दधवल, कञ्जलोचन बालकका अनिर्वचनीय सौन्दर्य देखकर चकित हो गये । कुछ क्षण बाद उन्होंने गिरिजासे कहा—'यह बालक नहीं, यह तो अनादिसिद्ध, जरा-जन्मशून्य, लीलापूर्वक शरीर धारण करनेवाला, स्वप्रकाश, गुणातीत, शुद्धसत्त्वस्वरूप, समस्त प्राणियोंका स्वामी, अखिल भुवनपति, मुनियोंका ध्येय, सर्वाधार, सर्वभूतमय और सब सुख प्रदान करनेवाला परमात्मा है ।'

पार्वतीवल्लभने शिशुको अङ्कमें ले लिया और उसे आशीर्वाद प्रदान करते हुए पार्वतीकी गोदमें देकर पुनः उन्होंने कहा—'देवि ! तुमने कठोर तपसे जिस प्रभुका साक्षात्कार किया था, वे ही गुणातीत परमात्मा गणेश तुम्हारे पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं ।'*

कैलासपतिने बालकका सविधि जातकर्मादि संस्कार करवाया । उसके निमित्त अनेक प्रकारके दान दिये । माता पार्वतीने शिशुके मुखमें स्तनाग्र लगा दिया । अनादिसिद्ध बालक जगज्जननीके पवित्रतम अङ्कमें सुखपूर्वक लेटकर दुग्धपान करने लगा ।

ज्योतिषियोंने बालकके जन्म-कालके अनुसार अद्भुत फल बतलाया—'यह अत्यन्त पराक्रमी बालक अपने भक्तों एवं सम्पूर्ण जगत्को सुख प्रदान करनेवाला होगा ।'

भगवान् शंकर, माता पार्वती एवं शिवगणोंमें ही प्रसन्नता नहीं थी, ऋषियों, ऋषि-पत्नियों एवं उनके बालकोंके मनमें आनन्दकी लहर दौड़ रही थी । दण्डकारण्यमें सुगन्धित पवनके साथ जैसे मदमस्त होकर रहा था—उन्मुक्त नर्तन कर रहा था ।

* कलावतारो गुणेशस्ते गृहे ह्यवतरिष्यति ॥
हनिष्यति महादैत्यं भूभारं च हरिष्यति ।
इन्द्रादिलोकपालानां स्वपदानि प्रदास्यति ॥
(गणेशपु० २ । ८० । ११-१२)

* परमात्मा गुणातीतः पुत्रस्ते समभवत्
तपसाराधितो देवि साक्षात्कारो विभुस्तथा ।
(गणेशपु० २ । ८२ ।

पार्वतीके मङ्गलमय दिव्य पुत्र जन्मके अवसरपर दस दिनोंतक शिवके आश्रममें ही नहीं, समस्त ऋषियोंके यहाँ मङ्गल महोत्सव मनाया गया। सर्वत्र विनायककी श्रद्धा भक्तिपूर्वक पूजा स्तुति हुई और निरन्तर नाम जप होता रहा। शिव और शिवा प्रतिदिन सहस्रों ब्राह्मणोंको भोजन कराते और उन्हें विविध प्रकारके दान देते रहे।

ग्यारहवें दिन समस्त गणक और ऋषि समुदाय एकत्र हुआ। बालकका नामकरण हुआ—"यह बालक सर्वेश्वर एवं समस्त गुणोंका आगार है। यह समस्त विघ्नोंका हरण करनेवाला, सर्वारम्भमें प्रथम-पूज्य होगा, इस कारण इसका नाम 'गुणेश' होना चाहिये।"

शम्भुने सर्वविधि सत्कार कर सबको संतुष्ट किया। ऋषिवृन्द बालकको शुभाशिष् प्रदान करते हुए प्रसन्न मनसे अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हुए।

चिन्तित सिन्धु

गुप्तचरोंने सिन्धुके समीप पहुँचकर निवेदन किया—'दैत्यराज! दण्डकारण्यके त्रिसंध्या-क्षेत्रमें शिव अपने कोटि-कोटि गणोंके साथ निवास करते हैं। वहाँ शिवप्रिया पार्वतीने कठोर तपके द्वारा एक अलौकिक शक्तिशाली पुत्र प्रसव किया है। सहस्रों ऋषियोंका विश्वास है कि वह बालक असुरोंका संहार करनेमें समर्थ होगा। शिवगणों और ऋषियोंका आत्मबल अत्यधिक बढ़ गया है। वे बालककी रक्षामें प्राणपणसे तत्पर हैं।'

उसी समय आकाशवाणी हुई—'असुरराज! तेरा वध करनेवालेने जन्म ले लिया है। तू सावधान हो जा।'

'यह क्रूर वचन कौन बोल रहा है!' कहते हुए सिन्धु मूर्च्छित हो गया। कुछ देर बाद सचेत होकर उसने कहा—'सामान्य मशक विशाल गजका वध कैसे कर सकता है! मैंने करोड़ों देवताओंको क्षणार्द्धमें ही पराजित कर विष्णुको बंदी बना लिया है; यह क्षुद्र बालक तो सर्वथा नगण्य है।'

किंतु सिन्धु मन ही मन भयभीत हो गया था। उसके वीर असुरोंने कहा—'असुरराज! आप अमरत्व प्राप्त सर्वथा अजेय हैं। आपको मृत्यु कैसे हो सकती है! आप हमें आज्ञा प्रदान करें। हम उस आश्रममें जाकर अवसर देखते ही बालकको यमसदन भेज देंगे।'

सिन्धुकी चिन्ता कम हुई। उसने ... उन्हें पुरस्कृत किया। फिर उसने शिव-पुत्रको ... देनेके लिये वीराग्रणी असुर गुप्तचरोंको ... गुप्तचर मुनियोंके वेषमें त्रिसंध्या-क्षेत्रमें ... कर अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे।

हिमगिरिका आगमन और उनको सम्...

बालक गुणेश उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। ... संवाद प्राप्तकर प्रसन्नमन हिमगिरि शिवके आश्रम... उन्होंने बालकको गोदमें लेकर उसे बहुमूल्य ... आदि उपहार दिये और बालकका नाम रत्न—... उसके लक्षणोंको देखकर उन्होंने अपनी पुत्री... समझाया—'बेटी! यह असाधारण बालक ... यह निश्चय ही असुरोंका विनाश करके देव... साधन करेगा; धरणीका बोझ हल्का करेगा किंतु ... कुटिलतम असुरोंकी क्रूर दृष्टि है। तुम ... पालन करते हुए इसकी सुरक्षाका ध्यान रखना।'

हिमगिरि शिव और पार्वतीको आशीर्वाद देते हुए ... अनुमतिसे प्रसन्नतापूर्वक चले गये।

गुणेशका मुक्ति-वितरण

एक दिनकी बात है। समस्त ऋषियोंके अन्तःपुर... भाजन हेरम्ब बाहर क्रीड़ा कर रहे थे कि सहसा ... एक भयानक असुरने उन्हें अपनी चोंचमें दबा लिया और ... आकाशमें अत्यन्त ऊँचे उड़ चला। जब पार्वतीने पुत्रको न ... देखा तो वे व्याकुल होकर उसे इधर-उधर ढूँढने लगीं।

प्राणप्रिय हेरम्बको वहाँ न देखकर पार्वती ... दुःखी थीं और जब उन्होंने आकाशमें विहग ... मुखमें अपने बालकको देखा तो वे फिर पुनः पुकार कर ... विलाप करने लगीं।

सर्वात्मा हेरम्बने माताकी व्याकुलता देखकर ... प्रहारमात्रसे ही वृकासुरका वध कर दिया। ... करता हुआ विशाल असुर पृथ्वीपर गिर पड़ा। ... भाग प्रस्यप्र क्षत विक्षत हो गये। हेरम्ब सर्वथा ... थे। उन्हें खरोंचतक नहीं लगी थी।

माता पार्वतीने दौड़कर बच्चेको उठा लिया ... देवताओंसे मनाती हुई उसे स्तनपान कराने ...

...काल था। माता पार्वती हेरम्बको पालनेमें लिटाकर ...रही थीं। उसी समय क्षेम और कुशल- ... महाभयानक असुर पार्वतीके आश्रममें प्रवेश कर ... उन्होंने बालकको मारनेका प्रयत्न किया तो पार्वती ... उठीं; किंतु तबतक बालकके पदाघातसे ही उन ... हृदय विदीर्ण हो गया। वे रक्त-वमन करते ...गे, किंतु कुछ ही दूर जाकर गिर पड़े। फिर ... हीं सके। गणेशने उन्हें मोक्ष प्रदान किया।

• • •

...दिन माता पार्वती सखियोंके साथ मन्दिरमें ...रने गयीं। हेरम्ब मन्दिरके बाहर क्रीड़ा कर रहे ... उसी समय क्रूर-नामक महाबलवान् असुर ऋषि- ...वेषमें आकर उनके साथ खेलने लगा। वह हेरम्बको ...डालनेके लिये कभी उनके केश पकड़कर धरतीपर ... चाहता तो कभी गला दबानेका प्रयत्न करता। ... हेरम्ब उसका कण्ठ पकड़कर दबाने लगे।

...'अरे! मुनिपुत्र मरा तो पाप लगेगा।' माता पार्वतीने ...पड़ी तो वे दौड़ीं। तबतक असुर मुक्त हो चुका ... उसके नेत्र बाहर निकल आये थे। असुरकी ...मृतदेह देखकर काँपती हुई पार्वतीने बालकको ... उठा लिया।

• • •

...गौतमादि ऋषिगण, शिवगण, ऋषि-पत्नियाँ और ...जीकी सहचरियोंके साथ मयूरेशके उपनयन-संस्कारका ...योजन किया गया था। गणेश-पूजन और पुण्याहवाचन ...। मयूरेशको दिव्य वस्त्र और अलंकार पहनाये गये ... देवताओंने विविध प्रकारके रत्न प्रदान कर मयूरेशको ... की। देवताओं और ऋषियोंके साथ ब्राह्मणोंने उन्हें ...शीर्वाद दिया।

...इसी बीच सिन्धु-दैत्यका दुष्टिकाम प्रचण्ड असुर ...म आश्रमके सम्मुख वृक्षपर बैठकर उसे हिलाने लगा। ... संस्कारमें किसीको कुछ पता नहीं रहा था; पर ... उत्सव समाप्त हुआ तो पार्वतीसहित सबने रक्त- ...ने पड़े हुए महान् व्योमासुरका शव देखा। ... ...की गिरिहराको अङ्कमें लेकर उनके मस्तकपर प्रेमपूर्वक ... देखती हुई स्तन-पान कराने लगीं।

...महर्षिके वचनोंका स्मरण कर देवदेव महादेवने

ग० अं० ३८—

कहा—"जिसकी रक्षा ईश्वर करता है, उसे मारनेका प्रयत्न करनेवाला दीपकपर दौड़े पतंगके तुल्य स्वतः जल मरता है।"

तदनन्तर देवता, मुनि और मुनि पत्नियाँ अपने आश्रमको गयीं। कुछ लोगोंने बालकके प्रति शुभकामना व्यक्त करते हुए शिव प्रियासे कहा—'माता! तू धन्य है! इस बालककी असुरोंसे रक्षा करती रहना। निश्चय ही दुष्टोंका नाश होता है; साधुजनोंकी हानि नहीं होती।'

• • •

व्योमासुरके एक अत्यन्त दुष्टा, विकटानना भगिनी थी। उसके केश, नासिका, ओष्ठ, दाँत, मुख और स्तनादि सभी भयानक थे। वह क्षुधार्त होनेपर महाबलवानोंको भी भक्षण कर जाती थी। उस भयावनी व्योमासुर-भगिनीका नाम था—'शतमाहिषा'।

शतमाहिषा अपने भाईकी मृत्युसे अत्यन्त दुःखी हुई। वह क्रोधसे काँपने लगी। उस मायाविनीने षोडशवर्षीया अनुपम लावण्यवती स्त्रीका वेष बनाया। वह सीधे पार्वतीके पास पहुँचकर उनके चरणोंपर गिर पड़ी और उनकी प्रशंसा करने लगी।

परम सरल जननी पार्वतीने उसे भोजनादिसे संतुष्ट किया और रात्रिमें अपने ही समीप पर्यङ्कपर सुलाया। सर्वज्ञ हेरम्ब मायाविनी राक्षसीकी प्रत्येक गति-विधि जानते थे। शतमाहिषाने उन्हें स्पर्श किया ही था कि केवल पाँच मासके हेरम्बने अपने नन्हे हाथोंसे उसकी नासिका और कान पकड़ लिये।

राक्षसीके लिये बालक पर्वत-तुल्य और उनके सुकोमल हाथ वज्र-सदृश प्रतीत हुए। वह छटपटाती हुई चिल्लाने लगी। शतमाहिषा बालकको ... छुड़ानेका प्रयत्न करती, बालकके वज्रहस्त उसे और अधिक जकड़ते जा रहे थे।

पार्वती और उनकी सखियाँ दौड़ीं। राक्षसीकी नासिका और कान बालकसे छुड़ानेका उनका प्रयत्न भी विफल रहा। अन्ततः चीत्कार करती हुई राक्षसी उछलकर धरतीपर गिर पड़ी। सहचरियोंने मृत देखी और ... देख तो चकरा गयीं। निश्चय ही यह सर्वशक्ति... ... गुणेशका ... ... थी।

[illegible]

इस प्रकार असुरोंके शिशुके ... हुए ... दुन्दुभि, ...

…रही थीं मुनिपत्नीसे, पर उनके प्राण हेरम्बमें समाये …के नेत्रोंके सम्मुख जगदुद्धारक अलौकिक पुत्रकी छवि …। मैंने कितने कठोर तनसे इस नवनीतोपम बालकको …या है। देवताओं, ऋषियों और गणकोंने ही नहीं, …सत्यमूर्ति त्रिनयनने कहा है कि ये विश्वत्राता …धर हैं।'

…ताके नेत्र बरस पड़े। वे वहीं और नहीं बैठ सकीं। …री अपने सुकोमल मयूरेशके बन्धन खोल उसे …हुई अङ्कमें लेकर स्तन-पान करानेके लिये अत्यधिक …हो उठीं और वे निजाश्रमके लिये शीघ्रतासे चलीं।

…में मुनि-पुत्र खेल रहे थे। जननीने देखा, उनके …यूरेश भी क्रीड़ा कर रहा है। 'मैंने हेरम्बको हाथ-पैर …घरमें बंद कर दिया है'—स्नेहातिरेकमें स्मरण नहीं …पुकार बैठीं—'आओ वेश! स्तन-पान कर लो।'

…माता! यहाँ हेरम्ब कहाँ! तूने तो अपने पुत्रको …घरमें बंद कर दिया है।'

…हल्याने उत्तर दिया तो माँने ध्यानपूर्वक देखा, सचमुच …नहीं था। वे द्रुतगतिसे अपने आश्रममें प्रविष्ट हुईं। …खोला तो देखा, अबोध शिशु अनाथकी तरह रोते-रोते …था था। अपने शिशुकी यह स्थिति स्नेहमूर्ति पार्वती …ह पातीं! वे सिसकने लगीं और उनके नेत्रोंसे अजस्र …प्रवाह चलने लगा।

…माताने तुरंत शिशुका बन्धन खोलकर उसे अङ्कमें …लिया। रज्जु-बन्धनसे शिशुके हाथ-पैरमें लाल-लाल चिह्न …गये थे। माता फूट पड़ीं। वे मन-ही-मन अपनी …विवशतापर पश्चात्ताप करती हुई प्रेमपूर्वक बच्चेके हाथ-पैर …सहलाने लगीं। उन्होंने उस निखिल सृष्टिपति शिशुके …मुँहसे अपने स्तनका स्पर्श कराया। हेरम्ब सर्वेश्वरीका …अमृतमय दुग्ध पान करने लगे।

…उधर जब महर्षि गौतमने अपने आश्रमपर पहुँचकर …ध्यान आरम्भ की तो उन्हें सभी देवता गणेशके रूपमें …दिखायी देने लगे। महामुनिने अत्यन्त विस्मित होकर …पश्चात्ताप करते हुए अपनी सहधर्मिणीसे कहा—'मैं कैसा …मन्दबुद्धि हूँ कि मैंने रिक्त अन्न-पात्र उमाको दिखाकर उपालम्भ …दिया। उन्होंने परात्पर देवको डाँटा और उन्हें कठोर …रस्सीसे बाँध दिया। जो परम प्रभु थोड़ेसे पत्र-पुष्पसे तृप्त हो …जाते हैं, उन्होंने स्वयं अपनी शिशुमण्डलीसहित मेरा अन्न-पात्र लेकर भोजन किया; मेरा कितना बड़ा भाग्य है! पर मैं उनकी मायासे मोहित हो गया; पहले नहीं समझा। मुझ मतिभ्रष्टपर वे दयानिधान दया करें।'

पश्चात्ताप करती हुई अहल्या पुनः भोजन बनाने लगीं और महर्षि गौतम ध्यानमग्न हो गये।

* * *

वृकासुर-वध

मयूरेशने छठे वर्षमें पदार्पण किया। उनकी बाल-सुलभ मधुर-मनोहर क्रीड़ासे शिव, पार्वती, समस्त शिवगण, ऋषि महर्षि, उनकी पत्नियाँ एवं शिशुगण—सभी आनन्दित होते। सभी हेरम्बको अतिशय प्यार करते।

एक दिनकी बात है। मयूरेश बालकोंके साथ क्रीड़ा करने चले गये थे। इसी बीच विश्वकर्मा शिव-सदन पहुँचे। उन्होंने माता पार्वतीके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी स्तुति की। जगन्माताने उन्हें परम भक्तिका वर प्रदान किया।

फिर माता पार्वतीने उन्हें अजेय सिन्धुके उपद्रव, देवताओंकी पराजय, विष्णुका बंदी जीवन व्यतीत करना आदि समाचार बताकर कहा कि 'हमलोग भी उसी उद्दण्ड असुरके भयसे यहाँ अरण्यमें निवास कर रहे हैं। बहुत दिनोंके बाद आपको देखकर प्रसन्नता हुई।'

उसी समय सर्वाङ्गसुन्दर प्रसन्न-वदन तेजस्वी मयूरेश आ गये। उनके सुदृढ़ अलौकिक स्वरूपके दर्शन करके विश्वकर्मा मन-ही-मन मुदित हुए। उन्होंने विनायकके चरणोंमें प्रणामकर उनकी पूजा और स्तुति की। तदनन्तर उन्होंने कहा—'प्रभो! आपके प्राकट्यका संवाद पाकर मैं आपके मङ्गलकारी दर्शन करने यहाँ आया हूँ।'

गणेश बोले—'इतनी दूरसे तुम मेरा दर्शन करने तो आये हो, पर मुझे संतुष्ट करनेके लिये कौन-सा बहुमूल्य उपहार ले आये हो?'

'सम्पूर्ण प्राणियोंकी इच्छापूर्ति करनेवाले, सच्चिदानन्दघन, चराचरपतिको भला मैं क्या उपहार दे सकता हूँ?' अत्यन्त दीनवाणीमें विश्वकर्माने उत्तर दिया।

'फिर भी तुम अपने सामर्थ्यानुसार मेरे लिये उपहार ले आये हो?' गणेशने फिर पूछा।

'प्रभो! आपके लिये मैं समस्त शत्रुओंका संहार करनेवाला तीक्ष्ण अङ्कुश, परशु, पाश और पद्म ले आया हूँ।' विश्वकर्माने तत्क्षण मयूरेशके सम्मुख रख दिये।

खड्ग, छाप और चंचल आदि अनेक बलशाली तथा मायावी असुर मयूरेशको मारने त्रिसंध्या-क्षेत्र पहुँचे। उन्होंने एक-से-एक माया रची और बालकको मार डालनेका भरपूर प्रयत्न किया; किंतु मायापति मयूरेशके सम्मुख उनकी एक न चली। उनका भौतिक कलेवर तो नष्ट हो गया, पर वे परमोदार मुक्तिदाता प्रभु मयूरेशके कर-कमलोंका स्पर्श पाकर जन्म-जरा मृत्युसे सदाके लिये मुक्त हो गये।

मयूरेशने पाँचवें शरच्चन्द्रका दर्शन किया।

मयूरेशकी बाल-लीला

मयूरेश ऋषि-पुत्रोंके साथ विविध प्रकारकी बाल-क्रीड़ाएँ करते। उन भाग्यवान् बालकोंके साथ वे नाचते, गाते और अनेक प्रकारके खेल खेलते थे।

एक दिनकी बात है, गुणेश शिशुओंके साथ क्रीड़ा करते हुए दूर निकल गये। निश्चिन्त शिशु क्रीड़ामें संलग्न थे। मध्याह्न हो गया। उन्हें भूख लगी। ईशानन्दन सोचने लगे—'आहार कैसे प्राप्त हो?'

सिद्धिदाता समीपस्थ महर्षि गौतमकी कुटीपर पहुँचे। महर्षि ध्यानस्थ थे और ऋषिपत्नी भोजन बना रही थीं। वे कुछ ही देरके लिये बाहर निकलीं कि चपल चन्द्रभाल पाकशालामें प्रविष्ट हो गये और प्रस्तुत अन्न-पात्र लेकर शीघ्रतासे बाहर निकल आये। उक्त आहार उन्होंने शिशुओंमें वितरण कर कहा—'खेलमें हमलोगोंको देर हो गयी। अब यह प्रसाद पाकर खेला जायगा।' शेषांश हेरम्बने स्वयं भोग लगाया।

'बलिवैश्वदेव हुआ नहीं और भोजन-पात्रका पता नहीं।' सहधर्मिणीकी चिन्ता जानकर महर्षि उठे। पाकशालामें गये, सचमुच वहाँ भोजन नहीं था। चकित महर्षिने आश्रमके बाहर जाकर देखा तो उनकी पत्नीकी बनायी रसोई बाल-मण्डली आनन्दपूर्वक भोग लगा रही है।

महर्षि गौतम कुपित हुए। उन्होंने गुणेशके समीप जाकर कहा—'शिव और शिवका पुत्र होकर तू ऐसी अनीति कैसे कर रहा है! हम तुम्हें परब्रह्मस्वरूप परात्पर देव समझते थे; तुम्हें शिशुओंके साथ इस प्रकारके कार्य करनेमें लज्जा नहीं आ रही है!'

गिरिजानन्दनकी भीत मुखाकृति देखकर भी महर्षि गौतम-ने उनका हाथ पकड़ लिया। वे रिक्त अन्न-पात्रके साथ मयूरेशका हाथ पकड़े माता पार्वतीके पास पहुँ... हेरम्बका हाथ माता पार्वतीके हस्त-कमलमें देते हुए अन्न-पात्र दिखाकर कहा—'माता! तुम्हारा यह... प्रकार सदा उपद्रव करता है। आज मैंने इ... दिया। मैं क्या करूँ? तुम्हीं बताओ! मैं... दण्डकारण्य त्यागकर अन्यत्र चला जाऊँ?'

अत्यन्त क्षुब्ध महर्षि गौतमके ... कुपित हो गयीं। उनके नेत्रोंसे चिनगारियाँ ... उन्होंने विनम्रतापूर्वक महर्षिसे कहा—'मुनिवर! ... इसने मुझे त्रस्त कर रखा है। इसने बहुतेरा ... उधर क्रूर असुरोंने उपद्रव प्रारम्भ कर दिये। ... निरन्तर चिन्तासे मेरा चित्त कभी स्थिर नहीं ... इसने तपस्वियोंका भोजन चुराना भी प्रारम्भ कर दिया ... बड़ा दुष्ट है। किंतु मुनिनाथ! यह मेरा पुत्र है, ... आप कृपापूर्वक इसे कोई शाप मत दे दीजियेगा।'

इतना कहकर सर्वाभयदायिनी माता ... हेरम्बका हाथ-पैर बाँधने लगीं।

'बालकको बाँधो मत! इसे मत बाँधो!' ... ही रहे, पर जगदीश्वरीने निखिल ब्रह्माण्डनायक... बाँध दिया और फिर उन्हें एक घरमें ले जाकर ... साँकल लगा दी।

महर्षि चुपचाप अपने आश्रमपर चले गये।

स्नेहमयी जननी उमा ... उन्हें भान हुआ कि गुणेश मेरे ... हुआ है। उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा तो ... किंतु आँगनमें दृष्टि पड़ी तो देखा मयूरेश ...

'मैंने तो उसका हाथ-पैर बाँधकर ... था?' चकित भ्रमित माताने किवाड़ खोलकर ... शिशुके हाथ-पैर बँधे थे। उसके नेत्रोंसे ... रहा था और वह अपनी दयामयी जननीको ... दृष्टिसे निहार रहा था।

वात्सल्यमयी जननी यह दृश्य देख ... गयीं। अपने प्राणप्रिय शिशुको ... हुईं। उनके नेत्र भर आये, पर ... कर दिया। बाल बालकको ... माता समीपस्थ ऋषि- ...

नि दिये। माता अदितिने विनयपूर्वक कहा—'बेटा! वियोगमें अत्यन्त कृश हो गयी हूँ। तू मुझे इतना दे रहा है!'

'! सर्वान्तर्यामीसे कभी वियोग नहीं होता।' गुणेशने स्वरमें उत्तर दिया। 'तू विश्वास कर, मैं तो सदा पास ही रहता हूँ; फिर दुःखका कोई कारण नहीं।'

समस्त देवता, ऋषि, यक्ष, किंनर और चारण आदि मयूरेशकी वन्दना की और शिव-पार्वतीकी आज्ञा मानकर ने प्रस्थित हुए। अदिति और कश्यप भी विनायकको कर प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रमको चले गये।

मयूरेश! मयूरेश!! मयूरेश!!!

अत्यन्त प्रतिभाशाली गुणेशने वेदाध्ययन प्रारम्भ किया। बुद्धि गुणेश जब वेदका सस्वर गायन प्रारम्भ करते, देवता, ऋषि, हरिन, सिंह, व्याघ्र, भुजङ्ग और गगनचर आदि गानमें तल्लीन हो जाते। उनके नेत्रोंसे अजस्र वारि-धारा प्रवाहित होने लगती। गुणेशका वेद-पाठ श्रवण करनेके लिये ऋषि-मुनि तत्पर रहते और प्रमथादि गणोंसहित आदि देवगण आनन्दमग्न हो जाते।

इसी प्रकार एक दिन गुणेशका चराचरको मुग्ध कर वाला वेद-गान हो रहा था। प्राणिमात्र आनन्दसिन्धुमें निमज्जित था। उस अमृतमय वातावरणमें अत्यन्त क्षुब्धकर खर-रूपमें भूतन-नामक दैत्य कूद पड़ा। उसके कर्कश से गिरिशृङ्ग विदीर्ण होने लगीं।

उस भयानक असुरके तीन मुख, चार सींग, पाँच नेत्र, कान, आठ पैर और दो पूँछें थीं। उक्त दैत्य गुणेशके सामने नृत्य करने लगा। वह आकाशमें उड़ा और दूसरे ही क्षण पृथ्वीमें अदृश्य हो गया। इसी प्रकार वह क्षण प्रतिक्षण दृश्य-अदृश्य होने लगा। उसकी अत्यन्त भयानक आकृति और ढंग देखकर सभी डरने लगे।

असुरारि गुणेश उठे और असुरके पीछे दौड़े। छल-बलसे भरा दैत्य वनमें भागा। दैत्यारि भी उसके पीछे-पीछे दौड़ते गये। इस प्रकार वह गुणेशको गहन वनमें ले गया। जब वह मेघ-गर्जन करता, तब सिंह, व्याघ्र, गज, शूकर और वानर आदि पशु भू-लुण्ठित हो जाते थे।

गुणेशने उसे पकड़ना चाहा तो वह विकट असुर मुनि-पुत्रोंको पैरता हुआ आकाशमें उड़ गया। गुणेशके नेत्र अरुण हुए। कुपित होकर उन्होंने उसे लक्ष्य करते हुए अपना पाश फेंका। पृथ्वी काँप उठी और अन्तरिक्षमें मेघ बिखर गये। आकाशके नक्षत्र टूट-टूटकर गिरने लगे।

पाशके सम्मुख असुरकी माया नहीं चली। क्षणभरमें ही पाशबद्ध महादैत्य गुणेशके समक्ष धरतीपर गिर पड़ा। असुरके विशाल हाथ-पैर टूट गये और उसका श्वास अवरुद्ध हो गया। वहीं मयूरेशके पीछे दौड़कर एकत्र हुए मुनि-बालकोंके सम्मुख नेत्रोंके द्वारा उसका प्राण निकल गया। मुनि-पुत्रोंने उसके शवकी बड़ी दुर्दशा की।

वहाँ आम्र-कानन था। आम्रवृक्ष फलोंसे लदे थे। अत्यधिक फलोंके बोझसे उन वृक्षोंकी डालियाँ झुक गयी थीं। अधिक दौड़ने और देर हो जानेसे मुनि-पुत्रोंको क्षुधा जाग्रत् हो गयी थी। वे मुनि पुत्र गुणेशकी अनुमतिसे फलोंसे लदे आम्रवृक्षोंसे आम्र फल तोड़-तोड़कर खाने लगे। कुछ बालक फल खाते और कुछ विनोद करते हुए उसे दूर फेंक देते। एक मुनि-पुत्रका फेंका हुआ फल उस स्त्रीके मस्तकपर जोरसे लगा, जो बहुत दिनोंसे एक अण्डेकी रक्षा कर रही थी।

कुपित स्त्री दौड़ी। उसके क्रोधारुण नेत्र देखकर बालक सहम गये। उसने कठोर स्वरमें पूछा—'जिस बालकने इस श्वापदका वध कर मुझे आम्र-फलसे मारा है, वह कहाँ है?'

कुपित नारीको देखते ही गुणेश वृक्ष-कोटरमें छिप गये। वहाँ उन्होंने शशि-मण्डलतुल्य एक श्वेत अण्डा देखा। गुणेशने उसे अपने सशक्त हाथोंमें उठाया ही था कि वह अण्डा फूट गया।

उस अण्डेसे एक विशाल पक्षी निकला, जिसका कण्ठ नील था। उसके नेत्र और पंख विशाल थे। उसके मुखसे अनल-ज्वाला निकल रही थी। उसने अपना पंख हिलाया ही था कि धरती काँपने लगी। उसकी ध्वनिसे समुद्र मर्यादाका अतिक्रमण करने लगा, सूर्य-मण्डल धवल हो गया। उस महान् पक्षीने भागते हुए मुनि पुत्रोंपर अपने पंजोंसे प्रहार कर उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

'यह विशाल पक्षी मुनि-पुत्रोंको मार ...' यह सोचते ही गुणेश वृक्ष-कोटरसे कूदे और शीघ्रतापूर्वक उक्त महान् पक्षीका पंख जोरसे पकड़ लिया। पक्षी और गुणेशमें भयानक युद्ध छिड़ा। पक्षीके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये थे। वह अपनी तीक्ष्ण चोंच और पंजेसे गुणेशपर

मयूरेशने असुरका दुरुद्देश्य समझ लिया; अतः वे उसपर मुष्टि-प्रहार कर बैठे। करारी चोट छटपटाता हुआ वह अश्वरूपी असुर सरोवरमें कूद मयूरेशने भी उसके पीछे सरोवरमें छलाँग लगायी। ने उस मदोन्मत्त अश्वको पानीमें डुबाकर मार और फिर उसका मृत शरीर सरोवरसे निकालकर बहुत दूर फेंक दिया।

यह देखकर मुनि-पुत्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे पुनः नहाने और जल-क्रीडा करने लगे। एक बार सभी कि एक साथ मिलकर गुणेशपर जल उछालने लगे, मयूरेशने सहस्र हाथोंसे उनपर जल उलीचना प्रारम्भ दिया। चकित होकर एक बालकने पूछा—'अरे, मयूरेश तो षड्भुज है न?'

'हाँ! षड्भुज तो है ही।'

'फिर यह सहस्रभुज कैसे हो गया?'

'सचमुच बड़े आश्चर्यकी बात है।'

फिर बालकोंने देखा कि उनके चारों ओर अनेक मयूरेश खड़े होकर उनपर जल उलीच रहे हैं। वे सभी चकित-विस्मित थे।

इस प्रकार परात्पर परब्रह्म मयूरेश परम पुण्यात्मा मुनि-पुत्रोंको क्रीडाका अद्भुत अलौकिक आनन्द प्रदान कर ही रहे थे कि वहाँ कुछ नाग-कन्याएँ आकर क्रीडा करने लगीं। उनकी दृष्टि जब मयूरेशपर पड़ी तो वे लज्जित हो गयीं। उन्होंने अपने नेत्र नीचे कर लिये। वे मयूरेशके अलौकिक सौन्दर्यपर मुग्ध हो गयी थीं।

सहचरियोंके परामर्शसे एक नागकन्याने मयूरेशके समीप जाकर अत्यन्त मधुर वाणीमें विनयपूर्वक निवेदन किया—'आप कौन हैं, कहाँसे आये हैं? हमलोग आपका दर्शन करके विह्वल हो गयी हैं; आप कृपया हमारा चित्त शान्त कीजिये।'

'मैं शिव-शिवका पुत्र हूँ। मयूरेश मेरा नाम है। मैं मुनि-पुत्रोंके साथ क्रीडार्थ यहाँ आ गया, इसी कारण आप लोगोंके दर्शन हो गये।'

'आप कृपापूर्वक एक क्षणके लिये ही सही, हमलोगोंके भवन पधारकर विश्राम कर लें।'

'अधिक विलम्ब होनेके कारण माता पार्वती सचिन्त मनसे मेरी प्रतीक्षा कर रही होंगी; अतएव मैं अपने आश्रमको जाना चाहता हूँ। आपलोग अपने भवन पधारिये।'

नाग-कन्याएँ सआग्रह मयूरेशको अपने साथ ले गयीं। प्राणप्रिय मयूरेशको न देख मुनि-पुत्र अत्यन्त दुःखी हुए, पर कुछ ही देर बाद उन्हें अनुभव हुआ कि 'मयूरेश हमारे साथ हैं।' मार्गमें भगासुर-नामक असुरने मुनि-बालकोंके साथ छल किया, किंतु सर्वज्ञ मयूरेशने उनकी रक्षा कर ली, असुर मारा गया।

जिस प्रकार मुनि पुत्रोंने मयूरेशको अपने साथ अनुभव किया, उसी प्रकार मुनि-बालकोंके घर पहुँचनेपर माता पार्वतीने भी समझा कि 'मयूरेश घर आ गया है।' जननीने उन्हें भोजन कराया और स्तन-पान कराकर सुला दिया।

नागलोकपर विजय

लावण्यवती नाग-कन्याएँ प्रसन्नवदन मयूरेशको पाताल-लोकके अपने भव्य भवनमें ले गयीं। वहाँ उन्होंने चित्ताकर्षक देवदेव मयूरेशको सुगन्धित तैल और उद्वर्तन लगाकर उष्ण जलसे स्नान कराया। उन्हें दिव्य वस्त्रालंकारोंसे विभूषित कर उनको चन्दन लगाया और धूप, दीप, नैवेद्य तथा ताम्बूलादिसे उनकी पूजा की। तदनन्तर उन्होंने मयूरेशकी स्तुति करते हुए कहा—'ब्रह्मादि देवगण जिनके दर्शनके लिये नित्य आकाङ्क्षा रखते हैं, वे ही प्रभु हमारा अभीष्ट प्रदान करनेके हेतु यहाँ पधारे हैं। हम चाहती हैं कि आप यहाँ कुछ दिन निवास करनेके अनन्तर ही अपने आश्रमको जायँ।'

पार्वतीनन्दनने कहा—'वहाँ मेरी माता मेरे वियोगमें दुःखी होकर अन्न-जल भी नहीं ग्रहण करती होंगी। क्या पूछ सकता हूँ कि मैं यहाँ किनकी पुत्रियोंके दर्शन कर रहा हूँ?'

'जिनके यहाँ ब्रह्मादि देवगण आते रहते हैं और जिनके विषकी ज्वालासे त्रिभुवन भस्म हो सकता है, हम उन्हीं नागराज वासुकिकी कन्याएँ हैं।' इस प्रकार अपना [illegible] देकर नाग-कन्याएँ मयूरेशको अपने पिताके मन्दिर में ग[illegible]

अतिशय शक्तिशाली वासुकि अनेक तेजस्वी नागोंके साथ देदीप्यमान रत्नसिंहासनपर आसीन थे। उनके मस्तकपर चतुर्दिक् किरणें बिखेरता रत्नमुकुट और कण्ठमें रत्नहार सुशोभित थे।

प्रहार करता और गुणेश घूमकर उसपर अपनी वज्र-मुष्टिसे आघात करते।

विशाल पक्षीकी अतिशय शक्ति देखकर गुणेशने उसपर एक साथ अपने चारों आयुधोंसे प्रहार किया। पक्षी तुरंत धरतीपर गिरा। चपल गुणेशने तत्क्षण उसे अस्त्र-मुक्त किया और उछलकर वे उस अण्डजपर आरूढ़ हो गये। उन्होंने बलपूर्वक विशालतम पक्षीको स्ववश कर लिया।

यह दृश्य देखकर तेजस्विनी स्त्री गुणेशकी स्तुति करने लगी—'प्रभो! आप रजोगुणके योगसे सृष्टिकर्ता ब्रह्मदेव, सत्त्वगुणके योगसे पालक विष्णु और तमोगुणके योगसे संहारक रुद्र भी हैं। आपका सगुण-तत्त्व देवता और ऋषि नहीं जानते, फिर चराचर-गुरु आपके निर्गुण-तत्त्वको कौन जाननेवाला है?'*

स्तुतिके अनन्तर अपना परिचय देती हुई साध्वी नारीने कहा—'प्रभो! मैं परम तपस्वी महर्षि कश्यपकी पत्नी हूँ। मेरा नाम विनता है। यह शिखण्डी (मयूर) उन्हीं महामुनिका पुत्र है। आप इसे अपने सेवकके रूपमें स्वीकार करें। उन मुनिराजने पहले ही कहा था कि 'इस अण्डेको फोड़नेवाला इसका स्वामी होगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।' दीर्घकालतक प्रतीक्षा करनेके अनन्तर मुझे आज आपका दर्शन प्राप्त हुआ है।'

पुनः अत्यन्त दीनभावसे विनताने प्रार्थना की—'प्रभो! मेरे अरुण, श्येन और सम्पाति—इन तीन पुत्रोंको कद्रूपुत्रोंने नागलोकमें बंदी बना रखा है। दयामय! आप शीघ्र ही उनको मुक्त कर मुझे शान्ति प्रदान करें।'

'माता! तुम चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे पुत्रोंको शीघ्र ही मुक्त करके तुम्हारे समीप ले आऊँगा।' गुणेशने परम दुःखमयी विनताको आश्वासन दिया। फिर उन्होंने मयूरसे वर माँगनेके लिये कहा।

मयूरने वरकी याचना की—'यदि आप मुझपर प्रसन्न होकर मुझे वर देना चाहते हैं तो भूमण्डलपर आपके नामके पूर्व मेरा नाम प्रसिद्ध हो जाय। सर्वेश्वर! [illegible] आप मुझे अपनी सुदृढ़ भक्ति प्रदान करें।'

'अत्यन्त शुभ! लोभशून्य अन्तःकरणसे [illegible] वरकी याचना की है।' देवदेव गुणेशने [illegible] मयूरसे कहा—'मयूरेश्वर!'—मेरे नामके पूर्व [illegible] त्रिभुवनमें विख्यात होगा और तुम्हारे मनमें मेरी [illegible] भक्ति भी रहेगी।'

गुणेश मयूरपर आरूढ़ होकर अपने आश्रम [illegible] ऋषिपुत्रोंने माता पार्वतीको सूचित करनेके लिये [illegible] उच्चस्वरसे घोष किया—'मयूरेश! मयूरेश!! मयूरेश [illegible]

सारा वृत्तान्त सुनकर माता पार्वती प्रमुदित [illegible] ऋषिपुत्र मयूरेशका गुणगान करते हुए अपने-अपने घर [illegible]

* * *

जल-क्रीड़ा

मयूरेशका नवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ। अबतक [illegible] वेदादि शास्त्रोंका गहन अध्ययन कर लिया था। वे [illegible] और विभिन्न प्रकारके शस्त्रास्त्र-संचालनमें दक्ष हो चुके [illegible] जैसे-जैसे सयाने होते जाते, वैसे ही सिन्धु [illegible] चिन्तित होकर उन्हें मार डालनेका नित्य नवीन [illegible] रचते जाते। उन्हें सफलता तो मिलती नहीं, उलटे [illegible] दैत्य आता, गण्डकी-नगर लौट नहीं पाता [illegible] पहुँच जाता था। इस कारण दैत्यराज सिन्धु और [illegible] सशङ्क एवं सावधान रहने लगा।

एक दिनकी बात है—आम्र काननके [illegible] मयूरेश मुनि-पुत्रोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे। [illegible] चढ़ते, कुछ फल खाते, कुछ खट्टे-अधपके फलोंको दूर [illegible] देते एवं कुछ आम्र फल मुँहमें दबाये डालियोंसे [illegible] जाते; तैरते और एक दूसरेपर जल उछालते हुए [illegible] प्रकारके खेल खेलते।

उसी समय [illegible]

* [illegible]

असुरोंका महासैन्य देखकर शिवगणोंने मयूरेशको [illegible] दी। उन गणोंको चिन्तित देखकर मयूरेशने —'भगवान् शिवकी उपस्थितिमें चिन्ताका कोई नहीं है।'

फिर उन्होंने जाकर अपने पिताके चरणोंमें प्रणाम कर [illegible]न किया—'कमलासुर-नामक प्रख्यात वीर असुर सैन्यके साथ सम्मुख उपस्थित है। यदि आप [illegible] आज्ञा प्रदान करें तो मैं उससे युद्धके लिये जाऊँ।'

शिवने प्रसन्न होकर कहा—'तुमने सुखद बात कही, [illegible] तुम एकाकी बारह अक्षौहिणी सैनिकोंके साथ कैसे युद्ध [illegible]? अतः अपने साथ सात कोटि गणोंको भी [illegible]ओ और शीघ्र ही शत्रुको मारकर विजय प्राप्त करो।'

मयूरेशने अपने पितासे पुनः निवेदन किया—'आपकी [illegible] मैं त्रैलोक्यको भस्म कर सकता हूँ; इस क्षुद्र दैत्यकी [illegible] गिनती है? मैं अभी उसपर विजय प्राप्त करके लौट [illegible] हूँ।'

मृत्युंजयने पुत्रका आलिङ्गन किया। उसे अपना [illegible] देकर सिरपर हाथ फेरते हुए आशिष् दी। [illegible]र उसे अपने गणोंके साथ समराङ्गणमें जानेकी [illegible] प्रदान की।* वृषारूढ़ शिवा-शिव भी पुत्रका रण-[illegible] देखने चले।

मयूरेश असुर-सैन्यके सम्मुख पहुँचे। उन्होंने [illegible]सुरकी विशाल वाहिनी देखकर अपने शरीरसे असंख्य [illegible] उत्पन्न किये।

'मयूरेशके पास तो थोड़े-से ही सैनिक थे, अभी तुरंत इतनी [illegible] सेना कहाँसे आ गयी?'—यह सोचकर असुर चकित [illegible]या।

उभय पक्षकी सेनाएँ एक-दूसरेपर टूट पड़ीं। मयूर-वाहन मयूरेशने महादैत्यको अश्वारूढ़ देखकर अपनी दस भुजाओंमें दसों आयुध लिये। भयंकर संग्राम हुआ। असंख्य असुर-सैनिक कालके गालमें चले गये और रक्तकी सरिता प्रवाहित हो गयी।

हाथमें खड्ग लिये अतिशय क्रुद्ध कमलासुर मयूरेशसे युद्ध कर रहा था। उसने मयूरेशको मारनेके लिये विविध प्रकारके अस्त्रोंका प्रयोग किया, किंतु उसके सभी शस्त्रास्त्र व्यर्थ हो गये। इसी बीच गुणेश-वाहन मयूरने अपने पक्ष एवं तीक्ष्ण चञ्चु-प्रहारसे असुरके अश्वको मार डाला। उस असुरने आकाशमें जाकर कहा—'मेरा घोड़ा गिर गया, यह मैं अद्भुत दृश्य देख रहा हूँ।'

फिर उसने मयूरेशसे कहा—'बालक! तू मेरे साथ क्या युद्ध करेगा! जाकर अपनी माताका स्तन-पान कर और बालकोंके साथ खेल। मेरे भयसे त्रिभुवन काँपता है।'

'तू पिशाचकी तरह क्या प्रलाप करता है?' देवदेव मयूरेशने असुरको डाँटते हुए कहा—'देवद्विजविनिन्दकको कभी जय प्राप्त नहीं होती। मैं तो अपने रोषानलसे ही त्रिभुवनको भस्म कर सकता हूँ, किंतु तुम्हें यश प्रदान करनेके लिये ही इस युद्धमें प्रवृत्त हुआ हूँ।'

यह सुनकर क्रुद्ध कमलासुर गरज उठा। पृथ्वी काँपने लगी। उसने अपने अस्त्रोंकी इतनी भयानक वर्षा की कि शिवगण व्याकुल हो गये। यह देखकर मयूरेशने जल-धारावत् तीक्ष्णतम शरोंकी वृष्टि प्रारम्भ कर दी।

असुर अपनी पूरी शक्तिसे उन शरोंका निवारण करने लगा; यह देखकर गुणग्राहकोंमें श्रेष्ठ गुणेश संतुष्ट हुए। उन्होंने उसे अपने अनन्त विश्वरूपका दर्शन करा दिया। उसने दसों दिशाओंमें मयूरेशको देखा। अत्यन्त चकित होकर उसने नेत्र बंद किये तो हृदयमें भी उसे मयूरेशके ही दर्शन हुए।†

तब प्रचण्ड शूर कमलासुर युद्धभूमिसे भाग चला,

---

* बारह सालका बालक गुणेश! किंतु वह ऐसी विशाल [illegible] साथ युद्धके लिये जाता है और उसे इसके लिये माँ-बाप [illegible] देते हैं। ये बातें सचमुच बोधप्रद—प्रेरणादायक [illegible] है। परंतु शिक्षा कैसी होनी चाहिये, यह बात इस [illegible] अच्छी तरह समझमें आती है। बारह वर्षके [illegible]र उसके पिताका इतना विश्वास! जिस व्यक्तिके बच्चे [illegible] पर हैं, वह कभी परतन्त्र नहीं रह सकता।

—पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

† ततस्तुतोष भगवान् मयूरेशो [illegible] ।
दर्शयामास तस्मै स विश्वरूपमनन्तकम् ॥
ददर्श दशदिक्षु मयूरेशं कमलासुरः ।
निमीलिताक्षः [illegible] हृदि स ददर्श [illegible] ॥
(गणेश० २ । १०६ ।)

वासुकिके देखते ही देखते मयूरेश तत्काल कूदकर उनके फनपर चढ़ गये। उनके फनों पर पञ्चरत्नान्वित अद्भुत मणि थी। उनके मस्तकके दबनेसे वे तिलमिला उठा। मयूरेशने परम तेजस्वी वासुकिको दण्ड देकर उन्हें अपने कण्ठमें धारण कर लिया। इस कारण उन परमप्रभु मयूरेशका नाम प्रख्यात हुआ—'सर्पभूषण'। सर्पभूषणने कोलाहल गर्जन किया।

'मेरे भाई वासुकिको पराजित करनेवाला कौन है?'—ऐसा कहकर सहस्रफणधारी शेष भयानक विष उगलते हुए दौड़े। उन्होंने पार्वतीनन्दनपर आक्रमण कर दिया।

सर्पभूषणके स्मरण करते ही उनके वाहन मयूरने उपस्थित होकर चरणोंमें नमस्कार किया। गुणेश मयूरपर बैठे। भयानक युद्ध हुआ। मयूरने असंख्य नागोंको अपने विशाल पंखोंके प्रबल प्रहारसे मार डाला। कितने ही विषधर उसके उदरमें पड़ गये। किंतु शेषके भयानकतम विषकी असह्य ज्वाला वह मयूर नहीं सह सका; मूर्च्छित हो गया।

अपने वाहन मयूरके धरतीपर गिरते ही मयूरेश अत्यन्त कुपित हुए और कूदकर शेषके फनपर चढ़ गये। उन विराट् प्रभुका भार शेषके लिये असह्य हो उठा। वे रक्त वमन करने लगे। उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग शिथिल हो गये। शेषकी सहायताके लिये अन्य नाग दौड़े, किंतु वे तो मयूरेशका हुंकार भी नहीं सह सके।

क्रीड़ा-रत बालक जैसे कटिमें रस्सी लपेट लेता है, उसी प्रकार मयूरेशने शेषको अपनी कटिमें लपेट लिया। चकित-थकित शेष मयूरेशकी स्तुति करने लगे। तब मयूरेशने शेषसे कहा—'सम्पाति, जटायु और श्येनको शीघ्र मुक्त करके यहाँ ले आओ।'

शेषने आज्ञा दे दी। नागलोग विनताके तीनों पुत्रोंको मुक्त करके वहाँ ले आये। उन तीनोंने मयूरेशके चरणोंमें प्रणाम किया। मयूरने अपने तीनों भाइयोंका आलिङ्गन कर उनका समाचार पूछा। तदनन्तर सम्पाति आदिने अपनी माताका हाल पूछा।

'माता प्रसन्न हैं।' यह सुनकर तीनों भाइयोंको संतोष हुआ।

मयूरेश मयूरपर आरूढ़ होकर पृथ्वीपर लौटे। आश्रमकी ओर जाते समय वे बालकोंसे घिरे थे। उन बालकोंने धन, धान्य और द्रव्य आदि ले [illegible] था। कोलाहल सुनकर मुनिपत्नियाँ द्वार [illegible] लगीं—'मयूरवाहन मयूरेश आ रहे हैं।'

'मेरा बालक भी साथ है।' कहती हुई [illegible] स्वागत करने लगीं। फिर उन्होंने देखा, वे सब मयूरेश ही हैं। एक नहीं, अनन्त मयूरेश।

'दयामय शिवसुत मयूरेशकी जय!'—यह [illegible] मुनियोंके मुँहसे स्वयं निकल गया।

• • •

त्रिसंध्या-क्षेत्रसे विदा

मयूरेशके नौ वर्ष पूरे हुए। उन्होंने इतने [illegible] किया। इतनी अल्पायुमें ही उन्होंने अनेक [illegible] योद्धाओंका संहार तो किया ही, प्रत्युत [illegible] विजय प्राप्त कर ली, इस समाचारसे सिन्धु उत्तरोत्तर [illegible] चिन्तित होता जा रहा था और उसके वीर सैनिक [illegible] सम्मुख जानेमें भयभीत होने लगे थे।

भगवान् शंकर और पार्वती अपने पुत्रके द्वारा असुरोंका उत्तरोत्तर क्षय देखकर मन-ही-मन प्रसन्न थे। [illegible] दण्डकारण्यमें मयूरेशकी उपस्थितिके कारण [illegible] असुरोंकी अनेक यातनाएँ सहनी पड़ती थीं। [illegible] महादेवने त्रिसंध्या-क्षेत्रसे अन्यत्र जानेका निश्चय कर लि[illegible]

ऋषि वृन्द, ऋषि पत्नियाँ और मयूरेशके मित्र [illegible] हुए। उन्होंने शिवसे प्रार्थना की, किंतु पार्वतीवल्लभ अनेक कारणोंसे अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुए।

जब शिव पार्वती मयूरेश और अपने गणोंके सा[थ] दण्डकारण्यसे विदा हुए, तब बड़ा ही करुण दृश्य उपस्थित हुआ। शिव-पार्वती तथा मयूरेशके अनन्य भक्त मुनि [illegible] और बालक उनके साथ चले। वृहत् समुदायके चलनेसे उड़ी हुई धूलिसे अन्तरिक्ष भर गया।

कमलासुरकी मुक्ति

शिव-पार्वती अपने गणादिके साथ जिस मार्गसे जा रहे थे, उसी मार्गमें दैत्यराज सिन्धुका भेजा हुआ कमलासुर-नामक प्रसिद्ध असुर बारह अक्षौहिणी सशस्त्र वाहिनीके साथ डट गया। उसकी सेनामें गज, अश्व, रथ और पैदल सभी प्रकारके सैनिक थे।

ये। प्रमथगण थककर चूर और खिन्न हो गये, तब मयूरेश उनके हाथ आ गये। प्रमथगण बड़े प्रसन्न र उन्हें बाँधकर अपने स्वामीके समीप ले चले। र चलनेपर मयूरेश जड़वत् बैठ गये। प्रमथगणोंने उठानेका प्रयत्न किया, पर वे हिल भी न सके। उठानेके लिये सबने मिलकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति , पर मयूरेश भूधर-तुल्य अडिग हो गये थे; अपने टस-से-मस नहीं हो सके।

भो! हम तो उन्हें लानेमें सफल नहीं हुए। हमारी र्थ हो गयी।' प्रमथगणोंका संवाद पाकर नीलकण्ठने आज्ञा दी—'तुम जाओ और मयूरेशको शीघ्र ले ।'

भो! आपकी आज्ञासे मैं सूर्य, चन्द्र और शेषको कर सकता हूँ; मयूरेशकी क्या गणना है!'—नन्दीने चरणोंमें प्रणाम किया और मयूरेशको पकड़नेके गतिसे चल पड़े।

न्दी मुनि-पुत्रोंके साथ क्रीड़ा करते मयूरेशके समीप । क्रोधसे उनके नेत्र लाल हो गये थे। उन्होंने कठोर कहा—'तुम स्वामीके पास चलो, नहीं तो मैं स्वयं कड़कर ले चलूँगा। मुझे प्रमथादि गणों-जैसा न ।'

न्दीका अहं भाव देखकर व्यक्ताव्यक्तस्वरूप मयूरेशने श्वास । उस श्वासचक्रसे नन्दी रक्तका वमन करते हुए पृथ्वीपर र मूर्च्छित हो गये। दो मुहूर्तके अनन्तर मूर्च्छा-भङ्ग र लज्जित नन्दी शिवके समीप पहुँचे तो अत्यन्त चकित उन्होंने देखा, दिव्य वस्त्राभरण धारण किये देदीप्यमान अपने पिता शिवके अङ्कमें विराजमान हैं और देवाधिदेव महादेवके भालपर सुशोभित हैं।

'प्रभो! सुधांशु तो आपके मस्तकपर विराजित है।'

नन्दीके वचन सुन शंकरसुत निर्मुक्त शिवने अपने र चन्द्र देखकर कहा—'अरे हाँ, चन्द्रमा तो ललाटपर । मैंने व्यर्थ ही प्रमथादि गणोंको कष्ट दिया।'

प्रमथगणोंने शिवसे प्रार्थना की—'प्रभो! ये मयूरराज ये इनके स्वामी हों।'

न्होंने शिव, गणेश और गणेश-जननीके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम कर प्रेमपूर्वक स्तवन की। 'जय गणराज! जय गणपति!! जय गणेश!!! जय मयूरवाहन मयूरेश!!!'

विवाहका निश्चय

मयूरेशकी तेरहवीं वर्ष-गाँठपर गौतमादि ऋषिगण माता पार्वतीके समीप पहुँचे। पार्वतीने उनकी पूजा की। ऋषियोंके परामर्शके अनुसार इन्द्र-याग प्रारम्भ हुआ। उसी समय वहाँ कल और विकल-नामक दो असुर प्रचण्ड मक्षिकाके वेषमें पहुँच गये। वे दोनों विकट असुर मयूरेशके हाथों मुक्त हुए।

मयूरेशके द्वारा अपनी उपेक्षा देखकर देवेन्द्र कुपित हुए; पर उन चिदानन्दके सम्मुख उनका गर्व खर्व हुआ। उन्होंने देवदेव मयूरेशके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी स्तुति की। वे निर्विकार मयूरेशके द्वारा क्षमा प्राप्तकर आश्वस्त हुए।

पार्वतीनन्दनने पंद्रहवें वर्षमें प्रवेश किया। एक दिन सिन्धुप्रेरित एक महादैत्य व्याघ्रके रूपमें मयूरेशके सम्मुख पहुँचा। वह शिवनन्दनको मारकर खा जाना चाहता था, किंतु पराक्रमी मयूरेशके द्वारा स्वयं काल-कवलित हुआ।

सूर्यनन्दन यम सदलबल मयूरेशपर क्रुद्ध हुए, पर उनका अहंकार नष्ट हुआ। उन्होंने निखिलसृष्टिनायक गणपतिसे क्षमाकी याचना की।

इस प्रकार अत्यन्त बलवान्, विद्या विनय-सम्पन्न, अद्भुत प्रतिभाशाली, अप्रतिम पुत्र मयूरेशकी ख्याति सर्वत्र फैल गयी। इस कारण एक दिन माता पार्वतीने अपने प्राणवल्लभ शिवसे प्रार्थना की—'प्रभो! मयूरेश पंद्रह वर्षका हो गया। यह अत्यन्त सुन्दर, सुपोज, बुद्धि-वैभव-सम्पन्न, शूरवीर एवं सर्वसद्गुण-सम्पन्न है। अतएव अब इसका विवाह कर देना चाहिये।'

'तुमने बड़ी सुन्दर बात कही। मैं भी इसके परिणयके पक्षमें हूँ।' इतना कहकर श्रीसदाशिव सोचने लगे—'मयूरेशके अनुकूल कन्या कहाँ प्राप्त होगी?'

उसी समय वहाँ अकस्मात् देवर्षि नारद पहुँचे। माता पार्वतीने उनका स्वागत-सत्कार कर उन्हें श्रेष्ठ आसन प्रदान किया।

भगवान् शंकरने नारदजीसे कहा—'मुनिवर! आप बहुत दिनोंके बाद यहाँ पधारे; मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आप

देवताओंने उसकी शिखा पकड़ ली और उसे लाकर कहा—'दैत्य ! तू अपने वचनका पालन करनेके लिये यहाँ युद्ध कर।'

यह सुनकर उस महादैत्यने भयानक गर्जना की और वह विविध प्रकारके अस्त्रोंद्वारा प्रहार करने लगा। उसने अनेक प्रकारकी मायाएँ रचीं, किंतु मायापतिके सम्मुख उसकी एक न चली। मयूरेशने अपने त्रिशूलसे प्रहार किया ही था कि कमलासुरका मस्तक कटकर भीमानदीके दक्षिणी तटपर जा गिरा। मयूरेश कृष्णा नदीके उत्तरी तटपर थे।

'मयूरवाहन मयूरेशकी जय।' सम्पूर्ण असुर-सैन्यके विनाशसे प्रसन्न होकर देवताओं, मुनियों और शिवगणोंने बार-बार उच्चस्वरसे उद्घोष किया—'मयूरवाहन मयूरेशकी जय। मयूरवाहन मयूरेश की जय !!'

फिर प्रमथ-गणोंसे आवृत उमा-महेश्वर और गौतमादि ऋषि मयूरेशके समीप पहुँचे। विजयसे आह्लादित शिव पुत्रको गले लगाकर उसके सिरपर हाथ फेरने लगे। आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी और मुनिगण पार्वतीनन्दन मयूरवाहन मयूरेशकी स्तुति करने लगे।

विश्वकर्माने वहाँ गणोंसहित पार्वती-महेश्वर और मुनियोंके रहनेके लिये अत्यन्त सुन्दर नगर और एक अत्यन्त अद्भुत मन्दिरका निर्माण कर दिया। पार्वतीसहित भगवान् शंकर वहीं रहने लगे। मुनिगण तपस्यामें निरत हुए। ब्राह्मणोंका भजन-पूजन आरम्भ हुआ और मयूरेश बालकोंके साथ पूर्ववत् क्रीडा करने लगे।

महर्षियोंने उक्त पवित्र क्षेत्रका नाम रखा—'मयूरेश'।•

बाल-विनोद

मङ्गलमूर्ति भगवान् मयूरेशकी प्रत्येक लीला प्रेरक, सुन्दर एवं मनको मुग्ध कर देनेवाली थी। प्राकट्य-कालसे ही वे पुण्यात्माओं, तपस्वियों एवं सदाशय व्यक्तियोंके हित [illegible] थे। असुर-विनाश उनका लक्ष्य था। वे महर्षि देवताओं, ऋषियों, शिवगणों एवं मुनिपुत्रोंको भी अपनी अनिर्वचनीय शक्ति एवं महिमाके कभी-कभी दर्शन करा देते थे।

मयूरेशका बारहवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ। वे बालकोंके साथ खेल रहे थे। उसी समय [illegible] दैत्य [illegible] धारण करके [illegible] साथ खेलता हुआ मुनि पुत्रोंके

• मोरगाँव

सम्मुख आया। उसके नेत्र प्रज्वलित अंगारोंके [illegible] लाल थे। उस कुपित एवं काल-तुल्य वराहसे [illegible] पुत्र किंकर्तव्यविमूढ़ एवं स्वेद-सिक्त हो गये।

दैत्य-सूदन उछले। उन्होंने असुरको अवसर दिये बिना ही उसके दोनों दाँत पकड़ लिये। [illegible] गुर्रा भी नहीं पाया था कि अत्यन्त चपलतासे [illegible] उसके वज्र-तुल्य दाँतोंको नीचे-ऊपर हिला दिया कि असुर पीड़ासे चिल्ला उठा। मयूरेशने दाँतोंको नीचे-ऊपर झटका देते [illegible] हुए शिथिल ही नहीं कर दिया, उसे मार डाला।

'पार्वती-पुत्र! धन्य हो! धन्य हो!' [illegible] वराहके संहारसे चकित और प्रसन्न होकर [illegible] मयूरेशकी प्रशंसा करने लगे।

एक दिनकी बात है; कर्पूरगौरने देखा [illegible] चन्द्रमा नहीं था। 'सुधांशु क्या हुआ?' [illegible] इधर उधर देखने लगे। गणोंने बताया—'[illegible] लेकर मयूरेश क्रीडा करने चले गये हैं।'

'तुमलोग इतने असावधान कैसे रहते हो?' [illegible] मुद्रामें लीलामयने कहा—'जाओ! सुधांशुको [illegible]'

शिवगण दौड़े। मुनि पुत्रोंके साथ [illegible] समीप पहुँचकर उन्होंने कहा—'मयूरेश! [illegible] शिवके पास चलो, अन्यथा चन्द्रमा दे दो।'

'मैं त्रिभुवनको उत्पन्न करनेवाली [illegible] जननीका पुत्र हूँ। इस कारण तुम-जैसे [illegible] चिन्ता नहीं करता।' मयूरेशने गणोंसे [illegible] दूसरे ही क्षण शिवगण उनके [illegible] हुए परम प्रभु शिवके समीप पहुँच गये।

उनकी दशा देखकर कुपित पर्वतीनन्दने [illegible] आज्ञा दी—'तुमलोग मयूरेशको पकड़ लाओ।'

प्रमथादि गण मयूरेशको पकड़नेके लिये [illegible] बालकोंके समीप पहुँचे; किंतु [illegible] दिया और स्वयं अदृश्य हो गये। [illegible] घर घर और वनोंमें ढूँढ़ने लगे।

'तुमलोग [illegible] [illegible] दर्शन हुए [illegible] [illegible]

मयूरेशने सबके सम्मुख कहा—"मेरी प्रतिज्ञा है कि ...दैत्य सिन्धुके कारागारसे देवताओंको मुक्त किये अपना विवाह नहीं करूँगा। अतएव आपलोग किसी ...न् पुरुषको बलवान् दैत्यराजके पास भेजकर अनुरोध ... कि 'वह देवताओंको कारागारसे मुक्त कर दे।' उसके ...कार करनेपर मैं उसे पराजित कर देवताओंको ...बन्धनसे छुड़ाऊँगा और तभी मेरा विवाह हो सकेगा।"

गुणेश्वरके वचन सुन ब्रह्मदेवने कहा—'मयूरेश! तुम्हारी ...मा बृहस्पति-तुल्य है। यद्यपि तू बालक है, पर तूने ...न्त उचित बात कही है। देवताओंकी ओरसे वार्ता ...नेके लिये नीति निपुण पुष्पदन्तको भेजना चाहिये। ...दन्त चतुर वक्ता एवं बलवान् हैं; उन्होंने महिम्नःस्तोत्रके ... महेश्वरको संतुष्ट कर लिया है।'

ब्रह्मदेवका प्रस्ताव श्रवण कर पुष्पदन्तने गणेशसे निवेदन ...—'मयूरेश! आपकी महिमा मन और वाणीसे परे है। ...मामोहित जीव आपकी महिमा नहीं जानते। नित्यज्ञान-...रूप मयूरेश! आपने भू-भार-हरण करनेके लिये शिवके ...में अवतार लिया है। आप सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी हैं। ... कार्यके लिये कृपया मुझे न भेजकर, किसी दूसरेको भेज ...। अत्यन्त उद्धत और पराक्रमी सिन्धुके सम्मुख होते ही मैं ...द हो जाऊँगा; नीति और मर्यादाकी रक्षा नहीं कर ...ऊँगा। मैं उससे समरभूमिमें ही मिलूँगा।'

माता पार्वतीने कहा—'पुष्पदन्त! तुमने अत्यन्त प्राचीन ...तिकी बात कही है; क्योंकि शत्रु क्रोधी, बलवान् और ...मके योग्य नहीं है। पर षडाननको भेजा जाय तो वह ...से पकड़ लेगा, वीरभद्रको भेजा जाय तो यह तुरंत युद्ध ...रे आयगा, भृङ्गी तो वहाँ जानेपर युद्ध कर बैठेगा और ...मयको भेजा जाय तो पता नहीं, वह क्या कर डाले! ...भृङ्गराज भी इसके उपयुक्त नहीं और रक्तलोचन तो स्त्री ...सौन्दर्यमें ही भूल जायगा।'

इस प्रकार माताके द्वारा सबका निषेध करनेपर मयूरेशने कहा—'नन्दी अवश्य ही अत्यन्त धीर, वीर, गम्भीर, बुद्धिमान्, धूर्त और दूसरेका आशय समझनेवाले हैं; इसलिये इन्हें भेजा जाय।'

भगवान् शंकरने कहा—'मयूरेश! तुमने उत्तम निर्णय किया। नन्दीको विविध रत्न और वस्त्र दो।'

मयूरेशने नन्दीको वस्त्राभूषण देकर कहा—'आप उसी नीतिका अनुसरण करें, जिससे बंदी देवता मुक्ति प्राप्त कर लें।'

नन्दीने मयूरेश एवं गौरी शंकरके चरणोंमें प्रणाम किया तथा फिर गणोंके साथ समस्त देवताओंकी वन्दना कर समयके अनुसार कहा—'प्रभो! आप जिसपर अनुग्रह करते हैं, वही श्रेष्ठ हो जाता है। अतएव मैं श्रेष्ठ नीतिका पालन कर आपका प्रयोजन सिद्ध करूँगा। आपके प्रसादसे निश्चय ही मैं सम्पूर्ण पृथ्वी, शेष और सूर्यको पकड़कर आपके सम्मुख ला सकता हूँ।'

इस प्रकार कहकर नन्दी गणेश, शिव एवं जगज्जननी पार्वतीका स्मरण करते हुए वायुवेगसे चले। वे अपनी प्रतिज्ञा-पूर्तिके लिये अपने आराध्य शिवा शिवसे मन-ही-मन प्रार्थना करते जा रहे थे।

महादैत्य सिन्धुसे वार्ता

नन्दी सीधे सिन्धुकी राजसभाके द्वारपर पहुँचे। द्वारपालने सिन्धुको इसकी सूचना दी। नन्दी असुरराजकी सभामें पहुँचे। वह सभा विशाल और अतिशय सुन्दर थी। उस समय असुरसेवकोंसे घिरा रत्नसिंहासनासीन सिन्धु वाराङ्गनाके नृत्यका आनन्द ले रहा था। मधुर वाद्य बज रहे थे।

नन्दी असुरोंको ऐसे प्रतीत हुए, जैसे राजसभामें साक्षात् सूर्यदेवका आगमन हुआ हो। कुछ असुर नन्दीकी सुदृढ़ काया और उनकी महती शक्तिका अनुमान कर भयभीत हुए एवं कुछ डरसे काँपने लगे। संकेतानुसार नन्दी आसनपर बैठे। सभा सर्वथा नीरव हो गयी। असुर जैसे काष्ठ-पुत्तलिका बन गये थे।

देवगुरु बृहस्पतिकी भाँति परम बुद्धिमान् नन्दीने सिन्धु दैत्यसे कहा—'असुरराज! आजतक मैं कितनी ही राजसभाओंमें गया, किंतु तुम्हारे जैसा मूढ़ अन्यत्र नहीं देखा। तुमलोग अत्यन्त बलवान् और सुन्दर हो, किंतु भेड़िये-जैसे बुद्धिहीन हो। * अपनी सभामें आये सम्मानित, बलवान् और बुद्धिमान् पुरुषका स्वागत करना नीति है, किंतु उसे तुम्हारे यहाँ न देखकर मैं अत्यन्त चकित हूँ।

* सुन्दराः ... वृका ... यथा।
(गणेशपु० २।१११।८)

कृपापूर्वक परम मेधावी रूप-गुण-सम्पन्न मयूरेशके योग्य कोई कन्या बतलाइये । इसकी माता पुत्र विवाहके लिये आतुर हैं ।'

'कन्या—एक नहीं दो हैं ।' अत्यन्त प्रसन्नताके साथ नारदजीने उत्तर दिया—'ब्रह्मदेव आपके पुत्रका यश सुनकर पुलकित हैं । सिद्धि और बुद्धि-नामक उनकी दो कन्याएँ हैं । दोनों कन्याएँ सौन्दर्य, शील, गुण, कर्म आदि प्रत्येक दृष्टिसे अनुकूल एवं मङ्गलमयी हैं । स्वयं पद्मयोनिने मयूरेशके विवाहके लिये मुझे आपकी सेवामें प्रेषित किया है । आपलोग कृपापूर्वक यह सम्बन्ध स्वीकार कर लें ।'

महर्षि नारदके ये वचन सुनकर भगवान् शंकर और जगज्जननी पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हुईं । देवता, ऋषिगण, शिवगण और मुनि-पुत्र—सभी आनन्दित हुए । मङ्गल-यात्रा प्रारम्भ हुई ।

भगवान् शंकर माता पार्वतीके साथ नन्दीपर बैठे थे । इन्द्रादि देवगण और ऋषिगण प्रसन्नतापूर्वक चल रहे थे । मयूरेश अपने वाहन मयूरपर बैठे थे । महर्षि नारद आकाशमार्गसे और शिवगण अपने शस्त्रास्त्रसहित यात्रा करते हुए हर्षोत्फुल्ल थे । मङ्गल-वाद्य बज रहे थे । आकाश धूलिकणोंसे आच्छादित हो रहा था । विशाल समूह आनन्दमग्न था ।

मयूरेशकी प्रतिज्ञा

भुजगेन्द्रहार शिव बृहत्तम समुदायके साथ गण्डकी-नगर जानेवाले मार्गसे जा रहे थे । उन्हें बीचमें ही सात कोटि प्रचण्ड असुर योद्धाओंका शिविर मिला । वे सभी युद्धप्रिय असुर अत्यन्त उद्दण्ड थे । शिवका विशाल जन समुदाय देखकर असुर सेनापतिने मार्ग अवरुद्ध कर दिया ।

उस सेनापतिने कहा—'तुमलोग कौन हो, कहाँसे आ रहे हो और कहाँ जाओगे ! तुम दैत्यराज सिन्धुकी आज्ञा प्राप्त किये बिना यहाँसे आगे नहीं बढ़ सकोगे ।'

मयूरेशने तुरंत उत्तर दिया—'मैं साधुपुरुषोंका रक्षक एवं दैत्यों और असुरोंका संहार करनेवाला पार्वतीनन्दन हूँ । अच्छा हो, तुम मुझे जाने दो; अन्यथा यहीं मारे जाओगे ।'

मयूरेशके अत्यन्त कर्णकटु वचन सुनते ही असुर क्रोधसे उन्मत्त हो गया । उसके नेत्रोंसे ज्वाला निकलने लगी । बोला—'तुम्हीं लोग मेरे आहार हो ।' [illegible] तत्क्षण असुरोंको आक्रमण करनेकी आज्ञा दे [illegible]

मयूरराज भी कुपित हुए । उन्होंने दर्भास्त्र प्रयोगकी आज्ञा दे दी ।

मुनि-पुत्रोंने हाथमें जल लेकर संकल्प [illegible] पाठके अनन्तर जल छोड़ते ही दर्भके अल[illegible] टुकड़े असुर-सैन्यमें फैल गये* और [illegible] नासिका, कान, आँख और श्वासके साथ [illegible] खण्ड हृदयमें प्रविष्ट होने लगे ।

वीर असुर-सैनिक छींकने लगे; उनके [illegible] बहने लगे । कानमें दर्भके छोटे-छोटे टुकड़े [illegible] वे बहरे हो गये । उनका श्वास अवरुद्ध हो [illegible] ही क्षणोंमें असुरोंकी विशाल वाहिनी कुछ [illegible] ब्राह्मण बालकोंद्वारा समाप्त हो गयी ।

ब्राह्मण-बटुकोंने गणेशसे कहा—'मयूरेश्वर [illegible] कृपासे हमने सम्पूर्ण असुरोंका संहार कर दिया । जो आज्ञा हो, हमलोग वही करें ।'

उक्त स्थानपर उपस्थित ऋषि वृन्द बालकोंके [illegible] महान् असुर-सैन्यका विनाश देखकर अत्यन्त चकि[illegible] पार्वतीने अपने पुत्रको गोदमें उठा लिया । भगव[illegible] अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'बेटा गुणेश ! [illegible] तेरा पराक्रम देख लिया । तुम्हारी शक्ति देख[illegible] जानते और फिर तू क्या क्या करेगा [illegible] विदित नहीं ।'

विजयी मयूरेश आगे चले । उनके पीछे [illegible] थे । उनके बाद वृषभारूढ़ उमा महेश्वर, देव[illegible] और शिवगण आदि प्रसन्न होकर चलने लगे । [illegible] जब यह बृहत् समुदाय सिन्धुकी राजधानी गण्डकी[illegible] एक योजन दूर था, तभी मयूरेश अपने वाहनसे उत[illegible]

वहाँ मयूरेशने एक अतिशय सुन्दर सुदृढ़ [illegible] सिंहासन स्थापित किया । उसपर पार्वती, शि[illegible] ऋषियोंको बैठाया । उस समय वाद्य बजने लगे ।

---

* पहले इस अस्त्रका प्रयोग उसपर सम्यक् [illegible] भगवान् गणेशने किया था ।

('[illegible]'—'[illegible]', [illegible])

ोंकी सेना सम्मुख आयी और प्रमथादि गणोंके
ोंने उनपर आक्रमण कर दिया। भयानक युद्ध
विध प्रकारके शस्त्रास्त्रोंकी वर्षा हुई। असुरोंके
ती घटने लगी। अन्ततः राक्षसोंकी विशाल सेना
गयी।

बचे सैनिक भागकर सिन्धुके समीप गये और
असुरराज! मयूरेशकी सेनाने हमारे मुख्य दस
र-सैनिकोंको काट डाला। उन्होंने नगरकी सीमापर,
प्रमुख मार्गों एवं महत्त्वके सभी स्थलोंपर अधिकार
है। आप शीघ्रता करें, अन्यथा सम्पूर्ण नगर ध्वस्त
ा।'

रे! मेरी अजेय वाहिनी तुच्छ गणोंसे पराजित कैसे
! पतंगोंके आक्रमणसे क्या मन्दरगिरि समाप्त हो
' सिन्धु व्यग्र हो गया। उसकी यह दशा देखकर
ख वीर सैनिकोंने कहा—'राजन्! आप निश्चिन्त
ें आज्ञा दें। हम मयूरेश-वाहिनीको मक्खियोंकी तरह
ते हैं।'

रे वीर सैनिको! तुम तुरंत जाओ और शत्रुको युद्धमें
कर दो।' सिन्धुकी आज्ञा प्राप्तकर उसके वीर
र्जन करने लगे। विशाल राक्षसी सेना धरतीको कँपाती
नगरसे बाहर निकली। स्वयं सिन्धुने शस्त्र धारण
और अश्वपर आरूढ हो युद्धभूमिमें आ डटा।

असुरोंने भयानक आक्रमण किया, किंतु नन्दी, भृंगराज
पुष्पदन्तकी सेना पराक्रममें कम नहीं थी। घमासान
था, पर शिव-वाहिनीके पैर उखड़ते देख भृंगराज और
य मयूरेशके समीप पहुँचे। युद्धमें अपनी सेनाके
हटनेका समाचार पाकर स्वयं मयूरेश अपने शस्त्र
र मयूरपर आरूढ हुए। वे वीरगणोंसे युद्धभूमिमें
। वृषभारूढ शिव भी समरके लिये आ डटे।

नन्दीने मयूरेशके चरणोंमें प्रणामकर भीषण गर्जना की।
भयानक युद्धमें नन्दीके प्रहारसे सिन्धुका अश्व मारा
और उसका शीलमान् ध्वज टूटा। असुरने दूसरे
अश्व देखकर नवीन धनुष धारण किया, तब नन्दीने
ा कहा—'असुरराज! तुम्हारा पराक्रम कहाँ गया?'

'शत्रुसेनाका विनाश किये बिना हम भागेंगे नहीं
[illegible] अब सैनिक भी जिन्दा न बचे।'—सिन्धुके

अन्यतम प्रीतिभाजन वीर अमात्य कौस्तुभ और मेघ दो
असुरोंने उसे संतोष दिया और वे तुरंत युद्ध-भूमिमें चले गये।

मयूरेशकी सेना इन योद्धाओंका आक्रमण न सह सकी।
रात्रि आरम्भ हो गयी और दैत्य विजयी हुए। हर्षमें भरे
कुछ दैत्य गर्जन करते और सिन्धु दैत्यकी जय मनाते
नगरमें प्रविष्ट हुए।

वीरभद्र और षडानन मयूरेशके समीप पहुँचे तो उन्होंने
अपने कुछ और गणोंके साथ उन्हें तुरंत पुनः आक्रमण
करनेकी आज्ञा दी।

विजयोन्मत्त असुरोंपर षडानन और वीरभद्र शिव
गणोंके साथ टूट पड़े। इस युद्धमें षडानन मूर्च्छित हो गये,
पर मेघ और कौस्तुभ मारे गये। अवशिष्ट असुर भाग
गये। विजय मयूरेशकी सेनाके हाथ लगी। हर्षोन्मत्त गणोंने
गगनभेदी गर्जन किया—'जय मयूरेश! जय गणेश!!
जय विनायक!!!'

• • •

असुर-सैन्यकी पराजय

अपने सैनिकोंकी पराजयके समाचारसे असुरराज सिन्धु
अत्यन्त चकित, विस्मित और खिन्न हुआ। उसने असुर
सैनिकोंसे कहा—'वीरो! त्रैलोक्यको पराजित करनेवाले
असुरोंको पराजयका मुँह देखना पड़े, यह कितने आश्चर्यकी
बात है! निश्चय ही तुमलोग परम पराक्रमी और रणाङ्गणमें
शत्रुके मस्तकोंको कन्दुककी तरह उछालनेवाले हो। अब
चक्रपाणि-पुत्र मैं शत्रुसे युद्ध करूँगा। तुमलोग शत्रुओंका
सर्वनाश करनेके लिये प्रस्तुत हो जाओ।'

सेनाको आज्ञा देकर सिन्धु-दैत्यने शस्त्र धारण किये
और वह अश्वपर आरूढ हो गया। उसके साथ [illegible]
गजासुर, मदनकान्त, वीर, [illegible], [illegible] और
धूर्त—ये सात महारथी अपने अपने सैनिकोंके साथ चले।
उन सबों असुरोंने समरभूमिमें [illegible] व्यूहकी
रचना की।

इधर युद्ध करनेके लिये [illegible] मयूरेश चले।
[illegible] महाबलवान् नन्दी और पुष्पदन्त [illegible]
चले। [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

तुम्हारे अमात्य, सभासद् और समस्त नागरिक भी महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि यह धर्म केवल राजाका नहीं, अमात्यादिका भी है।'

गुणेशके शान्तिदूत नन्दीके वचन सुन सिन्धुने कहा—'गुणाकर ! तुम्हारी बुद्धि ब्रह्माके समान है । तुम्हारा तेज अग्नि-तुल्य प्रतीत हो रहा है । वृषवर ! तुम कौन हो, कहाँसे आये हो और तुम्हारा उद्देश्य क्या है ?'

नन्दीने उत्तर दिया—'मैं ब्रह्माण्डाधिपति भगवान् शूलपाणिका वाहन हूँ । मेरा नाम नन्दी है । उन भगवान् शिवके घरमें दुष्टोंका संहार कर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये गुणेश अवतरित हुए हैं । वे अबतक सहस्रों वीराग्रणी असुरोंका वध कर चुके हैं । उनकी महिमाका गान करनेमें शेष भी समर्थ नहीं । तुम उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर लो; अन्यथा तुम्हारा सर्वनाश निश्चित है । उन मयूरेशने कहा है कि—'तुम बंदी देवताओंको मुक्तकर सानन्द जीवन-निर्वाह करो । अन्यथा मैं युद्धके लिये विवश हूँ ।''

नन्दीके वचन सुनकर सिन्धु अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा । उसके नेत्र लाल हो गये और वह अग्नि-तुल्य जलन पैदा करनेवाली वाणी कहने लगा—'वृषभ-पुत्र ! तेरी बृहस्पति-तुल्य बुद्धिमानी व्यर्थ होगी । तू मेरे पौरुषको नहीं जानता । मैंने जिन देवताओंको अपने बाहुबलसे बंदी बनाया है, वे युद्धमें मुझे पराजित करनेपर ही मुक्त हो सकेंगे । तृणपर जीवन-निर्वाह करनेवाले शिव मेरे भयसे मारे मारे फिर रहे हैं और तू उसके दुधमुँहे बालकका मुझे भय दिखाता है । भला, शृगाल सिंहके सम्मुख क्या कर सकता है ? तू शान्ति दूत होकर आया है, अन्यथा तेरे दुर्वचनसे यहाँ तेरे प्राण चले जाते । अरे वृष ! मेरे कुपित होनेपर उन्हें त्रिभुवनमें भी शरण नहीं मिलेगी ।'

सिन्धुके विषदग्ध वाक्यबाणसे क्षुब्ध होकर नन्दीने कहा—'असुराधम ! तेरी बुद्धि विपरीत हो गयी है । इसी कारण तू संनिपातग्रस्तकी भाँति प्रलाप कर रहा है । नीतिके उपदेश दुष्टोंको प्रभावित नहीं करते । तू शिव और उनके सर्वशक्तिसम्पन्न महान् पुत्र मयूरेशकी निन्दा करता है। इससे प्रतीत होता है कि तेरी मृत्यु तेरे सिरपर नाच रही है । यहीं मैं ही तुझे मृत्युमुखमें ढकेल देता, किंतु मेरे शान्तिप्रिय स्वामीकी आज्ञा नहीं है ।'

इस प्रकार कहते हुए नन्दीने हुंकार किया । भयरूप ... भयभीत असुर ... नन्दीने हर्षपूर्वक गर्जना की और तुरंत ... शिवके पास चले आये ।

उन्होंने पार्वती शिव तथा अन्य देवताओंके ... मयूरेशसे कहा—'स्वामिन् ! मैंने सम्राट् सिन्धुको ... करते हुए उसे समझाया; पर उस मूढमति असुरपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । अब उसपर आक्रमण ही श्रेयस्कर है ।'

नन्दीके वचनसे प्रसन्न होकर मयूरेशने प्रमथादि सभासदोंको आक्रमणकी आज्ञा देते हुए कहा—'... प्रिय नहीं । हम शान्तिकामी हैं, पर युद्धके बिना ... निरीह देवताओंकी मुक्ति सम्भव नहीं, ... असुरोंका प्राण हरण करना ही होगा । यह ... धर्मयुद्ध है । यह रणका अवसर हमें बड़े भाग्यसे प्राप्त हुआ ... और असुरोंकी पराजय होकर ही रहेगी । सुनिश्चित ... ओंकी प्राप्तिके लिये हमें तुरंत प्रबल आक्रमण ... चाहिये ।' यों कहकर मयूरेशने सिंह-गर्जना की ।

'मयूरेशकी जय !' प्रमथादि गणोंके सामूहिक उद्घोषसे आकाश गूँज उठा ।

युद्धारम्भ

शस्त्रसज्ज प्रमथादिगण प्रस्तुत थे । मयूरेशने अपने ... करकमलोंमें चारों आयुध धारणकर मयूरपर बैठते ही ... की । मयूरेश-वाहिनी चली । त्रिशूल लिये वृषभारूढ़ ... भी उनके साथ थे ।

नन्दीने मयूरेशसे निवेदन किया—'स्वामिन् ! अ... वाहिनीके साथ गणनायक वीरभद्र और मैं ही शत्रुओंके सर्वनाश करनेमें समर्थ हूँ । आप पहले अपने सेवकोंका पराक्रम देखिये, फिर हमसे बचे-खुचे असुरोंका संहार कर लीजियेगा ।'

अत्यन्त प्रसन्न होकर परम पराक्रमी मयूरेशने कहा—'अच्छी बात है । तुम सिंधु-दैत्यके सम्मुख अपना ... प्रदर्शन करो । वीर्यवान् भूतराज, पुष्पदन्त और ... करोड़ गणोंके साथ पहले तुम्हीं जाकर युद्ध करो ।'

'जय मयूरेश !' नन्दीने गर्जना की ।

सिन्धुके दस करोड़ असुर-सैनिक गण्डकी नगरसे ... निकले । वे अत्यन्त वीर, धीर, पराक्रमी, युद्धमें ... विविध शस्त्रास्त्रोंसे सज्ज थे ।

सातों सेनानायकोंने पृथक्-पृथक् अपनी अद्भुत सात व्यूह-रचना की।

भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ। दोनों ओरके पराक्रमी सैनिक शत्रुको परास्त करनेके लिये विविध प्रकारके शस्त्रास्त्रोंकी वर्षा करते थे, किंतु मयूरेशकी वाहिनी प्रबलतर होती जा रही थी। उस दिन युद्धमें सिन्धुके परम पराक्रमी मन्मथासुर, मदनकान्त, वीर, ध्वज, महाकाय, शार्दूल और धूर्त—ये सातों सेनानायक परलोक सिधारे। असुरोंको आशातीत दुःखद पराजय प्राप्त हुई।

मयूरेशकी सेनामें विजय-दुन्दुभि बज उठी।

'जय मयूरेश!' शिवगणोंने उच्च स्वरसे हर्ष व्यक्त किया—'मयूरेशकी सदा जय!!'

सिन्धु-पराजय

अपनी पराजयका संवाद पाकर सिन्धु अत्यन्त खिन्न हुआ। उसका मुख मलिन हो गया। दुःखसे विकल होकर वह सोचने लगा—'यह सर्वथा विपरीत कैसे हो रहा है! देवताओंका दलन करनेवाले मेरे अन्यतम वीर सैनिक कैसे मार डाले गये! जिनके सम्मुख देवता मच्छरकी तरह भागते थे, उन्हें शिवके नगण्य बालकने यमपुरी कैसे भेज दिया?'

इस प्रकार सोचते हुए सिन्धु धनुष-बाण तथा अन्य अस्त्र लेकर अश्वारूढ़ हुआ और अत्यन्त कुपित होकर मयूरेशकी सेनाके सम्मुख पहुँचा। उस समय सिन्धु साक्षात् काल प्रतीत हो रहा था। उसने तीक्ष्णतम शरोंकी इतनी वर्षा की कि देवता तथा शिवगण त्राहि-त्राहि करने लगे। कुछ ही देरमें उस महादैत्यने मयूरेशके अधिकांश सैनिकोंका वध कर दिया। उसकी शस्त्र-वर्षासे वे कहीं भाग भी नहीं सकते थे। अतएव मयूरेश-वाहिनी अतिशय व्याकुल हो गयी।

क्रोधोन्मत्त असुर सिन्धु अश्वसे उतरकर पैदल युद्ध करने लगा। उसने वीरवर वीरभद्रका पैर पकड़ लिया और उन्हें घुमाकर इतने जोरसे पृथ्वीपर पटका कि वे फिर उठ न सके। फिर उसने नन्दीके मस्तकपर इतना तीव्र प्रहार किया कि उनका मस्तक फट गया, रक्तकी धारा फूट पड़ी।

[illegible] सिन्धुने भूतराजकी कमर तोड़ दी और पुष्पदन्तको [illegible] दिया। [illegible] सिन्धु [illegible] [illegible] [illegible]

किया और वीर चपलकी चोटी तोड़ दी। [illegible] पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया। सुमुख उसके [illegible] दूर भागे। तलवारके प्रहारसे भ्रुशुण्डीका उदर [illegible] इस प्रकार पराक्रमी सिन्धुके प्रहारसे देवताओं [illegible] निष्प्राण शरीरोंसे धरती पट गयी। दर्पित [illegible] गर्जन किया। विरूपाक्ष आदि सभी [illegible] मुनियोंके साथ केवल मयूरेश ही युद्धरत थे।

मयूरेश विकराल असुर सिन्धुके सामने [illegible] पिपासु सिन्धुको देखकर सिंहके सम्मुख [illegible] भयभीत हो गये।

मयूरेशको देखकर क्रोधोन्मत्त सिन्धुने [illegible] पुत्र! मैंने तेरे पौरुषकी बड़ी प्रशंसा सुनी थी। [illegible] शृगालकी तरह काँप रहा है। तू तो माता-[illegible] गृहाङ्गणमें क्रीडा करनेवाला है। अरे मूर्ख! [illegible] सोच रहा हूँ कि तुम्हारे कोमल शरीरपर अपने [illegible] प्रहार कैसे करूँ!'

मयूरेशने तुरंत उत्तर दिया—'अमर! [illegible] करता है! मैं तो तेरा क्षणार्द्धमें ही वध कर [illegible] सूर्यप्रदत्त वरके प्रभावसे भयानक पाप किये [illegible] मृत्यु समीप आ गयी है। मैं तेरा वध करके [illegible] मुक्त करूँगा। अन्तकाल समीप आनेपर सारे पुरुष [illegible] जाते हैं। तू मेरे द्वारा मरकर दुर्लभ मुक्ति प्राप्त [illegible]

सिन्धुने कुपित होकर कहा—'मूर्ख! [illegible] कोमल शरीर छिन्न-भिन्न नहीं कर देता, तबतक [illegible] कर ले। जो जिसका भक्त होगा, वह उसके [illegible] तू व्यर्थ आत्म प्रशंसा क्यों करता है?'

इतना कहकर सिन्धुने धनुषकी [illegible] नहीं किया था, उसे उसने सूर्य-देवका स्मरण कर [illegible] पर रखा। उसने प्रत्यञ्चा कानतक खींची और [illegible] छोड़ दिया। किंतु मयूरेशने उस धनुष और [illegible] अपने [illegible] परशुसे प्रहार किया। [illegible] आकाशमें ही सैकड़ों टुकड़े होकर बिखर [illegible] हाथके भी सैकड़ों टुकड़े हो गये। [illegible]

क्रुद्ध दैत्यने मयूरेशपर खड्गसे प्रहार किया, [illegible] [illegible] उतार [illegible] दिया। [illegible] [illegible] और [illegible] सिन्धुको [illegible] दिया। [illegible]

मेरे रहते आप रण-भूमिमें न जायँ। हमारे पराक्रम-के अनन्तर आप युद्ध कीजियेगा।'

इतना कहकर षडाननने मयूरेशके चरणोंमें प्रणाम और चतुरङ्गिणी सेनाके साथ शत्रुके सम्मुख जा डटे। देवताओं और असुरोंमें संग्राम छिड़ा। कई दिनोंतक युद्ध चलता रहा। उसमें दोनों पक्षोंकी हानि हुई, पर अधिक मारे गये। अन्ततः सिन्धुने मायाका प्रयोग तब मयूरवाहन रण-भूमिमें पधारे। उनके सम्मुख की प्रत्येक माया नष्ट हो गयी। प्रायः सभी असुर मार गये। सिन्धुके मुकुट, कुण्डल तथा सभी शस्त्रास्त्र हुए। वह भागकर अपने भवनमें छिप गया।

महादैत्य सिन्धुकी मुक्ति

देवाधिदेव मयूरेश अपने गणोंसे घिरे सुन्दर सिंहासनपर थे। उन परमप्रभुकी गौतमादि ऋषिगण स्तुति करने उसी समय वहाँ माता पार्वती पहुँचीं; उन्होंने तुरंत पुत्रको अङ्कमें भर लिया। वे बोलीं—'बेटा! तू युद्धमें तरह थक गया होगा।' भगवान् शंकरने भी आते ही प्राणप्रिय पुत्र मयूरेशका आलिङ्गन किया और कहने —'तुमने इन्द्रादि देवताओंके लिये असाध्य कर्म कर । परब्रह्मस्वरूप, चराचरगुरु, सर्वज्ञ और पृथ्वीका उतारनेमें तत्पर तुम्हें ब्रह्मादि देव भी नहीं जानते, फिर ऋषिगण कैसे जान सकेंगे?'

इस प्रकार भगवान् शंकर कह ही रहे थे कि वहाँ नारदने पहुँचकर माता पार्वतीसे कहा—'माता! यहाँ आये अधिक दिन बीत गये और दैत्य-वध सम्भव दीखता। दुष्ट सिन्धु न मरेगा और न मयूरेशका विवाह अतएव मुझे तो अब जानेकी आज्ञा प्रदान कीजिये।'

महामुनि नारदके वचन सुन षडानन बोले—'निष्पाप मुनि! आप सर्वज्ञ होकर भी ऐसी बात कैसे कह रहे आप सर्वगुणसम्पन्न और निर्गुण मयूरेशकी महिमा नहीं जानते; अन्यथा ऐसी बात नहीं करते।'

'मैं तो प्रत्यक्ष सिन्धुकी मुक्ति देखकर ही आपलोगोंकी मान सकता हूँ।' नारदजीने स्पष्ट कह दिया।

'सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र मुनीश्वर! अब मैं कुछ विचार किये सिन्धु-दैत्यकी जीवन-लीला समाप्त करूँगा।' देवर्षिको दिये देते हुए मयूरेश अपने वाहन मयूरपर जा बैठे। उन्होंने नन्दी और भृङ्गीसे कहा—'मैं युद्ध करता हूँ, तुम-लोग मेरा रण-कौशल देखो।'

मयूरेशके पीछे नन्दी और भृङ्गी भी तीव्रगतिसे गण्डकी-नगरमें प्रविष्ट हुए। वीरभद्र और भूतराज भी वहाँ पहुँचे। उस समय धरती काँपने लगी।

देवदेव मयूरेशके साथ चारों गण दुर्गपर चढ़ गये। यह समाचार सुनते ही सिन्धु अवसन्न हो गया। उसकी बुद्धि काम नहीं करती थी। रोती हुई उसकी पत्नी दुर्गाने कहा—'महाराज! मैंने आपको पहले ही समझाया, पर आपने मेरी बात नहीं मानी। अब फल सामने आ जानेपर चिन्ता करनेसे क्या लाभ होगा?'

तबतक भृङ्गी उड़कर सुवर्ण-रत्ननिर्मित शिखरपर पहुँच गये। उन्होंने सभा-मण्डपके बहुमूल्य स्तम्भोंको बलपूर्वक ध्वस्तकर उसके टुकड़ोंको चारों ओर फेंक दिया। युद्धावेशसे उनका मुख लाल हो गया था।

यह देखते ही सिन्धु-दैत्यके असंख्य सैनिक ढाल-तलवार, धनुष-बाण, भाला और मुद्गर आदि लिये 'मारो! मारो!!' चिल्लाते बाहर निकले। पराक्रमी असुर अपने प्राणोंपर खेल गये; किंतु कुछ ही देरमें उन्हें इन चार वीरोंने समाप्त कर दिया। एक भी असुर सैनिक शेष नहीं बचा।

वे सिन्धुके भवनमें पहुँचे, जहाँ वह पर्यङ्कपर विश्राम कर रहा था। ये चारों उसके केश पकड़कर खींचने लगे। तब अत्यन्त क्रुद्ध सिन्धु दैत्य बाहर निकला और भीषण युद्ध करने लगा।

सिन्धु भयानक संग्राम कर रहा था। सहसा उसने मयूरेशके विराट् रूपका दर्शन किया। उनका मस्तक अन्तरिक्षको भी लाँघ रहा था, चरण पातालमें थे एवं कानोंसे दिशाएँ आच्छादित थीं। उन विराट् प्रभुके सहस्र सिर, सहस्र नेत्र, सहस्र हाथ और सहस्र पैर थे। उसे भगवान् सूर्यके वचनका स्मरण हुआ—'ऐसे ही पुरुषके हाथों तुम्हारा प्राणान्त होगा।'

सिन्धुने मयूरेशपर एक-से-एक भयानक अस्त्रोंका प्रहार किया, किंतु देवदेव मयूरेश उन समस्त अस्त्रोंको विफल करके मयूरसे उतर पड़े। उन्होंने शुद्ध जलसे आचमन किया। फिर अमृतके बीजमन्त्रसे संयुक्त कर पवित्र अन्नका जप करते हुए दसों दिशाओंमें तेज बिखेरनेवाले अपने

मैंने सीखा ही नहीं। मैं सुख-दुःख, यश-अपयश, लाभ हानि और जीवन-मृत्युकी चिन्ता नहीं करता। रणमें विजय प्राप्त करनेसे त्रिभुवनमें ख्याति और मृत्यु प्राप्त होनेपर स्वर्गकी प्राप्ति होती है। युद्धसे विरत होकर शत्रुकी शरण जानेपर निश्चय ही मुझे लोकमें अयश और मृत्युके पश्चात् पूर्वजोंके साथ नरककी प्राप्ति होगी।'

अन्ततः सिन्धुने अपनी सहधर्मिणीसे अपने अन्तर्हृदयकी बात कह दी—'मैं जगद्गुरु देवदेव मयूरेशको अच्छी तरह जानता हूँ। लङ्काधिपति रावणके लिये भगवान् श्रीरामकी भाँति ये परमप्रभु मुझे मुक्त करनेके लिये ही अवतरित हुए हैं; किंतु मैंने रणाङ्गणमें उनका शिरश्छेद करनेका निश्चय कर लिया है। मैं कालको भी तुच्छ समझता हूँ। शूर जीवनमें अहंकार नहीं छोड़ते।'

इतना कहकर सिन्धु वस्त्राभूषण, केयूर, मुकुट, रत्नहार, धनुष, तूणीर, तलवार और ढाल आदि शस्त्र और शिरस्त्राण धारणकर राजसभामें जाकर अत्युत्तम सिंहासनपर आसीन हुआ।

सिन्धु-पुत्र धर्म और अधर्मका वध

सिन्धु अपने त्रैलोक्य-विजयी वीर कौस्तुभ और मैत्रकी मृत्युपर दुःख प्रकट करते हुए अत्यन्त उद्विग्न हो गया। उस समय कल और विकल-नामक दो वीर असुरोंने मयूरेशकी सेनाको पराजित करनेकी आज्ञा माँगी। सिन्धुने उन दोनों सेनानायकोंकी प्रशंसा करते हुए उन्हें शत्रुको ध्वस्त करनेका आदेश दे दिया।

विशाल सैन्यके साथ कल और विकल रणाङ्गणमें पहुँचे। भीषण युद्ध हुआ। देव-सेनाका संहार होने लगा। फिर तो पुष्पदन्त और नन्दी असुरोंका नाश करने लगे। लाखों दैत्योंको मृत्युमुखमें झोंककर वीरवर नन्दी और पुष्पदन्त असुरके भीषणप्रहारसे मूर्च्छित हुए ही थे कि वीरभद्र और षडानन आगे बढ़े। उन्होंने शत्रुओंका बड़ा विनाश किया और अन्तमें वीरभद्रने कलके ऊपर पत्थर पटककर उसे मार डाला और विकल षडाननके कराघातसे मुक्त हुआ।

विजयी देवसेना प्रसन्नमन शिविरमें पहुँची, किंतु सिन्धुका दुःख बढ़ता गया। उसे व्याकुल देखकर उसके वीर पुत्र धर्म और अधर्मने कहा—'हमारे वीर सैनिकोंने युद्धमें अद्भुत वीरताका परिचय देकर मुक्ति प्राप्त कर ली। अब आप हमें आज्ञा दें। हम शत्रु-सैन्यको न[illegible] बंदी बनाकर ही लौटेंगे। हमारे जीवित र[illegible] चिन्ताका कोई कारण नहीं।'

सिन्धुने उन्हें प्रोत्साहित किया और वे [illegible] अधर्म गज, अश्व और पैदल असुरोंको [illegible] भूमिमें जा डटे। उन्होंने इतना भयंक[illegible] वीरभद्र, हिरण्यगर्भ, भूतराज तथा मयूरेश[illegible] होकर भागने लगी। षडाननने अपने बरछों[illegible] युद्ध किया। फिर धर्म-अधर्म उनसे बाहुयु[illegible] षडाननने उन दोनों असुरोंको एक साथ ऊ[illegible] और आकाशमें अनेक बार घुमाकर पृथ्वीप[illegible] दिया। धर्म और अधर्मके शरीर शतधा विदी[illegible] षडाननकी जय-जयकार होने लगी। प्रसन्न मन[illegible] विजयके हर्षमें उच्च घोष किया—'जय मयूरेश!'

सिन्धु-दैत्यकी पुनः पराजय

अपने पुत्र धर्म और अधर्मकी मृत्युका [illegible] सिन्धु मूर्च्छित हो गया। सचेत होनेपर वह क[illegible] अवसन्न बैठा ही था कि उसकी लावण्यवती स[illegible] बिखेरे करुण विलाप करती सभा-भवनमें पहुँची। उ[illegible] सुनकर सभी सभासदोंके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे।

'मेरे दुधमुँहे बच्चोंको युद्ध करनेकी आज्ञा कि[illegible] रोती हुई दुर्गा कह रही थी। 'उन्हें मेरा आशीर्वाद [illegible] लेने दिया गया। यदि मैं उन्हें आशिष् दे देती [illegible] संहार कदापि नहीं होता। मेरे आशीर्वादको [illegible] भी नहीं टाल सकते थे।' दुर्गा उत्तरोत्तर रोती [illegible] करती जा रही थी। किसी प्रकार उसे [illegible] पुर भेजा गया।

महादैत्य सिन्धु अत्यन्त क्रोधोन्मत्त हुआ। [illegible] शस्त्रास्त्र ग्रहण किये और दाँत पीसता हुआ दे[illegible] सर्वनाश करनेके लिये प्रस्थित हुआ। उसके पीछे [illegible] विशाल सेना भी जा रही थी।

वीरभद्रादि वीरोंने मयूरेशको सूचना दी—[illegible] संहार करनेके लिये पुनः काल-तुल्य सिन्धु ससैन्य आ र[illegible]

मयूरेश प्रसन्न होकर मयूरपर आरूढ़ हुए। [illegible] चारों आयुध धारणकर मेघ गर्जन किया, किंतु [illegible] उनके समीप पहुँचकर कहा—'विघ्नराज! वीरवर[illegible]

बड़े गणपति—उज्जैन [पृष्ठ ४१८

श्रीसिद्धिगणेश—भीलवाड़ा (राजस्थान) [पृष्ठ

पर्वतसे स्वतः प्रकट श्रीगणेश—रेवंतल (आन्ध्रदेश) [पृष्ठ ४१५

श्रीढुण्ढिराज गणपति—बांदा [पृष्ठ

...र करते हैं, नमस्कार करते हैं। जो अनेकानेक ...के कारण हैं, जिनका स्वरूप श्रुतियोंके लिये अगम्य है, जो वेदबोधित अनेकानेक कर्मोंके ...ज हैं, समस्त कार्योंकी सिद्धिके हेतु हैं तथा ... आदि जिनकी सदा सेवा करते हैं, उन आदि-...रको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। ...महाकालस्वरूप हैं, लव-निमेष आदि भी जिनके रूप हैं, जो कला और कल्परूप हैं तथा जिनका स्वरूप ...ी अगम्य है, जो लोगोंके ज्ञानके हेतु तथा मनुष्योंको ...प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं, उन आदि-...रको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। ... आदि देवता सदा जिनके चरणोंकी सेवा करते ...जो योगियोंके नित्य रक्षक, चित्स्वरूप, निरन्तर सुन्दर रूप धारण करनेवाले और करुणाके सागर हैं, ...आदि-मयूरेश्वरको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार ...हैं। सुरश्रेष्ठ! आप सदा भक्तजनोंके लिये हठात् ...न्दमय सुख देनेवाले हैं; क्योंकि आप संसारके जीवोंपर परम करुणाका विस्तार करते हैं। प्रभो! काम-...दि छः प्रकारकी ऊर्मियोंके वेगको शान्त कीजिये। आपके अनन्त सुखदायक भजनकी अपेक्षा मुक्ति भी ...ेय नहीं है। हे गजानन! क्या हम आपके योग्य कोई ...या सुन्दर स्तवन कर सकते हैं? आप समस्त गुणोंकी ...और सम्पूर्ण जगत्के प्रेमपात्र हैं। आपके गुण-समूहोंका ...करनेकी शक्ति हममें नहीं है। आपका जो यह जगत्की रचनाका क्रम है, वह समुद्रके समान अपार है।'

इस प्रकार स्तुति करनेके अनन्तर देवताओंने कहा—...श्वर! आपने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी! आपने ...सुरका वध कर देवताओंको निश्चिन्त और सुखी कर दिया।'

'मयूरेश्वरके द्वारा महादैत्य मारा गया।'—यह समाचार ...ही माता पार्वती आनन्द-विह्वल हो गयीं। उन्होंने ...र अपने परम पराक्रमी पुत्र मयूरेशको छातीसे लगा ...। जननीके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये थे।

आनन्दमग्न पार्वतीवल्लभ शिव भी वहाँ पहुँचे। ...ने अपने पुत्रका अभिनन्दन करते हुए कहा—'...य! ...अद्भुत कार्य किया। जिस महादैत्यके भयसे देवता ...छिपे भागते फिरते थे, उसे तुमने मारकर पृथ्वीका बोझ उतार दिया। त्रैलोक्य सुखी हो गया।'

मयूरेश-वधनके अनन्तर देवगण स्वधाम गये।

लीला-संवरण

महावीर सिन्धुके निधनका संवाद जब नगरमें पहुँचा तो सिन्धुके माता-पिता उग्रा और चक्रपाणि तथा सहधर्मिणी दुर्गा हाहाकार करने लगी। उनके करुण क्रन्दनसे सम्पूर्ण राजभवन शोकाकुल हो उठा। विलाप करती हुई दुर्गा अपने पतिके शवके साथ बिल्व और चन्दनकी चितापर जा बैठी।

चक्रपाणिने देवदेव मयूरेशके समीप पहुँचकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उनकी स्तुति करने लगे—'प्रभो! आप निर्गुण, चराचर-गति, गुणाध्यक्ष, शुद्ध और विश्वपति हैं। आपकी मायासे मोहित प्राणी आपको नहीं जानते। आपके दुर्लभ दर्शनसे आज मेरा और मेरे समस्त नागरिकोंका जीवन सफल हो गया। हम सभी धन्य हो गये।'

करुणासागर मयूरेशने अत्यन्त संतुष्ट होकर चक्रपाणिसे कहा—'नरेश! तुम्हारा वीर पुत्र मेरे हाथों मुक्त हुआ। अब तुम कोई वर माँगो।'

राजाने हाथ जोड़कर निवेदन किया—'देवेश्वर! यदि आप मुझपर संतुष्ट हैं तो कृपापूर्वक अपने त्रैलोक्यपावन चरण कमलोंसे मेरे राजभवन और नगरको पवित्र करें।'

करुणामूर्ति मयूरराजने स्वीकृति दे दी।

ध्वजा और पताका आदिसे सजे गण्डकी-नगरमें गणोंसहित मयूरराजने प्रवेश किया। राजा तथा समस्त प्रजाने उनका उन्मुक्त हृदयसे अभिनन्दन किया। मयूरेश चक्रपाणिकी सभामें अत्युत्तम सिंहासनपर विराजमान हुए। उनके चारों ओर गणोंका समुदाय था। चक्रपाणि-नरेशके द्वारा युक्त किये गये नवीन वस्त्राभरण धारण किये विष्णु आदि समस्त देवता भी श्रेष्ठ आसनपर विराजमान थे।

समस्त देवताओं और नागरिकोंने उस विशाल रत्न-मण्डपमें देवदेव मयूरेशकी पूजा और स्तुति की। फिर नरेशने सम्पूर्ण देवताओंकी विधिवत् पूजा की और हाथ जोड़कर कहा—'आज मेरा जीवन और कुल धन्य है, जिससे मुझे समस्त देवताओंका एक साथ दर्शन और पूजन-का परम दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ। मेरे [illegible] जन्मोंके पुण्य उदित होनेसे मुझे [illegible] मयूरेशके प्रत्यक्ष दर्शन हो गये हैं।'

परम मङ्गलमयी अद्भुत [illegible] चक्रपाणिने हाथ जोड़कर कहा—'परमप्रभु! [illegible] देवताओं

भारतके प्रमुख श्रीगणेश-विग्रह—२

हुए। स्वाहा, स्वधा, वषट्कार पूर्ववत् होने लगा। अपने धामको जाऊँगा।'

ु मयूरेशके ये वचन सुनकर देवताओंके नेत्रोंसे अश्रु ः। उन्होंने कहा—'प्रभो! आप हमें छोड़कर कहाँ हैं?'

ूरेशके जानेकी बात सुनकर माता पार्वती तो मूर्च्छित । सचेत होनेपर वे रोती हुई बोलीं—'हे दीनानाथ! ागर! तुम माताको छोड़कर कहाँ जा रहे हो! मैं म्हारे जीवित नहीं रह सकती।'

ूरेशने जननीको समझाया—'माता आपके वियोगका मुझे भी है, पर मैं एक स्थानपर सदा नहीं रह । एक भयकर दैत्यका वध करनेके लिये मैं द्वापरमें पुनः आपके पुत्रके रूपमें प्रकट होकर आपको पुत्र-सुख प्रदान करूँगा। मेरा वचन मिथ्या नहीं होता।'

षडाननने व्याकुल होकर कहा—'आप जहाँ जाते हैं, वहाँ मुझे भी साथ ले चलें। मुझ कृपण, दीन और बालककी उपेक्षा न करें।'

परम प्रभुने रोते हुए षडाननको आश्वस्त किया—'भाई! तुम चिन्ता मत करो। मैं सर्वान्तर्यामी तुम्हारे हृदयमें भी हूँ। तुमसे मेरा वियोग कदापि सम्भव नहीं।'

तदनन्तर उन्होंने अपना मयूर षडाननको देते हुए कहा—'मयूरध्वज!'

और मयूरेश प्रभु वहीं अन्तर्धान हो गये।

जय मयूरेश्वर!

(२)

श्रीगजानन

सिन्दूरका जन्म

ापर युगकी बात है। एक दिन पार्वतीवल्लभ शिव ब्रह्म-सदन । उस समय चतुर्मुख शयन कर रहे थे। कमलासनने ः उठते ही जँभाई ली। उसी समय उनके मुखसे एक र पुरुष प्रकट हुआ। जन्म लेते ही उसने त्रैलोक्यमें त्पन्न करनेवाली घोर गर्जना की। उसके उस गर्जनसे वसुधा काँप गयी, दिक्पाल चकित हो गये और ग क्षुब्ध होकर विष उगलने लगे। पर्वत खण्ड-खण्ड और मनुष्य जाति तो कल्पान्तके भयसे अत्यन्त व्याकुल ी।

उस महाघोर पुरुषकी अङ्ग-कान्ति जपा पुष्पके समान थी और उसके शरीरसे अत्यन्त सुगन्ध निकल रही थी। ्पफणाकी तरह अत्यन्त सुन्दर था। उसके अनुपम ौन्दर्यको देखकर पद्मयोनि भी चकित हो गये। उन्होंने पूछा—'तुम कौन हो! तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ है तुम्हें क्या अभीष्ट है?'

उक्त पुरुषने उत्तर दिया—'देवाधिदेव! आप अनेक ्डोंका निर्माण करते हैं, सर्वज्ञ हैं; फिर अनजानकी तरह पूछ रहे हैं! जँभाई लेते समय मैं आपके मुखसे हुआ आपका पुत्र हूँ; अतएव आप मुझे स्वीकार ये और मेरा नामकरण कर दीजिये। हे नाथ! आप मुझे रहनेका स्थान और आहार प्रदान कीजिये तथा मुझे क्या करना है, यह भी बता दीजिये।'

विधाता अपने पुत्रका सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो गये थे; अब उसकी मधुर वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"बेटा! अतिशय अरुण वर्ण होनेके कारण तेरा नाम 'सिन्दूर' होगा। त्रैलोक्यको अधीन करनेकी तुझमें अद्भुत शक्ति होगी।"

अपने पुत्रसे अत्यधिक तुष्ट वेदगर्भने उसे वर प्रदान करते हुए आगे कहा—'तू क्रोधपूर्वक अपनी विशाल भुजाओंमें पकड़कर जिसे दबोच लेगा, उसके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे। पञ्चभूतोंसे तुम्हें कभी कहीं भय नहीं रहेगा। देव, दानव, यक्ष और मनुष्यसे तू सदा निर्भय रहेगा। इन्द्रादि लोकपाल और काल भी तेरी क्षति नहीं कर सकेंगे। दिनमें और रात्रिमें भी तुझे कभी भय नहीं प्राप्त होगा। बेटा सिन्दूर! सजीव और निर्जीव किसी वस्तुसे तुझे भय नहीं; त्रैलोक्यमें तेरी जहाँ इच्छा हो, तुझे जो स्थान प्रिय लगे, वहीं निवास कर।'

पितामहसे इतने वर प्राप्तकर सिन्दूरने प्रसन्नतापूर्वक गर्जन किया। उसके अतिशय कर्कश स्वरसे समुद्र क्षुब्ध हो गये। उनमें ऊँची ऊँची लहरें उठने लगीं। सिन्दूरने अपने पिताके चरणोंमें प्रणामकर कहा—'अखिल ब्रह्माण्डनायक! मैं आपके

। तुमसे युद्ध करो ।' सर्वथा मूर्ख, उद्दण्ड, प्रचण्ड
णुकी ओर बढ़ा ।

रे दैत्य ! मैं तो सत्त्वगुण-सम्पन्न होनेके कारण
पञ्जनमें लगा रहता हूँ । इस कारण युद्धमें मुझसे
करना तुम्हारे लिये अत्यन्त सरल है ।'
ने असुरको वहाँसे हटानेका प्रयत्न किया—
त्रमें कामारि प्रसिद्ध हैं । तुम उनसे युद्ध करो; तब
तोष तो होगा ही, तुम्हारी कीर्ति भी बढ़ेगी ।'

कैलासपर

दोन्मत्त मूर्ख असुर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । वह बड़े
उड़ा । त्रिभुवनको कम्पित, पर्वतोंको चूर्ण और वनोंको
करता हुआ वह कैलासपर्वतपर पहुँचा । वहाँ आशुतोष
पद्मासन लगाये ध्यानस्थ थे । नन्दी और भृङ्गी आदि
उन परम प्रभुके आस-पास थे और माता पार्वती
सेवा कर रही थीं ।

मलाच्छादित व्याघ्राजिनपर तपस्वी कर्पूरगौरके ललाटपर
चन्द्र सुशोभित था । उनके विशाल स्कन्धपर गजचर्म पड़ा
था । ऐसे परम पावन एवं परम शान्त त्रैलोक्य-त्राता
को देखकर सिन्दूर उनकी निन्दा करने लगा । उसने
—'इस अरण्यवासी तपस्वीसे क्या युद्ध करूँ ! हाँ,
की परम सुन्दरी सहधर्मिणीको ही ले जाऊँ ।'

यह सोचकर सिन्दूर सतीकी ओर मुड़ा ही था कि वे
पत्रकी भाँति काँपती हुई मूर्च्छित हो गयीं । महापातकी
सुरने जगज्जननीकी वेणी पकड़ ली और उन्हें बलपूर्वक
चला ।

नन्दी और भृङ्गी आदि गण उक्त असुरका कुछ बिगाड़
सके । सर्वथा असहाय और निरुपाय माता पार्वती रोती
हुई विलाप करती जा रही थीं ।

व्याकुल नन्दी और भृङ्गी आदि शिवगण हाहाकार करने
थे । अत्यधिक कोलाहलसे त्रिपुरारिकी समाधि भङ्ग हुई ।
शंकरने गणोंसे चिन्ताका कारण पूछा तो अधीर गणोंने
बताया—'प्रभो ! आप प्रगाढ़ समाधिमें स्थित थे, उस समय
अत्यन्त बलवान् पर्वताकार एक दैत्य आया । उसके गर्जनसे
धरा काँपती थी, पर्वत चूर्ण होते जा रहे थे और वृक्ष टूट-
टूटकर गिर पड़ते थे । उसे देखते ही माता काँपने लगीं और
उसकी दृष्टि पड़ी तो वे भयवश मूर्च्छित हो गयीं । उक्त
क्रूरतम असुर मूर्च्छित माता पार्वतीको बलात् ले गया ।
राक्षसराज दशाननके क्रूर करोंमें पड़ी जनकनन्दिनीकी तरह
माता रोती और विलाप करती जा रही थीं । हमलोग कुछ
नहीं कर सके, हाथ मलते रह गये ।'

क्रोधसे भगवान् शंकरके नेत्र लाल हो गये । उन्होंने
तुरंत अपनी दसों भुजाओंमें त्रिशूलादि शस्त्रास्त्र धारण किये
और वृषभपर आरूढ़ हो वे तीव्रतम गतिसे सिन्दूरके पीछे
दौड़े तथा क्षणभरमें ही उसके समीप पहुँच गये । उन्होंने
मदान्ध असुरके सम्मुख जाकर कहा—'महादुष्ट ! मेरी पत्नीको
तुरंत छोड़ दे । मेरी दृष्टिमें पड़कर तू भाग नहीं सकता ।'

अतिशय गर्वोन्मत्त सिन्दूरने क्रोधपूर्वक उत्तर दिया—
'मैं मच्छरके भिनभिनानेकी चिन्ता नहीं करता । मेरे श्वास
वायुसे सुमेरु काँप जाता है, फिर तुझ तपस्वीकी क्या गणना है !
तू यहाँसे सीधे जाकर किसी दूसरी स्त्रीसे विवाह कर ले;
अन्यथा यदि युद्ध करना चाहता है तो आ जा ।'

सिन्दूरका शिवसे युद्ध

इस प्रकार कटूक्ति कहकर दर्पोन्मत्त सिन्दूर त्रिपुरारिसे
बाहु-युद्धके लिये आगे बढ़ा । अत्यन्त कुपित वृषभध्वज भी
असुरसे युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत थे ही; उसी समय माता
पार्वतीने मन-ही-मन मयूरेशका चिन्तन किया । तत्क्षण कोटि-
सूर्यसमप्रभ देवदेव मयूरेश्वर ब्राह्मणके वेषमें सिन्दूर और
शंकरके बीच प्रकट हो गये । वे अत्यन्त सुन्दर एवं वस्त्रा-
भूषण-भूषित थे । उन्होंने अपने तीक्ष्णतम तेजस्वी परशुसे
असुरको पीछे हटाकर अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा—'माता
गिरिजाको तुम मेरे पास छोड़ दो; फिर शिवके साथ युद्ध
करो । युद्धमें जिसकी विजय होगी, पार्वती उसीकी होंगी;
अन्यथा नहीं ।'

ब्राह्मणवेषधारी मयूरेशके वचन सुनकर सिन्दूर संतुष्ट हुआ ।
उसने माता पार्वतीको मयूरेशके पास चले जाने दिया और
फिर युद्ध आरम्भ हुआ । वर-प्राप्त असुर बालक था और देवेश
पराक्रमी और युद्धपटु थे । क्रोधसे उन दोनोंके नेत्र लाल थे । जब
असुर भगवान् शिवको अपने भुज पाशमें लेना चाहता, तब
मयूरेश अदृश्य रूपसे उसके विशाल वक्षपर अपने तीव्रतम परशु-
से प्रहार कर देते; वह छटपटा उठता । इस प्रकार अनेक बार
परशुके आघातसे सिन्दूरकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गयी ।
असुरके शिथिल होते ही मदनान्तकने उसपर अपने कठोर
त्रिशूलका प्रहार किया ।

गयीं। स्वाहा, स्वधा और वषट्कारके स्वर शान्त सर्वत्र हाहाकार व्याप्त हो गया।*

की गुफाओंमें गुप्त-रीतिसे निवास करनेवाले देवता, और किंनरादि एकत्र होकर दुर्दान्त दानवके शासनसे मुक्त होनेका उपाय सोचने लगे।

स समय देवगुरु बृहस्पतिने कहा—"देवताओ और ! भगवान् विनायक सर्वत्र विद्यमान हैं। उनके रहते होनेका कोई कारण नहीं। आप सब लोग उन देवदेव की प्रार्थना करें। वे दयामय 'गजानन'-नामसे शिवके घर अवतरित होंगे और निश्चय ही असुराधम वध करेंगे। उस समय सम्पूर्ण जगत्‌की यातना जायगी।"

गुरु बृहस्पतिके ये वचन सुन देवगण करुणामय की स्तुति करने लगे—

तः कारणं योऽसौ रविनक्षत्रसम्भवः।
द्धसाध्यगणाः सर्वे यत एव च सिन्धवः॥
धर्वाः किंनरा यक्षा मनुष्योरगराक्षसाः।
श्चराचरं विश्वं तं नमामि विनायकम्॥
ो ब्रह्मादयो देवा मुनयश्च महर्षयः।
ो गुणत्रयो जातास्तं नमामि विनायकम्॥
ो नानावताराश्च यश्च सर्वहृदि स्थितः।
स्तोतुं नैव शक्नोति शेषस्तं गणपं भजेत्॥
रो निर्मितः केन विश्वसंहारकारकः।
र्तिमापितं विश्वं त्वयि स्वामिनि जाग्रति॥
यं कं शरणं यामः को नु पास्यति नोऽखिलान्।
ं दुष्टबुद्धिं त्वमवतीर्य शिवालये॥

(गणेशपु० २। १२९। १४-१९)

जगत्‌के कारण हैं, सूर्य और नक्षत्रकी उत्पत्ति है, सिद्ध, साध्यगण और समस्त सागर जिनसे प्रकट हुए हैं, गन्धर्व, किंनर, यक्ष, मनुष्य, नाग, राक्षस तथा समस्त चराचर जगत् जिनसे प्रकट हुए हैं, उन भगवान् विनायकको हम प्रणाम करते हैं। जिनसे ब्रह्मा आदि देवता, मुनि, महर्षि और तीनों गुण प्रकट हुए हैं, उन विनायकको हम नमस्कार करते हैं। जिनसे नाना अवतारोंका प्रादुर्भाव होता है, जो सबके हृदयमें विराजमान हैं तथा शेषनाग भी जिनकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं, उन भगवान् गणपतिका भजन करना चाहिये। जगत्‌का संहार करनेवाले इस सिन्दूरासुरका निर्माण किसने किया है ! आप-जैसे स्वामीके जागरूक रहते हुए उस असुरने सम्पूर्ण विश्वको संकटमें डाल दिया है। इस दशामें हम आपको छोड़कर किसकी शरणमें जायँ ! कौन हम सबका पालन करेगा ? आप ही भगवान् शिवके घरमें अवतीर्ण हो इस दुष्टबुद्धि असुरका संहार कीजिये।'

इस प्रकार स्तुति कर देवता और मुनि, सभी तपस्यामें संलग्न हुए। कुछ देवता और मुनि निराहार रहकर, कुछ एक पैरपर खड़े होकर, कुछ अपने दोनों हाथ ऊपर उठाये और कुछ जलमें खड़े होकर विनायकका ध्यान और जप करने लगे। इस प्रकार देवताओं और ऋषियोंके कठोर तपसे देवदेव गणराज प्रसन्न हो उनके समक्ष प्रकट हुए।

वे अनेकों सूर्य और प्रलयाग्निके तुल्य तेजस्वी थे। देवता और मुनिगणोंने गणराजका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्नतासे उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़े अपलक दृष्टिसे वे उनके परम तेजस्वी मुखारविन्दको ओर निहारने लगे।

भक्तवाञ्छाकल्पतरु गणेशने कहा—"देवताओ ! मैं असुर सिन्दूरका वध करूँगा। तुमलोग निश्चिन्त हो जाओ। तुम्हारे द्वारा किया हुआ यह स्तवन 'दुःखप्रशमन स्तोत्र'के नामसे प्रसिद्ध होगा।† जो इसका दिनमें एक बार, दो बार या तीन बार पाठ करेगा, उसके त्रिविध तापोंका शमन हो जायगा। मैं शिवके घरमें अवतरित होऊँगा। 'गजानन'—यह मेरा सर्वार्थसाधक नाम प्रसिद्ध होगा।

---

* ...द्बुद्धिः स बभूव सहसा च तान्।
...ा केचिन्मुनिगणास्त्यक्त्वा देहं दिवं गताः॥
...श्च मेरुकन्दर्यां न्यवसन् विगतज्वराः।
...श्च निद्रात्रासेन केचिच्च नाविन्दन् सुखम्॥
...राः सकलास्तेन विध्वस्ता देवता अपि।
...ठ भयेन ग्रामेऽस्मिन् क्रियाश्च वैदिकाः॥
...स्वधावषट्कारा हाहाकारोऽप्यभवत्।

(गणेशपु० २। १२९। ६-९)

† दर्शिष्ये सिन्दूरं देवा वधं करिष्ये कर्हिचित्।
दुःखप्रशमनं नाम स्तोत्रं च भविष्यति॥

(गणेशपु० २। १२९। ११)

आहत असुर गिर पड़ा। तब ब्राह्मण-वेषधारी मयूरेशने उससे कहा—'त्रैलोक्यका विनाश करनेवाले शिवको तुम युद्धमें पराजित नहीं कर सकते। इस कारण माता पार्वतीको छोड़कर यहाँसे चले जाओ, अन्यथा कालकण्ठ तुम्हें यहीं समाप्त कर देंगे।'

विवश हो सिन्दूरने पार्वतीकी आशा छोड़ दी और वह पृथ्वीके लिये प्रस्थित हुआ। शंकर विजयी हुए।

तब माता पार्वतीने ब्राह्मणसे कहा—'मुनिवर! पातकी असुरके करोंसे मुझे मुक्ति दिलानेवाले आप कौन हैं! आप कृपापूर्वक मुझे अपने वास्तविक स्वरूपका दर्शन कराइये। आप मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। मुनिनाथ! मैं प्राण देकर भी आपकी कृपाका प्रतिदान देनेमें समर्थ नहीं हूँ।'

'माता! मैंने कुछ नहीं किया।' ब्राह्मणवेषधारी मयूरेशने उत्तर दिया—'भगवान् शंकरने ही असुरको पराजित कर आपको मुक्त कराया है।'

मयूरेश्वर अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये। अत्यन्त सुन्दर दस भुजाएँ, मस्तकपर विद्युच्छटा विलेखा मणिमय मुकुट, ललाटपर कस्तूरी-तिलक, कानोंमें झिलमिलाते कुण्डल, सुन्दर गोल कपोल, शुक-चञ्चु-तुल्य नासिका, वक्षपर अद्भुत मणियों एवं रत्नोंसे निर्मित दिव्य माला सुशोभित थी। वे माताकी ओर देखकर मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे।

मयूरेश्वरको देखकर माता परमानन्दमें मग्न हो गयीं। उन्होंने अपना मस्तक मयूरेश्वरके चरणोंपर रखा ही था कि उन्होंने उन्हें तुरंत उठाकर कहा—'माता! त्रेतामें मैंने आपको पुनः दर्शन देनेके लिये कहा था; अतएव अब पुनः मैं इस द्वापरमें भी आपके पुत्रके रूपमें प्रकट होऊँगा। उस समय 'गजानन' मेरा नाम विख्यात होगा और मैं इस दुर्दान्त सिन्दूरासुरका वध कर धरतीका बोझ उतार दूँगा।'

मयूरेश्वर अदृश्य हो गये। स्नेहमयी माता पार्वती उनका वियोग न सह सकीं; तत्क्षण मूर्च्छित हो गयीं।

'प्रिये! तुम अपने मनको शान्त करो। तुम मयूरेशको अपने हृदयमें देखो। उन देवदेव विनायककी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती। वे अपना कथन चरितार्थ करते ही हैं।' इस प्रकार भगवान् शंकरने माता पार्वतीको आश्वस्त किया और उनके साथ वृषभारूढ़ हो ... लिये चल पड़े।

सिन्दूरासुरकी विजय

ब्रह्मदेवको पराजित करनेवाले वर-मदोन्म... मर्त्यधाममें पहुँचकर आसुरी गर्जना की। ... विशाल भूधर हिल उठे, वृक्ष समूल उखड़कर ... लगे, भयाक्रान्त पक्षी आकाशमें उड़ गये और ... पशु व्याकुल होकर अरण्यमें इधर-उधर भागने ...

दुष्ट सिन्दूरकी शक्ति देखकर उसके समीप ... आसुरी प्रकृतिके मनुष्य एकत्र हो गये। ... उनकी निरङ्कुश दानवी प्रवृत्तियाँ तुष्ट होती ... इस कारण वे सभी शक्तिशाली सिन्दूरका सम... ही थे, उसकी रुचि और इच्छाकी पूर्तिके ... लिये भी तैयार रहते थे।

इस प्रकार सिन्दूरकी शक्ति उत्तरोत्तर ब... थोड़े ही समयमें उसके अधीन अत्यन्त निष्ठु... हिंसक असुरोंकी विशाल सेना एकत्र हो गयी। अमोघ वर, अमित शक्ति, तरुणावस्था, तामसिक ... अहर्निश प्रभाव, विशाल वाहिनी और सर्वोपरि दु... ऐसी स्थितिमें ब्रह्मपुत्र सिन्दूरका नियन्त्रण कैसे सम्भ...

उद्दण्ड एवं निरङ्कुश शक्तिशाली सिन्दूरने ... आक्रमण किया। उसने अत्यन्त निर्दयतापूर्वक ... नरेशोंको चीरकर उनके दो टुकड़े कर दिये ... राजाओंको आकाशमें फेंक दिया। उसके सम्मुख ... पालक राजा युद्ध करने आये, वे सब स्वर्ग... नरपालोंने उसकी शरण ग्रहण कर ली, किंतु ... नरेश अपना राज्य छोड़ अरण्यादिमें छिप गये और ... अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे। इस प्रकार सिन्दूरने ... नरपतियोंपर विजय प्राप्त कर ली।

इसके अनन्तर दुरात्मा सिन्दूर परम विरक्त ... मुनियोंके पीछे पड़ा। उसने निरपराध ... निर्दयतापूर्वक मार डाला और कुछ मुनियोंको ... कारागारमें भेज दिया। ... एवं अरण्योंमें छिपकर जीवन निर्वाह करने लगे। ... ने समस्त मन्दिरों एवं देव प्रतिमाओंको नष्ट कर ... मिला दिया। उक्त असुर शासनमें ...

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं रजःसत्त्वतमोगुणम्।
मायाविनं मायिनं च सर्वमायाविदं प्रभुम् ॥
सर्वान्तर्यामिणं नित्यं सर्वाधारं परात्परम्।
चतुर्णामपि वेदानां मानसस्याप्यगोचरम् ॥
महद्भाग्यं मम विभो स त्वं मे पुत्रतां गतः।
प्रतीक्षन्त्या मम विभो प्रत्यक्षं दर्शनं गतः।
इदानीं त्वद्वियोगो मे न स्यादेव तथा कुरु ॥

(गणेशपु० २ । १३० । १६–२०)

'जो निर्विकल्प, चिदानन्दघन, ब्रह्मस्वरूप, भक्तप्रिय, ...कार तथा गुणभेदसे साकार हैं, उन परमेश्वरको मैं ...कार करती हूँ। प्रभो! आप अतिशय स्थूल, सूक्ष्मसे ...त्यन्त सूक्ष्म, सर्वज्ञ व्यापक तथा अव्यक्त होते हुए भी ...क्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्यक्त-भावको धारण ...वाले हैं; आप सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणोंके आधार ...मायावी, मायाके आश्रय, सम्पूर्ण मायाओंके ज्ञाता, ...मर्थ, सर्वान्तर्यामी, नित्य, सर्वाधार और परात्पर हैं; ...क चारों वेदों और मनकी भी पहुँच नहीं होती; ...। मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आप मेरे पुत्र हो गये। ...कालसे इस शुभ अवसरकी प्रतीक्षा कर रही थी। ... आपने मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दे दिया। अब ऐसी कृपा ...', जिससे मुझे आपका कभी वियोग न देखना पड़े।'

...स प्रकार माता पार्वतीकी प्रार्थना सुनते ही परम प्रभु ... अद्भुत चतुर्भुज शिशु हो गये। उनके चार भुजाएँ ...नासिकाके स्थानपर शुण्डदण्ड सुशोभित था। उनके ...र चन्द्रमा और हृदयपर चिन्तामणि दीप्तिमान् थी। ...पति दिव्य वस्त्र धारण किये, दिव्यगन्धयुक्त नवजात ... तरह माताके सम्मुख उपस्थित थे।

...ता पार्वतीने अपने पुत्रको ध्यानपूर्वक देखा तो ...हो गयीं। ऊबड़-खाबड़ सिर, छोटी-छोटी आँखें, ...सूँड़की तरह नाक, शूर्पाकार कर्ण, छोटे-छोटे हाथ-पैर ...विशाल उन्नत उदर! शिशुका विकट रूप देखकर गौरी ...हो गयीं।

...वप्रिया मन-ही-मन सोचने लगीं—'रक्तवर्णका इतना ...और भयानक पुत्र तो मैंने कहीं नहीं देखा। देवता, ...देव-पत्नियाँ और ऋषियोंकी स्त्रियाँ इसे देखेंगी तो ...मनमें क्या कहेंगी? शिशु थोड़ा कम सुन्दर हो, तब ... भी उसका प्यारपूर्वक पालन किया जाता है; किंतु इसके तो प्रत्येक अवयव—हाथ-पैर, सिर, आँख, कान, नाक और पेट—सभी एक-से-एक विचित्र, विकट और भयावह हैं। इस शिशुको देखनेवाले सभी हँसेंगे।' माताके नेत्रोंमें आँसू भर आये।

उसी समय वहाँ सर्वात्मा शिव पहुँचे। सम्मुख नवजात शिशुका आकार-प्रकार देखकर वे पार्वतीके दुःखका कारण समझ गये। पुत्रको ध्यानपूर्वक देखकर उन्होंने कहा—'प्रिये! बाह्य सौन्दर्यसे व्यक्तित्वका सर्वथा सत्य अनुमान कठिन है। यह रक्तवर्ण, चतुर्भुज, गजमुख, लम्बोदर शिशु असाधारण है। यह निखिल सृष्टिका स्वामी, सर्वसमर्थ, सर्वात्मा एवं मङ्गल-मूल-निधान है। यह त्रैलोक्यकी रक्षाके लिये कृतयुगमें दशभुज विनायकके रूपमें अवतरित हुआ था। त्रेतामें शुक्लवर्ण, षड्भुज मयूरेशके रूपमें इसीने तुम्हारा पुत्र होकर सिन्धुका वध कर त्रिभुवनको स्वतन्त्रता प्रदान की थी और अब इस द्वापरमें अपने कथनानुसार पुनः सिन्दूर-वधके लिये तुम्हारे पुत्रके रूपमें प्रकट हुआ है। कलियुगमें यह पापाचार और अनाचारको ध्वस्तकर सत्त्वकी स्थापनाके लिये पुनः सुन्दर चतुर्भुज रूपमें अवतरित होगा। उस समय इसका 'धूम्रकेतु' नाम प्रसिद्ध होगा।'*

'आशुतोष! आपने सर्वथा उचित कहा। आपने मुझे समझ लिया।' पार्वतीवल्लभके वचन सुन शिशु बोल उठा—'मैं त्रैलोक्यविजयी सिन्दूरासुरका वध कर धरतीका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण हुआ हूँ। मैं सम्पूर्ण जगत्को सुख करूँगा। वैदिक कर्म प्रारम्भ हो जायँगे और मैं भक्तोंकी वाञ्छा सिद्धकर राजा वरेण्यको वर एवं ज्ञान प्रदान करूँगा।'

---

* गणेशपुराणमें गणेशके कलियुगीन अवतार धूम्रकेतुको यहाँ 'चतुर्भुज' बताया गया है। परंतु इसी पुराणमें अन्यत्र धूम्रकेतुको 'द्विभुज' भी कहा गया है। यहाँ क्रमशः चतुर्भुज और द्विभुजके सूचक वचन प्रमाणरूपमें प्रस्तुत किये जाते हैं। भगवान् शिव पार्वतीसे कहते हैं—

अथ कलियुगे देवि धूम्रकेतुरिति प्रभुः।
चतुर्भुजश्चाश्वनेता भविता [illegible] पुरि ॥

(२ । १३३ । १२)

द्विभुज बतानेवाले वचन इस प्रकार हैं—

'कलौ तु धूम्रवर्णोऽसावश्वारूढो द्विहस्तवान्।'

(१ । १ । १९)

'धूम्रकेतुरिति ख्यातो द्विभुजः [illegible] ॥'

(१ । ८५ । १५)

पितामहका पुत्र स्वस्थ और सुन्दर था; उसे देखकर ता इतने प्रसन्न हुए कि पात्र-अपात्रका विचार किये उसे अनमोल निधि दे दी और माता पार्वती तथा धर्म-य बुद्धिमान् नरेशके यहाँ त्रैलोक्यत्राता परम पुरुष रित हुए। गजमुख उनकी दृष्टिमें सुन्दर नहीं थे इस कारण देवताओं, ऋषियों, ब्राह्मणों एवं पृथ्वीके रक अवतारी महापुरुष प्रकट होते ही हिंसक पशुओंके रके लिये निर्जन वनमें फेंक दिये गये।

गहन काननमें सरोवरके तटपर पड़े नवजात शिशुपर एक कको दृष्टि पड़ी। जम्बुक प्रसन्न होकर शिशुकी ओर ही था कि उसी मार्गसे महर्षि पराशर आ गये। उन्होंने पर हाथ-पैर उछालते दीप्तिमान् बालकको देखा तो मन-न सोचने लगे—'मुझे तपभ्रष्ट करनेके लिये देवेन्द्रने कोई रची है। मैं स्वाभाविक ही पापभीरु हूँ। जान-बूझकर कोई पाप किया नहीं है। हे दीनानाथ! हे चन्द्रचूड़! रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार मन-ही-मन प्रार्थना करते हुए करुणामूर्ति र्षि पराशरने शिशुके समीप पहुँचकर देखा—'दिव्य लंकारविभूषित, सूर्यतुल्य-तेजस्वी, चतुर्भुज, गजमुख लौकिक शिशु।'

महामुनिने शिशुको बार-बार ध्यानपूर्वक देखा। उसके न्नन्हे अरुण चरण-कमलोंपर दृष्टि डाली—उनपर ध्वज, श और कमलकी रेखाएँ दिखायी दीं।

महर्षिको रोमाञ्च हो आया। हर्षातिरेकसे हृदय द, कण्ठ अवरुद्ध और नेत्र सजल हो गये। आश्चर्यचकित नके मुँहसे निकल गया—'अरे, ये तो साक्षात् परब्रह्म मेश्वर हैं। ये मुझसे छल क्यों करेंगे! इन करुणामयने जा और ऋषियोंका कष्ट-निवारण करने और मेरा न-जन्म सफल बनानेके लिये अवतार ग्रहण किया है।'

...रहे थे। अपने भाग्यकी भूरि-भूरि ... जगद्वन्द्य परम प्रभुके त्रिताप-... लाल-लाल चरणोंको अपने ... उन्हें अपने नेत्रोंसे स्पर्श किया, ... प्रणाम किया। ... स्तुति करते हुए कहा— ... जीवन, जन्म, मेरे माता-... । अब मैं जन्म-मृत्युसे मुक्त हो गया; मेरी सम्पूर्ण वाञ्छाओंकी पूर्ति हो गयी। मैं ही नहीं—यह धरती, यह आकाश, यह पवन, यह निबिड़ वन, यह सरोवर और सरोवरका तट, सभी धन्य हो गये—सभी कृतकृत्य हो गये। आह! किस निष्ठुर अभागेने इन महामहिमको यहाँ छोड़ दिया।'

महर्षिने शिशुके चरणोंमें पुनः प्रणाम कर उसे अत्यन्त आदरपूर्वक अङ्कमें ले लिया और प्रसन्न-मन द्रुत गतिसे आश्रमकी ओर चले। आश्रममें पहुँचनेपर उनकी सहधर्मिणी वत्सलाने शिशुको देखा तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और जब उसने महर्षिके मुखसे उस शिशुकी अनिर्वचनीय महिमा सुनी तो उसके आनन्दकी सीमा न रही।

वत्सलाने शिशुको लेकर अपने वक्षसे लगाया ही था कि वह आनन्द-विभोर हो गयी। हर्षातिरेकसे उसने कहा—'स्वामिन्! आपके दीर्घकालीन कठोर तपका फल आज प्रत्यक्ष प्राप्त हो गया। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर जिन्हें नहीं जानते, वे परम प्रभु हमें दृष्टिगोचर हो रहे हैं। जो निखिल ब्रह्माण्डके सर्जक, पालक और संहारक हैं; जो भूमिका भार हरण करनेके लिये अवतरित हुए हैं, वे अखिल-लोकनायक प्रभु अनायास ही हमारे मन, वाणी और इन्द्रियोंके विषय हो गये। उन दयामयकी दया और हमारे भाग्यकी प्रशंसा कैसे की जाय!'

स्नेहाधिक्यके कारण नवजात शिशु गजाननके स्पर्शसे सती वत्सलाके स्तनोंमें दूध उतर आया। महर्षि पराशर और वत्सला प्यारपूर्वक शिशु पालनमें अपने परम सौभाग्यका अनुभव करते थे। अब अग्निहोत्र, जप, तप एवं स्वाध्यायकी महर्षि चिन्ता नहीं कर पाते थे। बस, नियमोंका निर्वाह-मात्र कर वे तो निखिलसृष्टिनियामक गजमुखके समीप ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करते। जब जप करने बैठते तो शिशुके सम्मुख रहे बिना उनसे जप हो नहीं पाता था। वत्सला भी वहीं बैठी रहती। दोनों उस गजमुखको प्रतिपल निहारा करते, फिर भी अतृप्त ही रहते।

गजाननके चरण-स्पर्शसे ही महर्षि पराशरका मुनिवर्य आश्रम अतिशय मनोहर हो गया। वहाँके सूखे वृक्ष भी पल्लवित और पुष्पित हो उठे। वहाँकी गायें कामधेनु-तुल्य हो गयीं। सुखद पवन बहने लगा। आश्रम दिव्यातिदिव्य हो गया।

शिशुरूपधारी परम प्रभु गजाननने शिवसे आगे कहा—"सदाचारपरायण परम पवित्र धर्मात्मा राजा वरेण्य मेरा भक्त है। वह देवता, ब्राह्मण एवं अतिथियोंका पूजक तथा कथनश्रोपासक है। वह सदा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पुराण-श्रवण करता है। उसकी सत्य और धर्मका पालन करनेवाली सुन्दरी साध्वी पत्नीका नाम पुष्पिका है। पुष्पिका पतिव्रता, पतिभक्ता और परिवारपरायणा है। उन दोनोंने मुझे संतुष्ट करनेके लिये बारह वर्षोंतक कठोर तप किया था। मैंने प्रसन्न होकर उन्हें वर प्रदान किया था—निश्चय ही मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा।' पुष्पिकाने अभी-अभी प्रसव किया है, किंतु उसके पुत्रको एक राक्षसी उठा ले गयी। वह मूर्च्छिता है। पुत्रके बिना वह प्राण त्याग देगी। अतएव आप मुझे तुरंत उस महाराजके पास पहुँचवा दीजिये।"

गजाननकी वाणी सुनकर भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने विविध उपचारोंसे उनकी पूजा और प्रार्थना की।

नवजात गजमुख भवनमें

भगवान् शंकरने नन्दीको बुलाकर कहा—"तात नन्दी! मैंने तुम्हें एक आवश्यक कार्यसे स्मरण किया है। तुम अत्यन्त सावधानीसे उसे पूरा करो। माहिष्मती-नामक श्रेष्ठ नगरीमें वरेण्य-नामक प्रजापालक, धर्मपरायण वीर नरेश राज्य करते हैं। उनकी अत्यन्त साध्वी उदार सहधर्मिणीका नाम पुष्पिका है। पुष्पिकाने अभी कुछ ही देर पूर्व प्रसव किया है। वह तो कष्टसे मूर्च्छित हो गयी, किंतु उसके शिशुको एक राक्षसी उठा ले गयी। तुम इस पार्वती-पुत्रको तुरंत उसके समीप रखकर लौट आओ। पुष्पिकाकी मूर्च्छा दूर होनेके पूर्व ही यह शिशु उसके समीप पहुँच जाय। अन्यथा महाराजके प्राण संकटकी सम्भावना है।"

नन्दीने अपने स्वामीके चरणोंमें प्रणाम किया और गजाननको लेकर वायुवेगसे उड़ चले। मार्गमें अनेक बाधाएँ उपस्थित हुईं, किंतु पराक्रमी नन्दीने शिवके ध्यान और स्मरणसे उनपर विजय प्राप्त की और मूर्च्छिता पुष्पिकाके सम्मुख चुपचाप गजमुखको रखकर तुरंत लौट आये।

नन्दीने शिव और पार्वतीके चरणोंमें प्रणाम कर गजमुखको सुरक्षित पुष्पिकाके समीप पहुँचा देनेका समाचार सुनाया तो उन दोनोंने प्रसन्न होकर नन्दीकी प्रशंसा करते हुए उन्हें आशिष् दी।

एवं प्रतीत हुई। भयोद्रेक हुआ। पुष्पि[का]ने ध्यानपूर्वक अपने शिशुको देखा—रक्तवर्ण, चतु[र्भुज] गजवदन, कस्तूरी-तिलक, चन्दन-चर्चित, अद्भुत [वस्त्र] परिधान और मोतियोंकी माला तथा विविध रत्नम[य आभूषणोंसे] शोभित हो रहे थे।

इस प्रकारका अद्भुत बालक देखकर पुष्पिका चकि[त] और दुःखी ही नहीं हुई, भयसे काँपती हुई वह प्रसूति-गृ[हसे] बाहर भागी। वह शोकसे व्याकुल होकर रोने लगी। उसका रुदन सुनकर परिचारिकाएँ प्रसूति-गृहमें गयीं। अद्भुत बालकको देखकर वे भी भयाक्रान्त हो काँपती हुई बाहर आ गयीं। दूसरे जिन-जिन स्त्री-पुरुषोंने उन शिशुरूपधारी परम पुरुषका दर्शन किया, वे सभी भयभीत हुए। कुछ तो मूर्च्छित हो गये।

भविष्यदर्शियोंने राजासे कहा—'आजतक मनुष्यके यहाँ ऐसा पुत्र कभी कहीं नहीं उत्पन्न हुआ और न भविष्यमें ऐसे शिशुके उत्पन्न होनेकी सम्भावना ही है। अतएव इस सर्वविनाशक बालकको घरमें नहीं रखना चाहिये।'

सबके मुँहसे भयभीत करनेवाले ऐसे वचन सुनकर नरेश वरेण्यने अपने दूतको बुलाकर आज्ञा दी—'इस शिशुको निर्जन वनमें छोड़ आओ।'

राजाके दूतने नवजात शिशुको उठाया और शीघ्रतासे नगरसे बाहर निकल गया। वह निर्जन सघन वनमें पहुँचा। वहाँ एक स्वच्छ जलपूरित सरोवर था। हिंस्र पशुओंके अतिरिक्त वहाँ और किसी मनुष्यके पहुँचनेकी सम्भावना नहीं थी। दूतने उक्त परम तेजस्वी शिशुको वहीं सरोवर-तटपर धीरेसे रख दिया और द्रुत गतिसे लौट चला।

दूत नगरमें पहुँचा। उसने राजसभामें जाकर नरेशका अभिवादन कर निवेदन किया—'राजेन्द्र! आपके आदेशानुसार मैं शिशुको हिंस्र जन्तुओंसे भरे निर्जन वनमें रख आया। निश्चय ही उसे व्याघ्रादि हिंस्र पशु खा जायँगे।'

धर्मात्मा वरेण्यने स्थिर मनसे समाचार सुना और सिर झुका लिया।

महर्षि पराशरके आश्रममें

ऋषिके तपोबल सच्चे मनुष्यके कर्मों [illegible]
कितना अहंकार होता है; किंतु कितना [illegible]

कर रहे हैं।' इस संवादसे नरेश वरेण्य आनन्द-मग्न हुए। उन्होंने अपने यहाँ पुत्रोत्सव मनाया। वाद्य बजने लगे। घर-घर मिष्टान्न-वितरण हुआ। नरेशने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको बहुमूल्य वस्त्र, स्वर्ण और रत्नालंकरण देकर संतुष्ट किया।

सिन्दूरका विस्मय

मदमत्त सिन्दूरने एक दिन अपनी सभामें कहा—'मेरी अतुलनीय शक्ति व्यर्थ गयी। मेरा पौरुष निष्क्रिय रहा। इन्द्रादिकोंने मेरे साथ युद्ध नहीं किया और ब्रह्मा-विष्णु आदि मेरे सम्मुख ही नहीं हुए। मृत्युलोकके नरेशोंमें तो मुझसे युद्ध करनेकी सामर्थ्य ही नहीं। मेरी युद्ध-कामना तृप्त नहीं हो पा रही है।'

उसी समय आकाशवाणी हुई—'अरे मूर्ख! तू व्यर्थ क्या प्रलाप कर रहा है? तेरी युद्ध-कामनाकी पूर्ति करनेवाला शिव-प्रिया पार्वतीके यहाँ प्रकट हो गया है। वह शुक्लपक्षके शशि-सदृश उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।'

सहसा अत्यन्त अप्रिय एवं भयानक वाणी सुनकर सिन्दूर मूर्च्छित हो गया। फिर सचेत होनेपर उसने कहा—'यह कौन बोल रहा था? यदि ऐसा दुर्वचन बोलनेवाला सामने आ जाय तो मैं उसका मस्तक उतार लूँ।'

इतना कहकर असुरने भयानक गर्जन किया और वह तुरंत उड़कर कैलास पहुँचा। अत्यन्त चिन्तित सिन्दूर पार्वतीके नवजात शिशुके लिये बड़ा होनेका अवसर ही नहीं आने देना चाहता था। पर्वतोंको चूर्ण एवं वनोंको ध्वस्त करता हुआ दुरात्मा सिन्दूर भगवती उमाके भवन गया, किंतु वहाँ किसीको न देख वह पुनः पृथ्वीपर लौट आया।

गिरिराज-नन्दिनी तथा शिवको ढूँढ़नेके लिये सिन्दूर पृथ्वी-पर चारों ओर घूमने लगा। अन्ततः वह पर्वली-काननमें पहुँचा। वहाँ उसने सुन्दर सरोवर, पार्वती-शिवका विशाल मनोहर मण्डप एवं उनके गणोंको देखा। सिन्दूर सीधे गिरिजाके प्रसूति-गृहमें जाकर शिशुको ढूँढ़ने लगा, किंतु वहाँ शिशुको न पाकर उस दुरात्माने सोचा—'यदि बालकने जन्म नहीं लिया है तो पार्वतीके ही उदरसे प्रकट होगा। यदि पार्वतीकी जीवन-लीला समाप्त कर दी जाय तो इसके पुत्रका प्रश्न ही नहीं उठेगा।'

लिये अपना भुज उठाया ही था कि उसके सम्मुख पार्वतीकी गोदमें पद्म, परशु, कमल और मत्स्य धारण किये गजवक्त्रविभूषित अमित तेजस्वी बालक दीखा। असुरने बालकका हाथ पकड़ लिया और उसे समुद्रमें डुबा देनेकी दृष्टिसे अपने साथ ले चला।

मार्गमें वह बालक पर्वत-तुल्य भारी हो गया। उस भयंकर भारसे व्याकुल होकर असुर काँपने लगा। वह शिशुको किसी प्रकार आगे ले जानेमें समर्थ नहीं था, इस कारण उसने क्रुद्ध होकर उसे पृथ्वीपर पटक दिया।

शिव-शिशुको पटकनेसे पर्वत हिल गये, पृथ्वी काँपने लगी, समुद्र क्षुब्ध हो उठा और ब्रह्माण्ड जैसे विदीर्ण हो गया। शिशु नर्मदा नदीमें गिरा। वह पवित्र स्थल 'गणेश-कुण्ड' नामसे प्रख्यात हुआ।* गणेशके शरीरके रक्तसे वहाँके पत्थर लाल हो गये। वे पापोंको नाश करनेवाले 'नार्मद गणेश' कहे जाते हैं। उनके दर्शन और पूजनकी बड़ी महिमा है।

'मेरा शत्रु समाप्त हो गया।' यह समझकर आनन्दित सिन्दूरासुर वहाँसे चलना ही चाहता था कि गणेश-कुण्डसे एक अत्यन्त भयंकर पर्वताकार क्रोधोन्मत्त पुरुष निकला। उसकी जटा विशाल थी। उसके मुख और दाँत अत्यन्त भयंकर थे। जिह्वा सर्पिणीके सदृश थी। उसके हाथ-पैर अत्यन्त लंबे और सुपुष्ट थे। उसके नेत्रोंसे अग्निकी ज्वालाएँ निकल रही थीं।

महाबलवान् सिन्दूरासुरने उसे मारनेके लिये अपने खड्गसे प्रहार किया ही था कि वह भयानक पुरुष आकाशमें दीखने लगा। उसने कहा—'अरे मूढ़! तेरा काल अत्यन्त बढ़ रहा है। वह साधुजनोंकी रक्षामें तत्पर होनेके कारण तेरा वध अवश्य करेगा।'

यह संकेत देकर भयंकर पुरुष अदृश्य हो गया।

सिन्दूरको बड़ा विस्मय हुआ। उसने अपने सेवकोंसे कहा—'कठोर वचन बोलनेवाले उस भयानक पुरुषको धिक्कार है, जो मेरे भयसे छिप गया। यदि वह मेरे सम्मुख होता तो उसे मेरे बल-वीर्यका पता चल जाता।'

---

* गणेश-कुण्ड श्रेष्ठ तीर्थ है। इस ... स्नान एवं इसके स्मरणका भी बड़ा माहात्म्य है।

कानोंमें पहुँचता तो गजानन अधीर और अशान्त हो जाते और अब तो त्रैलोक्यकी दारुण स्थिति उनके लिये असह्य हो गयी। क्षुब्ध गजाननने अपने पिता पराशरके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'मुनिवर! सिन्दूरासुरके दुराचारसे धरती त्रस्त हो गयी है, सर्वत्र अनीति और अनाचारका साम्राज्य छा गया है; सद्धर्म लुप्त हो गया और सदाचारपरायण जन अत्यन्त पीड़ित हैं। उन्हें अपने त्राणका कोई मार्ग नहीं सूझ रहा है। ऐसी परिस्थितिमें मैं उद्विग्न हो उठा हूँ; धरतीका बोझ उतारनेके लिये मैं अधीर, अशान्त और आकुल हो गया हूँ। आप कृपापूर्वक अपना वरद हस्त मेरे सिरपर रख दें, जिससे मैं अपने पवित्रतम कर्तव्यका पालन करूँ।'

महर्षि हँस पड़े, किंतु गजमुखके शुभ आन्तरिक भावोंसे उन्हें प्रसन्नता भी हुई। उन्होंने स्नेहपूर्वक गजाननको पुचकारते हुए कहा—'बेटा गजानन! तेरे विचार अत्युत्तम हैं, किंतु तू अभी केवल नौ वर्षका सुकुमार बालक है; आकाशका चन्द्र कैसे पकड़ेगा? जिस सिन्दूरके हुंकारसे पर्वत शतधा विदीर्ण होकर धरतीपर बिखर जाते हैं और जिसके पदाघातसे त्रिभुवन काँप उठता है, उस अमित शौर्यशाली असुरके साथ तुम केवल मेरे अनुग्रहसे युद्ध करना चाहते हो तो मेरा शुभाशीर्वाद तो सदा तुम्हारे साथ ही है।'

'परम पूज्य मुनिनाथ! आप अपना मङ्गलमय वरद हस्त मेरे सिरपर रख दें, फिर आप प्रत्यक्ष देखेंगे कि आपका यह पुत्र धरतीका बोझ उतारकर देवताओं, मुनियों एवं धर्मात्माओंको स्वतन्त्र और सुखी कर देगा।' गजमुखने दृढ़तापूर्वक कहा—'असुर निश्चय मारा जायगा। सिन्दूरका अन्त होकर रहेगा।'

पुलकित महर्षि पराशरने अपने प्राणप्रिय गजाननके मस्तकपर स्नेहपूरित वरद हस्त रखा तो उनके नेत्र सजल हो गये। अवरुद्ध कण्ठसे उन्होंने कहा—'चन्द्रचूड तुम्हें विजय प्रदान करें।'

गजाननने प्रसन्नतापूर्वक अपने वृद्ध पिताके चरणोंपर मस्तक रख दिया। महर्षि अपना हाथ बालकके सिरपर अतिशय स्नेहसे फेरते रहे और जब गजाननने अपनी माता वत्सलाके चरणोंपर सिर रखा तो उन्होंने उन्हें उठाकर छातीसे लगा लिया।

'मा! मुझे आशीर्वाद दो, जिससे मैं अधर्मका नाश और धर्मकी स्थापना कर सकूँ।'

'प्राणप्रिय वत्स!' वत्सलाके नेत्र बरस पड़े। गजाननके सिरपर हाथ फेरती हुई स्नेहमयी जननी बोल नहीं सकीं। उनके मुँहसे केवल अधूरा वाक्य निकल सका—'माता तो अपने प्राण-प्रिय पुत्रकी सदा ही विजय……।'

सिर झुकाये गणेश मातासे विदा हुए तो उनके नेत्रोंसे दो मुक्ता-कण ढुलक पड़े, जिन्हें उन्होंने इस सावधानीसे छिपा लिया कि माता नहीं देख सकीं। गजाननने महर्षि पराशर और जननीके अनन्तर दुर्गा, शिव एवं श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम किया। वहाँ उपस्थित ऋषियोंके चरणोंमें शीश झुकाया।

फिर वत्सलानन्दन अपने चारों हाथोंमें अङ्कुश, परशु, पाश और कमल धारणकर मूषकपर आरूढ़ हुए। वीर बालक गजाननने गर्जना की। उनके गर्जनसे त्रिभुवन काँपने लगे। गजानन वायुवेगसे चले। उनके परम तेजस्वी स्वरूपसे प्रलयाग्नि-तुल्य ज्वाला निकल रही थी।

सिन्दूरासुरकी राजधानी घृसृणेश्वरके समीप सिन्दूरवाड़ नगरमें थी। वह वहींसे त्रैलोक्यका शासन करता था। महाप्रभु गजानन उक्त राजधानीके उत्तर पहुँचे। वहाँ वे भयानक गर्जन करने लगे। गजाननके गर्जनसे पर्वत टूट-टूटकर गिरने लगे, सागरमें गगनचुम्बी लहरें उठने लगीं, भीरुजन मूर्च्छित हो गये और दैत्योंका हृदय काँप उठा। कुछ देरके लिये सिन्दूर भी मूर्च्छित हो गया।

प्रकृतिस्थ होनेपर सिन्दूरने अपने सेवकोंसे कहा—'अरे, यह कौन वीर गर्जन कर रहा है, जिससे वीर पुरुष भी काँप उठे हैं। तुमलोग पता लगाओ; फिर मैं उसके सम्मुख चलता हूँ।'

दूत तुरंत चले। जब उन्होंने गजाननका अत्यन्त विकट रूप देखा तो काँपने लगे। अत्यन्त साहससे उन्होंने ……
'अरे, तुम नौ-दस वर्षके बालक कौन हो, कहाँसे आये हो, तुम्हारा नाम क्या है और तुम त्रैलोक्यविजयी सिन्दूरकी सीमापर गर्जन क्यों कर रहे हो? तुम्हें महाबलशाली असुरराजकी शक्तिका पता नहीं है क्या?'

क्रोधारुणलोचन विकटतम मुनिपुत्रने उत्तर …… 'राक्षसो! मैं तुम्हारे राजा सिन्दूरासुर और …… अच्छी तरह परिचित होकर ही उसका वध करने ……

…गाते हुए पवित्रतम उपहार लिये धरणीका दुःख दूर करनेवाले परम प्रभु गजमुखके सम्मुख एकत्र हुए। सिन्दूर-वधसे प्रसन्न नृपतिगण भी वहाँ पहुँच गये।

उन सबने सर्वाभरणभूषित, पाश, अङ्कुश, परशु और कमल धारी, चतुर्भुज, मूषक-वाहन गजाननकी षोडशोपचारसे श्रद्धापूर्वक पूजा की। तदनन्तर इन्द्रादि देवगण परम प्रभु शिवपुत्र गजाननकी स्तुति करने लगे—

……………स्तोतुं त्वां न हि शक्नुमः ॥
यत्र कुण्ठाश्चतुर्वेदा ब्रह्माद्याश्च मुनीश्वराः।
त्वं कर्ता कारणं कार्यं रक्षकः पोषकोऽपि च ॥
संहर्ता मोहनश्चास्य विश्वस्य ज्ञानदः क्वचित्।
सरितः सागरा वृक्षाः पर्वताः पशवोऽखिलाः ॥
वायुराकाशपृथिवी वह्निर्वारि त्वमेव च।
ब्रह्मा विष्णुः शिवः शक्रो मरुतो मुनयोऽपि च ॥
गन्धर्वाश्चारणाः सिद्धा यक्षराक्षसपन्नगाः।
अप्सरःकिंनरा देव त्वमेव सचराचरम् ॥
वयं धन्या यतो दृष्टः प्रत्यक्षं मोक्षसाधनः।
सिन्दूरे तु हते देव सुखं प्राप्ताः सुरोत्तमाः ॥
राजानो मुनयो लोकाः स्वस्वकार्ये मुदा रताः।
भविष्यन्ति स्वधास्वाहावषट्काराश्रिताः क्रियाः ॥
नानावतारैः कुरुषे पालनं त्वं विशेषतः।
दुष्टानां नाशनं सद्यो भक्तानां कामपूरकः ॥
(गणेशपु० २।१३७।२८—३५)

'प्रभो! हम आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं; जिनके विषयमें कुछ कहनेमें चारों वेद, ब्रह्मादि देवता और मुनीश्वर कुण्ठित हैं, वहाँ हमारी क्या गिनती है! आप इस जगत्के कर्ता, कारण, कार्य, रक्षक, पोषक, संहारक, मोहक और कहीं ज्ञानदाता भी हैं। नदियाँ, समुद्र, वृक्ष, पर्वत, समस्त पशु, वायु, आकाश, पृथ्वी, अग्नि और जल भी आप ही हैं। देव! आप ही ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, मरुद्गण, मुनि, गन्धर्व, चारण, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, नाग, अप्सराएँ, किंनर तथा चराचर प्राणियोंसहित समस्त जगत् हैं। हम धन्य हैं; क्योंकि हमने मोक्ष-साधक आप परमेश्वरका प्रत्यक्ष दर्शन किया है। देव! इस सिन्दूरासुरके मारे जानेसे समस्त देवताओंको सुख प्राप्त हुआ है। अब राजा, मुनि, लोक अपने कार्यमें प्रसन्नतापूर्वक लग जायँगे। स्वधा, स्वाहा, वषट्कारयुक्त क्रियाएँ होंगी। आप नाना प्रकारके अवतार लेकर विशेषरूपसे जगत्का पालन करते हैं एवं दुष्टोंका विनाश करके भक्तोंकी कामनाओंको तत्काल पूर्ण करते हैं।'

इस प्रकार स्तुति कर देवताओंने वहाँ एक भव्य मन्दिरका निर्माण किया और फिर उसमें गजाननकी सुन्दर मूर्ति स्थापित की। उसके दर्शनमात्रसे प्राणी निष्पाप हो जाता है।

देवताओंने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उस मूर्तिकी विविधो-पचारसे पूजा कर उसे प्रणाम किया। तदनन्तर मुनियोंने भी प्रसन्न मनसे उक्त गजानन-प्रतिमाका पूजन किया। सिन्दूरा-सुरको मारकर उन्हें सुखी करनेके कारण देवताओं और ऋषियोंने उक्त मूर्तिका नामकरण किया—'सिन्दूरहा'। फिर वे सभी अपने अपने स्थानको चले गये।

इसके बाद श्रेष्ठ मुनियोंने नाना प्रकारके द्रव्योंसे गजानन-मूर्तिकी पूजा करके उसे प्रणाम किया और उक्त स्थानका नाम 'राजसदन' रखा।

'मेरे पुत्रने लोककण्टक सिन्दूरको समाप्त किया है।' इस समाचारसे प्रसन्न होकर राजा वरेण्य वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने यह विचारकर कि गजाननने दैत्यका नाश करके राजाओंको उनका पद प्रदान किया, उन्हें 'दैत्य-विमर्दन!' कहा।

अपने पुत्रका प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर राजा वरेण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक गजाननकी पूजा की। अत्यधिक प्रेमके कारण राजा वरेण्यकी वाणी अवरुद्ध थी, नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा था। फिर दुःखके कारण रोते हुए उन्होंने देवदेव गजाननसे कहा—'जिस अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-नायकको ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जान पाते, भला मैं अज्ञानी मनुष्य उसे कैसे जान पाता। मैं अपनी मूढ़ताको क्या कहूँ! घर आयी कामधेनु और सुरतरुको मैंने बाहर खदेड़ दिया। आपकी मायासे मोहित होकर मैंने बड़ा अनर्थ किया है। आप मुझे क्षमा करें।'

पश्चात्ताप करते हुए राजा वरेण्यकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वरेण्यनन्दन गजाननने उन्हें अपनी चारों भुजाओंसे आलिङ्गन किया और फिर कहा—'नरेश! पूर्वकल्पमें जब तुमने अपनी पत्नीके साथ सूखे पत्तोंपर जीवन निर्वाह करते हुए बहुत वर्षोंतक कठोर तप किया था, तब मैंने प्रसन्न

हूँ। मैं पार्वती परमेश्वरका पुत्र हूँ। मेरा नाम गजानन
मैं समस्त असुर-कुलका सर्वनाश करके देवताओं तथा
ओंको त्राण देकर सद्धर्मकी स्थापना करने आया हूँ।
यह संदेश तुम शीघ्र ही असुरराजके पास पहुँचा दो।'

भयभीत दूतोंने सिन्दूरके पास जाकर बताया—
मन्! शिवा और शिवका केवल नौ-दस वर्षका महाभयानक
गजानन आप-जैसे अमित पराक्रमी शूरसे युद्ध करने
है। वह काल-तुल्य बालक दैत्य-कुलका संहार करनेके
आतुर प्रतीत होता है; किंतु आप-जैसे अद्वितीय वीर
के सम्मुख वह मच्छर-तुल्य बालक कैसे बच सकेगा?'

सिन्दूर आकाशवाणीकी स्मृतिसे चिन्तित हो गया;
दूसरे ही क्षण क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये। बोला—
! तुम जानते हो, मेरे भयसे त्रैलोक्यके समस्त चराचर
काँपते हैं। पराक्रमी नरेश और देवता मेरे कारागारमें
जीवनके दिन गिनते हैं और शेष प्राण लेकर पर्वतों
वनोंमें छिपे बैठे हैं। इस नगण्य बालकको मसल
मुझे कितनी देर लगेगी।'

जब सिन्दूरने भयानक गर्जना की और अपने शस्त्रास्त्र
करने लगा, तब उसके अमात्योंने उसे समझाते हुए कहा—
न्! आपकी परम पराक्रमी विशाल वीर-वाहिनीको बहुत
युद्धका अवसर नहीं मिला; अतएव आप हमें आज्ञा
करें। हम तुरंत उस गर्वोन्मत्त बालकका वध कर
हैं। हमलोगोंके रहते आपको शस्त्र उठानेकी
कता नहीं।'

वीरो! मैं तुम्हारे शौर्यसे परिचित हूँ, किंतु उक्त
री बालकको मृत्यु-दण्ड देनेके लिये मैं आतुर हो गया
कहता हुआ सिन्दूर वेगसे चला और गजमुखके सम्मुख
गया।

मूर्ख बालक!' महामदमत्त सिन्दूरासुर गजाननके
पहुँच उनकी उपेक्षा करते हुए कहने लगा—'तू
तो ऐसा कर रहा है, जैसे त्रैलोक्यको निगल जायगा,
रे भयसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव—सभी त्रस्त हैं।
य मुझसे काँपता है। इस कारण क्षुद्रतम बालकसे युद्ध
मुझे लज्जा आ रही है। तू सुकुमार बच्चा है। जा,
माताके अङ्कमें बैठकर दुग्ध-पान कर। अन्यथा व्यर्थ
मुखमें चला जायगा और तेरी माता रोती हुई विलाप
लगेगी।'

'दुष्ट असुर!' गजाननने अत्यन्त निर्भीकतासे
दिया—'तूने बात तो उचित कही; किंतु अग्निका एक क्षु
सम्पूर्ण नगरको दग्ध करनेमें समर्थ होता है। मैं जग
सर्जन, पालन और संहार भी करता हूँ। मैं दुष्टोंका सर्वनाश
धरणीका उद्धार और सद्धर्मकी स्थापना करनेवाला हूँ।
तू मेरी शरण आकर अपने पातकोंके लिये क्षमा प्रार्थना
सद्धर्मपरायण नरेशकी भाँति जीवित रहनेकी प्रतिज्ञा कर
तब तो तुम्हें छोड़ दूँगा; अन्यथा विश्वास कर, तेरा अ
काल समीप आ गया है।'

इतना कहते ही पार्वतीनन्दनने विराट् रूप धारण
लिया। उनका मस्तक ब्रह्माण्डका स्पर्श करने लगा। दो
पैर पातालमें थे। कानोंसे दसों दिशाएँ आच्छादित हो गयीं
वे सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद विश्वरूप प्रभु सर्वत्र व्या
थे। वे अनादिनिधन, अनिर्वचनीय विराट् गजानन दि
वस्त्र, दिव्य गन्ध और दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत थे। उ
अनन्त प्रभुका तेज अनन्त सूर्योंके समान था।

महामहिम गजाननका महाविराट् रूप देखक
परम प्रचण्ड वर-प्राप्त असुर सिन्दूर सहम गया, पर उसने
धैर्य नहीं छोड़ा। उसने भयानक गर्जना की और फिर व
प्रज्वलित दीपपर शलभकी तरह अपना खड्ग लेकर प्रहार
करना ही चाहता था कि देवदेव गजाननने कहा—'मूढ़!
मेरे अत्यन्त दुर्लभ स्वरूपको नहीं जानता; अब मैं तुझे मुक्ति
प्रदान करता हूँ।'

देवदेव गजाननने महादैत्य सिन्दूरका कण्ठ पकड़ लिया
और उसे अपने वज्र-सदृश दोनों हाथोंसे दबाने लगे। असुरके
नेत्र बाहर निकल आये और उसी क्षण उसका प्राणान्त
हो गया।

क्रुद्ध गजाननने उसके लाल रक्तको अपने दिव्य अङ्गोंपर
पोत लिया। इस कारण जगत्में उन भक्तवाञ्छाकल्पतरु
प्रभुका 'सिन्दूरवदन' और 'सिन्दूरप्रिय' नाम प्रसिद्ध हो गया।*

'जय गजानन!' उच्च घोष करते हुए आनन्दमग्न
देवगण आकाशसे पुष्प-वृष्टि करने लगे। वहाँ हर्षके वाद्य
बज उठे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं।

---

* अतः सिन्दूरवदनः सिन्दूरप्रिय एव च।
[illegible] ख्यातो भक्तकामप्रपूरकः॥
(गणेशपु० २।११०।११)

मा, इन्द्रादि देव और वसिष्ठादि मुनि, गजाननकी
देखे हुए पवित्रतम उपहार लिये धरणीका दुःख दूर
मेले सम प्रभु गजमुखके सम्मुख प्रकट हुए। सिन्दूर-
ओ नअ नृपतिगण भी वहाँ पहुँच गये।

उन सबने सर्वाभरणभूषित, पाश, अङ्कुश, परशु और
धारी, चतुर्भुज, मूषक-वाहन गजाननकी षोडशोपचारसे
पूर्वक पूजा की। तदनन्तर इन्द्रादि देवगण परम प्रभु
संतुष्ट गजाननकी स्तुति करने लगे—

..................स्तोतुं त्वां न हि शक्नुमः ॥
यत्र कुण्ठाश्चतुर्वेदा महाद्याश्च मुनीश्वराः।
त्वं कर्ता कारणं कार्यं रक्षकः पोषकोऽपि च ॥
संहर्ता मोहनश्चास्य विश्वस्य ज्ञानदः क्वचित्।
सरितः सागरा वृक्षाः पर्वताः पशवोऽखिलाः ॥
वायुराकाशभूमिश्च वह्निर्वारि त्वमेव च।
ब्रह्मा विष्णुः शिवः शक्रो मरुतो मुनयोऽपि च ॥
गन्धर्वाश्चारणाः सिद्धा यक्षराक्षसपन्नगाः।
अप्सराः किंनरा देव त्वमेव सचराचरम् ॥
धन्या यतो दृष्टः प्रत्यक्षं मोक्षसाधनः।
रे तु हते देव सुखं प्राप्ताः सुरोत्तमाः ॥
मुनयो लोकाः स्वस्वकार्ये मुदा रताः।
भवन्ति स्वधास्वाहावषट्काराश्रिताः क्रियाः ॥
कामवशैः कुरुषे पालनं त्वं विशेषतः।
दुष्टानां नाशनं सद्यो भक्तानां कामपूरकः ॥
(गणेशपु० २। १३७। २८–३५)

'प्रभो! हम आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं; जिनके
विषयमें कुछ कहनेमें चारों वेद, ब्रह्मादि देवता और मुनीश्वर
भी कुण्ठित हैं, वहाँ हमारी क्या गिनती है! आप इस
जगत्के कर्ता, कारण, कार्य, रक्षक, पोषक, संहारक, मोहक
और कहीं ज्ञानदाता भी हैं। नदियाँ, समुद्र, वृक्ष, पर्वत,
सब पशु, वायु, आकाश, पृथ्वी, अग्नि और जल भी
आप ही हैं। देव! आप ही ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, मरुद्गण,
गन्धर्व, चारण, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, नाग, अप्सराएँ,
तथा चराचर प्राणियोंसहित समस्त जगत् हैं। हम
धन्य हैं; क्योंकि हमने मोक्ष-साधक आप परमेश्वरका प्रत्यक्ष
दर्शन किया है। देव! इस सिन्दूरासुरके मारे जानेसे समस्त
देवताओंको सुख प्राप्त हुआ है। अब राजा, मुनि, लोक
अपने-अपने कार्यमें प्रसन्नतापूर्वक लग जायँगे। स्वधा,

स्वाहा और वषट्कारके आश्रि[त]
होंगी। आप नाना प्रकारके [...]
जगत्का पालन करते हैं एवं दुष्टों[...]
कामनाओंको तत्काल पूर्ण करते हैं।'

इस प्रकार स्तुति कर देवताओंने [...]
निर्माण किया और फिर उसमें [...]
स्थापित की। उसके दर्शनमात्रसे प्राणी [...]

देवताओंने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक [...]
पचारसे पूजा कर उसे प्रणाम किया। [...]
प्रसन्न मनसे उक्त गजानन-प्रतिमाका पू[जन ...]
सुरको मारकर उन्हें सुखी करनेके कार[ण ...]
ऋषियोंने उक्त मूर्तिका नामकरण किया [...]
फिर वे सभी अपने-अपने स्थानको चले गये [...]

इसके बाद श्रेष्ठ मुनियोंने नाना प्रकारके [...]
मूर्तिकी पूजा करके उसे प्रणाम किया और [...]
नाम 'राजसदन' रखा।

'मेरे पुत्रने लोककण्टक सिन्दूरको समाप्त [...]
इस समाचारसे प्रसन्न होकर राजा वरेण्य वहाँ [...]
उन्होंने यह विचारकर कि गजाननने दैत्यका न[ाश ...]
राजाओंको उनका पद प्रदान किया, उ[न्हें ...]
विमर्दन!' कहा।

अपने पुत्रका प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर राजा वरेण्य [...]
प्रसन्न हुए। उन्होंने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक गजाननकी पू[जा ...]
अत्यधिक प्रेमके कारण राजा वरेण्यकी वाणी अवरु[द्ध ...]
नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा था। फिर दुःखके कारण रो[ते हुए]
उन्होंने देवदेव गजाननसे कहा—'जिस अनन्तकोटि ब्रह्मा[ण्ड-]
नायकको ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जान पाते, भला मैं अ[...]
मनुष्य उसे कैसे जान पाता। मैं अपनी मूढ़ताको क्या क[हूँ ...]
पर आयी कामधेनु और सुरतरुको मैंने बाहर फेंक दिया [...]
आपकी मायासे मोहित होकर मैंने बड़ा अनर्थ किया है [...]
आप मुझे क्षमा करें।'

पश्चात्ताप करते हुए राजा वरेण्यकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर
वरेण्यनन्दन गजाननने उन्हें अपनी चारों भुजाओंसे आलिङ्गन
किया और फिर कहा—'राजन्! पूर्वजन्ममें जब तुमने अपनी
पत्नीके साथ सूखे पत्तोंपर जीवन निर्वाह करते हुए दिव्य
[...] तप किया था, तब मैंने प्रसन्न होकर

आया हूँ। मैं पार्वती परमेश्वरका पुत्र हूँ। मेरा नाम गजानन है। मैं समस्त असुर-कुलका सर्वनाश करके देवताओं तथा मुनियोंको त्राण देकर सद्धर्मकी स्थापना करने आया हूँ। मेरा यह संदेश तुम शीघ्र ही असुरराजके पास पहुँचा दो।'

भयभीत दूतोंने सिन्दूरके पास जाकर बताया—'स्वामिन्! शिवा और शिवका केवल नौ-दस वर्षका महाभयानक पुत्र गजानन आप जैसे अमित पराक्रमी शूरसे युद्ध करने आया है। वह काल-तुल्य बालक दैत्य कुलका संहार करनेके लिये आतुर प्रतीत होता है; किंतु आप-जैसे अद्वितीय वीर योद्धाके सम्मुख वह मच्छर-तुल्य बालक कैसे बच सकेगा?'

सिन्दूर आकाशवाणीकी स्मृतिसे चिन्तित हो गया; किंतु दूसरे ही क्षण क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये। बोला—'दूतो! तुम जानते हो, मेरे भयसे त्रैलोक्यके समस्त चराचर प्राणी काँपते हैं। पराक्रमी नरेश और देवता मेरे कारागारमें अपने जीवनके दिन गिनते हैं और शेष प्राण लेकर पर्वतों एवं वनोंमें छिपे बैठे हैं। इस नगण्य बालकको मसल देनेमें मुझे कितनी देर लगेगी।'

जब सिन्दूरने भयानक गर्जना की और अपने शस्त्रास्त्र धारण करने लगा, तब उसके अमात्योंने उसे समझाते हुए कहा—'स्वामिन्! आपकी परम पराक्रमी विशाल वीर-वाहिनीको बहुत दिनोंसे युद्धका अवसर नहीं मिला; अतएव आप हमें आज्ञा प्रदान करें। हम तुरंत उस गर्वोन्मत्त बालकका वध कर देते हैं। हमलोगोंके रहते आपको शस्त्र उठानेकी आवश्यकता नहीं।'

'वीरो! मैं तुम्हारे शौर्यसे परिचित हूँ, किंतु उक्त अहंकारी बालकको मृत्यु-दण्ड देनेके लिये मैं आतुर हो गया हूँ।' कहता हुआ सिन्दूर वेगसे चला और गजमुखके सम्मुख पहुँच गया।

'मूर्ख बालक!' महामदमत्त सिन्दूरासुर गजाननके समीप पहुँच उनकी उपेक्षा करते हुए कहने लगा—'तू गर्जन तो ऐसा कर रहा है, जैसे त्रैलोक्यको निगल जायगा, किंतु मेरे भयसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव—सभी त्रस्त हैं। त्रैलोक्य मुझसे काँपता है। इस कारण क्षुद्रतम बालकसे युद्ध करनेमें मुझे लज्जा आ रही है। तू सुकुमार बच्चा है। जा, अपनी माताके अङ्कमें बैठकर दुग्ध-पान कर; अन्यथा व्यर्थ ही मृत्यु-मुखमें चला जायगा और तेरी माता रोती हुई विलाप करने लगेगी।'

'दुष्ट असुर!' गजाननने अत्यन्त निर्भीकतासे [illegible] दिया—'तूने बात तो उचित कही; किंतु अग्निका एक [illegible] सम्पूर्ण नगरको दग्ध करनेमें समर्थ होता है। मैं [illegible] सर्जन, पालन और संहार भी करता हूँ। मैं दुष्टोंका सर्वनाश [illegible] धरणीका उद्धार और सद्धर्मकी स्थापना करनेवाला हूँ। [illegible] तू मेरी शरण आकर अपने पापोंके लिये क्षमा प्रार्थना [illegible] सद्धर्मपरायण नरेशकी भाँति जीवित रहनेकी प्रतिज्ञा कर [illegible] तब तो तुम्हें छोड़ दूँगा; अन्यथा विश्वास कर, तेरा [illegible] काल समीप आ गया है।'

इतना कहते ही पार्वतीनन्दनने विराट् रूप धारण [illegible] लिया। उनका मस्तक ब्रह्माण्डका स्पर्श करने लगा। [illegible] पैर पातालमें थे। करोंसे दसों दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। वे सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद विश्वरूप प्रभु सर्वत्र [illegible] थे। वे अनादिनिधन, अनिर्वचनीय विराट् गजानन दि[illegible] वस्त्र, दिव्य गन्ध और दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत थे। उ[illegible] अनन्त प्रभुका तेज अनन्त सूर्योंके समान था।

महामहिम गजाननका महाविराट् रूप देखकर परम प्रचण्ड वर-प्राप्त असुर सिन्दूर सहम गया, पर उसने धैर्य नहीं छोड़ा। उसने भयानक गर्जना की और फिर व[illegible] प्रज्वलित दीपपर शलभकी तरह अपना खड्ग लेकर प्रहार करना ही चाहता था कि देवदेव गजाननने कहा—'मूढ़! [illegible] मेरे अत्यन्त दुर्लभ स्वरूपको नहीं जानता; अब मैं तुझे मुक्ति प्रदान करता हूँ।'

देवदेव गजाननने महादैत्य सिन्दूरका कण्ठ पकड़ लिया और उसे अपने वज्र-सदृश दोनों हाथोंसे दबाने लगे। असुरके नेत्र बाहर निकल आये और उसी क्षण उसका प्राणान्त हो गया।

क्रुद्ध गजाननने उसके लाल रक्तको अपने दिव्य अङ्गोंपर पोत लिया। इस कारण जगत्में उन भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभुका 'सिन्दूरवदन' और 'सिन्दूरप्रिय' नाम प्रसिद्ध हो गया।*

'जय गजानन!' उच्च घोष करते हुए आनन्दमग्न देवगण आकाशसे पुष्प-वृष्टि करने लगे। वहाँ हर्षके वाद्य बज उठे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं।

---

* अतः सिन्दूरवदनः सिन्दूरप्रिय एव च।
अभवज्जगति ख्यातो भक्तकामप्रपूरकः॥
(गणेशपु० २।१३७।३१)

आया हूँ। मैं पार्वती-परमेश्वरका पुत्र हूँ। मेरा नाम गजानन है। मैं समस्त असुर-कुलका सर्वनाश करके देवताओं तथा मुनियोंको त्राण देकर सद्धर्मकी स्थापना करने आया हूँ। मेरा यह संदेश तुम शीघ्र ही असुरराजके पास पहुँचा दो।'

भयभीत दूतोंने सिन्दूरके पास जाकर बताया—'स्वामिन्! शिवा और शिवका केवल नौ-दस वर्षका महाभयानक पुत्र गजानन आप-जैसे अमित पराक्रमी शूरसे युद्ध करने आया है। यह अग्नि-तुल्य बालक दैत्य-कुलका संहार करनेके लिये आतुर प्रतीत होता है; किंतु आप-जैसे अद्वितीय वीर योद्धाके सम्मुख यह मच्छर-तुल्य बालक कैसे बच सकेगा?'

सिन्दूर आकाशवाणीकी स्मृतिसे चिन्तित हो गया; किंतु दूसरे ही क्षण क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये। बोला—'दूतो! तुम जानते हो, मेरे भयसे त्रैलोक्यके समस्त चराचर प्राणी काँपते हैं। पराक्रमी नरेश और देवता मेरे कारागारमें अपने जीवनके दिन गिनते हैं और शेष प्राण लेकर पर्वतों एवं कन्दराओंमें छिपे बैठे हैं। इस नगण्य बालकको मसल देनेमें मुझे कितनी देर लगेगी।'

जब सिन्दूरने भयानक गर्जना की और अपने शस्त्रास्त्र धारण करने लगा, तब उसके अमात्योंने उसे समझाते हुए कहा—'स्वामिन्! आपके परम पराक्रमी विशाल वीर-वाहिनीको बहुत दिनोंसे युद्धका अवसर नहीं मिला; अतएव आप हमें आज्ञा प्रदान करें। हम तुरंत उस मर्त्यलोक बालकका वध कर देते हैं। इन छोटे-मोटे [illegible] आपको शस्त्र उठानेकी आवश्यकता नहीं।'

'वीरो! मैं तुम्हारे शौर्यसे परिचित हूँ, किंतु उस [illegible] बालकको मृत्युदण्ड देनेके लिये मैं आतुर हो गया हूँ।' कहता हुआ सिन्दूर अपने शस्त्र और मन्त्रियोंके सम्मुख पहुँच गया।

'दुर्मते! [illegible]' प्रचण्ड सिन्दूरासुर गजाननके [illegible] दूर करके [illegible] [illegible] देवताओंको [illegible] [illegible] शिव और शिवा—[illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

'दुष्ट असुर!' गजाननने अत्यन्त निर्भीकता[illegible]
दिया—'तूने बात तो उचित कही; किंतु अग्निका एक[illegible]
सम्पूर्ण नगरको दग्ध करनेमें समर्थ होता है। मैं[illegible]
सर्जन, पालन और संहार भी करता हूँ। मैं दुष्टोंका सं[illegible]
धर्मात्माओंका उद्धार और सद्धर्मकी स्थापना करनेवाला [illegible]
तू मेरी शरण आकर अपने पापोंके लिये क्षमा मा[illegible]
सद्धर्मपरायण नरेशकी भाँति जीवित रहनेकी प्रतिज्ञा [illegible]
तब तो तुम्हें छोड़ दूँगा; अन्यथा विश्वास कर, तेरा
काल समीप आ गया है।'

इतना कहते ही पार्वतीनन्दनने विराट् रूप धार[illegible]
लिया। उनका मस्तक ब्रह्माण्डका स्पर्श करने लगा[illegible]
पैर पातालमें थे। कानोंसे दसों दिशाएँ आच्छादित हो [illegible]
वे सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद विश्वरूप प्रभु सर्व[illegible]
थे। वे अनादिनिधन, अनिर्वचनीय विराट् गजानन[illegible]
वस्त्र, दिव्य गन्ध और दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत थे।
अनन्त प्रभुका तेज अनन्त सूर्योंके समान था।

महामहिम गजाननका महाविराट् रूप दे[illegible]
परम प्रचण्ड वरप्राप्त असुर सिन्दूर सहम गया, पर उ[illegible]
धैर्य नहीं छोड़ा। उसने भयानक गर्जना की और फिर[illegible]
प्रज्वलित दीपपर पतंगकी तरह झपटा। खड्ग लेकर [illegible]
करना ही चाहता था कि देवदेव गजाननने कहा—'दु[illegible]
मेरे अत्यन्त दुर्लभ स्वरूपको नहीं जाना; अब मैं तुझे [illegible]
प्रदान करता हूँ।'

देवदेव गजाननने महावीर सिन्दूरका कण्ठ पकड़ लि[illegible]
और उसे अपने बड़े-बड़े दोनों हाथोंसे दबाने लगे। असुर[illegible]
नेत्र बाहर निकल आये और उसी क्षण [illegible]
हो गया।

फिर गजाननने उसके लाल रक्तको अपने [illegible]
लेप किया। इस कारण [illegible] [illegible]
[illegible] और [illegible]

[illegible]

ब्रह्मा, इन्द्रादि देव, और वसिष्ठादि मुनि गजाननकी देते हुए पवित्रतम उपहार लिये धरणीका दुःख दूर वाले परम प्रभु गजमुखके सम्मुख एकत्र हुए। सिन्दूर- प्रसन्न नृपतिगण भी वहाँ पहुँच गये।

उन सबने सर्वाभरणभूषित, पाश, अङ्कुश, परशु और ...धारी, चतुर्भुज, मूषक-वाहन गजाननकी षोडशोपचारसे पूर्वक पूजा की। तदनन्तर इन्द्रादि देवगण परम प्रभु गौरी-पुत्र गजाननकी स्तुति करने लगे—

..................स्तोतुं त्वां न हि शक्नुमः ॥
यत्र कुण्ठाश्चतुर्वेदा ब्रह्माद्याश्च मुनीश्वराः।
त्वं कर्ता कारणं कार्यं रक्षकः पोषकोऽपि च ॥
संहर्ता मोहनश्चास्य विश्वस्य ज्ञानदः क्वचित्।
सरितः सागरा वृक्षाः पर्वताः पशवोऽखिलाः ॥
वायुराकाशपृथिवी वह्निर्वारि त्वमेव च।
ब्रह्मा विष्णुः शिवः शक्रो मरुतो मुनयोऽपि च ॥
गन्धर्वाश्चारणाः सिद्धा यक्षराक्षसपन्नगाः।
अप्सरःकिंनरा देव त्वमेव सचराचरम् ॥
वयं धन्या यतो दृष्टः प्रत्यक्षं मोक्षसाधनः।
सिन्दूरे तु हते देव सुखं प्राप्ताः सुरोत्तमाः ॥
राजानो मुनयो लोकाः स्वस्वकार्ये मुदा रताः।
भविष्यन्ति स्वधास्वाहावषट्काराश्रिताः क्रियाः ॥
नानावतारैः कुरुषे पालनं त्वं विशेषतः।
दुष्टानां नाशनं सद्यो भक्तानां कामपूरकः ॥
(गणेशपु० २ । १३७ । २८-३५)

'प्रभो! हम आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं; जिनके सम्बन्धमें कुछ कहनेमें चारों वेद, ब्रह्मादि देवता और मुनीश्वर कुण्ठित हैं, वहाँ हमारी क्या गिनती है! आप इस विश्वके कर्ता, कारण, कार्य, रक्षक, पोषक, संहारक, मोहक और कहीं ज्ञानदाता भी हैं। नदियाँ, समुद्र, वृक्ष, पर्वत, समस्त पशु, वायु, आकाश, पृथ्वी, अग्नि और जल भी आप ही हैं। देव! आप ही ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, मरुद्गण, मुनि, गन्धर्व, चारण, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, नाग, अप्सराएँ, किंनर तथा चराचर प्राणियोंसहित समस्त जगत् हैं। हम धन्य हैं; क्योंकि हमने मोक्ष साधक आप परमेश्वरका प्रत्यक्ष दर्शन किया है। देव! इस सिन्दूरासुरके मारे जानेसे समस्त श्रेष्ठ देवताओंको सुख प्राप्त हुआ है। अब राजा, मुनि, लोक अपने-अपने कार्यमें प्रसन्नतापूर्वक लग जायँगे। स्वधा, स्वाहा और वषट्कारके आश्रित समस्त क्रियाएँ निर्विघ्न होंगी। आप नाना प्रकारके अवतार लेकर विशेषरूपसे जगत्का पालन करते हैं एवं दुष्टोंका विनाश करके भक्तोंकी कामनाओंको तत्काल पूर्ण करते हैं।'

इस प्रकार स्तुति कर देवताओंने वहाँ एक भव्य मन्दिरका निर्माण किया और फिर उसमें गजाननकी सुन्दर मूर्ति स्थापित की। उसके दर्शनमात्रसे प्राणी निष्पाप हो जाता है।

देवताओंने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उस मूर्तिकी विविधोपचारसे पूजा कर उसे प्रणाम किया। तदनन्तर मुनियोंने भी प्रसन्न मनसे उक्त गजानन-प्रतिमाका पूजन किया। सिन्दूरासुरको मारकर उन्हें सुखी करनेके कारण देवताओं और ऋषियोंने उक्त मूर्तिका नामकरण किया—'सिन्दूरहा'। फिर वे सभी अपने-अपने स्थानको चले गये।

इसके बाद श्रेष्ठ मुनियोंने नाना प्रकारके द्रव्योंसे गजानन-मूर्तिकी पूजा करके उसे प्रणाम किया और उक्त स्थानका नाम 'राजसदन' रखा।

'मेरे पुत्रने लोककण्टक सिन्दूरको समाप्त किया है।' इस समाचारसे प्रसन्न होकर राजा वरेण्य वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने यह विचारकर कि गजाननने दैत्यका नाश करके राजाओंको उनका पद प्रदान किया, उन्हें 'दैत्य-विमर्दन!' कहा।

अपने पुत्रका प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर राजा वरेण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक गजाननकी पूजा की। अत्यधिक प्रेमके कारण राजा वरेण्यकी वाणी अवरुद्ध थी, नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा था। फिर दुःखके कारण रोते हुए उन्होंने देवदेव गजाननसे कहा—'जिन अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-नायकको ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जान पाते, भला मैं अज्ञानी मनुष्य उसे कैसे जान पाता। मैं अपनी मूढ़ताको क्या कहूँ! घर आयी कामधेनु और सुरतरुको मैंने बाहर फेंक दिया। आपकी मायासे मोहित होकर मैंने बड़ा अनर्थ किया है। आप मुझे क्षमा करें।'

पश्चात्ताप करते हुए राजा वरेण्यकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वरेण्यनन्दन गजाननने उन्हें अपनी चारों भुजाओंसे आलिङ्गन किया और फिर कहा—'राजन्! पूर्वजन्ममें तुमने अपनी पत्नीके साथ मुझे पुत्ररूपमें प्राप्त करनेके लिये दीर्घकालतक कठोर तप किया था, तब मैंने प्रत्यक्ष होकर

तुम्हें दर्शन दिया। तुमने मुझसे मोक्ष न माँगकर मुझे पुत्र-रूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की। अतएव तुम्हारे पुत्र-रूपमें सिन्दूर वधकर भू-भार-हरण करने तथा साधु-जनोंके पालनके लिये मैंने साकार विग्रह धारण किया; अन्यथा मैं तो निराकार रूपसे अणु परमाणुमें व्याप्त हूँ। मैंने अवतार धारणकर सारा कार्य पूर्ण कर लिया। अब स्वधाम प्रयाण करूँगा। तुम चिन्ता मत करना।'

'प्रभो! जगत् शाश्वत दुःखालय है।' प्रभुके स्वधाम-गमनकी बात सुनते ही राजा वरेण्यने अत्यन्त व्याकुलतासे हाथ जोड़कर कहा—'आप कृपापूर्वक मुझे इससे मुक्त होनेका मार्ग बता दीजिये।'

कृपापरवश प्रभु गजानन वहीं आसनपर बैठ गये। अपने सम्मुख बद्धाञ्जलि आसीन राजा वरेण्यके मस्तकपर उन्होंने अपना भितापहारी वरद हस्त रख दिया। तदनन्तर उन्होंने नरेश वरेण्यको सुविस्तृत ज्ञानोपदेश प्रदान किया।

तत्पश्चात् भगवान् श्रीगजानन अन्तर्धान हो गये।

परम प्रभुकी संनिधि, उनके कर-स्पर्श एवं अमृतमय उपदेशसे नरेश वरेण्य पूर्ण विरक्त हो गये। उन्होंने राज्यका दायित्व अमात्योंको सौंपा और स्वयं तपश्चरणार्थ वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने अपना चित्त विषयोंसे हटाकर परब्रह्म श्रीगजाननमें केन्द्रित किया तथा अपना जीवन-जन्म सफल कर लिया।

श्रीगजानन प्रदत्त अमृतोपदेश 'गणेश-गीता' के नामसे प्रख्यात हुआ।

(४)

श्रीधूम्रकेतु

श्रीगणेशका कलियुगीय भावी अवतार 'धूम्रकेतु'के नामसे विख्यात होगा। उस समय देश समाजकी कैसी परिस्थिति रहेगी, इसका दिग्दर्शन गणेशपुराण १४९ वें अध्यायमें इस प्रकार कराया गया है—

कलियुगमें प्रायः सभी आचारभ्रष्ट एवं मिथ्याभाषी हो जायँगे। ब्राह्मण वेदाध्ययन और संध्या-वन्दनादि कर्म त्याग देंगे। यज्ञ यागादि और दान कहीं नहीं होगा। परदोष-दर्शन, परनिन्दा एवं परस्त्री-अ[illegible] करने लग जायँगे। सर्वत्र विश्वासघात होने [illegible] नहीं करेंगे। कृषक नदियोंके तटपर खेती करेंगे। बलवान् दुर्बलका धन छीन लेंगे और उनसे अधिक बलवान् उनकी सम्पत्तिका अपहरण करेंगे। ब्राह्मण शूद्र कर्म करने लगेंगे और शूद्र वेद पाठ करेंगे। क्षत्रिय वैश्यों और वैश्य शूद्रोंके कर्म करने लग जायँगे। ब्राह्मण चण्डालका प्रतिग्रह स्वीकार करने लगेंगे। प्रायः सभी मूर्ख और दरिद्र होंगे। सर्वत्र हाहाकार मच जायगा। कलियुगी मनुष्य दूसरेका धन लेकर भी शपथपूर्वक अस्वीकार कर जायँगे।

सभी लोग पर-धनकी याचना करनेवाले होंगे और पर-धन स्वीकार करनेमें लज्जा एवं संकोचका अनुभव नहीं करेंगे। उत्कोच लेकर मिथ्या साक्षी देनेमें लोगोंको तनिक भी झिझक या आत्म ग्लानि नहीं होगी। लोग सज्जनोंकी निन्दा और दुष्टोंसे मैत्री करेंगे। ब्राह्मण मांसाहारी हो जायँगे। सज्जनोंका उच्छेद और दुर्जनोंका उत्कर्ष होगा। मनुष्य देवताओंको त्यागकर इन्द्रिय-सुखमें तल्लीन रहने लगेंगे। वे भूत, प्रेत और पिशाचकी पूजा करने लगेंगे। नाना प्रकारके वेश बनाकर दम्भपूर्वक उदर-पूर्तिका प्रयत्न होगा। क्षत्रिय अपने धर्मका पालन छोड़कर भिक्षाटन करने लगेंगे। व्रत, नियम, आचरण—सभी लुप्त हो जायँगे।

संतान वर्णसंकर होगी। घोर कलिके उपस्थित होनेपर साध्वी स्त्रियाँ अपने व्रतसे भ्रष्ट हो जायँगी। पर-धन हरण करनेवाले सभी मनुष्य म्लेच्छप्राय हो जायँगे। वे कुमार्गगामी होंगे। पृथ्वीकी उर्वरा शक्ति नष्ट हो जायगी और वृक्ष रसहीन हो जायँगे।

पाँच और छः वर्षकी कन्याएँ प्रसव करने लगेंगी। उस समय स्त्री-पुरुषोंकी पूर्णायु सोलह वर्षकी होगी। देवता और तीर्थ लुप्त हो जायँगे। धनार्जन ही प्रधान धर्म होगा। इस प्रकार सर्वत्र अधर्म, अनीति, अत्याचार और दुराचारका साम्राज्य व्याप्त हो जायगा। ईर्ष्या, द्वेष एवं मानसिक ज्वालसे सभी जलते रहेंगे। कलिकी अत्यन्त दारुण स्थितिका विवेचन सम्भव नहीं।

उस समय स्वाहा, स्वधा और वषट्कार-कर्म न होनेसे देवगण उपवास करने लगेंगे। वे अत्यन्त भयभीत होकर देवाधिदेव गजाननकी शरण जायँगे। फिर विविध प्रकारसे उन सर्वविघ्नविनाशन गजानन प्रभुका स्तवन कर उन्हें बार-बार नमस्कार करेंगे।

…व कलिके अन्तमें शत्रुःसारह परम प्रभु गजानन …मिसर अवतरित होंगे। उनका 'शूर्पकर्ण' और 'धूम्रवर्ण' …मसिद्ध होगा। क्रोधके कारण उन परम तेजस्वी प्रभुके …से ज्वाला निकलती रहेगी। वे नीले अश्वपर आरूढ …। उन प्रभुके हाथमें शत्रुसंहारक तीक्ष्णतम खड्ग …। वे अपने इच्छानुसार नाना प्रकारके सैनिक एवं …ल्य अमोघ शस्त्रास्त्रोंका निर्माण कर लेंगे।

…फिर पराक्रमशाली परमप्रभु शूर्पकर्ण अपने तेज एवं …के द्वारा सहज ही म्लेच्छोंका सर्वनाश कर देंगे। म्लेच्छ या म्लेच्छ जीवन व्यतीत करनेवाले निश्चय ही परम प्रभु धूम्रकेतुके द्वारा मारे जायँगे। उन धर्म-संस्थापक प्रभुके नेत्रोंसे अग्नि-वर्षा होती रहेगी।

वे धर्माधार, सर्वात्मा प्रभु धूम्रकेतु उस समय गिरि-कन्दराओं एवं अरण्योंमें छिपकर वनफलोंपर जीवन निर्वाह करनेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें सम्मानित करेंगे और वे करुणामय धर्ममूर्ति शूर्पकर्ण उन सत्पुरुषोंको सद्धर्म एवं सत्कर्मके पालनके लिये प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करेंगे। फिर सबके द्वारा धर्माचरण सम्पादित होगा और धर्ममय सत्ययुगका शुभारम्भ हो जायगा।

श्रीगणेशके प्रमुख आठ अवतार

(मुद्गलपुराणमें)

…मुद्गलपुराणमें कहा गया है कि विघ्नविनाशन गणेशके …त अवतार हैं। उनका वर्णन सौ वर्षोंमें भी सम्भव …है। उनमें कुछ मुख्य हैं। उन मुख्य अवतारोंमें …ब्रह्मधारक आठ मुख्य अवतार हैं। उनके नाम …प्रकार हैं—

…वक्रतुण्डावतारश्च देहानां ब्रह्मधारकः।
…मत्सरासुरहन्ता स सिंहवाहनगः स्मृतः॥
एकदन्तावतारो वै देहिनां ब्रह्मधारकः।
मदासुरस्य हन्ता स आखुवाहनगः स्मृतः॥
महोदर इति ख्यातो ज्ञानब्रह्मप्रकाशकः।
मोहासुरस्य शत्रुर्वै आखुवाहनगः स्मृतः॥
गजाननः स विज्ञेयः सांख्येभ्यः सिद्धिदायकः।
लोभासुरप्रहर्ता वै आखुगश्च प्रकीर्तितः॥
लम्बोदरावतारो वै क्रोधासुरनिबर्हणः।
शक्तिब्रह्माखुगः सद् यत् तस्य धारक उच्यते॥
विकटो नाम विख्यातः कामासुरविदाहकः।
मयूरवाहनश्चायं सौरब्रह्मधरः स्मृतः॥
विघ्नराजावतारश्च शेषवाहन उच्यते।
ममतासुरहन्ता स विष्णुब्रह्मेतिवाचकः॥
धूम्रवर्णावतारश्चाभिमानासुरनाशकः।
आखुवाहन एवासौ शिवात्मा तु स उच्यते॥

(मुद्गलपुराण २० । ५–१२)

'वक्रतुण्डावतार' देह-ब्रह्मको धारण करनेवाला है, वह …त्सरासुरका संहारक तथा सिंहवाहनपर चलनेवाला माना गया है। 'एकदन्तावतार' देहि-ब्रह्मका धारक है, वह मदासुरका वध करनेवाला है; उसका वाहन मूषक बताया गया है। 'महोदर'-नामसे विख्यात अवतार ज्ञान ब्रह्मका प्रकाशक है। उसे मोहासुरका विनाशक और मूषक-वाहन बताया गया है। जो 'गजानन'-नामक अवतार है, (वह सांख्य ब्रह्म धारक है), उसको सांख्ययोगियोंके लिये सिद्धिदायक जानना चाहिये। उसे लोभासुरका संहारक और मूषकवाहन कहा गया है। 'लम्बोदर'-नामक अवतार क्रोधासुरका उन्मूलन करनेवाला है; वह सत्स्वरूप जो शक्तिब्रह्म है, उसका धारक कहलाता है। वह भी मूषकवाहन ही है। 'विकट'-नामसे प्रसिद्ध अवतार कामासुरका संहारक है, वह मयूर-वाहन एवं सौरब्रह्मका धारक माना गया है। 'विघ्नराज'-नामक जो अवतार है, उसके वाहन शेषनाग बताये जाते हैं, वह विष्णुब्रह्मका वाचक (धारक) तथा ममतासुरका विनाशक है। 'धूम्रवर्ण'-नामक अवतार अभिमानासुरका नाश करनेवाला है, वह शिवब्रह्म-स्वरूप है। उसे भी मूषक-वाहन ही कहा जाता है।"

उन आठ अवतारोंकी अत्यन्त संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

(१)

वक्रतुण्ड

देवराज इन्द्रके प्रमादसे महान् असुर मत्सरका … हुआ। उसने दैत्यगुरु शुक्राचार्यसे शिव-पञ्चाक्षरी मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) की दीक्षा प्राप्त की। मत्सरने इस मन्त्रका जप करते हुए कठोर तप किया। उसके तपश्चरणसे संतुष्ट होकर भगवान् शंकरने अपनी सहधर्मिणी पार्वती और गणोंके साथ उसे दर्शन दिया।

प्रलयके अनन्तर सृष्टि-निर्माणमें अनेक व्यवधान उत्पन्न र लोक-पितामहने षडक्षरी मन्त्र ('वक्रतुण्डाय हुम्')-जप करते हुए गणेशको संतुष्ट करनेके लिये कठोर करना प्रारम्भ किया। उनके तपश्चरणसे प्रसन्न होकर ण्ड प्रकट हुए और विधाताको अभीष्ट वर प्राप्त । तदनन्तर वे सृष्टिकार्यमें समर्थ हो गये।

लोक पितामहके कम्पसे दम्भका जन्म हुआ। ने ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिये बड़ी कठोर तपस्या की। जीने संतुष्ट होकर उसे सर्वत्र निर्भयताका वर प्रदान दिया।

तब दम्भने अपने लिये एक अत्यन्त सुन्दर नगरका ण करवाया और वहीं रहने लगा। दैत्यगुरु शुक्राचार्यने दैत्याधिपतिके पदपर अभिषिक्त कर दिया।

अजेय दम्भासुरके अत्यन्त पराक्रमी सैनिक युद्धमें का सहज ही मान-मर्दन किया करते थे। उन असुर के साथ दम्भने सम्पूर्ण पृथ्वीको तो अपने अधीन किया स्वर्ग, वैकुण्ठ और कैलासपर भी अधिकार कर लिया।

निराश्रित देवगण अत्यन्त चिन्तित और दुःखी होकर जीके समीप पहुँचे और उनकी स्तुति करने लगे। अत्यन्त से उन्होंने प्रार्थना की—'प्रभो! हमारी रक्षा कीजिये।'

समस्त देवताओंके साथ ब्रह्माने एकाक्षरी मन्त्रसे तुण्डका यजन किया। वक्रतुण्ड प्रसन्न होकर देवताओंके क्ष प्रकट हुए। देवताओंने उन करुणामूर्ति वक्रतुण्डका न करते हुए निवेदन किया—'दारिद्रय-दुःखहर प्रभो! सुरके द्वारा हमें अतिशय कष्ट हो रहा है। आप कृपा- हमें सुख शान्ति प्रदान करें।'

'मैं दम्भासुरको पराजित करूँगा।' समस्त आपदाओंका करनेवाले परम प्रभुने सुर-समुदायको आश्वस्त किया।

भगवान् वक्रतुण्डने सुरेन्द्रको दूतके रूपमें दम्भासुरके भेजा। उन्होंने असुरसे कहा—'तुम प्रभुकी आज्ञा र कर लो और देवताओंको मुक्त कर उन्हें स्वाधीन दो; अन्यथा परम प्रभु वक्रतुण्डसे युद्ध करनेके लिये णमें आ जाओ। विश्वास करो, युद्ध करनेपर तुम्हारा श सुनिश्चित है।'

'मैं तुमलोगोंका अहंकार चूर्ण कर दूँगा।' दम्भका मसकर शचीपति वक्रतुण्डके समीप पहुँचे।

'यह गणेश कौन है? सिद्धि-बुद्धि उसकी कौन हैं तथा उसका स्वरूप कैसा है?' मघवाके प्रयाणके बाद दम्भने तुरंत शुक्राचार्यके पास जाकर पूछा। शुक्राचार्यने उसे गणेशके यथार्थ स्वरूपका परिचय दिया।

अमित महिमामय वक्रतुण्डके अभूतपूर्व एवं अश्रुतपूर्व दिव्य स्वरूपको जानकर दम्भासुरके मनमें श्रद्धा उदित हुई। उसने गणेशकी शरण जानेका निश्चय किया, किंतु दैत्यगण उसका विरोध करने लगे। दैत्यपतिने उनकी उपेक्षा कर दी और वह नगरके बाहर महोदर महाकाय वक्रतुण्डके चरणोंपर गिरकर उनकी स्तुति करते हुए उनसे क्षमा-प्रार्थना की।

सहज दयामय गणेशने उसे क्षमा कर अपनी भक्ति-प्रदान कर दी। देवगण सुखी होकर निश्चिन्ततापूर्वक अपने-अपने कार्यमें लग गये।

(२)

एकदन्त

महर्षि च्यवनने मदकी सृष्टि की। मदने महर्षिके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी अनुमतिसे वह पातालमें शुक्राचार्यके पास पहुँचा। वहाँ उसने दैत्य-गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर दूर खड़ा हो गया।

दैत्य-गुरुके पूछनेपर अपना परिचय देते हुए उसने कहा—"प्रभो! मैं आपके भाई महर्षि च्यवनका पुत्र हूँ; इस प्रकार आपका भी पुत्र हुआ। मेरा नाम 'मद' है। आप कृपापूर्वक मुझे अपना शिष्य बना लें। मैं ब्रह्माण्डका महान् राज्य चाहता हूँ। आप मेरी इच्छा पूरी कर दें।"

शुक्राचार्यने संतुष्ट होकर मदको शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया। सर्वार्थकोविद आचार्यने उसे एकाक्षरी विधानसे ('ह्रीं' यह) शक्तिमन्त्र दे दिया।'

मदने अत्यन्त भक्तिपूर्वक अपने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद प्राप्तकर अरण्यमें तप करने चला गया। शक्तिध्यानपरायण मद सर्वथा निराहार रहकर तपश्चरण करने लगा। सहस्रों वर्ष व्यतीत होनेपर उसका अस्थिमात्र-अवशिष्ट शरीर वल्मीकावृत हो गया। उसके चारों ओर वृक्ष उग गये; लताएँ फैल गयीं। असुरके दिव्य सहस्र वर्षोंतक कठोर तपसे संतुष्ट जिह्वांकिनी भगवती प्रकट हुईं। भगवतीने उसे आश्वस्त किया

ध्यानसे पार्वतीकी ओर देखते हुए भगवान् शंकरने कुपित होकर कामदेवके शरीरको दग्ध कर दिया। शापमुक्त होनेके लिये कामदेवने महोदरकी उपासना की। महोदर प्रकट हो गये। कामदेव उनके चरणोंमें प्रणाम कर गद्गद कण्ठसे उनकी स्तुति करने लगा।

प्रसन्न महोदर बोले—'मैं शिवके शापको तो अन्यथा नहीं कर सकता, किंतु तुम्हारे रहनेके लिये तुम्हें अन्य देह दे रहा हूँ।' ऐसा कहकर उन्होंने कामदेवके निवास-योग्य शरीर एवं स्थानोंका यों वर्णन किया—

> यौवनं स्त्री च पुष्पाणि सुवासानि महामते।
> गानं मधुरसश्चैव मृदुलाण्डजशब्दकः॥
> उद्यानानि वसन्तश्च सुवासाश्चन्दनादयः।
> सङ्गो विषयसक्तानां नराणां गुह्यदर्शनम्॥
> वायुर्मृदुः सुवासश्च वस्त्राण्यपि नवानि वै।
> भूषणादिकमेवं ते देहा नाना कृता मया॥
> तैर्युतः शंकरादींश्च जेष्यसि त्वं पुरा यथा।
> मनोभूः स्मृतिभूरेवं त्वन्नामानि भवन्तु वै॥
>
> (मुद्गलपु० ३ । ४ । ४१-४५)

"महामते! यौवन, नारी और पुष्प, तुम्हारे सुन्दर वास-स्थान हैं। गान, मकरन्द-रस, पक्षियोंके मधुर कलरव, उद्यान, वसन्त और चन्दनादि तुम्हारे सुन्दर आवास हैं। विषयासक्त मनुष्योंका सङ्ग, गुह्य अङ्गोंका दर्शन, मन्द-वायु, सुन्दर वास, नये वस्त्र और आभूषण आदि—ये सब मैंने तुम्हारे लिये नाना प्रकारके शरीर निर्मित किये हैं। इन शरीरोंसे युक्त होकर तुम पहलेकी ही भाँति शंकरादि देवताओंको भी जीत सकोगे। इस प्रकार तुम्हारे 'मनोभूः' और 'स्मृतिभूः' आदि नाम होंगे।'"

कामदेवकी प्रार्थनापर दयामय गणेशने पुनः कहा—'श्रीकृष्णके अवतरित होनेपर तू उनका पुत्र प्रद्युम्न होगा।'

शिव पुत्र कार्तिकेयने षडक्षर-विधान ('वक्रतुण्डाय हुम्' के जप)से गणेशको प्रसन्न किया और सद्यःफलदाता गणेशने प्रसन्न होकर उन्हें वर प्रदान किया—'तू तारकासुरका वध करेगा।' और फिर कार्तिकेयने तारकको मारकर देवताओंको संतोष प्रदान किया।

असुर-गुरु शुक्राचार्यने मोहासुरको संस्कार कर उसे दीक्षा दी। उनके आदेशानुसार मोहासुरने सूर्यको प्रसन्न करनेके लिये निराहार रहकर दिव्य सहस्र वर्षोंतक कठोर तपस्या की। उस तपसे संतुष्ट हो सूर्यदेव प्रकट हुए।

मोहासुरने उनके चरणोंमें प्रणाम कर षोडशोपचारसे उनकी पूजा की और फिर हाथ जोड़कर वह सूर्यदेवकी स्तुति करने लगा। प्रसन्न सूर्यदेव उसे रोगहीन और सर्वत्र विजयी होनेका वर प्रदान करके अन्तर्धान हो गये।

वर पाकर हर्षमग्न हुआ असुर अपने स्थानपर लौटा। शुक्राचार्यने उसे दैत्यराजके पदपर अभिषिक्त कर दिया। महान् असुरोंका सम्राट् होते ही मोहासुरने त्रैलोक्यपर अधिकार कर लिया। देवता और मुनि पर्वतों और अरण्योंमें छिप गये। मोहासुर अपनी परम रूपवती पत्नी (प्रमादासुरकी पुत्री) मदिराके साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

कर्ममार्ग, धर्माचरण और वर्णाश्रम धर्म आदि सब नष्ट हो गये। दुःखी देवगण और ऋषि-समुदायको भगवान् सूर्यने एकाक्षर विधानसे गणेशको संतुष्ट करनेकी प्रेरणा दी। देवता और मुनिगण अत्यन्त कष्ट सहकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मूषक-वाहनकी उपासना करने लगे।

इससे प्रसन्न हो महोदर प्रकट हुए। देवता और मुनियोंकी स्तुतिसे अत्यन्त संतुष्ट होकर उन्होंने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा—'मैं मोहासुरका वध करूँगा। आपलोग निश्चिन्त हो जायँ।'

मूषक-वाहन महोदर मोहासुरसे युद्धके लिये प्रस्थित हुए। यह समाचार देवर्षिने मोहासुरको दे दिया। साथ ही उन्होंने अनन्त पराक्रमशील, सर्वसमर्थ एवं सर्वाधार महोदरका सत्यस्वरूप भी उसे समझाया और उसे उनकी शरण ग्रहण करनेकी प्रेरणा दी। दैत्यगुरु शुक्राचार्यने भी उसे महोदरकी शरण लेनेका ही शुभ परामर्श दिया। उसी समय महोदर-दूत विष्णुने उपस्थित होकर मोहासुरसे कहा—'अचिन्त्यशक्ति सम्पन्न प्रभु महोदरको तुम्हारी मैत्री अभीष्ट है। यदि तुम महोदरकी शरण ग्रहण कर देवताओं, मुनियों, ब्राह्मणों एवं सद्धर्मपरायण स्त्री-पुरुषोंके सुखपूर्वक जीवन-यापन करनेमें कभी व्यवधान उपस्थित न करनेका वचन दो तो दयामय प्रभु तुम्हें क्षमा कर देंगे; अन्यथा रणाङ्गणमें तुम्हारी रक्षा सम्भव नहीं।'

'मैं अखण्डज्ञान-सम्पन्न महोदरकी शरण लेता हूँ।' कहकर भय विह्वल मोहासुरने अत्यन्त आदर, प्रेम और विनयपूर्वक

विष्णुसे निवेदन किया। 'आप परम प्रभु महोदरको मेरे नगरमें भेजकर मुझे उनके सादर अभिनन्दनका दुर्लभतम अवसर प्रदान करें।'

महोदरने मोहासुरके नगरमें पदार्पण किया। मोहासुरने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया। उसने प्रभुकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा और गद्गदकण्ठसे स्तुति की। असुरने महोदरकी प्रत्येक आज्ञाके पालनका वचन दिया।

सहज कृपालु महोदरने उसे अपनी दुर्लभ भक्ति प्रदान कर दी। मोहासुरके शान्त होनेसे देवता, ऋषि, ब्राह्मण एवं सद्धर्मपरायण स्त्री-पुरुष—सभी सुखी हो गये।

देवता और मुनि महोदर प्रभुका स्तवन एवं जय-जयकार करने लगे।

• • •

भगवान् गजमुखने दुर्बुद्धि नामक दैत्यका वध कर दिया था; इस कारण उक्त दैत्यका महान् पुत्र ज्ञानारि गजमुखसे प्रतिशोध लेनेके लिये अधीर और आतुर था। उसने दैत्यगुरु शुक्राचार्यसे शिवके पञ्चाक्षरी मन्त्र (नमः शिवाय) की दीक्षा प्राप्त की और तप करने लगा। ज्ञानारिके कठोर तपसे संतुष्ट होकर भगवान् शंकर प्रकट हुए और उसे निर्भयताका वर प्रदान कर दिया।

फिर क्या था; वर-प्राप्त असुर सर्वत्र विजय प्राप्त कर सर्वथा निरंकुश जीवन व्यतीत करने लगा। उसके शासनमें सत्य, धर्म और नीति-नामकी कोई वस्तु नहीं रह गयी। सर्वत्र छल, प्रवञ्चना, असत्य, अधर्म, अनीति, अनाचार और दुराचार व्याप्त थे। पापपरायण असुरोंसे धरती काँप उठी।

दुःखी, पीड़ित, अनाथ, अनाश्रित, असहाय और सर्वथा निरुपाय देवताओंको लक्ष्मीपति श्रीविष्णुने गणेशके दशाक्षरी मन्त्र (गं क्षिप्रप्रसादनाय नमः) का उपदेश दिया। देवगण देवदेव महोदरकी उपासना करने लगे। प्रसन्न महोदरने स्वप्नमें लक्ष्मीसे कहा—'मैं तुम्हारी इच्छापूर्तिके लिये तुम्हारे पुत्र रूपमें प्रकट होऊँगा।'

महादैत्य ज्ञानारिके पुत्रका नाम सुबोध था। सुबोधके हृदयमें पूर्णानन्द महोदरके प्रति अमित श्रद्धा एवं भक्ति थी। वह निरन्तर महोदरका स्मरण, उन्हींका ध्यान एवं उनके नामका जप किया करता था। सुबोध प्रायः महोदरके गुण गाता था। उसके पिता ज्ञानारिको यह सब सह्य नहीं था।

ज्ञानारिने अपने पुत्र सुबोधको अनेक प्रकारसे समझाया, किंतु उसपर उसका कोई प्रभाव पड़ता न देख वह उसे मार डालनेके लिये प्रस्तुत हो गया। अत्यन्त कुपित होकर उसने अपने पुत्रसे पूछा—'तेरा पूर्णानन्द महोदर कहाँ रहता है?'

'पृथ्वी, आकाश, जल, थल, पवन, तरु-लता-वल्लरियों, सर-सरिताओं, समुद्रों, वनों, पर्वतों, सचराचर प्राणियों और अणु-परमाणुमें वे सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापी, सर्वसमर्थ मूषक-वाहन गजमुख महोदर सदा निवास करते हैं।'

सुबोधके वचन सुन क्रोधोन्मत्त ज्ञानारिका हाथ खड्गपर गया। दाँत पीसते हुए उसने कहा—'यदि तेरा महोदर सर्वत्र है तो यहाँ भी होगा?'

'हाँ।' सुबोधने उत्तर दिया ही था कि भयानक शब्द हुआ, जैसे ब्रह्माण्ड विदीर्ण हो गया हो। काँपते हुए ज्ञानारिने अद्भुत, अलौकिक, अत्यन्त तेजस्वी, परम पराक्रमी, महाभयानक, मूषकारूढ, सायुध नर-नाग-स्वरूप महोदरको देखा।

'यह अद्भुत प्राणी कौन है?' आश्चर्यचकित ज्ञानारि कुछ निश्चय भी नहीं कर पाया था कि पूर्णानन्दने उसका वध कर दिया।

सबकी आपदा टल गयी। सभी स्वतन्त्र और सुखी हो गये।

(४)

गजानन

एक बार धनाधिपति कुबेर कैलास पहुँचे। वहाँ उन्होंने जगदम्बा शिवा शिवका दर्शन किया। [illegible] परम सती शिवा कुबेरकी अपनी ओर [illegible] निहारते देख अत्यन्त क्रुद्ध हो गयीं [illegible] भयभीत कुबेरसे लोभासुर [illegible] और डरने लगा।

[illegible] करकर उनके [illegible] अक्षरी मन्त्र ([illegible] [illegible] देखता ही।

लोभासुर गुरु-चरणोंमें आदरपूर्वक प्रणाम करके वनमें चला गया।

निर्जन अरण्यमें जाकर असुरने स्नानादिसे निवृत्त हो भस्म धारण किया। फिर वह पार्वतीवल्लभ शिवका ध्यान करता हुआ पञ्चाक्षरी मन्त्रका जप करने लगा। वह सर्वथा निराहार रहता था। इस प्रकार दीर्घकालतक अखण्ड तप करते रहनेसे उसका शरीर वल्मीकसे आवृत हो गया। दिव्य सहस्र वर्षतक तप करनेके अनन्तर करुणामय शिव उसके समक्ष प्रकट हुए।

लोभासुर देवाधिदेव महादेवके चरणोंमें प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगा। प्रसन्न फणिभूषणने उसे अभीष्ट वर प्रदान करते हुए सबसे निर्भय कर दिया।

सर्वथा निर्भय लोभासुरने प्रमुख दैत्योंको एकत्र किया। वे सभी लोभासुरका समर्थन करने लगे। उन असुरोंके सहयोगसे लोभासुरने पृथ्वीपर अपना एकच्छत्र राज्य स्थापित कर लिया। फिर उसने स्वर्गपर आक्रमण किया। वज्रायुध पराजित हो गये। लोभासुर स्वर्गाधिप बना।

पराजित सुरेशने अपनी व्यथा-कथा श्रीविष्णुसे कह सुनायी। श्रीविष्णु असुर-नाशके लिये चले। युद्ध हुआ। वर-प्राप्त असुरके सम्मुख श्रीविष्णु भी टिक नहीं सके; पराजित हो गये।

'विष्णु तथा अन्य देवताओंके रक्षक महादेव हैं'— यह सोचकर लोभासुरने अपना दूत शिवके पास भेजा। दूतने उनसे कहा—'आप परम पराक्रमी लोभासुरसे युद्ध कीजिये या कैलास उनके लिये रिक्त कर दीजिये।'

भगवान् शंकरको उसे अपना दिया हुआ वर स्मरण हो आया और वे कैलास त्यागकर सुदूर अरण्यमें चले गये।

लोभासुरके हर्षकी सीमा न रही। उसके शासनमें समस्त धर्म-कर्म समाप्त हो गये; पापोंका नग्न ताण्डव होने लगा एवं ब्राह्मण और ऋषि-मुनि यातना सहने लगे।

रैभ्यने देवताओंको गणेशोपासनाका परामर्श दिया। तब आदिदेव गजमुखकी आराधना करने लगे। उनसे संतुष्ट होकर मूषकवाहन गजानन प्रकट हुए। उन्होंने देवताओंको निश्चिन्त करते हुए कहा—'मैं लोभासुरको पराजित कर दूँगा।'

तदनन्तर गजाननने शिवको लोभासुरके समीप भेजा। श्री शिवने असुरसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा—'तुम गजमुखकी शरण ग्रहणकर शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करो, अन्यथा युद्धके लिये उद्यत हो जाओ।'

इसके अनन्तर शिवने लोभासुरको गजमुखका [illegible] सुनाया। उसके गुरु शुक्राचार्यने भी उसे गजमुखकी शरण लेना कल्याणकर बतलाया। लोभासुरने गणेशकी [illegible] समझ लिया। फिर तो वह परमप्रभुके चरणोंकी [illegible] करने लगा।

शरणागतवत्सल गजाननने उसे सान्त्वना प्रदान की। देवता, मुनि और ब्राह्मण आदि सभी सुखी हुए। [illegible] देवदेव गजाननका गुणगान करने लगे।

(६)

लम्बोदर

श्रीविष्णुके महामोहप्रद अनुपम रूप-लावण्य-युक्त मोहिनी रूपको देखकर कामारि काम-विह्वल हो गये। जब हँसते हुए श्रीविष्णुने मोहिनी-रूपको त्यागकर पुनः [illegible] रूप धारण किया, तब शिव खिन्न हो गये; किंतु उनका शुक्र स्खलित हो गया। उससे एक परम शक्तिशाली असुर पैदा हुआ। उस परम प्रतापी असुरका वर्ण [illegible] था। उसके नेत्र ताँबेके समान चमक रहे थे।

उक्त असुरने शुक्राचार्यके समीप जाकर उनके चरणोंमें अत्यन्त विनयपूर्वक प्रणाम किया; फिर विनीत स्वरमें कहा—'प्रभो! आप मुझ शिष्यका पालन कीजिये।'

शुक्राचार्य कुछ देरके लिये ध्यानमग्न हुए। फिर उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—'शिवके क्षोभके समय [illegible] उनके शुक्रका स्खलन हो गया और उसीसे तुम्हारी उत्पत्ति हुई; इस कारण तुम्हारा नाम 'क्रोधासुर' होगा।'

शुक्राचार्यने उक्त क्रोधासुरका संस्कार कर उसे प्रत्येक रीतिसे योग्य बनाया। फिर उन्होंने शम्बरकी अत्यन्त लावण्यवती पुत्री प्रीतिके साथ उसका विवाह कर दिया। अत्यन्त प्रसन्न होकर आचार्य-चरणोंमें प्रणाम कर हाथ जोड़े असुरने निवेदन किया—'मैं आपकी आज्ञा मानकर ब्रह्माण्ड विजय करना चाहता हूँ; अतएव आप मुझे यश प्रदान करनेवाला मन्त्र देनेकी कृपा कीजिये।'

दैत्योंके हितचिन्तक शुक्राचार्यने उसे सविधि सूर्य-मन्त्र (ॐ घृणि सूर्य आदित्य ओम्) प्रदान किया। क्रोधासुर गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया और वह अरण्यमें चला गया।

वहाँ वह एक पैरपर खड़ा होकर उक्त सूर्य-मन्त्रका
करने लगा। उसकी दृष्टि ऊपर उठी हुई थी। वह
र रहकर वर्षा, शीत और आतपका दुःख सहता
सूर्यदेवको प्रसन्न करनेके लिये दारुण तप कर
या।

असुरके दिव्य सहस्र वर्षोंतक तप करनेके अनन्तर
न् सूर्यदेव प्रसन्न होकर प्रकट हुए और बोले—
गो।'

क्रोधासुर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने तिमिरारिके
णोंमें प्रणाम कर उनका भक्तिपूर्वक पूजन किया। फिर
ने विनयपूर्वक वरकी याचना की—'उत्पत्ति स्थिति-
रयुक्त देवनायक! मेरी मृत्यु न हो। मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर
य प्राप्त कर लूँ। आप मुझे चराचरका राज्य प्रदान
जिये। आरोग्य दीजिये। मैं अद्वितीय सिद्ध होऊँ।'

क्रोधासुरके भयोत्पादक वचन सुन अत्यन्त विस्मित
र्यदेवने उसे वर दे दिया—'तुम्हारा अभीष्ट सफल होगा।'

क्रोधासुर अत्यन्त प्रसन्न होकर लौटा। उस सफल-
नोरथ महायशस्वीको देखकर उसके सुहृद् आनन्दित
ए। उसने पहले गुरुके चरणोंकी वन्दना की, फिर
पने घर गया। उसकी सहधर्मिणी प्रीतिने दो पुत्र
त्पन्न किये—हर्ष और शोक। वह विविध प्रकारके
ोग भोगने लगा।

क्रोधासुरने परम नीतिज्ञ शुक्राचार्यको आदरपूर्वक
ाकर उनकी पूजा की। शुक्राचार्यने उसे अत्यन्त सुन्दर
नेदपुरीमें दैत्याधिपतिके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया।
सुर अपने महादारुण प्रधानोंके साथ शासन करने लगा।

कुछ दिनों बाद उसने असुरोंके सम्मुख अपनी
ाण्ड विजयकी इच्छा व्यक्त की। असुर बड़े प्रसन्न हुए।
जय-यात्रा प्रारम्भ हुई। उसने सहज ही पृथ्वीपर
धिकार कर लिया। फिर वह अमरावतीपर दौड़ा। उसके
ससे देवगण भागे। इससे स्वर्ग असुरके अधीन हो गया।
सी प्रकार वैकुण्ठ और कैलासपर भी उस महादैत्यका
त्य स्थापित हुआ।

अन्ततः क्रोधासुरने अपना दूत भगवान् सूर्यदेवके
स भेजा। सूर्यदेव वर प्रदान कर चुके थे;
इससे उन्होंने सूर्यलोक
प्त होने लगा।

अत्यन्त दुःखी देवताओं और ऋषियोंने गणेशकी
आराधना की। इससे संतुष्ट होकर लम्बोदर प्रकट हुए।
उन्होंने कहा—'देवताओ और ऋषियो! मैं क्रोधासुरका
अहंकार चूर्णकर उसे नष्ट कर दूँगा। आपलोग
निश्चिन्त हो जायँ।'

आकाशवाणीसे यह संवाद क्रोधासुरने भी सुना।
वह भयाक्रान्त हो मूर्च्छित हो गया। चेतना लौटनेपर उसके
वीर सैनिकोंने उसे समझाया—'सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हमारे अधीन
है। आप आज्ञा प्रदान करें; हम किसी भी शत्रुका नाश
करनेमें समर्थ और प्रतिक्षण प्रस्तुत हैं।'

अपने वीर सैनिकोंके वचन सुन क्रोधासुर अत्यन्त
प्रसन्न हुआ। वह अपनी अजेय सेनाके साथ समराङ्गणमें
पहुँचा। वहाँ उसने मूषकारूढ़ गजमुख, त्रिनयन, लम्बोदरको
देखा। उनकी नाभिमें शेष लिपटे हुए थे। लम्बोदरके
इस विचित्र स्वरूपको देखकर क्रोधासुर अत्यन्त कुपित
हुआ।

भीषण संग्राम होने लगा। लम्बोदरके साथ देवगण
भी असुरोंका सवनाश करने लगे। क्रोधासुरके बलि, रावण,
कुम्भ, माल्यवान्, कुम्भकर्ण और राहु आदि महाबलवान्
योद्धा अत्यन्त आहत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। वे मृतप्राय
हो गये। क्रोधासुर दुःखसे अत्यन्त व्याकुल हो गया।

उसने लम्बोदरको सम्मुख देखकर कहा—'मूर्ख
लम्बोदर! तू ब्रह्माण्ड विजयी दूरके सम्मुख युद्ध करना
चाहता है। तेरी बुद्धि मारी गयी है। तू शीघ्र ही मेरी
शरण आ जा, अन्यथा मैं तेरा लम्बा उदर एक ही शरसे
फोड़ दूँगा।'

भगवान् लम्बोदरने उत्तर दिया—'अरे दैत्य! तू
व्यर्थ क्यों बकता है! मैं तुझ-जैसे खलका वध करनेके लिये
ही यहाँ आया हूँ। तूने सूर्यके वरके प्रभावसे बड़ा अधर्म
किया। पर तेरे अत्यन्त दानसे वे सारे पुण्य कर्म निष्फल हो
गये। अब मैं तेरा और तेरे अधर्मोंका नाश कर धर्मकी
स्थापना करूँगा। मैं मन-वाणीसे परे, आनन्दस्वरूप और
सम्पूर्ण भूतोंमें वास करता हूँ, फिर तू मुझपर कैसे विजय
...।'

... अन्य नहीं देख और
है।'

लम्बोदर बोले—"मेरे वामाङ्गमें जो यह सिद्धि है, वह भ्रान्तिस्वरूपा है। सब लोग सिद्धिके लिये भटकते हैं और भ्रममें पड़े रहते हैं। दायें भागमें स्वयं बुद्धि विराजमान है, जो भ्रान्तिको धारण करती है। बुद्धिसे विचार करके फिर उस विषयमें मनुष्य भ्रान्त होता है। स्वयं बुद्धि चित्स्वरूपा है और वह पाँच प्रकारकी बतायी गयी है। सिद्धि पञ्च भ्रान्तिमयी है और मैं इन दोनों बुद्धि और सिद्धिका पति हूँ। नाना प्रकारका विश्व और ब्रह्म सदा मेरे उदरमें स्थित है, इसलिये मैं 'लम्बोदर' कहा गया हूँ। सारा जगत् मेरे उदरसे उत्पन्न हुआ है, मुझसे ही पालित होता है और अन्तमें सबको अपने उदरस्थ करके मैं निरन्तर क्रीड़ा करता रहता हूँ। अतएव यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो मेरी शरणमें आ जाओ। शुक्राचार्य मुझे जानते हैं। तुम तो श्मशानेपर भी मेरे तत्त्वको नहीं समझ सकते। न तो मैं दैत्योंके वधका अभिलाषी हूँ और न देवताओंका ही वध मुझे प्रिय है। अपने-अपने धर्ममें लगे हुए सब लोगोंका मैं पालन करता हूँ; इसमें संशय नहीं है।"

क्रोधासुरकी शङ्काओंका समाधान होते ही वह प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा। उसने भक्तिभावसे उनकी पूजा कर गद्गद कण्ठसे स्तुति की। सहज कृपालु लम्बोदरने उसे क्षमा तो कर ही दिया, उसे अपनी भक्ति भी प्रदान कर दी।

क्रोधासुरने परम प्रभु लम्बोदरके चरण-कमलोंमें पुनः प्रणाम कर उनकी पूजा की। फिर वह उनकी आज्ञा प्राप्तकर शान्त जीवन व्यतीत करनेके लिये पातालको चला गया।

प्रसन्न देवगण देवदेव लम्बोदरका स्तवन करने लगे।

*   *   *

एक बारकी बात है, लोकपितामह सत्यलोकमें ध्यानस्थ बैठे थे। उसी समय उनके श्वास-वायुसे एक पुरुष प्रकट हुआ।

उक्त पुरुषने विधाताके चरणोंमें प्रणाम कर अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की। संतुष्ट ब्रह्माने उससे पूछा—'तुम कौन हो और तुम्हें क्या अभीष्ट है?'

उक्त पुरुषने अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया—'प्रभो! मैं आपके श्वास-वायुसे उत्पन्न आपका पुत्र हूँ। मेरा नामकरण कर मुझे रहनेके लिये स्थान प्रदान करनेका अनुग्रह करें।'

ब्रह्मा बोले—"महामते! तुम्हारे दर्शनमात्रसे ही माया बढ़ती है, इस कारण तेरा नाम 'मायाकर' होगा। तुम जो इच्छा करोगे, वही पूरी हो जायगी। तुम्हारी अव्याहत गति होगी। सब तुम्हारे वशीभूत होंगे। तुम सदा सत्त्व रहोगे।"

मायाकर पितामहके चरणोंमें प्रणाम कर वहाँसे चल पड़ा। अत्यन्त शक्तिशाली मायाकरको देखकर विप्रचित्ति नामक असुरने उसके चरणोंमें प्रणाम किया। उसने मायाकरकी अधीनता स्वीकार कर ली और शुक्राचार्यके द्वारा उसे दैत्याधिपतिके पदपर प्रतिष्ठित करवाया। प्रत्येक दृष्टिसे मायाकरको संतुष्ट कर लेनेके अनन्तर विप्रचित्तिने उसे सांसारिक भोग-सामग्रियोंकी ओर आकृष्ट किया।

फिर तो मायावी दैत्यने सबको पराजित कर अपने अधीन कर लिया। तदनन्तर उसने पातालपर आक्रमण किया। मायाकरके सम्मुख किसीका वश नहीं था। पातालमें हाहाकार मच गया।

इसपर शेषनागने विघ्नराज गणेशका स्मरण किया। प्रकट होकर देवदेव लम्बोदरने कहा—'मैं आपके पुत्रके रूपमें प्रकट होकर असुर मायाकरका वध करूँगा।'

जब सर्वान्तर्यामी, सर्वसमर्थ, मूषक-वाहन प्रभु लम्बोदर शेषके पुत्रके रूपमें प्रकट हुए तो देवगण हर्ष-विभोर होकर उनकी स्तुति करने लगे।

जगत्त्राता मूषक-वाहन लम्बोदर रणाङ्गणमें उपस्थित हुए। मायाकर भी अपनी वीर-वाहिनीके साथ डट गया। तुमुल युद्ध हुआ। दैत्योंको शिथिल होते देख मायाकरने अपनी मायाका आश्रय लिया, किंतु मायापतिके सम्मुख उसकी एक न चली। मायाकर मारा गया।

देवगण प्रसन्न हो गये।

(६)
विकट

क्षीराब्धिशायी विष्णु जब जलन्धर-पत्नी वृन्दाके समीप पहुँचे, उस समय उनके शुक्रसे अत्यन्त तेजस्वी कामासुरकी उत्पत्ति हुई। उसने दैत्यगुरु शुक्राचार्यके यहाँ जाकर उनके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। दैत्य-शुभाकाङ्क्षी शुक्राचार्यने उसे शिव-पञ्चाक्षरी मन्त्रकी दीक्षा दे दी। असुरने पुनः अपने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर तप-वनको चला गया।

वहाँ उसने देवाधिदेव महादेवको संतुष्ट करनेके लिये अन्न, जल और फलादिका सर्वथा परित्याग कर उक्त शिवमय पञ्चाक्षरी मन्त्रका जप करते हुए तपस्या प्रारम्भ की। अत्यन्त धीर कामासुरने अनेक कष्ट सहते हुए दिव्य सहस्र वर्षोंतक कठोरतम तप किया।

उस तपसे प्रसन्न आशुतोषने प्रकट होकर उससे वर माँगनेके लिये कहा। कामासुर हर्षोत्फुल्लनेत्र, प्रसन्नवदन, भक्तवत्सल प्रभुके दर्शन कर कृतार्थ हुआ। उसने कर्पूरगौरके चरणोंमें प्रणिपात कर वर-याचना की—'प्रभो! आप मुझे अपने चरणोंकी भक्ति और ब्रह्माण्डका राज्य प्रदान कीजिये। मैं बलवान्, निर्भय एवं मृत्युजयी होऊँ।'

स्वर्गापवर्गदाता करुणामय शिवने कहा—'यद्यपि तुमने अत्यन्त दुर्लभ और देव-दुःखद वरकी याचना की है, तथापि तुम्हारे कठोर तपसे संतुष्ट होकर मैं तुम्हारी कामना पूरी करता हूँ।'

शूलपाणि अन्तर्धान हो गये। प्रसन्न कामासुरने अपने गुरु शुक्राचार्यके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उन्हें शिव दर्शन एवं उनके द्वारा वर-प्राप्तिका वृत्तान्त कह सुनाया।

महायशस्वी दैत्याचार्यने संतुष्ट होकर उसका महिषासुरकी रूपवती पुत्री तृष्णाके साथ विवाह करा दिया। उक्त मङ्गल-अवसरपर दूर-दूरके सभी प्रसिद्ध दैत्यगण एकत्र हुए। उसी समय शुक्राचार्यने उसे दैत्यराजके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया। समस्त दैत्योंने उसके अधीन रहना स्वीकार किया।

कामासुरने अत्यन्त सुन्दर रतिद-नामक नगरमें अपनी राजधानी बनायी। उसके रावण, शम्बर, महिष, बलि और दुर्मद—ये पाँच शूर प्रधान थे। कामासुर इन प्रचण्ड दैत्योंके साथ सुशोभित होने लगा।

महा-असुरने अपने प्रधान दैत्योंके साथ विचार विमर्शकर पृथ्वीपर आक्रमण कर दिया। उसके तीक्ष्णतम अमोघ शरोंसे धरतीके प्राणी व्याकुल होकर उसके वशमें हो गये। फिर वह स्वर्गपर दौड़ा। उसके शस्त्रोंके सम्मुख देवता भी नहीं टिक सके; सभी उसके अधीन हो गये। वस्तुतः कामासुरने कुछ ही समयमें त्रैलोक्यपर अधिकार प्राप्त कर लिया।

उसने समस्त धर्म-कर्मोंको नष्ट कर दिया। छल कपट व्याप्त हो गये, स्वाहा, स्वधा और वषट्कार लुप्त हो गये, वर्णाश्रम धर्म मिटने-सा लगा और देवता, मुनि एवं धर्मपरायण जन अतिशय कष्ट पाने लगे।

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये समस्त देवता एकत्र हुए। उसी समय वहाँ योगिराज मुद्गल ऋषि पधारे। देवताओंने अर्घ्य पाद्य आदिसे उनकी आदरपूर्वक पूजा की। भगवान् शंकरने पूछा—'हमें स्थान भ्रष्ट करनेवाले कामासुरके विनाशका मार्ग बताइये।'

मुनिवर मुद्गलने कहा—'आपलोग सिद्धक्षेत्र मयूरेशमें जाकर तप करें। वहाँ आपलोगोंके तपसे संतुष्ट होकर स्वयं भगवान् गणेश प्रकट होंगे और आपके संकटोंका निवारण करेंगे।'

शिवादि देवता पावनतम मयूरेश-क्षेत्रमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रद्धा एवं विधिपूर्वक गणेशकी पूजा की। तदनन्तर वे एकाक्षरी विधानसे गणेशकी उपासना और गद्गद-कण्ठ तथा अश्रुपूरित नेत्रोंसे उनका स्तवन करने लगे।

भक्तवत्सल मयूर वाहन गणेशने प्रकट होकर कहा—'देवताओ! वर माँगो। मैं प्रसन्न हूँ।'

देवताओंने निवेदन किया—'प्रभो! दैत्यराज कामासुरकी क्रूरतासे हम सभी देवता स्थान भ्रष्ट हैं और मुनिगण कर्मरहित हो गये हैं। आप हमारी रक्षा करें।'

'मैं कामासुरका वध कर समस्त देवताओं और मुनियोंको निरापद करूँगा।' मयूरेशने कहा।

आकाशवाणीसे यह घोषणा सुनकर कामासुर मूर्च्छित हो गया। कुछ देर बाद विचार विमर्श कर उसके वीर असुरोंने देवताओं और मुनियोंपर आक्रमण कर दिया। देवता और मुनि परम प्रभु मयूरेशको पुकारने लगे।

पाश-अङ्कुशधारी मयूर-वाहन महाविकट गजानन प्रकट हुए। उन्होंने भयानक गर्जना की। शिवादि देवता उनकी स्तुति करने लगे।

'मैं कामासुरको नष्ट करूँगा।' मयूर-वाहनने कहा और देव-सैनिकोंके साथ रहकर युद्धार्थ प्रस्तुत हो गये।

अपने प्रबलतम सैनिकोंके साथ कामासुर भी पहुँचा। संग्राम छिड़ा। देवताओंके प्रचण्ड प्रहारसे दैत्यगण व्याकुल हो गये। वे भयसे यत्र-तत्र भागने लगे। उस भीषण युद्धमें कामासुरके दो प्रिय पुत्र शोषण और दुष्पूर मारे गये।

तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर कामासुर सम्मुख आया। उसने प्रभुसे कहा—'मूर्ख! मैंने त्रैलोक्यको वशमें कर लिया है। तेरे वीर देवगण मूर्च्छित पड़े हैं। यदि तू प्राण रखना चाहता है तो यहाँसे भाग जा।'

हँसते हुए मयूर वाहन विकटने उत्तर दिया—'असुर! तूने शिव वरके प्रभावसे बड़ा अधर्म किया है। मैं सृष्टि स्थिति-संहारकर्ता एवं जन्म मृत्यु रहित हूँ। तू मुझे किस प्रकार मार सकता है! अपने गुरु शुक्राचार्यके उपदेशका स्मरण करके मेरे स्वरूपको समझ। यदि तू जीवित रहना चाहता है तो मेरी शरण आ जा। अन्यथा तेरा सम्पूर्ण गर्व खर्व होकर रहेगा और तू निश्चय ही मारा जायगा।'

मयूर वाहनकी वाणी सुनते ही कामासुर अत्यन्त कुपित हुआ। उसने अपनी भयानक गदा मयूर-वाहनपर फेंकी, किंतु वह गदा प्रभुवर विकटका स्पर्श न कर पृथ्वीपर गिर पड़ी; यह देख दैत्यराज कामासुर सहसा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

कुछ देर बाद सचेत होनेपर उसने अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गमें भयानक पीड़ा और अकल्पित अशक्तिका अनुभव किया। कामासुरने अत्यन्त आश्चर्यसे अपने मनमें सोचा—'इस अद्भुत देवने शस्त्रके बिना ही मेरी ऐसी दुर्दशा कर दी और जब शस्त्रका स्पर्श करेगा, तब क्या होगा! युद्धमें तो यह निश्चय ही मुझे मार डालेगा।'

यह सोच उसने प्रभु विकटसे उनके सम्बन्धमें अनेक प्रश्न किये और उसका समाधान होते ही वह दयामय मयूर-वाहन विकटकी शरणमें गया। मूषकध्वजने उसे अपनी भक्ति प्रदान की।

कामासुर शान्तजीवन व्यतीत करनेके लिये प्रस्थित हुआ। देवता और मुनि प्रसन्न हो गये। सर्वत्र धर्म प्रधान आचरण होने लगे।

(७)

विघ्नराज

एक बारकी बात है। विवाहोपरान्त हिमगिरिनन्दिनी अपनी सखियोंके साथ बात करती हुई हँस पड़ीं। उनके हास्यसे अत्यन्त मनोरम पर्वत तुल्य एक महान् पुरुष उत्पन्न हुआ।

उसे देखकर अत्यन्त [illegible] प्रियाने पूछा—'तुम

उस पुरुषने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'माता! मैं अभी-अभी आपके हास्यसे उत्पन्न हुआ आपका पुत्र हूँ। आप आज्ञा प्रदान करें, मैं उसका अवश्य पालन करूँगा।'

माता पार्वती बोलीं—'मैं अपने मानसमें मान किये बैठी थी; उस मानकी स्थितिमें तुमने जन्म लिया है। अतएव मानसपुत्र तुम्हारा नाम मम (ममता) होगा। तुम जाकर गणेशका स्मरण करो। उनके स्मरणसे तुम्हें सब कुछ प्राप्त हो जायगा।'

माता पार्वतीने ममताको गणेशका षडक्षर (वक्रतुण्डाय हुम्) मन्त्र प्रदान कर दिया। ममताने अत्यन्त भक्तिपूर्वक माताके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर वनमें तप करने चला गया।

वहाँ उसकी शम्बरासुरसे भेंट हुई। पार्वती पुत्र ममने उससे पूछा—'आप कौन हैं तथा यहाँ कैसे पधारे हैं?'

शम्बरने उत्तर दिया—'महाभाग! मैं तुम्हें विद्या-दान करने आया हूँ। उस विद्यासे तुम निस्संदेह सामर्थ्यशाली हो जाओगे।'

इतना कहकर शम्बरने ममताको नाना प्रकारकी आसुरी विद्याएँ सिखा दीं। उन विद्याओंके अभ्याससे ममता कामरूप हो गया। विविध प्रकारकी शक्तियोंको प्राप्तकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ।

तब उसने शम्बरके चरणोंमें प्रणाम कर हाथ जोड़े अत्यन्त विनीत स्वरमें कहा—'महाभाग! आपने मुझपर अद्भुत कृपा की है। अब मैं आपका शिष्य हूँ। आज्ञा प्रदान कीजिये, मैं क्या करूँ?'

शम्बरने ममताको समझाया—'अब तुम महान् शक्तिकी प्राप्तिके लिये विघ्नराजकी उपासना करो। उनके प्रसन्न होकर प्रकट होनेपर उनसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका राज्य और अमरण-वरके अतिरिक्त अन्य कुछ मत माँगना। वर प्राप्तकर तुम मेरे पास चले आना।'

इतना कहकर शम्बर प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चला गया और मम वहीं बैठकर कठोर तप करने लगा। वह केवल वायुपर निर्भर रहकर गजमुखका ध्यान एवं उनके मन्त्रका जप कर रहा था। इस प्रकार उसे तप करते हुए दिव्य सहस्र वर्ष बीत गये।

प्रसन्न होकर गणनाथ प्रकट हुए। उन्होंने ममासे कहा—'मैं तुम्हारे कठोर [illegible]

परम प्रभु गजाननकी वाणी सुनकर ममताके नेत्र खुले और जब उसने विघ्नेश्वर गजवक्त्रका दर्शन किया तो आनन्द-विभोर हो गया। उसने विघ्नराजके चरणोंमें प्रणाम कर अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की और फिर गद्गद कण्ठसे स्तुति करने लगा।

अन्तमें वर याचना करते हुए उसने कहा—'वरदाता प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपापूर्वक मुझे ब्रह्माण्डका राज्य प्रदान करें, युद्धमें मेरे सम्मुख कभी विघ्न उपस्थित न हो। मैं शंकर आदिके लिये भी सदा अजेय रहूँ। आप मुझे अमोघ शस्त्रधर करें।'

विघ्नराज बोले—'दैत्येन्द्रनायक! तुमने दुस्साध्य वरकी याचना की है; किंतु तुम्हारे तपसे संतुष्ट होकर मैं तुम्हारी कामना पूरी करूँगा।'

इतना कहकर विघ्नराज अन्तर्धान हो गये। वर-प्राप्त ममतासुरने प्रसन्नतापूर्वक शम्बरके घर जाकर उसे प्रणाम किया। ममताके तप एवं वर-प्राप्तिका वृत्तान्त सुनकर शम्बर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने उससे अपनी रूपवती पुत्री मोहिनीका विवाह कर दिया। ममतासुर अपनी प्राणप्रियाके साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

कुछ ही समय बाद शम्बर दैत्य-गुरु शुक्राचार्यके समीप पहुँचा। प्रणामके अनन्तर उसने ममतासुरके तप और वर-प्राप्तिका वृत्तान्त कह सुनाया। शुक्राचार्य बड़े प्रसन्न हुए। वे समस्त असुरोंको सूचितकर स्वयं शम्बरके साथ ममासुरके भवन पहुँचे। ममासुरने आचार्यचरणोंमें प्रणाम कर उनकी भक्तिपूर्वक पूजा की।

इससे प्रसन्न होकर शुक्राचार्यने समस्त दैत्योंके सम्मुख ममको दैत्याधीशके पदपर अभिषिक्त कर दिया। उन्होंने दैत्यराज ममके यहाँ अत्यन्त बलवान् प्रेत, काल, कलाप, कालजित् और धर्मध्न-नामक पाँच प्रधान भी नियुक्त कर दिये।

ममने उपस्थित दैत्य, दानव और राक्षस राजाओंको प्रत्येक रीतिसे संतुष्ट किया। उसकी सेवासे प्रसन्न सभी असुर अपने-अपने राज्यमें लौटे। ममासुर अपनी चिन्ता-नाशक निर्मम पुरीमें सुखपूर्वक निवास कर रहा था। वहाँ उसकी सहधर्मिणी मोहिनीसे धर्म और अधर्म-नामक दो पुत्र हुए।

एक दिन ममासुरने शुक्राचार्यके चरणोंमें प्रणाम कर उनके सम्मुख ब्रह्माण्ड विजयकी इच्छा व्यक्त की। दैत्यगुरुने कहा—'राजन्! तुम दिग्विजय तो करो, किंतु विघ्नेश्वरका विरोध कभी मत करना। स्मरण रखना, विघ्नराजके अनुग्रहसे ही तुम्हें यह शक्ति एवं वैभवकी प्राप्ति हुई है।'

ममासुरने पर्वतोन्मूलनमें समर्थ अपने महावीर्यवान् असुरोंको युद्धार्थ उद्यत होनेका आदेश दिया। उसने अपने वीर पुत्रों एवं परम पराक्रमी सैनिकोंके द्वारा पृथ्वी और पातालपर अधिकार कर लिया। फिर उसने स्वर्गपर आक्रमण किया। वज्रायुधके साथ भयानक संग्राम हुआ। रक्तकी सरिता प्रवाहित हो चली; किंतु वर-प्राप्त असुरके सामने देवगण टिक न सके। स्वर्ग ममासुरके अधीन हो गया। ममासुरने समर-क्षेत्रमें विष्णु और शिवपर भी विजय प्राप्त कर ली। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर उस महासुरका निरङ्कुश शासन व्याप्त हो गया। देवगण बंदी-गृहमें पड़े। सर्वत्र अनीति और अनाचारका साम्राज्य छा गया।

ममासुरके कारागारमें पीड़ित देवता एकत्र होकर अपनी मुक्तिका उपाय सोचने लगे। लक्ष्मीपति विष्णुने कहा—'हम सभी मिलकर विघ्नेश्वरकी आराधना करें। उनकी प्रसन्नतासे ही असुर-विनाश एवं धर्मकी स्थापना हो सकेगी।'

समस्त देवताओंने मन्त्र-स्नानकर विघ्नेश्वरकी मानसिक पूजा की। फिर वे एकाक्षरी-विधानसे भक्तिपूर्वक उनका स्मरण करने लगे। एक वर्ष व्यतीत होनेपर भाद्र-शुक्ल-चतुर्थीके मध्याह्नमें शेष-वाहन विघ्नराज प्रकट हुए। देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनका स्तवन करनेके अनन्तर कहा—'प्रभो! धर्मका ध्वंस करनेवाले ममासुरके कारागारमें हम सभी देवता अतिशय कष्ट पा रहे हैं। सर्वत्र पाप-तापका साम्राज्य है। आप हम पीड़ितोंकी रक्षा करें।'

संतुष्ट गणनाथ देवताओंको अभीष्ट वर प्रदान कर अदृश्य हो गये। यह समाचार सुनकर ममासुर [illegible], चिन्तित और अत्यन्त क्रुद्ध हुआ।

उसी समय महर्षि नारद ममासुरके सम्मुख [illegible]। असुरने उनकी अनेक उपचारोंसे पूजा की। फिर वे उससे कहा—"मुझे देवदेव विघ्नराजने भेजा है। वे सर्वसमर्थ, धर्म रक्षक एवं अधर्मके शत्रु हैं। उन्होंके तुम शक्तिमान् हुए हो। अब तुम्हारे [illegible] बंदी-गृहमें कष्ट पा रहे हैं। धर्म [illegible] विघ्नेश्वरने आज्ञा दी है कि तुम इन अधर्म और [illegible] को समाप्त कर [illegible] शरणमें [illegible]।"

दैत्यगुरु शुक्राचार्यने भी उसे यही परामर्श दिया, पर उस मदोन्मत्त ममासुरपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह युद्धके लिये प्रस्तुत हो गया।

महर्षि नारदसे यह संवाद पाकर परम प्रभु गणेशने कहा—'मैं ममासुरका दर्प दलन करूँगा।'

ममासुर अपने दोनों पुत्रों एवं अजेय वाहिनीके साथ पृथ्वीको कम्पित करता हुआ युद्धके लिये नगरके बाहर निकला। मत्त एवं निरङ्कुश दानव ममकी दुष्टता देखकर विघ्नराज कुपित हुए। उन्होंने अपना कमल असुर-सैन्यके बीच छोड़ दिया। उक्त पद्म-गन्धसे समस्त असुर सर्वथा अशक्त एवं मूर्च्छित हो गये। ममासुर आपे पहरतक मूर्च्छित रहा। सचेत होनेपर उसने अपने समीप कमल देखा तो काँपने लगा। वह विघ्नराजके चरणोंपर गिर पड़ा। फिर उसने भक्तिपूर्वक प्रभुकी पूजा और स्तुति करके उनसे क्षमा याचना की।

दयामय विघ्नराज संतुष्ट हुए। उन्होंने ममको अपनी भक्ति प्रदान करते हुए कहा—

स्वस्थाने निर्भयो भूत्वा तिष्ठ त्वं मत्परायणः।
स्वधर्मविधिहीनं त्वं कर्म भुङ्क्ष्व शनैः कृतम्॥
यत्रादौ पूजनं मे न स्मरणं वा ममासुर।
मम भावेन सम्मोह्य राज्यं कुरु हृदि स्थितः॥
मद्भक्तान् दासवन्नित्यं रक्षस्व स्नेहभावतः।
मम भावविहीनांश्च कुरु मे ममतायुतान्॥
(मुद्गलपु० ७। ८। ३२—३४)

'तुम अपने स्थानपर मेरी आराधनामें लगे रहकर निर्भयतापूर्वक निवास करो। अन्य लोगोंद्वारा जो अपने धर्मकी विधिसे रहित कर्म किया गया हो, उसके श्रेष्ठ फलको तुम भोगो। असुर! जहाँ पहले मेरा पूजन अथवा स्मरण न किया गया हो, वहाँ लोगोंको ममतासे मोहित करके उनके हृदयमें विराजमान होकर तुम राज्य करो। जो मेरे भक्त हों, उनकी प्रतिदिन स्नेहभावसे दासकी भाँति रक्षा करो। जिनका मेरे प्रति भाव या प्रेम न हो, उन्हें ममतासे युक्त कर दो।'

दैत्यराजने देवाधिदेव विघ्नराजके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उनकी अनुमति प्राप्त कर शान्तभावसे उनका स्मरण करने चला गया।

देवगण मुक्त होकर प्रसन्न हुए। अधर्मके स्थानपर धर्मका राज्य संस्थापित हो गया।

(८)

धूम्रवर्ण

एक बार लोकपितामहने सहस्रांशुको कर्मफ[illegible] अधिपतिके पदपर सविधि अभिषिक्त किया। उस[illegible] प्राप्तकर सूर्यदेवके मनमें अहंकारका उदय हो गया। सोचने लगे—'कर्मके प्रभावसे पितामह सृष्टि-रचना करते हैं, कर्मसे ही विष्णु जगत्‌का पालन करते हैं, कर्मके द्वारा शिव संहार समर्थ हैं और कर्मोंके ही फलस्वरूप शक्ति जगत्‌की पालिका और पोषिका है। निस्संदेह सम्पूर्ण जगत् कर्माधीन ही है और मैं उन कर्मोंका संचालक देवता हूँ; सभी मेरे अधीन हैं।'

यह सोचते ही उन्हें छींक आ गयी और उससे एक महाबलवान्, महाकाय, विशालाक्ष सुन्दर पुरुष उत्पन्न हुआ। वह सर्वाङ्ग-सुन्दर पुरुष विद्वान् शुक्राचार्यके समीप पहुँचा। शुक्राचार्यने उसका परिचय पूछा।

उक्त पुरुषने विनीत स्वरमें उत्तर दिया—'प्रभो! मैं प्रवीण सूर्यदेवकी छींकसे उत्पन्न उनका पुत्र हूँ! मैं सर्वथा अनाथ और अनाश्रित हूँ। मैं आपके अधीन रहना चाहता हूँ और आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करूँगा।'

उस मनोरम पुरुषके वचन सुन शुक्राचार्य कुछ देरके लिये ध्यानावस्थित हुए। फिर उन्होंने कहा—'तुम्हारा जन्म सूर्यके अहंभावसे हुआ है, इस कारण तुम्हारा नाम 'अहम्' होगा। तुम तपश्चरणके द्वारा शक्ति अर्जित करो।' इतना कहकर दैत्य-गुरुने उसे गणेशका षोडशाक्षर मन्त्र[1] दिया। उसे मन्त्र-जपकी विधि भी विस्तारपूर्वक बता दी।

'अहम्' वनमें जाकर उपवास करता हुआ गणेशके ध्यानके साथ गुरुप्रदत्त मन्त्रका जप करने लगा। वह शीतोष्ण-वात-वर्षादिका कष्ट सहता हुआ दृढ़ निश्चयके साथ तप करता रहा। इस प्रकार कठोर तप करते हुए उसे दिव्य सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

उसके समक्ष भक्तवत्सल मूषक वाहन, त्रिनेत्र, गजवक्त्र, एकदन्त, शूर्पकर्ण, पाशादिसे सुशोभित चतुर्भुज महोदर प्रकट हुए। उन मङ्गलमूर्ति प्रभुका दर्शन होते ही अहम्‌ने उठकर उनके

१. ब्रह्मवैवर्तपुराण (कृष्णज० १२१। १००)में षडक्षरी मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ गं गौं गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा।'

महाराष्ट्रीय संतोंका ध्येय स्वरूप

पाशांकुशधरद हस्त । एके करीं मोदक शोभत ॥
मूषकावरि अति प्रीत । सर्वांगीं सिंदूर चर्चिला ॥

दैत्यगुरु शुक्राचार्यने भी उसे यही परामर्श दिया, पर उस मदोन्मत्त ममासुरपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह युद्धके लिये प्रस्तुत हो गया।

महर्षि नारदसे यह संवाद पाकर परम प्रभु गणेशने कहा—'मैं ममासुरका दर्प दलन करूँगा।'

ममासुर अपने दोनों पुत्रों एवं अजेय वाहिनीके साथ पृथ्वीको कम्पित करता हुआ युद्धके लिये नगरके बाहर निकला। मत्त एवं निरङ्कुश दानव ममकी दुष्टता देखकर विघ्नराज कुपित हुए। उन्होंने अपना कमल असुर-सैन्यके बीच छोड़ दिया। उक्त पद्म-गन्धसे समस्त असुर सर्वथा अशक्त एवं मूर्च्छित हो गये। ममासुर आधे पहरतक मूर्च्छित रहा। सचेत होनेपर उसने अपने समीप कमल देखा तो काँपने लगा। वह विघ्नराजके चरणोंपर गिर पड़ा। फिर उसने भक्तिपूर्वक प्रभुकी पूजा और स्तुति करके उनसे क्षमा याचना की।

दयामय विघ्नराज संतुष्ट हुए। उन्होंने ममको अपनी भक्ति प्रदान करते हुए कहा—

स्वस्थाने निर्भयो भूत्वा तिष्ठ त्वं मत्परायण.।
स्वधर्मविधिहीनं त्वं कर्म भुङ्क्ष्व जनैः कृतम्॥
यत्रास्ति पूजनं मे न स्मरणं वा ममासुर।
मम भावेन सम्मोह्य राज्यं कुरु हृदि स्थित.॥
मद्भक्तान् दासवन्नित्यं रक्षस्व स्नेहभावतः।
मम भावविहीनांश्च कुरु मं ममतायुतान्॥

(मुद्गलपु० ७।८।३२—३४)

'तुम अपने स्थानपर मेरी आराधनामें लगे रहकर निर्भयतापूर्वक निवास करो। अन्य लोगोंद्वारा जो अपने धर्मकी विधिसे रहित कर्म किया गया हो, उसके श्रेष्ठ फलको तुम भोगो। असुर! जहाँ पहले मेरा पूजन अथवा स्मरण किया गया हो, वहाँ लोगोंको ममतासे मोहित करके उनके हृदयमें विराजमान होकर तुम राज्य करो। जो मेरे भक्त हों, उनकी प्रतिदिन स्नेहभावसे दासकी भाँति रक्षा करो। जिनमें मेरे प्रति भाव या प्रेम न हो, उन्हें ममतासे युक्त कर दो।'

दैत्यराजने देवाधिदेव विघ्नराजके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उनकी अनुमति प्राप्त कर प्रसन्नतासे उनका स्तवन करने चला गया।

देवगण सुखी होकर प्रसन्न हुए। धर्मके आचरण [illegible] सर्वत्र व्याप्त हो गया।

(८)

धूम्रवर्ण

एक बार लोक-पितामहने सहस्रांशुको कर्माध्यक्षके अधिपतिके पदपर सविधि अभिषिक्त किया। उच्चपद प्राप्तकर सूर्यदेवके मनमें अहंकारका उदय हो गया। वे सोचने लगे—'कर्मके प्रभावसे पितामह सृष्टि-रचना करते हैं, कर्मसे ही विष्णु जगत्का पालन करते हैं, कर्मके द्वारा शिव संहार समर्थ हैं और कर्मोंके ही फलस्वरूप शक्ति जगत्की पालिका और पोषिका है। निस्संदेह सम्पूर्ण जगत् कर्माधीन ही है और मैं उन कर्मोंका संचालक देवता हूँ। सभी मेरे अधीन हैं।'

यह सोचते ही उन्हें छींक आ गयी और उससे एक महाबलवान्, महाकाय, विशालाक्ष सुन्दर पुरुष उत्पन्न हुआ। वह सर्वाङ्ग-सुन्दर पुरुष विद्वान् शुक्राचार्यके समीप पहुँचा। शुक्राचार्यने उसका परिचय पूछा।

उक्त पुरुषने विनीत स्वरमें उत्तर दिया—'प्रभो! मैं सूर्यदेवकी छींकसे उत्पन्न उनका पुत्र हूँ। मैं सर्वथा अनाथ और अनाश्रित हूँ। मैं आपके अधीन रहना चाहता हूँ और आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करूँगा।'

उस मनोरम पुरुषके वचन सुन शुक्राचार्य कुछ देरके लिये ध्यानावस्थित हुए। फिर उन्होंने कहा—'तुम्हारा जन्म सूर्यके अहंभावसे हुआ है, इस कारण तुम्हारा नाम 'अहम्' होगा। तुम तपश्चरणके द्वारा शक्ति अर्जित करो।' इतना कहकर दैत्य-गुरुने उसे गणेशका षोडशाक्षर मन्त्र[1] दिया। उसे मन्त्र जपकी विधि भी विस्तारपूर्वक बता दी।

'अहम्' वनमें जाकर उपवास करता हुआ गणेशके ध्यानके साथ गुरुप्रदत्त मन्त्रका जप करने लगा। वह शीतोष्ण-वात-वर्षादिका कष्ट सहता हुआ दृढ़ निश्चयके साथ तप करता रहा। इस प्रकार कठोर तप करते हुए उसे दिव्य सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

उसके [illegible] भक्तवत्सल मूषक वाहन, त्रिनेत्र, गजवक्त्र, एकदन्त, शूर्पकर्ण, पाशादिसे सुशोभित चतुर्भुज [illegible] हुए। उन मङ्गलमूर्ति प्रभु [illegible]

१. मुद्गलपुराण ([illegible]
मन्त्र इस प्रकार है—
ॐ [illegible] श्री गणपतये [illegible]

णाम किया और फिर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा
न्तर वह गणेश्वरके चरणोंमें पुनः प्रणाम कर
से उनकी स्तुति करने लगा । स्तवनके अनन्तर
ः दयानिधान गजवक्त्रके चरणोंमें बार-बार प्रणाम

। संतुष्ट होकर लम्बोदरने कहा—'मैं तुम्हारे तप
निसे प्रसन्न हूँ । तुम इच्छित वर माँग लो ।'

ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—'प्रभो ! आप
री भक्ति दीजिये । मेरी सभी कामनाएँ पूर्ण हो
। अब मुझे आरोग्य, विजय, अमोघास्त्र और सम्पूर्ण
कण्टक राज्य प्रदान करें । माया विकारसे मेरी मृत्यु न हो ।'

'तथास्तु !' कहकर गणनाथ अन्तर्धान हो गये ।

अहम्ने प्रसन्नतापूर्वक अपने गुरुके यहाँ जाकर उनके
णोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया । उसके तप एवं वर-
प्तिका वृत्तान्त सुनकर शुक्राचार्य अत्यन्त मुदित हुए ।
होंने समस्त असुरोंको बुलाकर अहम्के तप एवं प्रभावका
र्णन किया । असुर-समुदायने प्रतापी अहम्के अधीन रहकर
सकी इच्छाका अनुसरण करना स्वीकार कर लिया ।
शुक्राचार्यने उसे सविधि दैत्याधीशके पदपर अभिषिक्त
र दिया । उस समय हर्षोत्फुल्ल असुरोंने वाद्यादिके साथ
हुत महोत्सव मनाया ।

विषय-प्रिय-नामक सुन्दर नगर निर्मित हुआ । अहम्
ी असुरोंके साथ निवास करने लगा । उसे योग्यतम पात्र
नकर प्रमादासुरने अपनी रूप-यौवन-सम्पन्ना ममता-नामकी
ी उसके साथ ब्याह दी । कुछ ही दिन बाद उसे
ताके द्वारा गर्व और श्रेष्ठ-नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ।

कुछ समय बाद एक दिन अहम्के श्वशुर प्रमादासुरने
ससे कहा—'तुमने सर्वत्र विजय एवं निर्भयताका वर
प्त कर लिया है, फिर व्यर्थ क्यों बैठे हो ! ब्रह्माण्डपर
जय प्राप्तकर सुखोपभोग करो ।'

अहम्को अपने पूज्य श्वशुरकी बात प्रिय लगी । उसने
नन्तर शुक्राचार्यके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी पूजा
रके उनका शुभ आशीर्वाद प्राप्त कर लिया ।

फिर उसने अपने अत्यन्त बलवान् और क्रूर सेनाध्य
क्षोंको विजययात्राके लिये आज्ञा दी और स्वयं
। वह शस्त्र धारणकर रथपर आरूढ़ हुआ । प्रचण्ड
अहंतासुर अपने पुत्र तथा वीर असुरोंके साथ सर्वत्र विजय
प्राप्त करने चला । असुरोंने भयानक संहार किया । सर्वत्र
त्राहि त्राहि मच गयी । इस प्रकार मार-काट मचाकर उसने
सप्तद्वीपवती पृथ्वीपर अधिकार कर लिया और सर्वत्र
उच्चतम पदोंपर अपने असुरोंको नियुक्त कर दिया ।

तदनन्तर उसने पातालपर आक्रमण किया । परम प्रतापी
अहंतासुरसे भयभीत शेषने उसे कर देना स्वीकार कर
लिया । फिर उस असुरने स्वर्गपर आक्रमण किया । स्वयं
विष्णु रणभूमिमें उपस्थित हुए, किंतु वरप्राप्त असुरके
अमोघास्त्रसे उन्हें भी पराजित होना पड़ा । सर्वत्र अहं-
कारासुरका आधिपत्य हो गया । देवता, ऋषि एवं धर्मात्मा
पुरुष पर्वतों और वनोंमें छिपकर कष्ट सहते हुए जीवन
व्यतीत करने लगे । परम स्वतन्त्र अहंतासुर मद्य और
मांसका तो अत्यधिक सेवन करता ही था, वह मनुष्यों,
नागों और देवताओंकी भी कन्याओंका बलात् अपहरण कर
निर्लज्जतापूर्वक उनका शील हरण करता । इस प्रकार
अत्यन्त पाप रत दुष्टात्मा अहम्को अपने आराध्य विघ्नराजकी
विस्मृति हो गयी ।

एक दिन अहम्की राजसभामें अधर्मधारक उपस्थित
हुआ । उसने दैत्यराजका अभिवादन कर निवेदन किया—
'राजन् ! आपका राज्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर स्थापित हो गया
है, किंतु अमरगण पहाड़ोंकी गुफाओं और वनोंमें छिपकर
हमारे समूलोन्मूलनका निरन्तर उद्योग कर रहे हैं । तनिक
सा छिद्र पाते ही वे हमारा सर्वनाश कर देंगे । अतएव
उनका अस्तित्व समाप्त करनेका प्रयत्न आवश्यक प्रतीत होता
है । अमरोंका पोषण यज्ञादि-कर्मसे होता है । उस कर्मकी
समाप्तिसे वे स्वयं समाप्त हो जायँगे ।'

'तुमने सर्वोत्तम परामर्श दिया ।' अहंतासुरने अधर्म-
धारककी प्रशंसा की और असुरगण सत्-कर्मोंके पीछे पड़ गये ।
प्रचण्ड असुरोंने यज्ञादि कर्मोंका खण्डन कर दिया । वर्णाश्रम-
धर्म समाप्त-प्राय हो चला । धर्म-कर्मका दर्शन भी दुर्लभ हो
गया । दुरात्मा असुरोंने देवताओंको अतिशय पीड़ित करनेके
लिये पर्वतों और अरण्योंको नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया ।
अहम्ने देवालयोंसे गणेशादिकी प्रतिमाएँ फेंकवा दीं और उनके
स्थानपर अपनी मूर्ति स्थापित करायी ।* उनके पूजक भी अहम्-

* सर्वत्राहप्रतिमाश्च स्थापिता भूमिमण्डले ।
पूजकाः राक्षसास्तत्र कृतास्तेन सुपापिना ॥
(मुद्गलपु० ८।४।१६)

बचे असुर हाहाकार करते दैत्यपतिके पास पहुँचे। की मृत्युका संवाद सुनकर अहंकार दुःखातिरेकसे हो गया। किंतु सावधान होनेपर उसके नेत्रोंसे होने लगी। वह अपने सैनिकोंके साथ समर-भूमिमें

रणमें पाशकी भयानक ज्वालासे असुर भस्म होने र उनका गला कसकर प्राण ले लेता। अहम्‌की स सेना मर मिटी। कुछ बचे असुर प्राण लेकर भागे। अत्यन्त कुपित अहम्‌ने अपने अनेक का प्रयोग किया। उन शस्त्रास्त्रोंकी विफलता की असह्य ज्वालासे व्याकुल होकर उसने अपने स्त्रोंका प्रहार किया; किंतु उसके आश्चर्यकी सीमा । वे शस्त्र भी निष्फल हो गये और यदि अहम् भागता तो धूम्रवर्ण गणेशका पाश उसका कण्ठ निश्चय ही उसे मार डालता।

न्त भयाक्रान्त अहंतासुरने अपने गुरु शुक्राचार्यके णाम कर निवेदन किया—'देव! मायायुक्त धूम्रवर्णके सम्मुख वर प्राप्त मेरे अमोघास्त्र कैसे निष्फल हो किसी प्रकार अपनी रक्षा कर यहाँ आ सका हूँ।'

चार्यने कहा—'मूर्ख! तू मायातीत गणेशको नहीं उनकी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती। वे स्वर्गमें धरतीपर मनुष्यों और पातालमें असुरोंके निर्विघ्न व्यवस्था करते हैं। तूने उनके वरके प्रभावसे अधिकार कर देवताओं और मुनियोंको बड़ा । तुम्हारे इस अनाचारसे सर्वेश्वर धूम्रवर्ण तुम्हारा र देंगे। यदि प्राण-रक्षा चाहते हो तो तुरंत उनके रण ग्रहण करो।'

ने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया और तुरंत धूम्रवर्ण- रण करने चला। उसने परम तेजस्वी पाशसे अपने स होते देखा तो अत्यन्त व्याकुलतासे हाथ जोड़कर वन करने लगा। अहम्‌की स्तुतिसे तुष्ट पाश शान्त र अपने स्वामी धूम्रवर्णके कर-कमलोंमें पहुँच गया। अहम् अत्यन्त विनम्रतापूर्वक सर्वशान्तिप्रदायक देवदेव धूम्रवर्णके समीप जाकर उनके चरणोंमें फिर उसने दयामय धूम्रवर्णकी विविध उपचारोंसे पूजा की। तदनन्तर वह गाभुनयन हाथ जोड़े देवकी गद्गद कण्ठसे स्तुति करने लगा।

अहंतासुरकी स्तुतिसे संतुष्ट होकर परमदेव धूम्रवर्णने उसे अपनी भक्ति प्रदान करते हुए कहा—'महासुर! जहाँ आदिमें मेरा पूजन नहीं होता है, उन कर्मोंमें तुम्हारे निवासके लिये स्थान दिया जाता है। तुम वहाँ रहकर उन कर्मोंके महान् फलका उपभोग करो। किसी भी कार्यके प्रारम्भमें जहाँ मेरा स्मरण नहीं किया जाता हो, वहाँ तुम सुस्थिर होकर बैठ जाओ और अपने आसुर स्वभावके अनुसार वहाँ कार्यमें सफलता न होने दो। अब तुम अपने नगरको जाओ और मेरे भक्तोंकी सदा रक्षा करते रहो।'

अहंतासुरने परम प्रभुके चरणोंपर अपना मस्तक रख दिया।

अहंकारासुरको अत्यन्त शान्त भावसे धूम्रवर्ण गणेशके चरणोंकी भक्तिपूर्वक वन्दना कर प्रस्थित होते देख देवगण बहुत विस्मित हुए। उन्होंने श्रद्धापूर्वक सुरनायक मङ्गलमूर्ति धूम्रवर्ण गणेशकी पूजा और स्तुति की। दयामय गणेशने उन्हें अपनी भक्ति प्रदान की।

'सिद्धि-बुद्धिके स्वामी भक्तवत्सल गणेशकी जय!' बोलते हुए देवगण मुदित मनसे अपने-अपने धाम पधारे।

उपसंहार

इस प्रकार मङ्गलमूर्ति आदिदेव परब्रह्म परमेश्वर श्रीगणपतिके अवतारोंकी अत्यन्त संक्षिप्त मङ्गलमयी लीला-कथा पूरी हुई। इसका पठन, श्रवण और मनन नितान्त जन-जनके लिये परम कल्याणकारक है। इन अवतारोंका पौराणिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, उससे भी बढ़कर आध्यात्मिक महत्त्व है। श्रीगणपति सर्वव्यापी परमात्मा सबके हृदयमें नित्य विराजमान हैं। शुद्ध और प्राक्तन संस्काररहित प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें समय-समयपर मात्सर्य, मद, मोह, लोभ, काम, ममता एवं अहंता—इन आन्तरिक दोषोंका उद्बोधन होता ही है। आसुरी सम्पत्तिके प्रतीक होनेसे इनको 'असुर' कहा गया है। इन आसुरी वृत्तियोंसे परित्राणका अमोघ उपाय है—भगवान् गणपतिका पादपद्म।' गीतामें भी भगवान्‌ने यही कहा है—'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥' अतः इन आसुरी वृत्तियोंके दमन एवं दैवी सम्पदाओंके संवर्धनके लिये परम प्रभु गणपतिका मङ्गलमय स्मरण करना ही सबके लिये सर्वथा श्रेयस्कर है और यही इस अवतार-कथाका सारभूत संदेश है।

मङ्गलमूर्ति भगवान् गणेशकी जय! जय!! जय!!!

बृहत्पाराशरस्मृति (११ । ३३९) में—

'आ तू न इन्द्र वृत्रहन् सुरेन्द्रः स गणेश्वरः ।'

—इस मन्त्रको गणेश्वरपरक कहा है । ऋग्वेद (८ । । १) में—

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥

—इस मन्त्रको गणेश्वरपरक माना है । शुक्लयजुर्वेद । ६५–७२) में—

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्०' इत्यादि आठ मन्त्रोंको परक कहा गया है । अतः इन आठ मन्त्रोंसे जीका स्मरण, पूजन और हवन करनेका विधान है ।

सामवेदीय रुद्राष्टाध्यायीमें 'विनायकसंहिता' है, जिसमें स्व०' इत्यादि आठ मन्त्र (३१५ से ३२२) परक कहे गये हैं, जिनका गणपति-पूजन और गणपति- उपयोग होता है ।

उपर्युक्त वैदिक प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वैदिक देवता हैं । अतएव ऋषि-महर्षियोंने स्वा०' आदि वैदिक मन्त्रोंसे गणेशजीके निमित्त हवन और बलि देनेके लिये कहा है ।

वेदों और उपनिषद् आदिमें गणेशजीकी विविध गायत्रियोंका उल्लेख है, जिनमें गणेशजीके तत्पुरुष, एकदन्त, हस्तिमुख, वक्रतुण्ड, दन्ती, करट आदि अनेक नाम आते हैं, जो गणेशजीके ही पर्यायवाचक नाम हैं और ये सभी नाम गणेशजीके स्वरूप और महत्त्वको व्यक्त करनेवाले हैं एवं भक्तोंके लिये शुभ और सम्मद हैं । वे गणेश-गायत्रियाँ इस प्रकार हैं—

ॐ तत्कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

(कृष्णयजुर्वेदीय मैत्रायणीसंहिता २ । ९ । १ । ६)

तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

(कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक, नारायणोपनिषद् १० । १)

एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

(गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्)

लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

(अग्निपुराण ७१ । ६)

ॐ महोल्काय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

(अग्निपुराण १७९ । ४)

उपर्युक्त समस्त वैदिक प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि वेदादिमें तथा समस्त शास्त्रोंमें गणेशजीका विशिष्टरूपमें वर्णन है । अतः गणेशजी वैदिक देवता हैं, यह निर्विवाद है । गणेशजीको वैदिक देवता मानकर ही भक्तगण अपने प्रत्येक कार्यके प्रारम्भमें सर्वप्रथम गणेशजीका पूजन करते हैं और उनका स्मरण करते हैं ।

जिस प्रकार गणेशजी वैदिक देवता हैं, उसी प्रकार वे अनादिसिद्ध, आदिदेव, आदि-पूज्य और आदि-उपास्य हैं । गणेशतापिन्युपनिषद्के 'गणेशो वै ब्रह्म' एवं गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्के 'त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि' के अनुसार गणेशजी प्रत्यक्ष ब्रह्म ही हैं । गणेशजीके 'ब्रह्म' होनेके कारण ही उन्हें कर्ता, धर्ता एवं संहर्ता कहा गया है । गणेशजी जीवात्माके अधिपति हैं । गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद् 'त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुः' इत्यादिद्वारा ... 'सर्वदेवरूप' कहा गया है । अतएव गणेशजी सभीके ... और पूजनीय हैं । प्राणिमात्रका मङ्गल करना ... कार्य है, अतः वे 'मङ्गलमूर्ति' कहे जाते हैं । इसलिये जो मनुष्य मङ्गलमूर्ति गणेशजीका श्रद्धा-भक्तिसे प्रतिदिन स्मरण, पूजन और उनके स्तोत्रादिका पाठ तथा ... मन्त्रका जप एवं 'गणेशसहस्रनाम'से हवन करता ... निष्पाप होकर धर्मात्मा बन जाता है । उसके यहाँ ... प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धिका भंडार भरा रहता है ... गणेशजीकी कृपासे अपना इहलौकिक एवं पार... सुखद बना लेता है । अतः मनुष्यमात्रको ... ऋद्धि-सिद्धि-नवनिधिके दाता मङ्गलमूर्ति गणेशजीका समाराधन करना चाहिये ।

पुराणादिमें जिस प्रकार गणेशजीके अनेक नामोंका उल्लेख है, उसी प्रकार गणेशजीके अवतार, स्वरूप एवं महत्त्व आदिका भी वर्णन है, जो वेदोंके आधारपर ही भगवान् वेदव्यासजीने किया है।

अब हम वैदिक संहिता तथा वैदिक वाङ्मयके कुछ महत्त्वपूर्ण मन्त्र उद्धृत करते हैं, जिनसे गणेशजीकी वैदिकता और महत्ता स्पष्ट सिद्ध है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥*
(ऋग्वेद २ । २३ । १)

'तुम देवगणोंमें प्रभु होनेसे गणपति हो, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ज्ञानी हो, उत्कृष्ट कीर्तिवालोंमें श्रेष्ठ हो। तुम शिवके ज्येष्ठ पुत्र हो, अतः हम तुम्हारा आदरसे आह्वान करते हैं। हे ब्रह्मणस्पते गणेश ! तुम हमारे आह्वानको मान देकर अपनी समस्त शक्तियोंके सहित इस आसनपर उपस्थित होओ।'

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च॥
(ऋग्वेद १० । ११२ । ९)

'हे गणपते ! आप देव आदिके समूहमें विराजमान होइये; क्योंकि विद्वज्जन आपको ही समस्त बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ कहते हैं। आपके बिना समीपका अथवा दूरका कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता। हे पूज्य एवं आदरणीय गणपते ! हमारे सत्कार्योंको निर्विघ्न पूर्ण करनेकी कृपा कीजिये।'

'गणानां त्वा०' इत्यादि मन्त्रका उल्लेख तो पहले किया ही गया है।

'गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्'में गणेशके विभिन्न नामोंका उल्लेख करते हुए उन्हें नमस्कार किया गया है—

'नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्नविनाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमो नमः।' (१०)

'व्रात अर्थात् देवसमूहके नायकको नमस्कार; गणपतिको नमस्कार; प्रमथपति अर्थात् शिवजीके गणोंके अधिनायकको नमस्कार; लम्बोदरको, एकदन्तको, विघ्नविनाशकको, शिवजीके पुत्रको और श्रीवरदमूर्तिको नमस्कार, नमस्कार।'

'यजुर्विधान'में 'गणानां त्वा०' (शुक्लयजुर्वेद २३। १९) इस मन्त्रको गणपति देवतापरक कहा गया है; अतः इस मन्त्रका गणेशके पूजन और हवनादिमें विनियोग होता है।

'शुक्लयजुर्वेद' (२२। ३०)में 'गणपतये स्वाहा' कहकर गणेशजीके लिये आहुति देनेका विधान है।

'कृष्णयजुर्वेदीय काण्वसंहिता' (२८ । ४२) में 'गणपतये स्वाहा'के द्वारा गणेशजीके निमित्त आहुति देनेके लिये कहा गया है।

'कृष्णयजुर्वेदीय मैत्रायणी-संहिता' (३ । १२ । १३) में 'गणपतये स्वाहा'से गणेशजीको आहुति प्रदान करनेके लिये लिखा है।

'बौधायन-गृह्यशेषसूत्र' (३ । १० । १) के विनायककल्पमें लिखा है—

'मासि मासि चतुर्थ्यां शुक्लपक्षस्य पञ्चम्यां वा अभ्युदयादौ सिद्धिकामः ऋद्धिकामः पशुकामो वा भगवतो विनायकस्य बलिं हरेत्।'

'प्रत्येक महीनेके शुक्लपक्षकी चतुर्थी अथवा पञ्चमी तिथिको अपने अभ्युदयादिके अवसरपर सिद्धि, ऋद्धि और पशु कामनावाला पुरुष भगवान् विनायक (गणेश) के लिये बलि (मोदकादि नैवेद्य) प्रदान करे।'

महर्षि पराशरने 'गणानां त्वा०' (शु० य० २३। १९)—इस मन्त्रके अन्तमें 'स्वाहा' जोड़कर गणेशजीके लिये हवन और पूजन करनेके लिये कहा है—

विनायकाय होतव्या घृतस्याहुतयस्तथा॥
सर्वविघ्नोपशान्त्यर्थं पूजयेद् यत्नतस्तु तम्।
गणानां त्वेति मन्त्रेण स्वाहाकारान्तमत्र॥
चतस्रो जुहुयात् तस्मै गणेशाय तथाऽऽहुतीः।
(बृहत्पाराशरस्मृति ४ । १७६-१७८)

आचार्य आश्वलायनने 'गणानां त्वा०'—इस मन्त्रसे गणेशजीका पूजन करनेके लिये कहा है।

भगवान् वेदव्यासजीने गणेशजीका मन्त्र 'गणानां त्वा०' लिखा है—

'गणानां त्वेति मन्त्रेण विन्यसेदुत्तरे ध्रुवम्।'
(भविष्यपुराण, मध्यपर्व, द्वितीय भाग २० । १४२)

* यह मन्त्र कृष्णयजुर्वेदसंहिता (२ । ३ । १४) और त्रिपुरातापिन्युपनिषद् (३) में भी है।

महोत्कायेति मन्त्रेण स्वाहान्तेन यथाविधि ।
तेनैवावाहयेद्देवं गणेशं विघ्ननायकम् ॥

(सनत्कुमारसंहिता अ० १ । ९४, ९९)

'महोत्काय ……' । गणेशकी यह गायत्री प्रतिष्ठा-कर्ममें ली हुई है । उसी मन्त्रके अन्तमें 'स्वाहा' जोड़कर विघ्न-[illegible]क गणेशका आवाहन करे ।'

गणपतिकी पूजामें गणपति-गायत्रीका प्रयोग करना चाहिये—[illegible] कहा गया है और मन्त्रका इस प्रकार निर्देश हुआ है—

ॐ नमो गणाधिपतये शूर्पकर्णाय विद्महे ।
[illegible]करिशाय धीमहि तन्नो गणपतिः प्रचोदयात् ॥

(सनत्कुमारसंहिता अ० १ । ९४)

पूजाके अवसरपर मुद्राका प्रयोग करना चाहिये—यह [illegible]त्रोंका सिद्धान्त है । मुद्राकी महत्ता यों बतायी गयी है—

मोदनात् सर्वदेवानां द्रावणात् पापसंततेः ।
तस्मान्मुद्रेति सा ख्याता सर्वकामार्थसाधिनी ॥

(शब्दकल्पद्रुम, भा० ३, पृ० ७४५)

'यह सब देवताओंको मोद देती और पापराशिका द्रावण (निवारण) करती है; इसलिये 'मुद्रा' कही जाती है ।'

इस प्रकार 'मुद्' धातुसे यह 'मुद्रा' शब्द निष्पन्न हुआ है । लक्ष्मीतन्त्र अ० ३७ । ६१ में, विष्णुसंहिता अ० ११ में, विश्वामित्र-संहिता अ० १८ । २० में लिखा है कि विमानस्थ गणेशकी पूजा करते समय उनकी मुद्रा* प्रदर्शित करनी चाहिये । गणेश-पूजाकी क्रम विधि नारदीयसंहिता अ० २८ । ३३—३७ में संग्रहपूर्वक वर्णित है ।

वर्णोके अधिष्ठाताके रूपमें अनेक देवताओंका निर्देश किया गया है । ओंकारके अधिष्ठाता गणेश हैं—यह श्रीप्रश्नसंहिताके 'ओंकार एकदंष्ट्रश्च वक्रतुण्डश्च लम्बकः ।' (अ० ५० । ४३) के वाक्यसे प्रकट होता है ।

इस प्रकार विष्णुके परिवारके रूपमें शिवात्मज गणेशकी अवस्थिति भलीभाँति प्रकल्पित है—यह स्पष्ट हो जाता है ।

जय विघ्नेश्वर हे !

तोहि मनाऊँ गणपति हे, गौरीसुत हे,
करो विघ्नका नाश, जय विघ्नेश्वर हे ॥
विद्याबुद्धि-प्रदायक हे, वरदायक हे,
रिद्धि-सिद्धिदातार, जय विघ्नेश्वर हे ॥
परशुँडके धारक हे, उद्धारक हे,
जय गजवदन गणेश, जय विघ्नेश्वर हे ॥
मङ्गलकर दुखहर्ता हे एकदन्ता हे,
मूषकवाहन देव, जय विघ्नेश्वर हे ॥
'निर्मल' की यह विनय सुनो लम्बोदर हे,
करो बुद्धिका दान, जय विघ्नेश्वर हे ॥

[illegible]

पाञ्चरात्र आगममें श्रीगणेश

(लेखक—प्राध्यापक डा० श्रीरे० वरदाचार्य)

विष्णुको परदेवता मानकर जो उपासना करते हैं, वे 'वैष्णव' कहलाते हैं। पर-तत्त्वका स्वरूप, उसकी प्राप्तिका उपाय, निःश्रेयसका स्वरूप आदिका निश्चय वैष्णवमतसे श्रुति स्मृति तथा पाञ्चरात्र आगमके द्वारा होता है। इस आगममें यह निर्णय किया गया है कि विष्णु ही देवताओंमें अग्रणी हैं, दूसरे देवता उनकी अपेक्षा अवर (गौण) हैं, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। 'विष्ल् व्याप्तौ'—इस धातुसे 'विष्णु'-पद निष्पन्न हुआ है। इससे सर्वत्र गुणोंसे, स्वरूपसे तथा गुण गणोंसे विष्णुकी व्याप्तिका बोध होता है। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि विश्व-ब्रह्माण्डमें जो देवता, जीव तथा पदार्थ-समूह हैं, वे सब बाहर और भीतर सर्वत्र श्रीभगवान्‌के द्वारा व्याप्त हैं। अन्तरात्माके रूपमें भगवान् उनके नियन्ता हैं। परमपुरुषका माहात्म्य, गृह और मन्दिरमें उनकी अर्चा-विधि, उनके मन्दिर निर्माण की विधि आदि विषयोंको लेकर आलोचना करनेवाले पाञ्चरात्र आदि आगम विष्णुके परिवारके रूपमें अन्य देवताओंका निर्देश करते हैं और मन्दिरोंमें तथा उनके गोपुर-विमान आदिमें अधिकारानुसार उन देवताओंकी प्रतिष्ठाकी विधिको बतलाते हैं।

'गणेश'-पद 'गणानामीशः' अर्थात् गणोंके ईश, इस योग वृत्तिसे व्युत्पन्न होता है। शिवके परिवारके लोगोंका 'प्रमथगण' नाम है। उन गणोंका ईश होकर, पशुपतिका अपकार सोचनेवालोंको दण्ड प्रदान करके उनके विघ्नोंका नाश करते हुए वे 'विघ्नेश्वर' नामको प्राप्त होते हैं।

श्रीवैष्णव अर्थात् विशिष्टाद्वैत सम्प्रदायके लोग तो भगवान्‌से ही सब अर्थोंकी याचना करते हुए उनके ही शरणापन्न होते हैं। विघ्नोंका निवारण करनेके साथ-साथ सारे अभिवाञ्छित फलकी प्राप्ति उनके द्वारा ही होगी, यह इन लोगोंका दृढ़ निश्चय है। अतएव इनके आचारमें गणेश-पूजाका कोई अवसर नहीं आता।

विष्णु-परिवारके देवताओंमें केवल चतुर्मुख ब्रह्मा आदि देवताओंका ही समावेश नहीं होता, बल्कि पशुपतिके पुत्र गणेशकी भी उसमें गणना होती है। इसके सिवा कुछ और देवता भी गणनायकके रूपमें प्रसिद्ध हैं। जैसे—कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, शङ्कुकर्ण, पुण्डरीकाक्ष* आदि देवता गणोंके अधिनायकके रूपमें पाञ्चरात्र आगममें निर्दिष्ट हैं, तथापि 'गणेश' नामकी प्रसिद्धि विनायककी ही है, इसमें कोई संदेह नहीं।

भगवान्‌के मन्दिरके प्राकारों और विमानोंमें दिक्पाल तथा ब्रह्मा आदि देवता बिम्बरूपसे स्थापित होते हैं—यह पाञ्चरात्र ग्रन्थोंमें प्रतिपादित हुआ है। जैसे—

> कौशिकं च गणेशं च कंदर्पं स्कन्दमेव च।
> आग्नेयादिषु कोणेषु यथासंख्यं प्रकल्पयेत् ॥
>
> (सनत्कुमारसंहिता, इन्द्ररात्र ५ । ११)

'आग्नेय आदि कोणोंमें क्रमशः कौशिक, गणेश, कामदेव तथा स्कन्दको स्थापित करे।'

उसी ग्रन्थमें लिखा है कि—

> गणेशसिंहयोर्मध्ये कुर्यान्मिथुनं विचक्षण।
> श्रीधरस्य गणेशस्य मध्ये तु वरुणं न्यसेत् ॥

'गणेश और सिंहके बीचमें विद्वान् पुरुष मिथुनकी स्थापना करे तथा श्रीधर और गणेशके बीचमें वरुण देवताका निवेश करे।'

इन परिवार देवताओंके लिये मङ्गलाशासन प्राप्त होता है। यथा—

> कुमारी च कुमारश्च गणेशश्च विनायकः।
> सिद्धाश्च किंनराश्चापि मङ्गलं प्रदिशन्तु नः ॥
>
> (सनत्कुमारसंहिता, ऋषिरात्र, अ० ६)

'कुमारी, कुमार, गणेश, विनायक, सिद्ध तथा किंनर गण हमें मङ्गल प्रदान करें।'

उसी संहितामें शिवरात्रमें अध्याय १ श्लोक ८९-९० में लिखा है कि ग्रामके दक्षिण भागमें उत्तरमुख गणेशकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

आवाहन और निवेदनकी यह विधि कही गयी है—

> गायत्रीयं गणपतेः प्रतिष्ठाकर्मसु स्मृता।

---

* विश्वामित्र-संहिता अ० १७ । १४२, १४८, १५३ ।

...देवसे वृद्धिकी, पार्वतीसे सौभाग्यकी, शची-इन्द्राणीसे कल्याण-परम्पराकी, स्कन्दसे संतान-वृद्धिकी और गणेशसे सभी वस्तुओंकी याचना करनी चाहिये। ये सभी, जिनका मैंने वर्णन किया है, महेश्वरकी विभिन्न मूर्तियाँ हैं।'

भगवान् गणेश विघ्नोंके अधिपति हैं, अतः उनके पूजनसे विघ्नोंकी शान्ति होती है। इस विषयमें याज्ञवल्क्य-स्मृतिके आचाराध्यायमें एक समूचे प्रकरणका ही वर्णन है, जिसे 'गणपतिकल्प' कहते हैं। उसमें उल्लेख है—

विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः।
गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा॥

(२७१)

'ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णुने गणेशजीको कर्मोंमें विघ्न डालनेका अधिकार तथा पूजनोपरान्त उसे शान्त कर देनेकी सामर्थ्य प्रदान की है। साथ ही पुष्पदन्त आदि गणोंके अधिपति-पदपर भी नियुक्त किया है।'

अब आगे विनायकसे गृहीत जनोंके लक्षण और उसकी शान्तिके विधानका वर्णन किया जाता है—

जो विनायकके चंगुलमें फँस जाता है, वह स्वप्नमें अगाध जलमें डूबता-उतराता है, गेरुए वस्त्रधारी मुण्डित सिरवाले पुरुषोंका दर्शन करता है, मांसभक्षी पक्षियोंकी सवारी करता है, चण्डालों, गधों और ऊँटोंसे घिरकर एक साथ बैठता है, चलते समय वह अपनेको शत्रुओंद्वारा पीछा किया जाता हुआ मानता है, उसका चित्त विक्षिप्त रहता है, उसके सभी कार्य निष्फल होते हैं, अकारण ही वह दीन बना रहता है, राज-पुत्र होनेपर भी उसे राज्यकी प्राप्ति नहीं होती। कुमारी कन्या अभीष्ट पतिको, गर्भिणी स्त्री संतानको, ऋतुमती गर्भको, श्रोत्रिय आचार्यत्वको, शिष्य अध्ययनको, बनिया लाभको और किसान खेतीके लाभको नहीं पाता। अतः उसकी शान्तिके निमित्त किसी पुण्य दिनमें विधिपूर्वक उस व्यक्तिको स्नान कराना चाहिये। स्नानकी विधि यों है—

उस मनुष्यके शरीरमें घी मिलाकर पीली सरसोंका उबटन लगावे; सिरपर सर्वौषधि और सर्वगन्धसे लेप करे। तदनन्तर उसे भद्रासनपर बैठाकर ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन करावे। पुनः एक ही वर्णके चार कलशोंको किसी नदी या सरोवरके जलसे पूर्ण करके मँगावे और उन्हें भद्रासनके चारों दिशाओंमें क्रमशः स्थापित करे। फिर उन कलशोंमें घुड़साल, गजशाला, बिमवट, नदीके संगम और कुण्डकी मिट्टी, गोरोचन, चन्दन आदि गन्ध और गुग्गुल डाले। तत्पश्चात् आचार्य उन्हीं कलशोंके जलसे अभिषेक करे। अभिषेकके मन्त्र ये हैं—

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम्।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते॥
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः॥
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु सर्वदा॥

(२८१—२८३)

'ऋषियोंने अनेकों शक्तियों तथा बहुत से प्रवाहोंद्वारा जिस जलको पवित्र बनाया है, उसी जलसे मैं तुम्हारा अभिषेक करता हूँ। ये पावन करनेवाले जल तुम्हें पवित्र करें। अब राजा वरुण, सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु और सप्तर्षियोंने तुम्हें कल्याण प्रदान किया। ये जल तुम्हारे बाल, सीमन्त, मूर्धा, ललाट, दोनों कानों और दोनों नेत्रोंमें जो दौर्भाग्य स्थित है, उसका नाश करें।'

इस प्रकार स्नान कर लेनेके उपरान्त बायें हाथसे सिरपर कुशा रखकर दाहिने हाथसे गूलरके स्रुवासे सरसोंके तेलका अग्निमें हवन करे। हवनका मन्त्र यों है—

मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालकटङ्कटौ।
कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यन्ते स्वाहासमन्वितैः॥

(२८

'मित, सम्मित, शाल, कटङ्कट, कूष्माण्ड राजपुत्र—इन नामोंके अन्तमें (चतुर्थी विभक्ति और 'स्वाहा' जोड़कर (जैसे—मिताय स्वाहा) हवन करना चाहिये।'

तत्पश्चात् चौराहेपर जाकर, वहाँ सूप रखकर चारों ओर कुशा बिखेर दे। फिर उसपर तिलकी पीठीसहित भात, अनेकों रंगोंके पुष्प, चन्दन सुगन्ध, मूली, पूरी, पूआ, छोटे छोटे पूओंकी माला, दही मिला हुआ अन्न, खीर, गुड़मिश्रित चूर्ण और लड्डूकी बलि दे। तदनन्तर पृथ्वीपर सिर विनायककी माता अम्बिकाका उपस्थान करना उपस्थानका मन्त्र यों है—

स्मृतियोंमें श्रीगणेश

(लेखक—[illegible])

[illegible]
[illegible] ।
श्रेयोविघ्नमहामयप्रशमने दिव्यं यदेकौषधं
भूयाद् द्विरदाननस्य [illegible] तदिष्टाप्तये ॥

'अभीष्ट सिद्धिके लिये संगठित होकर आए हुए देवताओं और असुरोंके द्वारा नमस्कार करनेके कारण उनके मस्तकपर स्थित आभरण बहुमूल्य रत्नोंसे उद्भूत विविध रंगोंसे सम्मिश्रित हुई उज्ज्वल किरणोंसे जो उद्भासित हो रहा है तथा कल्याणमार्गके विघ्नरूपी महान् रोगका प्रशमन करनेमें जो एकमात्र दिव्य औषध है, गजानन गणेशजीका वह युगल चरण कमल हमारी इष्ट प्राप्तिका साधन हो।'

हमारे पूर्वज महर्षियोंकी वरपूत वाणीसे निःसृत श्रुतिमूलक अनुभव-पूर्ण प्रवचनोंका संकलन जिन ग्रन्थोंमें किया गया है, वे 'स्मृतियाँ' कहलाती हैं। जिन महर्षिका विवेचन जिस स्मृतिमें संग्रथित है, वह उन्हींके नामसे प्रचलित है।

यद्यपि ग्रन्थ प्रणयन-कालमें 'ग्रन्थादौ ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्ते च मङ्गलमाचरणीयम्—ग्रन्थके आदि, मध्य और अन्तमें मङ्गलका उल्लेख करना चाहिये' का प्राचीन विधान है, परंतु इन स्मृतियोंमें इस नियमका पूर्णतया पालन नहीं हुआ है। यही कारण है कि इनमें गणेशजीका प्रसङ्ग नाममात्रको ही है। जो कुछ उपलब्ध हो सका, वही इस लेखका प्रतिपाद्य है।

हिंदू धर्मशास्त्रोंमें प्रत्येक कार्यारम्भमें विघ्ननिवारणार्थं गणेश स्मरणका विधान है। इसी आधारपर परम्परानुसार हमलोग सर्वप्रथम गणेशजीका पूजन स्तवन करते हैं। यहाँतक कि ब्रह्मा आदि देवगण भी गणेशजीको नमस्कार करते हैं—

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे ।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥

'ब्रह्मा आदि देवगण सभी कार्योंके आरम्भमें जिन्हें नमस्कार करके कृतकृत्य होते हैं, उन गजानन गणेशजीको मैं प्रणाम करता हूँ।'

स्मार्त प्रक्रियामें जो पञ्चदेवोपासना प्रचलित है, उसमें भी गणेशजीका एक प्रमुख स्थान है। [illegible] आस्तिकोंमें भी इनकी गणना है—

शैवं च वैष्णवं शाक्तं सौरं वैनायकं तथा।
स्कान्दं च भक्तिमार्गस्य दर्शनानि षडेव हि ॥

'शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, वैनायक और स्कन्द—ये भक्तिमार्गके छः दर्शन कहे गये हैं।'

आह्निक कर्मोंमें भी नित्य गणेशजीकी पूजाका विधान है। जैसा कि 'बृहद्व्यासस्मृति'में आया है—

[illegible] होमयेत् [illegible] ।
सर्वविघ्नोपशान्त्यर्थं पूजयेद्यत्नतस्तु तम् ।
गणानां त्वेति मन्त्रेण स्वाहाकारान्तमादरात् ॥
[illegible] गणेशाय [illegible] ।
(बृहद्व्यास० ४। १०५—१०८)

"[illegible] कालमें गणेशजीके लिये [illegible] आहुतियाँ देनी चाहिये और सम्पूर्ण विघ्नोंकी शान्तिके लिये यत्नपूर्वक उनका पूजन करे। पुनः 'गणानां त्वा'—इस मन्त्रसे अन्तमें स्वाहाका प्रयोग करके गणेशजीके निमित्त आदर-पूर्वक चार आहुतियोंसे हवन करे।"

महर्षि लौगाक्षिका कथन है कि विभिन्न देवता भिन्न भिन्न प्रकारकी कामनाओंकी पूर्ति करते हैं, परंतु गणेशजी तो सभी अभिलषित वस्तुओंके प्रदाता हैं—

आरोग्यं भास्करादिच्छेच्छ्रियमिच्छेद्धुताशनात् ।
ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ॥
दुर्गादिभिस्तथा रक्षां भैरवाद्यैस्तु दुर्गमम् ।
विद्यासारं सरस्वत्या लक्ष्म्या चैश्वर्यवर्धनम् ॥
पार्वत्या चैव सौभाग्यं शच्या कल्याणसंततिम् ।
स्कन्दात् प्रजाभिवृद्धिं च सर्वं चैव गणाधिपात् ॥
मूर्तिभेदा महेशस्य त एते यन्मयोदिताः ॥
(लौगाक्षिस्मृति)

'सूर्यसे आरोग्यकी, अग्निसे श्रीकी, शिवसे ज्ञानकी, [illegible] मोक्षकी, दुर्गा आदि देवियोंसे रक्षाकी, भैरव आदिसे [illegible] सरस्वतीसे विद्या-तत्त्वकी, लक्ष्मीसे

१-स्वरूप (जीवात्माका स्वरूप),

२-परस्वरूप (परमात्माका स्वरूप),

३-पुरुषार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष),

४-उपाय [जीवात्माको परमात्मासे मिलनेका साधन क्या है अर्थात् कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, प्रपत्तियोग (शरणागति) तथा आचार्याभिमान];

५-विरोधी (अर्थात् जीवात्माको परमात्मासे मिलनेके मार्गमें विघ्न) क्या हैं और वे कैसे दूर होंगे ?

यहींपर श्रीगणेशजी हमारी सहायता करते हैं। जबतक साधन पथके विघ्न दूर नहीं होंगे, तबतक हम परमात्माको प्राप्त नहीं कर सकते और ये विघ्न श्रीगणेशजीकी कृपासे ही दूर हो सकते हैं।

विशिष्टाद्वैत-वेदान्तके प्रवर्तक तथा श्रीवैष्णव-सम्प्रदायके आदि आचार्य सेनाधीश श्रीविष्वक्सेन स्वामी हैं, जिनका लीलाविभूतिमें नाम श्रीगणेशजी है। श्रीवैष्णवोंकी गुरु-परम्परा इस बातको स्पष्ट करती है। विशिष्टाद्वैत-वेदान्त एवं शरणागति मार्गके प्रवर्तक श्रीमन्नारायणभगवान्‌से लेकर रामानुज स्वामीतक दस आचार्य हुए हैं—

१-श्रीमन्नारायणभगवान्, २-श्रीलक्ष्मीजी, ३-सेनाधीश विष्वक्सेनस्वामी, ४-श्रीशठकोपस्वामी, ५-श्रीनाथ स्वामी, ६-श्रीपुण्डरीकाक्षस्वामी, ७-श्रीराममिश्रस्वामी, श्रीयामुनाचार्यस्वामी, ९-श्रीमहापूर्णस्वामी और १०-रामानुजस्वामी।

इनमेंसे भगवान् और श्रीलक्ष्मीजी प्राप्य और आराध्य हैं। इनके अतिरिक्त आचार्योंमें श्रीविष्वक्सेनस्वामीका नाम सर्वप्रथम आता है। श्रीविष्वक्सेनस्वामीने ही शठकोप-स्वामीको शरणागति-मन्त्रका उपदेश दिया। इसी शरणागति-मन्त्र तथा मन्त्रार्थके आधारपर श्रीशठकोपस्वामीने द्राविड़ी (तमिळ) भाषामें 'तिरुवायमौलि'-नामक ग्रन्थकी रचना की, जिसका संस्कृतमें अनुवाद एक हजार श्लोकोंमें 'सहस्र-गीति'के नामसे हुआ और जिसकी टीका 'भगवद्विषय'के नामसे प्रसिद्ध है। श्रीसम्प्रदायमें 'तिरुवायमौलि' या 'सहस्र-गीति'का स्थान बहुत श्रेष्ठ है। श्रीवैष्णवोंका मुख्य साधन प्रपत्ति (शरणागति) एवं आत्मसमर्पण इसी 'सहस्रगीति'पर अवलम्बित है। श्रीवैष्णवोंने भक्ति और प्रपत्तिके अतिरिक्त एक मुख्य साधन आचार्याभिमान है। इसी आचार्यनिष्ठाके कारण श्रीविष्वक्सेनस्वामी अथवा श्रीगणेशजी प्रथमपूज्य माने गये हैं।

वैष्णवोंके चार सम्प्रदाय हैं—

१-श्रीसम्प्रदाय—यह विशिष्टाद्वैत-वेदान्तको मानता है। इसके प्रवर्तक श्रीरामानुजाचार्य हैं।

२-मध्व-सम्प्रदाय—यह द्वैत वेदान्तको मानता है, इसके प्रवर्तक श्रीमध्वाचार्य हैं।

३-श्रीविष्णुस्वामि-सम्प्रदाय—यह शुद्धाद्वैत-वेदान्तको मानता है, इसके प्रवर्तक श्रीवल्लभाचार्य हैं।

४-श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय—यह भेदाभेद या द्वैताद्वैत वेदान्तको मानता है। इसके प्रवर्तक श्रीनिम्बार्कस्वामी हैं।

चारों वैष्णव-सम्प्रदायोंने और इनसे उत्पन्न सब शाखाओंने मुक्तकण्ठसे विघ्न-बाधाओंको दूर करनेके लिये श्रीगणेशजीकी आराधना स्वीकार की है। सभी वैष्णव सम्प्रदायोंने संसारकी सत्यता और भक्तिकी उपादेयता स्वीकार की है। संसार सत्य है और संसारमें सिद्धि तथा सफलता प्राप्त करनेके निमित्त श्रीगणेशजीकी आराधना भी आवश्यक है। स्वामी शंकराचार्यजीने परमार्थ-पक्षमें ब्रह्मको निर्गुण और संसारको मिथ्या माना है तथा ज्ञानको ही ब्रह्म प्राप्तिका साधन बतलाया है; पर व्यवहार-पक्षमें उन्होंने भी संसारकी स्थिति तथा भक्तिकी उपयोगिता स्वीकार की है। इन्होंने ही व्यावहारिक जगत्‌में पञ्चदेवोपासना प्रचलित की, जिसमें भगवान् गणपतिका स्थान सर्वोपरि है—

'ॐ गणपत्यादिपञ्चदेवता इहागच्छत इह तिष्ठत।'

तान्त्रिक उपासनामें तो गणेशजीका महत्त्व है ही, वैदिक आराधनामें भी गणेशजीका स्थान बहुत ऊँचा है।

'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे।'

(शुक्लयजु० २३ । १९)

विशिष्टाद्वैत-वेदान्तने ब्रह्मको सगुण और संसारको सत्य माना है। ब्रह्म यदि सत्य है तो ब्रह्मसे निकला [illegible] संसार भी सत्य है। सत्यसे मिथ्या पदार्थकी उत्प[illegible] हो सकती। ब्रह्म ही जगत्‌का उपादान कारण और [illegible] कारण है। ब्रह्मके अतिरिक्त और कोई पदार्थ ही [illegible] 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन।' [illegible] ब्रह्मको निर्गुण माना है, पर रामानुजने इसे [illegible] है, अतः सगुण है। चित् (जीव-वर्ग) तथा

रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे।
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे॥

'भगवति ! आप मुझे रूप, यश, ऐश्वर्य, पुत्र और धन प्रदान करें तथा मेरी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करें।' इस प्रकार उन्हें अर्घ्य देकर दूब, सरसों और पुष्पोंसे भरी हुई अञ्जलि प्रदान करनी चाहिये।

तत्पश्चात् स्वच्छ वस्त्र, उज्ज्वल पुष्पोंकी माला और मलयागिरि चन्दन धारण करके यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे और आचार्यको दक्षिणामें दो वस्त्र प्रदान करे। इस प्रकार विधिपूर्वक विनायककी पूजा करनेसे कर्मोंके फल तथा सर्वश्रेष्ठ लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। जो महागणपतिकी पूजा करके उनको चन्दन लगाता है, उसे सभी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं।

श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय एवं विशिष्टाद्वैत-वेदान्तमें श्रीगणेश

(लेखक—प्राचार्य श्रीजयनारायणजी मल्लिक, एम्० ए० (द्वय) स्वर्णपदकप्राप्त, डिप० एड्०, साहित्याचार्य, साहित्यालंकार)

श्रीवैष्णव सम्प्रदाय एवं विशिष्टाद्वैत-वेदान्तमें श्रीगणेशजी-का स्थान बहुत उच्च एवं विशिष्ट है। परमपदमें श्रीवैकुण्ठपति भगवान् माया मण्डलसे परे अखिल हेयप्रत्यनीक परब्रह्म सगुण साकाररूपमें सदैव वर्तमान रहते हैं, जहाँ नित्यसूरि सदा उनका दर्शन करते रहते हैं।

'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।'
(ऋग्वेद १। २२। २०)

इन्हीं नित्यसूरियोंमें अग्रगण्य स्थान श्रीअनन्त (शेषजी) तथा श्रीविष्वक्सेनजीका है। भगवान् विष्णु शेष पर्यङ्कपर विराजमान हैं और विष्वक्सेन उनके सेनानायक हैं। यह माया-मण्डल या लीला विभूति, जहाँ भूदेवी या त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका राज्य है, नित्य विभूति या त्रिपाद्विभूतिका प्रतिबिम्बमात्र है। केवल लीला विभूति सत्त्व रज-तमके कारण परिणामशीला है और परिणामवादके कारण सदैव बदलती रहती है, किंतु परमपदमें शुद्ध सत्त्वके कारण वहाँकी विभूति शाश्वत और चिरन्तन है। वहाँ मुक्तात्माओंका शरीर तथा सभी भोग्य पदार्थ शुद्ध सत्त्वके बने हैं और वहाँ परिणामशील प्रकृतिका अस्तित्व नहीं है। अतः वहाँ अक्षय यौवन, अनन्त सौन्दर्य और अचिन्त्य माधुर्य है। लीला-विभूतिमें हम जो सौन्दर्य और माधुर्यकी झलक देखते हैं, वह परमपदके दिव्य सौन्दर्य और माधुर्यका प्रतिबिम्बमात्र है। पर चाहे लीला विभूति हो या नित्य विभूति, परमात्मा सर्वत्र हैं। परमपदमें माया-मण्डलसे परे परब्रह्म श्रीमन्नारायण भगवान् हैं और लीला-विभूतिमें भगवानका व्यूहरूप विराजमान है। व्यूहरूपके अन्तर्गत षड्गुणसम्पन्न शेषशायी श्रीवासुदेव भगवान् हैं। पर लीला विभूतिमें परिणामशील प्र

मरणका चक्र चलता रहता है; अतः सृष्टि-संचालनके लिये भगवान्‌को दो-दो गुणोंसे सम्पन्न तीन रूप धारण करने पड़ते हैं, जिन्हें पाञ्चरात्रकी भाषामें संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध तथा पौराणिक भाषामें ब्रह्मा-विष्णु-महेश कहा गया है। ये सृष्टि-संचालन करते हुए उत्पत्ति पालन-संहारका कार्य सँभालते रहते हैं। जब जब अन्यायियों एवं अत्याचारियोंके उपद्रवसे सत्त्वपर रज और तमकी यवनिका आ जाती है, मानवतामें पशुता घुस जाती है, मानवता उलट जाती है, धर्मका पतन और पापका उत्कर्ष होने लगता है, तब तब शेषशायी वासुदेव भगवान्‌का अवतार होता है। भगवान् शरीर धारणकर मानवताका संरक्षण और पथ प्रदर्शन करने लगते हैं।

परमपदमें जो परब्रह्म श्रीमन्नारायण हैं, व्यूहरूपमें वे ही श्रीवासुदेवभगवान् हैं; परमपदमें जो नित्यसूरि अनन्त हैं, लीला विभूतिमें वे ही श्रीशंकरजी हैं और परमपदमें जो सेना-नायक श्रीविष्वक्सेनजी हैं, वे ही लीला विभूतिमें विघ्नोंको दूर करनेवाले तथा सिद्धि और सफलताको देनेवाले गणोंके अधिनायक श्रीगणेशजी हैं। परमपदके सेनानायक ही लीला विभूतिमें गणनायकके नामसे प्रसिद्ध हैं। विद्या और ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती हैं तथा विद्या और ज्ञानके अधिष्ठाता देवता श्रीगणेशजी हैं। यही कारण है कि प्रत्येक हिंदूके घरमें धनकी अधिष्ठात्री देवी 'लक्ष्मी' तथा विद्या एवं ज्ञानके अधिष्ठाता देव 'श्रीगणेश'की पूजा होती है।

विशिष्टाद्वैत वेदान्तमें 'अर्थ-पञ्चक'-ज्ञानका बहुत बड़ा महत्त्व है। अर्थ पञ्चक-ज्ञानके अन्तर्गत पाँच विषयोंका वर्णन है—

(अचेतन या जड प्रकृति) ये सब संसार ब्रह्मका शरीर है और ईश्वर इस संसारकी आत्मा। जिससे जगत्‌के जन्म आदि (सृष्टि, स्थिति और संहार) होते हैं, (वह ब्रह्म है)—

'जन्माद्यस्य यतः।' (ब्रह्मसूत्र १ । १ । २)

जिससे ये भूत (प्राणी) उत्पन्न होते, उत्पन्न होकर जिससे जीवन धारण करते और मृत्युको प्राप्त हो जिसमें ही लीन होते हैं, उसे जाननेकी इच्छा करो। वह ब्रह्म है।

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद् विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्म।' (तैत्तिरीय उप०, भृगुवल्ली १ । १)

यह संसार ब्रह्मकी विभूति है और ब्रह्मसे ओत-प्रोत है। सर्वत्र ब्रह्मका प्रकाश है और सारा विश्व ब्रह्मसे ओत-प्रोत है—

'सीय राम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥' (मानस १ । ७ । १)

'ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।' (ईशावास्योपनिषद्)

यह सारा विश्व ब्रह्ममय है और संसारके प्रत्येक नर-नारी भगवत्स्वरूप हैं। प्रत्येक नर-नारीका शरीर परमात्माका मन्दिर है। परमात्मा अनन्त अपरिमित प्रकाशके समूह हैं और जीवात्मा कर्म-संस्कारमें उलझा हुआ तथा अविद्याकी राखसे ढका हुआ प्रकाशकण (चैतन्यकी चिनगारी) है। इस माया-मण्डलमें परिणामवादके कारण जो सृष्टि-चक्र चल रहा है, उसके सफल संचालनके हेतु लीला विभूतिमें परमात्माको अनेक रूप धारण करने पड़ते हैं। जब जैसी आवश्यकता पड़ती है, परमात्मा वैसा ही रूप धारण कर लेते हैं।

एक ही ईश्वर भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं। वे ही सृष्टि करते हैं, वे ही संसारका पालन और संहार भी करते हैं। वे ही जल देते हैं, वे ही रोशनी देते हैं और वे ही विघ्न-बाधाओंका शमन करते हैं। वे ही ब्रह्मा हैं, वे ही विष्णु हैं, वे ही रुद्र हैं, वे ही इन्द्र हैं, वे ही वरुण, कुबेर, मित्र (सूर्य) तथा गणपति हैं। क्योंकि ये गुण उन्हींकी शक्तियाँ हैं। अतएव हम किसी रूपमें आराधना करें, उन्हींको प्राप्त होंगे।

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति॥

'जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल अन्ततः समुद्रमें चला जाता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण देवताओंके प्रति किया गया नमस्कार भगवान् केशवको ही प्राप्त होता है।'

गणेशजी वस्तुतः परमात्माके अवतार हैं। विघ्नोंको दूर करनेके लिये तथा मनुष्यको सिद्धि और सफलता प्रदान करनेके निमित्त भगवान्‌ने ही गणेशका रूप धारण किया है। भारतके चिरस्मरणीय वैष्णव-कवि तुलसीदासजीने श्रीगणेशकी वन्दना की है—

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥
(श्रीरामचरितमानस १ । १ सो०)

संस्कृत वाङ्मयमें पाञ्चरात्रका साहित्य बहुत विशाल है। इसमें १०८ संहिताएँ हैं। उन्हींमेंसे एक 'श्रीविष्वक्सेन-संहिता' है, जिसमें श्रीगणेशभगवान्‌की दक्षिणपंथी आराधनाका विस्तृत वर्णन है। भगवान् श्रीगणेशजीकी कृपासे ही मुमुक्षुओंके मोक्ष-पथसे विघ्न-बाधाओंका शमन होता है। यही 'श्रीविष्वक्सेन संहिता' हमें बतलाती है कि भगवान् विष्वक्सेन ही लीला-विभूतिमें गणेशजीके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। श्रीविष्वक्सेन-संहितामें भगवान् विष्वक्सेन हमें बतलाते हैं कि 'परमात्मा अन्तर्यामीरूपसे सर्वत्र वर्तमान हैं; अतः ऐसा कोई भी स्थल नहीं, जहाँ हमलोग छिपकर पाप कर सकें। भगवान् तो साक्षीरूपसे सर्वत्र हमारे कर्मोंको देख रहे हैं। अन्तर्यामी भगवान् प्रत्येक प्राणीके अन्तःकरणमें वर्तमान हैं, अतः प्रत्येक नर-नारीको अपनी अन्तरात्मा—अपना अन्तःकरण पवित्र और निर्मल रखना चाहिये। श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय एवं विशिष्टाद्वैत-वेदान्तमें श्रीगणेशजीका स्थान श्रीविष्वक्सेनस्वामीके रूपमें बहुत ऊँचा है। वे सेनानायक और गणनायक तो हैं ही, साथ ही-साथ देवताओंमें और श्रीवैष्णव-सम्प्रदायके आचार्योंमें भी प्रथम पूज्य हैं।

श्रीरामोपासनामें भगवान् गणेश

(लेखक—पं० श्रीअवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि')

श्रीरामोपासक भगवान् गणेशके प्रति अत्यन्त आदर-भाव रखते हैं। प्राचीन तथा अर्वाचीन श्रीराम-साहित्यका अन्वेषण करनेसे भगवान् गणेशके प्रति श्रीरामभक्तोंकी भावनाका स्पष्टीकरण हो जाता है। यों तो श्रीरामोपासक 'सीयराम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥' (मानस १।७।१) का आदर्श अपने जीवनमें चरितार्थ करनेका पूर्णतः प्रयत्न करते ही रहते हैं, इसलिये सनातनधर्मके पञ्चदेवोंके प्रति उनका विशेष सम्मान होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके अनेकानेक मन्दिरोंमें श्रीहनुमान्‌जी तथा श्रीगणेश-जीके विग्रहोंकी स्थापना दृष्टिगोचर होती है।

परब्रह्म श्रीरामके अनन्त नाम हैं, अनन्त रूप हैं। अतएव शुक्लयजुर्वेद २३। १में 'गणानांत्वा गणपतिꣳ हवामहे''''—इस मन्त्रके द्वारा परब्रह्मको 'गणपति'-नामसे पुकारा गया है। शास्त्रों एवं संतोंने नाम तथा नाम-जापकमें एक-रूपता मानी है। भगवान् श्रीगणेशजी श्रीराम-नामकी अनन्यनिष्ठाके कारण ही प्रथम पूज्य माने गये हैं :—

'महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ ॥'

(मानस १। १८। २)

जिस प्रकार मन्त्र तथा मन्त्र-जापकमें एकरूपता मानी गयी है, उसी प्रकार भगवान् एवं भक्तमें भी अभेदान्वय सम्बन्ध स्वीकृत है—

भक्ति-भक्त-भगवंत-गुरु चतुर-नाम बपु एक।
इनके पद-बन्दन किए नासत बिघ्न अनेक ॥

(भक्तमाल—१)

पुन—

संत-भगवंत अंतर-निरंतर नहिं.........,

(विनयपत्रिका)

भगवान् गणेशको यदि श्रीराम-भक्त-शिरोमणि मानते हैं तो भी 'राम ते अधिक राम कर दासा' तथा 'आराधना-नां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्। तस्मात् परतरं देवि तदी-यानां समर्चनम् ॥' (पद्मपुराण) इस दृष्टिकोणसे श्रीरामो-पासकोंद्वारा भगवान् गणेशका पूजनाराधन होना शास्त्र एवं सम्प्रदायके अनुकूल है। इसे अधिक स्पष्ट करनेके लिये श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके सर्वमान्य शास्त्रीय ग्रन्थों एवं श्रीराम-भक्त-संतोंके वचनोंके कतिपय उद्धरण कल्याणोपासकोंके सम्मुख प्रस्तुत किये जाते हैं :—

विघ्नं दुर्गां क्षेत्रपालं च वाणीं बीजादिकांश्चाग्निदेशादिकांश्च।
पीठस्याङ्घ्रिष्वेषु धर्मादिकांश्च नञ्पूर्वांस्तांस्तस्य दिक्ष्वर्चयेच्च ॥

(श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद् १०। ३)

विघ्न गणेश, दुर्गा, क्षेत्रपाल और सरस्वती, इनके आदिमें इन्हींके 'बीज' लगाकर 'ॐ विं विघ्नाय नमः' 'ॐ दुं दुर्गायै नमः' इत्यादि रूपसे—इन चारोंका पीठके ऊपर यथास्थान पूजन करे। पीठके पायोंमें धर्म आदिका आग्नेय आदि कोणोंमें तथा अधर्म आदिका इन पायोंके पार्श्ववर्ती पूर्वादि दिशाओंमें पूजन करे।'

श्रीराम-पूजन-पीठमें विघ्नेश भगवान् गणपतिका ही सर्व-प्रथम नाम लिया गया है। इसी प्रकार—

गणाधिप नमस्तुभ्यमिहागच्छ गजानन।
पूर्वभागे ममतिष्ठ पूजनं गृह्यतामिदम् ॥

(श्रीरामार्चापद्धति १। १)

इस मन्त्रके द्वारा श्रीरामार्चा-महायज्ञमें भगवान् गणेशके पूजनका विधान है।

'गणेशादिचतुर्णां तु रामाङ्गत्वं प्रतीयते।
सर्वे वेदाः स्तुवन्तीति सामान्यश्रुतिचोदनात् ॥

(श्रीरामार्चनचन्द्रिका, पटल—१)

'सब वेद जिनकी स्तुति करते हैं।' इस सामान्य श्रुतिके विधानसे गणेश आदि चार देवता श्रीरामके अङ्ग सिद्ध होते हैं।'

'ॐ नमो रामभद्राय गं गणेशाय ते नमः ॥'

(श्रीरामार्चनचन्द्रिका, पटल—१)

श्रीअगस्त्यसंहितान्तर्गत—'रामार्चनचन्द्रिका'के इस मन्त्रसे भी श्रीरामभद्रजूके साथ ही श्रीगणेशजीको नमस्कार किया गया है।

गायत्री है । मध्व-मतमें क्षिप्रप्रसाद-गणपतिका ध्यान इस प्रकार है—

> रक्ताम्बरो रक्ततनू रक्तमाल्यानुलेपन ।
> महोदरो गजमुखः पाशदन्ताङ्कुशाभयान् ॥
> बिभ्रद् ध्येयो विघ्नहरः कामदस्त्वरया द्रुतम् ।

अर्थात् 'रक्त वस्त्र पहननेवाले, रक्त वर्ण, रक्त माला एवं रक्त चन्दनसे सुशोभित, विशाल उदरशाली, भुजाओंमें पाश, दन्त, अङ्कुश एवं अभय-मुद्राको धारण करनेवाले, विघ्नहर्ता, शीघ्र कामनापूर्ति करनेवाले गजाननका ध्यान करना चाहिये।'

गणेशजीका द्वितीय ध्यान-मन्त्र इस प्रकार है—

> गजाननं चतुर्बाहुं लम्बकुक्षिं सितप्रभम् ।
> ·················लम्बयज्ञोपवीतिनम् ॥
> वामहस्तेन मुख्येन संगृहीतमहाफलम् ।
> इतरेण तु हस्तेन भग्नदन्तपरिग्रहम् ॥
> अपराभ्यां च हस्ताभ्यां पाशाङ्कुशवराभयान् ।
> आरब्धकर्मनिर्विघ्नफलं दुग्धे यथेप्सितम् ॥

अर्थात् 'गजानन गणेश चतुर्भुज, लम्बोदर, शुभ्रकान्ति वाले,···लंबा यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, मुख्य वाम करसे महाफल लेनेवाले दक्षिण करसे खण्डित दन्त धारण करनेवाले एवं अन्य दो करोंसे पाश, अङ्कुश, वर और अभय मुद्रा धारण करनेवाले, प्रारम्भ किये हुए कार्यको निर्विघ्न रूपसे समाप्त करनेवाले और मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं।'

माध्व कवियोंकी दृष्टिमें गणेश

मध्व-सम्प्रदायमें कुछ ऐसे महान् कवि हुए हैं, जिन्होंने अपने जीवन-कालमें मध्व-साहित्यको अपने भक्ति गीतोंद्वारा पोषित किया है और समृद्ध बनाया है। इन कवियोंने, जो मध्व-सम्प्रदायके अनुयायी हैं, गजानन गणेशकी स्तुति बड़े ही सुन्दर ढंगसे की है। मध्व-सम्प्रदायकी दास-परम्परामें पुरन्दरदास, जगन्नाथदास, विट्ठलदास आदि भक्त-श्रेष्ठ कन्नड़भाषी कवि हैं। इन कवियोंने अपनी भक्ति और विद्वत्तासे कन्नड़-साहित्य-जगत को आलोकित किया है। पुरन्दरदासजीका समय १४८४ १५६४ ई० तक माना गया है। ये दक्षिण भारतके प्रसि... कवि थे। जगन्नाथदास और विट्ठलदास भी मध्व-सम्प्रदा... श्रेष्ठ कवि हैं। दासश्रेष्ठ पुरन्दरदास गजानन श्रीगणेश... वन्दना करते हुए कहते हैं—

> गजवदनाबेडुवे । गौरितनया,
> त्रिजगवंदितने । सुरनरपोरेदने । पाशांकुशधर परमपवित्र
> मूषकवाहना । मुनिजनप्रेमा,
> मोददिंदलिनिम पादवतोरो । साधुवंदितने
> आदरदिंदलि । सरसिजनाभ श्रीपुरंदरविट्ठलन,
> निरुत नेनेवंते भरदि दयमाडो ।

अर्थात् 'गणेश ! मैं तुम्हारी आराधना करता हूँ। हे गौरीपुत्र ! तीनों लोकोंमें वन्दित होनेवाले, देवोंके प्रिय, पाश और अङ्कुशधारी, परम पवित्र देव, मूषक (चूहा) वाहनवाले, मुनियोंके प्रिय गणेश तुम जो साधुजनोंद्वारा वन्दित हो, मेरा उद्धार करो। मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करो कि मैं नाभिमें कमल धारण करनेवाले विष्णुका निरन्तर ध्यान कर सकूँ। हे गणेश ! मेरे ऊपर दया करो।'

श्रीविट्ठलदासजी गणपतिभगवान्‌की स्तुति करते हुए कहते हैं—

> वंदिसुवेनु श्रीगणराया, वरगणराया ।
> सुरमुनिकिंनरसंस्तुतिचर्या, हरगौरीसुतरंकजसूर्य ।
> आनंदवकोडु नीमलहो विघ्नेशा ॥

अर्थात् 'हे गणराज गणपति ! मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। तुम सभी देवताओंमें ऊँचे हो। देवता, ऋषि मुनि-नर आदिकी संस्तुतिके तुम विषय हो। वे लोग तुम्हारी ही स्तुति करते हैं। शंकर और पार्वतीके पुत्र ! तुम कमलके समान कोमल एवं सूर्यके समान प्रकाशमान हो। हे विघ्नहर्ता ! मुझे आनन्द प्रदान कर मेरा उद्धार करो।'

इस प्रकार हमें मध्व-सम्प्रदायके गणेशभक्त कवियोंके भक्ति-गीतोंका अवलोकन प्राप्त होता है। मध्व-सम्प्रदाय ... [illegible] ...णके ... [illegible] ...ना है और विष्णुके ... है।

कैलासो मम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति।

(शिवसंहिता ५। १९६-१९७)

मूलाधारचक्रमें चार दलका कमल है, जो बन्धूक-पुष्पके समान लाल है। उसके चारों दलोंमें (व, श, ष, स) अक्षर अङ्कित हैं। उसमें अपनी शक्तिके साथ मूषकवाहन गणेशजी विद्यमान हैं। वे चारों हाथोंमें क्रमशः पाश, अङ्कुश, सुधापात्र और मोदक लेकर उल्लसित हैं—

मूलाधारे वादिसान्तबीजयुक्ते चतुर्दले।
बन्धूकाभे स्वशक्त्या तु सहितायाखुगाय च॥
पाशाङ्कुशसुधापात्रमोदकोल्लासपाणये।

(नारदपुराण, पूर्व०, तृ० ६५। ८१-८२)

निष्कर्ष यह है कि मूलाधारचक्रमें स्थित गणेशके पदपद्ममें यौगिक साधनाका समारम्भ कर योगी षट्चक्रोंका भेदन कर सहस्रार—कैलासके शिवका साक्षात्कार कर परम पदमें स्थित हो जाता है। योगसाधनाके आधार मूलाधारस्थ श्रीगणेश हैं—

श्रीगणेशजी पूर्णानन्द, परानन्द, पुराण पुरुषोत्तम साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं—

'पूर्णानन्दः परानन्दः पुराणपुरुषोत्तमः॥'

(गणेशपु० २। १५। १०३)

उनमें योगस्थ होनेपर जीवात्माकी समस्त मायिक भ्रान्तियों और प्रपञ्चोंका अन्त हो जाता है। वे अव्यक्त हैं, परम ज्योतिःस्वरूप हैं एवं मायासे अतीत हैं। उनके योगध्येय स्वरूपका तात्त्विक विश्लेषण गणेशपुराणके उत्तरखण्ड (२। ३१। १४-१५) में मिलता है।

श्रीगणेशजी चिदानन्दस्वरूप और वेदोंके भी अगोचर हैं। वे निर्गुण और परब्रह्मस्वरूप योगप्रतिपाद्य परम तत्त्व हैं। उनकी संस्तुति है—

परब्रह्मस्वरूपाय निर्गुणाय नमो नमः।
चिदानन्दस्वरूपाय वेदानामप्यगोचरः॥

(गणेशपु० २। ३७। ४)

योगकी साधनाभूमिपर श्रीगणेशजी सत्, असत्, व्यक्त, अव्यक्त—सब कुछ हैं। ब्रह्माकी उक्ति है—

'सदसद् व्यक्तमव्यक्तं सर्वं हि गणनायकः॥'

(गणेशपु० १। १२। १)

श्रीगणेशजी इच्छा, ज्ञान, क्रिया—तीनों शक्तियोंमें व्याप्त हैं। वे मूलाधारचक्रमें स्थित हैं—

'त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः। त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम्।'

(गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद् ६)

सृष्टिके आदिमें आविर्भूत प्रकृति और पुरुषसे परे श्रीगणेशजीका जो नित्य ध्यान करता है, वह योगी सब योगियोंमें श्रेष्ठ है—

आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्।
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः॥

(गणपत्युपनिषद्)

मूलाधारचक्रमें योगियोंद्वारा गणेशका ध्यान किया जाता है। यह चक्र चार दलोंसे युक्त कमल है। इसका स्वर्ण-वर्ण है—

किं च हेमनिभे चक्रे मूलाधारे चतुर्दले।
गणेशोऽस्ति..................................॥

(शंकरदिग्विजय धनपतिसूरिकृत टीका १५। ३५०)

मूलाधारचक्रकी स्थिति और उसमें संस्थित इष्ट देवता श्रीगणेशका वर्णन प्रसिद्ध अघोरी संत बाबा कीनारामने भी किया है—'गणेशजीका वर्ण अरुण है, उनका ध्यान और दर्शन करनेवाला पण्डित—ज्ञानी हो जाता है—

मूलचक्र वश गूद मझारा। चारि पत्र जनु अगिनि अँगारा॥
ताहि कमल महँ योनि त्रिकोना। ता महँ पुरुष बसै गहि मौना॥
'रा' अक्षर जस दीपक जोती। तेहि महँ पुरुष कान्ति उद्योती॥
नाम गनेश अरुण तन सोई। ताहि लखत बड़ पण्डित होई॥
मानसिक पूजा तहवाँ कीजै। लडुवा धूप गनेशहि दीजै॥

(पोथी विवेकसार)

संत गरीबदासजीकी उक्ति है—

'मूलचक्र गनेस बासा रक्त बरन जहँ जानिये।'

श्रीगणेशजी योगियोंके हृदयमें सदा अधिष्ठित रहते हैं। आचार्य शंकरकी उक्ति है कि 'जिनकी दन्तकान्ति अत्यन्त रमणीय है, जिनका रूप अचिन्त्य है, जिनका अन्त नहीं है जो योगियोंके हृदयमें सदा अधिष्ठित हैं, मैं उन ... मृत्युंजयनन्दन, विघ्नविनाशक एकदन्त ... चिन्तन करता हूँ'—

नितान्तकान्तदन्तकान्तिमन्तकान्तकात्मजं
अचिन्त्यरूपमन्तहीनमन्तरायकृन्तनम्

धूम्रकेतु संकट-सुभन, सिद्धिसदन-गननाथ।
कृपा करिय मंगलकरन, मावौं नत पद माथ॥
(सत्यूणालंसा)

राजस्थानके श्रीराम रसभरित, अमृतमय काव्यप्रणेता श्रीअमृतलालजी माथुरने अपने 'श्रीमद्-राम-रसामृत' काव्यमे श्रीगणेशजीकी क्या ही सुन्दर वन्दना की है—

सुमति-भरन, मंगल-करन, सुमरन हरन-भव्राज।
विजय, सुजस, सुख-संचरन, नमो चरन गनराज॥
(अमृतसरसई १)

अन्तमे श्रीमिथिला-रस-मोद प्रमोद भरित, श्रीसीताराम विवाहोत्सवमे परमानन्द-रस-लहरी लहरानेवाले, अनन्य-अन्तरङ्ग भावना-विभोर भावुक भक्त श्रीमोदलताजीके द्वारा श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजीकी परमप्रिय मातृभाषा-मैथिलीमे सुरचित श्रीराम-नाम-निष्ठा, परिक्रमाके प्रचण्ड प्रताप एवं अपने अखण्ड आत्मविश्वासका दिग्दर्शक तथा श्रीगणेश गुणगानपरक एक मधुर पद देकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं—

ऐ उमा, महेश नन्दन।
देखने-देखते भेला जगत-वंदन॥
मुनितहि नामक निष्ठ कएकनि,
दए परदक्षिन कमिकए घएकनि;
माहिसँ भए गेलनि,
गनधिप-विघ्नबाधा-निकन्दन॥ १॥
कनि हमरा पर दृष्टि अपु,
हियमे भव्य-भाव भरपु,
करइ हरपु सकल,
भ्रम-भेदक फंदन॥ २॥
किछु चाहै छी प्रभु-गुन-गायक,
कहिऔन 'मोद'क उर मे भावक:
सत्पथ दरसावक,
समावक दंदन॥ ३॥

योगसाधनामें श्रीगणेशका स्वरूप-चिन्तन

अनन्त, अखण्ड, अव्यक्त, परम ज्योतिःस्वरूप तथा सर्वथा चिन्मय परमात्माकी सर्वव्यापिका अनुभव अथवा बोध ही 'योग' है। इस आध्यात्मिक रहस्यका परिशीलन भगवत्कृपा तथा सत्सङ्गसे ही सहज सम्भव है। श्रीगणेशजीको षट्चक्र-साधनायोगका आधार स्वीकार किया गया है। वे मूलाधार-चक्रमें संस्थित रहते हैं। इसी मूलाधार-चक्रसे कुण्डलिनीको जगानेकी साधना आरम्भ होती है। मूलाधारसे निम्न भागमें गोलाकार वायुमण्डल है। उसमें वायुका बीज 'य'कार स्थित है। उस बीजसे वायु प्रवाहित होती है। उससे ऊपर अग्निका त्रिकोणमण्डल है। उसमें अग्निके बीज 'र'कारसे आग प्रकट होती है। वायु तथा अग्निके साथ मूलाधारमें स्थित कुल-कुण्डलिनी सोयी हुई सर्पिणीके आकारवाली है। वह स्वयम्भूलिङ्गको आवेष्टित करके सोती है। उसे जगाकर ब्रह्मरन्ध्रतक ले जाया जाता है तथा वहाँके अमृतमें निमग्नकर आत्मचिन्तन किया जाता है, ऐसा वर्णन नारदपुराणके पूर्व-भागके ६५वें अध्यायमें मिलता है। मूलाधारचक्र—आधारपद्मका ध्यान करनेपर योगीका पाप-समूह नष्ट हो जाता है।

मूलपद्मं यदा ध्यायेद् योगी स्वयम्भूलिङ्गकम्।
तदा तत्क्षणमात्रेण पापौघं नाशयेद् ध्रुवम्॥
(शिवसंहिता ५। ९६)

दूसरा चक्र स्वाधिष्ठान है। स्वाधिष्ठान-कमलके ध्यानसे योगी दिव्य सौन्दर्यसे सम्पन्न हो उठता है। तीसरे मणिपूर-चक्र-कमलके ध्यानसे योगीकी सारी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। वह घोर-रोगपर विजय पाता है। अनाहतचक्र-कमल चौथा है; इसके ध्यानसे योगी त्रिकालज्ञ होता है। पाँचवें विशुद्ध-चक्र-कमलके ध्यानसे वह वेदज्ञ बन जाता है। इस चक्रका ध्यानी जब क्रोधयुक्त नेत्रसे विश्वको देखता है, तब त्रिलोकीको प्रकम्पित कर देता है। छठे आज्ञाचक्र-कमलके ध्यानसे योगी साक्षात् विश्वनाथका दर्शन करता है और दुःख शोकसे मुक्त हो जाता है—

'दुमात् परमहंसोऽयं यज्ञात्वा नावसीदति॥'
(शिवसंहिता ५। १३०)

योगी उपर्युक्त चक्र-कमलोंका ध्यान करते हुए ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित सहस्रार पद्मसे प्रवाहित अमृतका पान करता है। यह दिव्य सहस्रार-पद्म मुक्ति प्रदान करता है। इसका नाम 'कैलास' है। कुण्डलिनी—जीवशक्तिको जाग्रत् करते हुए आत्मा चैतन्य जीव इस कैलासमें शिवका साक्षात्कार कर अमरपदमें प्रतिष्ठित हो जाता है—

अत ऊर्ध्वं दिव्यरूपं सहस्रारं सरोरुहम्।
ब्रह्माण्डाख्यस्य देहस्य बाह्ये तिष्ठति मुक्तिदम्॥

[illegible]की एकता—अभिन्नताका प्रतिपादन करती है। [illegible]युक्त श्लोकके भाष्यमें महामति नीलकण्ठका स्पष्टीकरण है—

'[illegible]दृशीं योगामृतमयीम्। ब्रह्मात्मैक्यप्रतिपादकं शास्त्रं [illegible]वचनम्।' गणेशगीतामें योग वही है, जिसके द्वारा ज्ञानी [illegible]से विरक्त होते हैं। जीवन्मुक्त होकर ब्रह्मानन्दपदमें [illegible] ही ज्ञानयोगी हृदयमें स्थित परब्रह्मका दर्शन करते हैं। [illegible]योगसे वशीभूत चित्तमें परब्रह्मका ध्यान करते हैं और [illegible]पूर्ण प्राणियोंको आत्मवत् समझते हैं—

ध्यायन्तः परमं ब्रह्म चित्ते योगवशीकृते।
भूतानि स्वात्मना तुल्यं सर्वाणि गणयन्ति ते॥

(श्रीगणेशगीता १। १६)

गणेशजी योगसाधनाकी पद्धति यों प्रकट करते हैं कि 'योगी-[illegible] उचित है कि वह मनसे समस्त कर्मोंका त्याग कर सुखसे [illegible]न यापन करे'—

'मनसा सकलं कर्म त्यक्त्वा योगी सुखं वसेत्।'

(श्रीगणेशगीता ४। १२)

उपर्युक्त श्लोकके भाष्यमें नीलकण्ठका कथन है—

'योगी—यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान-[illegible]समाधिरूपैरष्टभिरङ्गैर्युक्तो योगोऽस्यास्तीति योगी। अतएव [illegible]मनसा सह सकलं कर्माहं ब्रह्मेतिवाक्यार्थानुसंधानमपि त्यक्त्वा [illegible]ज्ञातसमाधिस्थः सम्सुखमखण्डानन्दमनुभवन् वसेत्।'

गणेशजीने सुखकी व्याख्यामें कहा कि 'जो अपनी आत्मामें रमण करते हैं और कहीं भी आसक्त नहीं हैं, वे ही आनन्दका भोग करते हैं; यही अविनाशी सुख है, विषयोंमें सुख नहीं। जो योगी मुझ परमात्मामें ही रमण—सुख-आनन्दका अनुभव करते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं। देह रहते भी वे अदेह अथवा विदेह हैं। ऐसे योगी तीनों लोकोंमें ब्रह्मादिकों तथा देवताओंके वन्दनीय हैं'—

आनन्दमश्नुतेऽसक्तः स्वात्मारामो निजात्मनि।
अविनाशि सुखं तद्धि न सुखं विषयादिषु॥
जीवन्मुक्तः स योगीन्द्रः केवलं मयि संगतः।
ब्रह्मादीनां च देवानां स वन्द्यः स्याज्जगत्त्रये॥

(श्रीगणेशगीता ४। २१; ५। १८)

निस्संदेह योगप्रतिपाद्य श्रीगणेश परम शक्ति—चिन्मय ज्योति हैं। वे आकाश और वायुरूप हैं, विकारोंके आदि-कारण, कला और कालके उत्पत्ति-स्थान हैं, अनेक क्रिया और शक्तिके स्वरूप हैं—

प्रकाशस्वरूपं नभोवायुरूपं
विकारादिहेतुं कलाकालभूतम्।
अनेकक्रियानेकशक्तिस्वरूपं
सदा शक्तिरूपं गणेशं नमामः॥

(गणेशपुराण, उपा० १३। ११)

निस्संदेह—गणेशजी योगियोंके परम ध्येय हैं। वे योगशास्त्रके तत्त्वज्ञ और योगप्राप्य ब्रह्म हैं।

—रामलाल

श्रीगणेश—ऐश्वर्यदाता एवं संरक्षक

[illegible]नैकदन्तखण्डः सकलसुरगणाडम्बरेषु प्रचण्डः सिन्दूराकीर्णगण्डः प्रकटितविलसच्चारुचान्द्रीयखण्डः।
[illegible]स्यानन्तषण्डः स्मरहरतनयः कुण्डलीभूतशुण्डो विघ्नानां कालदण्डः स भवतु भवतां भूतये वक्रतुण्डः॥

जिनके एक हाथमें दाँतका खण्ड (टुकड़ा) उद्दीप्त हो रहा है, जो समस्त देवगणोंकी मण्डलीमें प्रचण्ड हैं, [illegible]के गण्डस्थलमें सिन्दूरका रंग फैला हुआ है, भालदेशमें प्रकट मनोहर चन्द्रखण्ड शोभा पाता है, कपोलोंपर अनन्त [illegible]र मँडरा रहे हैं, जिन्होंने अपने शुण्डको कुण्डलाकार (गोल) कर लिया है तथा जो विघ्नोंके लिये कालदण्ड हैं, वे [illegible]कामारि शिवके पुत्र वक्रतुण्ड आपलोगोंके लिये कल्याणकारी एवं ऐश्वर्यदाता हों।

विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाड् विघ्नव्यालकुलाभिमानगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः।
विघ्नोत्तुङ्गगिरिप्रभेदनपविर्विघ्नाम्बुधौ वाडवो विघ्नाघौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु वः॥

वे विघ्नेश्वर आपलोगोंकी रक्षा करें, जो विघ्नान्धकारका निवारण करनेके लिये एकमात्र सूर्य हैं, [illegible]विघ्नरूपी वनको जलाकर भस्म करनेके लिये दावानलरूप हैं, विघ्नरूपी सर्पकुलके अभिमानको चूर्ण करनेके लिये गरुड़ [illegible]विघ्नरूपी गजराजको पछाड़ देनेके लिये सिंह हैं, विघ्नोंके ऊँचे पर्वतका भेदन करनेके लिये वज्र हैं, विघ्न-समुद्रके [illegible]वडवानल हैं तथा विघ्न एवं पाप समूहरूपी मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न करनेके लिये प्रचण्ड पवन हैं।

बौद्ध धर्म, साहित्य एवं संस्कृतिमें श्रीगणेश

(लेखक—श्रीअक्षयवरमणिजी त्रिपाठी, एम्० ए०, बी-एड०, आचार्य)

बौद्ध धर्म, साहित्य, संस्कृति एवं साधनाने लङ्का, ... मलयद्वीप, सुमात्रा (स्वर्णद्वीप), जावा, बालीद्वीप, ... चीन, अफगानिस्तान, कोरिया, जापान, ... मंगोलिया, नैपाल, मेसोपोटामियाँ और मलाया प्रभृति ... बहुत बड़े भू-भागको प्रभावित किया है। मानव-... इतने बड़े भू-भागपर बौद्धधर्मके सफलतापूर्वक ... रहस्य यह है कि बुद्धका जोर 'शील', ... और 'प्रज्ञा'पर था। शीलमें अवैर (मैत्रीभाव) ... प्रधानता दी गयी है। अवैरके लिये वैरके सभी ... छोड़ना पड़ता है। बुद्ध और उनके शिष्योंने इस ... प्रचार केवल मौखिक ही नहीं किया, अपितु इसको ... कार्यप्रणालीका भी एक अङ्ग बना लिया। बुद्ध और ... शिष्य अपने विचारोंको तो श्रेष्ठ मानते थे, लेकिन ... हठात् दूसरोंके ऊपर लादनेका प्रयास वे नहीं करते ... वे इस मनोविज्ञानको जानते थे कि ज्ञान समझानेसे ... मस्तिष्कमें प्रविष्ट होता है, बलात्कारसे नहीं। ... धर्मके प्रचारार्थ बौद्धोंने कभी बलात्कार करनेकी ... नहीं की। धर्मोंके इतिहासमें यह अद्वितीय ... है। बौद्धोंने अपने विचारोंके प्रचारार्थ जिस मार्ग-... अनुसरण किया, वह था—'समझा-बुझाकर विचारोंमें ... लाना।' प्रत्येक देश, जाति एवं समाजकी अपनी ... संस्कृति होती है, जिसका सम्बन्ध मनुष्यके विचारोंसे ... प्रकार होता है, जिस प्रकार चेतन आत्मा और स्थूल ... शरीरका। मानव-मनकी इसी विशेषताको जानकर बौद्ध-... जिस देशमें गया, वहाँकी भाषा और संस्कृतिमें उसने बहुत ... परिवर्तनका प्रयास नहीं किया; अपितु उन्हींकी भाषा, ... एवं संस्कारोंपर बौद्धधर्मका लेप कर दिया। अपनी-... भाषामें बुद्ध-वचनोंको सीखनेकी सुविधा भी प्रदान ... दी। यहाँतक कि उस देश और जातिमें पूर्व-... प्रचलित देवी-देवताओंका विरोध नहीं किया, अपितु उनको ... सम्मान प्रदान करके अपने धर्मका अङ्ग बना लिया। ... उदाहरणार्थ—भारतमें बौद्धोंने श्रीगणेश, इन्द्र, ब्रह्मा, ... प्रजापति, सूर्य, चन्द्रमा, पर्जन्य (वरुण), ... (श्री), श्रद्धा, आशा, लोकपाल, चतुर्महाराजिकदेव, ... महाराज, यक्ष, नाग, वृक्ष-पूजा, गन्धर्व, गरुड़, वृषभ और कुबेर इत्यादि देवी-देवताओंको ज्यों-का-त्यों मान लिया। सभी बौद्ध ग्रन्थोंमें इन देवी-देवताओंका वर्णन सादर किया गया है। अतः बौद्धोंके द्वारा 'हमारे देवता-तुम्हारे देवता'का झगड़ा ही नहीं उत्पन्न हुआ। विचार बौद्ध, परंतु रूप राष्ट्रीय रखना उनकी कार्य प्रणाली का एक अङ्ग था। इस प्रकार संघर्षके एक जबरदस्त कारण का हल बौद्धोंने निकाल लिया।

भारतीय देववाद तो विश्वमें प्रसिद्ध ही है। इन देवी-देवताओंकी लंबी सूचीमें श्रीगणेशका विशेष महत्त्व है। भारतके सभी हिंदू लेखक अपनी रचना 'श्रीगणेशाय नमः'से ही प्रारम्भ करते हैं। बच्चोंका विद्यारम्भ-संस्कार भी 'हरिः गणपतये नमः' लिखवाकर ही किया जाता है। दक्षिणी भारतमें तो इसका विशेष प्रचलन है। पुरातात्त्विक महत्त्वके स्थानोंकी खुदाईसे 'श्रीगणेश'की जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, उनसे यह प्रमाणित होता है कि 'श्रीगणेशपूजा'की परम्परा बौद्धकालके बहुत पूर्वसे भारतके कोने-कोनेमें प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त विश्वके सभी बौद्ध-राष्ट्रोंमें भी 'श्रीगणेश'की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। अतः 'श्रीगणेश' विश्व देवालयके एक प्रमुख देवता हैं। बौद्ध महायान-सम्प्रदायकी वज्रयान शाखाके साधकोंने तो 'श्रीगणेश'को अपनी साधनाकी सिद्धिके लिये एकमात्र सहायक मान लिया।

'गणपति-हृदय'में श्रीगणेश

'गणपति-हृदय' नेपाली बौद्ध-साहित्यका एक प्रमुख ग्रन्थ है। इस ग्रन्थरत्नमें गणपति अर्थात् 'गणेश'की वन्दनाको देखनेके बाद प्रत्येक प्रज्ञावान् पुरुष यह निर्णय ले सकता है कि बौद्ध धर्म एवं साहित्यमें ... पूजाका विशेष स्थान है। इस ग्रन्थके अनुसार—एक ... जब भगवान् तथागत बुद्ध राजगृहमें विहार कर रहे थे, उ... समय वे स्वयं आनन्दसे कहते हैं—हे आनन्द! जो गणपति-हृदयको श्रद्धासे पढ़ता और सुनता है, वह ... अपनी इच्छाओंको पूरा कर लेता है।' इस ग्रन्थके ... मन्त्र निम्न वाक्योंसे प्रारम्भ हुए हैं—

जैन-मतमें गणेशका स्वरूप

(लेखक—श्रीताराचन्दजी पाण्ड्या)

'गणानाम्' (अथवा गणस्य) अर्थात् साधुगण—जनगणके ईश (नियामक या नेता) को 'गणेश' कहते हैं। आजकलके माने गये शब्दार्थमें लोकतन्त्रके सर्वमान्य या बहुमान्य नेताको भी हम 'गणेश' मान सकते हैं। 'संघे शक्तिः कलौ युगे'—इस दृष्टिसे लोकतन्त्रका या लोकमान्यताका समर्थन प्राप्त करनेसे विघ्नोंका नाश हो जाता है।

महाभारतकी रचना तो वेदव्यासजीने अपने मनमें कर ली, लेकिन उसे लिपिबद्ध करने—बाह्यरूप देनेका कार्य गणेशजीने किया और वे बिना अर्थ समझे लिपिबद्ध करते नहीं थे। अतः ज्ञानके संकलनका कार्य भी गणेशजी करते थे।

गणेशजीके सिरपर गज-मस्तक है, अर्थात् सब तरहका ज्ञान है; लेकिन दन्त एक ही है। इसका भाव यह है कि 'ज्ञान नाना अपेक्षात्मक होनेपर भी उद्देश्य-सिद्धि तो एक अपेक्षाको ही मुख्य कर कार्य करनेसे होती है, अन्यथा अनिश्चयात्मा (संशयात्मा) नष्ट हो जाता है।' मूषकवाहन यह इंगित करता है कि 'सूक्ष्म तर्क वितर्क करके विश्लेषण करनेसे ज्ञान प्राप्त होता है।' इसी प्रकार उनके स्वरूपके विभिन्न अङ्गों आदिके अर्थ ग्रहण किये जा सकते हैं।

जैन धर्ममें ज्ञानका संकलन करनेवाले 'गणेश' अर्थात् 'गणधर'की मान्यता है। केवलज्ञान (सर्वज्ञता) को उपलब्ध करनेपर अरहन्त (तीर्थंकरों) का उपदेश प्रायः गणधरके निमित्तसे ही होता है—गणधर ही उसका मुख्य पात्र होता है और वे ही उस ज्ञानका बारह अङ्गों और चौदह पूर्वोंमें संकलन करते हैं। वे मति, श्रुत, अवधि (परोक्ष बातोंका सीमासहित प्रत्यक्ष ज्ञान) और दूसरेके मनकी बातोंको प्रत्यक्ष जाननेवाला मनःपर्यय-ज्ञान—इन चार प्रकारके ज्ञानवाले होते हैं। तीर्थंकर तो किसीको शिष्य बनाते नहीं, किसीको दीक्षा आदि देते नहीं हैं। तीर्थंकरोंके साथ जो साधुओंका संघ रहता है, उसके नियामक गणधर होते हैं; क्योंकि तीर्थंकर अनादि कालसे होते आये हैं और अनन्त कालतक होते रहेंगे, इसलिये गणधर भी अनादि सिद्ध हैं और अनन्त कालतक होते रहेंगे।

जैन-मान्यताके अनुसार वर्तमान कल्पके अन्तिम तीर्थंकर श्रीमहावीरस्वामीको केवलज्ञान होनेपर उनकी 'दिव्य-ध्वनि' (उपदेश) सुननेके लिये समवशरण (दिव्य-सभा-भव शचीपतिसहित देव, मनुष्य, पशु, पक्षी बैठे रहे, योग्य पात्रके अभावमें भगवान्की दिव्य ध्वनि ६६ दि नहीं खिरी। शचीपति इन्द्र इसका कारण विच उस कालके महाविद्वान् एवं पाँच सौ शिष्योंवाले इन्द्र गौतमको श्रीमहावीरस्वामीसे शास्त्रार्थ करनेके बहाने आये। समवशरणके बाहर स्थित 'मानस्तम्भ'के द गौतमका अभिमान गलित हो गया और वे विनयशील गये, तब वे समवशरणके अंदर प्रविष्ट हुए। उ प्रविष्ट होते ही श्रीमहावीरस्वामीकी दिव्य ध्वनि खि लगी और गौतमके मनकी शङ्काओंका समाधान हो ग निर्मल भावोंके फलसे वे उसी समय बुद्धि, औषध, अ ऊर्ज, रस, तप और विक्रिया—इन सात प्रकारकी अ शक्तियों (ऋद्धियों) एवं चार प्रकारके ज्ञानके धारी गये और वे ही महावीरस्वामीके मुख्य 'गणधर' बने अ उन्होंने उसी दिन एक ही मुहूर्तमें भगवान्के उपदेश १२ अङ्ग और १४ पूर्वोंके रूपमें संकलन किया। जै मतमें इन्हीं गौतम-गणधरको 'गणेश' माना जाता है।

सभी तीर्थंकरोंकी भाँति महावीरस्वामीकी भी दिव्य ध्वनि 'ॐकार' रूप एवं निरक्षरात्मक होनेपर भी सर्वभाषा मयी थी; अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब श्रोतागणोंकी श्रवणेन्द्रियमें पहुँचनेपर वह उन-उनकी भाषामें परिणत हो जाती थी और उस दिव्य ध्वनिमें समस्त विश्वके सभी पदार्थों एवं विषयोंका शाब्दिक (अक्षरात्मक) ज्ञान विज्ञान, सभी विद्याएँ एवं कलाएँ प्रकट होती थीं। अतः 'गणधर' द्वारा संकलित शास्त्र भी सभी विषयों, पदार्थों, विद्याओं एवं कलाओंके शाब्दिक ज्ञान-विज्ञान रूप थे। यह सही है कि सर्वज्ञके सम्पूर्ण ज्ञानका अति अल्प अंश ही उसकी दिव्य ध्वनिद्वारा प्रकट हो सकता था और उसके भी अति अल्प अंशका ही संकलन शाब्दिकरूपमें अर्थात् अक्षरात्मक शास्त्ररूपमें प्रकट किया जा सकता था; (क्योंकि भाव ज्ञान तो असीम-अनन्त है, जब कि अक्षरात्मक एवं शाब्दिक ज्ञान सीमित ही होता है) लेकिन वह अति अल्प अंशका शाब्दिक ज्ञान भी सुविशाल ज्ञान विज्ञानका महासागर है, जो सामान्य जनोंके लिये तो असीम ही है। इससे 'गणधर'के भी ज्ञानका अथाहपना सूचित होता है।

'ॐ नमोऽस्तु ते गणपतये स्वाहा, ॐ गणपतये स्वाहा ।' इस ग्रन्थकी कुछ प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं— 'ॐ नमो भगवते आर्यगणपतिहृदयाय । ॐ नमो रत्नत्रयाय । एवं मया श्रुतमेकस्मिन् समये राजगृहे विहरति स्म गृध्रकूटपर्वते महता भिक्षुसंघेन सार्धं त्रयोदशभिक्षुशतैः सम्बहुलैश्च बोधिसत्त्वो महासत्त्वः। तेन खलु पुनः समये भगवान् आयुष्मानानन्दमामन्त्रयते स्म । यः कश्चित् कुलपुत्र आनन्द ! इमानि गणपति-हृदयानि धारयिष्यति वाचयिष्यति पर्यवाप्स्यति प्रवर्तयिष्यति तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धानि भविष्यन्ति। तद्यथा—ॐ नमोऽस्तु ते गणपतये स्वाहा ।' इत्यादि । इस ग्रन्थके अन्तमें लिखा है—

'इदमवोचद् भगवानानन्दमनास्ते च बोधिसत्त्वाश्च सर्वावती पर्षद् सदेवमानुषासुरगरुडगन्धर्वाश्च लोका भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्निति ।'

और ग्रन्थकी समाप्ति की गयी है, निम्नवाक्योंके साथ—

'आर्यगणपतिहृदयनाम-धारणी समाप्ता'

बौद्धधर्मके वज्रयान-शाखावालोंका तो यहाँतक विश्वास है कि 'श्रीगणेश'की स्तुतिके बिना मन्त्रोंकी सिद्धि हो ही नहीं सकती । बौद्धोंने शाक्यमुनि गौतमबुद्धका गर्भ-प्रवेश भी हाथीके शरीरके रूपमें करवाया है । यही बीज 'गणेश-पूजा' रूपी विशाल वटवृक्षकी टहनियोंकी तरह बौद्ध-धर्मकी सभी शाखाओंमें दूर-दूरतक फैला हुआ दृष्टिगोचर होता है । नेपाली एवं तिब्बती वज्रयान बौद्ध-सम्प्रदायवालोंके घर-घरमें तथागतकी मूर्तिके साथ-साथ श्रीगणेशकी मूर्ति भी रहती है । ये बौद्ध लोग गणेशकी पूजा विघ्नविनाश एवं ऐश्वर्यकी वृद्धिहेतु करते हैं । डा० राजेन्द्रलाल मैत्रने अपने ग्रन्थ 'The Sanskrit Buddhist Literature of Nepal' और एच० हेरासने अपनी पुस्तक 'The Problem of Ganapati' में ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक साक्ष्योंके आधारपर बौद्धतन्त्रमें 'श्रीगणेश'के एक महत्त्वपूर्ण स्थानका उद्घाटन किया है।

बौद्ध राष्ट्रोंमें 'श्रीगणेश'

नेपाल, बर्मा, थाईलैंड, तिब्बत, अफगानिस्तान, कम्बोडिया, चीन, स्याम, कम्बोडिया, तुर्किस्तान, मंगोलिया, तथा समुद्रपारके देशों—जापान, इंडोनेशिया, जावा, बोर्नियो और बालिद्वीप प्रभृति तमाम शुद्ध बौ[द्ध] धर्म, साहित्य एवं साधनामें भी 'श्रीगणेश-पूजा'का [...] स्थान है । इन बौद्ध राष्ट्रोंमें श्रीगणेश-पूजाकी प्राच[ीन] परम्पराका ज्ञान उन राष्ट्रोंमें प्राप्त पुरातात्त्विक एवं सामग्रियोंसे प्रमाणित होता है ।

जापानसे प्राप्त कई मुद्राओंसे श्रीगणेशकी मूर्तिय[ाँ] भी 'ब्रिटिश म्यूजियम'में सुरक्षित हैं । नेपालके काठ[मांडू] नामक शहरमें निर्मित अनेक बौद्ध-मन्दिरोंमें भगवान् [बुद्धकी] मूर्तिके साथ-साथ 'श्रीगणेश'की भी मूर्तियाँ कई [...] सुरक्षित हैं । कहते हैं कि महान् बौद्ध सम्राट् अशोककी पुत्रीने नेपालमें अनेक बौद्ध-मन्दिरोंका निर्माण [...] और उनमें स्वयं अपने हाथोंसे 'श्रीगणेश'की मू[र्ति] स्थापित की । चीनी बौद्ध-साहित्यके अध्ययनसे ज्ञात [होता] है कि ५ वीं और ८ वीं शताब्दीके मध्य चीनने भा[रतसे] बहुत कुछ लिया । उदाहरणार्थ प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहि[यान] जब ५ वीं शताब्दीमें भारतसे चीन वापस गया तो [...] 'श्रीगणेश'-पूजाकी परम्परा और अनेक मूर्तियाँ अपने [...] ले गया । महायानी बौधग्रन्थोंमें 'श्रीगणेश'-सम्ब[न्धी] अनेक छोटी-छोटी परम्परागत दन्तकथाओंका वर्णन [...] है । बौद्ध साहित्यमें श्रीगणेशसे सम्बन्धित दन्तकथाएँ [...] दृष्टिगोचर होती हैं तो यह विश्वास हो जाता है कि बौ[द्ध] धर्म एवं साधनामें 'गणेश पूजा'का बहुत महत्त्व है । नेपाल[में] मंजुश्री नामक एक बुद्ध-मूर्तिके समीप ही 'श्रीगणेश'[की] मूर्ति आज भी स्थापित है । भगवान् बुद्धके धर्मचक्रप्रवर्तन-स्थान सारनाथ (वाराणसी) की खुदाईमें 'श्रीगणेश' औ[र] 'कार्तिकेय' की मूर्तियाँ मिली हैं, जो परिनिर्वाणमुद्रामें सो[ये] हुए भगवान् गौतमबुद्धकी सेवा कर रहे हैं । लङ्का[के] 'मन्तक चेतया' स्तूपके पास दो हाथोंवाली 'श्रीगणेश'की मूर्ति आज भी स्थापित है । इससे प्रमाणित होता है कि 'श्रीगणेश'ने महायान बौद्धोंकी सीमासे बाहर जाकर लङ्का-जैसे बौद्धदेशमें भी प्रवेश किया है । 'कल्पद्रुमावदानम्' एक महायानी मिश्रित संस्कृतका ग्रन्थ है । इसमें श्रीगणेशस्तुति सम्बन्धी एक कथा आयी है, जो इस प्रकार है—श्रावस्तीके एक वणिक्-पुत्रने, जो बौद्ध उपासक था, व्यापारके लिये अपने साथियोंके साथ 'रत्नाकर द्वीप'के लिये प्रस्थान किया । उसकी नाव कुछ ही दिनोंके बाद एक तूफानसे टकराकर डूब गयी । उसने अपने प्राणरक्षार्थ उस समयके समाजमें मान्यताप्राप्त अनेक देवी-

श्रीज्ञानेश्वरमहाराजकी गणेश-भावना

(लेखक—ह० भ० प० श्रीधुंडा महाराजजी देगलूरकर)

…के प्रसिद्ध संत श्रीज्ञानेश्वरमहाराजने श्रीमद्भगवद्-
…टी भाषामें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सारगर्भित एवं
…ा लिखी है, जिसका विद्वानोंमें और साधकोंमें
…दर है। महाराष्ट्रमें वारकरी भक्त और अन्य
…क भी नियमसे इस ग्रन्थका पारायण वैयक्तिक
…क रूपसे करते हैं। इस टीका ग्रन्थ 'ज्ञानेश्वरी'के
…विस्तृत मङ्गलाचरण है। ग्रन्थके आरम्भमें मङ्गल-
…ना अनादिकालीन शिष्टाचार है, जिससे ग्रन्थ-
…कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो सके। मङ्गलाचरणमें श्री-
…महाराजने श्रीगणेशभगवान्का ही स्मरण किया है।
…श्रीतुलसीदासजीने भी रामचरितमानसके आरम्भमें
…ी ही नमन किया है, जिससे कार्यके मध्यमें आनेवाले
…घ्न शान्त हो जायँ।

…निषदोंमें तथा गीतामें निर्गुण-निर्विशेष परब्रह्मके
…रूपमें प्रणवका वर्णन आया है। उस प्रणवका
…करनेके बाद श्रीज्ञानेश्वरमहाराज उसी प्रणवसे
…श्रीगणेशजीकी एकात्मताकी स्थापना अपने मङ्गला-
…करते हैं। वे कहते हैं—हे ओंकार! आप आद्य
…नारका प्रतिपादन करते हैं; आप आत्मस्वरूप हैं;
…ज्ञान केवल अनुभवसे हो सकता है; आप ही श्रीगणेश
…णीकी बुद्धिके प्रकाशक हैं। आपको प्रणाम है।'

> ॐ नमो श्रीआद्य । वेदप्रतिपाद्य ।
> जय जय स्वसंवेद्य । आत्मरूप ॥ १ ॥
> देव तू ही श्रीगणेश । सकल मति प्रकाश ।
> म्हणे निवृत्तिदास । अवधारिजो जी ॥ २ ॥*

…ई भी उपासक अपने उपास्यकी मूर्ति अपनी भावना,
…तथा शक्तिके अनुसार ताम्र, रजत, सुवर्ण आदि
…ि या स्फटिक, प्रवाल, रत्न, शिला, काष्ठ, मृत्तिका
…वस्तुओंसे बनाता या बनवाता है। श्रीज्ञानेश्वर महाराजने
…वैसी मूर्ति ही बनायी तो सामान्य उपासकोंमें और उनमें
…द रहेगा? उन्होंने श्रीगणेश-मूर्तिका आकार तो 'एकदन्तं
…र्भं पाशमङ्कुशधारिणम्' ऐसा ही रखा है; परंतु

उनकी मूर्ति-निर्माणकी सामग्री स्थूल नहीं, सूक्ष्म है।
गणपत्यथर्वशीर्षका 'त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयः।' (४)
'त्वं चत्वारि वाक्पदानि' (५) सूत्र लेकर श्रीज्ञानेश्वर
महाराजने शब्दब्रह्मस्वरूप श्रीगणेश-मूर्तिका निर्माण किया
है। प्रणव, जो ब्रह्मस्वरूप है तथा वेद और वाणीका
मूल है, उसकी आकृति ॐ ही भगवान् श्रीगणेशकी साकार
मूर्ति है। प्रणवको 'तू' कहकर सम्बोधन करना और स्पष्ट
शब्दोंमें प्रणवको गणेश कहना यह सिद्ध करता है कि सम्पूर्ण
सत्य श्रीज्ञानेश्वरमहाराजको पूर्णतः प्रत्यक्ष है। इस वर्णनमें
साहित्य और तत्त्व-ज्ञानका योग्य समन्वय दिखायी देता है।
अखिल 'शब्दब्रह्म' श्रीगणेशजीकी सुन्दर और सुखदवाली मूर्ति
है। शब्द-ब्रह्ममें जो निर्दोष वर्ण-रचना है, वही उनका सौन्दर्य
है। वेदस्वरूप निर्दोष है, इस कारण शब्दब्रह्मरूप श्रीगणेशके
स्वरूपको निर्दोष कहा है। स्वरूप निश्चयके पश्चात् मङ्गलाचरणमें
श्रीगणेशजीके पृथक् अवयवोंका विचार किया गया है।
वाङ्मय कहनेसे उसमें वेद, स्मृति, पुराण, षड्दर्शन, वार्तिक,
काव्य-नाटकादि—सबका समावेश होता है। परंतु किस अङ्गमें
किसकी योजना उचित है, उसका क्रम बड़ी योग्यतासे बताया
गया है। श्रुतियोंके पश्चात् स्मृतियोंका क्रम आता है, जिनमें
वर्णाश्रम धर्म, सामान्य-विशेष धर्म, शौचाशौच विचार,
प्रायश्चित्त और आपद्धर्मादि विषयोंका विस्तृत विचार किया
गया है। स्मृतियाँ ही श्रीगणेशजीके विभिन्न अवयव हैं और
उनका अर्थ-सौन्दर्य ही श्रीगणेशजीका लावण्य है—

> शब्द-ब्रह्म यह अशेष । वही है जो मूर्ति सुवेष ।
> वहाँ वर्ण भी है निर्दोष । सजाया जो ॥ ३ ॥
> स्मृति ही है अवयव । रेखाएँ अङ्गके भाव ।
> लावण्य रूप-वैभव । अर्थ शोभा ॥ ४ ॥

आभूषण अङ्गके सौन्दर्यको अत्यधिक बढ़ा देते हैं।
पुराण-साहित्य ही आभूषणस्थानीय है। पुराणोंने श्रुति-
प्रतिपादित गूढ़ार्थपर अधिक प्रकाश डाला है, इस कारण
पुराणोंको मणिजटित आभूषणोंसे उपमा दी गयी है—

> अठारह जो पुराण । वही हैं मणि भूषण ।
> पदपद्धति खोदना । छन्द रत्नका ॥ ५ ॥

अब श्रीगणेशजीके वस्त्रका वर्णन करते हैं—

* ज्ञानेश्वरी हिंदी (पद्यरूप), अनुवादक, श्रीरघुनाथ कुलकर्णी,
…क, गीता साहित्य-सदन, पहुरी (ज० म०)

पदबन्ध है वसन। रँगाया अति महीन।
साहित्य शोभायमान। किनारी है ॥ ६ ॥

शब्द-ब्रह्मस्वरूप साहित्यमें जो रचना-कौशल है, वही सुन्दर और चमकीला रंगीन वस्त्र है। उस रचनामें अनेकविध जो शब्दालंकार और अर्थालंकार हैं, वे ही उस वस्त्रके सूक्ष्म और चमकीले तन्तु हैं। साहित्यमें जो काव्य नाटकादिकोंका भी समावेश है, उनकी योजना शब्दब्रह्मस्वरूप श्रीगणेशके चरण युगलमें मञ्जुल ध्वनि करनेवाले नूपुरोंके स्थानपर की है—अनेक तत्त्वोंका निरूपण विलक्षण-निपुणता तथा शुभ लक्षण उचित वचन रत्नके समान दीखते हैं।

मानो है काव्य-नाटक। सोचनेसे सकौतुक।
पदकी क्षुद्र घंटिका। अर्थ ध्वनि ॥ ७ ॥
अनेक तत्त्वोंका निरूपण। उसका नैपुण्य विलक्षण।
उचित वचन सुलक्षण। दीखे रत्न सम ॥ ८ ॥

श्रीगणेशकी कमरमें बँधा हुआ एक उपरत्न होता है, उसको 'मेखला' कहते हैं। व्यास-वाल्मीकि आदि महाकवियोंकी बुद्धिकी प्रतिभा अद्वितीय है। वही मेखला स्थानीय है—

व्यासादिकोंका शुद्ध ज्ञान। शोभता मेखला समान।
उसकी दशा है महीन। झलकती सदा ॥ ९ ॥

शब्द-ब्रह्मस्वरूप श्रीगणेशजीके कर-कमलका स्वरूप दिखाते हुए श्रीज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—

कहलाते जो षड्दर्शन। जैसे भुजदंड महान्।
तभी है असंगतपूर्ण। आयुध करमें ॥ १० ॥

षड्दर्शनोंकी हाथके स्थानपर योजना की है। जैसे भारतीय आस्तिक-दर्शन छः हैं, वैसे ही भगवान् श्रीगणेशके छः हाथ हैं। यहाँ 'आस्तिक'का अर्थ है—वेदोंके अस्तित्व और महत्त्वको स्वीकार करनेवाले। हमलोग चतुर्भुज गणेशकी वन्दना करते हैं; किंतु त्रेतायुगमें अवतरित श्रीगणेशजीके छः हाथ हैं। ये छः दर्शन-शास्त्र ही छः हाथ हैं।

षड्दर्शनोंमें प्रत्येक दर्शनके प्रमाण प्रमेय-विचार स्वतन्त्र हैं। ये भिन्न-भिन्न विचाररूपी आयुध ही भिन्न-भिन्न हाथोंमें सुशोभित हैं। कहा है—

तर्क ही है परशु। नीति भेद अङ्कुश।
वेदान्त महारस। शोभता मोदक ॥ ११ ॥

तर्कको परशु (कुल्हाड़ी) कहा है। न्यायदर्शनमें तर्ककी प्रधानता है। गौतमप्रणीत न्यायदर्शनरूपी हाथमें तर्करूपी परशु आयुध है। वैशेषिक-दर्शनरूपी हाथमें नीति-भेदरूपी अङ्कुश है। श्रीगणेशजीके एक हाथमें मोदक रहता है। वेदान्तको महारसरूप मोदक माना गया है।

एक हाथमें है दन्त। स्वभावसे ही खण्डित।
जो बौद्धमत संकेत। वार्तिकोंका ॥ १[illegible]

श्रीगणेशजीके एक हाथमें खण्डित दन्त रहता है। [illegible] टूटा हुआ दन्त बौद्धमतके समान है, जिसका खण्[illegible] श्रीकुमारिलभट्टने अपने 'श्लोक वार्तिक' और 'तन्त्रवार्तिक[illegible]' किया है। वार्तिकमें भारतके प्रचलित अवैदिक मतका खण्[illegible] है। श्रीगणेशजीके एक हाथमें पद्म (कमल) है और [illegible] हाथ अभयमुद्राङ्कित है। उस विषयमें श्रीज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—

सहज सत्कारवाद। है पद्मकर वरद।
धर्म प्रतिष्ठामें सिद्ध। अभय हस्त ॥ १[illegible]

सांख्यशास्त्रका सत्कार्यवाद ही पद्मकर है। वेदान्त औ[illegible] सांख्यदर्शनमें मत भिन्नता है; फिर भी दोनोंने ही सत्कार्यवा[illegible] माना है। सेश्वर सांख्य कहलानेवाला पातञ्जल-योगदर्शन [illegible] अभयमुद्राङ्कित हाथ है। श्रीगणेशजीके अवयवोंमें शुण्ड प्रमु[illegible] होता है; अतः निर्मल विवेकको शुण्डका स्थान दिया गया है—

विवेकवन्त सुविमल। वही शुण्ड दण्ड सरल।
है परमानन्द केवल। महासुखका ॥ १४ ॥

सत्यासत्यनिर्णायक विवेक ही शब्द-ब्रह्म श्रीगणेशका सरल शुण्ड है। गज सूँडसे सूँघकर ही भले-बुरेकी पहचान करता है। श्रीगणेशका एक नाम 'एकदन्त' है। उसके विषयमें कहा गया है—

भली संवाद है दशन। जो है समता शुभवर्ण।
देव उन्मेष सूक्ष्मेक्षण। विघ्नराज ॥ १५ ॥

शास्त्रमें संदेहोंके निवारणके लिये अथवा सिद्धान्त-निरूपणके लिये जो परस्पर प्रश्नोत्तर हैं, ये संवाद ही शुभ [illegible] वर्णात्मक दन्त हैं। गजके नेत्र बहुत सूक्ष्म होते हैं। [illegible] उद्घाटन करनेके लिये शास्त्रोंकी सूक्ष्म [illegible] है। पूर्वोत्तर मीमांसा, दोनों श्रीगणेश[illegible]

पूर्व उत्तर मीमांसा मान।
मुनि-मत बं[illegible] अमृत
गजके गण्डस्थलसे [illegible]

श्रीज्ञानेश्वर महाराज [illegible]
बोधरूपी अमृत [illegible]
शास्त्रपर मननशी[illegible]
मत्त भँवरोंसे
पहलाती

प्रमेय प्रवाल सुप्रभ । द्वैत अद्वैत है निकुम्भ ।
तुल्य बल हैं जो सुलभ । मस्तक पर ॥१७॥

उपनिषदोंके जो प्रमेय सिद्धान्त हैं, वे ही श्रीगणेशके …में धारण की जानेवाली प्रभायुक्त प्रवालमणियोंकी माला । द्वैताद्वैतके शास्त्रीय सिद्धान्त ही दोनों गण्डस्थल हैं, समानरूपसे शोभित हो रहे हैं। इन शब्दब्रह्म श्रीगणेशजी-पूजा सदा चलती रहती है। पूजनोपरान्त जो पुष्पाञ्जलि …यी जाती है, उस सम्बन्धमें वर्णन करते हुए …ानेश्वरमहाराज कहते हैं—

उसपर है दस उपनिषद् । जिसके उदार ज्ञान मकरंद ।
मुकुटपर जो सुमन सुगन्ध । सुहाते हैं ऐसे ॥१८॥

…ानरूपी मकरन्दसे युक्त दशोपनिषद्‌रूपी, पुष्पाञ्जलि …णेशजीको अर्पित की गयी है, वही उनके मस्तकके मुकुटपर विराजमान है । इससे उनकी शोभा बहुत … गयी है। श्रीगणेशजीके अवयवोंको प्रणवकी तीन मात्राओं… समान बताया गया है।

अकार चरण युगुल । उकार उदर विशाल ।
मकार है महामंडल । मस्तकाकार ॥१…
जहाँ ये तीनों हुए एक । शब्दब्रह्म प्रकटानेक ।
गुरु-कृपासे जाना देख । यह आदिबीज ॥२०…

'अ'कार चरण-युगल है, 'उ'कार उदरस्थानीय है औ… 'म'कार महामण्डलाकार मस्तक है। इन तीन मात्राओं… संयोगसे ॐकी रचना होती है, जिसमें सम्पूर्ण शब्दब्रह्म… समाविष्ट है । श्रीज्ञानेश्वरमहाराज कहते हैं कि 'मुझे श्रीगुरु-कृपासे इन शब्दब्रह्मस्वरूप श्रीगणेशभगवान्‌का ज्ञान हुआ… एवं दर्शन मिला; मैं उनको नमस्कार करता हूँ।'

संत श्रीएकनाथजीका श्रीगणेश-चिन्तन

(लेखक—श्रीवसन्त शेषगीरराव कुलकर्णी)

महाराष्ट्रके संत-समुदायमें श्रीएकनाथजीका स्थान बहुत …ँचा है । संत एकनाथजीके बारेमें न्यायमूर्ति महादेव …न्द रानडे महोदयकी एक उक्ति प्रसिद्ध है कि 'ये ही …ष्ट्रके सच्चे नाथ प्रतीत होते हैं'। श्रीएकनाथजी एक … साक्षात्कारी संत थे। उन्होंने अपने अनुभवके आधार-… मुक्ति-प्राप्तिके लिये भगवन्नाम-सकीर्तनका सीधा-सादा …लोगोंको दिखाया । श्रीएकनाथजीकी ग्रन्थ-सम्पदा तो … बड़ी है । इन ग्रन्थोंमें श्रीमद्भागवतके एकादश-…के ऊपर मराठीमें उन्होंने जो विस्तृत टीका लिखी है, …एकनाथी भागवतके नामसे सुविख्यात है। … उस एकतामें ही सृष्टिरूपी अनेकता विद्यमान है । इस अनेकतामें भी उनकी एकता कभी भङ्ग नहीं हो पाती'—

नमन श्रीएकदंता । एकपणें तूंचि आता ॥
एकीं दाविसी अनेकता । परी एकात्मता न मोडे ॥

'गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्' (४)में कहा है—

'त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि । त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ।'

श्रीगणेशजीका दूसरा नाम 'लम्बोदर' है । लम्बोदरका अर्थ है—विशाल उदरवाले । ब्रह्मतत्त्व तो बृहत् है, … महीयान् है और परिमाणशून्य है; अतः गणेशजीका …या स्वरूप भी विशाल है । उस उदरसे …

...हूनि सूक्ष्म सान। स्वामीजी तुम्हें अधिष्ठान॥
...र्गी मूषकवाहन। नामाभिधान तुज साजे॥

...णेशजीकी आकृति सम्पूर्णतः न तो नराकार है और ...र। वास्तवमें वे व्यक्त और अव्यक्तसे अतीत हैं ...कार हैं। यही उनका स्वरूप है—

...तो नरू ना कुंजरू। व्यक्ताव्यक्तासी परू॥
...जाणोनि निर्विकारू। .... ॥

महाराष्ट्रका भागवत धर्म अद्वैतका मतानुयायी और भक्तिप्रधान है। भागवत-धर्ममें 'विष्णु', 'वासुदेव', 'राम' और 'कृष्ण'—इन देवताओंका यद्यपि प्राधान्य है, तथापि महाराष्ट्रका भागवत धर्म 'शिव', 'गणेश', 'विष्णु' आदि देवताओंमें तारतम्य नहीं देखता। वह 'विष्णु', 'शिव', 'गणेश'—इन सभीको एक ही परमात्माका रूप मानता है। इस दृष्टिकोणसे श्रीएकनाथजीका यह श्रीगणेश-वर्णन यथार्थ ही है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीद्वारा गणेश-स्मरण

(१)

(लेखक—प्रो० श्रीरामाश्रयप्रसादसिंहजी)

...शिरोमणि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने ...थोंमें, विशेषकर 'श्रीरामचरितमानस', 'विनय-... 'श्रीरामलला-नहछू', 'पार्वती-मङ्गल', 'जानकी-... एवं 'बरवै-रामायण'के प्रारम्भमें गणेशजीकी वन्दना ...से की है। गोस्वामीजी वैष्णव भक्तकवि थे ...के इष्टदेव थे मर्यादापुरुषोत्तम परात्पर भगवान् ... अतः यह प्रश्न उठ सकता है कि गोस्वामीजीने ...के गणेशजी और सरस्वतीजीकी ही वन्दना क्यों ...रामचरितमानस में संस्कृतके प्रथम श्लोकमें ही ... और गणेशकी वन्दना मिलती है। फिर सोरठामें ...का प्रारम्भ करते हैं, तब गणेशको ही प्रथम स्थान ... 'विनयपत्रिका'का पहला ही पद गणेश-वन्दनाका ...रामचरितमानस एवं विनयपत्रिका गोस्वामीजी... सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माने जाते हैं और इन दोनों ही ...प्रारम्भ श्रीगणेशजीकी ही वन्दनासे हुआ है।

...स्वामीजीके इष्टदेव भगवान् राम हैं। इन्होंने अपने ...थ भगवान् रामको आधार मानकर ही लिखे। ...श्रीरामचरितमानस अद्वितीय ग्रन्थ है। वेदों, ...ों एवं पुराणोंसे लेकर धर्म-शास्त्रों, नीतिशास्त्रों तथा ...ग्रन्थोंके सार-तत्त्वको गोस्वामीजीने इस ग्रन्थमें ...रहै। हमारे धर्मचिन्तन और संस्कृति-सभ्यताका ... वाहक है—रामचरितमानस। गोस्वामीजीकी ...क ऐसे काव्यग्रन्थके निर्माणकी थी, जो देवनदी ...सुरसरि धाराके समान सबका हित करनेवाला हो। ...मान्यता भी है—

'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥'
(मानस १। १३। ४)

अतः ऐसे विश्व-कल्याणकारी काव्यग्रन्थके पूर्ण समापनके लिये मङ्गलके देवता गणेशकी वन्दना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य थी।

योगकी दृष्टिसे देखनेपर भी गणेशजीका स्मरण बड़ा ही उचित, स्वाभाविक और समीचीन लगता है। योगशास्त्रके अनुसार हमारे शरीरमें छः चक्र हैं। इनमें सर्वप्रथम चक्र है—'मूलाधार-चक्र'। इसके नीचे कुण्डलिनी शक्ति सोयी हुई है। कुण्डलिनी जगकर जब सुषुम्णामें प्रवेश करती है, तब सर्वप्रथम वह मूलाधारमें ही आती है। मूलाधारके जाग्रत् होनेका फल ही है—अपार प्रतिभाकी प्राप्ति। मूलाधार चक्रके देवता हैं—गणेश। उस चक्रकी बनावट ऐसी है कि गणेशजीकी आकृतिका ध्यान करनेसे मूलाधारकी सिद्धि प्राप्त हो जाती है। अतः अपार प्रतिभाकी प्राप्तिके लिये गोस्वामीजीने गणेशजीका स्मरण आवश्यक समझा।

हमारे यहाँ अति प्राचीनकालसे ही 'मङ्गलाचरण'की परम्परा चली आ रही है। ऐसा समझा जाता है कि मङ्गलाचरण करनेसे ग्रन्थकी निर्विघ्न समाप्ति हो जाती है। इसीलिये कविगण अपने काव्यग्रन्थोंकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये अपनी इच्छाके अनुरूप देवताओंका स्मरण करते आ रहे हैं। मङ्गलाचरणमें गोस्वामीजी श्रीगणेशजीके स्थानपर अपने आराध्य भगवान् श्रीरामका स्मरण कर सकते थे, परंतु चली आती हुई परम्पराको आदर देनेके लिये तथा धर्मशास्त्रोंकी मर्यादाकी रक्षाके लिये उन्होंने श्रीगणेशजीका ही स्मरण

'भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।'

(मानस १ । २ श्लोक)

गणेशजी इन्हीं श्रद्धा विश्वासरूपी भवानी-शंकरके पुत्र हैं। अतः वे षट्सम्पत्ति सम्पन्न ज्ञानके स्वरूप हैं। विश्वास और श्रद्धाके अभावमें न तो ज्ञान ही सम्भव है और न भक्ति ही। गीतामें कहा गया है—'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्।' अर्थात् श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है। मानस (७।९०)में कहा गया है—'बिनु बिस्वास भगति नहिं।' श्रद्धा और विश्वासके पुत्र होनेके नाते गणेशजी ज्ञान एवं भक्तिके समन्वित रूप हैं। रामचरितमानसमें भक्ति और ज्ञानका ही विशेष विवेचन है। अतः भक्ति-ज्ञानसे परिपूर्ण रामचरितमानसके प्रणयनके समय सबसे प्रथम भक्ति और ज्ञानके स्वरूप श्रीगणेशजीकी वन्दना आवश्यक थी; इसलिये तुलसीदासजीने गणेशजीका स्मरण किया।

ऐसा माना जाता है कि रामजीके दरबारके सर्वप्रथम द्वारपाल भी गणेशजी ही हैं। द्वारपालकी अनुमतिके बिना दरबारमें प्रवेश पाना कठिन है। यही कारण है कि विनयपत्रिकामें जब सभी द्वारपालोंकी वन्दना करनेकी बात हुई, तब सर्वप्रथम पुस्तकके प्रारम्भमें गणेशजीकी ही वन्दना की गयी। गोस्वामीजी जानते थे कि बिना गणेशजीकी कृपा श्रीरामके दर्शन, उनकी भक्ति तथा उनकी कृपाकी प्राप्ति असम्भव है; अतः गणेशजीकी वन्दना करते हुए गोस्वामीजीने श्रीसीतारामको अपने हृदयमें निवास करनेकी प्रार्थना की—

'माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं राम सिय मानस मोरे॥'

(विनय पत्रिका १)

गणेशजी अद्वितीय लेखक माने जाते हैं। कहा जाता है कि अठारहों पुराणोंके मननशील द्रुत लेखक गणेशजी ही हैं। व्यासदेव बोलते गये और गणेशजी चुपचाप लिखते गये। गोस्वामीजीने समझा कि श्रीशंकरभगवान्‌द्वारा रचित तथा उनके ही द्वारा पार्वतीसे कथित इस अद्वितीय राम-कथाको उनके (तुलसीदास) द्वारा भाषामें निबद्ध करनेके लिये लेखन-कार्यमें निपुण गणेशजीके सहयोगकी नितान्त आवश्यकता है; अतः गोस्वामीजीने 'मानस'के प्रारम्भमें इनका बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे स्मरण किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गणेशजीके स्मरणके पीछे गोस्वामी तुलसीदासके बड़े ही पवित्र भाव छिपे थे। गणेशजी मङ्गलदाता, बुद्धि-विधाता, बाधा हर्ता और सिद्धि दाता तो हैं ही, स्वभावसे परम संत, राम-नाम-माहात्म्यके अद्वितीय ज्ञाता, अनुपम लेखक, भक्ति तथा ज्ञानके मूर्तिमान् विग्रह एवं सच्चे श्रीसीताराम-भक्त भी हैं। कुछ संतों और महात्माओंकी तो यह भी धारणा है कि "गणेशजीका स्मरण स्वयं भगवान्‌का स्मरण है। गणेशजीकी मूर्तिका ध्यान करनेसे 'ॐ' का ध्यान हो जाता है। वेदों और उपनिषदोंमें कहा गया है कि "ॐ" ही सब कुछ है। 'ॐ' ब्रह्मका वाचक है।" गणेशजीका सर्वप्रथम स्मरण कर गोस्वामीजीने उपनिषद्‌की भाषामें पुरुषोत्तम भगवान् परात्पर ब्रह्मका ही स्मरण किया। 'वसिष्ठ-संहिता'में भी गणेशजीको श्रीरामका स्वरूप कहा गया है—

रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥

पं० श्रीरामकुमारजी रामायणीकी मान्यता है कि—

जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन॥

(मानस १ । १ सो०)

—में भगवान्‌के नाम (गणनायक), रूप (करिवरवदन), लीला (सुमिरत सिधि होइ) और धाम (शुभगुणसदन) सब कुछ आ जाते हैं। अतः गोस्वामीजीने श्रीगणेशकी वन्दनाके रूपमें परात्पर भगवान् रामकी ही वन्दना की है।

(२)

(लेखक—डा० श्रीरामचरणलाल शर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

अतीतके पृष्ठोंके आलोडनसे विदित होता है कि भारतीयोंके प्रत्येक शुभ कार्यका सूत्रपात श्रीगणेश पूजन एवं स्तवनद्वारा होता रहा है। उनकी दृष्टिमें गणेश आदिदेव, विघ्न-विनाशक, मङ्गलकर्त्ता और सिद्धि प्रदाता रहे हैं। भारतीय समाजका कोई भी अङ्ग श्रीगणेश-पूजन एवं स्तवनकी प्रथासे अछूता नहीं रहा। तभी तो साधारण कवि भक्तकवि—दोनोंकी ही रचनाओंके प्रारम्भमें मङ्गलाचरण रूपमें श्रीगणेश-वन्दना उपलब्ध होती है। भारतकी परम्पराको आदर देने तथा स्थिर रखनेकी दृष्टिसे ही कविकुल-गुरु भक्त-शिरोमणि महात्मा तुलसीदासजीने अपनी रचनाओंके प्रारम्भमें गणेश वन्दनाको स्थान दिया है। उन्होंने अपने

'भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।'

(मानस १। २ श्लोक)

गणेशजी इन्हीं श्रद्धा विश्वासरूपी भवानी शंकरके सुपुत्र हैं। अतः वे षट्सम्पत्ति-सम्पन्न ज्ञानके स्वरूप हैं। विश्वास और श्रद्धाके अभावमें न तो ज्ञान ही सम्भव है और न भक्ति ही। गीतामें कहा गया है—'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्।' अर्थात् श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है। मानस (७।९०)में कहा गया है—'बिनु बिस्वास भगति नहिं।' श्रद्धा और विश्वासके पुत्र होनेके नाते गणेशजी ज्ञान एवं भक्तिके समन्वित रूप हैं। रामचरितमानसमें भक्ति और ज्ञानका ही विशेष विवेचन है। अतः भक्ति-ज्ञानसे परिपूर्ण श्रीरामचरितमानसके प्रणयनके समय सबसे प्रथम भक्ति और ज्ञानके स्वरूप श्रीगणेशजीकी वन्दना आवश्यक थी; इसलिये तुलसीदासजीने गणेशजीका स्मरण किया।

ऐसा माना जाता है कि रामजीके दरबारके सर्वप्रथम द्वारपाल भी गणेशजी ही हैं। द्वारपालकी अनुमतिके बिना राम-दरबारमें प्रवेश पाना कठिन है। यही कारण है कि 'विनयपत्रिका'में जब सभी द्वारपालोंकी वन्दना करनेकी बात हुई, तब सर्वप्रथम पुस्तकके प्रारम्भमें गणेशजीकी ही वन्दना की गयी। गोस्वामीजी जानते थे कि बिना गणेशजीकी कृपाके श्रीरामके दर्शन, उनकी भक्ति तथा उनकी कृपाकी प्राप्ति असम्भव है; अतः गणेशजीकी वन्दना करते हुए गोस्वामीजीने श्रीसीतारामको अपने हृदयमें निवास करनेकी

मङ्गलदाता, बुद्धि-विधाता, बाधा हर्ता और सिद्धि दाता तो हैं ही, स्वभावसे परम संत, राम-नाम-माहात्म्यके अद्वितीय ज्ञाता, अनुपम लेखक, भक्ति तथा ज्ञानके मूर्तिमान् विग्रह एवं सच्चे श्रीसीताराम भक्त भी हैं। कुछ संतों और महात्माओंकी तो यह भी धारणा है कि "गणेशजीका स्मरण स्वयं भगवान्‌का स्मरण है। गणेशजीकी मूर्तिका ध्यान करने-से 'ॐ' का ध्यान हो जाता है। वेदों और उपनिषदों-में कहा गया है कि "ॐ" ही सब कुछ है। 'ॐ' ब्रह्मका वाचक है।" गणेशजीका सर्वप्रथम स्मरण कर गोस्वामीजीने उपनिषद्‌की भाषामें पुरुषोत्तम भगवान् परात्पर ब्रह्मका ही स्मरण किया। 'वसिष्ठ संहिता'में भी गणेशजीको श्रीरामका स्वरूप कहा गया है—

> रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम्।
> एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥

पं० श्रीरामकुमारजी रामायणीकी मान्यता है कि—

> जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबर बदन।
> करउ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन॥

(मानस १। १ सो०)

—में भगवान्‌के नाम (गणनायक), रूप (करिवरवदन), लीला (सुमिरत सिधि होइ) और धाम (शुभगुणसदन) सब कुछ आ जाते हैं। अतः गोस्वामीजीने श्रीगणेशकी वन्दनाके रूपमें परात्पर भगवान् [illegible] दना की है।

(२)

पूर्वजनोंकी ही भाँति गणेशजीको कृपासिन्धु, सर्वसमर्थ, विद्या-वारिधि, बुद्धि-विधाता और सिद्धि प्रदाताके रूपमें निहारा है। भक्ति-भावनासे ओत प्रोत उनकी प्रसिद्ध रचना 'विनय-पत्रिका' का प्रथम पद इसका प्रतीक है—

गाइये गनपति जगवंदन। संकर-सुवन भवानी-नंदन॥
सिद्धि-सदन, गज-वदन, विनायक। कृपा-सिंधु, सुंदर, सब लायक॥
मोदक-प्रिय, मुद-मंगल-दाता। बिद्या-बारिधि, बुद्धि-बिधाता॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं रामसिय मानस मोरे॥

पदकी अन्तिम पङ्क्तिसे स्पष्ट होता है कि गणेशजी मनोरथदाता भी हैं, तभी तो तुलसीने उनसे अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरामको सीतासहित अपने हृदयमें निवास करानेकी याचना की है। विनयपत्रिकाके इस प्रथम पदमें श्रीगणेश-स्मरणद्वारा मङ्गलाचरण करके काव्य परम्पराका निर्वाह तो हुआ ही है, भक्तिभावकी याचना भी की गयी है। सर्वप्रथम श्रीगणेशजीसे भक्तिकी याचना करके गोस्वामीजीने यह संकेत किया है कि न केवल काव्य-रचना, अपितु ईश अर्चना-प्रार्थनादि भी श्रीगणेशजीसे आरम्भ करनी चाहिये। तभी तो 'विनयपत्रिका' पर उनके आराध्य अनाथनाथ श्रीरघुनाथने अपने हाथसे 'सही' कर दी।

गोस्वामीजीने श्रीगणेशजीका वन्दन एवं स्मरण अपनी रचनाओंकी सफलता तथा निर्विघ्न समाप्ति हेतु भी किया है। उदाहरणस्वरूप 'पार्वती-मङ्गल,' 'जानकी-मङ्गल,' 'रामाज्ञा प्रश्न' और 'रामचरितमानस' को रखा जा सकता है। 'पार्वती मङ्गल' तथा 'जानकी मङ्गल'में उन्होंने दो-दो छन्दोंमें गुरु, शिव, पार्वती, शारदा, विष्णु तथा राम आदिके सहित श्रीगणेशजीकी वन्दना की है। यथा—

बिनइ गुरहि गुनिगनहि गिरिहि गननाथहि।
हृदयँ आनि सिय राम धरे धनु भाथहि॥१॥
गावउँ गौरि गिरीस बिबाह सुहावन।
पाप नसावन पावन मुनि मन भावन॥२॥
(पार्वतीमङ्गल)

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति।
सारद सेष सुकबि श्रुति संत सरल मति॥१॥
हाथ जोरि करि बिनय सबहि सिर नावौं।
सिय रघुबीर बिबाहु जथामति गावौं॥२॥
(जानकीमङ्गल)

'रामाज्ञा प्रश्न' के प्रथम सर्गके प्रथम दोहेमें उन्होंने गणेश-स्मरणकी महत्ता प्रतिपादित की है। उसके अनुसार स्वदेश अथवा विदेशमें गणेश-स्मरणसे प्रारम्भ किये गये शुभ कार्योंका परिणाम कल्याणकारी होता है। श्रीगणेशजी स्मरण सभी देवताओंको अनुकूल बनानेवाला, सिद्धियोंको देनेवाला तथा बाधाको सफल करनेवाला है। वह विद्या, विनय और धर्मके फलको सुलभ करनेवाला तथा सुमङ्गलको सानको प्रकट दिखानेवाला है। अतः सभी कार्योंकी सफलताके लिये यह आवश्यक है।

'रामचरितमानस'के आरम्भमें 'गणेश-वन्दना' श्लोक तथा सोरठेके माध्यमसे की गयी है। श्लोकमें गणेश और वाणी (सरस्वती) की सम्मिलित वन्दना है। यथा—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥१॥

दोनोंकी वन्दनाका कारण बतलाते हुए गोस्वामीजीने स्पष्ट किया है—'वर्णों, अर्थसमूहों, रसों, छन्दों और मङ्गलोंके विधायक सरस्वतीजी और गणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

सोरठामें उन्होंने मात्र गणेशजीसे अनुग्रह (कृपा) करनेकी अभ्यर्थना की है—

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥१॥

अभ्यर्थनाका कारण स्पष्ट करते हुए कहा है—'जो गणोंके नायक (स्वामी) हैं, बुद्धिकी राशि और शुभ गुणोंके धाम हैं तथा जिनका गजके समान मुख है, उन गणेशजीका स्मरण करते ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है।'

मङ्गलाचरण या भक्ति याचनाके अवसरपर ही नहीं गणेश वन्दनाके अतिरिक्त गोस्वामीजीने विवाहादि माङ्गलिक अवसरोंपर भी गणेश पूजाकी [illegible] भी चर्चा की है। पार्वती शिव और श्रीरामके विवाह इसके [illegible] हैं। पार्वती शिवके विवाहके अवसरपर किये गये गणेश पूजनको भी देखिये—

'मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।'
(मानस १।१००)

श्रीरामके विवाहको [illegible] भी [illegible] है। [illegible] अवसरपर [illegible] गणेश पूजन [illegible] है—

'आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।'

(मानस १ । ३२२ । १०न्द)

स्पष्ट है, जब सीताजीको विवाह मण्डपमें लाया गया, तब दोनों कुल-गुरुओंने कुलाचार करके प्रथम तो उनसे गणेशजी और गौरीजीकी पूजा करवायी और तदुपरान्त उनको सुन्दर सिंहासनपर बैठाया।

यात्राके पूर्व भी तुलसीदासजीने गणेश-स्मरणकी बात कही है। जैसे—अयोध्यानरेश दशरथ राम विवाहके अवसर-पर जनकपुरीको प्रस्थान करते समय रथारूढ़ होनेसे पूर्व गणेश, गुरु, शिव, पार्वती आदिका स्मरण करते हैं—

तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहुँ हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु॥

(बालकाण्ड ३०१)

कतिपय ऐसी स्थितियोंमें भी गोस्वामीजीने गणेश स्मरण कराया है, जहाँ कार्यकी अथवा मनःकामनाकी सफलतामें पूर्णतः बाधा उपस्थित हो जाती है और उस दशाको दूर करनेमें मानवकी बुद्धि और शक्तिके सम्मुख प्रश्नवाचक चिह्न लग जाता है, वहाँ मनुष्य दैवी शक्तियोंकी शरणमें जा गिरता है। इस सम्बन्धमें धनुष-यज्ञका प्रसङ्ग द्रष्टव्य है।

गुरु श्रीविश्वामित्रकी आज्ञा पाकर शिव-धनुष तोड़नेके लिये जब भगवान् श्रीराम चापके समीप आते हैं, तब इससे भी कठोर शिव धनुष और श्रीरामके सुकोमल शरीरको देख जानकीजी मन ही-मन अत्यन्त ही व्याकुल होती हैं और उनकी यह व्याकुलता जब चरम सीमापर पहुँच जाती है तब वे इससे मुक्त होनेके लिये पार्वती शिव और गणेशजी-की मन ही मन वन्दना करके उन्हें मनाने

मन ही मन मनाव अकुलानी

श्रीगोस्वामीजीने सर्वप्रथम करवायी है। अयोध्यावासियोंकी पञ्चदेवोंमें निष्ठा है। पञ्चदेवोपासना उनका दैनिक नियम है। इस नियम पालनकी झाँकी चित्रकूटमें देखनेको मिलती है—

करि मज्जनु पूजहिं नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥
रमारमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी॥

(मानस २ । २७२ । २-२½)

चित्रकूटमें अयोध्यावासी श्रीगणेश, गौरी, शंकर, सूर्य तथा विष्णुकी वन्दना करके फिर सीतारामके राजधानी होनेकी करबद्ध प्रार्थना करते हैं।

उल्लासका उत्कर्ष तथा भावकी अगम्यता प्रदर्शित करनेके लिये श्रीगणेशजीकी कहीं-कहीं असमर्थता भी प्रस्तुत की गयी है। श्रीसीतारामके विवाहोपरान्त अयोध्याका उल्लास-सागर इतना उच्छलित हुआ कि अयोध्याके प्रेम, प्रमोद, विनोद एवं मनोहरताका वर्णन करनेकी सामर्थ्य शत-शत शारदा, शेष, गणेश, महेश, वेद और ब्रह्मा आदिमें भी नहीं है—

प्रेमु प्रमोद बिनोदु बड़ाई। समउ समाजु मनोहरताई॥
कहि न सकहिं सत सारद सेसू। बेद बिरंचि महेस गनेसू॥

(मानस १ । ३५४ । २-२½)

इसी प्रकार भरतजीकी मति-रति-गति, उनका भाव-वैभव शारदा, शेष, गणेशके लिये भी अगम्य है—

भरत रहनि समुझनि करतूती।
....
सेस गनेस गिरा गमु नाहीं॥

(मानस २ । ३२४ । ४)

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजीने विभिन्न परिस्थितियोंमें श्रीगणेशजीका पूजन, स्तवन, वन्दन एवं स्मरण स्वयं करके मानवमात्रके लिये हितकारी है इसके पीछे उनका दृष्टिकोण केवल ...ी नहीं है, अपितु उनके ...
...जो ...

तमिळनाडुमें श्रीगणेशका प्रभाव

(लेखक—विद्वान् डॉ० श्रीनिवासवरदन् एम्० ए० [तमिळ एवं हिंदी])

श्रीगणेशजी ओंकारकी साक्षात् मूर्ति हैं तथा सम्पूर्ण तमिळ प्रदेशमें उनकी सभक्ति पूजा की जाती है। तमिळ-प्रदेशकी जनता श्रीगणेशके सभी नामोंसे परिचित है। (१) विनायक, (२) विघ्नेश, (३) विघ्नविनायक, (४) गणपति, (५) एकदन्त, (६) मोदकहस्त, (७) मूषकवाहन, (८) गजमुख, (९) गजानन, (१०) वक्रतुण्ड तथा (११) हेरम्ब आदि सभी नाम उनकी जिह्वापर रहते हैं। ये सब संस्कृत-शब्द होकर भी सामान्य जनताकी वाणीमें नित्यप्रति प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त तमिळ-भाषासे सम्बद्ध तथा लोकप्रिय एक और नाम है 'पिळ्ळैयार' (पिल्लैयर)। 'पिळ्ळै'का अर्थ है—पुत्र तथा 'आर' आदरसूचक प्रत्यय है। अतः हिंदीमें इसे 'पुत्रजी' कह सकते हैं। यह सभी जानते हैं कि श्रीगणेश पार्वती-शिवजीके पुत्र हैं।

पिळ्ळैयार शुळि

तमिळ हिंदू-जनता पत्र लिखते समय प्रारम्भमें ऊपर श्रीगणेशसूचक एक विशेष चिह्न बनाती है जो श्रीगणेशजीका ही द्योतक है। इस चिह्नविशेषको तमिळ प्रजा पिळ्ळैयार शुळि (श्रीगणेशगोल्) कहती है।

श्रीगणेशजीके सेवा-प्रकार

तमिळनाडुकी भक्त जनता विष्णु तथा शिवजीके मन्दिरोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम करती है, परंतु विनायक मन्दिरके सामने अपनी विनतीको दूसरे प्रकारसे प्रकट करती है। भक्त विनायकके सामने खड़े होकर अपने मस्तकके दोनों ओर दोनों मुट्ठियोंसे मृदुल आघात करते हैं। अपने दोनों कानोंको दोनों हाथोंसे पकड़कर उठते बैठते हैं। यह सेवा प्रकार बड़ा विचित्र है। ये दोनों क्रियाएँ यौगिक दर्शनसे सम्बद्ध हैं। मस्तकपर मुट्ठिसे मृदुल आघात करनेसे आज्ञाचक्र उत्तेजित किया जाता है; उठने-बैठनेकी क्रियासे सुषुम्णा नाड़ीपर प्रभाव पड़ता है; अतः सुषुम्णा ऊर्ध्वमुखी हो जाती है। तमिळनाडुमें श्रीगणेशजीकी प्रसिद्ध पूजा-सामग्री है—(१) दूर्वा, (२) वह्निपत्र (शमी पत्र) और (३) अर्कपत्र।

गणेश-सम्बन्धी रचना

ग्रन्थ लिपिमें एक छोटी सी पुस्तिका 'गणेशसहस्रनाम' की है, जिसमें प्रत्येक नाम गकार अक्षरसे प्रारम्भ होता है। एक दूसरा 'गणेशसहस्रनाम' भी है, जिसमें दूसरे अ प्रारम्भिक अक्षरके रूपमें प्रत्येक नामके आदिमें अवस्थि हैं। उनकी अष्टोत्तरशत नामावलियाँ बहुत-सी हैं। इस परब्रह्मकी इस विशिष्ट मूर्तिके प्रति सर्वसाधारणकी यथा भक्तिकी स्पष्ट सूचना मिलती है।

दो सौ वर्षके पहले तंजौर जिलेके 'क्षेत्रालक'-नाम ग्राममें 'साम्बशिवशास्त्रीजी' का जन्म हुआ। वे जन्मसे शै होनेपर भी अपनी आयुके मध्यकालमें गणपत्युपासक ब गये। इन्होंने अपनी अप्रतिम प्रतिभासे (१) गणेशाद्वैतश (२) ज्ञानकाण्डम्, (३) कर्मकाण्डम्, (४) उपासनाकाण्ड तथा (५) गणेश-उपनिषद् आदि कई संस्कृत गाणपत्य वेदान्त ग्रन्थोंकी रचना की थी। इन्होंने इन समस्त ग्रन्थोंक योगीन्द्र मठको समर्पित किया, जो पूनासे तीन मील दू 'मयूरेश' नामक स्थानपर है।

श्रीगणेश-विषयक ग्रन्थ तमिळ भाषामें अनेक हैं। इनमें 'औवैयार' (कवयित्री) द्वारा रचित 'विनायकर् अकवळ' सुप्रसिद्ध है। इनके द्वारा रचित 'नल्वळि' ग्रन्थका मङ्गलाचरण श्रीगणेशजीके वन्दनापरक है। यह पद्य समस्त तमिळनाडुमें प्रचलित है—

> पालुम् तेळितेनुम् पाकुम् परुप्पुमिवै
> नालुम् कलन्दुनक्कु नान् तरुवेन्-कोलम् सेय्।
> तुङ्गकरिमुखत्तूमणिये . नीयेनक्कु
> शङ्गत्तमिळ मुन्रम् ता॥

भाव यह है कि 'हे तुङ्ग गजशुण्डाकार मुँहवाले! मैं तुम्हारे लिये दूध, शुद्ध मधु, पाक् तथा दाल—इन चारोंको मिलाकर दूँगा। तुम मेरे लिये शङ्गत्तमिल तीनोंको दे दो।'

इसके अतिरिक्त अरुणगिरिनाथन्, रामलिङ्ग स्वामिगळ् आदि शैव संतोंने भगवान् श्रीगणेशके विषयमें कई मुक्तक-रचनाएँ की हैं, जिनको भक्तगण गा-गाकर भावविभोर हो जाते हैं।

ंडिया संग्रहालयकी श्रीगणेशमूर्ति

श्रीगणेशकी स्थानक मूर्ति—जावा [पृष्ठ ४५१

णेशकी कांस्य मूर्ति—बोर्नियो

दो प्रसिद्ध प्राचीन गणेश-मूर्तियाँ

तमिळ भक्ता औवैयार्-विरचित 'विनायकर् अकवल'में श्रीगणेश

(लेखक—प्रो० के० एस० चिदम्बरम्, एम्० एड्०, 'भारद्वाजन्')

अनादिकालसे सनातनधर्मावलम्बी हम भारतीय श्रीगणेशकी प्रार्थनाके बलपर सभी कार्योंमें सफलता प्राप्त करते आये हैं। पौराणिक प्रमाण है कि देवगणतक अपनी कार्य-सिद्धिके लिये प्रथमतः गणेशकी वन्दना करते हैं। ऐसे श्रीगणेशजीकी अमोघ साधनामें सिद्धिप्राप्त एक तमिळ वृद्धाकी आत्मानुभूतिपूर्ण प्रार्थना ही प्रस्तुत 'विनायकर् अकवल'का विषय है।

तमिळ्नाडुकी जनतामें 'औवैयार्' नामकी एक वृद्धा कवयित्रीकी बालजनोचित नीतिपरक रचनाएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। तमिळमें 'औवै' शब्द—पूर्वजा, माता, मातामही जैसा अर्थका निर्देशक है। आदरवाचो 'आर्' प्रत्यय लेकर वही उनका नाम हो गया। जन्मसे ही वे देवांश-युक्त थीं और अपने माँ-बापकी सात संतानोंमें अग्रजा थीं। नियतिकी ही बात थी कि इनके जन्म होते ही इन्हें छोड़कर माताको अपने यात्री पतिके साथ-साथ आगे बढ़ना पड़ा। इसपर व्याकुलहृदया माताको आश्वासन देते हुए उस नवजात बच्चीके मुँहसे वाणी निकली, जिसका सार था कि 'सर्वनियन्ता शिव मेरी रक्षा करेंगे, तुम दुःखी मत होना।' थोड़ी ही देर बाद उस रास्तेसे पाणगुलके एक दम्पति आये। उन्होंने उस शिशुको गोदमें उठा लिया। बालिकाका पालन-पोषण होने लगा। बचपनसे ही उनकी लगन गणेश-पूजापर रही, फलतः वे अल्पकालमें ही विदुषी हो गयीं। वयःप्राप्त होते होते सांसारिक जीवनकी असारता उनकी समझमें आ गयी और उन्होंने इस संसारमें पावन जीवन व्यतीत करनेके लिये वृद्धा रूप ही उचित समझा। अतः गणेशसे प्रार्थना कर उन्होंने यौवनमें ही वार्धक्यका वरदान प्राप्त कर लिया और तत्कालीन तमिळ-प्रदेशभरमें धर्मका प्रचार किया। चेर चोळ-पाण्ड्य राजाओंसे आहत हो उन्होंने तमिळ-जनताको विविध प्रकारसे आत्मबोधपूर्ण उपदेश दिये। उनके कई महत्कार्योंके वृत्तान्त तमिळ्नाडुके बच्चोंके लिये आज भी स्मरणीय हैं। उनकी सूत्ररूप सूक्तियाँ तमिळ बाल-शिक्षामें प्रमुख स्थान रखती हैं।

यद्यपि उनके कालके सम्बन्धमें विद्वानोंमें ऐकमत्य नहीं है, पर उनके जीवनकी एक घटना प्रमाणित करती है कि वे राजा चेरमान् पेरुमाळ तथा 'तमिळ तेवारम्' के गायकोंमें अन्यतम और सुन्दरर्की समकालीन थीं। वे दोनों शिवभक्त एक बार ईश्वराज्ञा पाकर कैलास यात्राको निकले। बीच रास्तेमें राजाने औवैयार्को याद किया। औवैयार् अपने निवास-स्थानपर गणेश पूजामें लीन थीं। उनका मन थोड़ा विचलित हो उठा। प्रज्ञाबलसे बात समझकर वे तत्क्षण कैलास-यात्रामें उनके साथ होनेके विचारसे पूजामें जल्दी करने लगीं। उसी समय गजमुख श्रीगणेशजीने उन्हें शान्त करते हुए कहा कि 'अनुष्ठानके सम्पन्न होनेपर तुम उनके पहले ही कैलास पहुँच जाओगी।' तब शान्त एवं सानन्द मनसे उन्होंने गणेशकी प्रार्थनामें जो स्वानुभूतिपूर्ण गान गाया, वही यह 'विनायकर् अकवल' माना जाता है। इस प्रार्थना-गानकी समाप्तिके बाद क्षणभरमें भगवान् गणेशने औवैयार्को उठाकर कैलास-शिखरपर खड़ा कर दिया। स्वयं देरीसे पहुँचनेपर राजाने चकित मनसे उनसे प्रश्न किया। प्रश्नके उत्तरमें उनका कथन था—

> मतुर मोळि नल् उमैयाळ् पुतल्वन् मलर् पतत्तै
> मुतिर निनैय वल्लावर्क्करितो ? मुकिल् पोल् मुळंकि
> अतिर नटन्तिडु यानैयुं तेरुं अतन् पिन् वरुम्
> कुतिरैयुं कातं किळवियुं कातं कुलमन्नने।

अर्थात् उमानन्दन गणेशका अनवरत स्मरण करनेवालोंके लिये दुस्साध्य क्या है! रथ गज-तुरगादि कोसों पीछे रह जायँ, पर बूढ़ी कोसों आगे निकल जा सकेगी। स्पष्ट है कि गणेशध्यानमें निमग्न अजपा जप सिद्ध योगबलसे ही औवैयार् कैलास शिखरपर एकदम पहुँच गयी थीं। ब्रह्मरन्ध्र-सरसीरुहोदरस्थित शिव परमहंससे एक हो चिदानन्दामृतपान करती हुई वे अमर हैं, ऐसी उस प्रदेशवासियोंकी मान्यता है।

'केकारव'को तमिळमें 'अकवल' कहा जाता है। तमिळके एक छन्दविशेषका भी यह नाम होता है। केकारव आलापमें गणेशको पुकारकर प्रार्थना करनेकी रीतिसे रचित ७२ पंक्तियोंका यह गीत है। इस गीतमें भगवान् सम्बोधित करते हुए उनके संक्षिप्त [illegible] है। तत्पश्चात् स्वानुभूतिका निवेदन करते हुए अन्तमें चरणोंपर अपनेको न्योछावर कर दिया गया है। भक्ति-रस-सिक्त गीतका एक अंश इस प्रकार है—

शीतलकल्पकचेन्तामरैन्नम्
पातचिलंगु पल्गिरो पाद
मोन्नरे शगुं पुरुकिल् आटैगु
पन्न महंकिळ् वक्षन्तंळकेरिन
तत्तव निर्लयत्तन्तेने भाण्ट
वित्तक विनायक पिरै कल्ल् शरणे ॥

'शीतल कल्पक गन्धसे युक्त लाल कमल-सम चरणं संगीत-वैचित्र्यमें बजनेवाले नूपुरोंसे शोभित होनेवाले स्वर्ण कटिसूत्र एवं कोमल शुक्लाम्बर-परिध देदीप्यमान सूक्ष्म कटि प्रदेशवाले सर्वसमर्थ विनाय देवी गन्धयुक्त तेरे चरण-कमल ही शरण्य हैं (उन्हीं मैं न्योछावर हूँ)।'

तेलुगु कवियोंका गणेश-स्मरण

(लेखक—श्रीवल्लपल्लि भास्कर रामकृष्णमाचार्युलु बी०ए०, बी०एड०)

तेलुगु भाषा दक्षिण भारतकी प्रधान भाषाओंमेंसे एक है। गत एक हजार वर्षोंमें तेलुगु-भाषाके लगभग सभी प्रसिद्ध कवियोंमें श्रीगणेशजीका स्मरण किया है। यहाँ सीमित स्थानमें कुछ कवियोंके गणेश स्मरणोंका परिचय दिया जाता है—

नन्नेचोड कविराज (११-१२ शती)—इनका 'कुमार-सम्भव' आन्ध्र वाङ्मयका अद्भुत रत्न है। इसमें इन्होंने गणेशकी स्तुति अनोखे ढंगसे की है—

सितदन्तयुगंबचिरांशुलारम गचं
तनुवसितास्बुजंन भुस गजंनम्बुग
रसद्रुचि शक्रशरासनंबुनै चन
मदवारिवृष्टि हितमस्यं समृद्दियनथ वेळ नो
जनु गणनाथुडिच्चु ननिशम्बु न भीष्ट फलंबु मारुिलन् ॥

'गणेशजीके शरीरकी छवि काले मेघकी तरह, सफेद कान्तिवाले दाँत मेघके थरे (Edge) की भाँति, उनके कटाक्ष इन्द्रचापके सदृश और उनका मदस्राव जल वृष्टि (जो धन-धान्य-समृद्धिका हेतु है) के समान है। ऐसे मेघरूपी श्रीगणेशजी हमारे अभीष्टोंकी पूर्ति करें।'

यहाँ श्रीनन्नेचोडद्वारा गणेशजीकी शरीरकान्तिको काला कहना तथा उनको मेघसे अभिन्न कहना दोनों विशिष्ट ही हैं।

पेरंना (१३००—१३५० ई०)—अपने 'नरसिंहपुराण'के आरम्भमें इन्होंने गणेशजीकी स्तुति इस प्रकार की है—'अम्बिकाजी पुत्र प्रेमके वशीभूत हो गणेशजीका आलिङ्गन करने लगीं। माताजीके इस आलिङ्गनसे मुदित गणेशजी हमारा मनोरथ पूरा करें।'

बम्मेर पोतना (चौदहवीं शती)—ये तेलुगु-भाषाके भक्त-कवियोंमें अग्रगण्य हैं। इन्होंने दारिद्र्य-पीड़ित होनेपर भी राजाश्रयकी उपेक्षा करके सेठोंसे जं विशेष किया और श्रीरामचन्द्रकी प्रेरणासे 'श्रीमद्भागवत'को आ भाषामें लिखकर आत्महित तथा लोक-कल्याणको सि किया। इन्होंने अपने भागवतमें श्रीगणेशजीकी प्रार्थना बहु ही सुन्दर ढंगसे की है।

अल्लसानि पेद्दना (सोलहवीं शती)—इन्हों 'मनुचरित्र'-नामक एक प्रबन्ध-काव्यकी रचना की है, जिस आन्ध्रभाषामें अपनी मौलिकताके कारण विशिष्ट स्थान है रचना-वैशिष्ट्यके कारण आप प्रबन्ध शैलीके प्रवर्तक कहे ज हैं। इन्होंने गणेशजीकी बाल्यलीलाका वर्णन गणेश-स्मरण यों किया है—

'गणेशजी सतीजीके अङ्कमें लेटकर स्तन-पान करने लगे। उन्होंने बाल-चापल्यसे सतीजीके दूसरे स्तनको अपने शुण्डसे पकड़नेकी चेष्टा की। परंतु अर्द्धनारीश्वरका शेष भाग शिवस्वरूप था और दूसरे स्तन भागपर नागराज विद्यमान थे। उन नागराजको मृणाल समझकर उसे पकड़नेकी कोशिश करनेवाले श्रीगणेशजी कृतिपतिको समस्त सौभाग्य प्रदान करें।'

धूर्जटि (सोलहवीं शती)—इन्होंने अपने 'काळहस्तीश्वर-माहात्म्य'में गणेशकी स्तुति उदात्त रीतिसे की है—

'अपने-अपने कार्यके निर्विघ्न सम्पादनकी अभिलाषसे प्रेरित होकर सृष्टि, स्थिति तथा लयके समय ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर जो श्रीगणेशजी अपने स्मरणमात्रसे ही विघ्न-नाश तथा कामना पूर्ति कर देते हैं, उन दया-समुद्र श्रीगणेशजीकी हम उपासना करते हैं।'

इस तरह समय तथा स्थानाभावके कारण बहुत ही परिमितरूपमें कवियोंका परिचय दिया गया है।

वङ्गदेशमें श्रीगणेशोपासना

(लेखक—श्रीरासमोहन चक्रवर्ती एम्० ए०, पी-एच्०डी०, पुराणरत्न, विद्या-विनोद)

वङ्गदेशमें सेन राजवंशके संस्थापक विजयसेन और उनके पुत्र वल्लालसेन (बारहवीं शताब्दी) शैव मतावलम्बी थे। वे लोग 'परम माहेश्वर' उपाधि धारण करते थे। उनके पूर्वज दक्षिण भारतके अन्तर्गत कर्णाटकसे वङ्गदेशमें आये थे। सम्भवतः उस समय दक्षिण भारतीय शैव-गाणपत्य-सम्प्रदायका आविर्भाव भी उनके ही द्वारा वङ्गदेशमें हुआ था। राजा लक्ष्मणसेनने शैवमत त्यागकर वैष्णवधर्ममें दीक्षा ली थी। लक्ष्मणसेनके सभासद और सुहृद् वटुदासके पुत्र श्रीधरदासने १२०६ ई०में 'सदुक्तिकर्णामृत'-नामक एक प्रसिद्ध संस्कृत कविता संग्रहका संकलन किया था। 'सदुक्तिकर्णामृत'में गणेशके सम्बन्धमें पाँच कविताएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें पुरुषोत्तमरचित दो, दक्षरचित एक, पापाकररचित एक तथा लक्ष्मणसेनके एक सभाकवि उमापतिधररचित एक श्लोक है। इन कविताओंसे तत्कालीन वङ्गीय समाजमें गणेशके सम्बन्धमें जो तत्त्व-भावना थी, उसका परिचय प्राप्त होता है। सभाकवि उमापतिधररचित श्लोक इतना प्रसिद्ध है कि शताब्दियोंसे पूजा-अर्चनामें गणेशके नमस्कारके मन्त्रके रूपमें हिंदू समाजमें व्यापकरूपसे व्यवहृत होता चला आ रहा है। वह इस प्रकार है—

> देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः ।
> विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः ॥*
>
> (सदुक्ति कर्णामृत १ । २९ । ५)

सिद्धिदाता गणेश

इस बातमें बंगाली हिंदूमात्रकी प्रगाढ़ आस्था है। सब प्रकारकी आपद्-विपद्में गणेशका नाम लेनेसे विपत्तिका नाश होता है। किसी धर्म कार्यको करते समय, पुस्तक लिखते समय, गृह निर्माणके समय—सब कार्योंके प्रारम्भमें गणेशजीका नाम लिया जाता है। बंगाली हिंदू गणेशको नमस्कार करके यात्रा करता है; व्यवसायी अपने कार्यालयमें सिन्दूरसे 'सिद्धिदाता गणेश', 'श्रीगणेशाय नमः' आदि लिखता है। वङ्गदेशमें बंगाली हिंदूमात्र प्रथम वैशाख नववर्षके मेलेसे गणेशकी एक मूर्ति खरीदकर सबसे पहले अपने घरके द्वारदेशमें उसका स्थापन करके पञ्चोपचार-पूजा करते हैं और गणेशको सिन्दूर अर्पण करते हैं; पश्चात् उस सिन्दूरसे रौप्यमुद्राको वेष्टित करके उस मुद्राको माङ्गलिक द्रव्यके रूपमें यत्नपूर्वक पेटीमें रखते हैं और दीवारके ऊपर तथा बही-खातेमें सिन्दूरसे 'सिद्धिदात्रे गणेशाय नमः' लिखते हैं। पूजाके अन्तमें उस गणेशमूर्तिको द्वारदेशके ऊपरी भागमें स्थापित करते हैं और प्रातः-संध्याकालमें उसे धूपादि प्रदान करते हैं। गृहस्थ किसी कार्यके लिये यात्रा करते समय सिद्धिदाता गणेशको प्रणाम करके बाहर जाते हैं।

स्कन्दपुराणके मतसे भाद्रमासके शुक्लपक्षकी चतुर्थी तिथिको गणेशने पार्वतीनन्दनके रूपमें कैलासमें जन्म लिया था। किंतु दूसरे मतसे वे माघमासकी शुक्ल-चतुर्थीको आविर्भूत हुए थे। इस कारण गणेश-पूजा और व्रत आदि साधारणतया दाक्षिणात्य और बम्बई-प्रदेशमें भाद्रमासकी शुक्ल-चतुर्थीको अनुष्ठित होते हैं और गृह आदि आलोक मालासे सुसज्जित होते हैं। किंतु वङ्गदेशमें गणेश-पूजामें विशेष आडंबर नहीं दिखलायी देता और थोड़े ही लोग मूर्ति खरीदकर पूजादि करते हैं। वङ्गदेशमें कहीं-कहीं भाद्रमासकी शुक्ल चतुर्थीके दिन सिद्धि विनायकीय-व्रत अनुष्ठित होता है।

(क) गणेश-पूजा—वङ्गदेशमें गणेश-पूजामें दो प्रकारके ध्यान मन्त्र प्रचलित हैं। उनमेंसे एक पौराणिक है और दूसरा तान्त्रिक। निम्नाङ्कित पौराणिक ध्यान-मन्त्र अधिक प्रचलित है—

> खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
> प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम् ।
> दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
> वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम् ॥*

गणेशजीका पौराणिक मन्त्र है—'ॐ नमो गणेशाय।' †

---

* देवराज इन्द्रके मुकुटमें विद्यमान मन्दार-मालाके मकरन्द-कणोंसे अरुणवर्ण हुई श्रीगणेशके चरण-कमलोंकी धूलियाँ हमारे विघ्नोंका निवारण करें।

* जिनका शरीर नाटे कदका और स्थूल है, मुख गजराजका-सा है और उदर लंबा है; जो सुन्दर हैं, जिनके गण्डपर झरते हुए मदकी गन्धके लोभी भ्रमर मँडरा रहे हैं; जो अपने आघातसे विदीर्ण किये गये शत्रुओंके रुधिरसे मानो शोभा धारण करते हैं, उन सिद्धिदाता, मनोरथ-पूरक, नन्दन गणपतिकी मैं वन्दना करता हूँ।

गणेशजीका तान्त्रिक ध्यान है—

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं
दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद् बीजपूराभिरामम्।
बालेन्दुद्योतमौलिं करिपतिवदनं दानपूरार्द्रगण्डं
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम् ॥*

गणेशका तान्त्रिक मन्त्र है—'गं गणपतये नमः ।'

गणेशका प्रणाम-मन्त्र है—

एकदन्तं महाकायं लम्बोदरं गजाननम्।
विघ्ननाशकरं देवं हेरम्बं प्रणमाम्यहम् ॥†

(ख) सिद्धिविनायकव्रत—सर्वाभीष्ट-सिद्धिकी कामनासे वङ्ग-देशमें यह व्रत भाद्रपद-मासकी शुक्लचतुर्थीमें अनुष्ठित होता है । पूजाके अन्तमें भविष्यपुराणोक्त 'सिद्धि विनायक-व्रत-कथा'-का पाठ होता है । इस व्रत कथासे ज्ञात होता है कि 'कौरव-पाण्डव-युद्धके पूर्व युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे प्रश्न किया था कि उस महायुद्धमें जय प्राप्त करनेके लिये किस देवताकी पूजा करना ठीक होगा ।' श्रीकृष्णने उत्तर दिया था—

पूजयध्वं गणाध्यक्षं उमामलसमुद्भवम् ।
तस्मिन् सम्पूजिते देवे ध्रुवं राज्यमवाप्स्यथ ॥

'उमाके देहमलसे समुद्भूत गणेशकी तुमलोग पूजा करो; उनके सम्यक् रूपसे पूजित होनेपर तुम निश्चय ही राज्य प्राप्त करोगे ।'

(ग) वङ्गीय स्मृति-निबन्धोंमें पञ्चदेवोपासना और श्रीगणेश—सनातनधर्मावलम्बी हिंदू प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त हैं—श्रौत और स्मार्त। स्मार्त लोगोंकी संख्या यहाँ अत्यधिक है और इनमें दीक्षित-अदीक्षित प्रायः सभी पञ्चदेवता अर्थात् विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेशकी एक साथ उपा[सना] करते हैं । किसी विशेष देवताके मन्त्रमें दीक्षित स[्मार्त] उपासक पूजाके समय अपने इष्ट देवताको स्वभावतः प्रा[धान्य] प्रदान करता है, किंतु वह पञ्चदेवोपासनाके अङ्गीभूत [अन्य] देवताको भी हार्दिक श्रद्धा भक्ति समर्पण करता है[।] पञ्चदेवोपासनाके अभिन्न अङ्गके रूपमें गणपतिकी उपा[सना] स्मार्त-मतावलम्बी हिंदूमात्रमें सर्वत्र प्रचलित है । स[्मार्त] गृहस्थके घर नित्य-नैमित्तिक पूजा आदिमें [...] अन्नप्राशन, उपनयन एवं विवाहादि संस्कारोंमें सर्व[प्रथम] विघ्नविनायक सिद्धिदाता गणेशकी अर्चना की जाती [है।] इसी कारण पुरोहित 'गणेशादिपञ्चदेवेभ्यो नमः'—[इस] मन्त्रसे पुष्पाञ्जलिद्वारा गणेशसे ही आरम्भ क[रके] पञ्चदेवोंकी पूजा समाप्त करते हैं और तत्पश्चात् वे अ[न्य] कार्यमें लगते हैं ।

वङ्गीय स्मृति-निबन्धोंसे ज्ञात होता है कि बङ्गा[ली] जीवनमें बारहों महीने पूजोत्सवादि लगा रहता है। ध्यान दे[ने] की बात यह है कि वङ्गदेशमें मध्ययुगमें वैदिक याग-य[ज्ञ] आदिका विशेष प्रचलन नहीं था। समाजमें व्रतानुष्ठान[का] प्रचलन अवश्य अधिक था। इन व्रत-संक्रान्ति-आचार आदि[में] विशेषतः स्नान-काल आदिमें पुराणोंका यथेष्ट प्रभाव दी[ख] पड़ता है । वङ्गीय स्मृति निबन्ध समूहपर, विशेषतः शूलपा[णि] (पंद्रहवीं शताब्दी) से लेकर रघुनन्दन और गोविन्दानन्द[के] काल (१६-१७ वीं शताब्दी) तक रचित निबन्धोंपर तन्त्रों का प्रगाढ़ प्रभाव दीख पड़ता है । वङ्गदेशके पूजा-उत्सवादिमें तान्त्रिक मन्त्रोंका प्रयोग, तान्त्रिकमण्डल, मुद्रा, यन्त्र आदिका व्यवहार विशेषरूपसे परिलक्षित होता है । जीवनमें तान्त्रिक दीक्षाकी अपरिहार्यता भी इस देशमें स्वीकृत हुई थी। समाजमें जिन सम्प्रदायोंका प्रभाव था, उनमें शैव, शाक्त और वैष्णव प्रधान थे । इन तीन प्रधान सम्प्रदायोंके अतिरिक्त वङ्गदेशके हिंदू-समाजमें सौर, गाणपत्य, पाशुपत, पाञ्चरात्र, कापालिक आदि अनेक सम्प्रदाय विद्यमान थे।

वङ्गदेशके स्मृति-निबन्धकारोंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध स्मार्त रघुनन्दन भट्टाचार्य थे । उनका समय १५०० से १६०० ई०के बीच माना जाता है। अपनेद्वारा रचित सुप्रसिद्ध स्मृतिनिबन्ध 'अष्टाविंशति तत्त्व'में उन्होंने जो अगाध शास्त्र-ज्ञान, स्वाधीन चिन्तन और सूक्ष्म-विचार-विश्लेषणका परिचय दिया है, वह अत्यन्त विस्मयप्रद है । रघुनन्दन भट्टाचार्यने [...] निबन्धके देव-पूजा प्रकरणमें पञ्चपुराणके

---

* जो सिन्दूरकी-सी अङ्गकान्ति धारण करनेवाले और त्रिनेत्रधारी हैं; जिनका उदर बहुत मोटा है; जो अपने चार हस्त-कमलोंमें दन्त, पाश अङ्कुश और वर-मुद्रा धारण करते हैं; जिनके विशाल शुण्ड-दण्डमें बीजपूर (बिजौरा नीबू या अनार) शोभा दे रहा है; जिनका मस्तक बालचन्द्रसे दीप्तिमान् और गण्डस्थल मदके प्रवाहसे आर्द्र है; नागराजको जिन्होंने भूषणके रूपमें धारण किया है तथा जो लाल वस्त्र और अरुण अङ्गरागसे सुशोभित हैं, उन गजेन्द्रवदन गणपतिका भजन करो।

† जो एक दाँतवाले, विशाल काय, लम्बोदर, गजानन एवं विघ्नविनाशक हैं, उन हेरम्बदेवको मैं प्रणाम करता हूँ ।

वन उद्धृत करके पञ्चदेवताकी पूजाका विधान इस प्रकार या है—

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं यथाक्रमम्।
नारायणं विशुद्धाख्यमन्ते च कुलदेवताम् ॥*

सब देवताओंमें पहले गणेशकी पूजा करनी चाहिये— दौ विनायकः पूज्यः अन्ते च कुलदेवता।' सबसे े गणेशकी पूजा नहीं करनेसे किस प्रकार विघ्न स्थित होता है, इस सम्बन्धमें उन्होंने भविष्यपुराणसे लिखित प्रमाण उद्धृत किया है—

देवतादौ यदा मोहाद् गणेशो न च पूज्यते।
तदा पूजाफलं हन्ति विघ्नराजो गणाधिपः ॥

'यदि मोहवश देवताओंके आदिमें गणेशकी पूजा नहीं की है तो विघ्नराज गणेश पूजाके फलको नष्ट कर देते हैं।'

"अथ गणेशपूजनम्। तत्र तुलसीव्यतिरेकेण। 'न ा विनायकम्' इति वचनात्।" (आह्निकतत्त्वम्)। की पूजामें तुलसीदलका व्यवहार निषिद्ध है। के आवाहन-मन्त्रमें भी वैशिष्ट्य है। तीनों व्याहृतियों ा गणेशका आवाहन करते हैं। यथा 'ॐ भूर्भुवः पते इहागच्छागच्छ, इह तिष्ठ इह तिष्ठ, अत्राधिष्ठानं मम पूजां गृहाण।'

घुनन्दनने इस सम्बन्धमें वायुपुराणका निम्नलिखित उद्धृत किया है—

विनायकं तथा दुर्गां वायुमाकाशमेव च।
आवाहयेद् व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ ॥
(आह्निकतत्त्वम्)

घ) वङ्गदेशके तान्त्रिक निबन्धोंमें गणेश और त्य-सम्प्रदाय

ङ्गदेशके पूजा-उत्सवों तथा स्मृति-निबन्धोंपर तान्त्रिक स्पष्ट दीख पड़ता है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुके सम अथवा किंचित् परवर्ती श्रीकृष्णानन्द आगम-वागीश (१६वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें) तन्त्रशास्त्रके धुरंधर विद्वान् थे। उनके द्वारा रचित सुप्रसिद्ध पुस्तक 'तन्त्रसार'में हिन्दुतन्त्रके सब सम्प्रदायोंका सार लिपिबद्ध है। इस ग्रन्थमें शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर और गाणपत्य-सम्प्रदायोंके उपास्य देवी-देवताओंके मन्त्र यन्त्र, पूजा-विधि इत्यादि विशद रूपमें वर्णित हैं।

'तन्त्रसार'में संक्षेप-दीक्षा, पञ्चायतनी-दीक्षा आदि कति अन्य दीक्षा-विधियाँ भी वर्णित हैं। पञ्चायतनी-दीक्षाके पू क्रमका जो वर्णन यामल-तन्त्रशास्त्रसे उद्धृत करके आग वागीश महोदयने 'तन्त्रसार' पुस्तकमें विवृत किया है, उस देखनेपर स्मार्त पञ्चोपासनाकी बात ध्यानमें आती है पञ्चायतनी-दीक्षामें शक्ति, विष्णु, शिव, सूर्य और गणेश— इन पाँच देवताओंके पाँच यन्त्र अङ्कित करके उन उपर्युक्त पञ्चदेवताओंकी पूजा की जाती है। इन विशेषता यह है कि गुरु यदि इन पाँच देवताओंमें शक्तिक प्रधान मानकर भावना करता है (शाक्त-सम्प्रदायके पक्षमें) तो शक्तिका यन्त्र मध्य भागमें अङ्कित करके उस की पूजा की जाती है। उस यन्त्रके ईशानकोणमें विष्णु, अग्निकोणमें शिव, नैर्ऋत्यकोणमें गणेश और वायुकोणमें सूर्यका यन्त्र निर्माण करके उनकी पूजा की जाती है। गाणपत्य-सम्प्रदायके साधक मध्यस्थानमें गणपति-यन्त्र अङ्कितकर अन्य देवताओंको निम्नोक्त क्रमसे स्थापित करके पूजा करते हैं—

गणनाथं यदा मध्ये ऐशान्यां केशवं यजेत्।
आग्नेय्यामीश्वरं चैव नैर्ऋत्यां तपनं तथा ॥
वायव्यां पार्वतीं चैव पूजयेन्मोक्षसाधिनीम्।
स्वस्थानवर्जिता देवा दुःखशोकभयप्रदाः ॥

'मध्यस्थानमें गणेशकी पूजा करते समय ईशानकोणमें विष्णु, अग्निकोणमें महादेव, नैर्ऋत्यकोणमें सूर्य तथा वायुकोणमें मोक्ष-साधिनी पार्वतीकी पूजा करें। स्थान-व्यतिक्रम होनेपर देवता दुःख, शोक और भय प्रदान करते हैं।'

'तन्त्रसार'के द्वितीय परिच्छेदमें गणेश-प्रकरण प्राप्त होता है। उसके प्रारम्भमें ही लिखा है—

अथ वक्ष्ये गणपतेर्मन्त्रान् सर्वार्थसिद्धिदान्।
यज्ज्ञात्वा मानवा नित्यं साधयन्ति मनोरथान् ॥

'अब सर्वार्थसिद्धिप्रद गणेशके मन्त्रोंको बतलाऊँगा। इन मन्त्रोंको जानकर साधक सब प्रकारके मनोरथोंको सिद्ध करता है।'

तन्त्रसारमें गणेशकी विभिन्न प्रकारकी मूर्तियों, उनके मन्त्र और पूजाकी विधियोंका वर्णन है। वङ्गदेशमें मध्ययुगमें गाणपत्य सम्प्रदायका अस्तित्व था और उसकी उपासक मण्डली भी थी—आगमवागीशके सुप्रसिद्ध तान्त्रिक निबन्ध 'तन्त्रसार'से यह प्रमाणित होता है।

* पहले क्रमशः सूर्य, गणेश, दुर्गादेवी, रुद्र तथा विशुद्ध नारायणदेवकी पूजा करके अन्तमें कुलदेवका पूजन करे।

छत्तीसगढ़ी लोकगीतोंमें श्रीगणेश

(लेखक—श्रीचतुर्भुजसिंहजी वर्मा)

गणेशजीका प्रायः सभी सम्प्रदायों एवं सभी धर्मोंमें पूजनीय होनेके कारण जनमानसपर भी अमिट प्रभाव पड़ा है, उसीको देखकर गाँवके एक अबोध बच्चेने अपनी मूक भाषामें प्रथम श्रीगणेशजीकी वन्दना कर फिर अपने इष्टदेव श्रीहनुमानजीका गुणगान किया है। यहाँ छत्तीसगढ़ी भाषाका इसी प्रकारका एक बालगीत प्रस्तुत किया जा रहा है

हाथी झोंके हाथी झोंके, पायके पइंयाँ ओ।
दोनों भुजा खंभ काम, छाती गुदक काम॥
नदी नाका दीप डार, कहँय्या का मारे तीन लात।
झोंको कदम्मा, कदम्मा, कदम्मा॥

'हे हाथीके बच्चेके समान सूँड़वाले श्रीगणेश! हम आपके पैरोंको पकड़कर प्रणाम करते हैं।' हनुमानजीको आवाहन करके कहते हैं कि 'आपकी भुजाएँ और छाती बलवान है, ऐसे हनुमानको मैं नमन करता हूँ। नालेसे नदी और नदीसे समुद्रमें उसी तरह पानी उस प्रकार भरा हो, ऐसे समुद्रको एक छलाँगमें दूरकर लाँघनेवाले तथा 'मोर कहार लंक कर खोल……?' प्रचार करनेवाली उस लंकिनीको लातसे मारकर दूर कर देनेवाले श्रीहनुमानजीको मैं सादर नमस्कार करता हूँ। फिर मन्त्रसिद्ध पूँछसे कदम-कदम उछल-कूदकर लंका जलानेवाले श्रीहनुमानको प्रणाम कर मैं अपना मेल करता हूँ।'

छोटा नागपुरमें श्रीगणेश-भक्ति

(लेखक—श्रीगोकुलचंद्रजी रावत)

बिहार-प्रान्तका दक्षिणी भाग छोटा नागपुर पाँच जिलोंकी एक कमिश्नरी है। यहाँकी रीति-नीति उत्तर बिहारसे सर्वथा भिन्न है। यह बिल्कुल जंगली स्थान था, जहाँपर आदिवासी मुण्डा-जातिके राजा थे। अब इस जंगलको 'झारखण्ड' कहते हैं।

यहाँके ग्राम्यगीतोंमें फगुआ और झूमर अधिक प्रसिद्ध हैं। सबसे पिछड़ा भाग होनेपर भी यहाँके कई अनपढ़ कवियोंने अपनी रचनाओंमें सर्वप्रथम गणेशजीकी वन्दना की है, जो बहुत ही प्रभावशाली प्रतीत होती है। प्रत्येक कार्यके आरम्भमें गौरी-गणेशकी पूजा अनिवार्य है। जहाँ-तहाँ पर्वतोंमें भी चट्टानपर गणेशकी प्रतिमाएँ मिलती हैं। इससे प्रतीत होता है कि जंगल-निवासी लोग भी अनादिकालसे गणेशकी पूजा करते आ रहे हैं। उनके गीतोंमें गणेशका वर्णन बड़े सुन्दर ढंगसे किया गया है। दो गीत यहाँ दिये जा रहे हैं, जिनसे गिरिजा-वनवासियोंकी श्रीगणेश-भक्तिकी झलक मिल सके।

फगुआ गीत (होलीके अवसरपर गाया जाता है)

बंदौ गणेश गणनायक, देहु बुधि वरदान, बंदौ गणेश गणनायक।
बुधि सागर, अति नागर, प्रभु दयाके निधान।
जन-रक्षक, अघ-भक्षक, सब गुन कर खान।
सेन्दुर भूषण, भभूती तन, सिद्धिप्रद सुख-खान।
मूस-वाहन, गज-वदन, गौरी-शंकर-संतान।
लम्बोदर, अति सुन्दर, जेहि सूप-सम कान।
एक-रदन, गज-वदन रूप अनूप सुजान।
दासी मति रंकपर करू वेगी प्रभू देहु शुभ ज्ञान।
जेहिते करब हम वर्णन, हरि-हर-गुन-गान।

झूमर (वर्षामें गाया जाता है)

दोहा

गजेन्द्र वदनं, लम्बोदरं, शैलसुता कर सूत।
द्विज विशेश्वर पद वंदत, दुइयो कर संयुत॥
विघन-हरन, हर-नन्दन करौं पद-वन्दन।
लम्बोदर, गजमुख, शुभके सदन सुख, सुमिरत कटे भव-फंदन॥
सादर आरज मोरि, देहु न आखर जोरि, चाहत करन गुन कन्दन।
अत हरि विद्या पाय, कण्ठमें बसहु आय, विशेश्वर केर उर आनंद॥

लोकाचारमें श्रीगणेश

(लेखक—डा० श्रीधनवल्लीजी)

मङ्गल-मूर्ति श्रीगणेशका अस्तित्व शक्ति एवं शिवके युगल-तत्त्वोंका साकार स्वरूप है। कुछ पौराणिक कहानियोंके अनुसार स्वयं विष्णुभगवान् ही माता पार्वतीकी इस वात्सल्य-मूर्तिमें समाविष्ट हैं। इसीलिये जीवनके प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्यके आरम्भका शुभारम्भ तभी होगा, जब इन दोनों तत्त्वोंका सुखद स्वरूप सर्वोपरि होगा, सर्वप्रथम होगा। श्रीगणेशकी सर्वप्रथम पूजाका यही रहस्य है, यही कारण है।

सिद्धिदाता गणेश वैदिक तथा पौराणिक देवी-देवताओंमें जिस प्रकार मान्य हैं, साधारण लोक-जीवनमें भी उसी प्रकार सर्वपूज्य हैं।

लोक-जीवन प्रकृतिका प्रतिरूप है। जटिल-से-जटिल तथ्यों और गूढ़-से-गूढ़ तत्त्वोंको भी जन-मानसके लिये सरल, सुबोध, सुग्राह्य ही नहीं, सरस भी कर देना लोक-जीवनकी अपनी विशेषता है। लोकाचार इसके प्रमाण हैं। लोक व्यवहार एवं रीति-रिवाजोंमें इसकी पुष्टि सहज ही होती है।

शुभारम्भका पर्याय 'श्रीगणेश' एक मुहावरा बन गया है। किसी भी कार्यको आरम्भ करनेका आग्रह यह कहकर किया जाता है कि 'श्रीगणेश कीजिये'। किसी महत्त्वपूर्ण कार्यके लिये घरसे दूर जाते समय 'सिद्धि-गणेश' कहना अत्यन्त शुभ समझा जाता है। गृह या मन्दिर-निर्माण कराते समय सबसे पहले गणपतिको स्थापित करा देनेसे सब संकट टल जाते हैं, विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाती हैं, ऐसा लोक-विश्वास है। इसी प्रकार लोकाचारके रीति रिवाजोंमें, जन्म-संस्कारोंमें तथा तिथि-त्योहारोंमें विघ्न विनाशक गणेशजीकी स्थापनाके बिना कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं किया जाता। कुछ उदाहरण देखिये—

सह-भोजोंमें—भोजन एवं तृप्तिकी देवी माता अन्नपूर्णा हैं। किंतु (उत्तर-प्रदेशके ग्राम्य-जीवनमें, जैसा मैंने देखा है,) भोजके आयोजनके आरम्भमें कड़ाही चढ़ानेके पूर्व ही मङ्गल-घट चूल्हेके पास रख दिया जाता है और कड़ाहीका श्रीगणेश 'गणेश-गौंठ'से किया जाता है। एक मोटी पूड़ी, जिसके चारों ओर गुझियाकी-सी नक्काशी की जाती है, कड़ाहीमें तलकर मङ्गल-घटपर रख दी जाती है। कुछ अनाज और द्रव्य भी साथमें रखा जाता है। भोजनकी समाप्तिपर यह सामग्री किसी मान्य ब्राह्मणको दे दी जाती है। असावधानीसे यदि 'गणेश-गौंठ' भूल जाय तो क्षमा माँगते हुए शीघ्र ही पहले यह कार्य सम्पन्न किया जाता है, फिर आगेकी कार्यवाही बढ़ायी जाती है। इस प्रकार सहभोजके आयोजनमें भोजनकी बढ़ोतरी तथा भोजकी सफलताके लिये सर्वप्रथम 'गणेश गौंठे' जाते हैं।

संस्कार-समारोहोंमें—हिंदू-जातिके सभी संस्कारोंमें किसी-न-किसी प्रकारके समारोह अवश्य आयोजित किये जाते हैं। संस्कारोंके प्रारम्भमें देव-पूजाके लिये जहाँ शक्ति एवं सौभाग्य-दायिनी माता गौरीकी स्थापना मिट्टीकी पाँच या सात डेलियाँ रखकर की जाती है, वहीं जल-भरे घट या मङ्गल-कलशमें गणेशजीकी भी प्रतिष्ठा की जाती है। इस प्रकार गणेश-गौरी या गौरी-गणेश-पूजनके पश्चात् ही आगेके कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

विद्यारम्भ-संस्कार-समारोहमें तथा वसन्तपञ्चमीके महोत्सव-पर (विशेषकर बंगालियोंमें) सरस्वती-गणेशकी पूजा होती है। महाराष्ट्रमें लेखन-कला सीखते समय 'श्रीगणेशाय नमः' से ही लिखना प्रारम्भ करते हैं। बहीखातोंमें, शुभ-संस्कारोंके निमन्त्रण-पत्रोंमें तथा साधारण पत्रोंमें भी 'श्रीगणेशाय नमः' लिखना अत्यन्त शुभ माना जाता है। यही कारण है कि बुद्धिदाता विनायकके बिना वाणीकी आराधना अधूरी ही रहती है।

तिथि-त्योहारोंमें— दीपावली लक्ष्मी-आवाहनका अनुपम पर्व है; किंतु लक्ष्मीके साथ भी गणेशजी प्रतिष्ठित हैं। कारण, क्षेम और लाभके जनक तो गणेशजी ही हैं। इसीलिये दीपावलीपर बाजारमें गणेश-लक्ष्मीकी युगल-मूर्ति ही मिलेगी।

इसके पश्चात् कुछ ऐसे त्योहार भी हैं, जिनका सम्बन्ध गणेश-जन्म-कथा तथा उनकी संकट निवारण शक्तिसे है। पौराणिक साहित्यके अनुसार गणेशजीकी उत्पत्ति भाद्रपद-मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको मानी गयी है। प्रदेशमें इसे 'बहुला' या 'बहुरा चौथ' कहते हैं। का अर्थ (अवधी भाषाके अनुसार) है—गया हुआ, जिसके आनेकी आशा कम थी या थी नहीं, आ गया। गणेश-

पंजाबके जन-जीवनमें श्रीगणेश

(लेखक—डा० श्रीनवरत्नजी कपूर, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पी०ई०एस०, एवं श्रीमती सरोजबाला कपूर, एम्० ए०)

पंजाबमें स्वतन्त्र-मन्दिरके निर्माण या मूर्तिकी स्थापनाके ... जिस परिमाणमें शक्ति शिवको सम्मान प्राप्त हुआ है, ... महत्त्व शक्ति शिव-तनय विघ्नविनाशक श्रीगणेशजीको ... ही उपलब्ध न हुआ हो, किंतु मङ्गलमूर्ति गजानन ...रूपमें पार्थक्यकी प्रतिमा न बनकर हमारे लोक-जीवनमें ...रूपके प्रतीक बनकर अवतरित हुए हैं। वे पंजाबियोंके ...क जीवनके आस्था-विश्वासोंमें इतने घुल-मिल गये हैं कि ...जीके प्रति हमारी श्रद्धा अनन्यताकी सीमाएँ लाँघ ... है।

नवनिर्मित मकानोंको बुरी नजरसे बचानेके लिये अब ...र्मिक प्रवृत्तिके अनेक महानुभाव अपने घरोंके सिंहद्वार- ... मिट्टी या प्लास्टिककी बनी गणेशजीकी मूर्ति छोटे-से ...ड़े और शीशेमें मँढ़वाकर लगवाते हैं। सम्पन्न परिवारके ...तमवादी घरोंके मुख्य द्वारपर अब भी गजानन ...वान्की पाषाण-प्रतिमाके दर्शन कहीं-कहीं हो जाते हैं। ...धिकांश वैश्य-परिवारोंमें लोहेकी छड़ोंवाले रोशनदान ...खिड़कीमें सिन्दूरी रंगमें पुती गणेश एवं लक्ष्मीकी ...की मूर्तियाँ ही प्रायः दृष्टिगोचर होती हैं।

पुराने मन्दिरों और पुरानी हवेलियोंके मुख्य द्वारके ...कुछ ऊपर एक छोटेसे आलेमें अब भी गणेशजीकी ...रकी प्रतिमाएँ देखनेको मिलती हैं। कहीं-कहीं तो ...ड़ीके दरवाजेके चौखटके ऊपरवाले पल्लेमें बढ़ईद्वारा ... गणेशजीकी मूर्ति भी दिखायी पड़ती है। आर्थिक बोझसे ...त ये खानदानी लोग अब साल दो सालके बाद घरमें

और हनुमानजी प्रहरीके रूपमें प्रत्यक्ष विद्यमान हैं। स्वभावतः ही पार्वती-पुत्र एवं रामसेवकके सम्मुख भक्तजन शीश झुकाकर भगवान् सत्यनारायणका चरणामृत प्राप्त करते हैं।

श्रीगणेशजी ठहरे भोलेबाबाके आत्मज। वे पैतृक गुणोंसे विभूषित सभी स्थानोंपर सामञ्जस्य स्थापित कर लेते हैं। पंजाबके प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्रोंकी ओरसे छपनेवाले नये वर्षके कलेंडरोंमें वीणावादिनी सरस्वती और ऐश्वर्य-वर्षा करती लक्ष्मीके पास अपने वाहन मूषकके साथ गजाननके भी दर्शन होते हैं।

श्रीगणेशजीने पंजाबी-जीवनको और भी प्रभावित किया है। भगवान् रामके सिंहासनासीन होनेके उपलक्ष्यमें उन्हें लक्ष्मीकी उपलब्धिके प्रतीकस्वरूप दीपावली त्योहार पंजाबी घरोंमें तबतक नहीं मनाया जाता है, जबतक बाजारसे लक्ष्मीसहित गणेशका नया चित्र अथवा नयी मूर्ति खरीदकर नहीं लायी जाती।

हिंदू परिवारोंमें भले ही चैत्र और आश्विनके नवरात्रोंमें दुर्गाष्टमीके दिन दुर्गा-पूजन हो, विजयादशमी (दशहरे) के दिन राम-पूजा हो, करवा चौथ (दीवालीसे ग्यारह दिन पहले) के मा... नसे भले ही सुहागिनें पतिकी शुभकामनाके लिये 'पोंजा मनसें' (बड़ी-बड़ी मठड़ियाँ घरकी सबसे बड़ी महिलाको देना), 'अहोई आठें' (दीवालीसे सात दिन पूर्व) के दिन बालकोंके मङ्गलमय जीवनके लिये 'अहोई माता' से प्रार्थना करें, 'देवीठान' (देवोत्थान) एकादशीका पर्व परिवारके लोग मना रहे हों—सर्वत्र गणेशजीका स्थान ...ग्री है।

सभी त्योहारोंसे सम्बन्धित देवी-देवताओंका नाम ... (मौली लिखना) से पहले मौली लिपटी

सिरी गनेशाय नमः, मङ्गलकारी विघनहारी (विघ्नहारी) श्री सिरी गणेशजी नमः' इत्यादि ।*

'संकटहारी' नाम पंजाबमें गणेशजीके लिये प्रचलित है । सम्भवतः ओंकेश्वरकी भाँति भोले-भाले होनेके कारण शीघ्र प्रसन्न हो जानेवाले एवं शक्तिपुञ्ज, मङ्गल करनेवाले तथा पराक्रमपूर्ण गणेशजीको 'संकटहरण'की उपाधि मिली है । पंजाबीमें 'क' से 'ग' (मकर मगर) और 'ट' से 'ड' या 'ड़' (कड़-कड़ा) होनेकी प्रवृत्ति है । इसी प्रकार संस्कृत हिंदीका शब्द 'संकट' पंजाबीमें 'सँगड़' में परिणत हो गया । कार्तिकके कृष्णपक्षकी चतुर्थीको हिंदू महिलाएँ कठिन उपवास करती हैं; दिनभर अन्नकी एक बूँद भी मुँहमें नहीं डालतीं । सूर्यास्तके उपरान्त सारा परिवार सम्मिलित होकर 'गणेश-पूजन' (सुपारीको तिलक लगाकर) करता है । यह त्योहार चौथको मनाया जाता है । पाटेपर सुपारी रखकर पूजा होती है । चढ़ावेके रूपमें गुड़ मिलाकर तिलकुटे और रोटीके टुकड़ोंके (चूरीके) अलग-अलग पदार्थ (जो रूईकी पूनी-जैसे लंबे होते हैं) बनाकर गणेशजीको अर्पित किये जाते हैं । इन्हींका नैवेद्य वितरण होता है । 'करवा चौथ'की भाँति रात्रिमें 'चन्द्रदर्शन' के उपरान्त ही व्रतधारिणी देवी भोजन करती है । गणेशजीकी तुष्टिके निमित्त उसे 'विघ्नहरण'से प्रार्थना करनेके लिये भूखे रहनेका संकट सहना पड़ता है । तभी इस व्रत-त्योहारको 'सँगड़ चौथ' की अभिधा प्रदत्त की गयी है ।

विवाहके समय वर और वधूके हाथमें जो कङ्कण (पंजाबी शब्द 'कंगना') पहनाया जाता है, वह मौलीका बना रहता है । उसमें लोहेके एक छल्ले और कौड़ीके साथ सुपारी भी पिरोयी जाती है । कङ्कणमें सुपारीका होना गणेशजीके अङ्ग-सङ्ग रहनेका प्रतीक है । मकानकी छतमें लकड़ीका नया शहतीर या लोहेका गर्डर डालनेके समय राज-मजदूर लोग मकान-मालिकसे मौलीमें सुपारी बाँधकर शहतीर या गर्डरमें लटकानेके लिये कहते हैं । मकानकी नयी चौखट लगाते समय बढ़ईका भी ऐसा ही निवेदन होता है । प्रायः लाल कपड़ेमें सुपारी लपेटकर और मौलीसे कपड़ेको बाँधकर यथास्थान लटका दिया जाता है । यह गणेश पूजाका प्रतीक है । इसके उपलक्ष्यमें मुँह मीठा करवानेके लिये लड्डुओंकी माँग भी अधिक-वर्गकी भाँति होती है, जो मंगल-प्रतीक है ।

पंजाबमें शारदा और गुरुमुखी लिपिमें लिखित पुस्तकों प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंमें (गुरुमुखी) टंकरीमें 'श्रीगणेशाय नमः' आरम्भमें ही मिलता है । गुरु ग्रन्थ साहिबमें गजानन गणेशका चित्र भी गुरुवाणीमें इन्दीवर रंगा और कई बार प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें 'ॐ श्रीगणेशाय नमः' इन्हींके दर्शन भी होते हैं । गोरख-दसमी-पूजनमें पूर्व, भले वे व्यक्ति व्यापारी हों अथवा नौकरी पेशावाले, बही पर सिन्दूर लगाकर स्याही कलमें या रजिस्टरमें सबसे पहले 'ॐ श्रीगणेशाय नमः' लिखते हैं, तदनन्तर परिवारमें सुख-शान्ति हेतु भगवान् रामकी स्तुतिपरक शब्द लिखे जाते हैं । पंजाबका व्यापारी-वर्ग नया बही-खाता आरम्भ करते समय आरम्भिक पृष्ठपर 'ॐ श्रीगणेशाय नमः' भी लिखता है और इसी खुशीमें लड्डू—अथवा बताशा वितरण करता है ।

गणेशजीकी मोदक प्रियताने पंजाबी-जीवनमें मधुरता संचार कर दिया है । घरमें कोई भी शुभावसर हो, भले ही पुत्रजन्म, मुण्डन-संस्कार, बेटी या बहूका गौना, सगाई-विवाह या बच्चोंकी परीक्षामें साफल्य प्राप्तिकी कामना हो, सर्वत्र बेसनकी बूँदीसे बने मोदकोंके (जिन्हें 'मोतीचूरके लड्डू' कहा जाता है) बिना हृदयके आह्लादकी पूर्ति नहीं होती । शादीके अवसरपर तो सफेद शकरके लड्डू मोतीचूरके मोदकोंसे सहयोग करते दिखायी पड़ते हैं । बेटीके दहेजमें माँ-बाप कितने भी वस्त्राभूषण, कार, फ्रिज भेंट कर दें, किंतु यदि सूतके लड्डू और मोतीचूरके लड्डू अर्पित न किये जायँ तो आज भी बड़ी-बूढ़ियाँ उलाहना देती हैं—"समधीको बचत करनी थी तो एक आध 'टूम-छल्ला' (आभूषण) कम दे देता, सगन (शकुन-सगुण) की चीज तो देनी थी ।" कितने 'सद्गुण'-सम्पन्न हैं मोदक महाराज कि नवविवाहिताके गृह-प्रवेशके समय अथवा किसी समीपस्थ सम्बन्धीके यहाँ नवविवाहिता, नवप्रसूताके जानेपर लड्डुओंके 'सगुन' का ही बोलबाला रहता है ।

शारीरिक गरिमाके सम्मुख गणेशजीका वाहन इतना छोटा क्यों है ? मूषकको अपनी सवारी मानना गणेशजीकी अपार महिमाका प्रतीक है । इतना विशालकाय होकर भी हाथी मांसाहारी जीव नहीं है । ठीक ऐसे ही चूहा भी निरामिष प्राणी है । इसी कारण वाहक और वाहनमें

*'श्रीगणेशाय नमः' के स्थानपर जो वाक्य ऊपर दिया गया है, उसका वैसा प्रयोग पंजाबी उच्चारणकी भिन्नताके कारण होता है ।

भावैक्य है। दूसरी बात यह कि सभी देवताओंके प्रदर्शनका भाव उनके वाहनसे प्रकट होता है; गणेशजी इस बारेमें नितान्त विरक्त हैं और चूहे-जैसे तुच्छ जीवको महानता प्रदान करते हैं। गधड्का दर्शन बड़ा शुभ माना जाता है; क्योंकि उसके दृष्टिगोचर होते ही भगवान् विष्णुका स्मरण हो आता है। ठीक ऐसे ही घर-घरमें मूषकराजकी संतान सर्वत्र गणेशजीकी मङ्गलमूर्तिकी उपस्थितिकी सूचना देती है। बहुत-से घरोंमें चूहे पकड़ना अथवा उन्हें मारना पाप समझा जाता है।

धन्य हैं गणेशजी! आप सर्वव्यापक हैं, हृदय, मन, बुद्धिमें आपका एकच्छत्र राज्य है। दृश्य स्वरूप और अदृश्य स्वरूपने आपने पंजाबियोंको विमुग्ध कर लिया है और वे भी निजी प्रवृत्तियोंके अनुरूप ही आपको सामञ्जस्य-भावनासे भरपूर देखते हैं। 'भक्तके वशमें हैं भगवान्'—इस उक्तिको पंजाबियोंने भली प्रकार चरितार्थ कर दिखाया है।

मरुमदेशीय सिद्ध-साहित्यमें श्रीगणेश-स्तवन

(लेखक—श्रीसूर्यशंकरजी पारीक)

विघ्न विनायक सिंवरिये पौरल में हणवंत।
रिधि सिधि दाता सिंवरिये, गौर तिमिणों कंत॥
(सबद-ग्रन्थ)

मरुमदेशीय सिद्ध-साहित्यमें भगवान् गणेशका स्तवन बड़ी ही श्रद्धा भक्तिसे हुआ है। इस साहित्यके आदि उद्गाता सिद्ध जसनाथजी (सं० १५३९–१५६३ विक्रमी) एवं उनकी शिष्य-परम्पराके प्रायः समस्त कवियोंने अपने ग्रन्थोंके आदिमें जहाँ त्रिदेव, सरस्वती, शक्ति, धरित्री, अन्नदेव, पवन-पानी आदि महाशक्तियोंका मङ्गलाचरणके रूपमें स्तवन किया है, वहाँ उन्होंने विघ्न विनाशक, सर्वसिद्धि दाता, साफल्य-प्रदायक भगवान् गणेशका स्तवन कहीं उक्त शक्तियोंके साथ तथा कहीं स्वतन्त्र रूपसे किया है।

मरुमदेशीय सिद्ध-साहित्य-धारा एवं 'सिद्ध-सम्प्रदाय'-के प्रवर्तक सिद्धाचार्य जसनाथजीने अपने नैतिक एवं आध्यात्मिक सिद्धान्त निर्गुण तथा सगुण—दोनों रूपोंमें स्थिर किये हैं। जहाँ इनके निर्गुण सिद्धान्त औपनिषद विचार-धाराके निकट हैं, वहाँ इनके सगुण सिद्धान्त कई अंशोंमें आचार-विचारकी पृथक्ता रखते हुए भी स्मार्त अधिक प्रतीत होते हैं। यह निर्विवाद है कि स्मार्त-धर्मावलम्बी गणेशादि माङ्गलिक देवोंकी आराधना-उपासना तथा स्तुति-वन्दनाकी किसी भी प्रकारसे अवहेलना नहीं कर सकता। 'सिद्ध सम्प्रदाय'में भी गणेशादि देवाराधन एवं आचार-विचारकी दृढ़ता प्रायः स्मार्त-धर्मावलम्बियोंकी भाँति ही है।

अधोङ्कित पङ्क्तियोंमें मरुमदेशीय सिद्ध-साहित्यमेंसे गणेश-स्तवनके कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं। सिद्ध देवोजीने अपने भक्ति-नीतिपरक 'गुणमाला' ग्रन्थमें गणेशकी स्तुति की है—

जाग जाग ओ! गवरी पूत अवधूत, जाग स्वामी सुंडाळा
सासा सासे जाग, वीनती गाऊँ बाळा॥
अर्पा तिमिणों जाप, हाथ के हर की माळा।
सुध बुध आवै साथ, हियै विध हुवै उजाळा
भर तो सिंवरयाँ रिध सिध हुवै, सह विध आवै सूत
चरण विनै देवो कहै, गवर पूत अवधूत॥

सिद्ध देवोजीने अपने 'देसूँटै' नामके ग्रन्थमें गणेश-स्तुति की है—

रथ आयो गवरी रो पूत, झाड़ जटा जोगी अवधूत।
गवरी नंदन विघ्न विनास, रिध-सिध दाता थांरी आस॥

भक्तवर करमोजीने अपने भक्ति-ग्रन्थ 'हरकथा' में गणेश-स्तवन किया है—

रैखो [illegible] गणेश नै, गवर पूत गुणवंत।
[illegible] सनमुखी, विद्या पार अनंत॥
[illegible] कुंजर कंवर, [illegible] [illegible]।
[illegible] सिर [illegible], [illegible] [illegible]॥
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।
रिधि-सिधि [illegible] [illegible], गवर पूत गुणवंत॥

सिद्ध-कवि [illegible] [illegible] अपने ग्रन्थोंमें गणेश-स्तवन बड़ी ही श्रद्धासे किया है। आपके '[illegible]' ग्रन्थमें गणेश स्तुति—

[illegible] सिव [illegible] पुत्र गणेश, [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]॥
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]॥

धिरया मेल्या चतरभुज, ध्यान धरणीधर दोरो।
'कालू' परसण पात श्राम का मारख घोरो॥

इसी प्रकार आपने अपने 'हरिलीला' और 'निकलंग पुराण' में गणेश स्तुति की है—

(१) 'सनमुख हो गणराज, सिधि स्वामी सूंडाळा।'
(२) 'ध्यावां गुरु गणेश'ने, खुलै गुणां भंडार।

सिद्ध रुस्तमजीने अपने अत्यन्त लोक प्रिय ग्रन्थ 'किसन-ब्यावलो' में गणेश-वन्दना की है—

हित कर सिंवरां गुरु गणेश। मात पारवती पिता महेश॥
सुरग पिंयाळां निवै सो देव। गुणपतनैं मानै आदेश॥

सिद्ध रुस्तमजीने अपने 'किसनब्यावलो' ग्रन्थ-निर्माण-के लिये श्रीगणेशजीसे सहायता माँगी है—

गुणदाता गुणपत जपां, संविध भवो सिहाय।
कथां ब्यावळो किसन को, सोझी थी समझाय॥

इसी प्रकार 'सिद्ध सम्प्रदाय'के आधुनिक युगके अगुआ कवि सिद्ध रामनाथजीने अपने 'श्रीचन्द्रपदनि' ग्र… स्यामकल्याण रागके अन्तर्गत विघ्नहरण और मङ्गल… श्रीगणेश भगवान्‌की स्तुति की है—

(१) श्रीगणपति मेरा विघ्न हरो री,
विघ्न हरो री स्वामी करुणा करो री॥ टेक॥

❁ ❁ ❁

सब सुख कारण विघ्न विदारण, गजानन आप खरो री।
विद्या सुधारण ज्ञान उचारण, या विध याद करो री॥
मुक्ति के कारण, भव से तारण, ताके चरण परो री।
'रामनाथ' गावै भजन सुणावें, सुणतांहि पाप जरो री॥

❁ ❁ ❁

(२) संतों भाई गणपति तेरा गुण गाई।
विघ्न विदारण संपत सारण, सरस्वती सार मिलाई…

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेकशः बातोंमें 'सिद्ध सम्प्रदाय' अपनी मौलिकता एवं भिन्नता रखता हुआ भी श्रीगणेश-स्तवनमें सनातन परम्पराका पोषक एवं पालनकर्ता है।

राजस्थानी लोक-साहित्यमें श्रीगणेश

(लेखक—डॉ० श्रीमनोहरजी शर्मा)

भारतके अन्य भू-भागोंकी तरह राजस्थानमें भी श्रीगणेश की पूरी मान्यता है। यहाँ प्रत्येक कार्यके प्रारम्भमें उनका सादर स्मरण किया जाता है। सुदृढ़ लोक-विश्वास है कि श्रीगणेशकी कृपा प्राप्त कर लेनेपर किसी भी कार्यमें उपस्थित होनेवाले विघ्न स्वयं समाप्त हो जाते हैं।

श्रीगणेश विद्या-बुद्धिके विधायक माने जाते हैं। अतः विद्यार्थी बालकोंके लिये वे परम पूज्य हैं। राजस्थानमें बालकोंका प्रमुख त्योहार 'गणेशचौथ' (भाद्रपद-शुक्ला-चतुर्थी) है। इस दिन बालकोंमें बड़ा उत्साह एवं उल्लास रहता है। वे नये वस्त्र धारण करते हैं। उनके लिये मिष्टान्न बनाया जाता है। पाठशालाओंकी ओरसे भी यह त्योहार बड़े उत्साहके साथ मनाया जाता है। लोकभाषामें इसे 'चौक-चाँदणी' (अर्थात् चाँदनी चौथ) कहा जाता है। पाठशालाओंकी ओरसे विशेष झाँकी तथा जुलूस निकलते हैं। इस अवसरपर बालक समवेत स्वरमें गीत भी गाते हैं। इन गीतोंको 'गजल'[1] कहा जाता है। 'चौक-चाँदणी'के अवसरपर गायी जानेवाली गजलोंमें 'गणेशजीकी गजल' प्रमुख है। इसमें श्रीगणेशजीके जन्मकी पुराण-कथा है।

राजस्थानमें प्रत्येक भवनके प्रमुख द्वारपर ताखमें श्रीगणेशकी प्रतिमा स्थापित किये जानेका नियम है। इस प्रकार वे भवन एवं उसमें निवास करनेवाले लोगोंके 'आरक्ष देव' हैं। कन्या-विवाहके अवसरपर उस भवनके द्वारपर पहुँचनेवाला 'वर' सर्वप्रथम उन्हींकी वन्दना करता है। इस प्रथाको 'तोरण-वन्दना' कहा जाता है। इसे आजकल 'तोरण मारणो' नाम दे दिया गया है, जो मध्यकालीन राजपूत-जीवनका प्रभाव है।

सम्पूर्ण वैवाहिक कार्यके सानन्द सम्पन्न किये जानेका भार तो विशेषरूपसे श्रीगणेशजीपर ही छोड़ा जाता है। राजस्थानमें रणथंभौर गढ़के गणेशकी विशेष ख्याति है। वहाँ गणेश-चौथके अवसरपर बड़ा भारी मेला लगता है, जहाँ दूर-दूर के यात्री अपनी मनौती पूरी करनेके लिये, देवदर्शन हेतु पहुँचते हैं। वैवाहिक कार्य प्रारम्भ करते समय सर्वप्रथम उन्हीं-का आवाहन किया जाता है। इस अवसरपर गाया जानेवाला गीत बड़ा ही महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय है। गीत इस प्रकार प्रारम्भ होता है—

१. राजस्थानमें नगर-वर्णन-सम्बन्धी काव्यको 'गजल' कहा जाता है और यहाँ ऐसे 'गजल'-नामक काव्योंकी पुरानी परम्परा है; जैसे—'बूँदीकी गजल', '[illegible]की गजल' आदि।

रणथँभोर सैं आवो विनायक, करो ए नचीती बिहदड़ी।
विनायक दोनूं ही आया, आय पधारया सीळै बड़ तळै।
पूछता नगर पहेड़ग्या, पोल बताओ लाडेसर रै बाप की।
ऊँची मेड़ी, लाल किंवाड़ी, केळ झबूके लाडेसर रै बारणै।

"हे विनायक! रणथंभोर-गढ़से आओ और आकर विवाहके कार्यको सर्वथा चिन्तारहित करो। बुद्धि और विनायक दोनों ही आये और आकर उन्होंने शीतल बड़के नीचे ठहराव किया। वे नगरमें घर पूछते-पूछते प्रविष्ट हुए कि कोई हमें दुल्हेके पिताकी 'पोल' (घरका प्रधान दरवाजा) बतलावे। उन्हें उत्तर मिला—"दुल्हेके घरकी 'मेड़ी' ऊँची-सी है। उसके किंवाड़ लाल रंगके हैं। उसके दरवाजेके पास केला हवामें लहलहा रहा है।"

पैलो तो बासो कांकड़ बसियो, कांकड़ निपजै मोठ र बाजरो।
दूजो तो बासो सरवर बसियो, सरवर भरियो ठंडै नीर सैं।
सरवर लहरे हिलोळा, नीर भरै जी पणिहारियाँ।)
तीजो तो बासो बाड़ी जी बसियो, बाड़ी भरी ए खिजूर सैं।
फूल बाड़ी सो फल फळिया, फूंलो जी मरवा केवड़ा।
चौथो तो बासो बड़ तळै बसियो, बड़ नारेळां जी छाइयो।)
पाँचवें तो बासो नगरी जी बसियो, नगरी में बैठ्या बामण बाणिया।
छठे तो बासो तोरण बसियो, तोरण छायो रूडी चिड़कल्यां।
तो एधड़-बेधड़ सात चिड़कली, बिच हरियालो सूवटो।
बै चग चग बोलै सात चिड़कली, इमरत बोलै हरियो सूवटो।
सातवाँ तो बासो फेरां जी बसियो, फेरां में बैठ्या लाडो-लाडली।
म्हारी लाडली को चीर बधज्यो, राईवर को वागो-बीटळी।
बधियो-बधज्यो ए लाडी गोत तुमारो, एक पिवर दूजो सासरो।
छठे तो बासो थापै जी बसियो, थापै में बैठ्या देई-देवता।
सातवों तो बासो ओवरे बसियो, ओवरको घी-गुड़ भरयो।

"उन्होंने पहला ठहराव सीमान्तपर किया। वहाँके खेतोंमें 'मोठ' और 'बाजरा' अन्न प्रचुरमात्रामें पैदा होता है। उन्होंने दूसरा ठहराव सरोवरके पास किया। वह सरोवर ठंडे पानीसे भरा हुआ है। उसमें लहरें उठ रही हैं और पनिहारिनें जल भर रही हैं। उन्होंने दूसरा ठहराव 'बाड़ी' (वाटिका) में किया। बाड़ी खजूर-जैसे मधुर फलोंसे भरी-पूरी है। उसमें अन्य भी नाना प्रकारके फल हैं और कुञ्ज, मरवा तथा केवड़ा आदि फूले हुए हैं। उन्होंने चतुर्थ अर्थात् तीसरा ठहराव नगरीमें किया। नगरीमें स्थान-स्थानपर ब्राह्मण और बनिये बैठे हुए हैं। उन्होंने चौथा ठहराव 'तोरण'के पास किया। तोरण सुन्दर चिड़ियोंसे छाया हुआ है। उसमें इधर-उधर सात चिड़ियाँ हैं और बीचमें हरा सुग्गा है। वे चिड़ियाँ चहचहा रही हैं और वह सुग्गा अमृतवाणी बोल रहा है। उन्होंने पाँचवाँ ठहराव 'फेरों' (भाँवर) में किया। वहाँ दुल्हा और दुल्हिन बैठे हुए हैं। हमारी दुलारी दुल्हिनका 'चीर' (ओढ़ना) तथा 'राईवर' (दुल्हे) का 'बागा' (शरीरपर धारण करनेका वस्त्र) और 'बींटली' (पगड़ी) वृद्धिको प्राप्त हों। हे दुल्हिन! तुम्हारे पीहर और ससुरालके दोनों ही 'गोत' (गोत्र) अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हों। उन्होंने छठा ठहराव 'थापे' (देवस्थापनाका स्थान) के पास किया। वहाँ समस्त देवियाँ और देव विराजमान हैं। उन्होंने सातवाँ ठहराव 'ओवरे' (अपवरक—सुन्दर कमरा) में किया। 'ओवरा' (अर्थात् भंडार) गुड़ और घीसे भरा-पूरा है।

एक कोथळड़ी जस देई विनायक, लाडलै के ताऊ-बाप नैं।
वे तो खाय-खरचै सो धन बिलसै, जस रैवै परवार में।
एक बाँहड़ली जस देई विनायक, लाडलै कै चाचै-बीर नैं।
एक जीभड़ली जस देई विनायक, लाडलै की दादी-माय नैं।
वे तो मीठी सी बोलै नै कर चालै, ज्यूँ सरसै परवार में।
एक भात में जस देई विनायक, लाडलै कै नानै-मामां नैं।
एक आरतै जस देई विनायक, लाडलै की भूवा-भैण नैं।

"हे विनायक! दुल्हेके ताऊ और पिताको 'कोथळी' (थैली) का यश देना अर्थात् उनकी थैलीको सदैव भरी-पूरी रखना। वे अपने धनका अच्छी तरह आनन्द लें, उसे खायें-खरचें, जिससे पूरे परिवारमें उनको यश प्राप्त हो। हे विनायक! दुल्हेके चाचा और भाइयोंको भुजाका बल देना। हे विनायक! दुल्हेकी दादी और माँको जीभ-सम्बन्धी यश देना। वे मधुर वाणी बोलें और नम्रताका व्यवहार करें, जिससे पूरे परिवारमें सरसताका प्रचार रहे। हे विनायक! दुल्हेके नाना तथा मामोंको 'भात' (मायेरा) में यश देना। हे विनायक! दुल्हेकी भुआ और बहनको 'आरते'में यश देना।"

एक गाजत-घोरत आवो विनायक, सावणियां के मेह ज्यूं।
एक भरयो-बधूलो आवो विनायक, बिणजारै के बैल ज्यूं।
एक मांड्यो-गूंथ्यो आवो विनायक, सरव-सुहागण के हाथ(सीस)

और चुटकी-भर चावल लिये हुए नगरकी गलियोंमें घूम रहे थे और पुकार-पुकारकर कह रहे थे—'कोई मेरे लिये खीर बना दे, कोई मेरे लिये खीर बना दे'; परंतु इतने थोड़े-से दूध तथा चावलसे खीर किस प्रकार बन सकती है ? अतः कोई भी व्यक्ति उस बालकका काम कर देनेके लिये तैयार नहीं हुआ । अन्तमें बालक विनायक एक बुढ़ियाके घरके सामने पहुँचा तो उसने स्नेहवश उसकी बात स्वीकार कर ली और बर्तनमें उसका दूध-चावल भरकर उसे आगपर चढ़ा दिया । बालक स्नान करनेके लिये बाहर चला गया और इधर बुढ़ियाका बड़ा बर्तन खीरसे भर गया । अब तो बुढ़ियासे खीर खाये बिना नहीं रहा गया । पहले उसने एक थाली भरकर बालकके लिये अलग रख दी और फिर अपने लिये थाली खीरसे भर ली तथा आरामसे उसे खा लिया । इसके बाद बालक स्नान करके आया और उसने खीर माँगी तो बुढ़ियाने उसके सामने खीरकी थाली रख दी । परंतु बालकने उस खीरको देखते ही कहा कि 'यह तो जूठी है' । इसपर बुढ़ियाने सारी बात प्रकट कर दी । बालक विनायक बुढ़ियाके सत्य वचनपर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे सब प्रकारसे सुखी बना दिया ।

(२)

किसी गाँवमें एक ब्राह्मण और उसकी पत्नी रहते थे; किंतु दुर्भाग्यवश वे दोनों ही अंधे हो गये और घरमें एक बालिकाके अतिरिक्त अन्य कोई भी न था । वह बालिका ही अपने माता-पिताकी सेवा करती थी । एक बार गणेशजीके मेलेका दिन आया तो छोटी लड़कीने अपने माता-पिताके सामने मेलेमें जानेकी इच्छा प्रकट की । पिताने उसे पैसे दिये और वह मेलेमें जा पहुँची । वहाँ कोई कुछ खरीद रहा था और कोई कुछ खा रहा था; परंतु लड़कीने किसी ओर भी ध्यान नहीं दिया । वह तो केवल गणेशजीकी मूर्तिकी ओर ही टकटकी लगाये खड़ी रही । बालिकाकी इस भक्ति-भावनासे गणेशजी बड़े प्रसन्न हुए और उसे वरदान माँगनेके लिये कहा । लड़कीने बुद्धिमानी की और एक साथ ही कह गयी—"मैं अंगुली पकड़े हुए दो भाई माँगती हूँ, माता-पिताके लिये नेत्र-ज्योति माँगती हूँ, जरी-बादलका वस्त्र माँगती हूँ और मोती-मूँगोंका जेवर माँगती हूँ ।" गणेशजीने कहा 'तथास्तु' और उसी समय दो बालकोंने आकर उस बालिकाके दोनों हाथोंकी अँगुलियाँ पकड़ लीं । जब लड़की घरकी ओर चली तो उसे ध्यान आया कि कई बार उसकी अंधी माता गरम बर्तन पकड़ लेती है और उसके हाथ जल जाते हैं; अतः उसने अपनी माताके लिये दो पैसोंका एक 'चिमटा' खरीद लिया । जब वह घर पहुँची तो अपने माता-पिताको चिमटा देखनेके लिये कहा । उसी समय उन दोनोंके नेत्रोंमें ज्योति आ गयी । भाई दो साथ थे ही । वह घर धनसे भी भरा-पूरा हो गया ।

(३)

किसी बनियेके बेटेकी बहूके कोई संतान न थी । उसकी सासने विनायकजीकी मनौती मानी कि 'यदि उसकी पुत्रवधू गर्भ धारण कर ले तो वह उनको सवा सेरका चूरमा चढ़ायेगी ।' देवकृपासे ऐसा ही हो गया । उसकी पुत्रवधू गर्भवती हुई तो फिर सासने विनायकजीकी मनौती मानी कि 'यदि उसके घरमें पोता जन्म लेगा तो वह देवताको अढ़ाई सेरका भोग चढ़ा देगी ।' समयपर उसकी बहूने पुत्रको जन्म दिया, परंतु उसने अपनी मनौती पूरी नहीं की और कहा कि 'जब पोता पैरों चलने लगेगा तो एक साथ ही सवा पाँच सेरका भोग चढ़ा दिया जायगा ।' इससे विनायकजी रुष्ट हो गये और उसके पोतेको उन्होंने सूक्ष्म रूप देकर उसीके घरकी चौखटमें छिपा दिया । जब शिशुकी खोज हुई तो शिशु बोल उठा—'धरकक धूं विनायकजी के गहणे छूं' । इस आवाजको सुनकर सब चकित हो गये तो फिर नयी आवाज आयी—'धरकक धूं, चौखट में छूं ।' सबने विनायकजीकी वन्दना की और तत्काल मनौती पूरी की गयी तो उन्होंने सुरक्षित रूपमें शिशुको लाकर पालनेमें लिटा दिया ।

इसी प्रकार अन्य भी कई लघु-कथाएँ लोकमुखपर अवस्थित हैं और वे व्रत-कथाके बाद बड़ी ही श्रद्धा-भक्तिके साथ कही जाती हैं । इनमें विनायकजीकी प्रसन्नताका मधुर फल प्रकट किया गया है; परंतु नाराज होनेपर वे बाधा भी उत्पन्न कर देते हैं, ऐसा उनका स्वभाव है । अतः प्रत्येक कार्यके प्रारम्भमें उनका श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाता है । विवाहके अवसरपर तो एक छोटे बालकको वरके साथ रहनेवाला विनायक बनानेकी प्रथा भी है । इन लोककथाओंमें लोकहृदयकी सरलता देखते ही बनती है । साथ ही यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि इन कथाओंमें सुखी एवं सम्पन्न गृहस्थीकी कामनाके साथ लोकमङ्गलकी भावना भी व्याप्त है, जो भारतीय संस्कृतिका एक प्रकाशमान तत्त्व है । प्रत्येक व्रत-कथाके अन्तमें नियम-

पूर्वक कहा जाता है—'हे विनायक महाराज ! जिस प्रकार आपने इस कथाके पात्रपर प्रसन्न होकर उसे सब प्रकारसे सुखी बना दिया, उसी प्रकार सबपर कृपा कीजियेगा—कथा कहनेवालेपर, कथा सुननेवालेपर और हुंकारा देनेवालेपर ।'

असलमें यह अन्तिम वाक्य इन व्रत-कथाओंका माहात्म्य प्रकट करता है, जिससे सहज ही लोकहृदयमें श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है । यही कारण है कि राजस्थानी जन-साधारणका अटल विश्वास है—

> विघन-हरण मंगल-करण, काटण सकळ कळेस ।
> सारां पहली सुमरिये, गौरीपुत्र गणेस ॥

'विघ्नोंको हरनेवाले, मङ्गलको करनेवाले, सब प्रकारके क्लेश मिटानेवाले गौरीपुत्र गणेशका स्मरण सभी देवताओंसे पहले करना चाहिये ।'

इसीलिये यात्रारम्भके पूर्व घरसे निकलते ही स्तुति की जाती है—

> सदा भवानी दाहणी, सनमुख रहे गणेश ।
> पाँच देव रक्षा करें, ब्रह्मा विष्णु महेश ॥

'श्रीगणेश मेरे सम्मुख रहें, भवानी सदा दाहिनी ओर रहें तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये पाँचों देवी-देव मेरी रक्षा करते रहें ।'

इस प्रकार स्पष्ट है कि राजस्थानी जनताके रोम-रोममें श्रीगणेशजीके प्रति अपार श्रद्धा और भक्ति-भावना रमी हुई है । वे यथार्थ ही गणपति एवं परम पूजनीय हैं ।

खम्भात-क्षेत्रके कवियोंद्वारा श्रीगणेश-स्मरण

गुजरातके खम्भात क्षेत्रमें भी कवियोंने श्रीगणपतिका स्मरण करके अपने काव्यका शुभारम्भ किया है । कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

(१) कवि विष्णुदास (समय १६३४ से १६८१ वि०)

(क) 'जालन्धरा-आख्यान' के प्रारम्भमें कहते हैं—

> श्रीशंकर सुतने प्रणमुं रे, मागुं मति मनोहर सार ।
> मुज मंदने करुणा करो रे, गणपति बुद्धि-दातार ॥

दाल

> बुद्धितणो दातार गणपति, सुख-सुख स्वामी सुजाण ।
> कष्ट-काप कुमार ये मन-कामना बहु प्रमाण ॥
> मूषक वाहन, अहार मोदक, विमल विवेक ।
> गजानन, गुणवंत पूरण, रंग दन्तज एक ॥

(ख) 'उत्सर्ग-आख्यान' में—

> श्रीगुरु गणपतिने विनवुं रे प्रणमि लागूं पाय ।
> शुभमति मुझने आपो रे, स्वामी शंकरराय ॥

(ग) 'रुक्मांगदके आख्यान' में (रचना-काल १६३४ ई०)

> प्रथमे प्रणमुं गणपति देव, जेहो करतां सिद्धि थाय ।
> दया करो मने दुःख हरे, विघ्न करि मने आपो भगवान ॥

(घ) 'हरिश्चंद्रपुरी-आख्यान' (रचना-काल १६५७ ई०)

> गणपति गिरिजानन्दन, वंदन करुं शिर नामी रे ।
> स्वामी रे सेवक, कार्य सिद्ध करो रे ॥

इस कविने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है ।

(२) कवि शिवदास (विष्णुदासके समकालीन)

(क) 'जालन्धराख्यान'—

> प्रथमे प्रणमुं आप अनंत कृपा करो श्रीकमलाकंत ।
> जय आपो गणपति, गुणराय प्रेम धरीने लागुं पाय ॥

(ख) 'परशुरामाख्यान'—

'शुभ गणपतिने करूँ वीनति शुद्ध बुद्ध वरदा त्रिभुवन पति ।'

(ग) 'डांगवाख्यान'—

> श्रीगणपतिने लागूँ पाय, जय आपो उमया माय ।
> करो सहाय महासुता, गुजने लागुं रे ॥

(३) कवि रेवाशंकर (१९वीं सदी)

(रचना-काल १८२६ ई०)

> शंभुसुतने वर्णवुं प्रेमे, पूर्वीने लागुं रे पाय ।
> विधि तनया महाराजमरालो शुभ मति स्मरीश थाय ॥
> गौरी-नंदन जय जगवंदन विघ्नविनायक देव ।
> संकटहरण अघसंघारण, सौ करे जेनी सेव ॥
> कंठेश्वर शुभ कुमार पूरण, पावन परम पवित्र
> कृपा करो करुणाकर, वर्णवुं विष्णुचरित्र ॥

इस कविने अनेकों ग्रन्थोंकी रचना की है। उनमें गणपतिका स्मरण पहले किया है।

(४) कवि दुर्गाशंकर (१९ वीं सदी)

'पुरुषोत्तम मासकी कथा' काव्यमें (रचनाकाल १८५० ई०)

> विघ्नविदारण सरस्वतीने श्रीगुरु इष्ट दयाळ।
> पटलाने वंदीने हुं तो ग्रंथ रचुं आ काळ॥

इस कविने अनेक ग्रन्थ रचे हैं। उनमें पहले गणपतिका स्मरण किया है।

महाराष्ट्रमें श्रीगणेशोत्सव और लोकमान्य तिलक

(लेखक—श्रीवेंकटलालजी ओझा)

"पूनामें लोकमान्य तिलकके नेतृत्वमें गणेश-उत्सव देशभक्तिके प्रचारार्थ एक राष्ट्रीय उत्सव बन गया था। उसे राष्ट्रधर्मका स्वरूप मिला। उसीके अनुकरणपर ही बम्बई, अमरावती, [illegible], नागपुर आदि नगरोंमें भी सार्वजनिक गणेश-उत्सव आरम्भ हुए। गणेशजी 'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे'—इस मन्त्रके अनुसार व्यापक रूपसे गणराज्य देनेवाले, [illegible] देवता हैं, यह प्रचार आरम्भ हुआ। उत्तम भाषण और देशभक्तोंके द्वारा गणेशके आश्रयमें क्रान्तिकारियोंको संगठित करनेका कार्य सफल रहा। धार्मिक उत्सव होनेके कारण पुलिस उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी।"

—ये विचार सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्रीखानखाजेने अपने संस्मरणोंमें प्रकट किये हैं, जो 'केसरी'में धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुए थे।

बात भी सच है। लोकमान्यने देशके लिये अपना जीवन अर्पण करनेका दृढ़ निश्चय किया था। इसीलिये राष्ट्रीय भावसे ओत प्रोत नवयुवकोंको तयार करनेके लिये इन्होंने न्यू इंग्लिश स्कूल'की स्थापनाके एक वर्षके बाद ही 'केसरी' और 'मराठा'—इन दो पत्रोंका प्रकाशन आरम्भ किया, जिनका मुख्य ध्येय प्रौढ़ जनताको राजनीतिक दृष्टिसे जाग्रत् करना था।

गणेशका मूलस्वरूप ॐ माना जाता है। इस रूपमें उनकी प्रार्थना और पूजा अनादिकालसे चली आ रही है। किसी भी देवताका उपासक हो, फिर भी वह प्रथम गणेश-पूजाके बाद ही अपने उपास्य देवकी पूजा करता है। सभी धार्मिक कर्मकाण्ड प्रथम गणेश-पूजनसे आरम्भ होते हैं। यहाँतक कि कोई भी मन्त्र हो—आदिमें ॐ अवश्य लगा रहता है और यदि मन्त्रके अन्तमें भी ॐ लगा दिया जाता है तो उसकी शक्ति और बढ़ जाती है।

केवल भारतमें ही नहीं, ब्रह्मदेश, हिंद चीन, स्याम, तिब्बत, चीन, मेक्सिको, अफगानिस्तान, रूस, हिंदेशिया आदि देशोंमें ऐसे प्रमाण आज भी उपलब्ध हैं, जिनसे यह प्रकट होता है कि वहाँ भी श्रीगणेश-उपासकका प्रभाव था। उन देशोंसे प्राप्त मूर्तियोंके कई चित्र मूर्तिविज्ञान-विषयक ग्रन्थोंमें मिलते हैं।

हिंदू-धर्ममें अनेक उपासना मार्ग हैं, जैसे—शैव, वैष्णव, शाक्त आदि। इनमें गणेशकी उपासना करनेवालोंको 'गाणपत्य' कहते हैं। ये लोग गणेश-पञ्चायतनकी उपासना करते हैं। इनके उपासक दक्षिणमें और विशेषरूपसे महाराष्ट्रमें मिलते हैं। श्रीमन्त पेशवा-सरकार गणेशकी उपासक थी। उनके शासनकालमें गणेशोत्सव बड़े ही राजकीय ठाट-बाटसे मनाया जाता था। श्रीमन्त सवाई माधवरावके शासनकालमें यह उत्सव शनिवारवाड़ाके गणेश महलमें विशाल रूपसे होता था। उस समय यह उत्सव छः दिनोंतक चलता था। गणेश-विसर्जनकी शोभायात्रा सरकारी लाव-लश्करके साथ निकलकर ओंकारेश्वर घाट पहुँचती थी, जहाँ नदीमें विग्रहका विसर्जन होता था।

इसी तरह पटवर्धन, दीक्षित, मजुमदार आदि सरदारोंके यहाँ भी उत्सव होता था। उत्सवमें कीर्तन, प्रवचन, रात्रि-जागरण और गायन आदि भी होते थे।

पूनामें निजीरूपसे इस चालू उत्सवको सरदार कृष्णाजी काशीनाथ उर्फ नाना साहेब खाजगीवालेने सर्वप्रथम सार्वजनिक रूप दिया। सन् १८९२में वे ग्वालियर गये थे, जहाँ उन्होंने राजकीय ठाट-बाटका सार्वजनिक गणेश-उत्सव देखा था, जिससे प्रभावित होकर पूनामें भी उन्होंने इसे १८९३ ई० में आरम्भ किया। पहले वर्ष खाजगीवाले, घोटवडेकर और भाऊ रंगारीने अपने यहाँ सार्वजनिक रूप गणेश-उत्सव आरम्भ किया। विसर्जनके लिये शोभायात्रा निकली। कहा जाता है कि खाजगीवालेके गणेशको शोभायात्रामें पहला स्थान मिला।

आगे चलकर १८९४ ई० में इसकी संख्या बहुत बढ़ गयी। कौनसे गणेश आगे रहें, यह प्रश्न उठा। इसके लिये सरकारी लोगोंने लोकमान्य और अन्य प्रतिष्ठित सज्जनोंको निर्णायक बनाया। इन लोगोंने पूनेके ग्रामदेवता श्रीकसबा-गणपति और जोगेश्वरीके गणपतिको क्रमशः पहला, दूसरा और तीसरा स्थान [illegible] दिया। यह क्रम आज भी चलता है।

राष्ट्रीय चेतनाके लिये लोकमान्यने महाराष्ट्र शिवाजीकी स्मृतिमें शिवाजी-जयन्ती महोत्सवको प्रचलित किया। प्रथम बार मराठा-लोगोंने भी इसमें भाग लिया था। इससे ब्रिटिश सरकार अप्रसन्न हो गयी; क्योंकि लोगोंमें राष्ट्रीयताका संचार होता था तथा उसमें सरकारको विद्रोहके बीज दिखायी दे रहे थे, जिसे वह अङ्कुरित होने देना नहीं चाहती थी। अतः बादमें सरकारी कोपसे बचनेके लिये मराठा-लोग उससे उदासीन हो गये।

लोकमान्यको गणेश-उत्सवके रूपमें सर्वोत्तम अवसर हाथ लगा। उन्होंने इसे राष्ट्रीय उत्सवके रूपमें परिवर्तित कर दिया—जन-पक्षका रूप दे दिया। दस दिनोंके उत्सवको अब दस दिनोंका बना दिया गया। अंग्रेजी शिक्षाके कारण हिंदू युवक आचार-भ्रष्ट और विचार-भ्रष्ट होने लगे। उनमें हिंदू धर्मके प्रति अश्रद्धा पैदा होने लगी। देवी-देवताओं और पूजा-उपासनाका वे मजाक उड़ाने लगे। इस अनिष्टकी ओर कई लोगोंका ध्यान गया और वे इसके निराकरणका उपाय भी सोचने लगे। लोकमान्यने इसके लिये गणेश-उत्सवको अपना साधन बनाया। इसके माध्यमसे उन्होंने हिंदुओंमें जीवन और जागरण उत्पन्न करनेवाले कार्यक्रम रखने आरम्भ किये। कीर्तन, प्रवचन, व्याख्यान और मेला (ख्याल) के साथ संगीतके तीनों अङ्ग-गायन, वादन और नृत्यकी त्रिवेणीको भी इसमें स्थान मिला। प्रहसन और नाटक भी इसकी शोभा बढ़ाने लगे। व्याख्यानोंके विषय ऐसे रखे जाते थे, जिनसे अपने अतीत—धर्म, वेदों और पुराणों, भारतीय साहित्य और संस्कृति, अपने देश, राम और रामायण, कृष्ण और गीता, ज्योतिष, संस्कृत और आयुर्वेदके प्रति लोगोंकी उत्पन्न होनेवाली घृणा श्रद्धामें बदल गयी। उन्हें यह भान हुआ कि वेद और पुराण कल्पित नहीं हैं। विदेशियों और विशेषकर अंग्रेजोंने हमारे इतिहासको इस [illegible] कि

इसका कठोर [illegible] किया है। पर इस उत्सवने [illegible] ऐसा प्रेम [illegible] लगे। अभी [illegible] [illegible] [illegible] करने लगे कि [illegible] मुसलमान भी [illegible] सम्मिलित नहीं हो सके और वे शुद्ध [illegible] धर्मकी आड़में कह दें।

आरम्भमें तो सरकारने इस ओर विशेष ध्यान [illegible] दिया। पर जैसे-जैसे यह उत्सव अपना प्रभाव फैलाने [illegible] इसकी कितनी देखने ही नहीं, विरोधोंने, जैसे—[illegible] [illegible] – [illegible] फैलाने लगीं, सरकारके कान खड़े हो गये। उसने इसे विद्रोहकी झलक दिखायी देने [illegible] इसको लेकर हिंदुओंमें फूट डालनेका भी प्रयत्न किया गया। लोकमान्य इन सब विरोधियों और सरकारके षड्यन्त्रोंका अपने व्याख्यानों और 'केसरी' और 'मराठा' के इन पत्रोंके माध्यमसे मुँहतोड़ जवाब दिये, जिससे उनकी एक नहीं चली और जनता इसमें दुगुने उत्साहसे सम्मिलित होने लगी।

बादमें अंग्रेजोंने मुसलमानोंको भड़काया कि गणेश-उत्सव तो तुम्हारे विरोधमें है।' पर जब वे लोग इसमें सम्मिलित होते तो उनके सामने इसकी सरलता उजागर हो जाती थी कि यह तो विशुद्ध धार्मिक पर्व है, जिसकी आड़में राष्ट्रीयताका प्रचार होता है; किसी धर्म, जाति या सम्प्रदायके विरोधमें नहीं; अतः उनके भाषण भी उत्सवोंमें होने लगे। १८९२ ई० के बादसे १९२० ई० तक एकाध अपवादको छोड़कर कहीं भी हिंदू-मुस्लिम दंगे नहीं हुए। यह गणेशजीकी ही कृपा थी।

लोकमान्य गणेश-उत्सवके माध्यमसे राष्ट्रीयताकी चेतना चतुःसूत्री योजना—स्वदेशी मालका प्रचार, विदेशी मालका बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षाका प्रसार और मद्यपान-निषेधका प्रचार आदिके संदेशको जनतातक पहुँचानेमें पूर्ण सफल रहे। किंतु इन उत्सवोंके पूर्णतया धार्मिक होनेसे प्रत्यक्षरूपसे सरकारके लिये उनपर प्रतिबन्ध लगाना असम्भव था, अतः उसने दूसरे मार्गका अवलम्बन किया। लोकमान्यपर 'केसरी' में प्रकाशित लेखोंको राजद्रोहात्मक सिद्ध कर उन्हें मांडले जेलमें भेज दिया गया। सरकारको आशा थी कि लोकमान्यके जेल चले जानेसे उत्सव स्वयं ही बंद हो जायँगे; पर ऐसा हुआ नहीं। जन-जनके हृदयमें स्वतन्त्रताकी लहरें हिलोरें ले रही थीं।

मञ्च भी इसी कालमें हुआ था; अतः गणेश-उत्सव दिन-दिन बढ़ता ही रहा। अब बड़े नगरोंमें ही नहीं, छोटे-छोटे में भी उत्सव मनाया जाने लगा। उत्सवोंमें कर्जनशाहीके द मेलों (ख्याल) के गीतोंमें प्रहार होने लगा। उस समय की तरह बिजली नहीं थी। इसलिये तेलकी मशाल जी जाती थी, जो लकड़ीपर कपड़ा लपेटकर तैयार होती सरकारने लाठी लेकर उत्सवमें भाग लेनेपर पाबंदी लगा जिसमें बेचारी मशाल भी गयी। लेझिमका खेल भी में बंद हो गया। नकली भाला लेकर जो करामात े थे, उन अखाड़ोंपर भी रोक लगा दी गयी। इतना ही मेला (ख्याल) गानेवाले बालकोंके नाम-धाम भी र उनके माता-पिताको तंग किया जाने लगा। इससे ानेवालोंकी संख्या कुछ समयके लिये घट गयी। इतना ीं, 'तिलक महाराजकी जय'का नारा भी गैरकानूनी किया गया। इस नारेके लगानेके झूठे आरोपपर ो चार-चार सौ रुपयोंके अर्थ-दण्ड भी दिये गये। 'शिवाजी ाकी जय' पर भी लोगोंको सजा होने लगी। शोभा-यात्रामें और लोकमान्यके चित्रोंपर रोक लगा दी गयी। इस रकारने उत्सवमें भाग लेनेवालोंको तंग करना आरम्भ था। फिर भी जन-जनमें व्याप्त स्वाधीनताका संदेश प्रभाव प्रकट करने लगा। लोगोंने कानून तोड़ना कर दिया। यहाँतक कि शोभा-यात्राको पुलिसने का तो गणेशजीकी सवारीको वहीं रखकर लोग चले (बादमें पुलिसको उठाकर उन्हें विसर्जित करना पड़ा न लोगोंपर सड़क रोकनेके अपराधमें सजा हुई। यह भावी सत्याग्रह-संग्रामका प्रशिक्षण जनताको की अदूरदर्शिताके कारण अनायास ही मिलने लगा। गांधीके भावी सत्याग्रह-संग्रामके लिये सरकारने तैयार किये। उसके लिये भूमिका सरकारने बनायी। कुछ १९१४ ई० तक सरकारने किया। लोकमान्यके गे ही वह चुप हो गयी।

गणेश-उत्सव केवल महाराष्ट्रतक ही सीमित नहीं देशमें यह उत्साहके साथ मनाया जाने लगा। महात्मा स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, अब्दुल्ला ब्रेलवी, महामना मदनमोहन मालवीय, आचार्य ध्रुव, बाबू भगवानदास, नरीमान, सरोजिनी नायडू, मौलिचन्द्र शर्मा, जमनादास मेहता, पन्नालाल व्यास-जैसे हिंदू, मुसल्मान, पारसी आदि सभी धर्मोंके प्रभावशाली लोग इनमें भाषण देने लगे। तब आजकी तरह ध्वनिप्रसारक-यन्त्र (लाउडस्पीकर) नहीं थे; अतः वक्ताको अपनी वाणीपर ही अधिकार रखकर अपनी बात हजारों श्रोताओंतक पहुँचानी पड़ती थी। यह साहस और जीवटका काम था।

गणेश-उत्सवके कारण एक ओर जहाँ राष्ट्रीय चेतनाको बल मिला तो दूसरी ओर साहित्य और कलाको प्रोत्साहन मिला। उत्सवोंके सभी कार्यक्रम मराठी, हिंदी या स्थानीय भारतीय भाषामें होते थे, जिससे भारतीय भाषाओंके प्रति जन-जनमें आदर पैदा हुआ कि ये भी विद्वानोंकी भाषाएँ हैं।

मेला (ख्याल) के लिये कवि गीत बनाकर देने लगे। पोवाडे (वीररस-काव्य) और भी लोकप्रिय हो गये। रंगमञ्चने प्रगति की। नये-नये नाटक-प्रहसन आदि लिखे और खेले जाने लगे। उत्सवके कारण ही मराठी रंगमञ्चमें नया जीवन आया। शाहीर (लोकगीत) और लावनीके प्रति लोगोंमें आकर्षण बढ़ा। मूर्तिकार गणेशजीकी छोटीसे लेकर बड़ीतक असंख्य मूर्तियाँ प्रतिवर्ष बनाने लगे, जिससे मूर्तिकला और उसके कलाकारोंको संरक्षण मिला; क्योंकि मूर्तियाँ मिट्टीकी रहनेसे प्रतिवर्ष नयी बनाकर स्थापित की जाती हैं। इस तरह लोकमान्यने गणेश-उत्सवको देशकी सर्वाङ्गीण प्रगतिका लोकप्रिय आधार बना दिया। लोकमान्य तिलक तो १९२० ई० में तिरोहित हो गये, पर उनके द्वारा प्रवर्तित राष्ट्रीय 'चेतनाका पर्व गणेश-उत्सव' आज भी देश विदेशमें दुगुने उत्साह और ठाट-बाटसे मनाया जा रहा है। गत ८० वर्षोंमें अनेक उतार-चढ़ाव आये, देश दासतासे मुक्त हुआ, पर भगवान् गणेशजीकी कृपासे इन उत्सवोंमें कोई कमी नहीं आयी। वह उत्सव चल रहा है और चलता रहेगा। उसके साथ लोकमान्यकी राष्ट्रीय जागरणकी भावना जो है। जन-जागरणकी यह महान् ज्योति सदा प्रज्वलित रहेगी। इसीलिये बाल गङ्गाधर तिलक 'लोकमान्य' कहलाये।

तानसेन और उनकी गणेश-अर्चना

(लेखक—डा० सुरेशव्रतराय, एम० ए०, डा० फिल०, एल-एल० बी०)

प्रत्येक हिंदूधर्मावलम्बीके जन-जीवनमें गणेश-पूजन सबसे अधिक प्रतिष्ठित एवं लोकप्रिय है। चाहे घर हो चाहे दूकान, चाहे विवाह-कार्य हो अथवा अन्य कोई माङ्गलिक अवसर, गणपतिकी प्रतिमा अथवा चित्रकी अर्चना किये बिना कार्यका आरम्भ ही नहीं होता। मूर्ति नहीं है तो सिन्दूर, रोली अथवा लाल रंगसे द्वारों दीवारों और बही आदि स्थानोंमें 'श्रीगणेशाय नमः' का अङ्कन गणेशकी व्यापक लोकप्रियताका परिचायक है। लोकभाषामें 'श्रीगणेश' शब्द ही मङ्गलकारी शुभारम्भका पर्याय बन गया है। पञ्चदेवों (विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा और गणेश) में सिद्धियों एवं ऋद्धियोंके दाता गणेशका ही प्रमुख स्थान है। शास्त्रोंमें गणेशके ५१ स्वरूपोंका वर्णन है, जैसे—बाल, तरुण, विघ्नराज, हेरम्ब, नृत्य आदि। मत्स्यपुराणमें गणेशके विभिन्न नामोंका उल्लेख है। 'शारदातिलक'में भी गणेशके अनेक नामोंकी चर्चा की गयी है, जैसे—विघ्नराज, गणपति, शक्ति-गणेश, वक्रतुण्ड, हेरम्ब, महागणपति, विरि-गणपति, उच्छिष्ट-गणपति आदि।

नृत्य-गणपतिके रूपमें गणेशजी संगीतकलाके प्रतीक हैं। दक्षिण भारतमें नृत्य-गणपतिकी अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। मैसूरके हलेबिदके होयलेश्वर-मन्दिरमें नृत्य-गणपतिकी अष्टभुजी नयनाभिराम मूर्तिके हाथोंमें परशु, पाश, मोदकपात्र, दन्त, सर्प एवं पद्म सुशोभित हैं तो शेष दो हाथ गजहस्त-मुद्रा और विस्मयहस्तकी मुद्रामें हैं। तंजौरके मन्दिर, भेड़ाघाट-स्थित मन्दिरमें गणेशकी कलात्मक प्रतिमाएँ मिली हैं। उड़ीसाके मयूरभंजमें प्राप्त नृत्य-गणपतिकी मूर्तिकी मुद्रा देखनेवाला ठगा रह जाता है। दोहरे क[illegible] आसीन अष्टभुजी मूर्ति नृत्य-मुद्रामें है। खजुराहोमें चतु[illegible] लेकर अष्टभुजी, षोडश-भुजीतक गणपतिकी मूर्तियाँ प्राप्त हु[illegible] मैसूरमें प्राप्त नृत्यगणेशकी मूर्तिके हाथोंमें अक्षमाला, [illegible] आदि हैं तो दाहिना हाथ वरदमुद्रामें है। पैरोंके [illegible] नृत्यकी कलात्मक भाव-भङ्गिमा इङ्गित होती है। बं[illegible] प्राप्त मूर्तिमें गणेशजी आम्रवृक्षके नीचे नृत्य करते दि[illegible] गये हैं। कलकत्ता-संग्रहालयमें नृत्य-गणपतिकी [illegible] मध्यकालीन मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। काशी हिंदू-विश्वविद्या[illegible] भारतकला-भवनमें संगृहीत प्रतिमामें नृत्य-मुद्रामें तिरछे गणेश प्रसन्न मुद्रामें प्रस्तुत किये गये हैं।

नृत्य-मुद्रामें गणेशकी अर्चना और लोकप्रियताके [illegible] संगीतके क्षेत्रमें वीणावादिनी सरस्वती और नटराजके [illegible] गणेशको प्रतिष्ठित स्थान मिला। संगीत-साधकको प्रे[illegible] देनेवाले, मङ्गलकर्ता और विघ्नहर्ताके रूपमें अ[illegible] तबला, मृदङ्ग, पखावज-वादक आज भी ग[illegible] वन्दनाके निम्न छन्दको परनके रूपमें प्रस्तुत करनेके [illegible] कार्यक्रमका शुभारम्भ करते हैं—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तम[illegible]
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सद[illegible]

(ऋग्वेद २। २३।

यही नहीं, संगीतज्ञोंने इष्टदेव गणपतिको समर्पित [illegible] मात्रावाले गणेशतालकी रचना की। गणेशतालका [illegible] निम्नप्रकार है—

(मात्रा २१ भाग १०)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
धा	ता	दिं	ता	कत	तिट	धा	दि	ता	कत	तिट	ता	धागे	दिं	ता	धागे	ता	तिट	कत	गदि [illegible]
×				२	३				४	५	६				७	८	९	१०	

ऐसा प्रतीत होता है कि 'गणेशताल'का प्रचलन 'संगीत-रत्नाकर'के उपरान्त हुआ। तानसेनने 'संगीतसार'में शार्ङ्गदेव तथा भरतके मतानुसार 'तालाध्याय'के अन्तर्गत ब्रह्मताल, रुद्रताल, [illegible], [illegible], [illegible], मनताल तथा विष्णुतालका उल्लेख किया है, परंतु गणेश-तालकी चर्चा नहीं मिलती।

अपनी ध्रुपद रचनाओंमें तानसेनने संगीत एवं काव्य[illegible] गजाननके चरणोंमें अर्पित कर दी है। गणेश सम[illegible] सिद्धियों, नौ निधियोंके दाता और विघ्नहर्ता हैं, जि[illegible] स्मरणमात्रसे सारे कष्ट दूर हो जाते हैं। इष्टदेवके विभि[illegible] नामोंके उल्लेख, वंश-परिचयप्रधान इस ध्रुपदमें तानसेन[illegible] प्रगाढ़ गणेश-भक्ति परिलक्षित होती है—

एकदंत गजबदन बिनायक बिघ्न-बिनासन है सुखदाई ॥
लंबोदर गजानन जगबंदन सिव-सुत ढुंढिराज सब बरदाई ॥
गौरीसुत गनेस मुसक-वाहन फरसा धर संकर सुवन रिद्ध-
सिद्ध नव-निद्ध दाई ॥
'तानसेन' तेरी अस्तुत करत छूटे कलेस प्रथम बंदन
करत दंद मिट जाई ॥

अनेक नामधारी गौरीसुत गणेशकी महिमा सागरकी भाँति अगाध है। संसारमें गणेश सर्वोच्च सिंहासनपर प्रतिष्ठित हैं, इसलिये तानसेनने उनके प्रसाद और आशीर्वादकी याचना की है—

एकदंत बंत लंबोदर फिरत जाहे बिराजे,
गनेस गौरी-सुत महा मुनि महिमा सागर
गुरु गन नाथ अविघन राजे।
हेरंब गन दीपक तूं ही महागुर,
हम तप बर चंद्रमा सों छबिनायक जगत के
सिरताजे।
'तानसेन'को प्रसाद दीजे सकल सुख नव निध के,
सदा सायक लायक जगत के सरे काजे ॥

सरस्वतीकी भाँति गजानन भी बुद्धि, सिद्धि और सुखके देनेवाले सिद्धेश्वर-आराध्य हैं, जिनका मनुष्य, देवता, गुणी जन, मुनिगण, गन्धर्व एवं पण्डित प्रतिदिन, हर समय स्मरण करते हैं। तानसेन भी गणेशकी भक्तिमें विह्वल होकर गाने लगते हैं—

तुम हो गनपत देव सुखदाता सीस धरे गज-सुंड,
जेइ-जेइ ध्यावै तेइ-तेइ पावै चंदन लेप किये भुजदंड,
सिद्धेस्वरी नाम तुमारो कहियत जे बिद्याधर तिन लोक
सत दीप नव [illegible]
'तानसेन' तुमको नित सुमिरत सुर-नर-मुनि-गुनि-गंधर्ब-पंडि[illegible]

एक अन्य ध्रुपदमें तानसेनने अष्टसिद्धि नौ-निधिके दाता, विद्यागार, लम्बोदरधारी, सौम्य मुद्रावाले गणपति, ब्रह्मा-विष्णु-महेश और शेषनागके भी आराध्यकी अत्य[illegible] भावभीने शब्दोंमें अर्चना की है—

लंबोदर गजानन गिरिजासुत गनेस एक-रद[illegible]
प्रसन्न बदन भरल भे[illegible]
नर-नारी-मुनी-गंधर्व-किंनर-यक्ष- सुंदर मिलि[illegible]
ब्रह्मा बिष्नु भरत पूजत महेस [illegible]
अष्टसिद्ध नव निद्ध मूषकवाहन बिद्यापति तोहि सुमिरत
तिनको नित सेव[illegible]
'तानसेन' प्रभु तुमही कूं ध्यावे अबिघन रूप बिनायक रूप
स्वरूप भाईस ॥

तानसेनके अतिरिक्त गोपाल नायकने 'जय सरस्वती गनेस महेस' कहकर अन्य देवताओंके साथ गजाननकी स्तुति की है तो बैजू बावराने भी गणेशको सर्वोच्च प्रतिष्ठा दी है। 'प्रथम नाम गनेस को लीजिए जा सुमिरे होए सिद्धि काम'। परंतु तानसेनके ध्रुपदोंमें मुखरित गणेश-वन्दनाका अपना रंग है। साहित्यिक सौन्दर्यके साथ भक्तिकी चरमाभिव्यक्ति और आध्यात्मिक दृष्टिसे तानसेनके ध्रुपद अद्वितीय हैं और सम्भवतः उनकी प्रगाढ़ भक्ति ही है उनकी अद्वितीय कलाका रहस्य। इसमें कोई संदेह नहीं कि तानसेनकी संगीत-साधना-रचनाओंमें गणेशकी प्राणप्रतिष्ठा अत्यन्त भव्य रूपमें हुई है।

श्रीगणेश-मन्दिरके निर्माणके नियम

श्रीगणेश-मन्दिरके निर्माणके नियम निम्नप्रकारके हैं। यह संकेतमात्र है, विशेषके लिये शास्त्रीय अध्ययन आवश्यक है—

गणेश-मन्दिरमें प्रधान मूर्तिसे बायीं ओर गजकर्णकी और दाहिनी ओर सिद्धिकी मूर्ति होनी चाहिये। उत्तरमें गौरीकी, पूर्वमें ओर बुद्धिकी, आग्नेय दिशामें बालचन्द्रकी, दक्षिणमें सरस्वतीकी, पश्चिममें कुबेरकी और पीठकी ओर धूम्रककी मूर्ति होनी चाहिये। मन्दिरके चारों फाटकोंपर दो-दो द्वारपाल होने चाहिये। पूर्वी फाटकके द्वारपालोंके नाम अविघ्न और विघ्नराज, दक्षिणवालोंके सुवक्त्र और बलवान्, पश्चिमके गजकर्ण और गोकर्ण और उत्तरके सुसौम्य और शुभदायक हैं। द्वारपालोंकी ये सब प्रतिमाएँ वामनाकृति और घोररूपी होनी चाहिये। सबोंके चार हाथोंमेंसे एक हाथमें दण्ड और एक हाथ तर्जनी मुद्रामें हो। अविघ्न और विघ्नराजके शेष दो हाथोंमें परशु और पद्म हों, सुवक्त्र और बलवान्के खेटक, गजकर्ण और गोकर्णके धनुष और बाण तथा सुसौम्य और शुभदायकके पद्म और अङ्कुश होने चाहिये।

गणेशका शुण्ड (सूँड) प्रायः बायीं ओर घूमा होता है। ऐसी मूर्तिको तमिलमें 'इडम्पुरि विनायक' कहते हैं। यदि सूँड दाहिनी ओर मुड़ी हुई हो तो तमिलमें उसे 'वलम्पुरि विनायक' कहते हैं।

—[illegible]

श्रीगणेशप्रतिमा-पूजाका मूल्याङ्कन

निस्सन्देह श्रीगणेशजी सर्वसौन्दर्य-निधि हैं। वे मङ्गलमूर्ति हैं। उनकी रूपाकृतिका महत्त्व उनकी ही कृपासे वाणीमें अङ्कित किया जा सकता है। स्वरूपसे गणेशजी समस्त कर्तृत्वके आरम्भ हैं। वे ही मूल पुरुष और मूलारम्भ हैं, परात्पर हैं तथा सबके आदि, अन्त और स्वयम्भू हैं,—इस तरह समर्थ रामदासने अपने 'दासबोध'में उनके स्वरूपका स्मरण किया है—

तैसी मंगळमूर्ती आद्या। पासूनि जाल्या सकळ विद्या ॥
मूळ पुरुषाचेनि द्वारें। तैसे कवी। नमूं ऐसिया गणेंद्रा ॥
(दासबोध १।२।१४)

श्रीगणेशजीकी प्रतिमा सौन्दर्यकी प्रतीक है। जो व्यक्ति गणेशजीकी पूजा करता है, उसे विघ्नका भय नहीं रहता—

'गणेशं पूजयेद्यस्तु विघ्नस्तस्य न जायते।'
(पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ११)

श्रीगणेशजी प्रकृतिस्वरूप हैं। वे महत्तत्त्वरूप हैं। वे पृथ्वी और जलके रूपमें अभिव्यक्त हैं। वे ही दिक्पालोंके रूपमें प्रकट हैं। असत् और सत्—दोनों ही उनके स्वरूप हैं। वे जगत्‌के कारण हैं। वे विश्वरूप—सर्वत्र व्यापक हैं। उनका यह साकार स्वरूप ही उनका रूप है। उनकी मूर्ति अथवा प्रतिमामें इसी साकार स्वरूप अथवा रूपकी अभिव्यक्ति उपलब्ध होती है—

प्रधानस्वरूपं महत्तत्त्वरूपं धराचारिरूपं दिगीशादिरूपम्।
असत्सत्स्वरूपं जगद्धेतुभूतं सदा विश्वरूपं गणेशं नताः स्मः ॥
(गणेशपु० १। ११। १२)

श्रीज्ञानेश्वर महाराजने अपनी प्रसिद्ध रचना 'भावार्थ-दीपिका'के आरम्भमें वेदान्तवेद्य, स्वसंवेद्य आदिदेव श्रीगणेशकी वन्दनामें उनके स्वरूप—स्वरूपकी वन्दना की है। महाराजकी इस पंक्तिमें श्रीगणेशके रूपका महत्त्व स्पष्ट सुव्यक्त है—

ॐ नमोजी आद्या। वेद प्रतिपाद्या ॥
जय हो स्वसं वेद्या। आत्मरूपा श्रीगणपति ॥
तुझें निर्गुण रूप। केवळ [illegible] ॥
(भावार्थदीपिका, अध्या० १। १)

श्रीगणेशजीका रूप बड़ा सुन्दर है। उनकी मूर्ति बड़ी ही मनोहर स्वीकार की गयी है। उन्हें सौन्दर्यमण्डित कहा गया है—

'सौन्दर्यमण्डितः।' (गणपतिसहस्रनामस्तोत्र-५…)

वेद उनके रूपका वर्णन करनेमें अपने-आपको सर्वथा असमर्थ पाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी उन्हींकी कृपासे उन्हें मूर्तिमान् देखनेमें समर्थ होते हैं। एक बार प्रलय हो गया।……ब्रह्मा, विष्णु और महेशने गणेशजीकी स्तुति की। उन्होंने करुणा कर त्रिदेवोंको अपना रूप दिखलाया। यह रूप मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाला था—

ततोऽतिकरुणाविष्टो लोकाध्यक्षोऽखिलार्थवित् ॥
दर्शयामास तान् रूपं मनोनयननन्दनम्।
(गणेशपु० १। १२। ३३)

श्रीगणेशजीने ब्रह्माजीको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे दिव्य मायाविभूषित हैं। उनके हाथमें परशु और कमल सुशोभित हैं। वे समस्त पापोंको हरनेवाले तथा सर्वसौन्दर्य-कोश हैं। उनका मुख हाथीके मुखके समान है। वे अपने भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं; सुर, मनुष्य और मुनियोंके सम्पूर्ण विघ्नोंको नष्ट करनेवाले हैं—इस रूपमें ब्रह्माजीने उनका दर्शन किया—

परशुकमलधारी दिव्यमायाविभूषः
सकलदुरितहारी सर्वसौन्दर्यकोशः।
करिवरमुखशोभी भक्तकामप्रपोषः
सुरमनुजमुनीनां सर्वविघ्नैकनाशः ॥
(गणेशपु० १। १५। ११)

भगवान् विष्णुद्वारा श्रीगणेशके प्रतिमा-पूजनका उल्लेख मिलता है। गणेशपुराणके उपासनाखण्डमें वर्णन है कि मधु-कैटभपर विजय प्राप्तकर भगवान् विष्णुने सिद्धिविनायककी प्रतिमाकी स्थापना की थी। शिवजीने भगवान् विष्णुको श्रीगणेशका पूजन कर मधु-कैटभसे लड़नेके लिये युद्धमें प्रस्थान करनेकी सम्मति दी। भगवान् विष्णुने सिद्धक्षेत्रमें जाकर गणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये तप किया। श्रीगणेशजी प्रकट हो गये। श्रीविष्णुने उनकी स्तुति की। गणेशजी उन्हें अभीष्ट-सिद्धिका वर देकर अन्तर्धान हो गये। विष्णुने रत्नोंकी प्रतिमा और श्रीगणेशजीके मन्दिरका निर्माण कराया। वह रत्नमय बना हुआ था। उसमें प्रचुर रत्न जड़े हुए थे। उसका शिखर ऊँचा था, उसमें चार द्वार थे। वह मन्दिर सुन्दर ढंगसे प्रशस्त था। उसमें गण्डकीय पत्थरके

निर्मित श्रीगणेशकी प्रतिमा स्थापित की; देवताओं और ऋषि-मुनियोंने इस मूर्तिका नाम 'सिद्धविनायक' रखा और विष्णुका यह तप-क्षेत्र 'सिद्धिक्षेत्र'के नामसे विख्यात हुआ—

तत आनन्दपूर्णोऽसौ मेने स्वप्रभुतो जितो ।
प्रासादं निर्ममे तत्र स्फाटिकं भूरिरत्नकम् ॥
कलत्काञ्चनशिखरं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ।
प्रतिमां स्थापयामास गाण्डकीपाषाणजैः कृताम् ॥
देवाश्च मुनयः सिद्धविनायक इति प्रथाम् ।
चक्रुरत्र यतः सिद्धिः प्राप्तेयं हरिणा शुभा ॥
सिद्धिक्षेत्रं ततस्तु पप्रथे भुवि सर्वतः ।

(गणेशपु० १ । १८ । २०–२१)

विष्णुके ही स्वरूप श्रीवामनने गणेशजीकी मूर्ति स्थापित की थी । गणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये कश्यपके संकेतसे श्रीवामनने ('वक्रतुण्डाय हुम्' इस) षडक्षरमन्त्रका जप किया था । गणेशजीने उनको प्रत्यक्ष दर्शन दिया था। वे शुण्डदण्डसे सुशोभित और मयूरपर विराजमान थे—

'मयूरवाहनो देवः शुण्डादण्डविराजितः ।'

(गणेशपु० २ । ११ । १०)

श्रीवामनने उनकी स्तुति की। गणेशजीके अन्तर्धान हो जानेपर श्रीवामनने काश्मीरीय पाषाणसे उनकी उत्तम मूर्तिका निर्माण करवाकर उसको स्थापित करवाया । यह मूर्ति चतुर्भुज, तीन नेत्रोंवाली, शुण्ड-मण्डित, प्रसन्नमुखी तथा दो श्रेष्ठ हाथोंसे भक्तोंको अभयप्रदान करनेवाली थी । इस मूर्तिके लिये उन्होंने रत्न-काञ्चन-जटित एक मन्दिर बनवाया और गणेशजीकी कृपासे बलिपर विजय पायी ।

………………………वामनोऽकारयच्छुभाम् ।
काश्मीरोपलजां क्षेत्रेऽथास्थापयन्मूर्तिमुत्तमाम् ॥
चतुर्भुजां त्रिनयनां शुण्डादण्डविराजिताम् ।
प्रसन्नां वरहस्ताभ्यां भक्तानामभयप्रदाम् ॥
स्मरणाद्दर्शनाद्ध्यानात् पूजनात् सर्वकामदाम् ।
प्रासादं कारयामास रत्नकाञ्चननिर्मितम् ॥

(गणेशपु० २ । ११ । २१–२३)

भगवान् शंकरद्वारा गणेशजीकी मूर्ति-स्थापना और मन्दिर-निर्माणका प्रसङ्ग गणेशपुराणमें उपलब्ध होता है । उन्होंने श्रीगणेशकी प्रसन्नतासे ही त्रिपुरपर विजय पाकर अपना 'त्रिपुरारि' नाम सार्थक किया था। संक्षिप्त आख्यान यह है कि त्रिपुरासुरको श्रीगणेशजीने सोने, चाँदी और लोहेके तीन नगर प्रदान किये थे । उसने मन्त्र विद्या-विचक्षण ब्राह्मणोंके द्वारा उसकी विधिवत् प्रतिष्ठा करायी । इसके लिये उसने गणेशपुरमें रत्न स्वर्ण आदिसे उनका एक भव्य मन्दिर बनवाया था ।

ततः काश्मीरपाषाणभवां मूर्तिं गजाननीम् ।
स्थापयामास विधिवद्ब्राह्मणैर्मन्त्रकोविदैः ॥
महान्तं कारयन् दिव्यं मणिमुक्ताविभूषितम् ।
गणेशपुरमध्ये स प्रासादं कृतवान् शुभम् ॥

(गणेशपु० १ । ३९ । २-[illegible])

त्रिपुरासुरने अमरावतीपर अधिकार कर लिया। ब्राह्मणवेष धारणकर गणेशजीने त्रिपुरासुरसे कहा कि 'मैंने कैलासमें शिवजीके पास गणेशजीकी मूर्ति देखी है । वह मू[illegible] चिन्तित कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली है । यह शिवजीद्वारा पूजित है'—

अहं कैलासमगमं दृष्टवान् मूर्तिमुत्तमाम् ।
शिवेन पूजितां सम्यग्गणेशस्य चिन्तितार्थदाम् ॥

(गणेशपु० १ । ४१ । २०)

त्रिपुरासुरने दूत भेजकर शिवजीसे उस चिन्तामणि मूर्तिकी याचना की—

'मूर्तिश्चिन्तामणेस्तेऽस्ति गृहे सर्वार्थदा शुभा ।'

(गणेशपु० १ । ४२ । ५)

शिवजीने कहलाया कि 'बिना युद्धके वह मूर्ति नहीं दी जा सकती ।' त्रिपुरासुर कैलास गया । भ्रमण करते हुए उसे वहाँ एक चिन्तामणिमयी सुन्दर मूर्ति दीख पड़ी । वह सहस्रों सूर्योंके समान प्रभामयी, अनेक आभूषणोंसे शोभित एवं त्रैलोक्य सुन्दर थी । उसे लेकर वह अपने स्थानपर लौट आया—

भ्रमन् ददर्श तत्रैकां मूर्तिं चिन्तामणेः शुभाम् ॥
सहस्रसूर्यसंकाशां नानालंकारशोभिनीम् ।
त्रैलोक्यसुन्दरीं सद्यो गृहीत्वा स्वस्थलं ययौ ॥

(गणेशपु० १ । ४३ । ४३-४४)

शिवने घोर तपके द्वारा गणेशजीको प्रसन्न किया । उनकी कृपासे उन्होंने त्रिपुरासुरपर विजय प्राप्त की । शिवजीने श्रीगणेशकी मूर्ति स्थापित करनेके लिये एक भव्य मन्दिर बनवाया, उसमें मूर्ति स्थापित की और गणेशजीकी पूजा की—

'संस्थापयामास महागणेशं प्रासादमुच्चैरकमाशु चक्रे ॥'

(गणेशपु० १ । ४५ । १९)

गणेशजीकी मूर्तिकी पूजा देवता-ऋषि मुनि—सभीने की।

देवराज इन्द्रने भी गणेश-मूर्ति स्थापित की थी। उन्होंने महर्षि गौतमके शापसे मुक्त होनेके लिये गणेशजीकी आराधना की। गणेशजीने उनको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। इन्द्रने चिन्तामणिपुर-तीर्थमें रत्न और सुवर्णसे जटित एक विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें श्रीगणेशजीकी एक दिव्य, सर्वावयवसुन्दर स्फटिकमयी मूर्ति स्थापित की—

स्थापयामास शक्रोऽपि स्फाटिकीं मूर्तिमादरात्॥
वैनायकीं शुभां दिव्यां सर्वावयवसुन्दराम्।
कारयामास विपुलं प्रासादं रत्नकाञ्चनैः॥
(गणेशपु० १ । १४ । ३७–३८)

मुद्गल ऋषि गणेशजीके महान् भक्त थे। कमलाके पुत्र दक्षने मुद्गल ऋषिको गणेशजीकी मूर्तिकी षोडशोपचार एवं विधि विधानसे पूजा करते देखा था। वह मूर्ति रत्न-काञ्चनसे निर्मित, चार भुजा तथा तीन नेत्रोंवाली एवं अनेक आभूषणोंसे अलंकृत थी—

वैनायकीं महामूर्तिं रत्नकाञ्चननिर्मिताम्॥
चतुर्भुजां त्रिनयनां नानालंकारशोभिनीम्।
उपचारैः षोडशभिः पूजयन्तं विधानतः॥
(गणेशपु० २१ । १०-११)

गृत्समद मुनिकी गणना श्रेष्ठ गणेश-भक्तोंमें है। उनके तपसे प्रसन्न होकर श्रीगणेशजीने प्रकट होकर उन्हें प्रत्यक्ष दर्शनसे कृतार्थ किया था। मुनिने पुष्पक-क्षेत्रमें उनका विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें वरद-गणेशमूर्तिकी स्थापना की थी। वहाँ गणेशकी कृपासे सिद्धिका स्थान हो गया। यह पुष्पक क्षेत्र सबकी कामनाओंका पोषण (साधन) करता है।

गणेशमूर्तिप्रासादं कारयामास सुन्दरम्॥
वरदेति च तन्नाम स्थापयामास शाश्वतम्।
सिद्धिस्थानं च तत्रासीद् गणेशस्य प्रसादतः॥
कामान् पुष्णाति सर्वेषां पुष्पकं क्षेत्रमित्यपि।
(गणेशपु० १ । १७ । ४५-४७)

स्पष्ट है कि अनादिकालसे श्रीगणेशकी कृपा-प्राप्तिके लिये उनकी प्रतिमाकी पूजा होती आ रही है और यह परम्परा अनवरत चलती ही रहेगी। समय समयपर अनेक गणेश मन्दिरोंके निर्माणका उल्लेख इतिहासमें उपलब्ध होता है। नेपालके पशुपतिनाथ-मन्दिरके उत्तरमें एक प्राचीन गणेश-मन्दिर है; कहा जाता है कि इसका निर्माण सम्राट् अशोककी लड़की चारुमतीने कराया था। शृङ्गेरीमें शंकराचार्य और शारदादेवीके मन्दिरमें उच्छिष्टगणपतिकी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। त्रिवेन्द्रम्‌में श्वेतगणपतिकी प्रतिमा सा है। १४८६ ई०में पाण्ड्य शासक अरिकेसरिने तेनका विश्वनाथस्वामीका मन्दिर बनवाया था, जि लक्ष्मीगणपतिकी मूर्ति स्थापित है। कुम्भकोणम्‌के नागेश स्वामी-मन्दिरमें उच्छिष्टगणपतिकी मूर्ति प्रतिष्ठित है पंद्रहवीं शताब्दीके लगभग निर्मित नेगापटम्‌के नीलया यमन-मन्दिरमें उच्छिष्टगणपतिकी मूर्ति स्थापित है। बारह तेरहवीं शताब्दीके लगभग तंजौर-जनपदके पट्टीश्वर निर्मित शिव-मन्दिरमें प्रसन्नगणपतिकी त्रिभङ्ग प्रति प्रतिष्ठित है। होयसल शासकोंकी प्राचीन राजधानी हलेबि होयसलेश्वर-मन्दिरमें नृत्तगणपतिकी मूर्ति स्थापित है विष्णुवर्धनके शासनकालमें ११२१ ई०में उपर्युक्त मन्दिर निर्माण आरम्भ हुआ था।

'श्रीतत्त्वनिधि'में श्रीगणेशजीके विभिन्न रूपोंके ध्यान वर्णन उपलब्ध होता है। वे बालगणपति, तरुणगणपति भक्तगणपति, वीरगणपति, शक्तिगणपति, द्विजगणपति, सि गणपति, उच्छिष्टगणपति, विघ्नगणपति, क्षिप्रगणपति हेरम्बगणपति, लक्ष्मीगणपति, महागणपति, विजयगणपति नृत्तगणपति, ऊर्ध्वगणपति, एकाक्षरगणपति, वरगणपति त्र्यक्षरगणपति, क्षिप्रप्रसादगणपति, हरिद्रागणपति, एकदन्त-गणपति, सृष्टिगणपति, उद्दण्डगणपति, ऋणमोचकगणपति, ढुण्ढिगणपति, द्विमुखगणपति, त्रिमुखगणपति, सिंहगणपति, योगगणपति, दुर्गागणपति तथा संकष्टहरणगणपति आदि रूपोंमें अङ्कित किये गये हैं। इन्हीं रूपोंके ध्यानके अनुसार मन्दिरोंमें उनकी प्रतिमाएँ स्थापित की गयी हैं।

श्रीगणेशजीकी मूर्ति प्रायः स्थानक (खड़ी) होती है, उनकी आसन-मूर्तियाँ (बैठी प्रतिमाएँ) भी उपलब्ध होती हैं। श्रीगोपीनाथ रावने अपनी पुस्तक 'एलीमेंट्स् आफ हिंदू आइकोनोग्राफी'के प्रथम खण्डमें गणेश प्रतिमाके लक्षणोंपर यथेष्ट प्रकाश डाला है। गणेशजीकी स्थानक मूर्तियाँ त्रिभङ्ग और समभङ्ग प्राप्त होती हैं। उनकी प्रतिमाएँ चतुर्भुज, षड्भुज, अष्टभुज, दशभुज, षोडशभुज होती हैं, पर प्रायः चतुर्भुज गणेश-मूर्तियाँ ही देखनेमें आती हैं।

श्रीगणेशकी मूर्तिके निर्माणके सम्बन्धमें कहा गया है कि 'विनायकको गजमुख तथा चार भुजावाला बनाना चाहिये। उनके दाहिने हाथमें शूल, अक्षमाला और बायें हाथमें परशु और मोदकपूर्ण पात्रका संयोजन करना चाहिये।

नका बायाँ दाँत नहीं बनाना चाहिये। एक आसनसे यत उनके चरणका निर्माण पादपीठपर करना चाहिये। नके करके अग्रभागमें मोदकपूर्ण पात्र रखना चाहिये। नका उदर बड़ा तथा कान स्तब्ध होने चाहिये। उनके अको सर्पयज्ञोपवीत तथा शरीरको व्याघ्रचर्मसे अलंकृत ना चाहिये।

विनायकस्तु कर्तव्यो गजवक्त्रश्चतुर्भुजः।
शूलकं चाक्षमालां च तस्य दक्षिणहस्तयोः॥
पात्रं मोदकपूर्णं तु परशुश्चैव वामतः।
दन्तश्चास्य न कर्तव्यो वामो रिपुनिषूदन॥
पादपीठकृतः पाद एक आसनगो भवेत्।
पूर्णमोदकपात्रं तु कराग्रे तस्य कारयेत्॥
लम्बोदरस्तथा कार्यः स्तब्धकर्णश्च यादव।
व्याघ्रचर्माम्बरधरः सर्पयज्ञोपवीतवान्॥

(विष्णुधर्मोत्तरपु० ३। ७१। १३–१६)

'शिल्परत्न' तथा सूत्रधार मण्डनकृत 'रूपमण्डन' आदि ग्रन्थोंमें भी गणेशमूर्ति-निर्माणकी विधिका समीचीन विवेचन उपलब्ध होता है। श्रीगणेशजीकी प्रतिमा-पूजा और उनकी उपासना सनातन है, सिद्धिदात्री और मङ्गलदायिनी है।

श्रीगणेशजीकी मूर्ति कृपामयी, मङ्गलमयी है। असंख्य देवताओंके उपास्य हैं—श्रीगणपति। उनकी प्रतिमा अनन्त शुभदायिनी और अनन्त सुखदात्री है। —रामकृष्ण

मूर्तिकलामें श्रीगणेश

(लेखक—डॉ० श्रीब्रजेन्द्रनाथजी शर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, एफ्०आर० ए० एस्०)

हेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा व्याजाद् बलिं बध्नता
स्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं शेषेण धर्तुं धराम्।
पार्वत्या महिषासुरप्रमथने सिद्धाधिपैः सिद्धये
ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात् स नागाननः॥*

गणेश अथवा गणपतिके, जो 'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे' इस मन्त्रके अनुसार शिवके गणोंके नायक भी हैं, एकदन्त, विघ्नेश्वर, लम्बोदर, हेरम्ब, शूर्पकर्ण, गजानन, गजेन्द्र, [illegible]श्वर, गुहाग्रज आदि अनेक नाम हैं। शिवपुराण, स्कन्दपुराण, वराहपुराण, मत्स्यपुराणमें इनके जन्मकी कथा [illegible] विस्तृत एवं विविध वर्णन प्राप्त होते हैं। दसवीं शती [illegible] उत्पन्न हुए हरिभद्रसूरिने 'धूर्ताख्यान'-नामक प्रसिद्ध [illegible]न्थमें भी इनके जन्मकी कथाका वृहद् वर्णन दिया है। [illegible]मरसिंहके 'अमरकोश'में इनके अनेक नामोंकी सूची दी [illegible]यी है। गरुडपुराणमें गणेशको हिंदुओंके अन्य चार [illegible]मुख देवताओंके समान स्थान दिया है तथा अग्निपुराणमें [illegible]नकी पूजाका विस्तारसे वर्णन मिलता है।

* त्रिपुरको जीतनेके लिये शिवने, भू-दान माँगनेके व्याजसे [illegible]लिको बाँधनेवाले विष्णु (वामन) ने, सृष्टिके लिये ब्रह्माजीने, [illegible]थ्वीको धारण करनेके लिये शेषने, महिषासुरका मर्दन करनेके [illegible]मित्त पार्वतीजीने, सिद्धिके लिये सिद्धेश्वरोंने तथा विश्व-विजयके [illegible]ये कामदेवने जिनका ध्यान किया था, वे गजमुख गणेश [illegible]हमारी रक्षा करें।

गणेशकी पूजा अत्यन्त प्राचीन कालसे प्रचलित है। गणेशकी प्राचीनतम मूर्तियाँ यक्षों और नागोंकी प्रतिमाओंका प्रतिरूप प्रतीत होती हैं। यक्ष और नागोंकी मूर्तियोंकी पूजा ईसासे भी कई शताब्दी पूर्व भारतमें प्रचलित थी, जैसा कि प्राचीन साहित्य तथा मथुरा, विदिशा और पवाया आदि अनेक स्थानोंसे मिली मूर्तियोंसे ज्ञात होता है। इनके अतिरिक्त अमरावतीसे प्राप्त एक शिलापट्टपर (२ री शती), जो अब मद्रास-संग्रहालयमें प्रदर्शित है, गजानन यक्षका अङ्कन मिलता है। इसमें बड़े कान भी गजके हैं, परंतु मुख गजका नहीं है। जयपुरके समीप रेढ-नामक स्थानसे प्राप्त (प्रथम शती ई० पूर्वसे प्रथम शती ई०) एक मिट्टीकी बनी गजमुखी मातृकाकी भी मूर्ति मिली है। मथुरासे प्राप्त एक शिलापट्टपर (२ री शती ई०) भी गजमुखी यक्षोंका अङ्कन मिलता है। इन सभी उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि प्राचीन कलाकार गजमुखी मानव-आकृतियाँ बनानेमें भलीभाँति निपुण थे और जब लगभग चौथी शती ई०के करीब उनसे गणपतिकी मूर्तियाँ बनानेको कहा गया तो उन्होंने पाषाणके माध्यमसे हिंदू, बौद्ध एवं जैनधर्मके देवी-देवताओंके साथ ही गणेशकी भी कलात्मक प्रतिमाओंका निर्माण किया।

प्रारम्भिक गुप्त युग लगभग चौथी शती ई०की — रूपसे सर्वप्रथम गणेशकी स्थानक-मूर्तियाँ भगवान् कृष्णकी जन्मस्थली मथुरासे प्राप्त हुई हैं, जो वहाँके पुरातत्त्व संग्रहालयमें

सुरक्षित है। इनमें उनके केवल दो हाथ हैं तथा सूँड़ बायीं ओर मुड़ी हुई है, जिसका अग्रभाग बायें हाथमें पकड़े मोदक-पात्रपर रखा है। भूमरासे भी लगभग इन्हींकी समकालीन एक आसन-मूर्तिमें गणेश सुन्दर यज्ञोपवीत तथा उदर-बन्ध पहने दिखाये गये हैं। गुप्तकालीन पाँचवीं शतीकी एक अन्य मूर्तिमें भी उनके केवल दो हाथ हैं और उनके बायें हाथमें एक मोदक-पात्र है। परंतु इस मूर्तिमें 'ऊर्ध्वरेतस्' भावकी स्पष्ट अभिव्यक्ति की गयी है। यह मूर्ति उदयगिरि (मध्यप्रदेश) में आज भी देखी जा सकती है। उत्तर गुप्तयुगीन ५वीं६ ठी शती ई०की मूर्तियोंमें गणेशके दोके स्थानपर चार भुजाओंका प्रदर्शन मिलना प्रारम्भ हो जाता है और यह बादकी मध्यकालकी मूर्तियोंमें भी मिलता है। झाँसी जिलेके देवगढ़के प्रसिद्ध दशावतार-मन्दिरपर इस प्रकारकी चतुर्भुजी मूर्तियाँ विद्यमान हैं।

पूर्व-मध्ययुगीन प्रतिहार-काल (लगभग ७५६–१०१८ ई०) में गणेशकी अनेक मूर्तियोंका निर्माण हुआ है। राजस्थानमें घटियालाके स्तम्भ-लेखके, जो 'ॐ विनायकाय नमः' से प्रारम्भ होता है, ऊपरी भागमें गणेशकी चार मूर्तियाँ चारों दिशाओंकी ओर मुँह किये हुए बनी हुई हैं। जोधपुर-जिलेके मण्डोरके पास रावणकी खाईके समीप सप्तमातृकाओंके साथ भी गणेशका अङ्कन हुआ है, जिसका एक अन्य उदाहरण इलोरामें भी देखा जा सकता है। आबानेरीसे प्राप्त एक मूर्तिमें चतुर्भुजी गणेशको ललितासनमें बैठे दिखाया गया है। ओसियामें गणेशकी कई मूर्तियाँ आज भी वहाँके प्रतिहार-कालीन मन्दिरोंपर देखी जा सकती हैं। वहाँके अम्बिका-माता-मन्दिरमें गणेश, महिषासुरमर्दिनी दुर्गा तथा कुबेरकी विशाल प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। ओसियाके सूर्य-मन्दिरके बाह्य भागपर गणपति-अभिषेककी एक अद्वितीय मूर्ति बनी है, जो मूर्ति-कलाका उच्चतम उदाहरण है। चित्तौड़-दुर्गमें निर्मित कालिका-माता-मन्दिरके बाह्य भागपर भी गणेशकी अत्यन्त सुन्दर मूर्ति उत्कीर्ण है, जो आठवीं शती ई०की प्रतीत होती है। उत्तर प्रदेशमें कन्नौजसे लगभग इसीकी समकालीन चतुर्भुजी नृत्य-गणपतिकी मूर्ति मिली है, जिसमें वे सर्पयज्ञोपवीत एवं बाघकी खाल पहने दिखलाये गये हैं। ग्वालियर-संग्रहालयकी एक ऐसी ही मूर्तिमें नृत्य-गणपतिके साथ मृदङ्ग-वादकको भी दिखाया गया है। नृत्य-गणपतिकी एक अन्य सुन्दर मूर्ति भारत कलाभवन, ... विद्यमान है।

अमेरिकाके फिलाडेल्फिया-संग्रहालयमें नृत्य-गणपतिकी भूरी प्रतिमा प्रदर्शित है। इसमें वे चार प्रकारकी मुद्राओंमें ...रे दिखाये गये हैं। इनकी दाहिनी ओर एक मृदङ्ग-वाद... बायीं ओर बंशी-वादक बना है। मूर्तिपर सिन्दूरके चिह्न हैं, जिससे विदित होता है कि यहाँ पहुँचनेसे पूर्व उस मूर्ति किसी देवालयमें पूजा होती रही होगी। ऐसी ही एक अन्य मूर्ति यहाँके 'फ्लीवलैंड म्यूजियम आफ आर्ट' में भी है, जि... उनके अधिकतर हाथ, जो नृत्य-मुद्रामें हैं, खण्डित हो ग... और वे अपने दो बायें हाथोंमें कमल एवं मोदक-पात्र ... हैं। उनका वाहन मूषक उनके बायें पैरके पास चित्रित ... यह मूर्ति भी दसवीं शतीकी बनी हुई लगती है। ... संग्रहालय, नयी दिल्लीमें भी इसीकी समकालीन नृत्य-गणपति... एक मूर्ति है, जो अपने एक दाहिने हाथमें परशु ... है और उनके अन्य हाथ टूट चुके हैं।

प्रतिहारकालीन १०वीं शतीकी भूमरासे प्राप्त ... गणेशकी एक सुन्दर प्रतिमा बोस्टनके कला-संग्रहालयमें प्रद... है। इसमें चतुर्भुज गणेश अपनी शक्ति लक्ष्मीके साथ ... ऊँचे आसनपर बैठे दिखाये गये हैं। इसीसे साम्य रख... एक मूर्ति मथुरा-संग्रहालयमें भी है। इस आशयकी म... भारतसे प्राप्त मूर्तियाँ भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता ... राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीमें भी सुरक्षित हैं।

प्रतिहार-साम्राज्यके पतनके पश्चात् उत्तरी भारतमें अने... राज्योंकी स्थापना हो गयी। दिल्ली-अजमेरके चौह... सम्राटोंने, जो मुख्यतः शैवमतानुयायी थे, अनेक गणे... प्रतिमाओंका भी निर्माण करवाया। हर्षनाथ, सीकर... गणेशकी कई सुन्दर मूर्तियाँ मिली हैं। यहाँसे प्राप्त ए... मूर्तिमें, जो १० वीं शतीकी है, गणेश स्थानकमुद्रामें दिखा... गये हैं। वे अपने हाथोंमें पद्म, परशु, अक्षमाला और मोदक... पात्र लिये तथा यज्ञोपवीत धारण किये हुए हैं।

अलवर-संग्रहालयमें नृत्य-गणेशकी एक तोमरकालीन मूर्ति प्रदर्शित है, जो अपने ऊपरके दो हाथोंमें एक सर्प पकड़े है। पैरोंके समीप मूषक तथा गण बने हैं। मूर्तिकी पीठिकापर उत्कीर्ण लेखसे ज्ञात होता है कि बरदर नगर (सम्भवतः रेवाड़ीके समीप बावल)-निवासी महालोकस्-नामक व्यक्तिने इस गणेश-मूर्तिका निर्माण विक्रम संवत् ११०१ (१०४४ ई०) में करवाया था।

मध्यप्रदेशके खजुराहो-क्षेत्रमें चन्देलोंने अनेक विशाल न्दिरोंका निर्माण करवाया, जिनमें कई आज भी विद्यमान । यहाँपर बनी द्विभुजी, चतुर्भुजी, षड्भुजी आदि अनेक कारकी स्थानक, आसन, नृत्य करती हुई तथा अपनी क्तिके साथ मूर्तियाँ अब भी देखी जा सकती हैं। खजुराहोमें णेश-मूर्तियोंके जितने प्रकार मिलते हैं, उतने सम्भवतः ारतके किसी अन्य स्थानमें प्राप्त नहीं हैं। खजुराहोके रातत्त्व-संग्रहालयमें गणेशकी आदमकद कई प्रतिमाएँ हैं, जनमें वे अनेक नृत्य-मुद्राओंमें चित्रित किये गये हैं। इसी ग्रहालयमें गणेशकी आसन, स्थानक, शक्तिसहित तथा सप्तमातृकाओं एवं वीरभद्रके साथ प्रतिमाएँ भी प्रदर्शित हैं, ो मूर्ति-विज्ञानकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। खजुराहो ग्रहालयमें ही उनके वाहन मूषककी भी एक स्वतन्त्र र्ति है, जो मोदक-पात्र पकड़े है।

मध्यप्रदेशमें चन्देलोंके समकालीन चेदि या हैहय- ंशीय शासकोंने भी अनगिनत मन्दिरों एवं प्रतिमाओंका निर्माण करवाया। रायपुर-संग्रहालयमें गणेशकी एक कांस्य- मूर्तिमें उन्हें एक ऊँचे आसनपर बैठे हुए दिखाया गया है, जिसमें वे योगपट्ट बाँधे हैं। चतुर्भुजी गणेश पद्म तथा त्रिशूल, दन्त एवं मोदक-पात्र पकड़े हैं और मूषक-पीठिकापर अङ्कित हैं। यह ९वीं-१०वीं शतीकी कृति है। इसी समयकी दो नृत्य-गणपतिकी प्रस्तर-प्रतिमाएँ अमरपाटन एवं चौंसठ योगिनियोंके मन्दिर, भेड़ाघाटमें भी विद्यमान हैं। अन्तिम दोनों मूर्तियाँ खजुराहोसे मिली नृत्यगणपतिकी प्रतिमाओंसे काफी साम्य रखती हैं और चेदि-कलाके अनुपम उदाहरण हैं।

प्रतिहारोंकी शक्तिका अन्त होनेपर गाहड़वालवंशीय नरेशोंने वर्तमान उत्तरप्रदेशके विशाल भूभागपर शासन किया तथा अपनी कीर्तिके लिये अनेकों मन्दिरोंका निर्माण कराया, जिन्हें बादमें मुसलमानी शासकोंने पूर्णतया नष्ट कर दिया। इस वंशकी कलाके अब थोड़े ही उदाहरण शेष बचे हैं। इनमें सम्भवतः सबसे प्रमुख कमपिल्ल, जिला फर्रुखाबादसे प्राप्त नृत्य-गणपतिकी मूर्ति है, जो अब राज्य-संग्रहालय, लखनऊमें प्रदर्शित है। भाग्यवश यह मूर्ति पर्याप्तरूपसे अच्छी दशामें है और १२ वीं शतीकी मूर्ति-कलाका सुन्दर उदाहरण है।

पालवंशीय सम्राटों (७५०—११९९ ई०) ने पूर्वी भारतमें लम्बे समयतक शासन किया। बौद्ध होनेपर भी इन्होंने अन्य धर्मोंको समानरूपसे पनपनेका अवसर दिया, जिसके फलस्वरूप सनातन धर्मावलम्बियोंके अनेक देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ भी पर्याप्त संख्यामें मिली हैं। नृत्य गणपतिकी बिहारसे प्राप्त एक मूर्ति पटना-संग्रहालयमें तथा बंगालसे प्राप्त एक अन्य मूर्ति मद्रास संग्रहालयमें प्रदर्शित है। यद्यपि बंगालसे प्राप्त मूर्तिका ऊपरी भाग खण्डित है, फिर भी कलाकी दृष्टिसे वह बिहारसे प्राप्त मूर्तिसे कहीं अधिक सुन्दर एवं कलात्मक है। दोनों मूर्तियाँ पाल-कला—लगभग ११वीं शती ई०में बनी लगती हैं। इनके अतिरिक्त बिहारसे प्राप्त दो चतुर्मुखी शिवलिङ्गपर भी गणेशका अङ्कन मिला है, जो महत्त्वपूर्ण है। ऐसा ही एक अन्य शिवलिङ्ग, जो प्रतिहार-युगीन ९वीं शती ई०का है, काशीनरेश वाराणसीके संग्रहमें भी है।

आसाममें नौगाँव जिलेके गचतल-नामक स्थानपर बने एक मध्यकालीन मन्दिरपर, जो अब खण्डित दशामें है, चतुर्भुजी गणेशकी आसनमूर्ति विद्यमान है। गणेशकी एक कांस्यप्रतिमा गौहाटीके राज्य-संग्रहालयमें भी प्रदर्शित है।

दक्षिण भारतमें भी गणेश-मूर्तियोंकी पूजा एवं निर्माणकी प्रथा प्राचीनकालसे ही प्रचलित है। बदामीकी गुफाओंमें, जो प्रारम्भिक पश्चिमी चालुक्य-युग छठी शती ई० की है, शिव नटराज-मूर्तिकी बायीं ओर द्विभुज खड़े गणेशका अङ्कन मिलता है। इसपर प्रारम्भिक गुप्तकलाका प्रभाव स्पष्ट दीखता है। इसीसे साम्य रखती हुई एक पूर्वी चालुक्य-युगीन प्रतिमा आठवीं शतीकी बिस्कोवलसे प्राप्त है। इसमें भी गणेशके केवल दो ही हाथ हैं। गणेशकी चतुर्भुजी मूर्तियाँ दक्षिणमें चोल-कालसे बनने लगी थीं। इस प्रकारकी एक कांस्य प्रतिमा तंजौर जिलेके वेलनकण्डी से मिली है, जो अब मद्रास-संग्रहालयमें रखी हुई है। इसकी तिथि दसवीं शती ई० है। बारहवीं शती ई०की एक अन्य गणेश-मूर्ति, जो तंजौर जिलेके सेमगलम् स्थानसे प्राप्त हुई थी, इसी संग्रहालयमें सुरक्षित है। इस कालमें पाषाणमें भी गणेशकी अनगिनत मूर्तियाँ बनीं, जिनमेंसे एक राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीमें प्रदर्शित है।

विजयनगर-कालमें भी गणेश-पूजाके साथ उनकी मूर्तियों का निर्माण जारी रहा। इस कालकी अनेक

सम्भवतः पल्लव प्रमुख तंजौर जिलेके नागपट्टिनम्-नामक स्थानसे प्राप्त हेरम्ब-गणेशकी कांस्य-प्रतिमा है। इसमें पञ्च-मुखी एवं दशभुजी गणेशका वाहन मूषक न होकर सिंह है। यह १५ वीं शती ई०का विलक्षण उदाहरण है।

वर्तमान मैसूर-राज्यमें हलेबिद एवं बेलूरमें होयसलकालीन अनेक मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंपर अनेक पौराणिक कथाओंके चित्रणके साथ-साथ गणेशकी भी कई प्रकारकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। हलेबिदके होयसलेश्वर मन्दिरपर, जो १२ वीं शती ई०में बना था, नृत्य-गणपतिकी एक अद्वितीय मूर्तिका अत्यन्त भव्य अङ्कन हुआ मिलता है, जो अपने प्रकारका बेजोड़ उदाहरण है। उनके दस हाथ हैं, जिनमें वे विविध आयुध लिये हुए हैं। नीचेकी पङ्क्तिमें उपासकोंके अतिरिक्त उनका वाहन मूषक लड्डू खाता दिखाया गया है। इसीकी समकालीन हलेबिदसे प्राप्त एक आसन-मूर्ति वर्जीनिया-संग्रहालयमें भी प्रदर्शित है। इसमें वे ऊपरके दो हाथोंमें परशु और कमल तथा निचले हाथोंमें दन्त और मोदक-पात्र लिये हुए हैं। उन्होंने जटामुकुट तथा सर्पका उदरबन्ध धारण कर रखा है।

इन प्रतिमाओंके अतिरिक्त उत्तरी आर्काट जिलेमें वेल्लोरके जलकण्ठेश्वरके मन्दिरमें बाल-गणेशका एक अद्वितीय चित्रण मिलता है, जिसमें वे सूँड़ उठाये बालकृष्णकी भाँति हाथमें मोदक लिये भागते दिखाये गये हैं। यह लगभग १८वीं शतीकी कृति है।

केरल-प्रान्तसे भी गणेशकी कुछ प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इनमें या तो वे मूषकपर सवार दिखाये गये हैं, अथवा अपनी शक्तिके साथ बैठे हैं। ऐसी मूर्तियाँ, जो अधिकतर कांस्य-निर्मित हैं, १६ वीं-१७ वीं शती ई०की हैं।

गुजरात-प्रान्तके शामलाजीसे मिली गणेशकी अपने गणसहित एक स्थानक-मूर्ति (४ थी शती ई०), टिंटोईसे मिली माता पार्वतीके साथ नृत्य-गणपति (६ठीं शती ई०) की तथा रोडासे मिली आसन-मूर्ति (८वीं शती ई०) विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं।

उड़ीसासे भी गणेशकी अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमेंसे अधिकतर भुवनेश्वरके मन्दिरोंपर देखी जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त खिचिंगमें प्राप्त तथा वहींके स्था[illegible] संग्रहालयमें ११वीं शती ई०की एक स्थानक एवं एक [illegible] दशभुजी गणेश-प्रतिमा प्रदर्शित है।

बौद्ध एवं जैनियोंने भी गणेशका अपने देवी-देवताओंके साथ अङ्कन किया है, परंतु उन्हें हीन स्थान दिया है। बौद्धों की देवी अपराजिताकी मूर्तियोंमें, जो नालन्दासे मिली [illegible] गणेशको पैरोंसे कुचलते दिखाया गया है। ऐसे ही मथुरासे प्राप्त एक जैनदेवी अम्बिकाकी मूर्तिमें गणेश उनके वैरी[illegible] साथ कुबेरके साथ प्रदर्शित किये गये मिलते हैं।

विदेशोंमें भी गणेशकी अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। अफगानिस्तानमें गरदेजसे प्राप्त त्रिनेत्रयुक्त मूर्तिमें, जो [illegible] शती ई०की है, स्थानक-गणेश मुकुट, सर्प-यज्ञोपवीत त[illegible] व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं। ऊर्ध्वरेतस् भी स्पष्ट हैं। ऐसी एक अन्य मूर्ति काबुलके पास सकरधारसे भी प्राप्त हुई है।

पूर्वी नेपालके बनेपा-नामक स्थानसे एक मूर्ति, जिसपर ११९० ई०का लेख है, कुछ वर्ष पूर्व प्राप्त हुई थी। उसमें वे सर्पफणोंकी छायामें परशु, दन्त तथा मोदक-पात्र लिये बैठे दिखाये गये हैं। एक अन्य मूर्तिमें उनके चार मुख और दस हाथ हैं तथा वे दो चूहोंपर सवार हैं। नेपालसे ही हेरम्ब-गणेशकी भी अनेक कांस्य-प्रतिमाएँ मिली हैं। तिब्बतमें शक्ति-सहित हेरम्ब-गणेशकी मूर्तियाँ प्रकाशमें आयी हैं।

इनके अतिरिक्त कंबोडिया, जावा, इंडोचीन, जापान, इंडोनेशिया, चीनी तुर्किस्तान, बोर्नियो, बाली आदि देशोंमें भी अनेक गणेश-प्रतिमाओंका निर्माण हुआ, जो आज वहाँके तथा अन्य देशोंके संग्रहालयोंमें प्रदर्शित हैं। इससे सर्वथा ज्ञात होता है कि गणेशकी पूजा न केवल भारतमें ही प्रचलित थी, वरन् पड़ोसी देशोंके अतिरिक्त सुदूर देशोंमें भी समान-रूपसे प्रचलित थी और सभी प्रार्थना करते थे कि—

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं
दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद्बीजपूराभिरामम्।
बालेन्दुद्योतमौलिं करिपतिवदनं दानपूरार्द्रगण्डं
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम्॥

भारतीय साहित्य और कलामें श्रीगणेश तथा उनका प्रतीकत्व

(लेखक—प्रो० श्रीकृष्णदत्तजी वाजपेयी)

भारतीय देवोंमें गणेशजीका विशिष्ट स्थान है। इस विशिष्टताका मुख्य कारण यह है कि वे पाँच उदात्त तत्त्वोंके समन्वित रूप हैं। ये तत्त्व हैं—१-शौर्य-साहस, २-आनन्द-मङ्गल, ३-बुद्धि, ४-कृषि तथा ५-व्यवसाय-वाणिज्य। यहाँ हम इन पाँचों तत्त्वोंका संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

१-शौर्य-साहस

'अमरकोश'में गणेशजीके आठ नाम इस प्रकार दिये गये हैं—

विनायको विघ्नराजद्वैमातुरगणाधिपाः।
अप्येकदन्तहेरम्बलम्बोदरगजाननाः॥
(१। १। ३३)

प्रथम दोनों नाम, विनायक एवं विघ्नराज, गणेशजीके शौर्य-साहस तथा तज्जनित नेतृत्वके परिचायक हैं। उनकी युद्धप्रियताका भान उनके लिये प्राचीन साहित्यमें प्रयुक्त 'हेरम्ब' (युद्धमें नाद करनेवाला) संज्ञासे होता है। गणेशजीकी असाधारण वीरता तथा साहसके कारण उन्हें शिवगणोंके नायकत्वका पद प्राप्त हुआ। 'विनायक' शब्द गणेशके यक्षों जैसी भयंकरताकी ओर भी इङ्गित करता है। 'मानवगृह्यसूत्र', 'महाभारत' आदि ग्रन्थोंमें विघ्नकारी विनायकोंके उल्लेख मिलते हैं। शान्ति कामनाहेतु उनकी अर्चा-पूजा की जाती थी। ऐसा न करनेपर वे कतिपय स्त्री पुरुषोंके सिरोंपर आ जाते थे, जिनसे मङ्गल-कार्योंमें बाधा उत्पन्न हो सकती थी। पूजा-पाठद्वारा वे सिरोंसे उतारे जाते थे। गणेशजीके युद्धप्रियरूपके द्योतक उनके आयुध हैं, जो उनकी प्राचीन मूर्तियोंमें मिलते हैं। ये आयुध परशु, त्रिशूल, असि, अङ्कुश, पाश तथा नाग हैं। मूषक उनका वाहन हुआ। नाग तथा मूषक मूलतः शिवजीसे सम्बद्ध थे। बादमें शिवजीने मूषकको गणेशके लिये उधार दे दिया। यह उधार कभी न लौटाया जानेवाला था। नाग काल (मृत्यु या समय) का द्योतक है। मूषक आयु (या आयुका मूल आधार अन्न) को शनैः शनैः नष्ट करनेवाला है। शिवजीने नाग तथा मूषक—दोनोंको अपने वशमें कर लिया था। गणेशजीको वाहनरूपमें मूषक प्रदान करनेका तात्पर्य यही है कि जीवनके आधार अन्नको नष्ट करनेवाले तत्त्वोंको नियन्त्रित रखा जाय। नेतृत्वके गुणोंसे सम्पन्न होनेके कारण उन्हें गणाधिप, गणपति या गणेशकी संज्ञासे विभूषित किया गया।

२-आनन्द-मङ्गल

विघ्नराजके अनन्तर गणेशजीका दूसरा रूप 'विघ्नहर्ता' सामने आता है। यह उनका मनोहर रूप था। इसी रूपमें वे पार्वती-शिवके पुत्र प्रख्यात हुए। अब वे कल्याण एवं मङ्गलकारी प्रवृत्तियोंके प्रतिनिधि माने गये। गोस्वामी तुलसीदासजीने उनकी 'मोदक, प्रिय, मुद मंगल दाता' छविकी वन्दना की है। 'याज्ञवल्क्य-स्मृति'में अम्बिका-पुत्रके रूपमें विनायकका उल्लेख है। पुराणोंमें उनके इस रूपकी विस्तृत चर्चा मिलती है। विविध संस्कारों, उत्सवों आदिके निर्विघ्न समाप्ति-हेतु गणेशजीको सिद्धिदाता मानकर उनकी वन्दना सर्वप्रथम की जाने लगी। मोदक उनका प्रिय भोज्य पदार्थ हुआ। उनकी प्राचीन प्रतिमाओंमें उन्हें लड्डू लिये हुए या खाते हुए प्रदर्शित किया गया है।

३-बुद्धि

गणेशजी बुद्धिके भी प्रतिनिधि देवता मान्य हुए। वैदिक साहित्यमें 'गणपति' शब्द आया है। इसका प्रयोग 'अग्र-पूज्य देव' के लिये मिलता है, यथा—'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे। कविं कवीनाम्' (ऋग्वेद २। २३। १) और 'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः।' (यजुर्वेद १६। २६) आदि। यहाँ 'गणपति' शब्द वाग्देवताके लिये प्रयुक्त हुआ है। परवर्ती साहित्य पुराणादिमें वेदव्यासजीके लेखकरूपमें भी गणेशजीकी परिचर्चा मिलती है। यह इस बातका द्योतक है कि एक अच्छे श्रोता एवं लेखकके रूपमें गणेशजी पौराणिक साहित्यमें आदृत हुए। वे विद्या और बुद्धिके देवता कहे जाते हैं।

४-कृषि

कृषिके प्रारम्भिक देवता देवराज इन्द्र हैं। वे उस वर्षाके प्रतिनिधि हैं, जो भूमिको उर्वरा बनाती है। भूमि अन्न, जल, वनस्पतियों तथा खनिज पदार्थोंका अक्षय भंडार है। इसीलिये उसे हमारे यहाँ माता कहा गया है—'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' (अथर्ववेद)। भारतीय साहित्य और कलामें 'गजलक्ष्मी'की कल्पना मिलती है। अनेक

मूर्तियोंमें दो हाथियोंद्वारा जलपूरित कलशोंसे लक्ष्मीदेवीका अभिषेक मिलता है। यहाँ लक्ष्मी पृथिवीकी द्योतक हैं और हाथी (ऐरावत) इन्द्रके प्रतिनिधि हैं। अनेक प्राचीन कलाकृतियोंमें श्रीलक्ष्मी तथा गणेशजीको एक साथ दिखाया गया है। गणेशजीका गजमस्तक जलके देव इन्द्रका परिचायक है और इस प्रकार वर्षाका द्योतक है, जो कृषिको प्रवर्धित करती है। इस देशकी वसुधाको धन-धान्य-सम्पन्न करनेमें प्रमुख हाथ खेतीका रहा है। अन्न नाशक चूहेको गणेशजीद्वारा वशवर्ती बनानेकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

५-व्यवसाय-वाणिज्य

खेतीके अतिरिक्त अन्य उद्योग-धंधों तथा व्यापारद्वारा देशकी समृद्धि बढ़ती है और उसका आर्थिक आधार पुष्ट होता है। वाणिज्यके प्रवर्तकरूपमें गणेशजीकी मान्यता मध्यकालमें बहुत बढ़ी। वे वणिकोंके विशेष पूज्य देवता हो गये। कुबेरको हमारे यहाँ धनका अधिपति माना जाता है। उनका भारी भरकम तोंदवाला शरीर वणिकोंद्वारा पूज्य था। कुबेर-जैसी तुन्दिल प्रतिमाएँ गणेशजीकी भी बड़ी संख्यामें मिली हैं। इन दोनों देवोंमें अन्तर यह था कि कुबेर बहुत कम हिलते-डुलते थे, जब कि गणेशजी युद्ध तथा नृत्यादि व्यायामोंसे मोदक-पुष्ट अपने शरीरको क्रियाशील बनानेका उद्यम करते रहते थे। विविध आयुधधारी योद्धा तथा नृत्यरत रूपोंमें गणेशजीके ध्यान साहित्यमें उपलब्ध हैं। इन दोनों रूपोंमें उनकी प्रतिमाएँ भारत तथा विदेशोंमें प्रचुर संख्यामें प्राप्त हुई हैं।

उपर्युक्त पाँचों तत्त्वोंका असाधारण समन्वय गणेशजीमें मिलता है। इसीलिये इन्हें भारतीय देवोंमें असाधारण स्थान प्राप्त हुआ। अनेक लेखकोंने गणेशजीके प्रतीकत्वको सही अर्थोंमें न समझनेके कारण उनके विषयमें भ्रान्त धारणाओंकी सृष्टि कर ली है। उनके गजशीर्ष, तुन्दिल शरीर, मूषकवाहन आदिको लेकर अनेक अनर्गल बातें लिखी गयी हैं। भारतीय परम्पराको समुचित ढंगसे न समझ सकनेके कारण ऐसी भ्रान्तियोंका होना स्वाभाविक है।

गणेशजीकी गणना हमारे प्रमुख पञ्चदेवोंमें है। विष्णु, शिव, सूर्य, देवी तथा गणेश—ये पञ्चदेव हैं। गुप्त युगमें इन पञ्चदेवोंका अत्यधिक विस्तार हुआ। गणेशजीकी गुप्तकालीन प्रतिमाएँ बहुत कम मिली हैं। कार्तिकेयकी पूजा उनके पहले प्रचलित हो चुकी थी। यौधेयगण, कुणि... उज्जयिनी-जनपदने अपनी मुद्राओंपर कार्तिकेयको म... स्थान दिया। गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त प्रथमने भी अ... विशेष प्रकारके स्वर्ण-सिक्कोंपर कार्तिकेयकी छवि ... करायी। जहाँतक गणेश-पूजाका सम्बन्ध है, गुप्त युगके ... किसी ग्रन्थ या अभिलेखमें इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मि... मथुरा-कलामें नृत्य करते हुए गणेशकी एक गुप्तकाली... मिली है। सम्भवतः सर्वप्रथम भूमरा (जिला सतना, ... प्रदेश) में गणेशजीकी पूज्य मूर्ति मिली है, जो ईसवी ... शतीकी है। आन्ध्रप्रदेशके अमरावती स्थानमें भी ग... यक्षकी एक उल्लेखनीय प्रतिमा मिली है।

शिव-पुत्रके रूपमें मान्य होनेपर गणेशजीका महत्त्व अ... बढ़ा। गुप्तकालके पश्चात् तो उनकी बहुसंख्यक मूर्ति... बनने लगीं। समृद्धिके प्रतिनिधिरूपमें उन्हें मान्यता मि... तब उनकी पूजाकी व्यापकता बढ़ी। जोधपुरके पास घटि... (राजस्थान) से गणेशजीकी एक चतुर्मुखी प्रतिमा मिली ... जिसपर विक्रम संवत् ९१८ (८६७ ई०) का लेख उत्... है। लेखसे ज्ञात होता है कि व्यापारियोंद्वारा यह पूज... प्रतिमा यहाँ स्थापित की गयी थी।

हालमें मुझे होशंगाबाद जिला (मध्यप्रदेश) के शिव... मालना नामक स्थानपर गणेशजीका एक दुर्लभ म... देखनेको मिला, जिसमें गणेशजीकी एक विशिष्ट मूर्ति अब... सुरक्षित है। इस मन्दिरका प्रारम्भिक निर्माण ई० नवीं शती... सम्पन्न हुआ है।

नवीं शती ईसवीसे गणेशजीकी बहुसंख्यक मूर्ति... बनने लगीं। उनकी मूर्तियाँ चार, आठ, दस तथा ... भुजाओंवाली भी मिली हैं। कुछ प्रतिमाओंमें उनकी शक्ति ... साथमें दिखायी गयी है। पौराणिक तथा तान्त्रिक आदि ... उनकी पत्नीकी संज्ञा श्रीभारती, विघ्नेश्वरी आदि मिलती है। कभी-कभी उनकी दो पत्नियाँ, बुद्धि और कुबुद्धि कही गयी हैं। मध्यकालीन गणेशपूजापर तान्त्रिक प्रभाव भी पड़... गया, जो इन मूर्तियोंसे स्पष्ट है।

गणेशपूजा भारततक ही सीमित नहीं रही, मध्य ... एशिया, नेपाल, तिब्बत, चीन, बर्मा, स्याम, इंडोनेशिया, जावा, सुमात्रा आदि देशोंमें उनकी बहुसंख्यक मूर्तियाँ मिली हैं, जो गणेश-पूजाके व्यापक प्रसारको घोतित करती हैं।

वङ्गदेशकी मूर्तिकलामें गणेश

(लेखक—श्रीरासमोहन चक्रवर्ती एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पुराणरत्न, विद्याविनोद)

वङ्गदेशमें गाणपत्य धर्मका स्पष्ट प्रमाण न मिलनेपर भी सिद्धिदाता, विघ्नहर गणेशकी अनेक मूर्तियाँ गुप्तयुगसे ही पायी गयी हैं। बैठी, खड़ी और नृत्य करती हुई गणेशकी तीन प्रकारकी मूर्तियोंकी कल्पना की गयी है। उत्तर वङ्गके एक पहाड़पुरमें (आठवीं शताब्दीकी) पत्थरकी, पकाई मिट्टी तथा धातुकी अनेक बैठी और खड़ी मूर्तियाँ पायी गयी हैं और मूर्तितत्त्वकी दृष्टिसे सभी बहुमूल्य हैं। इनमें एक नृत्यपरायण गणेशकी प्रतिमा है और उस प्रतिमामें ...कायत मतके सरल, सरस, कौतुकपूर्ण शिल्पमय प्रकाश सुस्पष्ट हैं। गणेशका जो कुछ प्रधान लक्षण और चिह्न है, वह सब इन प्रतिमाओंमें सम्यक् रूपसे परिस्फुट हुआ है। एक धूसर वर्णके बेल पत्थर (पत्थरकी एक जाति) की गणेश-मूर्ति विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। मूर्ति चतुर्भुजी है, जिसने एक ओरके एक हाथमें जपमाला और दूसरेमें एक पत्र-गुच्छयुक्त मूली तथा दूसरी ओरके एक हाथमें त्रिशूल और दूसरेमें एक सर्पकी पूँछ धारण कर रखी है। सर्प यज्ञोपवीतकी तरह देहको आवेष्टित करके स्थित है। इस प्रतिमाकी वेदीमें गणेशका वाहन मूषक अङ्कित किया गया और मूर्तिके कपालके मध्य भागमें तृतीय नेत्र विराजित है। पकी मिट्टी (Terra-cotta plaque) की एक खड़ी गणेशमूर्ति उल्लेखनीय है। वह चतुर्भुजी है और उसमें ...न मूषक प्रभुकी ओर ताक रहा है।

इस शिलालेखसे यह ज्ञात होता है कि पालवंशके ...राट् महाराज महीपालके राज्य-कालके (९८८-१०३८ ई०) क्रमशः तृतीय और चतुर्थ राज्याङ्कमें ...लकन्दक (त्रिपुरा जिलेका आधुनिक बिलकान्दि) ...निवासी दो वणिक्—बुद्धमित्र और लोकदत्तने एक ...यण और एक गणेशकी मूर्ति प्रतिष्ठापित की थी। रामपाल (१०७७—११२० ई०) ने रामावतीमें शिवके तीन ...र, एकादश रुद्रका एक मन्दिर ... ... स्कन्द ... उल्लेख

... सब सम्प्रदायोंमें, विशेषरूपसे व्यवसायीवर्गमें सि... फलदाताके रूपमें ही पूजित और आदृत हैं। वङ्गदे... पालवंशके राज्यकालमें किसी किसी देवी प्रतिमामें भगवती... पारिवारिक सदस्यके रूपमें भी गणेशकी मूर्ति दृष्ट होती है।

पालयुगके तान्त्रिक बौद्धधर्ममें भृकुटी ताराके परिव... देवताके रूपमें गणेश भी पूजित होते थे। इस प्रकार... एक मूर्ति ढाका जिलेके भवानीपुर गाँवसे प्राप्त हुई है... देवी त्रिशिरस्का, अष्टभुजा वीरासनमें बैठी हुई हैं। उस... मुकुटमें अमिताभ बुद्धकी और पादपीठमें गणेशकी मूर्ति उत्कीर्ण है। पालवंशके शासनकालमें बौद्ध देव देवियाँ कुछ-कुछ ब्राह्मण (हिंदू शास्त्रोक्त) देव देवियोंके साथ मिश्रित होती जा रही थीं और ब्राह्मण देव-देवियोंको भी बौद्ध और शैवतन्त्रमें स्थान प्राप्त होने लगा था। पालयुगमें बौद्ध साधनमालामें ब्राह्मण, महाकाल और गणपतिका स्थान तथा बौद्ध तन्त्रमें शिवलिङ्ग एवं शैव देव देवियोंका स्थान ही घट गया था।

वङ्गदेशमें गणेशमूर्तिके प्रकारभेद और वैशिष्ट्य

वङ्गदेशमें आविष्कृत प्राचीन गणेश मूर्तियोंको तीन भागोंमें विभाजित कर सकते हैं। जैसे—(१) स्थानक (खड़ी), (२) आसीन (बैठी) और (३) नृत्यरत। प्रथम भागकी अर्थात् खड़ी मूर्तिकी संख्या अपेक्षाकृत कम पायी जाती है। 'स्थानक' गणेश कहीं-कहीं 'सम पद स्थानक' रूपमें अवस्थित मिलते हैं और कहीं द्विभङ्ग या त्रिभङ्ग-रूपमें खड़े पाये जाते हैं। 'आसीन' अर्थात् बैठी हुई मुद्रामें अनेक मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। 'आसीन' मूर्तियोंमें गणेशका वामपद आकुञ्चित है और पीठके ऊपर स्थित है। दक्षिणपद पीठके ऊपर प्रसारित या अन्य प्रकारसे न्यस्त है। वङ्गदेशमें गणेशकी नृत्य मूर्तिका प्राचुर्य है। द्विभुज गणेश-मूर्तिकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। चतुर्भुज ... अपेक्षाकृत बाहुल्य है और षड्भुज तथा अष्टभुज ... मूर्ति भी विरल नहीं है। नृत्यरत भावमें ... अधिकतर विचारणीय है। द्विभुज गणेशके ... मोदक-भाण्ड, दूसरे हाथमें परशु, ... या ...

है। चतुर्भुज नर्तकके हाथोंमें पाश, दन्त [illegible] और हैं और पाशके स्थानपर अङ्कुश, दन्तदण्ड [illegible] देखे जाते हैं। [illegible] हाथोंमें इन [illegible] पद्म, [illegible] मधुपात्र आदि [illegible] हैं। [illegible] इनमें मूषकवाहन है। [illegible] मूर्तिमें भी मूषकवाहनके रूपमें ही प्रदर्शित है। बङ्गदेशमें शिवकी मध्ययुगीन नृत्यमूर्तियाँ प्रायः देवताके वाहन वृषभके [illegible] ऊपर ही नृत्यरत हैं। इस प्रदेशमें उपर्युक्त [illegible] गणेशकी मूर्ति भी अपने वाहन मूषकके ऊपर [illegible] है। नृत्यगणेश, जो शिव नटराजके एक प्रकारके अद्भुत अनुकरण हैं, यह इन दोनों देवताओंकी मूर्तियोंके एक साथ निरीक्षण करनेसे स्पष्ट हो जाता है। यहीं-यहीं दाक्षिणात्य नटराज शिवकी दण्डहस्त मुद्राकी पूर्ण अनुकृति गणपतिकी इस प्रकारकी मूर्तिमें देखी जाती है। बङ्गदेशमें प्राप्त मध्ययुगीन अनेक नृत्यरत गणेश मूर्तियोंकी प्रभावलीमें ऊपरकी ओर मध्यभागमें पल्लवयुक्त आम्रगुच्छ लटके हुए दीख पड़ते हैं। इसको अङ्कित करनेका कारण यह है कि आम्र सर्वोत्कृष्ट फल है और गणपति अपने प्रति श्रद्धालु साधकोंको मानो अनुरूप उत्कृष्ट फल अर्थात् सिद्धि और वात्सल्य प्रदान करते हैं।

उत्तर बङ्गके दिनाजपुर जिलेके बानगढ़में प्राप्त प्रस्तरकी बनी एक नृत्यगणेशकी मूर्ति विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। गणपति अपने मूषकवाहनके ऊपर नृत्यरत हैं; पार्श्वमें दो मूर्तियाँ वाद्ययन्त्रके साथ नर्तनशील हैं। ये गणेश षड्भुज हैं, दाहिनी ओरके तीनों हाथोंमें क्रमशः हाथीदाँत, परशु और जपमाला है और बायीं ओरके तीनों हाथोंमें क्रमशः वरमुद्रा, नीलोत्पल और मोदक-भाण्ड हैं। मोदक-भाण्डके ऊपर गणेशका शुण्ड स्थापित है। ऊर्ध्वप्रभावलीके मध्यभागमें पल्लवयुक्त आम्र-गुच्छ लटक रहा है। यह सिद्धिदाता गणेशके सिद्धि-प्रदानका प्रतीक है। मूर्तिकी शिल्पकला विशेषरूपसे दर्शनीय है।

हेरम्ब-गणपति

पूर्व-बङ्गके रामपालके ध्वंसावशेषमें हेरम्ब-गणपतिकी एक प्रस्तरमूर्ति प्राप्त हुई है। यह मूर्ति शिल्प-कौ[illegible] है। ढाका म्यूजियमके क्यूरेटर (Curator) महोदय नलिनीकान्त भट्टशालीने अपनी (Catalogue of Buddhist and Brahmanical Sculptures in the Dacca Museum) पुस्तकमें इसका विस्तृत विवरण दिया है (पृष्ठ १४६-४७)। अन्य गणेश मूर्तियोंका वाहन मूषक होता है, किंतु हेरम्बगणपतिका वाहन सिंह [illegible] मूर्तिशास्त्रमें वर्णित हेरम्बगणपतिके रूपके अनुसार यह पञ्चमुख [illegible] है। चार मुख एक एक करके [illegible] ओर देख रहे हैं और पाँचवाँ आकाशकी [illegible] उनके ऊपर स्थित है। वे सिंहके ऊपर आसीन हैं। [illegible] दस भुजाओंमें पाश, दन्त, अक्षमाला, परशु, अङ्कुश, [illegible] मोदक, वरमुद्रा और अभयमुद्रा प्रदर्शित हैं। इस प्रकारकी मूर्ति दक्षिणदेशमें प्राप्त नहीं है। सुप्रसिद्ध दक्षिण[illegible] द्वारा श्रीगोपीनाथ रावने अपनी (Elements of Hindu Iconography, Vol. I) पुस्तकमें हेरम्बगणपतिका [illegible] विवरण दिया है। पूर्व-बङ्गमें प्राप्त यह मूर्ति अनेक अं[illegible] उसके प्रतिरूप होते हुए भी अपनी एक विशिष्टता रख[illegible] है। इसकी प्रभावलीके ऊपरी भागमें छः छोटे आकार[illegible] गणेशमूर्तियाँ खुदी हुई हैं। ये छोटी मूर्तियाँ गाणपत्य सम्प्रदायके छः विभागोंके छः प्रकारके गणपतिकी प्रती[illegible] हैं। ये छः प्रकारके गणपति हैं—महागणपति, हरिद्रागणपति, उच्छिष्टगणपति, नवनीतगणपति, स्वर्णगणपति और संतानगणपति। उच्छिष्टगणपति-उपासक सम्प्रदायकी एक शाखाके उपास्य थे—हेरम्बगणपति। वे लोग शाक्त वाम-मार्गियोंके समान नाना प्रकारके कौलाचारमें लिप्त थे। बङ्गदेशके मध्ययुगीन तान्त्रिक निबन्धकार श्रीकृष्णानन्द आगमवागीश (१६वीं शताब्दी) द्वारा प्रणीत 'तन्त्रसार' ग्रन्थमें महागणपति, हरिद्रागणपति, उच्छिष्टगणपति और हेरम्बगणपतिके ध्यान, मन्त्र और उपासना विधि वर्णित हैं। इससे बङ्ग देशमें गाणपत्य-सम्प्रदायके अस्तित्वका पता लगता है। रामपालके ध्वंसावशेषमें प्राप्त हेरम्बगणपतिकी उपर्युक्त प्रस्तरमूर्ति बङ्गदेशके पूर्वप्रान्तमें मध्ययुगीन गाणपत्य-सम्प्रदायके उपासकोंके अस्तित्वका दृढ़तापूर्वक समर्थन करती है।

श्रीगणेश-लोक

(१)

श्रीगणेशजी विभु हैं, सर्वत्र व्यापक और—प्रथम पूज्य देव हैं। उनके धाम—निवासस्थलको 'स्वानन्दधाम' कहा गया है। सर्वसौन्दर्यनिधि श्रीगणेश अपने स्वानन्दधाममें निरन्तर नित्य निवास कर समस्त लोकका मङ्गल करते रहते हैं। गणेशपुराणके उपासनाखण्डमें उनका सर्वसौन्दर्य-कोशके रूपमें वर्णन उपलब्ध होता है—

परशुकमलधारी दिव्यमायाविभूषः
सकलदुरितहारी सर्वसौन्दर्यकोशः।
करिवरमुखशोभी भक्तवाञ्छाप्रपोषः
सुरमनुजमुनीनां सर्वविघ्नैकनाशः॥

(गणेशपु० १ । १५ । १९)

यह बात सहज सिद्ध है कि सर्वसौन्दर्यकोशका प्रतीक है—उनका 'स्वानन्दधाम'। पूर्णानन्द, परानन्द और पुरुषोत्तम श्रीगणेशजीका धाम आनन्दसे परिपूर्ण है। उन्हें 'चिन्तामणि-द्वीपपति' कहा गया है; कल्पद्रुमवनालय—कल्पद्रुमके उपवनमें निवास करनेवाला निरूपित किया गया है—

'चिन्तामणिद्वीपपतिः कल्पद्रुमवनालयः।'

(गणेशसहस्रनामस्तोत्र-२९)

'शारदातिलक'में महागणपतिके ध्यान-निरूपण-प्रसङ्गमें उनके इक्षुरसके समुद्रके मध्यमें स्थित नवरत्नमय द्वीपका वर्णन उपलब्ध होता है—

नवरत्नमयं द्वीपं स्मरेदिक्षुरसाम्बुधौ।
तद्वीचिधौतपर्यन्तं मन्दमारुतसेवितम्॥
मन्दारपारिजातादिकल्पवृक्षलताकुलम्।
स्फुरद्रत्नप्रभाभिरारुणीकृतभूतलम्॥
उदितदिनकरेन्दुभ्यां मुद्भासितदिगन्तरम्।
तस्य मध्ये पारिजातं नवरत्नमयं स्मरेत्॥
ऋतुभिः सेवितं षड्भिर्नित्यं प्रीतिवर्द्धनैः।
तस्याधस्तान्महापीठे रचिते मातृकाम्बुजे।
षट्कोणान्तस्त्रिकोणस्थं महागणपतिं स्मरेत्॥

(शारदातिलक १३ । ११–१५)

आशय यह है कि साधकको इक्षुके रसके समुद्रमें नवरत्नमय द्वीपका ध्यान करना चाहिये। उस द्वीपका प्रा[illegible] भाग उक्त सागरकी लहरोंसे प्रक्षालित है। उसमें मन्द[illegible] पवनका सञ्चार हो रहा है। मन्दार, पारिजात आदि पञ्च[illegible] कल्पवृक्षोंकी लताओंसे वह व्याप्त है। वहाँ प्रकट हुए रत्नो[illegible] प्रभासे भूतल अरुण दीखता है। उदित सूर्य और चन्द्रमा[illegible] प्रकाशसे दिग्-दिगन्त प्रकाशित है। उस द्वीपके मध्य[illegible] नवरत्नमय पारिजात है, प्रीतिवर्धक छहों ऋतुओंद्वारा व[illegible] नित्य सेवित है। उसके नीचे निर्मित महापीठपर मातृकाम[illegible] कमलके मध्यमें षट्कोण है। षट्कोणके भीतर त्रिकोण है। उसके भीतर महागणपति स्थित हैं। इस प्रकार उनका ध्यान करना चाहिये।

गणेशपुराणके उत्तरखण्डके ५०वें अध्यायमें मुद्गल-मुनिद्वारा श्रीगणेशके स्वानन्दलोक अथवा धामका वर्णन मिलता है। उस लोकमें कामदायिनी शक्तिमय पीठपर सदा गणेशजी विराजमान रहते हैं। यह स्वानन्दलोक या धाम चिन्तामणि द्वीपका ही पर्याय है—

'स कामदायिनीपीठे संतिष्ठति विनायकः।'

(गणेशपुराण २ । ५० । ११)

श्रीगणेशजीका यह स्वानन्दधाम पाँच सहस्र योजनके विस्तारमें स्थित है। दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली रत्न-काञ्चनमयी भूमि है इसकी। यह इक्षुरस-सागरके मध्यमें विराजित है। वेदाध्ययन, दान, व्रत, यज्ञ, जप-तपसे यह किसी भी स्थितिमें प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसकी प्राप्ति तो भक्तिके परिणामस्वरूप विनायकदेवकी कृपासे ही होती है। विघ्नेश्वर इसमें समष्टि-व्यष्टिरूपसे निवास करते हैं—

विस्तीर्णं पञ्चसाहस्रं योजनानि महामते॥
रत्नकाञ्चनभूमौ स राजते भासयन् दिशः।
स्वानन्दनामा विख्योऽयमिक्षुसागरमध्यगः॥
न वेदैर्न च दानैश्च मतैर्यज्ञैर्जपैरपि।
तपोभिर्विविधैश्चायं प्राप्यते नैव कर्हिचित्॥
विनायकस्य कृपया प्राप्यते नित्यभक्तितः।
समष्टिव्यष्टिरूपोऽत्र सदा तिष्ठति विघ्नराट्॥

(गणेशपु० २ । ५० । ११–१४)

स्वानन्दभवनकी अमित शोभा है। उसमें गजमुक्तामणि-

मय असंख्य प्रकाशमान गृह हैं। दुःख और मोहसे रहित वह गणेश-लोक उनकी कृपासे ही प्राप्य है। उसके उत्तरभागमें इक्षुसागर शोभा पाता है। उसमें सहस्र पत्रोंसे युक्त पद्मिनी है। उसमें चन्द्रमाके समान कान्तिमान् सहस्रदलवाला कमल शोभित है। उसकी कर्णिकामें रत्न-काञ्चननिर्मित शय्या है। दिव्याम्बरयुक्त विनायक उसपर शयन करते हैं। सिद्धि-बुद्धि अत्यन्त भक्ति भावसे उनके चरणोंकी सेवा करती रहती हैं। तीन मूर्तियोंसे युक्त सामवेद उनका गान करता है। शास्त्र मूर्तिमान् होकर उनकी स्तुति करते हैं। समस्त पुराण उनके सद्गुणोंका वर्णन करते हैं। उसमें शुण्ड दण्डसे विभूषित बालरूप श्रीगणेशजी विराजमान हैं। उनका अङ्ग कोमल है। अरुण वर्ण है। उनके बड़ी-बड़ी आँखें हैं और एक दाँत है। वे मुकुट एवं कुण्डल, कस्तूरी तिलकसे शोभित हैं। उनकी माला दिव्य है। उनका अम्बर—परिधान दिव्य है। उनके शरीरमें दिव्यगन्धका लेप है। वे मुक्ता मणि गणोंसे युक्त रत्नमण्डित हार धारण करते हैं। अनन्त कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी हैं। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट है। स्मरण करते ही वे शीघ्र ही पापोंका नाश करते हैं—

> असंख्याता गृहा भान्ति भास्वरा गजमौक्तिकाः।
> तस्यैव कृपया प्राप्यो दुःखमोहविवर्जितः।
> तदुत्तरे भाति पर इक्षुसागर एव तु॥
> सहस्रपत्रसंयुक्ता तन्मध्ये पद्मिनी शुभा।
> सहस्रपत्रं कमलं तस्यां भाति यथा शशी॥
> तत्कर्णिकागतस्तल्पो रत्नकाञ्चननिर्मितः।
> दिव्याम्बरयुतः शेते नृप तत्र विनायकः॥
> सिद्धिबुद्धी सदा तस्य पादसंवाहनं मुदा।
> कुर्वाते परया भक्त्या सामवेदस्त्रिमूर्तिमान्॥
> गानं करोति शास्त्राणि मूर्तिमन्ति स्तुवन्ति तम्।
> पुराणानि च सर्वाणि वर्णयन्त्यस्य सद्गुणान्॥
> बालरूपधरश्चात्र शुण्डादण्डविराजितः।
> कोमलाङ्गोऽरुणनिभो विशालाक्षो विषाणवान्॥
> मुकुटी कुण्डली राजत्कस्तूरीतिलकः स्वराट्।
> दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः॥
> मुक्तामणिगणोपेतं सरत्नं दाम संदधत्॥
> अनन्तकोटिसूर्याभः ....।
> ....
>
> (गणेशपुराण २। ५०। ५१-५९)

तेजोवती और ज्वालिनी—ये दो शक्तियाँ उस प[र्यङ्कके] निकट सदा स्थित रहती हैं। ये शक्तियाँ सहस्र स[ूर्यके] समान तेजस्विनी हैं—

> तेजोवती ज्वालिनी च शक्ती पर्यङ्कपार्श्वयोः।
> सहस्रादित्यसंकाशे तिष्ठतो नृप सर्वदा॥
>
> (गणेशपु० २। ५०। ६[illegible])

श्रीगणेशजीका यह स्वानन्दधाम शीत, जरा, [illegible] स्वेद, तन्द्रा, क्षुधा, तृषा, दुःख आदिसे सर्वथा रहि[त है।] पुण्यात्मा जन ही इसमें आनन्दमग्न होकर निवास करते [हैं।]

सर्वसौन्दर्यनिधि श्रीगणेशजीका स्मरण परम मङ्गल[मय] है। वे समस्त समृद्धि प्रदान करते हैं। उनके स्वरूप, [illegible] अङ्ग प्रत्यङ्ग, आभरण-आभूषण, परिधान, परिवार, प्रपि[illegible] पार्षद, वाहन तथा लोकादि—सब-के-सब दिव्य हैं। उ[नसे] परमानन्दकी प्राप्ति होती है। उनके चिन्तनसे बड़ी शा[न्ति] और आत्मतृप्तिकी उपलब्धि होती है। वे संसारमें यात्रा कर[ने] वालोंके श्रम हर लेते हैं। उनके चरण कमलके ध्यानसे [illegible] लोक और परलोक—दोनों सफल होते हैं। वे पापक[illegible] नष्टकर विघ्नोंके गढ़को धूलिधूसरित कर अपने स्व[illegible] का—समस्त संसारके प्राणियोंका आनन्द-संवर्धन करते हैं। महाकवि भूषणने श्रीगणेशजीकी बड़ी ललित स्तुति की है—

> अकथ अपार भवपंथ के चले को श्रम-
> हरन, करन बीजना-से बरदाइये।
> यह लोक परलोक सफल करन कोक-
> नद से चरन हियें आनिकै जुड़ाइये॥
> अलिकुल कलित कपोल ध्याय ललित
> अनंदरूप-सरित में भूषन अन्हाइये।
> पापतरु-भंजन बिघनगढ़ गंजन, भगत-
> मन-रंजन द्विरदमुख गाइये॥
>
> (शिवभूषण)

श्रीगणेशजी परब्रह्म परमात्मा हैं। वे सर्वविघ्नविनाश[क] और सदा पूज्य हैं—

> 'अयमेव सदा पूज्यः सर्वविघ्नविनाशनः॥'
>
> (गणेशपुराण २। १२५। ११)

निस्संदेह श्रीगणेशजी परम समर्थ हैं। वे स्वजन[ोंके] मनोरथ और संकल्प पूर्ण कर देते हैं। उनका भजन करनेसे समस्त कार्य सिद्ध होते हैं। मङ्गलमूर्ति श्रीगणेशजीके

...पके चिन्तन, रूपके ध्यान और पूजनसे परमार्थकी ...द होती है।

—रामलाल

(२)

(लेखक—श्रीमोहनजी सारकर)

...गणेशलोकको 'दिव्य लोक' भी कहते हैं। यह इक्षु-...में स्थित है। भगवान् श्रीगणेशने अपनी कामदायिनी शक्तिद्वारा इस लोकका निर्माण किया। इसका विस्तार ... हजार योजन है। गणेशलोकका प्रकाश अत्यन्त सौम्य ...हुए भी कोटि-कोटि सूर्योंके प्रकाशको भी मन्द करने-... है। गणेशलोकमें श्रीगणेश व्यष्टि और समष्टि रूपसे ...मान रहते हैं।

...इक्षु सागरमें एक विशेष प्रकारका सहस्रदल कमल ... उसके ऊपर एक सुन्दर मञ्च है। उस मञ्चपर भगवान् ...श शयन करते हैं। वहाँ शीतल, मन्द तथा सुगन्धित ...दा बहती रहती है।

...मञ्चशायी भगवान् श्रीगणेशका वर्णन प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय ...न कवि श्रीविनायक महादेव नातूने अपने 'गणेश-... ग्रन्थमें इस प्रकार किया है—

...बुद्धिचे प्राण जीवन। स्वस्वरूपी करी शयन।
... पदांचे संवाहन। दोन युवती करिती सदा॥
... न कळे वेदा पार। निर्गुण आनंदमय साचार।
... वरी दया थोर। यदर्थ साकार मिरवे सदा॥
...ावे गजवदन। सुंदर शोभे हास्य वदन।
...ुष्टी कोटि मदन। ओवाळावे क्षणो क्षणी॥
... तळवे आरक्त दोन। तो नभी रंग भासमान।
... पताका वज्र चिन्ह। तळी शोभती सामुद्रिके॥

आरक्त शोभे बालशशी। नखे शोभती पदे तैसी।
चरणी नूपुरे झणत्कारेसी। गजर करिती असुरांचरी।
जंघा वर्तुल सोज्ज्वळ। सूर्यापरी उरु तेजाळ।
कटि पश्चात् भाग वर्तुळ। उदर लांबट साजिरे।
विशाळ शोभे वक्षस्थल। नव रत्नमाला अति तेजाळ।
कर्णी कुंडले रत्नमय सळ। सदा वाहती शशि सूर्यी॥
बहुदंड वर्तुळ सुलक्षण। गंडस्थली आमोद घन।
भ्रमर करिती वरी भ्रमण। सदा दान सेविती॥
त्यावरी मुकुट नवरत्नमय। भक्ताभिमानी गणराय।
जे सेविती त्याचे पाय। नाही भय त्यांसी कधी॥
क्षीर सागरी नारायण। तैसा इक्षु सागरी गजकर्ण।
पाचां मध्ये भेद जाण। नाही नाही सत्य है॥

(गणेश प्रताप, क्रीडा खण्ड, अध्याय १२। २१—३२)

गणेशलोककी भूमि सुवर्णमय है। वहाँ देवताओंके मन्दिर भी रत्नों और हीरोंसे बने हुए हैं। वहाँके घर भी सुवर्ण तथा रत्नमय हैं। गणेशलोकका प्रत्येक वृक्ष कल्पतरु है तथा प्रत्येक पाषाण सुवर्ण तथा रत्नमय है। वहाँके रहनेवाले गणेश भक्तोंको 'गणेश दूत' कहा जाता है। उनका स्वरूप भी भगवान् श्रीगणेश जैसा ही है। वे अत्यन्त तेजस्वी हैं। सुख दुःख, जन्म-मृत्यु आदिकी पीड़ा गणेशलोकमें नहीं है। ऋद्धि सिद्धि गणेशलोकमें रहनेवाले गणेश-दूतोंकी सेवा सदा सर्वदा करती रहती हैं। गणेशदूतोंका गुणगान सामवेद सदा करते रहते हैं। वहाँके रहनेवाले लोगोंके मनोरथ तत्काल सिद्ध हो जाते हैं। गणेशलोककी प्राप्ति केवल उसीको होती है, जो भगवान् श्रीगणेशजीकी दृढ भक्तिमें निमग्न रहता है तथा जिसपर भगवान् श्रीगणेशकी कृपा है।

श्रीगणेशकी अद्भुत झाँकी

जंगल मैं जन के करै मंगल, देव के दंगल मैं पिल्यो पेख्यो।
दंत मैं जाके दिगन्त 'द्विजेश' जिन्हैं सत संत अनंत उलेख्यो॥
है तो निरांकुस पै त्रिकुसांकुस मंत्र महावत सों यों परेख्यो।
मातु की गोद प्रमोदमयी गज सिंह चढ्यो पय पीवत देख्यो॥

—महाकवि द्विजेश

स्टेशन है । वहाँसे पंद्रह मीलपर गोदावरीके मध्यमें श्रीभाल-चन्द्र-गणेशमन्दिर है ।

९. राक्षसभुवन—जाल्नासे ३३ मीलपर गोदावरीके किनारे यह स्थान है । यह 'विज्ञान-गणेश-क्षेत्र' है । गुरु दत्तात्रेयने यहाँ तपस्या की और विज्ञान-गणेशकी स्थापना अर्चना की है । विज्ञान-गणेशका मन्दिर यहाँ है ।

१०. थेऊर—पूनासे पाँच मीलपर यह स्थान है । ब्रह्माजीने सृष्टिकार्यमें आनेवाले विघ्नोंके नाशके लिये गणेशजीकी यहाँ स्थापना की थी ।

११. सिद्धटेक—बंबई रायचूर लाइनपर धौंड जंक्शनसे ६ मील दूर बोरीवली स्टेशन है । वहाँसे लगभग ६ मील दूर भीमा नदीके किनारे यह स्थान है । इसका प्राचीन नाम 'सिद्धाश्रम' है । यहाँ भगवान् विष्णुने मधु कैटभ दैत्योंको मारनेके लिये गणेशजीका पूजन किया था । द्वापरान्तमें व्यास जीने वेदोंका विभाजन निर्विघ्न सम्पन्न करनेके लिये भगवान् विष्णुद्वारा स्थापित इस गणपति-मूर्तिका पूजन किया था ।

१२. राजनगाँव—इसे 'मणिपुर-क्षेत्र' कहते हैं । शंकरजी त्रिपुरासुर-युद्धमें प्रथम भग्नमनोरथ हुए । उस समय इस स्थानपर उन्होंने गणेशजीका स्तवन किया और तब त्रिपुर-वधमें सफल हुए । शिवजीद्वारा स्थापित गणेश मूर्ति यहाँ है । पूनासे राजनगाँव मोटर बस जाती है ।

१३. विजयपुर—अनलासुरके नाशार्थ यहाँ गणेशजीका आविर्भाव हुआ था । ग्रन्थोंमें यह क्षेत्र तैलगदेशमें बताया गया है । स्थानका पता नहीं है । मद्रास-मङ्गलोर लाइनपर ईरोडसे १६ मील दूर विजयमङ्गलम् स्टेशन है; वहाँका गणपति-मन्दिर प्रख्यात है; किंतु यह वही क्षेत्र है या नहीं, कहा नहीं जा सकता ।

१४. कश्यपाश्रम—यह क्षेत्र भी शास्त्रवर्णित है, पर स्थानका पता नहीं है । महर्षि कश्यपजीने अपने आश्रममें गणेशजीकी स्थापना अर्चना की है ।

१५. जलेशपुर—यह क्षेत्र भी अब अज्ञात है । मय दानवद्वारा निर्मित त्रिपुरके असुरोंने इस स्थानपर गणेशजीकी स्थापना करके पूजन किया था ।

१६. लेह्याद्रि—पूना जिलेमें जुन्नर तालुका है । वहाँसे लगभग पाँच मीलपर यह स्थान है । पार्वतीजीने यहाँ गणे[illegible] को पुत्ररूपमें पानेके लिये तपस्या की थी ।

१७. वेरोल—इसका प्राचीन नाम 'एलापुर-क्षेत्र' औरंगाबादसे वेरोल (इलोरा) मोटर बस जाती है घृष्णेश्वर (घुश्मेश्वर) ज्योतिर्लिङ्ग यहाँ है । उसी मन्दि[illegible] गणेशजीकी भी मूर्ति है । तारकासुरसे युद्धमें स्कन्द वि[illegible] लाभ करनेमें पहले सफल नहीं हुए । पश्चात् शंकरज[illegible] आदेशसे इस स्थानपर गणेशजीकी स्थापना करके उन[illegible] अर्चन किया और तब उन्होंने तारकासुरको युद्धमें मारा स्कन्दद्वारा स्थापित मूर्तिका नाम 'लक्ष विनायक' है ।

१८. पद्मालय—यह प्राचीन प्रवाल-क्षेत्र है । बम्ब[illegible] भुसावल रेलवे-लाइनपर पाचोरा जंक्शनसे १६ मील दू[illegible] महसावद स्टेशन है । वहाँसे लगभग पाँच मील दूर यह पद्मालय तीर्थ है । यहाँ कार्तवीर्य (सहस्रार्जुन) तथा शेषजीने गणेशजीकी आराधना की थी । दोनोंके द्वारा स्थापित दो गणपति-मूर्तियाँ यहाँ हैं । मन्दिरके सामने ही 'उगम' सरोवर है ।

१९. नामलगाँव—काचीगुडा मनमाड लाइनपर जाल्ना स्टेशन है । जाल्नासे बीड जानेवाली मोटर-बससे घोसापुरी गाँवतक जाया जा सकता है । वहाँसे पैदल नामलगाँव जाना पड़ता है । यह प्राचीन 'अमलाश्रम-क्षेत्र' है । यम धर्मराजने माताके शापसे छूटनेके लिये यहाँ गणेशजीकी आराधना की है । यमराजद्वारा स्थापित आशापूरक गणेशकी मूर्ति यहाँ है । यहाँपर 'सुबुद्धिप्रद-तीर्थ'-नामक कुण्ड भी है । भुशुण्डि योगीन्द्रकी भी यहाँ मूर्ति है ।

२०. राजूर—जाल्ना स्टेशनसे यह स्थान चौदह मील है । इसे 'राजसदन क्षेत्र' कहते हैं । सिन्दूरासुरका वध करनेके पश्चात् गणेशजीने यहाँ राजा वरेण्यको 'गणेश-गीता'का उपदेश किया था ।

२१. कुम्भकोणम्—यह दक्षिण भारतका प्रसिद्ध तीर्थ है । इसे 'श्वेत विघ्नेश्वरक्षेत्र' भी कहते हैं । यहाँ कावेरी-तटपर सुधा-गणेशकी मूर्ति है । अमृत-मन्थनके समय जब पर्याप्त श्रम होनेपर भी अमृत नहीं निकला, तब देवताओंने यहाँ गणेशजीकी स्थापना करके पूजा की थी ।

गणेश-प्रतिमा बनवाकर सारसबाग तालाबके शान्त वातावरणमें इसकी स्थापना की थी।

(ग) वरद—गुपचुप गणपति—लोकमान्य तिलकजीके समयसे शनिवार पेठमें यह एक प्रसिद्ध गणेशस्थान है। देवस्थानकी स्थापना श्रीरामचन्द्र विष्णु गुपचुपने करके प्रतिमाका नाम 'श्रीवरदगणपति' रख दिया।

(घ) दशभुज चिन्तामणि—यह मूर्ति भी आदेशके आधारपर कुएँसे मिली है। गणेशपुराणमें गणेशमन्दिर निर्माणके सम्बन्धमें जो आवश्यक निर्देश है, तदनुरूप ही गणेश-लोकके भावनानुसार इस मन्दिरका निर्माण हुआ है।

(ङ) त्रिशुण्ड—नागझरीके किनारे पूनाका अत्यन्त प्राचीन एवं विशिष्ट रचनावाला मन्दिर है। मन्दिरकी दीवारपर एक गणेश-यन्त्र खुदा हुआ है, जिसके आधारपर शोध करनेवालोंका कथन है कि यह तन्त्रमार्गीय मन्दिर है। मन्दिरके नीचे गुप्त तहखानेमें मन्दिरके संस्थापक महंत श्रीदत्तगुरु महाराजकी समाधि है। इस मन्दिरकी ऐसी रचना की गयी है कि गजानन-मूर्तिके अभिषेकका पानी सीधे समाधिपर पड़े। इन मुख्य स्थानोंके अतिरिक्त पूना नगरमें अन्य भी कई बड़े श्रीगणेश मन्दिर हैं।

पाली (जिला-कुलाबा)—यह अष्टविनायकस्थान है। यहाँके श्रीगणेशजीका नाम बल्लालेश्वर है। गणेशपुराण तथा मुद्गलपुराणमें भी इसका उल्लेख है। प्राचीनकालसे ही यह एक जागरूक स्थान है। मन्दिरकी ऐसी रचना है कि सूर्योदय होते ही सूर्यकी किरणें सभामण्डपसे होकर मूर्तिपर पड़ती हैं। इस मन्दिरके पीछेकी ओर श्रीधुण्ढिविनायकका मन्दिर है, जिसमें श्रीधुण्ढिविनायककी स्वयम्भू-मूर्ति है।

महड (जिला-कुलाबा)—महडके श्रीवरदविनायक अष्टविनायकोंमें प्रसिद्ध हैं। ऐसी धारणा है कि 'मन्दिरकी स्थापना वेद-प्रसिद्ध गृत्समद ऋषिने की।' ये ऋषि हजारों वर्ष पहले हुए हैं। 'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे' इस ऋचाको सिद्ध करनेवाले एवं ऋग्वेदके दूसरे मण्डल[illegible] श्रीगृत्समदने गणेशजीकी [illegible] कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव [illegible] सम्प्रदायके आद्यप्रवर्त[illegible] महत्त्व है।

नाँदगाँव ([illegible]

[illegible] हैं एवं इन सिद्धि विनायककी स्थापना 'ब्रह्मानन्दकार' श्री[illegible] देवशने की थी। यह मन्दिर चौदहवीं शताब्दीसे ही प्रसिद्ध [illegible]

कनकेश्वर (जिला-कुलाबा)—ढाई सौ वर्ष पूर्व कन्दा[illegible] लम्बोदरानन्दस्वामीजीको भगवान् परशुरामने पीले संगम[illegible] पत्थरकी सिद्धि बुद्धि एवं लक्ष लाभ बालकोंसहित श्रील[illegible] गणेशकी एक सुन्दर एवं कल्पपूर्ण मूर्ति दी और कहा 'यह मूर्ति केवल ध्यानके लिये है, पूजनके लिये नहीं [illegible]' बादमें श्रीगणेशजीके आदेशानुसार एक दूसरी मूर्ति यहाँ स्थापित की गयी एवं मूल-मूर्ति ताम्बेके एक सन्दूकमें बंद कर रखी हुई है। उस मूर्तिका दर्शन सबको मिले, इसलि[ए] आजकल उसकी एक प्रतिकृति बनाकर वहाँ रखी हुई है। इन श्रीगणेशजीका नाम 'श्रीराम सिद्धि विनायक' है।

कड़ाव (जिला-कुलाबा)—के श्रीदिगम्बर सिद्धि विनायकका मन्दिर एक अत्यन्त जाग्रत् देवस्थान है। इस मन्दिरका जीर्णोद्धार नाना फडनवीसने कराया था। तीन सौ वर्ष प्राचीन यह मूर्ति 'एकदन्तं शूर्पकर्णम्…' श्लोकके भावानुसा[र] निर्मित है।

टिटवाला (जिला-थाना)—भारतके प्रसिद्ध कण्व-मुनिका आश्रम यहीं था। दुष्यन्त शकुन्तलाका गान्धर्व विवाह एवं अन्य घटनाएँ यहीं हुई थीं। शकुन्तलाको कण्वमुनिने गणेश व्रत करनेको कहा था। जिन गणेशकी कृपासे उसे उसके पतिकी पुनः प्राप्ति हुई थी, यह वही गणेश प्रतिमा है। इसे 'वरविनायक' या 'विवाहविनायक' भी कहते हैं।

बंबई—यहाँ दो प्रसिद्ध गणपति-मन्दिर हैं। एक है, प्रभादेवीका 'सिद्धिविनायक-मन्दिर' और दूसरा है, मूलजी जेठा कापड़ मार्केटका 'सिद्धिविनायक मन्दिर'। ये दोनों गणपति मन्दिर अति प्राचीन हैं। मूलजी जेठा मार्केटमें एक बार भयानक आग लगी थी, तब यह मन्दिर उससे केवल २५-३० कदम दूर था; फिर भी वह पूर्ण बच गया था। आगकी ज्वाला दूर-दूरतक फैल गयी, तथापि इस मन्दिरको और इसके अंदर मौजूद दस्तावेज पुजारीको कुछ भी आँच [न लगी]। इस अग्निकाण्डमें यह एक चमत्कारिक बात [illegible] मार्केटमें अनेकोंसे अनेक मन्दिरोंमें आग लगी [illegible] गणेश भी[illegible] उनकी दूकानोंको [illegible]क लोग मानते हैं कि यह [illegible]। बंबईमें अनेक गणेश [illegible] और [illegible]

गणेशजीके दर्शनके लिये भक्तोंकी भीड़ लगी रहती है। इनके अतिरिक्त बाणगङ्गा, मार्कण्डेश्वर, भुलेश्वर, गणेशवाड़ी, बड़ाला, माटुंगा, कालबादेवी, मदार गणेश, बांद्रा आदि स्थानोंके श्रीगणेश मन्दिर दर्शनीय हैं।

पुलया (जिला-रत्नागिरि)—यहाँका गणपति मन्दिर अष्टविनायकोंमें अल्प समुद्रतटवर्ती होकर भी एक प्रख्यात देवस्थान है। गणेशजीके दाँत साफ दिखलायी देते हैं। यहाँकी व्यवस्था ऐसी है कि सूर्यास्तके समय सूर्यकी किरणें ठीक स्वर्णिम कलशसे होकर मूर्तिपर पड़ती हैं।

तासगाँव (जिला-साँगली)—यहाँ गणपति-पञ्चायतनका मन्दिर है। बीचमें श्रीसिद्ध विनायक हैं। उनकी दाहिनी ओर उमा रामेश्वर और बायीं ओर श्रीविष्णुका मन्दिर है।

साँगली—यहाँका गणपति मन्दिर चमकते हुए काले पत्थरका है। कृष्णानदीके पूर्वी किनारेपर स्थित इस मन्दिरका सभा मण्डप एवं गर्भगृहका शिखर कलापूर्ण है।

वाई (जिला-सतारा)—यहाँके ढोल्या गणपतिके देवालयका पिछला हिस्सा मछली जैसा है, जिससे कृष्णा नदीकी बाढ़से मन्दिरकी रक्षा होती है। मूर्ति विशाल होनेके कारण ही लोग इसे 'ढोल्या (विशालकाय) गणेश' कहते हैं।

सतारा—शहरके 'ढोल्या-गणपति'का मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है एवं मूर्ति स्वयंभू है। यह मूर्ति आकारमें काफी बड़ी है। सतारके सभी मङ्गलकार्य इन्हें अक्षत देकर शुरू होते हैं। शहरके पास आजिक्य किलेकी पहाड़ीके उतारपर भी गणेश मन्दिर है।

सिद्धटेक (जिला-अहमदनगर)—यहाँके 'सिद्ध-विनायक' अष्टविनायकोंमेंसे एक हैं। यह प्रसिद्ध एवं ऐतिहासिक महत्त्वका स्थान है। गणेशमूर्ति स्वयंभू है। इसकी सूँड दाहिनी ओर झुकी है।

मालीवाडा(जिला-अहमदनगर)—यहाँका गणपति मन्दिर प्राचीन एवं जाग्रत् है। पचास साल पूर्व यहाँके गणेशजीको पसीना आने लगा, जो कि यज्ञादिके अनुष्ठानसे बंद हुआ। तबसे यह स्थान अधिक प्रसिद्ध हो गया।

नासिक—यहाँके मोदकेश्वर 'हिंगल्याचा गणपति' नामसे भी प्रसिद्ध हैं। इनकी गणना छप्पन विनायकोंमें होती है। यह 'कामवरद महोत्कट क्षेत्र' है। यहाँकी मूर्ति मोदकाकार है, इसीलिये इन्हें 'मोदकेश्वर' कहा जाता है। इनके अति[illegible] नासिक नगरमें और भी सात आठ गणेश मन्दिर हैं।

परंडोल (जिला-जलगाँव)—भारतके गणेश[illegible] प्रसिद्ध अढ़ाई पीठोंमें अर्धपीठ के रूपमें इस स्थानका उल्[illegible] होता है। इसे 'पद्मालय-क्षेत्र' कहते हैं एवं इसकी [illegible] गणेशपुराणमें है। गर्भगृहमें गणेशजीकी दो स्वयंभू मू[illegible] हैं। एक दाहिनी ओर मुड़ी सूँड़की एवं दूसरी बायीं मुड़ी सूँड़की है। यह इक्कीस क्षेत्रोंमेंसे एक है।

कलम्बपुर (जिला-यवतमाल)—मन्दिरके सामने 'चौमुखी गजानन'की मूर्ति है। इसकी विशेषता यह है [illegible] एक ही पत्थरमें चारों ओर चार गणेश-मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। सामनेके गर्भगृहमें मुख्य चिन्तामणि गणेशकी मूर्ति है। 'कलम्ब' नामसे इक्कीस गणपतिक्षेत्रमें इसकी गणना [illegible]

केलझर (जिला-वर्धा)—यहाँकी गणेश प्रति[illegible] पाण्डवोंके द्वारा स्थापित है। महाभारतकालीन एकचक्रान[illegible] ही आधुनिक केलझर है। यहाँ एक अति प्राचीन मन्दिर है।

आधासा (जिला-नागपुर)—इक्कीस गणेश क्षेत्रों[illegible] यह 'अदोष क्षेत्र'के नामसे प्रसिद्ध है। यह जाग[illegible] देवस्थान है। मन्दिर टीलेपर एवं पूर्वाभिमुख है। य[illegible] 'श्रीशमीविघ्नेश'की मूर्ति है।

नागपुर—शहरमें सीताबर्डी किलेमें गणपतिका पहले बना हुआ बड़ा मन्दिर था, जो मुस्लिमकालमें ध्वस्त कि[illegible] गया। उसके अवशेष आज भी दिखलायी देते हैं। मूर्ति[illegible] पेड़के नीचे है। पहले यह मूर्ति स्पष्ट दिखायी देती थी, कि[illegible] अब अधिक सिन्दूर लगानेके कारण मूर्ति स्पष्ट नहीं दीखती है। नागपुर शहरमें शुक्रवार-तालाबके पास एक उत्तम गणेश मन्दिर है। मूर्ति दाहिनी ओर झुकी सूँड़की एवं संगमर्मरकी है।

अजिंठा (जिला-औरंगाबाद)—यह गणेशस्थान अत्यन्त जागरूक है और अर्धचन्द्राकार है। गणेश गुफामें प्रवेश करनेपर बड़ा सभा मण्डप आता है। मण्डपके मध्य भागमें दीवारमें चार फीट ऊँचाईपर मङ्गलमूर्ति है।

वेरूल (जिला-औरंगाबाद)—इक्कीस गणपति-क्षेत्रोंमेंसे यह एक है। यहाँ 'श्रीलक्ष विनायक'की स्थापना श्रीशिवपुत्र स्कन्दने की थी।

[पृष्ठ ४२६-२७

वाड़ा (जिला-औरंगाबाद)--यहाँ सिन्दूरासुर-
था। सिन्दूरासुरका अन्त करनेके कारण यहाँके
'सिन्दूरान्तक' कहलाते हैं।

ारा (जि०-औरंगाबाद)-पहले बाजीराव पेशवा-
की श्रीगणेशमूर्ति तैयार करवायी गयी थी। मूर्ति
धातुकी है। इसके बारह हाथ हैं। सूँड़ बायीं
है।

ुर (जि०-औरंगाबाद)—भारतमें श्रीगणेशके
पीठोंमें यह पूर्ण पीठ माना जाता है। यहाँके
तु एवं सिद्धि देनेवाले देव 'वरेण्य पुत्र गणपति'
। यहाँ गणेशजीने राजा वरेण्यको गीताका उपदेश
। यहाँका मन्दिर गाँवके पास एक ऊँचे टीलेपर
। निरन्तर जलनेवाले तैल-दीपके मन्द प्रकाशमें
दर्शन होता है।

ामसलें (जि०-परभणी)—यह स्थान पुराणोक्त
ीभालचन्द्र एवं गणेशके तीर्थक्षेत्रको 'भालचन्द्रपुर'
है। गणेशजीके इक्कीस गणपति क्षेत्रोंमें इसकी भी
। प्राचीनकालमें इसका नाम 'सिद्धाश्रम' क्षेत्र था।

भणी—जिलेके 'औढ्या नागनाथ-मन्दिर'में निज
दक्षिण दीवारपर गणेशकी कुछ सुन्दर मूर्तियाँ
ें 'दिगम्बर गणेश', 'बैठा गणेश', 'खड़ा गणेश'
द्धि गणेश' एवं 'दशभुज गणेश' हैं।

नवतरोड (जि०-परभणी)—स्टेशनसे २०
गोदावरीके किनारे मुद्गलतीर्थ है, जहाँ नदीमें
पति-मन्दिर एवं तीर्थ है।

ेड़—यहाँके 'चिन्तामणि गणेश'का महाराष्ट्रके अष्ट-
ोंके समान ही माहात्म्य है एवं यह मन्दिर मराठवाड़ेका
सिद्ध-स्थान है। यह छोटा सा मन्दिर गोदावरी अमना
के सगमपर नदीमें ही पत्थरोंसे बना हुआ है।
ै एवं उसीके ऊपर गणेशजीकी स्वयम्भू प्रतिमा है।
ुर चर्चित है। लोगोंकी यह धारणा है कि यह प्रतिमा
ं तिल-तिल बढ़ती है। नादेड़ नगरमें तथा नादेड़
भी कुछ गणपति मन्दिर एवं क्षेत्र हैं।

क्षिण राजुरा (बीड़)—यह मराठवाड़ेका प्रसिद्ध
गणेशक्षेत्र है। गाँवमें प्रवेश करते ही सरहदपर पेशवाई
ढंगका यह 'श्रीनवगणपति'का मन्दिर है। यहाँ चार गणेश
मूर्तियाँ हैं एवं एक चौकोर पत्थरके चार दिशाओंमें हैं।
प्रत्येक मूर्तिकी बैठक विशिष्ट आसनमें है। उनके नाम इस
प्रकार हैं—पूर्वकी ओर 'महामङ्गल', दक्षिणकी ओर 'मयूरेश्वर',
पश्चिमकी ओर 'शेषाधिष्ठित' तथा उत्तरकी ओर 'उच्छिष्ट
गणेश'की मूर्तियाँ हैं। मन्दिरमें चारों गणेशजीके अतिरिक्त एक
पूजाके गणेश हैं। बीड़के जिलेके आँबेजोगाई तथा नामल
गाँवके गणेश मन्दिर भी दर्शनीय हैं। नामल गाँव इक्कीस
गणपति क्षेत्रोंमेंसे एक है।

राक्षस भवन (बीड़)—'श्रीविज्ञान गणेश'का मन्दिर
गोदावरीके दक्षिण किनारेपर गाँवके बाहर है। विज्ञान
गणेशकी मूर्ति पहले वर्तमान स्थानके नीचे गुफामें थी। दो
सौ साल पूर्व किसी गणेश-भक्त शंकर बुआ मङ्गलमूर्तिजीने
इसे निकालकर बाहर स्थापित किया।

खाण्डोले (गोवा)—यहाँका गणपति मन्दिर छोटा
है, फिर भी सुन्दर है। यह पहाड़के नीचे नारियलके
झुरमुटमें है, जिससे इसकी नैसर्गिक शोभा अप्रतिम है।

वांदिवडे (गोवा)—यहाँकी श्रीगोपाल गणपतिकी
मूर्ति जंगलमें मिली थी। इसकी ऊँचाई एक फुट है।
पहले तो इसे नारियलके पत्तोंसे ढके हुए मण्डपके नीचे
स्थापित किया गया था, किंतु बादमें यह मूर्ति काफी लोगोंकी
मान्यताको पूरा करनेसे विख्यात हो गयी।

इनके अतिरिक्त महाराष्ट्रमें अनेकों छोटे-बड़े गणपति
मन्दिर एवं क्षेत्र तथा तीर्थ और कुण्ड हैं। जैसे—१-पूना
जिलेके जुन्नर, २-कोलाबा जिलेके उरण, गरुड़, आगाम,
३-थाणा जिलेके अणजूर, मुरबाड, थाणा, ४-रत्नागिरि
जिलेके अगरगुळे, देवगी, आँबोळी, गुहागर, आँजर्ले,
दोणवली, कैळशी, सोनगाँव, परशुराम, ५-कोल्हापुर जिलेके
गणेशवाड़ी, कोल्हापुर, बीड़, इचनाल, ६-सातारा
जिलेके अगापुर, ७-शोलापुर जिलेके पंढरपुर, अक्कलकोट,
८-नासिक जिलेके सिन्नरगाँव, त्र्यम्बकेश्वर, गणेशकुण्ड और
९-गोवाके धारगल, दरमल तथा भट्टवाड़ी स्थानोंके श्रीगणेश-
मन्दिरोंका दर्शन श्रीगणेश भक्तोंको अवश्य करना चाहिये।

द्रविड़-देशमें श्रीगणेश

(लेखक—श्री एन० कनकराज ऐयर, एम० ए०)

द्रविड़-देश तमिळनाडमें श्रीगणेशजी देवताके रूपमें सर्व-साधारणके चित्तको बहुत आकर्षित करते हैं। नदियोंके तटपर, पीपल वृक्षके नीचे तथा कण्टकाकीर्ण उदेयरम् वृक्षकी छायामें बिना किसी प्रकारके आवरणके खुली जगहमें सहस्रों छोटी-छोटी वेदिकाओंके ऊपर उनकी अर्चना होती है। कोई भी धनी या गरीब आदमी सच्ची श्रद्धा-भक्तिसे उनके लिये कहीं भी स्थान बनवा देता है। इस प्रकार भक्तोंके हृदयमें गणपतिने एक विशिष्ट स्थान बना लिया है।

परमक्कुड़ि—पीपलका वृक्ष सब वृक्षोंका वस्तुतः राजा है। उसके नीचे श्रीगणेशजीकी महत्ता बढ़ जाती है। परमक्कुड़िके समीप वे एक कँटीदार वृक्षके नीचे अपने भाई स्कन्दके साथ आसीन हैं। नव-दम्पति अपने वैवाहिक जीवनकी सफलताके लिये गणेशजीसे प्रार्थना करते हैं और वे उसे पूर्ण भी करते हैं।

मद्रास—यहाँ कई मन्दिर हैं। शिव मन्दिर अम्बाजीके मन्दिरसे कुछ ही दूरीपर एक साधारण सा मन्दिर है। उसमें भगवान् शंकरकी लिङ्ग-मूर्ति है। मन्दिरमें ही पार्वतीजीकी मूर्ति अलग मन्दिरमें है। नवग्रह, शिवभक्त गण, श्रीगणेशजी आदि देवताओंकी मूर्तियाँ भी जगमोहन तथा परिक्रमामें हैं। इसके अतिरिक्त मइलापुर मुहल्लेमें कपालीश्वरका मन्दिर है। प्रधान मन्दिरमें कपालीश्वर शिव लिङ्ग प्रतिष्ठित है। मन्दिरमें ही पार्वतीजी तथा सुब्रह्मण्यस्वामीके पृथक्-पृथक् मन्दिर हैं। मुख्य मन्दिरकी परिक्रमामें सुब्रह्मण्य, पार्वती, नटराज, नायनार (शिवभक्तगण), गणेश एवं दक्षिणामूर्ति आदिके दर्शन हैं।

कालहस्ती—यह रेनीगुंटासे १५ मील है। दक्षिण-भारतमें भगवान् शंकरके जो पाँच तत्त्वलिङ्ग माने जाते हैं, उनमेंसे कालहस्तीमें वायुतत्त्वलिङ्ग-मूर्ति है। परिक्रमामें श्रीगणेशजीका मन्दिर है।

वेङ्कटगिरि—यह रेनीगुंटासे ३० मील है। काशीपेठ मुहल्लेमें काशी विश्वेश्वर शिव मन्दिर है। मन्दिरके परिक्रमा-मार्गमें अन्नपूर्णा, कालभैरव, सिद्धिविनायक आदि देवताओंकी मूर्तियाँ भी हैं।

अरुणाचलम् (तिरुवण्णामलै)-विल्लुपु बयालीस मील दूर तिरुवण्णामलै स्टेशन है। अरुणाचल प नीचे पर्वतसे लगा हुआ अरुणाचलेश्वरका विशाल म है। इस मन्दिरके दूसरे आँगनमें सरोवरके किनारे मण्डप हैं, उनमें गणेश आदि देवताओंके मन्दिर हैं।

काञ्ची—यह चेंगलपटसे बाईस मील दूर है। नगरके दो भाग हैं—शिवकाञ्ची और विष्णुकाञ्ची शिवकाञ्चीमें एकाम्रेश्वर भगवान्‌का मुख्य मन्दिर है। मन्दि द्वारके दोनों ओर क्रमशः श्रीकार्तिकेयजी तथा श्रीगणेश मन्दिर हैं। मन्दिरकी दो परिक्रमाएँ हैं। पहली परिक्रमामें अ मूर्तियोंके साथ भगवान् श्रीगणेशजीकी भी भव्य मूर्ति विष्णुकाञ्चीमें भगवान् श्रीवरदराजका विशाल मन्दिर भगवान्‌के निज मन्दिरकी परिक्रमामें अण्डाल, धन्व एवं श्रीगणेशजीकी मूर्तियाँ हैं।

सक्कोत्तरी—एक दूसरा विनायक मन्दिर है। इ विशालकाय गणेशके दर्शन और पूजाके लिये हजारों आते हैं।

चिदम्बरम्—तमिळनाडमें पूजे जानेवाले विना ब्रह्मचर्यके अधिष्ठातृ देवता हैं। भारतदेशके इस भा प्रायः सारी गणेश-मूर्तियाँ ब्रह्मचर्यकी पवित्र भावन अभिव्यक्ति हैं। इस नियमके बहुत ही कम अपवाद मि हैं। तमिळनाडमें वल्लभ विनायकको व्यक्त करनेव दक्षिण गोदमें नारीमूर्तिके साथ गणेशकी मूर्ति बहुत दुर्लभ है। इस प्रकारकी एक मूर्ति चिदम्बरम्‌में अनन्दा मन्दिरमें पायी जाती है। श्रीवल्लभ-गणपति, जो मुख्य शि मन्दिरके बहुत समीपमें प्रतिष्ठित हैं, यहाँ अत्यन्त भक्तिभा पूजे जाते हैं।

तिरुनारैयूर—चिदम्बरम्‌के समीप तिरुनारैयूर श्रीगणेशजीका एक विशेष मन्दिर है। उसमें जिस मूर्ति पूजा होती है, उसके विषयमें पुजारियों और भक्तोंमें ए अपूर्व ही कथा प्रचलित है। दसवीं शताब्दीमें नंबि नम्ब एक कुआँरा ब्राह्मण इस स्थानमें रहता था। बाल्यकालमें व एकदम निरक्षर था, किंतु वैदिक पाठशालामें वेदाध्ययन लिये प्रविष्ट हुआ। उस समय उसकी अवस्था तो बारं

मंदिर न थी । यह इस विनायक मन्दिरके पुजारीका इकलौता पुत्र था । माता पिता उस मन्दिरमें प्रतिदिन प्राचीन रीति रिवाजके अनुसार पूजा और सेवा आदि करते थे । एक दिन उस पुजारीको किसी दूसरी जगह अनुष्ठान आदि करनेके लिये जाना पड़ा । उसने अपने पुत्र नंबिके ऊपर उस दिन पूजा करने और गणेशजीसे वरदान माँगनेका काम सौंप दिया । नंबि निरा बालक था और विनायक मन्दिरमें पूजा तथा वैदिकाचारका ज्ञान उसमें पर्याप्त नहीं था । वह मन्दिरमें गया, मूर्तिके सामने खड़ा हो गया और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भूलोंके लिये क्षमा प्रार्थना करके पूजा करने लगा । उस बालकके अन्तःकरणमें दयालु प्रभुकी अपूर्व कृपा हुई । उसके मुखसे कुछ श्लोक और वेदमन्त्र उच्चरित होने लगे और उसने अपने ढंगसे देवताके अभिषेक और अर्चनाका अनुष्ठान किया । जब नैवेद्य-निवेदनका समय आया तो उसने एक छोटे-से पात्रमें ओदन भरकर मूर्तिके आगे रखा और पूर्ण भक्तिपूर्वक हृदयसे प्रार्थना करने लगा । विघ्नेश्वर उस ब्रह्मचारीकी मानसिक अवस्थाको स्पष्टतः देख रहे थे । नंबि अपनी सरल भाषामें अपने हृदयके उद्गारको व्यक्त करते हुए प्रार्थना करने लगा—'हे मेरे प्रभु विघ्नेश्वर ! तुम हमारे प्रभु हो; तुम सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहर्ता हो । तुम्हारे एकान्त भक्त, मेरे पिताने अपनी अनुपस्थितिमें मुझको अपने स्थानमें तुम्हारी सेवामें लगाया है । वे आशा लगाये हैं कि मैं उनके स्थानमें तुम्हारी सेवा-पूजा करके तुम्हें पूर्ण संतुष्ट करूँ । मैं तुम्हारे चरणोंमें शरणापन्न हूँ । मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम अनुग्रह करके प्रसाद ग्रहण करो और अपने कृपा कटाक्षसे मुझको कृतार्थ करो । यदि तुम मेरा यह नैवेद्य स्वीकार न करोगे तो मैं तुम्हारी इस चौखटपर अपना सिर फोड़ दूँगा और तुम्हारे सामने इस असार संसारसे विदा हो जाऊँगा ।' भगवान् गणपति उस नौ वर्षके बालककी इस विचित्र प्रार्थनाको सुनकर दंग रह गये । नारैयूरके विघ्नेश्वरने अपनी सूँड़रूपी उस लंबे पाँचवें हाथको फौरन बढ़ाया और सारे नैवेद्यको उठाकर उस बालक नंबिके देखते देखते उदरस्थ कर लिया । वह बालक ... ने पुजारी आनन्दसे तथा हृदयमें अ... नाचने लगा । पूरे एक ... अपना घर याद ... द्वारपर ...

आनेमें देरी अद्भुत और विलक्षण प्रतीत हो रही थी । वह सोच रही थी कि पूजा तो कुछ ही मिनटोंमें समाप्त हो जानी चाहिये । अपने इकलौते बेटेकी वह प्रतीक्षा कर रही थी और घंटेभरसे दोपहरका भोजन बनाकर उसकी राह देख रही थी । वह बालकके इस व्यवहारपर चकित थी । उसको माता पिताकी सुधि न थी, बल्कि वह एक अदम्य ईश्वरीय शक्तिसे अभिभूत था । नंबि घर पहुँचा और उसने गणपतिदेवके प्राकट्यके विषयमें अपनी माताको अवगत कराया । माता बालककी मानसिक दशाको पिताकी अपेक्षा कहीं अधिक आसानीसे समझ सकती थी । उसने विघ्नेश्वरके उस कृपापात्र बालकको घरमें ले जाकर उसके लिये विशिष्ट भोजन तैयार किया, किंतु उस बालकको उसे ग्रहण करनेकी इच्छा न हुई ।

दूसरे दिन पिताके आनेपर माताने उस दिन मन्दिरमें घटित अपूर्व घटनाका वर्णन किया और पिताने पूजाका काम सँभाला । उसने अपने पुत्रको भी साथ लेकर स्वभावतः मन्दिरमें प्रवेश किया । उसने वेद मन्त्रोंका उच्चारण करके शास्त्रविधिसे पूजा-अनुष्ठान किया, देवताके सम्मुख नैवेद्य रखा और पिछले दिनके समान उसे ग्रहण करनेकी प्रार्थना की । विनायक उस वयस्क पुजारीके समक्ष प्रकट न हुए । तब पिताने अपने बालकसे अनुरोध किया कि 'वह पिछले दिनके समान ही नैवेद्य ग्रहण करनेके लिये देवतासे प्रार्थना करे ।' बालक देवताके सामने खड़ा हो गया और पूर्ववत् उसने बड़े ही अनुनय-विनयपूर्वक प्रभुसे नैवेद्य-ग्रहणके लिये प्रार्थना की । विघ्नेश्वरको अपने भक्त और प्रिय सेवककी प्रार्थनाके आगे झुकना पड़ा । उन्होंने अपने पाँचवें हाथ—सूँड़के द्वारा एक ही लपेटमें सारे नैवेद्यको ग्रहण कर लिया । इसपर उसका पिता चिल्ला उठा—'नंबि ! अब तुम मेरे पुत्र नहीं रहे । अबसे तुम हमारे प्रभु नारैयूरके विघ्नेश्वरके परम प्रिय भक्त और शिष्य हो गये । उन्होंने तुमको अपनी शरणमें ले लिया है । तुमको उनके तत्त्वावधानमें सारे वेद-शास्त्र और दूसरी अध्यात्म-विद्याकी शिक्षा ग्रहण करनी है । वे तुम्हारी सारी मनःकामना पूर्ण करेंगे । मेरे कर्तव्यकी इतिश्री हो गयी । प्रभुके प्रति तथा जगत्के प्रति तुम्हारे कर्तव्यका श्रीगणेश हो गया । तुम्हारी माँ अपने अभ्यासके अनुसार तुम्हारी देख भाल ... रेगी ।' इतना कहकर पिताने अपने पुत्रको

है; क्योंकि कावेरी इस स्थानको लगभग चारों ओरसे घेरे हुए है। यह मन्दिर अपनी शिल्पकला, पचीकारी और चित्रकलाके लिये प्रसिद्ध है। इस मन्दिरके सामनेके मण्डपमें एक विनायकका विग्रह है। इस मूर्तिके विषयमें यह किंवदन्ती है कि जब देवताओंने अमृत प्राप्त करनेके लिये क्षीरसागरका मन्थनकार्य आरम्भ किया, तब उससे गगनचुम्बी फेन-राशि उत्थित हुई। उसी फेनराशिसे यह गणपतिकी मूर्ति निकली थी। इस विग्रहकी रचना विशुद्ध दुग्धफेनसे हुई है। अतएव यहाँ अर्चा करनेवाले विग्रहका अभिषेक शुद्ध उदक या गो-दुग्धसे भी नहीं करते। वहाँ गणपतिकी पूजा-प्रार्थना सुनी जाती है और भक्तोंकी मनःकामना पूर्ण होती है। कुम्भकोणम् क्षेत्रमें कई गणपति-मन्दिर हैं, जिनके सम्बन्धमें अनेक पौराणिक गाथाएँ प्रचलित हैं। यह क्षेत्र इक्कीस गणपति-क्षेत्रोंमेंसे एक है।

पुडुचेरि (पांडिचेरी)--इस स्थानके समुद्रतटपर श्रीगणेशजीका एक मन्दिर है। यह मन्दिर विदेशियोंने बनवाया था। कहा जाता है कि जब इस विनायककी पूजाके लिये भक्त जनताकी भीड़ बढ़ने लगी, तब विदेशी शासकोंने इस मूर्तिको समुद्रमें फेंकवा दिया। दूसरे ही दिन यह मूर्ति उसी स्थानपर स्वतः विराजित हो गयी। इसे देखकर आश्चर्यचकित विदेशी शासकोंने भक्तिपूर्वक यहाँ मन्दिर बनवाया। इन गणेशजीकी अद्भुत महिमाके विषयमें 'भारतियार' ने गाया है।

तंजौर--कुम्भकोणम्‌से चौबीस मीलपर तजौर स्टेशन है। बृहदीश्वर-मन्दिर ही यहाँका मुख्य मन्दिर है। इस शिव-मन्दिरके पश्चिम गणेशजीका मन्दिर है।

कोडमुडी--ईरोदके निकट कोडमुडीमें एक अति प्राचीन शिवालय है। उसका पूरा नाम है—तिरुप्पाण्डिकोडमुडी। यह शिवमूर्ति मनुष्यके द्वारा विरचित नहीं है, अपितु एक भूमिस्थ पहाड़ीका उच्च शिखर है। इसी कारण भगवान् शंकरका नाम 'कोडमुडी' है। तमिळ भाषामें 'कोडमुडी' पर्वतके उच्च शिखरका पर्याय है। इस मन्दिरमें स्थित विनायककी मूर्तिका नाम 'कावेरीकान्त विनायक' है (अ[illegible] वे विनायक, जो कावेरीको भूतलपर लाये [illegible]

त्रिचिनापल्ली--त्रिशीर्षगिरि [illegible] की पहाड़ीपर तीन शिखर [illegible] सबसे ऊँची पहाड़ीपर गणपति 'उचिप्पिळ्ळैयार'के नामसे [illegible] मन्दिरमें आसीन है। इस [illegible]

चढ़ते हैं। उसी मन्दिरमें पहाड़ीकी निम्नतम सतह[illegible] नवाविर्भूत विनायक हैं। ये गणेश सीकर विनायककी[illegible] कहीं अधिक लोकप्रिय देवता हैं; क्योंकि द्वार-मण्डपसे वे [illegible] आमन्त्रित करते हैं और जब कभी वे उनके पूज[illegible] जाते हैं, उनपर अपनी कृपादृष्टि करते हैं।

जम्बुकेश्वर--यह स्थान श्रीरङ्गम्-नगरका एक[illegible] है। दक्षिणी भारतके पञ्चतत्त्वलिङ्गोंमें जम्बुकेश्वर आपो[illegible] (जलतत्त्व-लिङ्ग) माना जाता है। जम्बुकेश्वर-मन्दिरके प्रा[illegible] बायीं ओर एक फाटक है। उससे भीतर जानेपर भ[illegible] जगदम्बाका मन्दिर मिलता है। यहाँ अम्बाको 'अखिलाण्डे[illegible] कहते हैं। यह मन्दिर विशाल है। श्रीजगदम्बाके निज-मन्[illegible] ठीक सामने गणेशजीका मन्दिर है। इसमें भगवान् शंकराचार्य[illegible] प्रतिष्ठित श्रीगणेशजीकी मूर्ति है। यह मूर्ति इस ढगसे स्थापि[illegible] कि जगदम्बाके ठीक सामने पड़ती है। अम्बाके निज-मन्दि[illegible] भगवतीकी भव्य मूर्ति प्रतिष्ठित है। यह मूर्ति तेजोदीप्त है। [illegible] जाता है, यह मूर्ति पहले इतनी उग्र थी कि इसका द[illegible] करनेवाला वहीं प्राण त्याग देता था। आद्य शंकराचार्य [illegible] यहाँ पधारे, तब उन्होंने जगदम्बाके उग्र तेजको शान्त करने[illegible] लिये उनके कानोंमें दो हीरकजटित श्रीयन्त्रके कुण्डल पह[illegible] दिये और उनके सम्मुख श्रीगणेशजीकी मूर्ति स्थापित कर दी[illegible] पुत्रकी मूर्ति सामने होनेसे जगदम्बाका उग्र तेज वात्सल्य[illegible] कारण सौम्य हो गया।

रामेश्वरम्--चार दिशाओंके चार धामोंमें रामेश्व[illegible] दक्षिण दिशाका धाम है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें भी रामेश्वरकी[illegible] गणना है। भगवान् श्रीरामने इसकी स्थापना की थी[illegible] कहते हैं, भगवान् श्रीराम जब यहाँ पधारे, तब उन्होंने पहले[illegible] उप्पूरमें श्रीगणेशजीकी प्रतिष्ठा की। फिर रामेश्वरम् जाकर[illegible] उन्होंने रामेश्वर-स्थापन तथा पूजन किया। रामेश्वर-मन्दिरके[illegible] दक्षिण श्रीपार्वती मन्दिरका द्वार है। यहाँ श्रीपार्वतीजीको[illegible] 'पर्वतवर्द्धिनी' कहते हैं। श्रीपार्वतीजीके मन्दिरकी परिक्रमामें[illegible] [illegible] तथा पळिकोंड पेरुमाळ्के मन्दिर हैं। [illegible] पहकपर रामेश्वरसे लगभग [illegible] है। इसमें गाधी- [illegible] इसके चन्द्र [illegible] और मुन्दोश्वर [illegible] है। दोनों [illegible]

गुजरातके गणेश-स्थल

गुजरातमें भगवान् गणेशजीकी बड़ी मान्यता है। गुजरातके कुछ गणेश-मन्दिरोंका विवरण श्रीअरविन्द नर्मदाशंकरजी शास्त्री, श्रीहिम्मतलाल मूलशंकर काव्यशास्त्री और श्रीनर्मदाशंकर त्र्यम्बकराम भट्टद्वारा प्रेषित विवरण एवं अन्य सूत्रोंके आधारपर दिया जा रहा है।

मोढेरा—बेचराजीसे मोढेरा १८ मील दूर है। श्रीमातङ्गीदेवी यहाँका मुख्य देवस्थान है। यहीं श्रीगणेशजीका उप-मन्दिर है। मोढेरा गाँवके दक्षिण श्रीगणेशजीका एक मन्दिर और है। इसमें सिद्धि और बुद्धि-नामक पत्नियोंके साथ श्रीगणेशजीकी मूर्ति है।

सोमनाथ—यह सौराष्ट्रका प्रमुख स्थान है और भगवान् शंकरके द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें सोमनाथ-लिङ्ग यहीं है। प्राचीन सोमनाथ मन्दिरके पास श्रीअहल्याबाईद्वारा निर्मित एक अन्य सोमनाथ मन्दिर भी है, जहाँ सोमनाथ-लिङ्ग भूमिके नीचे है। मन्दिरके घेरेमें ही श्रीगणेशजीका भी मन्दिर है। इसके अतिरिक्त नगरमें भी भगवान् श्रीगणेशका एक मन्दिर है। सोमनाथ-नगरके पास भालकतीर्थ एक स्थान है। यहाँ मोक्ष-पीपल है। कहते हैं, यहाँ पीपलके नीचे बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णके चरणमें जरा-नामक व्याधने बाण मारा था। चरणों में लगा हुआ बाण निकालकर भालकुण्डमें फेंका गया। भालकुण्डके पास ही दुर्गकोटि-गणेशजीका मन्दिर है।

जूनागढ़—सौराष्ट्रके इस प्रसिद्ध नगरमें ही भक्त नरसीमेहताका घर था। नगरमें रेवतीकुण्डसे आगे मुचुकुन्द-महादेव तथा भवनाथ महादेव हैं। मुचुकुन्द-महादेवकी स्थापना राजा मुचुकुन्दने की थी। उस मन्दिरकी परिक्रमामें श्रीगणेशजीका मन्दिर है।

सायर—यह स्थान नर्मदाके उत्तरतटपर, फतेपुरसे चार मीलपर है। यहाँ सागरेश्वर-मन्दिर है। गाँवमें कपर्दीश्वर-मन्दिर है, जिसे नारेश्वर भी कहते हैं। यहाँ श्रीगणेशजीने तप किया था।

सूरत—सूरतमें अम्बादेवीका विशाल मन्दिर है। इसमें जो देवी-मूर्ति है, वह एक स्वप्नादेशके अनुसार चार सौ वर्ष पहले अहमदाबादसे सूरत लायी गयी थी। देवीके दाहिने श्रीगणेशजी और शंकरजी तथा बायीं ओर बहुचरा-देवीकी मूर्ति है।

बड़ोदा—यहाँ कई गणेश मन्दिर हैं। सातरकर-गणेश मन्दिरकी मूर्ति ... मन्दिर शिल्पकला तथा वैभवकी दृष्टिसे ... श्रीविग्रह बहुत भव्य है। नीलकण्ठेश्वर-... कलापूर्ण है। सिद्धनाथ गणपतिके मन्दिर निर्माणकी विशेषता यह है कि जब भगवान् सूर्य उत्तरायणसे दक्षिणायन और दक्षिणायनसे उत्तरायण जाते समय भूमध्यरेखापर अवस्थित होते हैं, तब उनकी किरणें मूर्तिपर पड़ती हैं। बड़ोदा शहरमें अन्य कई छोटे-छोटे मन्दिर हैं।

गणेश-वट सीसोदरा—यह नवसारी शहरके पास है। यहाँ बड़े-बड़े वटवृक्षके झुण्ड हैं और उनके बीचमें यह एक पक्का बना हुआ मन्दिर है। श्रीगणेशजीकी मूर्ति एक फुट ऊँची है। इसकी सूँड़ बायीं ओर मुड़ी है। आगेके थोड़े भागमें जलहरीके साथ महादेव हैं। गणेशजीकी मूर्तिके पास पार्वती-माताकी एक प्रतिमा है। इस मन्दिरके आगेके भागमें यहाँ जमीनमें एक पट्ट गड़ा हुआ है, जिससे इसके ऐतिहासिक महत्त्वका पता चलता है।

वलसाड—इस नगरमें एक भव्य गणपति-मन्दिर है। यह मन्दिर बहुत प्राचीन है, जिसका जीर्णोद्धार विपुल धन-राशि लगाकर हालमें ही कराया गया है। यहाँ दाहिनी सूँड़वाली गणेशमूर्ति चमत्कारिक तथा सिद्धि प्रदान करनेवाली है।

खम्भात—यहाँ श्रीगणेशजीका स्वतन्त्र मन्दिर ब्राह्मण वाड़ामें है, जहाँ श्रीगणेशजीकी मनुष्यके कदकी भव्य प्रतिमा विराजित है। इसके चार हाथोंमें चार फणवाले सर्प हैं इसमें सर्पका यज्ञोपवीत भी है। यह मूर्ति बहुत प्राचीन है।

भांगधा—यहाँकी सात फीट ऊँची एकदन्त-मूर्ति एक अखण्ड पत्थरमें उत्कीर्ण है। मन्दिर जोगसर-तालाबके एक किनारेपर है। दूसरे किनारेपर अन्य मन्दिर भी हैं।

गोरज—यहाँके सिद्धि विनायककी मूर्ति चतुर्भुज है। यह मन्दिर पहलेसे ही एक शमीके पेड़के नीचे है।

अहमदाबाद—भद्रमें यह मन्दिर पेशवाओंके समयका बना हुआ है। भगवान् गणेशकी मूर्ति सिंदूरी रंगकी है। इसकी सूँड दाहिनी ओर है।

धोलका—यहाँ गणेशजीका एक प्राचीन एवं विशाल मन्दिर है। यहाँ गणेशजीकी प्रतिमाके समक्ष अखण्ड दीपक सदैव जलता रहता है।

महाराजने यथाविधि उनकी पूजा की। तभीसे इनकी बड़ी मान्यता है।

अइनविल्लि—प्रसिद्ध शैवक्षेत्र मुक्तीश्वरम्‌से एक किलोमीटरपर अइनविल्लिमें गणपति क्षेत्र तथा तीन किलोमीटरपर भगवान् षण्मुखका क्षेत्र है। अइनविल्लि-में स्थित गणपति बड़े प्रसिद्ध तथा प्रत्यक्ष फलदायक हैं।

(फ्रेंच) यानाम्—गोदावरी-तटपर स्थित यहाँका गणपति-मन्दिर प्रसिद्ध है। यह मन्दिर दक्षिणाभिमुख है। यहाँके गणपति भी प्रत्यक्ष फलदायक कहे जाते हैं। साठ वर्ष पूर्व एक साधुने इस गणपति मन्दिरमें रहकर सैकड़ों रोगियोंको आरोग्य दान दिया था।

भद्राचलम्—राजमहेन्द्रीसे भद्राचलम् लगभग अस्सी मील है। गोदावरीके किनारे भगवान् श्रीरामका यह प्राचीन मन्दिर है। मुख्य मन्दिरके अतिरिक्त अन्य मन्दिरोंमें हनुमान्, गणेश आदि देवता प्रतिष्ठित हैं।

विजयवाड़ा—राजमहेन्द्रीसे तिरानवे मीलपर बेजवाड़ा (विजयवाड़ा) एक प्रसिद्ध नगर है। विजयवाड़ामें एक पर्वतपर पुराना जीर्ण-शीर्ण किला है। उसमें चट्टान काटकर कई बौद्धगुफाएँ बनी हैं। विजयवाड़ा नगरके पूर्वोत्तर बड़ी पहाड़ीके पादमूलमें एक छोटी गुफामें श्रीगणेशजीकी मूर्ति है।

कुरुडमडे (कर्नाटक)—मन्दिरका महाद्वार, प्राकार तथा मुखमण्डप विजयनगर-कालका है। मन्दिरमें हरे संगमर्मरकी श्रीसुब्रह्मण्यम्‌की मूर्ति है। मन्दिरके गर्भगृहमें महागणपतिकी हरे संगमर्मरकी मूर्ति है। इनकी कारीगरी प्रमाणबद्ध एवं सुन्दर है। मूर्तिके आगे एक बड़ा चूहा है।

इडगुंजी (कर्नाटक)—यहाँके पञ्चखाद्यप्रिय महागणपतिकी मूर्ति द्विहस्त तथा सर्पालंकार भूषित है। ये गणेशजी बालब्रह्मचारी हैं।

कोकड (कर्नाटक)—कोकड-गाँवमें एक मैदानमें एक पेड़के नीचे ये गणेशजी हैं। यहाँके भक्त इन गणेशजीको ककड़ीका नैवेद्य चढ़ाते हैं। इनका कोई मन्दिर नहीं बना; क्योंकि गणेशजीने सपनेमें आकर मन्दिर बनानेके लिये मना कर दिया था।

मंगलूर (कर्नाटक)—यहाँके 'शरऊ गणपति' कर्नाटक एवं केरल राज्योंमें जाग्रत् देवताके रूपमें प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि इस मूर्तिकी स्थापना एक तान्त्रिकने की थी। यहाँकी विशेष बात यह है कि यहाँपर कुडुम्बीलोग ही गण हवन करने आते हैं। गणेश चतुर्थीको यहाँ एक हजार नारियल फोड़े जाते हैं।

कासरगोड—केरलमें मद्रास मंगलोर रेल्वे लाइनपर कासरगोड स्टेशन है। यह स्थान पयस्विनी नदीपर है। श्रीसमर्थ स्वामी रामदास, पुरन्दरदास आदि सन्त इस स्थानपर आये और रहे थे। इस स्थानके पास ही मधुरे नामक स्थानपर श्रीमहागणपति मन्दिर है। कहते हैं, यह प्रतिमा स्वयं उद्भूत है। एक बार एक हरिजन स्त्री घासके मैदानमें घास काट रही थी। अचानक उसका हँसिया प्रतिमासे जा टकराया। उस समय गणपतिकी प्रतिमा ३×१½ इंच बाहर निकली हुई थी। हँसिया लगनेसे, कहते हैं कि उनके अङ्गसे रक्त बहने लगा। स्त्री अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गयी और उसने अन्य लोगोंको बुलाया। लोगोंने उसी समय वहाँपर भगवान्‌का गर्भगृह बना दिया और पूजा प्रारम्भ हो गयी। यह घटना आठ सौ वर्ष पुरानी कही जाती है। तबसे मूर्ति लगातार बढ़ती जाती है। अब वह १०×४½ इंचकी हो गयी है तथा उसने प्रायः समूचे गर्भ-गृहको ढक लिया है।

कर्नाटकमें कुमटाके स्वर्णेश-गणपति, अग्निहोत्र-गणपति और चिंतामणि-गणपति, शिरसीके महागणपति, सिद्धापुरके सिद्ध-गणपति और मधुरके मदनेश्वर सिद्धि विनायकका दर्शन भक्तोंको करना चाहिये। कर्नाटक प्रदेशके अंकोल, धर्मस्थल, मुंडाजे, कारकल, सेडी, कुणीगल, हलेविड, कडलेकाळु, बेलूर, मुलुर, शिगनी, अणेगुड्डे, तिरुनल्लूर, कोटमाड़ी, तंबट्टे, गिरकेमठ, लंपापुर, उरकेरी, हल्लरे, अमहार, बनवासी, शृङ्गेरी आदि स्थानोंके श्रीगणेश मन्दिर एवं विग्रह दर्शनीय हैं। भक्तोंको आन्ध्रप्रदेशके द्राक्षाराम तथा आसपासवाले मन्दिरकी गणपति प्रतिमाओंका भी दर्शन करना चाहिये।

रणथम्भौर--सवाई-माधोपुर स्टेशनसे दक्षिण-पूर्वकी ओर गिरि-शृङ्खलाओंसे घिरा भारतीय इतिहासमें सुप्रसिद्ध वीर हम्मीरका रणथम्भौर-दुर्ग पर्वतके ऊपर बना हुआ है । यहाँ लाखों निवासियोंके आराध्य 'सिद्धिदाता भगवान् गजानन'का सुप्रसिद्ध तीर्थ है । मुसलमानोंके बहुत दिनोंतक अधिकारमें रहनेके कारण प्राचीन मन्दिर तो नष्ट कर दिया गया, पर भगवान् गजाननके श्रीविग्रहकी केवल सूँड़मात्र ही पूर्णरूपसे अक्षुण्ण है । दोनों ओर ऋद्धि-सिद्धिकी परम मनोरम प्रतिमाएँ हाथोंमें चँवर लिये शोभित हैं । यह स्थान गणपतिका सिद्धपीठ है । मन्दिर आधुनिक है, पर बड़ा ही भव्य एवं दर्शनीय है । यहाँ सभी प्रकारके मङ्गल-अनुष्ठान और मनःकामनाएँ सिद्ध होती हैं । राजस्थानकी प्राचीन ख्यातों, वार्ताओं, शिलालेखों तथा ताम्रपत्रोंमें विक्रमकी छठी शताब्दीसे ही अनेक स्थानोंपर इनका भव्य वर्णन मिलता है । आषाढ़ और कार्तिक-मासोंमें खेतोंकी बुवाईके पूर्व यहाँका कृषकवर्ग गणपति नौतन (निमन्त्रण देने) के लिये सहस्रोंकी संख्यामें नित्य आता है । विवाह-शादियोंके समय तो गणेशजीको नौतनेवालोंका ताँता ही लगा रहता है ।

श्रीकेशवराय पाटण--यह स्थान कोटा-जंकशनसे पाँच मील दूर है । यहाँ चर्मण्वती (चम्बल) नदीमें विष्णुतीर्थ है । उसके तटपर भगवान् श्रीकेशवरायकी चतुर्भुज मूर्तिका मुख्य पीठ स्थित है । मुख्य मन्दिरके चारों ओर मण्डपमें कई देवताओंके मन्दिर हैं; उनमेंसे एक मन्दिर गणेशजी का भी है ।

उदयपुर--घाटेश्वर मन्दिरके बाहर तोरण-सदृश दो खम्भोंपर गणेशजी एवं नारदजीके मन्दिर हैं । ये मन्दिर मेवाड़की उत्कृष्ट शिल्पकृतिके नमूने हैं ।

चित्तौड़गढ़--गणेशपोलके पासकी एवं प्रत्येक द्वारपर अङ्कित गणपतिकी मूर्तियाँ दर्शकके मनको अकस्मात् मोह लेती हैं । जिस भूमिपर बार-बार सतियोंने अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये जीते-जी आगमें जलकर अपनी कञ्चन-सी कमनीय कायाको भस्मकर अपने नामको अमर कर दिया, वहाँ भी मङ्गलदाता गजाननकी कई मूर्तियाँ दर्शनीय हैं । उदयपुर शहरमें गणेशघाटीको गणेश-मूर्तियाँ एवं किलेके दरवाजोंपर अङ्कित मूर्तियाँ भी दर्शनीय हैं । शिव- भी गणपतिकी छोटी-बड़ी मूर्तियाँ देखनेयोग्य हैं ।

एकलिङ्गजी--उदयपुरसे नाथद्वारा जाते सम[य] हल्दीघाटी और एकलिङ्गजीका स्थान आता है । एक[लिङ्गजी] का मन्दिर विशाल है । ये मेवाड़के राजाओंके आ[राध्य] हैं । मन्दिरसे थोड़ी ही दूरपर इन्द्रसागर-नामक सा[गर] सरोवरके पास गणेशजीका एक मन्दिर है ।

गोगुन्दा (उदयपुर)--यहाँसे दो मीलकी [दूरीपर] गणेशजीका विग्रह स्थित है । यह मन्दिर बड़ा ही [...] है । यहाँपर वर्षमें एक बार गणेशचतुर्थीपर विशा[ल] [...] आयोजित किया जाता है ।

सोहागपुर--इसके पास ही भग्नावस्थामें एक शिव[...] है । मन्दिरके सभामण्डपके ऊपरी भाग (Brac[...]) पर उत्कीर्ण नृत्य करती हुई गणेशमूर्ति है । इस[के] छः हाथ हैं ।

शंकरगढ़—यहाँ अनेक मन्दिर हैं, जिनमें एक [...] नृत्यमुद्रामें एक षड्भुजी गणेश-मूर्ति है ।

जालोर—जालोर-दुर्गकी गणपतिकी मूर्तियाँ [...] हैं । मकरानेके पत्थरपर बनी हुई मूर्तियाँ देखकर म[न] नाच उठता है । प्राचीन कालकी स्थापत्य-कलाका [...] रूप यहाँके किलेमें दृष्टिगोचर होता है ।

नागौर—लगभग सातवीं शताब्दीमें बने न[...] दुर्गमें गणपतिकी विशाल मूर्ति दर्शनीय है । यद्य[पि] देखभालके अभावमें किलेकी मूर्तिका दृश्य इतना [...] नहीं रह गया है, तथापि यहाँ प्राचीन कालकी पूजाका [...] अवश्य दृष्टिगोचर होता है ।

भीलवाड़ा—यहाँ श्रीमूलचन्द्र धीयद्वारा [...] श्रीसिद्ध-गणेश मन्दिरके विग्रह विशेष दर्शनीय हैं ।

इसी प्रकार अलवर, कोटा, सिरोही, बाँसवाड़ा, डूँग[रपुर], प्रतापगढ़, बीकानेर, पुष्कर, अजमेर आदि स्थानोंमें भगवान् गणेशके स्व[...] हैं [...] मन्दिर अथवा श्री[...] राजस्थानियोंके श्री[...]

पंजाब-काश्मीरके गणेश-स्थल

पटियाला (पंजाब)—श्रीनैनादेवीजी, श्रीगौरीदेवीजी, नारायणजी आदिके मन्दिरोंमें श्रीगणेशकी सुन्दर प्रतिष्ठित है।

अचलेश्वर—अमृतसर-पठानकोट लाइनमें बटाला से चार मीलपर यह स्थान है। यह स्थान भगवान् श्री-की लीलास्थली रह चुकी है। मन्दिरके समीप एक सुविस्तृत र है। यहाँ मुख्य मन्दिरमें शिवलिङ्ग तथा स्वामि-की मूर्ति है। उत्तर भारतमें स्वामिकार्तिकका यह एक न्दिर है। कहा जाता है कि एक बार पारस्परिक श्रेष्ठताको गणेशजी तथा स्वामिकार्तिकमें विवाद हो गया। भगवान् ने इन लोगोंसे पृथ्वी प्रदक्षिणा करके श्रेष्ठताका निर्णय कर निर्देश दिया। इसपर गणेशजीने माता पिताकी ही मा कर ली और वे ही विजयी माने गये। पृथ्वी-परिक्रमा-कले स्वामिकार्तिकको मार्गमें जब यह समाचार मिला तो ने अपनी आगेकी यात्रा व्यर्थ समझी और वे यहीं रूपमें समाधिमें स्थित हो गये। पीछे भगवान् शिव जीके साथ यहीं उनसे मिलने आये।

वैजनाथ (काँगड़ा)—वैजनाथके यहाँके प्रसिद्ध एक शिव-मन्दिरमें अवस्थित हैं। इनके हाथोंमें वे ही आयुध हैं, जिनका वर्णन श्रीशानदेवने अपने ग्रन्थ भावार्थ-दीपिकामें किया है।

गणेशबल (काश्मीर)—यहाँ गणेशजीके रूपमें पूजित एक विशाल स्वयम्भू-शिला है।

हरिपर्वत—यह स्थान श्रीनगर (काश्मीर)के पास है। यहाँ गणपतिका विग्रह एक टीलेके नीचे है। इनका नाम 'भीमस्वामी' है। इसमें गणेशजीका मस्तक स्पष्ट दीखता है।

गणेशघाटी—यहाँ एक अति प्रसिद्ध स्वयम्भू-गणेश-मूर्ति है। यहाँ प्रकृतिके प्रभावसे एक चट्टानका आकार गणेशजी-जैसा हो गया है, जिसमें उनकी सूँड़ लटकी दीखती है।

अमरनाथ—यहाँ जो बर्फके लिङ्ग बनते हैं, उनमें एकको 'पार्वती' एवं दूसरेको 'गणेश' कहा जाता है।

नेपालके गणेश-स्थल

जनकपुर—जनकपुरमें विशेष प्रख्यात दो मन्दिर एक टीकमगढ़की रानीका बनवाया हुआ जानकीजीका -मन्दिर तथा दूसरा नेपाल-नरेशका बनवाया हुआ शिखरवाला राम-मन्दिर। इसी राम-मन्दिरके घेरेमें जीकी भी सिद्ध प्रतिमा है।

फुलहर—जनकपुरसे दस मील दक्षिण यह स्थान है। जानकी-रामका प्रथम दर्शन पुष्पवाटिकामें हुआ था सीताने गिरिजाकी स्तुति भी की थी। इसी स्थानपर जीका भी विग्रह है।

भाटगाँव—यह काठमाण्डूसे आठ मीलकी दूरीपर और प्राचीन मेवाड़-राजवंशकी तीन राजधानियोंमेंसे एक है। यहाँ देवी भवानी आदि कई दूसरे मन्दिर भी बड़े आकर्षक हैं। यहाँका सूर्यविनायक गणेशका मन्दिर अत्यन्त भव्य है। मन्दिरके समक्ष एक स्तूप है, जिसके शिखर कमल बना है। कमलके ऊपर गणेशजीका वाहन मूषक है। इसकी बायीं ओर घंटा है, जिसके सामने कई छुद्र घण्टिकाएँ हैं।

गोरखा—पश्चिम नेपालके इस स्थानपर गुरु गोरखनाथजीका एक विशाल मन्दिर है। इसके पास ही गणेशजीका मन्दिर है, जो बड़ा प्रसिद्ध है। नेपालके प्रसिद्ध गणपतियोंमेंसे ये एक माने जाते हैं। इन्हें 'विजय गणपति' या 'आनन्द-गणेश' भी कहते हैं।

रणथम्भौर--सवाई-माधोपुर स्टेशनसे दक्षिण-पूर्वकी ओर गिरि-शृङ्खलाओंसे घिरा भारतीय इतिहासमें सुप्रसिद्ध वीर हम्मीरका रणथम्भौर-दुर्ग पर्वतके ऊपर बना हुआ है। यहाँ लाखों निवासियोंके आराध्य 'सिद्धिदाता भगवान् गजानन'का सुप्रसिद्ध तीर्थ है। मुसल्मानोंके बहुत दिनोंतक अधिकारमें रहनेके कारण प्राचीन मन्दिर तो नष्ट कर दिया गया, पर भगवान् गजाननके श्रीविग्रहकी केवल सूँड़मात्र ही पूर्णरूपसे अक्षुण्ण है। दोनों ओर ऋद्धि सिद्धिकी परम मनोरम प्रतिमाएँ हाथोंमें चँवर लिये शोभित हैं। यह स्थान गणपतिका सिद्धपीठ है। मन्दिर आधुनिक है, पर बड़ा ही भव्य एवं दर्शनीय है। यहाँ सभी प्रकारके मङ्गल-अनुष्ठान और मनःकामनाएँ सिद्ध होती हैं। राजस्थानकी प्राचीन ख्यातों, वार्ताओं, शिलालेखों तथा ताम्रपत्रोंमें विक्रमकी छठी शताब्दीसे ही अनेक स्थानोंपर इनका भव्य वर्णन मिलता है। आषाढ़ और कार्तिक मासोंमें खेतोंकी बुवाईके पूर्व यहाँका कृषकवर्ग गणपति नौतन (निमन्त्रण देने) के लिये सहस्रोंकी संख्यामें नित्य आता है। विवाह शादियोंके समय तो गणेशजीको नौतनेवालोंका ताँता ही लगा रहता है।

श्रीकेशवराय पाटण--यह स्थान कोटा-जंक्शनसे पाँच मील दूर है। यहाँ चर्मण्वती (चम्बल) नदीमें विष्णुतीर्थ है। उसके तटपर भगवान् श्रीकेशवरायकी चतुर्भुज मूर्तिका मुख्य पीठ स्थित है। मुख्य मन्दिरके चारों ओर मण्डपमें कई देवताओंके मन्दिर हैं; उनमेंसे एक मन्दिर गणेशजी-का भी है।

उदयपुर--घाटेश्वर मन्दिरके बाहर तोरण-सदृश दो खम्भोंपर गणेशजी एव नारदजीके मन्दिर हैं। ये मन्दिर मेवाड़की उत्कृष्ट शिल्पकृतिके नमूने हैं।

चित्तौड़गढ़--गणेशपोलके पासकी एवं प्रत्येक द्वारपर अङ्कित गणपतिकी मूर्तियाँ दर्शकके मनको अकस्मात् मोह लेती हैं। जिस भूमिपर बार-बार सतियोंने अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये जीते-जी आगमें जलकर अपनी कञ्चन-सी कमनीय कायाको भस्मकर अपने नामको अमर कर दिया, वहाँ भी मङ्गलदाता गजाननकी कई मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। उदयपुर शहरमें गणेशघाटीकी गणेश मूर्तियाँ एवं किलेके दरवाजोंपर अङ्कित मूर्तियाँ भी दर्शनीय हैं। चित्-
भी गणपतिकी छोटी-बड़ी मूर्तियाँ देखनेयोग्य हैं।

एकलिङ्गजी--उदयपुरसे नाथद्वारा जाते समय हल्दीघाटी और एकलिङ्गजीका स्थान आता है। एक
का मन्दिर विशाल है। ये मेवाड़के राजाओंके आ
हैं। मन्दिरसे थोड़ी ही दूरपर इन्द्रसागर-नामक स
सरोवरके पास गणेशजीका एक मन्दिर है।

गोगुन्दा (उदयपुर)--यहाँसे दो मीलकी
गणेशजीका विग्रह स्थित है। यह मन्दिर बड़ा ह
है। यहाँपर वर्षमें एक बार गणेशचतुर्थीपर विशा
आयोजित किया जाता है।

सोहागपुर--इसके पास ही भग्नावस्थामें एक शिव
है। मन्दिरके सभामण्डपके ऊपरी भाग (Bra
पर उत्कीर्ण नृत्य करती हुई गणेशमूर्ति है। इस
छः हाथ हैं।

शंकरगढ़—यहाँ अनेक मन्दिर हैं, जिनमें एक
नृत्यमुद्रामें एक षड्भुजी गणेश-मूर्ति है।

जालोर—जालोर-दुर्गकी गणपतिकी मूर्तियाँ
हैं। मकरानेके पत्थरपर बनी हुई मूर्तियाँ देखकर म
नाच उठता है। प्राचीन कालकी स्थापत्य-कला
रूप यहाँके किलेमें दृष्टिगोचर होता है।

नागौर—लगभग सातवीं शताब्दीमें बने
दुर्गमें गणपतिकी विशाल मूर्ति दर्शनीय है। प
देखभालके अभावमें किलेकी मूर्तिका हृदय इतना
नहीं रह गया है, तथापि यहाँ प्राचीन कालकी पूजा
अवश्य दृष्टिगोचर होता है।

भीलवाड़ा—यहाँ श्रीमूलचन्द्र
श्रीसिद्ध-गणेश मन्दिरके विग्रह

इसी प्रकार अल्वर, कोटा,
प्रतापगढ़, बीकानेर, पुष्कर,
भगवान् गणेशके स्वतन्त्र मन्दिर
मन्दिर अथवा श्रीशिव-मन्दिरके
राजस्थानियोंके मध्य (चाहे
श्रीगणेशकी बड़ी मान्यता है।

बिहार-प्रान्तके गणेश-स्थल

बिहारशरीफ—यहाँके बड़े मन्दिरमें अन्य देवी-देवताओंके साथ भगवान् गणेशकी संगमर्मरकी बनी हुई एक आकर्षक प्रतिमा है। यहाँका दूसरा मन्दिर चँदियाहा-गणेशजीका है। यद्यपि इस मन्दिरकी प्रतिमा कई बार चोरी गयी, तथापि श्रद्धालु भक्तोंने हर बार नव-निर्मित प्रतिमा स्थापित करवायी। यह जनताकी श्रद्धाका द्योतक है।

सोहसराय—यहाँ बुढ़वा-गणेशजीका एक भग्न मन्दिर है। यहाँ मेला भी लगा करता है। यहाँका दूसरा मन्दिर जवनका गणेशजीका है, जो कई सौ वर्ष पुराना है।

गया—श्रीरामशिलाके समीप भगवान् श्रीगणेशका अति मनोहर मन्दिर है। यहाँका श्रीविग्रह अतीव भव्य और सौन्दर्यपूर्ण होनेके कारण दर्शकोंको अपनी ओर आकृष्ट करता रहता है।

गणेश-स्थान, मौंझा—हथुआ रेल्वे स्टेशनसे तीन मील दूर यह श्रीगणेशजीका एक स्वतन्त्र मन्दिर है, जो हथुआनरेश श्रीकृष्णप्रताप शाहीका बनवाया हुआ है। यहाँ मेला भी लगता है।

यड़का-गाँव—सीवानसे तीन मीलकी दूरीपर स्थित इस ग्राममें श्रीगणेशजीका एक स्वतन्त्र मन्दिर है। यहाँ दूर-दूरसे दर्शनार्थी आते हैं।

यडरम—यह ग्राम सीवानसे दक्षिण-पूर्वके कोनेपर लगभग दो मीलपर है। यहाँ श्रीगणेशजीके विशाल एवं प्राचीन मन्दिरके भग्नावशेष हैं। यहाँ श्रीगणेशजीकी विशाल काले पत्थरकी बनी हुई एक प्राचीन मूर्ति है।

बेदौल—मुजफ्फरपुरसे सत्रह मीलपर जनाद् बेदौल-नामक ग्रामसे दक्षिण ओर एक सरोवर है। उस सरोवरसे आजसे लगभग सौ वर्ष पूर्व बहुत सी गुप्तकालीन मूर्तियाँ—शंकर, नारायण एवं शेषशायीकी निकली हैं। उन्हींमें एक भव्य प्रतिमा गणेशजीकी भी है।

देकुली—सीतामढ़ीसे बारह मीलपर भुवनेश्वरनाथ महादेवका स्थान है। यहाँपर एक मन्दिर स्थूलकाय गणेशजीका भी है।

कन्होली गजपति—सीतामढ़ीसे बारह ... गाँवमें एक ब्राह्मणके यहाँ २५० वर्ष ... गणेश-विग्रह है, जो अत्यन्त मनोहारी ...

पुनौरा—यह स्थान सीतामढ़ीसे ... कुछ लोगोंकी मान्यताके अनुसार यहीं भूमि ... हुई थीं। यहाँ श्रीमहादेव-मन्दिरमें एक भ...

राजनगर—यहाँ गणेशजीका एक अत्यन्त मनोरम, भव्य एवं विशाल मन्दिर है, जिसे दरभंगा-नरेश-रामेश्वर सिंहने बनवाया है। पासमें ही एक सरोवर भी है। य... दरभंगा जयनगर लाइनमें पड़ता है। यहाँ स्टेशन भी है।

वासुकिनाथ—वैद्यनाथधामसे अट्ठाईस मीलकी दूरीपर वासुकिनाथ महादेव हैं। यहाँपर श्रीगणेशजीका ... भव्य विग्रह है। बिहारमें वैद्यनाथधामके बाद वासुकिनाथकी ही अधिक प्रसिद्धि है।

सीतामढ़ी—रक्सौल-दरभंगा रेल्वे लाइनपर सीतामढ़ी स्टेशन है, जहाँ भगवती सीताका प्राकट्य हुआ था। यहाँ एक घेरेके भीतर श्रीसीताजीका मन्दिर है। मुख्य मन्दिरके पास श्रीगणेशजीका मन्दिर है।

अजगैबीनाथ—हवड़ा क्यूल लाइनपर भागलपुर जंक्शनसे पंद्रह मील दूर सुल्तानगंज स्टेशन है। स्टेशनसे थोड़ी दूर उत्तर जहाँगीरा गाँवके पास गङ्गाजीकी बीच धारामें एक चट्टानपर 'अजगैबीनाथ'-महादेवका मन्दिर है। कहा जाता है कि यहीं जह्नुमुनिका आश्रम था। आस पास और भी कई पुराने मन्दिर हैं। एक ओर चट्टानपर काटकर गणेश, सूर्य, विष्णुभगवान्, देवी तथा हनुमान्जी आदिकी मूर्तियाँ बनायी गयी हैं।

वैद्यनाथधाम—यह हवड़ा पटना लाइनपर जसीडीह स्टेशनके पास है। श्रीवैद्यनाथ शिव द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमेंसे एक हैं। श्रीवैद्यनाथ-मन्दिरके घेरेमें ही अनेक मन्दिर हैं, जिनमें एक मन्दिर भगवान् श्रीगणेशका भी है।

श्रीमहादेव सिमरिया—यह स्थान क्यूल-गया लाइनपर स्थित शेखपुरा स्टेशनके पास है। इस स्थानपर धनेश्वरनाथ महादेवका विशाल मन्दिर है। मुख्य मन्दिरके अतिरिक्त यहाँ श्रीगणेशजीका भी एक प्रसिद्ध स्थान है।

... बौद्ध तीर्थस्थल है। यहाँ ... मन्दिर है। इनके सिवा ... श्रीगणेश-

उत्कल-प्रदेशके श्रीगणेश-सम्बन्धी तीर्थ, मन्दिर एवं प्रतिमाएँ

प्राचीनकालसे उत्कल-प्रदेश धर्मक्षेत्रके रूपमें प्रख्यात रहा है। उस प्रदेशमें धर्मक्षेत्रोंके पाँच प्रसिद्ध क्षेत्र हैं। भुवनेश्वर शैवक्षेत्र, पुरी वैष्णवक्षेत्र, कोणार्क सौरक्षेत्र, याजपुर (विरजा) शाक्तक्षेत्र एवं महाविनायक गाणपत्यक्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध है। इस प्रकार पाँच प्रसिद्ध क्षेत्रोंसे समन्वित होनेका महान् गौरव उत्कल-प्रदेशको प्राप्त है।

महाविनायकक्षेत्र कटक जिलेमें हरिदासपुर स्टेशनसे चार मीलकी दूरीपर अवस्थित है। यहाँ महाविनायकका भव्य मन्दिर एवं तीर्थ है। कहा जाता है कि जब रावण कैलासपर्वत सपरिवार भगवान् शंकरको उठाकर लङ्का ले जा रहा था, तब भगवान् शंकर यहाँ कुछ देर विश्राम-के लिये रुके थे। यहाँ महाविनायकका मन्दिर एवं क्षेत्र होनेके कारण यह स्थान 'महाविनायक'-नामसे ही प्रसिद्ध हो गया है।

श्रीजगन्नाथपुरी—यह भारतके चार प्रधान धामोंमेंसे एक है। श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें कई गणेश-विग्रह हैं, जो इस प्रकार हैं—

(क) कर्णाटक-गणपति—जगन्नाथ-मन्दिरके अन्तर्गृहके पश्चिमके प्रवेश-पथमें एक रमणीय मन्दिरके अंदर श्रीकर्णाटक-गणेशजीकी मूर्ति विराजमान है। ये गणेशजी 'उच्छिष्टगणेश' अथवा 'भण्ड-गणपति'के नामसे प्रसिद्ध हैं। इनकी स्थापना प्रतापी राजा पुरुषोत्तम देव गजपतिने सम्भवतः ५०० वर्ष पूर्व कर्णाटक विजयके प्रतीकके रूपमें की थी।

(ख) नृत्यगणपति—श्रीजगन्नाथ मन्दिरके प्राङ्गणमें माता विमलादेवीजीके मन्दिरके सामने सुरम्य मन्दिरमें रमणीय नृत्यगणेशजीकी मूर्ति विराजमान है। ऐसी मान्यता है कि राजा अनङ्ग भीमदेव इस सुंदर गणेश प्रतिमाके प्रतिष्ठाता हैं।

(ग) कल्पगणपति—श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके प्राचीनतम कल्प-वृक्षके नीचे कल्प-गणपतिजी स्वतन्त्र मन्दिरमें विराजमान हैं। स्वयं ब्रह्माजीने इन गणेशभगवान्के पूजनोपरान्त भगवान् श्रीजगन्नाथके दर्शन किये थे।

(घ) चारगणपति—१०४० ई०के लगभग श्रीअनन्तवर्म चोडगंगदेवने जगन्नाथपुरीके मन्दिरको दूसरे ढंगसे बनवाना शुरू किया और उसी दिन उन्होंने चारगणपति-विग्रहकी स्थापना की। यहाँ ज्येष्ठ पूर्णिमाको विशेष उत्सव होता है। इस दिन श्रीजगन्नाथजी, सुभद्रा तथा बलरामजीको स्नान कराया जाता है। ये श्रीविग्रह स्नानमण्डपमें ले जाये जाते हैं। वहाँ उन्हें कलशोंके जलसे स्नान कराया जाता है। स्नानके पश्चात् स्ना... गणेशवेशमें शृङ्गार होता है। कहा जाता है कि इस प्र... श्रीजगन्नाथजीने एक गणेश भक्तको गणेशरूपमें ... दिया था। इसके पश्चात् पंद्रह दिनोंतक मन्दिर बंद रह...

(ङ) पञ्च-विनायक—पुरी नगरके उत्तरमें हनुमान्जीके मन्दिरमें पञ्चमस्तक-विशिष्ट गणेशजीका विग्रह है, जो आद्य शंकराचार्यद्वारा स्थापित है।

(च) मणिकर्णिका-गणेश—पुरीके कपालमो... महादेवजीके सामने मणिकर्णिका-कुण्ड तथा मणिक... गणेशजीके अति मनोरम विग्रह स्वतन्त्र मन्दिरोंमें विरा... हैं। यहाँका पूजा विधान अथर्ववेदीय गणेशक... अनुसार होता है।

पुरीमें 'सिद्धविनायक'का प्रसिद्ध मन्दिर भी ..., जिसमें सिद्धविनायककी लगभग आठ फीट ऊँची दर्श... मूर्ति है।

पुरीके निकट ही उत्कल-प्रदेशकी वर्तमान राजधा... भुवनेश्वर है, जो कभी मन्दिरोंके नगरके रूपमें प्रसिद्ध ... है। इस नगरके प्राचीन भागमें तथा उसके आसपा... अनेकों मन्दिर एवं प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेष है... भुवनेश्वरके सभी मन्दिरोंमें पार्श्वदेवताके रूपमें गणेशजीक... विविध प्रतिमाएँ मिलती हैं। यहाँके प्रसिद्ध लिङ्गराज-मन्दि... (११वीं शताब्दी ई०)में सिंहद्वारसे प्रवेश करते ... सबसे पहले भगवान् गणेशकी लगभग दस फीट ऊँच... विशालकाय प्रतिमाके दर्शन होते हैं। मूर्तिकला, स्थापत्यकला... केशविन्यास, अलंकरण आदिकी दृष्टिसे यह भुवनेश्वर प्रतिम... शिल्पका सुन्दर नमूना है। ध्यानमन्त्रके अनुसार य... मूर्ति 'कपिलगणपति'की है, परंतु यह 'एकाम्रगणपति'के नाम-से प्रसिद्ध है। श्रीगणेशकी बिल्कुल ऐसी ही एक विशाल... मूर्ति भारतीमठके गणपति-मन्दिरमें भी है। भुवनेश्वरसे... कुछ दूर धौली-पहाड़ीके नीचे स्थित गणेश-मन्दिरकी प्रतिमा... आकार-प्रकार-शिल्पादिमें लिङ्गराज-मन्दिरमें स्थित श्रीगणेश-प्रतिमाके समान ही है। भुवनेश्वरकी पश्चिम दिशामें लगभग पाँच मीलकी दूरीपर उदयगिरि-नामक दर्शनीय

। यहाँ जैनधर्मसे सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण पर्वतीय गुफाएँ भी हैं। उन्हींमें एक गणेश-गुम्फा भी है। इस गुफाके अंदर दीवारमें गणेशकी सुन्दर मूर्ति उट्टङ्कित है।

भुवनेश्वरमें मुक्तेश्वरका बालुका-प्रस्तरसे निर्मित मन्दिर अत्यन्त सुन्दर है एवं भारतके अत्यन्त प्राचीन तीन मन्दिरोंमें इसकी गणना होती है। इसका निर्माण सन् ८०० एवं १०६० ई० के बीच हुआ। इस मन्दिरमें नृत्यगणेशकी दशभुज मूर्ति है। इस नृत्यमुद्रामें गणेश सबसे ऊपरके दो हाथोंमें सिरके ऊपर सर्पको पकड़े हुए हैं। शेष छः हाथोंमेंसे दो हाथ अब गायब हैं। अवशिष्ट चार हाथोंमें मोदक, कुठार, भग्न-गजदन्त एवं कमल हैं। इस प्रतिमाकी बायीं ओर एक सेवक खड़ा हुआ मँजीरा (झाँझ) बजा रहा है तथा दायीं ओर खड़ा दूसरा सेवक अङ्कुश-मृदङ्गपर थाप दे रहा है।

परमेश्वर-मन्दिर (६५०ई०) की गणना भुवनेश्वरके अति प्राचीन मन्दिरोंमें होती है। यह अतिशय अलंकृत-शैलीमें निर्मित सुन्दर मन्दिर है। इसकी दीवारोंके आलेमें भिन्न-भिन्न देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ हैं। ऐसे ही एक आलेमें शिव-पार्वतीके साथ गणेशकी सुन्दर छोटी सी मूर्ति है। यह मूर्ति देवीवाहन सिंह एवं शिववाहन वृषके मध्यमें स्थित है। इसी मन्दिरके जगमोहनमें शिवचरितके दृश्य प्रतिमा-शैलीमें अङ्कित हैं। एक दृश्य है—रावणद्वारा शिव-परिवारको कैलाससहित उठाकर ले जानेका। उस दृश्यमें कुठार उठाये हुए आतङ्कित गणेशका अङ्कन हुआ है। उसी मन्दिरकी चारदीवारीकी पूर्व दिशाकी दीवारमें शिव-विवाहका दृश्य अङ्कित है। उस प्रतिमा-दृश्यमें शिवकी दाहिनी ओर अग्निदेव दोनों ओर ज्वाला उगलते हुए बैठे हैं तथा अग्निके नीचे गणेशकी लघुकाय प्रतिमा है।

भुवनेश्वरके शैव-मन्दिरोंमें नटराज शंकरकी अनेक प्रतिमाएँ हैं। प्रत्येक नटराज प्रतिमाके साथ उसकी दाहिनी ओर गणेशकी प्रतिमा है। मुक्तेश्वर-मन्दिरके प्राङ्गणमें संस्थापित नटराजकी विशाल प्रतिमा विशेषरूपसे अवलोकनीय है। इन प्रतिमाओंके साथ गणेश दाहिने हाथमें मूलकन्द एवं बायें हाथमें मोदकपात्र (जिसपर गजाननका ... टिका हुआ है) धारण किये हुए दिखाये गये हैं। परमेश्वर-मन्दिर-वर्गकी नटराज प्रतिमाओंके साथ गणेशकी प्रतिमा नहीं है।

परशुरामेश्वरके ...
की दीवारोंके आलेमें ...
प्रतिमा मिलती है। यहाँ गणेशके हाथोंमें ...
अक्षमाला एवं मूलक कन्द है। प्रतिमा मूषकरहित है। ...
मन्दिरमें गणेश प्रतिमाके नीचे आधारपर स्थित पूजापात्रमें दो कटहल, मोदक एवं मध्यमें पुष्प रखे हुए हैं।

... ऊपरी भाग (करगहना) इसपर सजावटके लिये ... एवं तपस्वीगण गणेशको प्रणाम ... आते हुए दिखाये गये हैं।

गणेशके मन्दिर एवं तीर्थ उड़ीसामें प्रायः सर्वत्र ही मिल जाते हैं, जिनमेंसे कुछका परिचय दिया जा रहा है—

नरगुआ—पुरी जिलेके काकटपुर थानाके पास नरगुआ नामक ग्रामके मन्दिरमें भोगद-गणेशकी विचित्र मूर्ति पूजित होती थी। किंतु सम्प्रति वहाँ एक हाथीकी मूर्ति पूजित होती है। साथ ही पूजाके समय भोगद-गणनाथका ध्यान भी किया जाता है।

गोप—यह स्थान पुरीसे कुछ दूर है। ऐतिहासिक तथ्योंसे विदित होता है कि राजा भानुदेवने अपने पुरोहित वामदेव-याजिसे एक महागाणपत्य-यज्ञ करवाया था। यज्ञकी समाप्तिके बाद यहाँ ब्राह्मणोंको गणेशभगवान्‌की खदिरकाष्ठकी मूर्ति दानमें दी थी। यहाँ खदिर-गणपतिकी पूजा प्रचलित है।

कटक—यहाँ नगरकी कालीगलीके पास वरद-गणनायकके नामपर एक मुहल्ला और मन्दिर है, जिसमें गणेशजीकी प्राचीन मूर्ति विराजित है। महाराष्ट्र-शासनकालमें श्रीरघुजी भोंसलेने इनकी सेवा-पूजाके लिये जमीन तथा अर्थकी व्यवस्था की थी।

गणेश-घाट-गणेश—प्राचीन कालमें कटकके श्रीनगरकी रक्षाके लिये मर्कटकेसरीद्वारा काठयोड़ि नदीपर प्रस्तर-बाँधका निर्माण हुआ था। उक्त महान् बाँधके निर्माणमें विघ्न-विनाशके लिये वहाँ श्रीगणेशजीकी मूर्ति स्थापित हुई थी और गणेश-घाट भी बनवाया गया था।

महाविणा पर्वत—यहाँ उत्कल प्रान्तका प्रधान गाणपत्य-पीठ है। यह स्थान कटक जिलेमें ... पर्वतमालान्तर्गत है। यहाँपर महाविनायक श्रीगणेशजीका सुन्दर मन्दिर है। मूर्तिकी सेवा-पूजा उड्डामरतन्त्र-महातन्त्रके अनुसार होती है।

गुहा-गणपति—उत्कलके उदयाचल-पर्वतमें प्राचीनतम गुहा-मन्दिर विद्यमान हैं। वहाँकी गणेश-गुम्फा अति प्राचीन है। इसमें गाणपत्य-सम्प्रदायकी प्राचीन गणेशमूर्तियाँ प्रतिष्ठित थीं; किंतु सम्प्रति ये मूर्तियाँ हटा दी गयी हैं।

याजपुर—हवड़ा-वाल्टेयर लाइनपर कटकसे चौवालीस मील पहले ही याजपुर क्योंझर-रोड स्टेशन है। याजपुर नाभि-गया-क्षेत्र माना जाता है। यहाँ श्राद्ध-तर्पण आदिका महत्त्व है। कहते हैं कि यहाँ पहले ब्रह्माजीने यज्ञ किया था। यहाँ वैतरणी-नदीके घाटपर मन्दिर हैं। इनमेंसे एक मन्दिरमें श्रीगणेशजीकी सुन्दर मूर्ति है।

धेनकानल जिलेमें 'कपिलास'-नामक स्थानमें श्रीगणेशका सुन्दर महिमाशाली मन्दिर है। बहरामपुर जिलेमें बहरामपुरसे दक्षिण दिशामें ७८ मीलकी दूरीपर 'पद्मम' नामक महत्त्व-पूर्ण गणेशतीर्थ है। यहाँके मन्दिरकी गणपति-प्रतिमा 'पद्मम गणेश' के नामसे प्रसिद्ध है। कोरापुट जिलेमें कोरापुटसे दक्षिण दिशामें लगभग २८ मीलकी दूरीपर नन्दपुर-नामक रमणीय पर्वतीय स्थान है। यहाँ केवल एक कृष्ण-प्रस्तर-खण्डसे निर्मित गणेशकी लगभग दस फीट ऊँची विशालकाय प्रतिमा एवं भव्य मन्दिर है। कहते हैं कि इस मूर्तिकी प्रतिष्ठापना चन्द्रगुप्त विक्रमार्कके द्वारा हुई थी। गणेश-जन्म-चतुर्थीके दिन यहाँ भारी मेला लगता है। इसी प्रकारका एक अन्य प्रसिद्ध गणेशस्थान है—'ओणकाडेल'। यह कोरापुटसे ९५ मीलकी दूरीपर जयपुर-न्यभतापाट मार्गपर स्थित है। माघ-मासकी चतुर्थीको यहाँ विशेष पूजा-समारोह होता है।

गणेश प्रतिमाका निर्माण भुवनेश्वर-प्रतिमा शिल्पका एक प्रिय विषय रहा है। विभिन्न युगोंमें भुवनेश्वरके मन्दिरोंमें गणेशकी नाना प्रकारकी प्रतिमाओंका निर्माण हुआ है, जो शिल्पकला, संस्कृति एवं धर्मके विकासके विविध चरणोंका संकेत करती हैं। भुवनेश्वरकी गणेश प्रतिमाओंकी जो विशेषताएँ हैं, वे ही उड़ीसा एवं उत्तर-भारतके अन्य भागोंमें उपलब्ध गणपति प्रतिमाओंमें भी मिलती हैं।

भुवनेश्वरकी गणेश प्रतिमाओंको मुख्यरूपसे दो वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता है। एक वर्ग तो गणेशके प्रसिद्ध वाहन मूषकसे रहित प्रतिमाओंका है, जिनके ऊर्ध्व दक्षिणहस्त-में मूलक-कन्द है तथा दूसरा वर्ग मूषकसहित प्रतिमाओंका। इस वर्गकी प्रतिमाओंके दाहिने ऊर्ध्वहस्तमें मूलक-कन्दके स्थानपर भग्न-गजदन्त है। ये दोनों वर्ग संस्कृति एवं शिल्पकी

मध्यवर्ती कालका भी है, जिस वर्गकी प्रतिमाओंमें विशेषता तो प्रथम वर्गकी ही हैं, परंतु साथमें मूषक भी है। ऐ प्रतिमाएँ संख्यामें बहुत कम हैं।

प्रथमवर्गकी मूषकरहित सभी प्रतिमाएँ बैठी हु स्थितिमें, आसनस्थ मुद्रामें हैं। शायद ही इस वर्गकी को प्रतिमा खड़ी हुई स्थितिमें मिले। इस वर्गके चतुर्भुज गणे के हाथोंमें मूलक-कन्द, जपमाला, उठा हुआ कुठार अ मोदकपात्र है। इनमें सर्पको कमरबंद एवं यज्ञोपवीतके रू धारण किया गया है। इन मूर्तियोंके सिरपर जटा-मुकुट न है। प्रतिमाके नीचे आधार-प्रस्तर या तो सादा है या उस नीचे तिपाई निर्मित है, जिसपर पूजापात्रमें फल-फूल रखे हु हैं एवं जिसके दोनों ओर दो सिंह एक दूसरेकी ओर देख हुए स्थित हैं। मूषकका अभाव इन मूर्तियोंकी विशेषता है ये मूर्तियाँ गणेशकी प्राचीनतम मूर्तियाँ हैं, जिनका निर्मा लगभग छठी-सातवीं शताब्दीमें हुआ है। बृहत्संहिता प्रतिमाध्यायमें गणपति-मूर्तिकी इन्हीं विशेषताओंका उल्लेख मिलता है।

इस वर्गकी मूर्तियोंके दो उपभेद हो सकते हैं। एक भेद तो प्रतिमामें गजाननकी सूँड़के दायीं या बायीं ओर मुड़े हुए होनेपर निर्भर है एवं दूसरा भेद प्रतिमाके सिरपर जटा-मुकुट होने एवं प्रतिमाधारपर रखे पूजापात्रमें एक या दो कटहलके फलोंके होनेके कारण है।

दूसरे वर्गकी सभी प्रतिमाएँ खड़ी हुई मुद्रामें निर्मित हैं एवं उन सबके साथ मूषक अवश्य है। इन प्रतिमाओंके ऊपरके दाहिने हाथमें भग्न-गजदन्त है तथा नीचेके दाहिने हाथमें जपमाला। दूसरी ओर ऊपरके बायें हाथमें मोदक-पात्र है, जिसपर सूँड़ स्थापित है एवं नीचेके वामहस्तमें कुठार है। सर्प यज्ञोपवीतके रूपमें है। सिरपर जटा-मुकुट है। प्रतिमाका आधार प्रस्तर पूर्ण विकसित कमलके रूपमें है। मूषक या तो देवमूर्तिके एक ओर है या आधारप्रस्तरपर देवताके चरणोंके नीचे।

प्रथमवर्गकी मूषकरहित गणेश प्रतिमाएँ सातवीं आठवीं शताब्दी ईस्वीयुगके परशुरामेश्वर, वैताल तथा शिशिरेश्वरके मन्दिरोंमें मिलती हैं। उनके अतिरिक्त ये इनसे प्राचीनकालके भरतेश्वर, स्वर्णजालेश्वर, मार्कण्डेश्वर, मोहिनी एवं बहिरंगेश्वर आदि मन्दिरोंमें भी पायी जाती हैं। प्राचीन कालके मन्दिरोंके भग्न होनेके कारण इस वर्गकी प्रतिमा-भुवनेश्वरकी प्राचीन मूर्तिकलाका रूप ... उत्तरेश्वर, शिवराज एवं यमेश्वरके उ...

छप्पन विनायकोंमें सुप्रसिद्ध देहलीविनायकका मन्दिर वाराणसी-नगरसे १२-१३ मील पश्चिम तथा रामेश्वरसे डेढ़-दो मील दक्षिण पञ्चकोशी-मार्गमें काशीके पश्चिमद्वार देहलीविनायक-नामक तीर्थस्थानपर स्थित है। देहलीविनायक-मन्दिरका निर्माण लेखपट्टके आधारपर संवत् १८४८ ज्ञात होता है; किंतु मन्दिर विग्रहकी स्थापना पुरानी है। इस मन्दिर-की ऊँचाई ४५-५० फीट है। प्रवेशके लिये उत्तर, दक्षिण और पूर्व दिशामें कुल तीन द्वार हैं। मुख्य प्रवेशद्वार उत्तर-दिशामें है, जिसपर 'देहलीविनायक—काशीखण्ड' नामका शिलालेख लगा है। देहलीविनायक-मन्दिरका भीतरी कक्ष लगभग ११ फीट लंबा, ११ फीट चौड़ा वर्गाकार है। इस कक्षमें पश्चिमकी दीवारमें ३ फीट ऊँची गणेशकी प्रतिमा स्थापित है। यह मूर्ति गणेश-वाहन चूहेपर स्थापित की गयी है चतुर्भुज गणेशके चारों हाथोंमें चार वस्तुएँ दिखायी पड़ती हैं। एक हाथमें वे शस्त्र और दूसरे हाथमें शस्त्र धारण किये हुए हैं। तीसरे हाथमें वे फल लिये हुए प्रतीत होते हैं और उनके चौथे हाथमें एक लड्डू है, जिसे पकड़कर वे खानेकी मुद्रामें इङ्गित होते हैं। पूर्वै अति भेद है। इस मूर्तिपर पञ्चकोशीके यात्री लड्डू, लावा, ईख और सत्तू चढ़ाते हैं। 'काशीखण्ड'के अनुसार भगवान् शशिशेखर शंकरने इन विनायकको द्वारपालके रूपमें प्रतिष्ठित कर काशीके पश्चिमी भागकी रक्षा करनेका आदेश दिया है। देहलीविनायक-मूर्तिके उत्तरमें १ फुट ८ इंच ऊँची शिवभगवान्‌की प्रतिमा स्थापित है। द्वारगणेशके निकट ही पूर्वोत्तर दिशामें एक नन्दीकी मूर्ति है तथा सात शिवलिङ्ग भी स्थापित हैं।

'उद्दण्डविनायक'का यह मन्दिर देहलीविनायक और रामेश्वर-तीर्थके मध्य भुइली-ग्रामके पूर्व पञ्चकोशी-मार्गमें स्थित है। पञ्चकोशी-सड़कसे तीन सीढ़ियाँ चढ़नेके बाद मन्दिरके बरामदेमें प्रवेश होता है। उद्दण्डविनायक-मन्दिरका बरामदा उत्तर-दक्षिण ७ फीट १ ... १ फीट चौड़ा है। इसकी ... बरामदेके पूर्वी द्वारसे ... मन्दिरका भीतरी कक्ष है, ... चौड़ा वर्गाकार है। इस ... हुए हैं। ... स्थित है।

है। ऐसा लगता है, ये पद्मासन ... अस्पष्ट मालूम पड़ती है। गणेश ... मन्दिरके पूर्वकी दीवारमें ... अङ्कित है।

'पञ्चास्यविनायक-मन्दिर' पिशाचमोचन सरोवरके पूर्वभाग-में भूतनाथके पीछे स्थित हैं। ये गणेश वाराणसीपुरीकी ... करते हैं। पञ्चास्यविनायक-मूर्तिकी ऊँचाई २॥ ३ फीट है। इस मूर्तिमें गणेशजी बैठे हुए दिखायी पड़ते हैं। इनका मुख पूर्वदिशामें है। पञ्चास्यविनायकके चार हाथ हैं। दो हाथोंमें क्रमसे वे त्रिशूल और शस्त्र धारण किये हुए हैं। शेष दो हाथ उनकी जाँघपर हैं। गणेशके निकट दक्षिण दिशामें एक प्रस्तरका शिवलिङ्ग स्थापित है। शिवलिङ्गके निकट क्रमशः दुर्गा, अष्टभुजी दुर्गा और विष्णुभगवान्‌की प्रतिमाएँ स्थापित हैं।

त्रिमुखविनायककी मूर्ति सिगरा-नामक स्थानपर है। इनके मुख क्रमशः वानर, सिंह और हस्तीके हैं, इसीलिये इनको 'त्रिमुखविनायक' कहते हैं। ये गणेश काशीके भयहर्ता कहे जाते हैं।

'हेरम्बविनायक'का मन्दिर काशी अनाथालयके निकट वाल्मीकिके टीलेपर स्थित है। यह टीला महर्षि वाल्मीकिकी तपःस्थली बताया जाता है। पक्की सड़कसे इस टीलेकी ऊँचाई ७०-८० फीट या इससे भी अधिक है। सड़कसे ४२ सीढ़ियाँ चढ़नेके पश्चात् हम वाल्मीकिके टीलेपर पहुँचते हैं। यहाँ लगभग १४ फीट लबा और उतना ही चौड़ा एक मन्दिर है, जिसमें हेरम्बविनायककी एक फुट ऊँची प्रतिमा स्थापित है। इसमें गणेशजी बैठे हुए दिखाये गये हैं। हेरम्बविनायकके निकट मन्दिरकी पश्चिमी दीवारमें महर्षि वाल्मीकिकी मूर्ति चित्रित है। इस मूर्तिके समक्ष एक सुन्दर शिवलिङ्ग स्थापित है।

'दन्तहस्तविनायक'की मूर्ति 'आज-कार्यालय'के निकट स्थित बड़े गणेशके घेरेमें है। मन्दिरके उत्तरी द्वारसे हम बड़े गणेश-... प्रविष्ट होते हैं। यहाँसे कुछ दूर आगे जानेपर एक ... दीवारमें दन्तहस्तविनायककी ढाई फीट ऊँची ... । दन्तहस्तविनायकके दस हाथ हैं। उनका ... । ऐसा ज्ञान पड़ता है कि वे कुछ भक्षण ... यहाँ वे शस्त्रोंको धारण किये ... चरणोंके निकट उनका वाहन चूहा ... गणेशकी बायीं और दायीं ओर ऋद्धि-

बंगाल* और आसामके श्रीगणेश-स्थल

बडनगर (बंगाल)—अजीमगंज स्टेशनके पास इस गाँवमें अनेक देवालय हैं, जिनमें अष्टभुज गणेशका भी एक श्रेष्ठ मन्दिर है।

गोहाटी (असम)—कामाख्यादेवीके मन्दिर श्रीगणेशजीका एक सुन्दर विग्रह है।

काशीके छप्पन विनायक

(लेखक—श्रीअवधेशनारायणसिंहजी)

भारतीय देवताओंमें शिव-पुत्र गणेशकी अत्यधिक महत्ता है। लोकप्रिय देवताके रूपमें इनका स्थान सर्वोपरि है। प्रायः सम्पूर्ण भारतमें गणेशकी पूजा की जाती है। काशीकी सुरम्य स्थलीमें गणेशकी कई प्रतिमाएँ स्थापित हैं। सभी गणेश-मूर्तियोंमें अन्नपूर्णा-मन्दिरके पश्चिममें गलीकी मोड़पर स्थित ढुण्ढिराज विनायककी विशेष प्रतिष्ठा है। ढुण्ढिराज गणेश ही काशीके सात आवरणोंमें प्रत्येक आवरणमें आठ रूप धारणकर छप्पन विनायक हो गये हैं। गणेशकी संख्या छप्पन होनेके कारण इन्हें 'छप्पन विनायक'की संज्ञा दी गयी है। छप्पन विनायक सात आवरणोंपर रक्षाके निमित्त विराजमान होकर आततायियोंका निग्रह एवं उच्चाटन करते तथा अपने भक्तोंको सिद्धि देते रहते हैं।

काशीके छप्पन विनायकोंके नामों और उनकी स्थितियोंका उल्लेख काशीखण्डमें मिलता है। जो लोग छप्पन विनायकोंका स्मरण करते हैं, उनका कल्याण होता है और उनके सभी कष्ट दूर हो जाते हैं।

काशीखण्डके ५७वें अध्यायमें लिखा है—

षट्पञ्चाशद् गजमुखानेतान् यः संस्मरिष्यति।
दूरदेशान्तरस्थोऽपि स मृतो ज्ञानमाप्नुयात्॥
इमे गणेश्वराः सर्वे स्मर्तव्या यत्र कुत्रचित्।
महाविपत्समुद्रान्तः पतन्तं पान्ति मानवम्॥

(स्कन्द, काशीखं० ५७। ११५—११७)

इस वचनके अनुसार काशीके छप्पन विनायक सात आवरणोंमें विभक्त हैं। प्रथमावरणके अन्तर्गत अर्कविनायक, दुर्गविनायक, भीमचण्डविनायक, देहलीविनायक, उद्दण्डविनायक, पाशपाणिविनायक, खर्वविनायक तथा सिद्धिविनायकका वर्णन किया गया है। द्वितीयावरणके अन्तर्गत लम्बोदरविनायक, कूटदन्तविनायक, शालकटङ्कविनायक, कूष्माण्डविनायक, मुण्डविनायक, विकटदन्तविनायक, राजपुत्रविनायक एवं प्रणवविनायकका उल्लेख मिलता है। तृतीयावरणके अन्तर्गत वक्रतुण्डविनायक, एकदन्तविनायक, त्रिमुखविनायक, पञ्चास्यविनायक, हेरम्बविनायक, विघ्नराजविनायक, वरदविनायक और मोदकप्रियविनायकके विग्रह प्रसिद्ध हैं। चतुर्थावरणके अन्तर्गत अभयदविनायक, सिंहतुण्डविनायक, कूणिताक्षविनायक, क्षिप्रप्रसादविनायक, चिन्तामणिविनायक, दन्तहस्तविनायक, पिचिण्डिलविनायक तथा उद्दण्डमुण्डविनायकके नाम आते हैं। पाँचवें आवरणमें स्थूलदन्तविनायक, कलिप्रियविनायक, चतुर्दन्तविनायक, द्वितुण्डविनायक, ज्येष्ठविनायक, गजविनायक, कालविनायक एवं नागेशविनायकका उल्लेख हुआ है। छठे आवरणके अन्तर्गत मणिकर्णविनायक, आशाविनायक, सृष्टिविनायक, यक्षविनायक, गजकर्णविनायक, चित्रघण्टविनायक, स्थूलजङ्घविनायक और मङ्गलविनायकका नामोल्लेख हुआ है। मोदविनायक, प्रमोदविनायक, सुमुखविनायक, दुर्मुखविनायक, गणनाथविनायक, ज्ञानविनायक, द्वारविनायक तथा अविमुक्तविनायककी प्रतिमाएँ सातवें आवरणके अन्तर्गत प्रसिद्ध हैं।

उपर्युक्त छप्पन विनायकोंमेंसे छःके दो-दो नाम मिलते हैं। लम्बोदरविनायक, वक्रतुण्डविनायक, दन्तहस्तविनायक, द्वितुण्डविनायक, गजविनायक तथा स्थूलजङ्घविनायक—ये क्रमशः चिन्तामणिविनायक, सरस्वतीविनायक, हस्तदन्तविनायक, द्विमुखविनायक, राजविनायक और मित्रविनायकके नामसे पुकारे जाते हैं।

वैसे काशीखण्डमें प्रमाणित इन सभी विनायकोंकी बड़ी महत्ता है, किंतु पञ्चकोशी-यात्राकी दृष्टिसे केवल दस गणेश ही अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनके नाम हैं—अर्कविनायक, दुर्गविनायक, देहलीविनायक, उद्दण्डविनायक, पाशपाणिविनायक, सिद्धिविनायक, मोदविनायक, प्रमोदविनायक, सुमुखविनायक और दुर्मुखविनायक।

* इसके सदर्भमें इसी अङ्कके पृ० ४१९-२० भी देखने चाहिये।

पैर क्यों रही । कार्यालयका सारा कार्य रुक गया । [illegible]मने अपने अधीनस्थ इंस्पेक्टर एजेंट श्रीकेदारबाबूसे [illegible] कि इस देवताका क्या करना चाहिये ।' [illegible]में केदारबाबू गणेशजीको अपने घर ७, अभयचरण [illegible] स्ट्रीटमें ले गये एवं वहीं उनकी पूजा प्रारम्भ [illegible] दी । तबसे सभी श्रीकेदारबाबूके घरपर ही [illegible] लगे ।

इधर वृन्दावनमें स्वामी केशवानन्दजी महाराज कात्या-[illegible] देवीकी पञ्चायतन पूजन-विधिसे प्रतिष्ठाके लिये सनातन-[illegible] पाँच प्रमुख मूर्तियोंका प्रबन्ध कर रहे थे । [illegible]कात्यायनी-देवीकी अष्टधातुसे निर्मित मूर्ति कलकत्तेमें तैयार हो रही थी तथा भैरव चन्द्रशेखरकी मूर्ति जयपुरमें [illegible] गयी थी । जब कि महाराज गणेशजीकी प्रतिमाके विषयमें विचार कर रहे थे, तब उन्हें माँका स्वप्नादेश हुआ कि 'सिद्ध-गणेशकी एक प्रतिमा कलकत्तेमें केदारबाबूके घरपर है । [illegible] तुम कलकत्तेसे मेरी प्रतिमा लाओ, तब मेरे साथ मेरे पुत्र-[illegible] भी लेते आना ।' अतः स्वामी श्रीकेशवानन्दजीने अन्य चार मूर्तियोंके बननेपर गणपतिकी मूर्ति बनवानेका प्रयत्न नहीं किया ।

अन्तमें जब स्वामी श्रीकेशवानन्दजी श्रीश्रीकात्यायनी माँकी अष्टधातुकी मूर्ति पसंद करके लानेके लिये कलकत्ते गये, तब केदारबाबूने उनके पास आकर कहा—''गुरुदेव ! मैं आपके पास वृन्दावन ही आनेका विचार कर रहा था । मैं बड़ी आपत्तिमें हूँ । मेरे पास पिछले कुछ दिनोंसे एक गणेशजीकी प्रतिमा है । प्रतिदिन रात्रिको स्वप्नमें वे मुझसे कहते हैं कि 'जब श्रीश्रीकात्यायनी माँकी मूर्ति वृन्दावन जायेगी तो मुझे भी वहीं भेज देना ।' कृपया आप इन्हें स्वीकार करें ।'' गुरुदेवने कहा—'बहुत अच्छा, तुम यह मूर्ति स्टेशनपर ले आना । मैं तूफान एक्सप्रेससे जाऊँगा । जब माँ जायगी तो उनका पुत्र भी उनके साथ ही जायगा ।' सिद्ध-गणेशजीकी यही मूर्ति भगवती कात्यायनीजीके राधाबाग-मन्दिरमें प्रतिष्ठित है ।

युगलविहार-धर्मशालाके पास 'श्रीमोटे गणेश'का एक विशाल मन्दिर है । मन्दिरमें श्रीगणेशजीकी विशाल मूर्ति है । इनकी वृन्दावनमें बड़ी मान्यता है ।

विदेशोंके गणेश-विग्रह और मन्दिर

(लेखक—श्रीगणेशप्रसादजी जैन)

उन सभी देशोंमें, जिनपर भारतीय-संस्कृतिका प्रभाव [illegible] या भारतीय जाकर बस गये, भारतीय देवताओंकी उपासनाका स्पष्ट प्रभाव दीखता है । भारतीय संस्कृतिका प्रभाव पश्चिममें तुर्किस्तान, उत्तरमें चीन और ईशानकोणमें जापानतक फैला हुआ था ।

मलयद्वीप पुञ्जमें जो 'गणेश'की प्रस्तरनिर्मित या धातु-निर्मित प्रतिमाएँ मिलती हैं, वे सामान्यतः भारतीय प्रतिमाओंके सदृश तो हैं ही, किंतु उनमें अन्य अनेक विशेषताएँ भी हैं । भारतीय गणेश-प्रतिमाएँ प्रायः पद्मासन, स्वस्तिकासन या अर्धासनसे बैठी मिलती हैं । इन आसनोंमें पाँव प्रायः एक-दूसरेके ऊपर-नीचे होते हैं । किंतु जावा आदिकी मूर्तियोंमें 'गणेश' इस प्रकार पालथी मारकर बैठे हैं कि दोनों पाँव भूमिपर समरूपमें पड़े हैं एवं उनके तलवे मिले हुए हैं । मस्तकमें [illegible] सूँड़ प्रायः बीचमें ही दाहिनी या [illegible] किंतु विदेशोंमें यह [illegible] कतिपय [illegible]

[illegible] सिंहासनमें भी मुण्ड खुदे हैं । 'बाली'के जमबरन स्थानकी एक मूर्तिके सिंहासनके चारों ओर अग्निशिखाएँ बनी हुई हैं और उनके दाहिने हाथमें मशाल है ।

जावामें नदियोंके घाटों और दूसरे भयके स्थानोंपर गणेश-जीकी मूर्तियाँ उपलब्ध हैं । यहाँकी श्रीगणेशकी स्थानक मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है । यहाँ गणेशका कोई स्वतन्त्र मन्दिर नहीं है । शिव-मन्दिरमें ही इनकी पूजा होती है । बर्मा-में 'गणेशजी'की अधिक मूर्तियाँ हैं । यहाँ इन्हें 'महाविघ्न' कहा जाता है । 'विघ्न' विनायकका विकृतरूप हो या विघ्न-शब्दका रूपान्तर (जिससे गणेशजी 'विघ्नेश्वर' कहलाये) 'विघ्न' हो सकता है ।

स्यामदेशमें भी गणेशजीकी अनेक मूर्तियाँ हैं । इनमें अनेक कलात्मक और सुन्दर हैं । मूर्तिकलाकी जिस शैलीके अनुसार ये निर्मित हुई हैं, उसको 'अयूथिया' कहते हैं; क्योंकि उन दिनों स्यामदेशकी राजधानीका नाम अयूथिया (अयोध्या) था ।

[illegible] मिस्रकी स्मारक हैं, परंतु उनकी [illegible] होता है । पहले तो वैदिक धर्म ही यहाँका [illegible]

'ज्येष्ठविनायक'की मूर्ति काशीपुरा मुहल्लेमें ज्येष्ठेश्वरके मन्दिरके निकट स्थित है। यह मूर्ति ज्येष्ठेश्वर महादेव (काशीखण्डमें प्रमाणित) के मन्दिरमें पश्चिमी दीवारमें स्थापित है। ज्येष्ठविनायक बड़े दिव्य दीखते हैं। इनकी ऊँचाई करीब दो फीट है। ज्येष्ठविनायक यह सिंहपीठमें बैठे बताये गये हैं। ज्येष्ठ मासकी शुक्ल चतुर्दशीके दिन ज्येष्ठता पानेके लिये लोग इनकी पूजा करते हैं।

'मोदकप्रियविनायक'की प्रतिमा काशी करपत्रमें एक पण्डितजीके मकानमें स्थित है। इस मूर्तिकी ऊँचाई करीब एक फीट है। मोदकप्रियविनायक बैठे हुए दृष्टिगत होते हैं। मोदकप्रियविनायकमूर्तिके दक्षिण करीब १० फीटकी गहराईमें भीमेश्वर (भीमेश्वर) स्थित हैं। भीमेश्वरका वर्णन काशीखण्डके ९९वें अध्यायमें किया गया है। मोदकप्रियविनायक-मन्दिरमें प्रतिवर्ष कृष्ण गणेशचतुर्थीके दिन स्वच्छ[...] पतिनी गणेशचतुर्थी का मेला होता है।

'प्रमोदविनायक'की प्रतिमा काशीदेवीमें अग्निहोत्रीजीके मकानके पास स्थित है। इस गणेशकी ऊँ[चाई] एक फुट है। प्रमोदविनायक बड़े दर्शनीय हो[ते हैं।] इस मूर्तिके निकट १ शिवलिङ्ग तथा ४ नन्दीकी मूर्तियाँ[...]

'सुमुखविनायक'की प्रतिमा श्रीगयोजीके मका[न]में एक कमरेमें स्थित है। इस मूर्तिकी ऊँचाई ४-४॥ [फीट] और चौड़ाई ३।-३॥ फीट है। ये गणेश बैठे हुए दिखते हैं।

'दुर्मुखविनायक'की मूर्ति सुमुखविनायकके निकट स्थित है। इस मूर्तिकी ऊँचाई २ फीट है। दो भुजा[ओं...] दुर्मुखविनायकके एक हाथमें लड्डू है और उनका दू[सरा] हाथ मुखपर है। इस मूर्तिके निकट एक हाथी और [...] नन्दीकी मूर्ति स्थापित है।

वृन्दावनके सिद्धगणेश

(लेखक—महन्त स्वामी श्रीविद्यानन्दजी महाराज)

श्रीराधाबाग वृन्दावनका एक प्रसिद्ध मन्दिर है, जहाँ भगवती कात्यायनीका दिव्य श्रीविग्रह प्रतिष्ठित है। श्रीकात्यायनी पीठमें स्थित गणपतिकी मूर्तिका भी एक विचित्र इतिहास है, जो इस प्रकार है—

एक अंग्रेज श्रीडब्लू० आर० यूल कलकत्तेमें मेसर्स एटलस इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेडमें ईस्टर्न सेक्रेटरीके पदपर कार्य करते थे। इस कंपनीका कार्यालय ४, क्लाइव रोडपर स्थित था। इनकी पत्नी श्रीमती यूल्ने सन् १९११ या १९१२ ई०के लगभग जयपुरसे एक श्रीगणपतिकी मूर्ति खरीदी, जब कि वे इंग्लैंड जा रही थीं। वे अपने पतिको कलकत्ता छोड़कर इंग्लैंड चली गयीं तथा उन्होंने अपनी बैठकमें कारनिसपर गणपतिजीकी प्रतिमा सजा दी।

एक दिन श्रीमती यूलके घर भोज हुआ तथा उनके मित्रोंने गणेशजीकी प्रतिमाको देखकर उनसे पूछा—'यह क्या है?'

श्रीमती यूल्ने उत्तर दिया—'यह हिंदुओंका सूँडवाला देवता है।' उनके मित्रोंने गणेशजीकी मूर्तिको बीचकी मेजपर रखकर उनका उपहास करना आरम्भ किया। किसीने गणपतिके मुखके पास चम्मच लाकर पूछा—'इसका

जब भोज समाप्त हो गया, तब रात्रिमें श्रीमती यूल[की] पुत्रीको ज्वर हो गया, जो बादमें बड़े जोरसे बढ़ता गया[।] वह अपने तेज ज्वरमें चिल्लाने लगी, 'हाय! सूँडवाला खिलौना मुझे निगलनेको आ रहा है।' डाक्टरोंने सोचा कि वह संनिपातमें बोल रही है; किंतु वह रात दिन यही शब्द दुहराती रही एवं अत्यन्त भयभीत हो गयी। श्रीमती यूल्ने यह सब वृत्तान्त अपने पतिको कलकत्ते लिखकर भेजा। उनकी पुत्रीको किसी भी औषधने लाभ नहीं किया।

एक दिन श्रीमती यूल्ने स्वप्नमें देखा कि वे अपने बागके संध्यागृहमें बैठी हैं। सूर्यास्त हो रहा है। अचानक उन्हें प्रतीत हुआ कि एक घुँघराले बाल और मशाल-सी जलती आँखोंवाला पुरुष हाथमें भाला लिये, वृषभपर सवार, बढ़ते हुए अन्धकारसे उन्हींकी ओर आ रहा है एवं कह रहा है—'मेरे पुत्र सूँडवाले देवताको तत्काल भारत भेज; अन्यथा मैं तुम्हारे सारे परिवारका नाश कर दूँगा।' वे अत्यधिक भयभीत होकर जाग उठीं। दूसरे दिन प्रातः ही उन्होंने उस खिलौनेका पार्सल बनाकर पहली डाकसे ही अपने पतिके पास भारत भेज दिया। श्रीयूल साहबको पार्सल मिला और उन्होंने श्रीगणेशजीकी प्रतिमाको कंपनीके कार्यालयमें रख दिया। कार्यालयमें श्रीगणेशजी तीन दिन रहे, पर उन तीन दिनों तक कार्यालयमें सिद्ध-गणेशके दर्शनार्थ कलकत्तेके नर-नारियोंकी

राजधर्म था, आज वे लोग बौद्ध हो गये हैं। किंतु राज्याभिषेक आदि आज भी वैदिक विधिसे ही होते हैं।

कंबोडिया एशिया महाद्वीपके उस भागका टुकड़ा है, जिसे 'हिंद चीन' कहा जाता है। यहाँ गणेशजीको 'केनेश' कहते हैं। कंबोडिया स्यामसे पूर्व है। इसका प्राचीन नाम 'कम्बुज' था। यह देश अपनी मूर्ति-राशिके लिये प्रसिद्ध है। यहाँकी श्रीगणेशकी आसन कांस्य-मूर्ति विशेष विख्यात है। पुरानी राजधानी 'अङ्कुरवट'को 'प्रतिमाओंकी खान' कहा जाता है। यहाँकी गणेश मूर्तियाँ रूप एवं कलामें भिन्न पायी जाती हैं।

चीनमें गणेशजीका प्रवेश 'विनायक'-रूपमें ही हुआ होगा। उनकी मूर्तियाँ चीनी यात्री अपने साथ ले गये होंगे। वहाँ जाकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी। कारण स्पष्ट है कि "जातकके कथानुसार 'बुद्धदेव'की माताको स्वप्न हुआ कि एक हाथी उनके कोखमें प्रवेश कर रहा है। उसी गर्भसे तथागत बुद्ध जन्मे थे। इसलिये चीनमें हाथी बुद्धका प्रतीक मानकर पूजा जाता है। सम्भवतः इसी कारण हस्तिमुख गणेश भी उनके आराध्य देवता हो गये हों।"

चीनके तुनहु-आङ्गमें एक गुफाकी दीवारपर मूर्तियाँ बनी हैं। ये मूर्तियाँ उसी ढंगकी हैं, जैसी कि अजन्ताकी हैं। इनको या तो भारतीय शिल्पियोंने चित्रित किया है या उनके चीनी शिष्योंने। इनमें बुद्ध-मूर्तियोंके अतिरिक्त सूर्य, चन्द्र, कामदेव आदिके साथ साथ *गणेशजीकी* भी मूर्ति है। उन्होंने सिरपर पगड़ी और पाँवमें सलवार पहन रखा है। कुङ्ग-हिस-एनके गुफा-मन्दिरमें जो मूर्ति है, उसके साथ उसके निर्माणकी तिथि (सं० ५८८) अङ्कित है। इतनी प्राचीन मूर्ति कदाचित् भारतमें भी उपलब्ध नहीं है। यह विनायककी मूर्ति है। इसपर चीनी-भाषामें लिखा है कि 'यह हाथियोंके अमानुष राजाकी मूर्ति है।' वहाँ नागों, मछलियों तथा पेड़ोंके अमानुष राजाओंकी भी मूर्तियाँ हैं। चीनमें गणेशजी दो नामोंसे प्रख्यात हैं—'विनायक' और 'कागितेन'। यहाँ अन्य देवताओंकी अपेक्षा विनायक-पूजनका विशेष महत्त्व है। नृत्यगणपतिकी पूजा यहाँ विशेषरूपसे होती है।

जापानके कोबो दाइशी (सुप्रसिद्ध) विद्वान्ने चीनके बौद्धाचार्योंसे शिक्षा ग्रहणकर ९वीं शतीमें अपने यहाँ 'विनायक-पूजन' प्रचलित कर दिया था। अब यहाँके [illegible]-प्रान्तमें भी विनायक-पूजाका प्रचलन जारी है।

तिब्बतमें प्रत्येक मठके अधीक्षकके रूपमें विनायक (*गणपति*)-पूजन प्रचलित है। *बोर्नियो तथा बाली*द्वीपमें गणेश-पूजनके प्रति अत्यधिक श्रद्धा है। यहाँ बड़े ही समारोह-पूर्वक गणेश-पूजनके सभी कृत्य होते हैं। नेपालमें बौद्ध-धर्मके *साथ-साथ* हेरम्ब और विनायकके नामसे गणपति मूर्तिका पूजन देशभरमें बड़ी भक्ति और श्रद्धासे होता है। वहाँकी सिंहवाहिनी शक्ति सहित मूषकवाहन हेरम्बकी मूर्ति विशेष *प्रख्यात है।*

अमेरिकामें लम्बोदर गणेशकी मूर्ति मिलती है। दीवान श्रीचमनलालने अपनी रचना 'हिंदू-अमेरिका'में विस्तृतरूपसे *गणेश-पूजापर प्रकाश डाला है। कोलंबसद्वारा* अमेरिकाके आविष्कार होनेके पूर्व ही वहाँ गणेश, सूर्य आदि भारतीय देवताओंकी मूर्तियाँ उपलब्ध हो चुकी थीं। इससे सिद्ध है कि *भारतीयोंने ईस्वी सन्‌से बहुत वर्षों पूर्व* अमेरिकामें भी अपना उपनिवेश स्थापित कर लिया था।

यूनान-निवासी गणेशका पूजन 'ओरेनस'के नामसे करते हैं। उनके धार्मिक-ग्रन्थोंमें ओरेनसकी अत्यधिक महत्ताका वर्णन उपलब्ध है। हिंदू धर्म ग्रन्थोंके अनुसार गणेश 'लक्षसिन्दूर-वदन' कहलाते हैं। यूनानियोंके 'ओरेनस' और भारतीयोंके 'अरुणास्य' सम्बोधन एक-से प्रतीत होते हैं। 'अरुणास्य'का अपभ्रंशरूप 'ओरेनस' प्रतीत होता है।

ईरानी पारसियोंमें 'अहुरमज्दा' नामसे गणेशकी उपासना की जाती है। 'जेन्दवस्ता'की पचासों आयतें 'अहुरमज्दा'की लोकोत्तर शक्तियोंका वर्णन करती हैं। फारसी-भाषामें 'स' प्रायः 'ह' कारमें परिवर्तित हो उच्चरित होता है। 'सप्त' को 'हफ्त', 'मास'को 'माह' आदि बोलते हैं। इसी प्रकार 'अहुरमज्दा' भी 'असुरमदहा'का ही अपभ्रंश होना चाहिये। हिंदू पुराणोंमें 'गणेश'द्वारा असुरोंके पराजित होनेकी अनेक गाथाएँ हैं। इसीलिये गणेश 'असुरमदहा' (असुरोंका मद हरने-वाला) नामसे विख्यात हैं और यह नाम अन्वर्थक भी है।

चीनी और जापानी बौद्ध त्रिमूर्ति गणेशकी उपासना (फो) नामसे करते हैं। मिस्रदेशके इतिहासज्ञ ह्वीजने लिखा है कि "सब देवोंका वह अग्रिम है जिसका विग्रह नहीं हो सकता, जो बुद्धिका अधिष्ठाता है, उसका नाम 'एकटोन' है। सम्भवतः वे देव 'गणेश' ही हैं; क्योंकि वे ही अग्रपूजनीय हैं। और 'एकटोन'-शब्द एकदन्तका ही पर्यायवाची है।"

श्रीमती एलिस गेट्टीने अपनी पुस्तक 'गणेश' में जो १९३६ में ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटीप्रेससे प्रकाशित हुई है, गणेश-पूजन आदिपर विस्तृत विवेचना की है। एलिस गेट्टीके कथनानुसार तमिल भाषामें गणेशका नाम—'पिल्लैयर', भोटमें 'सोमदान', बर्मामें 'महापिएन', मंगोलियामें 'घातरलारुमखागान', कंबोडियामें 'पाट्‌केनीज', जापानीमें 'कांगितेन' और चीनीमें 'कुअन-शी तिएन' आदि-आदि हैं।

उपर्युक्त तथ्यों और प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि उत्तरी मंगोलियासे लेकर दक्षिणमें बालीद्वीपतक और जापानसे अमेरिकातकमें श्रीगणेशका पूजन पद्धति अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारोंसे अति प्राचीनकाल, बल्कि आदिकालसे ही प्रचलित था।

दक्षिण अमेरिकाके ब्राजील-नामके स्थानकी खुदाईमें जो गणेशकी मूर्ति मिली है, उसे पुरातत्त्वविदोंने चार-पाँच हजार वर्ष प्राचीन माना है। इससे यह सिद्ध है कि कोलंबसके जन्मके पूर्वकालसे ही अमेरिकी-जनताके श्रीगणेश श्रद्धाके पात्र रहे और उनका पूजन आदि होता रहा। आज भी गणेशके भक्त वहाँ विद्यमान हैं।

विदेशोंमें श्रीगणेश-पूजा

(लेखक—पं० श्रीहिमांशुशेखरजी झा, एम्० ए०)

सर्वलोकवन्दित भगवान् गणेशकी अर्चनाका आलोक केवल भारतवर्षको ही नहीं, प्रत्युत विश्वके अन्य अञ्चलोंको भी सदियोंसे उद्भासित करता आया है। वाचस्पति विनायककी आराधनाका जो प्रदीप अनेक शताब्दियोंके पूर्व भारतेतर राष्ट्रोंमें जलाया गया था, वह आज भी निर्धूम और निष्कम्प जल रहा है। इससे लोकभावन भगवान् गणेशके प्रति लोक-मानसमें व्याप्त श्रद्धा और प्रेमका पता चलता है।

विदेशोंमें श्रीगणेश-पूजाके सम्बन्धमें ऑक्सफोर्डके क्लेरेंडन प्रेससे प्रकाशित 'गणेश—ए मोनोग्राफ ऑफ द एलीफेंट फेस्ड गॉड'-नामक पुस्तकमें विशद वर्णन किया गया है। इस पुस्तकमें प्रकाशित तथ्योंके अनुसार भारतके अतिरिक्त चीन, चीनी तुर्किस्तान, तिब्बत, जापान, बर्मा, स्याम, हिंद-चीन, जावा, बाली तथा बोर्नियोमें भी श्रीगणेशकी प्रतिमाएँ मिलती हैं। इन मूर्तियोंसे उन-उन देशोंमें श्रीगणेशके नाम और पूजनके प्रकारका पता चलता है। बोर्नियोकी ... चीनमें श्रीगणेशकी आसन कांस्य मूर्ति विशेष प्रसिद्ध है। चीनमें श्रीगणेशकी दो मूर्तियाँ एक साथ जुड़ी हुई खड़ी मुद्रामें पायी जाती हैं। चीनी भाषामें भगवान् श्रीगणेशका नाम है—'कुआन शी तिएन'। जापानमें विशेष श्रीगणेशकी जो मूर्तियाँ मिली हैं, उनके दो अथवा चार हाथ दिखाये गये हैं। भगवान् श्रीगणेश[illegible] जाता है।

श्रीगणेश-पूजनके प्रमाण मिलते हैं। 'शैवमत'-नामक पुस्तकके लेखकके मतानुसार जावामें ब्राह्मणधर्मका प्रचार प्राचीनकालमें ही हो चुका था। आठवीं शतीके उत्तरार्ध अथवा नवीं शतीके पूर्वार्धतक वहाँ गणेश-पूजाका प्रचार भी हो गया था। जावा-स्थित 'चाण्डी-बनोन'-नामक शिवमन्दिरमें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशके साथ गणेशकी मूर्ति भी अङ्कित है। तिब्बतमें भी गणेशकी प्रतिमाएँ पायी जाती हैं। तिब्बतमें शैव एवं बौद्ध—दोनों ही प्रकारके मन्दिरोंमें गणेशजीकी मूर्तियाँ पायी गयी हैं। नेपालमें भी गणेशपूजाके सम्बन्धमें प्रमाण मिले हैं। नेपालकी राजधानी काठमाण्डूमें गणेशकी प्रतिमाएँ पायी गयी हैं। नेपालमें 'सूर्य-विनायक'के रूपमें भगवान् श्रीगणेशकी पूजा की जाती थी। स्याममें भी श्रीगणेशकी प्रतिकृति मिली है। चम्पा तथा कंबोडियामें शिवोपासनाके प्रमाण उपलब्ध होते हैं। इन क्षेत्रोंमें गणपति-विग्रह पाये जाते हैं। हिंद-चीनमें अन्य देवताओंके साथ गणपतिकी प्रतिमा भी पायी जाती है। वहाँ ऐसे शिलालेख मिले हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि उस क्षेत्रमें अनेक शताब्दियों पूर्व भगवान् गणेशके स्वागत [illegible] हो गया था। तिब्बत, बर्मा, स्याम, हिंद-चीन, [illegible], बोर्नियो, [illegible] [illegible]के [illegible] भी श्रीगणेश-पूजनका प्रचार

* कल्याण, विशेष [illegible]

था। 'पुराण विमर्श'[1] के लेखकके मतानुसार "नेपालमें बौद्धधर्मके साथ ही गणपति-पूजाका भी प्रचलन है और वहींसे गणेशोपासनाका प्रसार खोतान, चीनी तुर्किस्तान तथा तिब्बतमें भी हुआ। चीनी तुर्किस्तानसे प्राप्त चतुर्भुज गणेशका भित्ति-चित्र विशेष महत्त्वपूर्ण है। नवम शतीके बाद जापानमें भी श्रीगणेशकी पूजा आरम्भ हुई।" 'पुराण विमर्श' नामक पुस्तकमें अमेरिकामें भी श्रीगणेशकी मूर्तिके मिलनेका उल्लेख है। इस प्रकार भारतके बाहर भी यत्र-तत्र न्यूनाधिक मात्रामें वक्रतुण्ड श्रीगणेशकी पूजा प्रचलित रही है।

भले ही भगवान् गणेशके नाम तथा गुणोंसे संसारके अधिकांश मानव अपरिचित हों तथा उनकी पूजामात्र म… एवं भारतेतर कुछ क्षेत्रोंतक ही सीमित हो, परंतु प्राणि… बुद्धि रूपिणी गुहाओंमें तो ज्योतियोंकी भी ज्योति परम… सदा विराजमान हैं ही। ब्रह्माण्डका कोई देश भाग नहीं जहाँ परमब्रह्म श्रीगणेशका निवास न हो तथा कोई देश … नहीं है, जो उनसे रहित हो—

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥
(गीता १३ । १…

उदयवर्ष (जापान) में गणेश

(लेखक—डा० लोकेशचन्द्र, डी० लिट्०)

देवत्वका वह प्रकटीकरण, जिसे हमारी इन्द्रियाँ समझ सकें, गणोंके रूपमें अभिव्यक्त किया जाता है। जो भी गण्य—बुद्धिगम्य हैं, वे गण हैं—'गण्यन्ते बुद्ध्यन्ते ते गणाः' यह गण ही सृष्टिके अस्तित्वका मूलतत्त्व है और इन गणोंका अधिपति 'गणपति' ही सृष्टिका स्वामी है। गजशीर्ष-मानव अर्थात् गणपति लघु ब्रह्माण्डकी महत् ब्रह्माण्डसे एकता अभिव्यक्त करता है, जिसमें महत्‌को गजके रूपमें चित्रित किया गया है। गणपति लम्बोदर हैं; क्योंकि 'नाना विश्व उन्हींके उदरसे उत्पन्न हुए हैं—यस्योदरात् समुत्पन्नं नाना विश्वम्।' किंतु वे स्वयं इन सबसे परे हैं।

जापानकी आत्माने कोबो दाइशिके विलक्षण व्यक्तित्वके रूपमें पारगामी मार्ग अपने लिये चुना; इसलिये जापानकी गुह्य-प्रणाली अर्थात् मन्त्र-यानमें गणेश भी अन्तर्भूत हो गये हैं। सन् ८०४में कोबो दाइशि (७७४–८३५ ई०) 'धर्मकी खोजमें चीन गया, जहाँ वज्रबोधि और अमोघवज्र-जैसे महान् भारतीय आचार्योंद्वारा मूल ग्रन्थों और भाष्योंके किये गये चीनी अनुवादोंके कारण यह गुह्य प्रणाली अपने उच्चतम शिखरपर पहुँची हुई थी।

अमोघवज्र या अमोघज्ञान (सन् ७०५–७७४ ई०) एक भारतीय ब्राह्मण था, जो सन् ७२० ई० में चीनकी राजधानी लो-याङ् पहुँचा और लो-याङ्के कुआङ्-फू-मन्दिरमें उसे दीक्षित किया गया। चीनी सम्राट्ने उसपर विशेष कृपा-दृष्टि की और अपने राज दरबारमें उसे अत्यधिक सम्मान प्रदान किया। युआन्-चाउने अपने 'वाग्मिता और प्रज्ञाके विशिष्ट भदन्त अमोघकी संस्मरणावली'में उसे 'प्राचीनों और नवीनों… अप्रतिम' कहा है। उसने साम्राज्यके विविध मठोंमें बिखरी हुई संस्कृत पाण्डुलिपियाँ एकत्र करायीं तथा उनका पुनरुद्धार, अनुवाद और प्रचार कराया। वज्रबोधिके अधीन अमोघने 'वज्रधातुकल्प'का मुख्यरूपसे अध्ययन किया। उसके इस वैचारिक विकासका आधारतत्त्व यह बना कि 'आचरण और उपलब्धिकी दृष्टिसे लोक-प्रचलित धर्मकी अपेक्षा मन्त्र-यानकी रीति ही अधिक उपयोगी और कार्यक्षम है।' जटिल मन्त्रयानी ग्रन्थोंको चीनीमें अनूदित करना असम्भव था। यह अमोघवज्रकी ही प्रतिभा और अपने जीवनमें अधिक समयतक चीनमें रहनेके कारण चीनी भाषापर उसके अधिकारके वशकी बात थी कि कठिन संस्कृत विषयवस्तु प्रवाहपूर्ण सुन्दर चीनीमें अनूदित की जा सकी। उसने 'वज्रधातुकल्प'के अंशोंका चीनीमें अनुवाद किया, जो 'चिन्-काङ्-तिङ्-ई चिये-त्सु-लई-चन् शिह तये चङ्-य्येन-चङ्-ता चियाओ-वाङ्-चिङ्' नामसे वज्रशेखर योगसूत्रके प्रथम संग्रहका एक भाग है, जिसका संस्कृत रूपान्तर 'वज्रशेखर-सर्वतथागत-तत्त्वसंग्रह महायान प्रत्युत्पन्नाभिसम्बुद्ध-महातन्त्रराज-सूत्र' होगा। अतः आगेके लिये वज्रधातुकल्प गुह्य तन्त्र-योगकी विविध ध्यान-पद्धतियोंका आधार बन गया, जिनमें गणेशको सम्मानपूर्ण स्थान मिला हुआ है।

अमोघवज्रके प्रतिभावान् चीनी [illegible] हुई-कुओ

१. 'पुराण विमर्श'—श्रीबलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

सन् ७७४-८०५ ई०) से कोबो दाइशिने मन्त्रयानकी दीक्षा अभिषेक प्राप्त किया। कोबो दाइशिने मन्त्रयानके नये रूपका दायित्व लिया, जिसका रोपण तो चीनमें किया गया था, परंतु वह पुष्पित और फलित हुआ जापानमें। सन् ८०६ ई०में जब कोबो जापान लौटा, तब उसमें गहन तत्त्वोंने अवतार ले लिया था। होमने निम्न वासनाओंको नष्ट कर दिया और उसका सम्पूर्ण अस्तित्व एक नयी ज्योतिसे जगमग कर रहा था।

वज्रधातुकी विवेचना करनेवाले सूत्रोंके साथ कोबो दाइशि अपने साथ वज्रधातु-मण्डलके रूपमें उनके चित्र भी ले गया। इन्हें हुई-कुओने कोबो दाइशिके लिये परम्पराके अनुसार प्रसिद्ध चित्रकार ली-चनसे चित्रित कराया, जिसकी इस कार्यमें सहायता दससे अधिक अन्य चित्रकारोंने की। मूल-मण्डल बहुरंगी था; केन्द्रीय वज्रधातु-मण्डलमें महाभूतमण्डल-नामक केन्द्रीय वर्गके बाह्य-वृत्तमें गणेश या विनायक पाँच रूपोंमें अभिव्यक्त किये गये। इसलिये जापानमें गणेश-पूजाका सर्वप्रथम उल्लेख सन् ८०६ ई० माना जायगा, जिस वर्ष कोबो दाइशि स्वदेश अर्थात् जापान लौटकर आया था।

जापानीमें गणेशके नाम विनायक, शोदेन और कांगितेन हैं। हिजोकीमें सामान्यतः 'विनायक' शब्दका प्रयोग हुआ है। कांगितेनका अर्थ 'सुख-समृद्धि और कुशलताका देवता' है। शोदेनको संस्कृतमें 'आर्यदेव' कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त उनके विशिष्ट रूपोंके पृथक्-पृथक् नाम भी हैं।

वज्रधातु-मण्डलमें गणेशके पाँच रूप इस प्रकार चित्रित हैं—

१—विनायक अथवा विनायक-तेन अथवा कांगि-तेन—जापानीमें जिसका अर्थ है—'भाग्य-देवता'। इसके एक हाथमें मूली है तथा दूसरेमें लड्डू।

२—हिजोकीके अनुसार, जिसमें कोबो दाइशिने मन्त्रयानके सिद्धान्तपर अपनी टिप्पणियाँ संग्रहीत की हैं, प्रदक्षिणा उत्तर-पूर्वके कोनेसे आरम्भ की जाती है। पूर्वमें वज्रछत्र है, जिसे जापानीमें 'कोंगो-जाई-तेन' कहते हैं। हिजोकी इसे 'छत्र-विनायक' कहता है। ये श्वेत छत्रधारी हैं। ... कोंगो-जिकी-तेन कहते हैं। ... कहा गया है।

४—पश्चिममें 'वज्रवासिन्' है, जिसे जापानीमें 'कोंगो-एतेन' कहते हैं। हिजोकीके अनुसार यह धनुष-बाणधारी विनायक अर्थात् 'धनुर्विनायक' है।

५—उत्तरमें 'जय' है, जिसे जापानीमें 'जोयुकुतेन' कहते हैं। हिजोकीके अनुसार यह खड्गधारी है और इसका वर्ण रक्ताभ है। यह 'खड्ग-विनायक' है।

यह द्रष्टव्य है कि हिजोकीके अनुसार गणेशके सभी रूपाभिधानोंके साथ 'विनायक' संज्ञा दी हुई है। कोबो दाइशिने इसे हुई-कुओसे उस मौखिक परम्पराद्वारा ग्रहण किया होगा, जो पीछेकी ओर अमोघवज्र और वज्रबोधितक पहुँचती है। गणेशके ये पाँचों रूप मन्त्रयानकी रक्षा करनेवाले बीस देवताओंमें सम्मिलित किये गये हैं। इनकी गणना 'कांगोचोयुग-चूर्याकुशत्सुनेनजुक्यो'में भी की गयी है, जिसका अनुवाद ताङ्वंशके समय सन् ७२३ ई०में वज्रबोधिने किया था। गणेशके विविध रूपोंके नाम और स्थान ग्रन्थ-ग्रन्थमें थोड़े-थोड़े भिन्न हैं; जैसे कि 'कियाओ वाङ् चिङ'में देखनेको मिलता है। इसका चीनी अनुवाद उत्तर शुङ्वंश-कालमें सन् ९८०-१००० ई०में संस्कृतके 'सर्वतथागततत्त्व-संग्रह'-नामक ग्रन्थसे दानपालने किया। पञ्च-गणेशोंकी गणना 'कॉगोचुरोकुयोन'में भी की गयी है।

वज्रधातु मण्डलके अन्य नौ भागोंमें पञ्च-गणेशोंमेंसे प्रत्येकके और रूपोंका उल्लेख भी है। इन नौ भागोंके नाम इस प्रकार हैं—१—वज्रधातु-महाभूतमण्डल, २—समयमण्डल, ३—सूक्ष्ममण्डल, ४—पूजामण्डल, ५—चतुर्मुद्रामण्डल, ६—एकमुद्रामण्डल, ७—नयमण्डल, ८—त्रैलोक्यविजय-कर्ममण्डल तथा ९—त्रैलोक्यविजय-समयमण्डल। ऊपर बताये रूपोंका वर्णन और अङ्कन पहले महाभूतमण्डलके अनुसार है।

दूसरे समय-मण्डल अर्थात् भारती-मण्डलमें गणेशके रूप, महाभूतमण्डलके रूपोंका समय अर्थात् गुप्त रूप है। इसमें प्रत्येक देवताको किसी प्रतीक अथवा उसकी एक या एकाधिक विशिष्ट वस्तुओंके अङ्कनसे प्रकट किया गया है। 'समय'का अर्थ व्रत या संकल्प या देवताकी मूल-भूत विशिष्टता है। समय-रूपमें पञ्च-गणेशोंके अङ्कनमें उनके विशेष चिह्नोंको कमल-पत्रोंपर अङ्कित किया गया है, जिनसे किरणें प्रस्फुटित हो रही हैं। विनायकका प्रतीक लड्डू रखा गया है। इसे केवलको 'दि इकोनोग्राफिक इवोल्यूशन ऑफ गणेश' पुस्तकमें भी देखा जा सकता है।

तीसरे सूक्ष्म-मण्डलमें देवताओंको वज्र अर्थात् परमके सूक्ष्म और अनश्वर ज्ञानके रूपमें दिखाया गया है। इसीलिये 'मे पा हुपई ये कुपई' इसे 'सूक्ष्म-वज्र-मण्डल' कहता है। चित्रोंमें देवताओंको त्रिशूली वज्रपर अधिष्ठित दिखाया गया है। बीस देवता, जिनमें पञ्च-गणेश भी हैं, वज्रपर अधिष्ठित नहीं हैं, इसलिये उनके रूप, हस्तमुद्राओंमें सामान्य परिवर्तनके अतिरिक्त, प्रथम महाभूत-मण्डलके समान ही हैं। इनके चित्र भी लेखककी अंग्रेजी पुस्तक 'दि इसोटरिक इकानोग्राफी आफ जेपेनीज मण्डल्स' में देखे जा सकते हैं।

चौथे पूजामण्डलमें पञ्च-गणेशोंकी स्थिति पहले मण्डलके समान ही है। इन्हें भी उपर्युक्त पुस्तकमें देखा जा सकता है। मूल काष्ठचित्रोंमें, जिनसे पुनरङ्कन किया गया है, माल्य-विनायक और खड्ग विनायक दो बार हैं तथा छत्रविनायक और धनुर्विनायक नहीं हैं। विनायक वहाँ ६७२ संख्या-पर है।

आठवें अर्थात् त्रैलोक्यविजय-कर्ममण्डलमें भी देवाङ्कन प्रथम महाभूत-मण्डलके ही समान है। नवें त्रैलोक्यविजय-समय-माडलमें पञ्च-गणेशोंका अङ्कन द्वितीय समय-मण्डल-जैसा है। इन्हें कमलपत्रपर आसीन अङ्कित किया गया है, जिसके चतुर्दिक् ज्वालाएँ बनायी गयी हैं। इन्हें भी उपर्युक्त पुस्तकमें देखा जा सकता है।

पञ्च-गणेशोंके चित्राङ्कनको दो वर्गोंमें रखा जा सकता है—(१) मानवपशु-आरोपित, जैसा भारतमें है और (२) प्रतीक या समयरूपी, जिसकी परम्परा भारतमें लुप्त हो गयी है; यद्यपि मूल संस्कृत-ग्रन्थोंके चीनी और तिब्बती अनुवादोंसे यह देखी जा सकती है।

वज्रधातुमण्डलके अतिरिक्त कोबो दाइशि 'महाकरुणगर्भ-मण्डल' भी लाया था। इसके 'वज्रलोक'में गणपतिको परशु और मूलीद्वारा अङ्कित किया गया है। जापानीमें इसका नाम 'विनायक' तथा सिद्धम् लिपिमें 'गणपत' दिया गया है और इसका बीज 'ग' है।

९ वीं शताब्दीकी हस्तलिपिमें परशु और मूलीवाले गणेशका एक सुन्दर चित्र क्योतोके दाइगोजी-विहारमें रखा हुआ है। यह हस्तलिपि सन् ८२१ ई० में लिखी गयी तथा इसका शीर्षक 'शिशु-गोम होनजन-नरबिनो-केनमोकु-दाबो'; अर्थात् 'न्यूरिंप होमके प्रधान देवता और उनके परिच[illegible] चित्र' है।

जापानी पूजा पद्धतिमें भक्तके अन्तःकरणको स्थानस्थित कर[illegible] लिये देवताओंके रूपकी स्थितिको मनमें बैठानेमें मुद्राएँ[illegible] अविभाज्य अंग है। जापानी ग्रन्थ 'दाइनिचिक्यो'के अनु[illegible] मुद्राएँ हस्त-संकेत, विचारों, धर्मग्रंथों, धारणी-मन्त्रों—[illegible] कुछको, जो रूपसे परे है, दृश्यमान रूप प्रदान करती हैं, त्रि[illegible] चिन्तनके क्षेत्रमें भौतिक जगत्से परेकी स्थिति सुदृढ़ हो ज[illegible] है। पूजाके लोकप्रिय मुद्रा ग्रन्थमें, जिसका नाम 'शिगो-मिक[illegible] श-इन-शू' अर्थात् 'मन्त्रयान मुद्राओंके उद्धरणोंका संग्रह' [illegible] विनायककी मुद्रा भी दी हुई है।

शोदेन (आर्यदेव) या गणपतिकी भी दो मुद्राएँ है[illegible] महाकरुणोद्भव-महामण्डलके 'कुसेत्सु-दईबीरुशन-जेबुत्[illegible] जिम्पेन-काजी-क्यों शु दिगों-ग्यो-दाइही-तइजोशो दई-मन्दर-ओ[illegible] फुत्सु-नेजु-गिकी'-नामक कल्पमें पञ्च-गणेशोंकी अलग-अल[illegible] मुद्राएँ और मन्त्र दिये गये हैं—

१-विनायक और उसकी देवी। साथमें 'ओं व[illegible] विनाय हूम्' मन्त्र है; २-वज्रक्षित और वज्रक्षिती[illegible] ३-वज्रभक्षण और वज्रभक्षिणी, ४-वज्रवासिन् औ[illegible] वज्रवासिनी तथा ५-वज्रजय और वज्रजयी।

गणेशको बीजरूपमें भी चित्रित किया गया है। बीजअक्षरको जापानीमें 'शुजि' कहते हैं; बीज-मन्त्रके उच्चारणसे भक्तमें उसकी शक्ति और सत्त्व व्याप्त हो जाते हैं और उस देवता और भक्ति-कर्तामें आध्यात्मिक सान्निध्य स्थापित हो जाता है। क्वाम्बुन-युग (सन् १६६१—७३ ई०) में भिक्षु चोजेनद्वारा प्रकाशित शुजि-शू' बीज-संग्रहमें पृष्ठ ५९ पर गणेशका बीज 'गः' या 'ग.गः'-की यह परम्परा आजतक सुरक्षित सिद्धम् लिपिमें दी हुई है। यह बीज-परम्परा यथावत् चली आ रही है। 'बोनजि शितान-शुजि रहस्य' नामक आधुनिक 'सिद्धम्-बीजसंग्रह'में चोजेनद्वारा बनाये हुए बीज उद्धृत किये गये हैं। गः द्वय गणेशके दो रूपोंके स्वरूप चित्रणके प्रतीक हैं। उसी ग्रन्थमें दूसरा बीजाक्षर 'कं' है, जो 'ॐ गः गः हूम् स्वाहा' मन्त्रसे संयुक्त है।

कोबो दाइशिद्वारा सन् ८०६ ई० में चीनसे लाये गये मूल बहुरंगी-मण्डलसे लगभग सन् ८२४ ई० में टैको-युगमें ताकाओ-मण्डल चित्रित किया गया। [illegible] अनुष्[illegible] वस्त्रपर सोने-चाँदीकी रेखाओं[illegible]

जापानकी मूर्तिकलामें प्राप्त श्रीगणेशके कुछ रूप

'विनायक'-विग्रह [पृष्ठ ४५६

'शोझोशाहरि'के 'यज्ञलोक'के अनुसार

(हाथमें परशु और मूली लिये हुए)

त्रिमुख-चतुर्भुज गणेश [पृष्ठ ४५४

विहारमें सुरक्षित है। इसमें सभी पञ्च-गणेश अपने सम्पूर्ण रूपोंमें वज्रधातु-मण्डलके छः उपमण्डलोंमें चित्रित किये गये हैं।

मूल बहुरंगी-मण्डलकी दूसरी प्रति तोजी-विहारमें रखी हुई है। ९वीं शताब्दीके अन्तमें इसकी पहली प्रतिलिपि तैयार की गयी। इसकी खोज एक काले लक्षित बक्समें १९३४ ई०में की गयी, जिसके ढकनकी पीठपर ८९९ ईस्वीका लाक्षित अभिलेख भी है। यह शिंगोन-इन-मन्दिरमें रखी हुई है। इसमें पञ्च-गणेशोंके सभी रूप बनाये हुए हैं।

केन्कूय-युग (११९०—११९८ ई०) में मूल तोजी-मण्डलके कौशेय(रेशमी)-वस्त्रपर वज्रधातु-मण्डल चित्रित किया गया। इसमें छः उपमण्डलोंमें आये हुए पञ्च-गणेशोंके सभी रूप विद्यमान हैं। वज्रधातु-मण्डलकी निम्नलिखित हस्तलिपियोंमें भी पञ्च-गणेश अपने लोकप्रचलित तथा गुह्य रूपोंमें दिखाये गये हैं।

१—कोजानजो-हस्तलिपिमें कामाकुरा-कालकी समाप्तिके लगभग १४ वीं शताब्दीमें ताकाओ-मण्डलकी नयी प्रतिलिपि तैयार की गयी, जो क्याताके कोजानजी-विहारको सौंपी गयी।

२—केईयो इन हस्तलिपिमें १६९३ ई०में भिक्षु युकाकूने दाता केईयो-इनके लिये मण्डल चित्रित किया। यह प्रति तोजी विहारमें उपयोग की जाती है।

३—१७७३ ई०में काष्ठ-खण्डोंसे छपाई करानेके लिये कोषा धानके भिक्षु जोतोने शिमिजु नोबुमाससे तोजी-मण्डलकी प्रतिलिपि करायी। इसका आकार घटाकर मूल-मण्डलका चौथाई रखा गया। काष्ठखण्ड आगमें जलकर नष्ट हो गये।

४—दाशेदेरा-हस्तलिपिमें १८३४ ई०में कोबो दाइशिके निर्वाणकी १०००वीं वार्षिकीके स्मारकस्वरूप बुजन केन्द्रके भिक्षु युको और काइन्योंने चित्रकार तोयुकू हासेगावाको तोजी-मण्डलकी प्रतिलिपि करनेके लिये नियुक्त किया।

५—ओमुमें काष्ठ-मुद्रित संस्करणने १८६९ ई०में शिमामान्तके सोस्पोने भिक्षु होऊनसे काष्ठफलक तैयार कराये। कलाकी दृष्टिसे ये बहुत सुन्दर हैं।

वज्रधातु-मण्डलपर लिखे गये विभिन्न ग्रन्थोंमें पञ्च-गणेश अपने विविध रूपोंमें चित्रित किये गये हैं—

१—कोंगो-काइ-मन्दर, दाईगोजी-विहार क्योतोमें रक्खा हुआ।

२—ईचीयामाजी-विहारमें रखे हुए कोंगो-काइ-सम्म मन्दर-जूमें पञ्च-गणेशोंके केवल समय-रूप दिखाये गये हैं।

३—सम्मय-ग्यो-होरिन-इन-बोनमें, जो पहले होरिन इन विहारमें थी और इस समय दाइगोजी-विहार, क्योतोमें सुरक्षित है, पञ्च-गणेशोंके प्रतीक रूप चित्रित किये गये हैं।

४—गोहिरस-शिन्नु-गोमा-दान-संजुशिची-सोन-कंगी-सम्मय ग्यो, अर्थात् चार प्रकारकी होम-वेदिकाओंके लिये सैंतीस देवताओं तथा भद्रकल्पके सोलह बोधिसत्त्वोंके समय प्रतीक, जो क्योतोके दाइगोजी विहारमें रखी हुई है, पञ्च-गणेशोंको उनके समय-रूपमें चित्रित किया गया है।

महाकरुणा-गर्भ-मण्डलके विनायकके प्रधान रूप (मूल और परशुयुक्त) तथा वज्रधातु-मण्डलके विविध रूपोंके अतिरिक्त जापानमें गणेशके अन्य रूप भी मिलते हैं। वज्रधातु-मण्डलमें गणेशके रूप द्विभुज हैं, परंतु अन्यत्र गणेश चतुर्भुज या षड्भुज या युग्म-रूपमें चित्रित किये गये हैं। वज्रधातु-मण्डलमें पञ्चगणेशोंके अतिरिक्त चार गणेशोंका भी अङ्कन उपलब्ध होता है, जिनका सर्वप्रथम १२ वीं शतीमें शिनकाकु, १३ वीं शतीमें शोचो और उसके बाद जु-जोशी द्वारा चित्रण किया गया है। इनमेंसे कुछ अलग-अलग अन्य ग्रन्थ-मालाओंमें भी चित्रित किये गये हैं, जिनका वर्णन आगे दिया जा रहा है।

चार गणेश

शिनकाकु (११८० ई०)ने बेस्सोनजक्काम देवताओंका वर्णन किया है, जो इस समय निजाजी विहार, क्योतोमें ५७ हस्तलिपियोंमें सुरक्षित है। अपने ग्रन्थमें शिनकाकुने गणेश-मूर्तियोंका वर्णन किया है, उनका मन्त्र दिया है तथा चार रूपोंमें स्मानक शोदेन या गणेशका अङ्कन किया है।

१३ वीं शताब्दीमें केन्दाई [illegible] शोचो (१२०५—१२८२ ई०)ने देवताओंके विषयमें अलग [illegible] नामक एक विशाल ग्रन्थ लिखा। अगर मन्त्रमें [illegible] (भ्र) [illegible] तथागत, [illegible] तथा [illegible] [illegible] है; ये तीनों बीजाक्षर [illegible] मण्डलके प्रमुख देवताके लिये प्रयुक्त होते हैं। इस ग्रन्थके [illegible] [illegible] शोचोने [illegible] या गणेश और उनकी [illegible] वर्णन किया है। इसमें [illegible] लिपिमें [illegible] दिया गया है। उनके बाद [illegible] [illegible]

'शोदेन' दिये गये हैं । चार गणेशोंके चित्रोंमेंसे एकमें गणेश-पूजाकी तीन वेदियोंकी व्यवस्था है, जो क्रमशः प्रभात, मध्याह्न तथा रात्रिपूजासे सम्बद्ध है, दूसरेसे विनायकदेवकी सामान्य पूजा कढ़ी (रसा), भात, रोटी, मूली और होमाग्नि आदिसे संयुक्त हैं।

खण्ड १०५ में उदक गणपतिकी पूजाका विधान वर्णित है। 'ताइशो जुजो' के नवें खण्डके पृष्ठ ४८७पर उदक-गणपतिकी वेदीकी व्यवस्था दी गयी है । जुजो शो अर्थात् चुने हुए चित्र दस आवलियोंमें एन्तसुजी-विहार (कोयसानमें) सुरक्षित हैं और उनमें चार गणेशोंके चित्र दिये हुए हैं—

१—षड्भुज-गणेशके हाथोंमें गदा, हस्तिदन्त, पाश, खड्ग, कमण्डलु और चक्र हैं।

२—चतुर्भुज-गणेशके चार हाथोंमें लड्डू, परशु, गदा और हस्तिदन्त हैं।

३—सुवर्णगणपतिके छः हाथोंमें अङ्कुश, गदा, पाश, लड्डू, खड्ग और वज्र-असि हैं।

४—युग्मगणेश।

अन्य रूप

शिनकाकुने दो खण्डोंमें 'शोसोन-जुजो' अर्थात् 'देव-चित्रावली' भी तैयार की, जो तोजी विहार, क्योतोके काँची इन मन्दिरमें सुरक्षित है । इसमें गणेशके छः रूप चित्रित हैं, जिनमें षड्भुजगणेश तथा सुवर्णगणपतिका एक अन्य रूप—ये दो नये हैं।

काकुजेनने (११८३–१२१३ के लगभग) सभी देवताओंका विस्तृत अध्ययन लेखबद्ध किया और उनके चित्र भी बनाये। ये क्योतोके काजुजी विहारमें १३६ आवलियोंमें सुरक्षित हैं तथा कोयसान और तोक्योके विहारोंमें भी इनकी प्रतिकृतियाँ उपलब्ध हैं। इसमें विस्तृत वर्णनसहित गणेशके जो विभिन्न रूप चित्रित किये गये हैं। १ युग्मगणेश, २ चतुर्भुजगणेश।

१—चतुर्भुज-गणेश—इनके हाथोंमें पाश, (?)वज्र और परशु हैं।

२—षड्भुज-गणेश—इनके हाथोंमें पाश, गदा, अङ्कुश, खड्ग, लड्डू और चक्र हैं।

३—षड्भुज-गणेश—इनके हाथोंमें गदा, पाश, खड्ग, लड्डू और चक्र हैं।

४—त्रिमुख-चतुर्भुज-गणेश—इनके दो हाथ हुए हैं और अन्य दोमें मूली और लड्डू हैं।

५—त्रिमुख-चतुर्भुज-गणेश—इनके चार गदा,''' खड्ग, लड्डू, हैं।

६—युग्मगज शीर्ष-वराहशीर्ष गणेश—यह मस्तक और वराहके मस्तकसे शोभित युग्मगणेश है।

गणेशके ऊपर वर्णित रूप अन्य ग्रन्थोंमें भी दुहरा हैं, जिनमें कुछका वर्णन नीचे दिया जाता है। इनमें विशिष्टता तो नहीं है, परंतु उनके हाथोंके क्रममें बहुत अन्तर है।

तोजी विहारमें युग्मगणेशकी एक शोतेन-जो या है। यह चिनकाई (१०९१–११५२ ई०) ने बनायी। ता जुजो भाग ७ में इसका उल्लेख है।

१४वीं शताब्दीमें रयोसोन (१२७९–१३४९ ई० १६७ आवलियोंके 'न्याकु होकु-शा' अर्थात् श्वेतमणि मौ परम्पराएँ बनायीं, जो कांगो-सम्मई-इन-विहार, कायस सुरक्षित हैं। इसके १३० से १३४ खण्डोंमें गणेश-पूजा-विधि वर्णन है।

'शिका-शो-जुजो' अर्थात् 'चार आचार्योंद्वारा उतारे चित्रों'में गणेशके चार रूप दिये गये हैं—

१—षड्भुज-गणेश,
२—विनायक (मूली और परशुसे युक्त),
३—सुवर्णगणपति और
४—षड्भुज युग्मरूप।

एइशान्‌द्वारा संकलित 'जो-बोदाई-शु'के एक अध्याय गणेशकी साधनापर प्रकाश डाला गया है।

कानाजावा-बुन्को, कानाजावामें रखायी हुई 'शोजोन जुजो शु' की तीन आवलियोंमें गणेशके चार रूप चित्रित किये गये हैं— १-षड्भुज गणेश, २ युग्म-गणेश, ३-विनायक और ४-षड्भुज-गणेश।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि जपान गणेशके मूर्ति अङ्कनमें बहुत सम्पन्न है। जापानमें अङ्कित विभिन्न मूर्तियोंका सार इस प्रकार दिया जा सकता है—

१—विनायक (प) —

पञ्चगणेश (सभी द्विभुज)

२—विनायक (लड्डू और मूली)।

३—छत्र-विनायक या वज्रछित्र (छत्र)।

४—माल्य विनायक या वज्रभक्षण (माला)।

५—धनुर्विनायक या वज्रबाणिन् (धनुष और बाण)।

६—खड्ग विनायक या (जय खड्ग)।

सभीके गुह्य रूप, बीज और मुद्राएँ हैं।

चार गणेश

७—षड्भुज-गणेश (हाथोंमें गदा, हस्तिदन्त, पाश, खड्ग, कमण्डलु, चक्र)।

८—चतुर्भुज-गणेश (हाथोंमें लड्डू, परशु, गदा, हस्तिदन्त)।

९—सुवर्णगणपति (छः हाथोंमें अङ्कुश, गदा, पाश, लड्डू, खड्ग और वज्र-असि)।

१०—युग्मगणेश।

अन्य रूप

११—षड्भुज गणेश (हाथोंमें चक्र, हस्तिदन्त, गदा, खड्ग, कमण्डलु, पाश)।

१२—सुवर्णगणपति (छः हाथोंमें मूली, वज्र, पाश, खड्ग, लड्डू, वज्र-असि),

१३—चतुर्भुज-गणेश (हाथोंमें पाश, वज्र, परशु तथा…)।

१४—षड्भुज-गणेश (हाथोंमें पाश, गदा, अङ्कुश, खड्ग, लड्डू, चक्र)।

१५—षड्भुज-गणेश (हाथोंमें गदा, अङ्कुश, पाश, खड्ग, लड्डू, चक्र (१४ का एक विभेद)।

१६—त्रिमुख-चतुर्भुज-गणेश (दो हाथ जुड़े हुए अन्य दो हाथोंमें मूली और लड्डू)।

१७—त्रिमुख चतुर्भुज-गणेश (हाथोंमें गदा, खड्ग, लड्डू,)।

१८—युग्म-गजशीर्ष-वराहशीर्ष गणेश।

जापानमें आजकल भी गणेशकी पूजा की जाती है। नाकओंके जिंगोजी-विहारमें गुह्य युग्म-गणेशको जो एक विशेष मन्दिर समर्पित है, प्रत्येक वर्ष उनका पूजन होता है। अन्य मन्त्रयानी विहारोंमें भी गणेशको समर्पित किये गये विशेष मन्दिर हैं। कोयसानमें पिछली बार ठहरनेपर मैं रेलवे स्टेशन जानेवाली बसकी प्रतीक्षामें एक बेंचपर बैठा था। जिज्ञासावश भीतर दूकानमें गया तो देखा, वहाँ श्वेत-काष्ठके गणेशकी एक स्थानक-प्रतिमा रखी है। बारंबार देनेके लिये कहनेपर भी दूकानदार केवल मुस्कराता और विनम्रतापूर्वक वन्दना करता रहा। खेद है कि मेरी इच्छा पूरी नहीं हो सकी। गणेशकी अविप्लावी करुणाकी आभा जापानके पूजामय हृदयोंमें अभी भी जगमगा रही है।

(रूपान्तरकर्ता—श्रीबाबूरामजी शर्मा)

मूषकध्वजके ध्यानका माहात्म्य

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्। अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्। रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्। आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम्॥
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः।

(गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्)

'एकदन्त, चतुर्भुज, चारों हाथोंमें पाश, अङ्कुश, अभय और वरदानकी मुद्रा धारण किये हुए तथा मूषक-चिह्नकी ध्वजा लिये हुए, रक्तवर्ण, लंबे उदरवाले, सूप-जैसे बड़े-बड़े कानोंवाले, रक्तवस्त्रधारी, शरीरपर रक्त चन्दनका लेप किये हुए, रक्त पुष्पोंसे भलीभाँति पूजित, भक्तके ऊपर अनुकम्पा करनेवाले देवता, जगत्के कारण, अच्युत, सृष्टिके आदिमें आविर्भूत, प्रकृति और पुरुषसे परे मूषकध्वज श्रीगणेशजीका जो नित्य ध्यान करता है, वह योगी सब योगियोंमें श्रेष्ठ है।'

'शोदेन' दिये गये हैं। चार गणेशोंके चित्रोंमेंसे एकमें गणेश-पूजाकी तीन वेदियोंकी व्यवस्था है, जो क्रमशः प्रभात, मध्याह्न तथा रात्रिपूजासे सम्बद्ध है, दूसरेसे विनायकदेवकी सामान्य पूजा कद्दू (रस), भात, रोटी, मूली और होमाग्नि आदिसे संयुक्त है।

खण्ड १०५ में उदक गणपतिकी पूजाका विधान वर्णित है। 'ताइशो जुजो' के नवें खण्डके पृष्ठ ४८७पर उदक-गणपतिकी वेदीकी व्यवस्था दी गयी है। जुजो-शो अर्थात् चुने हुए चित्र दस आवलियोंमें एन्तमुजी-विहार (कोयसानमें) सुरक्षित हैं और उसमें चार गणेशोंके चित्र दिये हुए हैं—

१—षड्भुज-गणेशके हाथोंमें गदा, हस्तिदन्त, पाश, खड्ग, कमण्डलु और चक्र हैं।

२—चतुर्भुज-गणेशके चार हाथोंमें लड्डू, परशु, गदा और हस्तिदन्त हैं।

३—सुवर्णगणपतिके छः हाथोंमें अङ्कुश, गदा, पाश, लड्डू, खड्ग और वज्र-असि हैं।

४—युग्मगणेश।

अन्य रूप

दिनकाकुने दो खण्डोंमें 'झोसोन-जुजो' अर्थात् 'देव-चित्रावली' भी तैयार की, जो तोजी विहार, क्योतोके काँची-इन मन्दिरमें सुरक्षित है। इसमें गणेशके छः रूप चित्रित हैं, जिनमें षड्भुजगणेश तथा सुवर्णगणपतिका एक अन्य रूप—ये दो नये हैं।

काकुजेनने (११८३–१२१३ के लगभग) सभी देवताओंका विस्तृत अध्ययन लेखबद्ध किया और उनके चित्र भी बनाये। ये क्योतोके कासुजी विहारमें १३६ आवलियोंमें सुरक्षित हैं तथा कोयसान और तोक्योके विहारोंमें भी इनकी प्रतिकृतियाँ उपलब्ध हैं। इसमें विस्तृत वर्णनसहित गणेशके नौ विभिन्न रूप चित्रित किये गये हैं। १ युग्मगणेश, २ चतुर्भुजगणेश।

१—चतुर्भुज गणेश—इनके हाथोंमें पाश, (?)वज्र और परशु हैं।

२—षड्भुज गणेश—इनके हाथोंमें पाश, गदा, अङ्कुश, खड्ग, लड्डू और चक्र हैं।

३—षड्भुज-गणेश—इनके हाथोंमें गदा, पाश, खड्ग, लड्डू और चक्र हैं।

४—त्रिमुख-चतुर्भुज-गणेश—इनके दो हाथ जुड़े हुए हैं और अन्य दोमें मूली और लड्डू हैं।

५—त्रिमुख-चतुर्भुज-गणेश—इनके चार गदा,''', खड्ग, लड्डू, हैं।

६—युग्मगज शीर्ष-वराहशीर्ष गणेश—यह मस्तक और वराहके मस्तकसे शोभित युग्मगणेश है।

गणेशके ऊपर वर्णित रूप अन्य ग्रन्थोंमें भी द्रष्टव्य हैं, जिनमें कुछका वर्णन नीचे दिया जाता है। इनमें विशिष्टता तो नहीं है, परंतु उनके हाथोंके क्रममें बहुत अन्तर है।

तोजी-विहारमें युग्मगणेशकी एक शोतेन-जो या है। यह चिनकाई (१०९१–११५२ ई०) ने बनायी। ता जुजो भाग ७ में इसका उल्लेख है।

१४वीं शताब्दीमें रयोसोन (१२७९–१३४९ ई०) १६७ आवलियोंके 'ब्याकु होक्कु-शा' अर्थात् श्वेतमणि मौ परम्पराएँ बनायीं, जो कांगो-सम्मई-इन-विहार, कायसा सुरक्षित हैं। इसके १३० से १३४ खण्डोंमें गणेश-पूजा-विधि वर्णन है।

'शिका-शो-जुजो' अर्थात् 'चार आचार्योंद्वारा उतारे चित्रों'में गणेशके चार रूप दिये गये हैं—

१—षड्भुज-गणेश,

२—विनायक (मूली और परशुसे युक्त),

३–सुवर्णगणपति और

४–षड्भुज युग्मरूप।

एइशान्द्वारा संकलित 'जो-योदाई-शू'के एक अध्याय गणेशकी साधनापर प्रकाश डाला गया है।

कानाजावा-बुन्को, कानाजावामें रखायी हुई 'शोज़ेन जुजो शू' की तीन आवलियोंमें गणेशके चार रूप चित्रित किये गये हैं— १-षड्भुज गणेश, २-युग्म-गणेश, ३-विनायक और ४-षड्भुज-गणेश।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि जापान गणेशके मू अङ्कनमें बहुत सम्पन्न है। जापानमें अङ्कित वि मूर्तियोंका सार इस प्रकार दिया जा सकता है—

१—विनायक (परशु और मूलीयुक्त)—

(१) महागणेश या महागणपति

'तन्त्रसार'में महागणेशके विविध ध्यान और मन्त्र दीख पड़ते हैं—(क) महागणपति दशभुज और रक्त वर्णके हैं तथा (ख) प्रकारान्तरसे महागणपति चतुर्भुज और गौरवर्ण भी हैं।

महागणपतिलोक—'तन्त्रसार'में 'महागणपति-लोक'का निम्नोक्त वर्णन देखा जाता है—

नवरत्नमयं द्वीपं स्मरेदिक्षुरसाम्बुधौ ।
तद्वीचिधौतपर्यन्तं मन्दमारुतसेवितम् ॥
मन्दारपारिजातादिकल्पवृक्षलताकुलम् ।
उद्धतरत्नच्छायाभिररुणीकृतभूतलम् ॥
उद्यद्दिनकरेन्दुभ्यामुद्भासितदिगन्तरम् ।
तस्य मध्ये पारिजातं नवरत्नमयं स्मरेत् ॥
ऋतुभिः सेवितं षड्भिरनिशं प्रीतिवर्द्धनैः ।
तस्याधस्तान्महापीठे रचिते मातृकाम्बुजे ॥
षट्कोणान्तस्त्रिकोणस्थं महागणपतिं स्मरेत् ॥
(द्वितीय परिच्छेदमें उद्धृत 'शारदातिलक' १३ । १२—१४)

'साधक ध्यानमें देखे कि इक्षुरसमय सिन्धुमें नवरत्नमय द्वीप है। इस द्वीपका प्रान्तभाग उस सिन्धुकी लहरोंसे प्रक्षालित और मन्द-मन्द समीरणसे परिसेवित है तथा वह मन्दार,पारिजात और कल्प वृक्षकी लता आदिसे परिपूर्ण है। उद्धृत रत्नोंकी कान्तिसे उस द्वीपका भूतल अरुणीकृत है तथा उदीयमान सूर्य और चन्द्रके द्वारा दिग्-दिगन्तर आलोकित है। उस द्वीपके मध्यभागमें नवरत्नमय पारिजात-वृक्षका चिन्तन करे। उस स्थानकी प्रीतिवर्धिनी छः ऋतुएँ निरन्तर सेवा करती हैं। उस पारिजात-वृक्षके नीचे एक महापीठ है। उसके ऊपर पञ्चाशत्-मातृका (वर्ण) मय कमल अङ्कित है। उसकी कर्णिकामें षट्कोण है और उसके भीतर एक त्रिकोणमण्डल है, जिसमें महागणपति विराजमान हैं, उनका स्मरण करे।'

(क) दशभुज, रक्तवर्ण महागणपतिका ध्यान इस प्रकार है—

हस्तीन्द्राननमिन्दुचूडमरुणच्छायं त्रिनेत्रं रसा-
दाश्लिष्टं प्रियया सपद्मकरया स्वाङ्कस्थया संततम् ।
बीजापूरगदाधनुस्त्रिशिखयुक्चक्राब्जपाशोत्पल-
व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशान् हस्तैर्वहन्तं भजे ॥
(परि० ९; शा० ति० १३ । १६)

'श्रीमहागणपतिका मुख श्रेष्ठ हाथीका है। उनके [मस्तकपर] अर्द्धचन्द्र विराजित है। उनके देहकी कान्ति अरुणव[र्ण] है। वे त्रिनयन हैं और अपनी गोदमें स्थित पद्महस्ता प्रि[या]द्वारा सप्रेम आलिङ्गित हैं। वे दस भुजाओंमें क्र[मशः] दाड़िम, गदा, धनुष, त्रिशूल, चक्र, पद्म, पाश, उ[त्पल], धान्यगुच्छ, स्वदन्त और रत्नकलश धारण किये हुए [हैं।] इस प्रकारके महागणपतिका ध्यान करें।'

गण्डपालीगलद्दानपूरलालसमानसान् ।
द्विरेफान् कर्णतालाभ्यां वारयन्तं मुहुर्मुहुः ॥
कराग्रधृतमाणिक्यकुम्भवक्त्रविनिःसृतैः ।
रत्नवर्षैः प्रीणयन्तं साधकान् मदविह्वलम् ।
माणिक्यमुकुटोपेतं रत्नाभरणभूषितम् ॥
(तन्त्रसार, परि० २ तथा शा० ति० १३ । १७-१[९])

'महागणपतिके गण्डयुगलसे जो मदप्रवाह झर रहा [है,] उसका पान करनेकी लालसासे युक्त भ्रम-समूह निर[न्तर] उसके चारों ओर भ्रमण करता रहता है। वे कर्ण-संचाल[नके] द्वारा उन भ्रमरोंका बारंबार निवारण करते रहते [हैं।] वे अपने हाथके अग्रभागमें धारण किये हुए माणिक्य-कुम्[भसे] विनिःसृत रत्नोंकी वर्षाके द्वारा साधकोंको परितृप्त क[रते] हैं। वे स्वयं मदविह्वल रहते हैं। उनके मस्तकपर माणि[क्य] निर्मित मुकुट विराजित है और उनके सर्वाङ्ग रत्नाभरणों[से] भूषित हैं। महागणपतिके इस रूपका मैं ध्यान करता हूँ[।']

उपर्युक्त ध्यानसम्मत महागणपतिका अट्ठाइस[ि] अक्षरोंका मन्त्र है—'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपत[ये] वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।'

(ख) महागणपतिका ध्यान—

इसमें मुक्ताके समान गौरवर्ण, चतुर्भुज गजानन[का] क्रोडमें स्थित शक्तिसहित ध्यान करते हुए द्वादशाक्षर मन्त्र-के जपका विधान है—'ॐ ह्रीं गं ह्रीं महागणपतये स्वाहा।'

उपर्युक्त ध्यानसम्मत महागणपतिका एकादशाक्षर मन्त्र है—'ॐ ह्रीं गं ह्रीं वशमानय स्वाहा।'

(२) हेरम्बगणपति—

'तन्त्रसार'में हेरम्बगणपतिके भी दो प्रकारके ध्यान मन्त्र हैं—(क) पञ्चशिमुख, दशभुज और [...] तथा (ख) चतुर्भुज हेरम्ब।

(क) हेरम्बगणपतिका ध्यान इस प्रकार है—

मुक्ताकाञ्चननीलकुन्दघुसृणच्छायैस्त्रिनेत्रान्वितै-
र्नागास्यैर्हरिवाहनं शशिधरं हेरम्बमर्कप्रभम्।
दृप्तं दानमभीतिमोदकरदान् टङ्कं शिरोऽक्षात्मिकां
मालां मुद्गरमङ्कुशं त्रिशिखिकं दोर्भिर्दधानं भजे॥
(तन्त्रसार, परि० २, शा० ति० ११। १०९)

"हेरम्बगणपति पाँच हस्तिमुखोंसे युक्त हैं। चार हस्तिमुख चारों ओर और एक ऊर्ध्व दिशामें है। उनका ऊर्ध्व हस्तिमुख मुक्तावर्णका है। दूसरे चार हस्तिमुख क्रमशः काञ्चन, नील, कुन्द (श्वेत) और कुङ्कुमवर्णके हैं। प्रत्येक हस्तिमुख तीन नेत्रोंवाला है। वे सिंहवाहन हैं। उनके कपालमें चन्द्रमा विराजित है और देहकी कान्ति सूर्यके समान प्रभायुक्त है। वे बलदृप्त हैं और अपनी दस भुजाओंमें वर और अभयमुद्रा तथा क्रमशः मोदक, दन्त, टङ्क, सिर, अक्षमाला, मुद्गर, अङ्कुश और त्रिशूल धारण करते हैं। मैं उन भगवान् हेरम्बको भजता हूँ।'

उक्त ध्यानसम्मत हेरम्बगणपतिका चतुरक्षर मन्त्र है—'ॐ गूं नमः।' 'तन्त्रसार'के चतुर्थ परिच्छेदमें जो 'गणेशस्तोत्र' मिलता है, उसमें हेरम्बतत्त्वकी भावना इस प्रकार व्यक्त हुई है—

मदोल्लसत्पञ्चमुखैरजस्रमध्यापयन्तं सकलागमार्थान्।
देवानृषीन् भक्तजनैकमित्रं हेरम्बमर्कारुणमाश्रयामि॥
(तन्त्रसार, परि० २ तथा शा० ति० ११। ४१)

'जो मदोल्लसित पञ्चमुखोंद्वारा देवता और ऋषियोंको निरन्तर सारे आगमोंका अर्थ पढ़ाते रहते हैं, भक्तोंके एकमात्र परम मित्र हैं और सूर्यके समान अरुणवर्ण हैं, उन हेरम्बदेवका मैं आश्रय लेता हूँ।'

(ख) हेरम्बगणपतिका प्रकारान्तरसे ध्यान--

तन्त्रसार (परिच्छेद, हेरम्ब-मन्त्र) में चतुर्भुज हेरम्बके इस प्रकार ध्यान और मन्त्र प्राप्त होते हैं—

पाशाङ्कुशौ कल्पलतां विषाणं दधत्स्वशुण्डाहितबीजपूरः।
रक्तस्त्रिनेत्रस्तरुणेन्दुमौलिर्हारोज्ज्वलो हस्तिमुखोऽवताद् वः॥

'हेरम्बगणपतिकी चार भुजाओंमें क्रमशः पाश, अङ्कुश, कल्पलता और गजदन्त हैं। उनकी सूँड़के ऊपर एक दाड़िम-फल है। उनका शरीर रक्त वर्णका है। वे त्रिनयन हैं और उनके सिरपर तरुण-चन्द्र सुशोभित है। गलेमें उज्ज्वल हार सुशोभित हो रहा है। वे गजानन हेरम्बदेव तुम्हारी रक्षा करें।'

'गं क्षिप्रप्रसादनाय नमः।'

(३) हरिद्रागणपति--

'तन्त्रसार'के द्वितीय परिच्छेदमें हरिद्रागणपतिके निम्नाङ्कित ध्यान और मन्त्र प्राप्त होते हैं—

हरिद्राभं चतुर्बाहुं हारिद्रवसनं विभुम्।
पाशाङ्कुशधरं देवं मोदकं दन्तमेव च॥

'हरिद्रा 'गणपति'का शरीर पीतवर्णका है। वे चतुर्भुज हैं तथा हरिद्रारञ्जित वस्त्र ही धारण भी करते हैं। उनके चारों हाथोंमें क्रमशः पाश, अङ्कुश, मोदक और दन्त विराजित हैं।'

हरिद्रागणपतिका एकाक्षर मन्त्र है—'ग्लम्'

'तन्त्रसार'के चतुर्थ परिच्छेदमें 'हरिद्रागणपति'का कवच भी उपलब्ध होता है।

(४) उच्छिष्टगणपति--

'तन्त्रसार'के द्वितीय परिच्छेदमें गाणपत्य-सम्प्रदायके अन्तर्गत उच्छिष्टगणपतिका ध्यान, मन्त्र, पूजा और प्रयोग-विधि प्राप्त होती है। उच्छिष्टगणपति चतुर्भुज और रक्तवर्ण हैं। उनका ध्यान इस प्रकार है—

रक्तमूर्तिं गणेशं च सर्वाभरणभूषितम्।
रक्तवस्त्रं त्रिनेत्रं च रक्तपद्मासने स्थितम्॥
चतुर्भुजं महाकायं द्विरदं सस्मिताननम्।
इष्टं च दक्षिणे हस्ते दन्तं च तदधः करे॥
पाशाङ्कुशौ च हस्ताभ्यां जटामण्डलवेष्टितम्।
ललाटं चन्द्ररेखाढ्यं सर्वालंकारभूषितम्॥

'उच्छिष्टगणपतिकी मूर्ति रक्तवर्ण तथा सब प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित है। उनके परिधेय वस्त्र रक्तवर्ण हैं। वे त्रिनयन हैं और रक्तवर्णके पद्मासनपर आसीन हैं। उनके चार हाथ हैं, शरीर विशाल है, दो दन्त हैं और मुखपर हास्यछटा है। उनके दक्षिण भागके ऊपरवाले हाथमें वरमुद्रा और निचले हाथमें एक दन्तका दर्शन होता है। वामभागके ऊपरवाले हाथमें पाश तथा निचले हाथमें अङ्कुश विद्यमान है। उनका सिर जटामण्डलसे वेष्टित है तथा उनके ललाटपर अर्धचन्द्र सुशोभित है। वे सब प्रकारके अलंकारोंसे विभूषित हैं।'

उच्छिष्टगणपतिका मन्त्र है—'ॐ हस्ति पिशाचिनि लिखे स्वाहा।'

'तन्त्रसार'में उच्छिष्टगणपतिकी पूजा विधिके विवरणमें लिखा है कि उच्छिष्टमुखसे और अशुचि-अवस्थामें ही इस देवताके ... आदि कार्य किये जाते हैं। किसी किसी

…के मतसे इस देवताकी आराधनामें पूजा नहीं करनी …, केवल मानसिक जप ही करना होता है। गर्गमुनि कहते … इनका साधक निर्जन वनमें बैठकर रक्तचन्दनसे लिप्त …ल चढ़ाते हुए इनकी पूजा करे।' दूसरे तन्त्रके मतसे …की अर्चना करके मोदक चढ़ाते हुए मन्त्र-जप करना … है। भृगुमुनिका मत है कि 'उच्छिष्ट गणपतिकी …धनामें फल खाते हुए जप करे।'

उच्छिष्टगणपति-पूजनका माहात्म्य इस प्रकार कहा गया …राजद्वारपर, अरण्य, सभा, गोत्र-समाज, विवाद, व्यवहार, …शत्रुसंकट, नौका, कानन और द्यूतकार्यमें, विपद्के समय, ग्रामदाह तथा चौर-भयमें, सिंह-व्याघ्र आदिके भयके समय उच्छिष्टगणपतिका मन्त्रजप करनेसे सब विघ्न दूर हो जाते हैं। इस मन्त्रसे दस सहस्र होम करनेपर राजा तत्काल वशीभूत होता है। उक्त मन्त्रका एक कोटि जप करनेपर साधकको अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उसमें आकाश-गमनकी शक्ति उत्पन्न होती है तथा सर्वज्ञताकी प्राप्ति होती है।

हेरम्बगणपति-सम्प्रदाय, स्वर्णगणपति-सम्प्रदाय एवं संतान-गणपति-सम्प्रदायके उपासकोंकी पूजा-पद्धति सामान्यतः वैदिक विधानके अनुसार देखनेमें आती है।

गुरु गणेश

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

महादेव गणेशके विषयमें बहुत-सी भ्रान्तियाँ भी हैं एवं …र्क भी। उदाहरणके लिये पञ्चमुख गणेशकी मूर्ति दक्षिण …में देखकर लोग पूछते हैं कि 'ब्रह्माके चार ही मुख …चारों वेदोंके प्रतीक; पर गणेशके पाँच मुख कैसे हो …। क्या वे उनसे भी बड़े हैं?'

देव-परिवारमें बड़े-छोटेका प्रश्न नहीं उठता। एक ही …त्माके भिन्न गुणोंको व्यक्त करनेवाली विभूतियोंके भिन्न … हैं। दुर्गासप्तशतीमें जब निशुम्भने देवियोंकी सेनाको …कर कहा कि 'तुम तो अन्य देवियोंका सहारा लेकर … रही हो,'—उस समय भगवतीने कहा था, 'अहं विभूत्या …भिः…'—'मैं अपनी ऐश्वर्य-शक्तिसे अनेक रूप धारण …के युद्धभूमिमें खड़ी थी; देखो, अब उन्हें समेट लेती हूँ।' …र तो निशुम्भके देखते ही-देखते समूची देवी-सेना भगवतीके …रमें विलीन हो गयी।

हमारे प्रत्येक देवता भिन्न-भिन्न विभूतिके द्योतक या …त्मक हैं। जिनकी, जैसी, जहाँ रुचि हो, वह वैसी, …ाँ उपासना करे। इसीलिये प्रत्येक देव परिवार प्रतीकात्मक …। स्कन्दपुराणमें दक्षिण भारतमें सम्भवद मृगमुखवाली …गनुकी तथा बकरीके मुखवाली शतशृङ्ग-कन्याकी गाथा …। गणेशका मुख भी एक महान् दैवी विभूतिको प्रकट …रता है।

यही बात पञ्चमुख-गणेशकी। गीतशास्त्रने जीवनके …म्बन्धमें जो अकाट्य सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, उनके …अनुसार प्रत्येक कर्मके पाँच हेतु हैं—अधिष्ठान, कर्ता, करण, विविध चेष्टा और दैव। इनमेंसे करण पंद्रह हैं—श्रोत्रादि पाँच ज्ञानकरण, वाग् आदि पाँच कर्मकरण तथा प्राणादि पाँच वायु चेष्टाकरण। इन पाँचों त्रिविध करणों तथा पाँच हेतुओंका अपनेमें समन्वयकर, इस विनाशवान् शरीरकी सब विघ्न-बाधाएँ हरकर हमें सन्मार्गपर लगानेवाले ये 'गणेश' हैं।

गणपति-प्रतिमाका अर्थ

गणपति हैं कौन? गणोंके गणपति। 'गणानां त्वा गणपति'—इस श्रुतिके अनुसार वे गणोंके अधिपति हैं। गणपति प्रतिमाका क्या अर्थ है—इसका स्पष्टरूपसे निरूपण एक बार स्वर्गीय डॉ॰ भगवानदासजीने किया था। वह व्याख्या प्रायः हम भूल गये हैं। यदि नित्य गणेशके अर्चनके समय हम उसे ध्यानमें रखें, यदि उनके रूपका हम एक अंश भी अपने जीवनमें उतार सकें, यदि हमारे नेता गणेशका यह अर्थ समझ लें तो आज हम और हमारा देश ही बदल जाय।

जिसके नेत्र इतने छोटे हैं कि वह दूसरेके अवगुण देखता ही नहीं या बहुत कम देखता है; जिसके कान इतने बड़े हैं कि सब ओरकी, सभी बातें उसके कानमें पड़ जाती हैं; पर उसका पेट इतना गम्भीर है कि सब कुछ देखते हुए रख लेता है, गहरे पेटका है—दूसरेकी निन्दा या बकवासमें समय नष्ट नहीं करता, जो ढूँढ़-ढूँढ़कर हाथीकी तरह पेट रखता है तथा जिसकी सवारी मूषक है—वनी चूहा किस … दूर जाता है, वहाँ ढेलेसे आता है; इस प्रकार सबकी ओरकी स्थिति देखकर … आगे बढ़ता है—

ऐसे जो देवता हैं, वे ही गणेश या गणपति हो सकते हैं। उनके दोनों हाथोंमें लड्डू हैं—यश तथा कीर्ति है; दोनों ओर सिद्धि और बुद्धि हैं। ऐसे गणेशको हम गणपति मानते हैं और उनकी उपासना करते हैं।

गणपतिका यह सांसारिक अर्थ हुआ। लेखके आरम्भमें हम आध्यात्मिक अर्थ दे चुके हैं। इन दोनोंके समन् तथा देव परिवारके इन गणपति देवताकी उपासनासे कार्यसिद्धि होता है। जो व्यक्ति गणेश-सहस्रनाम जप तथा विधिपूर्वक इनका अनुष्ठान करता है, उ लिये सिद्धि तथा सफलता अवश्यम्भावी है।

'मोदकप्रिय मुद-मंगलदाता'

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

जय गणेश, जय गणेश, जय गणेश देवा।
माता तेरी पारबती, पिता महादेवा॥
पान चढ़े फूल चढ़े और चढ़े मेवा।
लड्डुअनको भोग लगै, संत करें सेवा॥
एकदन्त दयावन्त चार भुजाधारी।
मस्तक सेंदूर सोहे मूसकी सवारी॥
जय गणेश० ॥

* * *

गणराज्य भारतमें गणदेवताका राज्य है शताब्दियोंसे। वैदिक कालसे ही हम प्रार्थना करते आ रहे हैं—

'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे।'

परात्पर ब्रह्मका नाम है—महागणाधिपति।

गजानन हैं—परात्पर ब्रह्मके अवतार।

कहा जाता है कि महागणाधिपतिने ही अपनी इच्छासे अनन्त विश्वोंका निर्माण किया। प्रत्येक विश्वमें अनन्त ब्रह्माण्डोंकी रचना की और प्रत्येक ब्रह्माण्डमें अपने अंशसे त्रिमूर्ति प्रकट की।

तो ऐसे हैं हमारे आदिदेव गणपति, गणेश, गजानन।

* * *

गणेशजीकी और विशेषताओंकी बात छोड़कर मुझे तो एक ही विशेषता सबसे अच्छी लगती है और वह है उनका मोदक-प्रिय होना।

मोदक, लड्डू, लड्डू !

क्या बढ़िया चीज !

मीठा-मीठा, गोल-गोल ! देखनेमें बढ़िया, खानेमें बढ़िया! कुछ लोगोंके मुँहमें इमली, नीबू, खटाई, अचार और मुरब्बाके नामसे पानी भर आता है; पर यहाँ तो लड्डू देखकर वैसा ही हाल होता है।

लड्डू कैसा भी हो, बेसनका हो या मोतीचूरका—दे ही तबीयत फड़क उठती है। पचास साल पहले लड्डू अच्छा लगता था, आज भी वैसा ही अच्छा लगता है।

रामकृष्ण परमहंसको जलेबी बहुत प्रिय थी। पेट भ रहता, फिर भी जलेबी आती तो उसे पा लेते। लोग पूछते कहते—'स्टेशनपर तमाम गाड़ियाँ खड़ी हों, पर अचान वाइसरायकी गाड़ी आ जाय, तो उसे तुरंत 'लाइन क्लीय मिल जाता है। वही हाल मेरे लिये जलेबीका है !'

कोई पैंतीस साल पहलेकी बात है। काशी आनेपर ए बन्धुसे परिचय बढ़ा। उनका सबसे छोटा भाई उस सम आठ-दस सालका रहा होगा। वह जब मुझे देखता तो जोर कह उठता—

'भट्ट कड़ी चट्ट, लड्डू गप्प, टका दक्षिणा !'

सोचता, शायद ऐसा कहनेसे मैं चिढ़ूँगा, पर लड्डू गप करनेमें चिढ़नेका सवाल ही कहाँ था !

* * *

हाँ, तो हमारे गणेशदादा भी हमारी ही बिरादरीके हैं। बचपनसे लड्डूके शौकीन।

बड़ी मुसीबत रहती जगज्जननीको। भभूतिया बाबा शंकरके घर, जहाँ भूँजी भाँगका ठिकाना न होता, वहाँ 'पूत मोदक को मचलै !'

आप बिस चाखैं, भैया षट्मुख राखैं देखि
आसन में राखैं बस बात जाको मचलै।
भूतन के छैया, आस-पास के रखैया और
काली के नथैया हूँ के ध्यान हूँ ते न चलै॥
बैल-बाघ-वाहन, बसनको गयंद खाल,
भाँग को धतूरे को पसारि देत अँचलै।

घर को हवाल यहै संकर की बाल कहै—
लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचले ॥

पिताजीके तबेलेका हाल तो और भी बुरा है । ...र देखिये—'रारि सी मची है त्रिपुरारि के तबेला में' ।—

बार बार बैल को निपट ऊँचो नाद सुनि
हुंकरत बाघ बिरुझानो रस रेला में ।
'भूधर' भनत ताकी बास पाइ सोर करि
कुत्ता कोतवाल को बगानो बगमेला में ॥
फुंकरत मूषक को दूषक भुजंग तासों
जंग करिबे को झुक्यो मोर हद हेला में ।
आपस में पारषद कहत पुकारि कछु
रारि सी मची है त्रिपुरारि के तबेला में ॥

अब भला बताइये, त्रिपुरारिकी हालत क्या होगी ? इस ...ा-चौकड़ीसे किसकी तबीयत न खीझ उठेगी ! जो देखो, ...रेपर गुर्रा रहा है । एक-दूसरेको फाड़ खानेको तैयार है ।

...ब शिवजी यदि धूनी रमानेको त्रिशूल लेकर चल पड़ें ...इसमें आश्चर्यकी क्या बात ?

...पु को बाहन बैल बली बनिताहू को बाहन सिंहहि पेखि कै ।
...े को बाहन है सुत एक सुभूजो मयूर के पच्छ बिसेखि कै ॥
...न है कबि 'चैन' फनिंद के बैर परे सब ते सब लेखि कै ।
...हूँ लोक के ईस गिरीस सु जोगी भए घर की गति देखि कै ॥

विषमता ही विषमता !
विरोध ही विरोध !!
कहीं बैल तो कहीं बाघ । कहीं चूहा तो कहीं साँप ।
शिवका तबेला माने विरोधाभासोंका जमघट ।

और इन सारे वैर-विरोधोंके कालकूटको पी जानेवाला, ...स्ते-हँसते गटक जानेवाला ही तो नीलकण्ठ है, सदाशिव ...शंकर है ।

उसीके यहाँ ..

जिन्हें कहीं ठिकाना नहीं, उन्हें शिवजीकी बारातमें बराती बननेका सौभाग्य हासिल है ।

भोलेबाबाके दरबारमें किसीका प्रवेश निषिद्ध नहीं ।

* * *

हाँ, तो इन्हीं विरोधाभासोंके बीच पलते हैं—गणेशजी !
कौन गणेशजी ?

वही, जो शिवजीके सपूत हैं—और वही, जिनकी पूजा करते हैं अपने विवाहके अवसरपर शिवजी भवानीके साथ—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि ।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि ॥
(मानस १ । १००)

इन गणेशजीकी पूजा सबसे पहले की जाती है ।
प्रत्येक मङ्गल-कार्यमें पहला नंबर गणेशजीका ।
विद्या पढ़ने चलिये, गुरुजी पाटीपर लिख देंगे—
'ॐ नमः सिद्धम् !'
पढ़ो बेटा, 'ॐ नमः सिद्धम् !'

बच्चा ठीक नहीं बोल पाता । 'ओनामासीधम !' कहकर किसी प्रकार पीछा छुड़ाता है । और सिद्धि-सदन गणेशजी इतनेसे ही खुश ।

दीवालीमें लक्ष्मी-पूजन करिये । गणेश-लक्ष्मीकी पूजा करिये । नयी बहीमें सबसे ऊपर लिखिये—'श्रीगणेशाय नमः ।'

विवाह-शादी है, कथा-पूजा है—सबसे पहले गणेशजीका पूजन अनिवार्य ।

पत्र लिखिये ! पुस्तक लिखिये, सबमें गणेशकी वन्दना सबसे पहले ।

* * *

तुलसीबाबा दर्खास्त लिखते हैं—रामजीको; किंतु 'विनयपत्रिका'का श्रीगणेश करते हैं—गणेश-वन्दनासे—

गाइये गनपति जगबंदन । संकर-सुवन भवानी-नंदन ॥
... गज-बदन बिनायक । कृपा-सिंधु सुंदर सब लायक ॥
। बिद्या-बारिधि बुद्धि-बिधाता ॥

। सदा प्रकार तुम्हारी वन्दना करता
हो, भवानी ... । सिद्धिदोके
समस्त ... । कृपासिन्धु
... हो । मोदक

आप मतलबके काम नहीं कर पाते, व्यर्थके काम करने लगते हैं।

मिट्टीके ढेले उठाकर पीसने लगते हैं; घास काटने लगते हैं; अपनी उँगलियोंसे अपने ही शरीरपर लिखने लगते हैं।

सपना देखते हैं तो पानी, ऊँट, सूअर, मुण्डित मस्तकवाले आदमी दीखते हैं। हवामें उड़ते हैं तो लगता है, कोई पीछा कर रहा है!

* * *

विनायकके इन उत्पातोंसे बचनेका उपाय?

उपाय भी विनायक।

तुम्हींने दर्द दिया, तुम्हीं दवा देना।

विनायक विघ्ननाशन भी हैं।

'सर्वविघ्नोपशान्तये'—गणेशजीकी पूजा कर लीजिये।

'जय गणेश देवा' कहकर लड्डुओंका भोग लगा दीजिये, विघ्न-बाधाएँ कपूर बनकर उड़ जायँगी।

दो लड्डू चढ़ाये कि काम बना।

निषाद कहता है—

'तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें॥'

(मानस २। १८९)

आपको तो निषाद-जैसा खतरा उठानेकी भी जरूरत नहीं। सिर्फ दो लड्डू चढ़ानेकी देर है। फिर वह प्रसाद तो आपके ही हाथमें रहेगा। 'दुहूँ हाथ मुद 'मोदक'' लोक भी बनेगा, परलोक भी। मुद भी, मंगल भी।

आइये—गणेशजीसे हम प्रार्थना करें—'महाराज! ऐसी कृपा करो कि हम जो शुभ कार्य करें, वह सब निर्विघ्न पूरा हो'—

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटिसमप्रभ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥

दैनिक जीवनमें गणेशका स्थान

(लेखक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी)

देशमें शायद ही ऐसा कोई हिंदू परिवार होगा, जहाँ श्रीगणेशजीकी पूजा न होती हो। सभी हिंदू-परिवारोंमें श्रीगणेशकी पूजा व्याप्त है। 'गणेश'-शब्दका विग्रह है—गण ईश। 'गण'का अर्थ देवताओंका समूह और 'ईश'का अर्थ उसका स्वामी है। अतएव 'गणेश'का अर्थ हुआ 'देवताओंके समूहका स्वामी', जो परमपिता परमेश्वरके अतिरिक्त अन्य कोई हो ही नहीं सकता। अतएव गणेशकी पूजासे हम प्रभु परमेश्वरकी ही पूजा करते हैं।

श्रीगणेशजीके पिता जगद्-विख्यात श्रीशिवजी हैं। इनकी माता जगज्जननी श्रीपार्वतीजी हैं और इनके भाई युद्धविद्या विशारद श्रीकार्तिकेयजी हैं। ऐसे छोटे और महान् परिवारके एक सदस्य श्रीगणेशजी हैं। इनके विषयमें केवल इतना ही संकेत करना आवश्यक होगा कि यदि महाभारतके रचयिता श्रीवेदव्यासको श्रीगणेशजी-जैसा लिखनेवाला न मिला होता तो यह असम्भव था कि महाभारत-जैसा महान् ग्रन्थ आज हमलोगोंको देखनेको मिला होता। श्रीगणेशजीके गुणोंकी महत्ताको समझते हुए ही अपने शास्त्रकारोंने इनकी पूजाको प्रथम स्थान दिया है।

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥

सभी हिंदू-परिवारोंमें बच्चोंको जब विद्या-आरम्भ करायी जाती है, तब उनसे गणेशजीका पूजन कराया जाता है, जिससे भविष्यमें बच्चा पढ़े, इच्छानुकूल विद्या प्राप्त करे, परीक्षामें उत्तीर्ण हो और वह श्रेष्ठ विद्वान् बने। ठीक उसी प्रकार विवाहके लिये भी पद-पदपर गणेश-स्मरण होता है, जिससे वर या कन्याके मनोनुकूल जोड़ा मिले, भविष्यमें दोनोंका जीवन सुखी हो और वे योग्य संतान प्राप्त करें। ठीक इसी प्रकार घरसे बाहर जानेके समय प्रायः गणेश-स्मरण किया जाता है, जिससे यात्रा आनन्द सम्पन्न हो। व्यापार-व्यवसायके करनेके पूर्व भी गणेशजीकी वन्दना की जाती है, जिससे लाभ हो। किसान तो गणेशजीको याद करना भूलते ही नहीं। गणेश-चतुर्थीके दिन उनके मन्दिरोंमें पूजनके घड़ी-घंट बजते ही हैं। इस प्रकार श्रीगणेशजी जीवनके प्रत्येक कार्यमें हमारे साथ रहते हैं और उनकी कृपासे हम मङ्गलको प्राप्त करते हैं।

गणतन्त्रके आदि प्रणेता एवं नेता गणेश

(लेखक—श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी, एम्०ए०, साहित्यरत्न)

राष्ट्र-धर्म प्रत्येक युगमें भारतका प्रधान धर्म रहा है। इस देशका 'गणपति'—राष्ट्रपति वही बन सकता है, जो देशको भौतिक ऋद्धि-सिद्धि-समृद्धिसे परिपूर्ण कर लोगोंको परमात्मतत्त्वकी ओर भी अग्रसर कर सके। इसके लिये आवश्यकता है—सत्-असत्-विवेचनी बुद्धिकी। यही हेतु है कि हमारे 'गणपति'—राष्ट्रपतिका सिर हाथीके समान, धड़ मनुष्य-जैसा तथा वाहन भी चूहे-जैसा ही होना चाहिये। हाथीकी एक यह भी विशेषता है कि वह कभी जोशमें नहीं आता; किंतु यदि परिस्थितिवश उसे जोश आ जाय तो उसका जोश कभी व्यर्थ नहीं जाता। इसी प्रकार 'राष्ट्रपति'में भी गुरुता और गम्भीरता—दोनों होनी चाहिये। गणपतिके वाहन मूषककी भी कुछ विशेषताएँ हैं। चूहा बिलके अंदर गुप्त रहता है, पर आवश्यकता पड़नेपर किसी वस्तुको नष्ट करनेके पहले उसकी जड़ें काट देता है। उसी प्रकार राष्ट्रपतिको भी अपनी नीति गुप्त रखनी चाहिये और विपक्षी राष्ट्रोंका विनाश करनेके पहले उनकी लोक-प्रतिष्ठाको भङ्ग करना चाहिये। प्रचारद्वारा उनकी अन्ताराष्ट्रीय स्थितिको निर्बल बना देना चाहिये।

हमारे बुद्धिमान् गणेशजीमें बुद्धिकी विशिष्टता भी है। इसीलिये उन्हें ऋद्धि-सिद्धि-दाताके साथ 'बुद्धि विधाता' भी कहा जाता है। बुद्धिमान् होनेके कारण ही वे प्रथम-पूज्य-पद प्राप्त करनेमें समर्थ हो सके हैं। प्रथम-पूज्य होनेकी कथाका वर्णन भिन्न-भिन्न ढंगसे हुआ है, किंतु गणेशजीको यह राष्ट्रपतित्व प्रथम-पूज्य पद केवल सम्मानमें नहीं, अपितु कठिन परीक्षाके बाद प्राप्त हुआ है। इस 'गणपति'के प्रथम पूज्य पदकी लिखित परीक्षामें वेदव्यासद्वारा गणेशजीको योग्यता-क्रमके अनुसार प्रथम स्थान दिया गया। गणेशजी इतनी द्रुतगतिसे लिखते थे कि उतनी शीघ्रतासे व्यासजी श्लोकोंकी रचना ही नहीं कर पा रहे थे। फलस्वरूप उन्हें यह प्रतिबन्ध लगाना पड़ा कि श्लोकका अर्थ समझे बिना वे (गणेशजी) उसे लिपिबद्ध न करें। भगवान् वे[illegible] व्यासद्वारा रचित श्लोकोंके अर्थ-गाम्भीर्यको समझते हुए उ[illegible] द्रुतगतिसे लिखना गणेशजीकी बौद्धिक प्रतिभाका अनु[illegible] उदाहरण है। इसी प्रकार एक और भी परीक्षा हुई। उ[illegible] प्रथम-पूज्य पदके अभ्यर्थियों—सभी देवताओंके समक्ष सम्[illegible] विश्वकी परिक्रमा करके सर्वप्रथम आनेका प्रश्न रखा गया[illegible] अन्य देवता प्रश्नकी बारीकी न समझकर शारीरिक भाग[illegible] दौड़ करने लगे, किंतु गणेशजीने अपनी सूक्ष्म सूझ-बूझ[illegible] विश्वकी परिक्रमा विश्व निर्माता श्रीरामके नामकी परिक्रम[illegible] लगाकर कर ली। बुद्धि-कौशलद्वारा इसमें भी उन्होंने प्रथम[illegible] स्थान प्राप्त कर लिया तथा समस्त जनमतको अपनी ओर[illegible] आकृष्ट कर सर्वसम्मतिसे 'गणपति'—'राष्ट्रपति'के प्रथम पूज्य पदपर प्रतिष्ठित हो गये।

ऐसे बुद्धिमान्‌के गणपति—राष्ट्रपति बनते ही सारा देश धन-जनसे सम्पन्न होने लगा। स्वयं सिद्धि-बुद्धि अनुचरी—अर्धाङ्गिनी बनकर गणपतिकी सेवा करने लगीं। क्षेम और लाभ पुत्र बनकर सम्पूर्ण समाजके कुशल-क्षेमके लिये कार्यमें जुट पड़े। भौतिक समृद्धिके साथ-साथ अन्तःशान्ति और अनिर्वचनीय आनन्दकी प्राप्तिसे लोग कृतकृत्य हो उठे। परिणामस्वरूप राष्ट्रके नेता, प्रणेता, कर्णधार—गणपति (राष्ट्रपति) की स्तुति-प्रशस्तिके जयकारोंसे सभी दिग्दिगन्त गूँजने लगे, जिसकी प्रतिध्वनि आज भी गणेशजीकी वन्दनाके माध्यमसे सुननेको मिलती है। सभी देवताओंने गणेशजीकी इस राष्ट्र सेवासे प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया।

'गणेशो विघ्नहर्ता हि सर्वकामफलप्रदः।'

गणतन्त्रके निर्माता गणेशजीके आदर्शोंको अपनाकर आजका यह गणतन्त्र—प्रजातन्त्र शासन भी देशका सर्वाङ्गीण सार्वभौमिक विकासकर राष्ट्रको सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक शक्तिशाली राष्ट्रके रूपमें संसारके समक्ष उपस्थित कर सकता है।

राष्ट्रोद्धारक श्रीगणपति

(लेखक—श्रीत्रिभुवनदास दामोदरदास सेठ)

गणेशजीका जन्म राष्ट्रके अभ्युदयकी प्रेरणा देता है। गणेशजीके जन्मके पहले संघभावका बिल्कुल ही अस्तित्व न था। गणेशजीने दस वर्षमें सबको संगठित और उन्नत किया, जिससे वे सम्मानके पात्र बने। इतना ही नहीं, उनका स्थान पूजामें प्रथम हुआ, जो स्थान अबतक चला आ रहा है। गणेशजीने धूम्राक्ष, नरान्तक, देवान्तक आदि राक्षसोंका नाश किया, जो राज्य करते समय सज्जनोंको पीड़ित करते थे। इससे गणेशजी सर्वपूज्य बन गये तथा विघ्ननाशक माने गये। एक पतित राष्ट्र या जातिकी उन्नति थोड़े समयमें कैसे हो गयी, यह राष्ट्रीय उन्नतिके लिये आदर्श एवं अनुकरणीय है। यह उन्नति गणेशजीके संगठन और बुद्धिके बलसे सम्पन्न हुई।

गणेशजीकी सारी योजनाएँ गुप्त रहती थीं; उनके अनुसार काम हो जानेपर ही सबको पता चलता था। गणेशजीकी विद्वत्ता अपार थी, जिससे छोटी उम्रमें ही वे सारे शास्त्रोंको सीख गये।

गणेशजी पाखण्डवादका खण्डन करके शास्त्रोंका सार लेकर सबकी एकरूपता करनेमें अद्वितीय हैं। वे श्रेष्ठ वक्ता एवं ब्रह्मविद्याके स्वामी हैं। इस कारण उनकी योजनाओंमें अध्यात्मविद्याकी प्रधानता रही है। गणेशजी महान् गणितज्ञ और इतिहासके ज्ञाता हैं तथा 'गणक गणितागम-शास्त्रविद् गणकश्लाघ्य' कहे गये हैं।

युद्धमें भी गणेशजी अजेय हैं। कार्तिकेय सेनापति थे, पर राष्ट्र-संगठनके विषयमें वे इतने प्रख्यात न थे। गणेशजी राष्ट्र-संगठन और सेना-सञ्चालन—दोनों ही कार्योंमें जगत्-प्रसिद्ध हैं। गणेशजीमें अनुपम बुद्धिमत्ता है। जो काम दूसरोंसे नहीं हो सकता, उसे वे अपनी बुद्धि और बलसे सहज ही कर लेते हैं। दूरदृष्टि, प्रज्ञा, बुद्धि और धारणाशक्तिका अद्भुत सम्मिश्रण गणेशजीमें पाया जाता है।

इन विनायकका उपनयन कश्यप ऋषिके आश्रममें हुआ था। उस आश्रममें यज्ञ तो होता ही रहता था; वहाँ बटुकको लाकर उसे यज्ञोपवीत, कौपीन, दण्ड एवं मेखला भी धारण कराये गये। तब विनायकने भिक्षा माँगी। भिक्षामें वरुणदेवने विनायकको 'पाश' दिया और उस पाशसे शत्रुओंको बाँधनेकी रीति सिखलायी। भगवान् शंकरने 'त्रिशूल' प्रदान किया और शत्रुओंपर उसे चलानेकी रीति सिखलायी। परशुरामजीकी माता रेणुकादेवीने 'परशु'-प्रदान किया और आशीर्वाद दिया कि 'तू शत्रुओंका विनाश करेगा'। इस प्रकार वहाँ उपस्थित देवताओंने विनायकको अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये और सबने सामूहिकरूपसे आशीर्वाद दिया कि 'इन शस्त्रोंसे तू शीघ्र दुष्टोंका नाश करेगा'। इस प्रकार राष्ट्रोद्धारके कार्यमें गणपतिको अलौकिक स्थान प्राप्त हो गया।

गणपतिका राष्ट्र-संगठन-तत्त्व बड़ा ही सरल और बोधप्रद है तथा वह उन्नतिमें सहायक है। हिंदुओंके घर-घर गणेशकी पूजा होती है; परंतु गणेशजीके द्वारा किये गये कार्योंकी ओर रत्तीभर भी ध्यान नहीं दिया जाता। उनको समझनेका भी प्रयत्न नहीं किया जाता, तब फिर उनके आचरणकी तो बात ही कैसे की जा सकती है। किंतु जो राष्ट्र उनका अनुसरण करता है, वह उन्नत बनता है।

जय जय मतंग-आनन !

गान सरस अलि करत परस मद मोद रंग रचि।
उघटत ताल रसाल करन चल चाल चोर सचि॥
चिंतामनिमय जटित हेमभूषनगन सज्जत।
चलत लोल गति मृदुल भंग नयतुंड बसज्जत॥
लखि प्रनति समय मुख तात को बिहँसि मातु लिय लाय उर।
जय जय मतंग-आनन अमल, जय जय जय सिद्धि-लोक-गुर॥

—श्रीमुकवि गुमान मिश्र

लोकमान्य तिलकद्वारा प्रवर्तित गणेशोत्सव

(लेखक—श्रीकाशीनाथजी सोमण, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

पराधीन देशका स्वातन्त्र्य संग्राम उसी दिनसे आरम्भ होता है, जिस दिनसे उसके पैरोंमें गुलामीकी जंजीर पड़ी है। और उस गुलामीको नष्ट करनेके कई मार्ग हो सकते हैं। शत्रुके पाँव पड़नेसे लेकर उसके पैरोंको खींचनेतक सभी मार्ग वैध ही हैं। अपना देश भी उसके लिये अपवाद नहीं है। इसीलिये स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये 'साधनाना अनेकता'—यह लोकमान्यका साधन-सूत्र था। स्वराज्यकी प्राप्तिके मार्गपर जिस साधनसे एक पैर भी आगे पड़ता हो, उस साधनका उपयोग करनेमें लोकमान्य कभी हिचकिचाते नहीं थे। इसी दृष्टिसे महाराष्ट्रमें लोकमान्यने सर्वजनीन गणेशोत्सव शुरू किया था। गणेशोत्सव-जैसे धार्मिक और शिवाजी-जयन्ती-जैसे ऐतिहासिक उत्सवोंका उपयोग स्वातन्त्र्य-संग्रामके साधन समझकर ही किया गया। घर-घरमें व्यक्तिगत रूपसे मनाये जानेवाले गणेशोत्सवको उन्होंने सार्वजनिक उत्सवरूप दिया; गणेशोत्सवको जन-जागरणका एक प्रभावशाली साधन बना डाला।

किसीके मनमें यह बात आ सकती है कि 'लोकमान्यने राम, कृष्ण, शंकर, विष्णु आदिके स्थानपर गणेशजीको ही क्यों चुना ?' उसके कई कारण हैं। सनातन वैदिक हिंदूधर्मके उपास्य देवताओंमें श्रीगणेशजीका महत्त्व असाधारण है। चाहे जो मङ्गल-कार्य हो, बिना गणेश-पूजनके उसका आरम्भ हो ही नहीं सकता। यहाँतक कि अन्य किसी देवताका पूजन या महोत्सव मनाते समय भी पहले महागणपतिका पूजन और स्मरण किया जाता है। श्रीगणेशजीका इतना महत्त्व इसीलिये है कि वे विघ्नहर्ता हैं। गणेशजी वेदकालसे ही परिचित एवं पूज्य माने जाते हैं। ऋग्वेदमें 'गणानां त्वा गणपतिम्'-नामक ऋचाको 'गणपति-सूक्त' कहते हैं। 'गणपति-अथर्वशीर्ष'में गणपतिको ओंकाररूप माना गया है। उसी रूपमें गणेशजीकी प्रार्थना और पूजाकी परम्परा अखण्डरूपसे चलती आयी है। कोई किसी भी देवताका उपासक क्यों न हो, वह गणेशजीका विरोधी नहीं हो सकता। गणपतिका प्रथम वन्दन करके ही उपासक अपने उपास्य देवताकी पूजा किया करता है।

हिंदूधर्ममें शैव-वैष्णव-[illegible] * उपास्यनायक हैं। इनमें गणपतिकी उपासना करनेवालेको 'गाणपत्य' कहा जा[illegible] है। उत्तर भारतकी अपेक्षा दक्षिण भारतमें यह उपास[illegible] अधिक प्रचलित है। महाराष्ट्रमें गणपतिके उपासक अधि[illegible] हैं। पेशवाओंके राजत्व-कालमें गणेशोत्सव बड़ी धूम धाम[illegible] मनाया जाता था। पेशवा शासक स्वयं गणपतिके उपासक थे[illegible] सवाई माधवराव पेशवाके शासनकालमें तो पूनाके प्रसि[illegible] शनिवारवाड़ा-नामक राजमहलमें भव्य गणेशोत्सव मना[illegible] जाता था। अंग्रेजोंके आते ही पेशवा-शासन लगभग समाप्त प्राय हो गया, पर गणेशोत्सवकी परम्परा बनी ही रही[illegible] मजूमदार, पटवर्धन, दीक्षित आदि सरदारोंके परिवारों[illegible] गणेशोत्सव ठाट-बाटसे मनाया जाता रहा।

पर गणेशोत्सवको सार्वजनिक रूप देनेके केवल ये ही कुछ कारण नहीं थे। अंग्रेजी शासन यहाँ स्थिर हो चुका था। लोगोंके विचारोंमें भ्रष्टता आने लगी थी। धर्मके सम्बन्धमें लोग उदासीन-से दिखायी देने लगे। युवकवर्गमें अपने आचार विचारोंके प्रति घृणा और अंग्रेजी आचार-विचारोंके प्रति प्रेम बढ़ने लगा था। सारे समाजमें गरमाहट पैदा कर राष्ट्रीय भावनाको जगाना आवश्यक था। लोकमान्यने सोचा कि गणेशजी ही एक ऐसे देवता हैं कि जो समाजके सभी स्तरोंमें पूजनीय हैं। उन्हींका उत्सव मनाकर अस्त-व्यस्त समाजको संघटित किया जा सकेगा; नवयुवकोंमें राष्ट्रीय भाव प्रज्वलित किये जा सकेंगे एवं राजनीतिक आन्दोलनको बढ़ावा मिल सकेगा। गणेशोत्सव एक धार्मिक उत्सव होनेके कारण अंग्रेज शासक भी उसमें दखल नहीं दे सकेंगे। धार्मिक उत्सवोंमें हस्तक्षेप करनेसे पहले शासकोंको कई बार सोचना होगा। इसके अतिरिक्त गणेशोत्सव शुरू करनेमें और भी एक कारण था। ईसाइयों तथा मुसल्मानोंके क्रिसमस या मुहर्रम-जैसे महोत्सवोंमें, ताजियोंके जुलूसमें हिंदू-समाजके निम्न श्रेणीके लोग भी सम्मिलित हुआ करते थे। यह देखकर लोकमान्यके दिलमें बेचैनी महसूस होती थी। अतः उत्सवप्रिय जनताको एक ऐसा महोत्सव मिलना चाहिये था, जिसमें हिंदू-समाजके सभी वर्ग एक साथ सम्मिलित हो सकें। इसी विचार मन्थनसे उनके मनमें सार्वजनिक

गणेशोत्सवकी कल्पना उदित हुई। सन् १८९३ में पूनामें यह कल्पना कार्यान्वित हो गयी।

लोकमान्य तिलकने गणेशोत्सवको स्वाधीनताके आन्दोलनका एक प्रभावशाली साधन बनाया। उन्होंने गणेशोत्सवको राष्ट्रीय महोत्सवके रूपमें ही प्रसारित किया। फिर भी, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, सार्वजनिक या गणेशोत्सव मनानेके पीछे यह भी एक विचार कार्य कर रहा था कि अन्य धर्मवालोंके त्योहार, जुलूस आदिका बुरा असर हिंदू समाजके नवयुवकोंपर न पड़े। सन् १८९३ में ही गणेशोत्सवको सार्वजनिक रूप मिलनेका भी यही कारण था। सन् १८९३ में बंबई तथा महाराष्ट्रके चंद अन्य नगरोंमें भी हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए। इसी सम्बन्धमें पूनामें एक सभा हुई। मुस्लिम-उपद्रवोंका सामना करनेके लिये हिंदू-समाजको किस प्रकार संगठित किया जाय, इस बारेमें उस सभामें विचार हुआ। सार्वजनिक गणेशोत्सव उसी विचारकी फलश्रुति थी। महाराष्ट्रमें भाद्रपद और माघ मासकी शुक्लचतुर्थी-तिथिको गणेश-देवताका उत्सव मनानेकी परम्परागत परिपाटी है। अब यह तय हुआ कि भाद्रपद शुक्ल-चतुर्थीसे लेकर भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्दशी (अनन्तचतुर्दशी) तक गणेशोत्सव मनाया जाय। दस दिनके इस सार्वजनिक गणेशोत्सवमें धार्मिक पूजा-अर्चाके साथ-साथ कीर्तन-प्रवचन-व्याख्यान भी आयोजित किये जायँ। समाजको स्वराज्यके आन्दोलन हेतु सुसंगठित बनानेका प्रयत्न किया जाय। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता स्वर्गीय खानखोजेने लिखा है कि "पूनामें तिलकजीके नेतृत्वमें गणेशोत्सवका प्रारम्भ हुआ। वह केवल कोई धार्मिक उत्सव नहीं था, देशभक्तिके प्रसारके लिये शुरू हुआ एक राष्ट्रीय महोत्सव था। उसे चंद ही दिनोंमें राष्ट्रधर्मका स्वरूप प्राप्त हुआ। पूनासे प्रेरणा लेकर वर्धा, नागपुर, अमरावती आदि नगरोंमें भी गणेशोत्सव मनाया जाने लगा।" खानखोजे आगे चलकर लिखते हैं कि "'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे'—इस व्यापक दृष्टिसे गणराज्य दिलानेवाले गणपति हमारे स्वातन्त्र्यके देवता हैं, इस प्रकारका प्रचार शुरू हुआ। गणेशोत्सवके माध्यमसे प्रभावशाली और देशभक्त [illegible] द्वारा क्रान्तिकारी [illegible] सुलभ हुआ। धार्मिक [illegible] गणेशोत्सवमें इसलिये [illegible] तथा अन्य राजनीतिक कार्यकर्ता गणेशोत्सवके अवसरपर व्याख्यान द्वारा स्वराजका ही प्रचार किया करते थे।"

गणेशोत्सवके अवसरपर दिये गये एक व्याख्यानमें लोकमान्यने कहा था कि "गणपतिकी आराधना करते समय स्वराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य राज्यकी माँग करनेकी परिपाटी प्राचीन समयसे चली आयी है। ये शब्द जिस मन्त्रमें आये हैं, वह कोई नया नहीं। बंगालके विभाजन-जैसे आन्दोलनके बाद वह मन्त्र गठित नहीं हुआ। वह हमारा प्राचीन मन्त्र है। हाँ, हम उसे अंग्रेजोंके यहाँ आनेके बाद भूल-से गये हैं। मन्त्रके प्राचीनत्वका स्मरण दिलानेके लिये ही हम यह गणेशोत्सव मना रहे हैं। इस मन्त्रमें कई शब्द हैं। सभी समानार्थी नहीं हैं। यों ही फिजूल शब्दोंका इस्तेमाल करनेकी हमारे ऋषियोंकी आदत नहीं थी। अतः नाहकका शब्दजाल नहीं बनायें। मन्त्रकी प्रथम सीढ़ीसे शुरू करें, अन्तिम सीढ़ीतक गजानन देवता आपको पहुँचा देंगे।"

'गणपति' शब्दसे ही प्रतीत होता है कि वे गणोंके पति हैं—गणोंके अधिपति हैं। यानी सब समाजके—जनताके—ये राष्ट्र देवता हैं। समाजमें एकाईका भाव कैसे पैदा किया जा सकता है, इस अनुशासनके पालनका पाठ भी हमें गणेश देवताकी उपासनासे मिलता है। आत्मसंयम कैसे किया जाय, इसकी शिक्षा भी हमें गणेशोत्सवसे मिलती है; क्योंकि गणेश-देवता बुद्धि और शक्ति, दोनोंके प्रतीक हैं।

लोकमान्यने राष्ट्रोद्धारका विशिष्ट उद्देश्य मनमें रखकर इस राष्ट्रीय उत्सवको प्रसारित किया था। तिलकसे प्रेरणा लेकर अन्य राजनीतिक कार्यकर्ताओंने भी इसमें अपना हाथ बँटाया। हिंदुओंको संगठित करनेका एक साधन समझकर गणेशोत्सव शुरू किया गया। शुरू-शुरूमें वह एक धार्मिक उत्सवके रूपमें मनाया गया, पर कुछ ही वर्षोंमें गणेशोत्सवको राष्ट्रीय रूप प्राप्त हुआ। सब भारतीय एक हैं—इस प्रकार एकताका मन्त्र इस महोत्सवसे दिया गया। [illegible] परस्परमें छुआछूतका भाव भले ही रहा हो, गणेशोत्सवके अवसरपर समान स्तरपर ही सभी काम करने लगे। यहाँतक कि पूनामें मुसलमान भाइयोंकी ओरसे भी राष्ट्रीय भावनासे गणेशोत्सव मनाया गया। गणेशोत्सवके [illegible] में मुस्लिम नेता भी सम्मिलित होने लगे। इस सम्बन्धमें सन् १९०८ की एक घटनाका उल्लेख करना यहाँ [illegible]

होगा। लोकमान्य तिलकके 'केसरी-कार्यालय'में प्रसिद्ध नेता श्रीसैय्यद हैदरी रेझाका व्याख्यान हुआ। आपका विषय था—'हिंदू-मुस्लिम-आपसी-सम्बन्ध'। उसी समय पूनाके जिलाधीश महोदयने रेझा साहबको मिलनेके लिये बुलाया। उन्होंने उनको समझाया, 'क्या आपको यह मालूम नहीं कि यह गणेशोत्सव मुसल्मानोंके खिलाफ है; किंतु फिर भी आप उसमें सम्मिलित हो रहे हैं। ऐसा ही है तो फिर आप हिंदू ही क्यों नहीं हो जाते !' रेझा साहबने झट उत्तर दिया—'ऐसा होना न होना मेरी मर्जीपर निर्भर है; उसमें आपके दखल देनेकी कोई जरूरत नहीं।' रेझाजीका वह व्याख्यान श्रीमान् नरसिंह चिन्तामणि केलकरकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ था।

सार्वजनिक गणेशोत्सवमें सामाजिक-धार्मिक सुधार तथा राष्ट्रीय भावनाको प्रखर बनानेका काम गीत-गायकोंने किया, जिन्हें उस समय 'मेळा' नामसे सम्बोधित किया जाता था। मेळा यानी मण्डली। बालक-बालिकाओं तथा युवकोंका एक गुट होता था, जिसके सभी सदस्य विशिष्ट गणवेशधारी हुआ करते थे और यह अनुशासित मण्डली गणेशोत्सवके सुअवसरपर राष्ट्रीय गीत गाया करती थी। गणेशोत्सवके प्रति समाजको आकर्षित करनेका बहुमूल्य कार्य इस मेळा मण्डलीने किया। इस मेळा-मण्डलीके बिना सार्वजनिक गणेशोत्सव इतना प्रख्यात कभी न हो पाता। मेळा-मण्डलीका नाम गणेशोत्सवके साथ जुड़ा हुआ है।

पूनामें १८९३ ई०में एक राष्ट्रीय महोत्सवके रूपमें गणेशोत्सवकी नींव डाली गयी। लोकमान्यकी प्रेरणासे महाराष्ट्रभरमें उसका विस्तार हुआ। महाराष्ट्रका प्रत्येक नगर और नगरका मुहल्ला मुहल्ला 'गणपति बाप्पा मोरया' के जयघोषसे गूँज उठा। महाराष्ट्रके बाहर भी बड़े-बड़े नगरोंमें मराठी-भाषी समाजने स्थानीय समाजके सहयोगसे गणेशोत्सव मनाया, जो प्रथा आजतक प्रचलित है। इस प्रकार काश्मीरसे कन्याकुमारीतक और कराचीसे कलकत्तातक गणेशोत्सव सार्वजनिक रूपमें मनानेकी प्रथा प्रारम्भ हुई यहाँतक कि भारतके बाहर अदन, नैरोबी, लंदन आ[illegible] स्थानोंमें भी गणेशोत्सव मनाया जाने लगा। १९२० ई०में लो[illegible] मान्य तो चल बसे, पर गणेशोत्सव मनानेकी परिपाटी ज्यों-की [illegible] चालू रही। महात्माजीके नेतृत्वमें स्वराज्यके नये-नये आन्दोल[illegible] शुरू हुए। गणेशोत्सवोंमें उन सभी आन्दोलनोंका प्रच[illegible] किया गया। जन-जागृतिका व्रत चलता रहा। १९४० ई[illegible] देश स्वतन्त्र हुआ; अतः गणेशोत्सवके स्वरूपमें अप[illegible] आप परिवर्तन होने लगा। अबतक यह स्वराज्य-प्राप्ति[illegible] एक साधन समझा गया था, अब प्राप्त स्वराज्यको सुरा[illegible] कैसे बनाया जाय, इस सम्बन्धकी जन-जागृतिका का[illegible] गणेशोत्सवके द्वारा होने लगा। सार्वजनिक गणेशोत्सवों[illegible] संख्या बढ़ गयी। पहले विदेशी सत्ताके प्रति जनता[illegible] असंतोष पैदा करनेकी दृष्टिसे गणेशोत्सवका उपयोग कि[illegible] गया; स्वाधीनता-प्राप्तिके बाद अब वह भूमिका नहीं रही [illegible] इसी कारण गणेशोत्सवके कार्यक्रममें व्याख्यान, प्रवचन[illegible] राष्ट्रीय गीत-गायन आदि कार्यक्रमोंपर जो बल दिया जात[illegible] था, वह अब नहीं रहा। गणेशोत्सवके उद्देश्यका रूख [illegible] बदल गया। अब रोशनीकी सजावटकी जगमगाहटकी ओ[illegible] अधिक ध्यान दिया जाने लगा। वैसा होना स्वाभाविक भी था [illegible] आज सन् १९७३में गणेशोत्सवका प्रारम्भ हुए ८० वर्ष बीत[illegible] जानेके बाद भी सार्वजनिक गणेशोत्सवका सिलसिला ज्यों[illegible] का-त्यों बना है। लोकमान्यके समयमें पूनामें सार्वजनिक रूपमें मनाये जानेवाले गणेशोत्सवोंकी संख्या कोई सौ रही होगी, प[illegible] अब वह संख्या लगभग हजारतक हो गयी है। गणेशोत्सवको प्रारम्भ हुए १९५३ ई०में साठ वर्ष पूरे हो चुके थे, उसी[illegible] उपलक्ष्में पूनामें गणेशोत्सवका हीरक-महोत्सव मनाया गया। १९५२ ई०में ही २६ जनवरीको भारत गणराज्य घोषि[illegible] किया गया। अब भी प्राप्त स्वातन्त्र्यकी रक्षा और सुराज्यकी साधना-हेतु गणेशोत्सवका उपयोग किया जा सकता है। इसके लिये लोकमान्यकी प्रेरणा हमें हमेशा मिलती रहेगी।

'श्रीसिद्धिसहित गणराज प्रणाम !'

रक्तवर्ण शुभ, एकदन्त शुचि, ध्वज-मूषक, शोभित शशि भाल।
धरु कर-कंज-युग, कम्बु, पाश, पुस्तक, त्रिशूलवर, चक्र, माल॥
गज [illegible] विपद्-विघ्न-वारण, शुभधाम।
श्रीसिद्धिसहित गणराज प्रणाम॥
—'भार्गो'

श्रीगणेशगीता और श्रीमद्भगवद्गीता—एक तुलनात्मक अध्ययन

(लेखक—श्रीनागोराव पाथरकर, एडवोकेट)

गणेशं गाणेशाः शिवमिति च शैवाश्च विबुधा
रविं सौरा विष्णुं प्रथमपुरुषं विष्णुभजकाः ।
वदन्त्येकं शाक्ता जगदुदयमूलां परशिवां
न जाने किं तस्मै नम इति परं ब्रह्म सकलम् ॥

(पुष्पदन्तकृत गणेशमहिम्नःस्तोत्रम् २)

"जिस एक तत्त्वको गणपतिके उपासक 'गणेश', शैव विद्वान् 'शिव', सूर्योपासक 'सूर्य', विष्णुभक्त 'आदि पुरुष विष्णु' तथा शक्तिके उपासक जगत्की उत्पत्तिकी मूल कारणभूता 'परा शिवा' कहते हैं, वह वास्तवमें क्या है ? यह मैं नहीं जानता; किंतु सब कुछ परब्रह्मस्वरूप है; इसलिये भक्तिभावसे ही उस अद्वितीय तत्त्वके प्रति मेरा नमस्कार है ।"

जिस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता महाभारतके भीष्मपर्वका एक भाग है, उसी प्रकार श्रीगणेशपुराणके क्रीडाखण्डके अध्याय १३८–१४८ को 'गणेशगीता' कहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीताके १८ अध्यायोंमें ७०० श्लोक हैं तो 'श्रीगणेशगीता'के ११ अध्यायोंमें ४१४ श्लोक हैं। भगवद्गीताका उपदेश युद्धके आरम्भमें कुरुक्षेत्रकी पावन भूमिपर अर्जुनके प्रति दिया गया था तो गणेशगीताका उपदेश युद्धके बाद राजूरकी पवित्र स्थलीमें नरेश वरेण्यके प्रति किया गया था। यह स्थान जालना स्टेशनसे चौदह मीलपर स्थित है। भगवद्गीताके अनुकरणमें लगभग सैकड़ों अन्य गीताओंकी रचना हुई है, जिनमें कुछ ये हैं—रामगीता, हंसगीता, गुरुगीता, अवधूतगीता, पाण्डवगीता आदि। इनमें भी 'गणेशगीता'को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन सारी गीताओंके विषय भिन्न-भिन्न होनेपर भी गणेशगीतामें वे ही विषय आये हैं, जो श्रीमद्भगवद्गीतामें हैं। गणेशगीता तथा भगवद्गीतामें कर्मयोग सांख्ययोग-भक्तियोगपरक जो वर्णन आये हैं, वे भी प्रायः समान भावमय हैं। गणेशगीतामें योगसाधन, प्राणायाम, तान्त्रिकपूजा, मानसपूजा, सगुणोपासना इत्यादिको विस्तारके साथ समझाया गया है और विभूतियोग, विश्वरूपदर्शन आदिका संक्षेपमें वर्णन किया गया है। उसमें शब्दोंकी भिन्नता अवश्य है, परंतु विषय वे ही हैं।

जिस प्रकार अर्जुनको भगवान् श्रीकृष्णने योगमार्गका उपदेश किया, उसी प्रकार राजा वरेण्यको श्रीगजाननने यह योग बताया। परंतु इन दोनों गीताओंमें दोनों श्रोताओंकी मनःस्थिति और परिस्थितियाँ भिन्न हैं। भगवद्गीताके प्रथम अध्यायसे स्पष्ट है कि मोहके कारण अर्जुनकी मूढ़ अवस्था हो गयी थी; वह अपने कर्तव्यका भी ठीक ठीक निर्णय नहीं कर पाता था और निष्क्रियता, विमूढ़ता, नपुंसकता, भ्रान्तता एवं शिथिलता आदिसे भी आक्रान्त था। परंतु राजा वरेण्यकी ऐसी विमोह-ग्रस्त अवस्था नहीं थी, अपितु वह साधनचतुष्टय सम्पन्न मुमुक्षु स्थितिमें था। वह अपने धर्म तथा कर्तव्यको जानता था। उसने धर्मयुक्त राज्य किया था। उसके मनमें केवल एक ही पश्चात्ताप था। उसे बड़ा खेद था कि 'हाय ! मैं कैसा अभागा हूँ कि स्वयं भगवान् गणेशजीने मेरे घर जन्म लिया, उसपर भी मैंने उन्हें कुरूप पुत्र मानकर सरोवरपर त्याग दिया। यह अच्छा हुआ कि यह बालक मुनि पराशरजीको मिला और उन्होंने उसका पालन-पोषण किया। इसी नौ वर्षके बालक गजाननने सिन्दूरासुरका संहार करके भूभार हरण किया है। अब मैं उन्हीं गजाननसे चरणाश्रयकी याचना करूँगा।' तदनन्तर राजाने उनसे प्रार्थना की—

विघ्नेश्वर महाबाहो सर्वविद्याविशारद ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ योगं मे वक्तुमर्हसि ॥

(गणेशगीता १ । ५)

'हे महाबाहु विघ्नेश्वर ! आप सब शास्त्रों तथा विद्याओंके ज्ञाता हैं। मुझे विमुक्तिके लिये योगका उपदेश कीजिये।' इसके उत्तरमें गजाननने कहा—

सम्यग्व्यवसिता राजन् मतिस्तेऽनुग्रहान्मम ।
शृणु गीतां प्रवक्ष्यामि योगामृतमयीं नृप ॥

(गणेशगीता १ । ६)

'राजन् ! तेरी बुद्धि मेरे अनुग्रहसे उत्तम निश्चयपर पहुँच गयी है। मैं तुम्हें योगामृतसे भरी गीता सुनाता हूँ, सुनो।'—यह कहकर श्रीगणेशने 'सांख्यसारार्थ-नामक प्रथम अध्यायमें योगका उपदेश देकर उन्हें शान्तिका मार्ग बतलाया। स्थितप्रज्ञ पुरुषका जो वर्णन किया, वह भगवद्गीताके दूसरे अध्यायमें भी आया है। तदनुसार ही श्रीगणेशजीने कहा—'जगमें योगयुक्त पुरुषके लक्षण तो और ही होते हैं। वे दुःखसे मुक्त, इच्छारहित,

समत्व उद्धार करनेवाले, दुर्दर्शनीय परमात्माको सदा ही सर्वत्र व्याप्त देखनेवाले और सर्वदा प्रभुमें रहनेवाले होते हैं। उनकी दृष्टिमें सोना, मिट्टी, पत्थर सब समान है।'

शिवे विष्णौ च शक्तौ च सूर्ये मयि नराधिप।
याऽभेदबुद्धिर्योगः स सम्यग्योगो मतो मम॥

(गणेशगीता १ । २१)

'नरेश्वर! शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य तथा मुझमें जो अभेद बुद्धि है, वही मेरे मतमें उत्तम योग है।'

'मैं ही सब कुछ हूँ और मुझसे ही सब है। मैं ही सत्, चित् और आनन्दरूप ब्रह्म हूँ।'

अच्छेद्यं शस्त्रसंघातैरदाह्यमनलेन च।
अक्लेद्यं भूप भुवनैरशोष्यं मारुतेन च।
अवध्यं वध्यमानेऽपि शरीरेऽस्मिन् नराधिप॥

(गणेशगीता १ । ३१-३२)

'शस्त्र उसका छेदन नहीं कर सकते, अग्नि उसे जला नहीं सकती, जल उसे भिगो नहीं सकता, वायु उसे सुखा नहीं सकती और नरेश्वर! इस शरीरका वध होनेपर भी वह अवध्य है।' भगवद्गीताके दूसरे अध्यायके श्लोक १८, २०, २३-२४ में भी यही कहा गया है।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रशंसन्ति श्रुतीरिताम्।
त्रयीवादरता मूढास्ततोऽन्यन्मन्यतेऽपि न॥

(गणेशगीता १ । ३१)

''पुष्पित लताके समान आपातरम्य 'अक्षय्यं सुकृतं भवति' इत्यादि वेदवाक्योंसे मोहित मूढ़लोग यज्ञादिकी ही प्रशंसा करते हैं। उससे अलग दूसरा कोई श्रेय साधन माननेको भी वे लोग तैयार नहीं होते। अतः स्वर्ग-ऐश्वर्यकी भोगबुद्धिमें आसक्त वे स्वयं संसारके बन्धनमें पड़ते हैं।'' अतः सुनो—

यस्य यद्विहितं कर्म तत्कर्तव्यं मदर्पणम्।
ततोऽस्य कर्मबीजानामुच्छिन्नाः स्युर्महाङ्कुराः॥

(गणेशगीता १ । ३६)

'वर्णाश्रम-धर्मयुक्त कर्मोंका अनुष्ठान करके मुझे अर्पण करनेपर उनके पाप पुण्यरूप बीजाङ्कुर नष्ट हो जाते हैं।' ऐसा ही भगवद्गीताके दूसरे अध्यायमें श्लोक ४२से ४६ तक कहा गया है।

धर्माधर्मौ जहातीह तयाऽऽयुक्त उभावपि।
अतो योगाय युञ्जीत योगो वैधेषु कौशलम्॥

(गणेशगीता १ । ४१)

'इस प्रकार आत्मानात्मविवेक बुद्धिसे युक्त पुरुष प[illegible] पुण्यसे मुक्त हो जाता है। यही योग विधियुक्त कर्मोंमें कु[illegible] कुशलता है।' ऐसा योगको 'क्रिया ब्रह्म' कहता है। गणेश[illegible] गीताके अ० १ श्लोक ५१से ६३तक ऐसे स्थितप्रज्ञके लक्ष[illegible] दिये गये हैं। ये ही बातें भगवद्गीताके दूसरे अध्यायके श्लो[illegible] ५६से ७२तक बतलायी गयी हैं।

एवं बहुविधं भूप यो विजानाति दैवतः।
पुत्रोभवन्तो प्राप्नोति जीवन्मुक्तिं प्रयत्नतः॥

(गणेशगीता १ । ६[illegible])

'भूप! यदि दैवकी अनुकूलतासे वृद्धावस्थामें भी ऐ[illegible] ब्रह्म-बुद्धि प्राप्त हो जाती है तो वह भी जीवन्मुक्तिको प्रा[illegible] होगा।' यही बात भगवद्गीतामें भी कही गयी है—

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

(भगवद्गीता २ । ७२)

'इस ब्राह्मी स्थितिको प्राप्त पुरुष कभी मोहित न[illegible] होता और अन्तकालमें भी इसमें निष्ठाको प्राप्त होक[illegible] वह ब्रह्ममें विलीन हो जाता है।'

'कर्मयोग'-नामक दूसरे अध्यायमें श्रीगजाननने वरेण्यको कर्मयोगका उपदेश दिया। 'सांख्यसारार्थ'-नामक [illegible] प्रथम अध्यायमें ज्ञानका प्रकाशमय मार्ग बतलाया गया था परंतु केवल मार्ग देख लेना ही पर्याप्त नहीं; उसपर चलना भी आवश्यक है तथा श्रद्धा या भक्तिकी भी इसमें आवश्यकता पड़ती है। गणेशगीताके पहले अध्यायमें श्लोक १४ तथा १८में कुछ विरोधाभास-सा दिखायी देनेसे वरेण्यने भी इस सम्बन्धमें अर्जुन जैसा ही प्रश्न किया—

ज्ञाननिष्ठा कर्मनिष्ठा द्वयं प्रोक्तं त्वया विभो।
अवधार्य वदैकं मे निःश्रेयसकरं नु किम्॥

(गणेशगीता २ । १)

'प्रभो! आपने ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा दोनोंका वर्णन किया है। अब यह निश्चय करके बताइये कि इन दोनोंमें कौन मेरे लिये कल्याणकारी है।'

भगवद्गीताके तीसरे अध्यायके दूसरे श्लोकमें अर्जुनने भी ऐसा ही अनुरोध किया है। श्रीगजाननने कहा कि ''स्थिर स्वभाववालोंके लिये 'बुद्धियोग' और अस्थिर स्वभाववालोंके लिये 'कर्मयोग' बताया गया है। विधियुक्त कर्मको आलस्य या

विषादसे कोई त्याग देता है तो वह निष्क्रियताको नहीं प्राप्त होगा। कोई क्षणभर भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता, मायाके स्वभावानुसार तीनों गुण उससे कर्म करवाते हैं। कर्मेन्द्रियको रोककर मनसे विषयोंका चिन्तन भी निन्द्य कर्म है; अतः केवल परमेश्वरकी प्रीतिके लिये कर्म करनेवाला ही श्रेष्ठ पुरुष और सच्चा कर्मयोगी है।''

मदर्थे यानि कर्माणि तानि बध्नन्ति न क्वचित्।
सवासनमिदं कर्म बध्नाति देहिनं बलात्॥

(गणेशगीता २ । [illegible])

'जो कर्म मेरे लिये किये जाते हैं, वे कहीं और कभी कर्ताको बाँधते नहीं हैं। वासना या फलासक्तिपूर्वक किया गया यह कर्म देहधारीको बलपूर्वक बाँध लेता है।'

मैंने ही सारे वर्ण और उनके धर्म एक साथ उत्पन्न किये हैं। वे ही धर्म कर्म-यज्ञ हैं। इसे निष्काम बुद्धिसे करनेपर यह कल्पवृक्ष-सा फल देता है—

वर्णान् सृष्ट्वाब्रवं चाहं सयज्ञांस्तान् पुरा प्रिय।
यज्ञेन ऋध्यतामेष कामदः कल्पवृक्षवत्॥

(गणेशगीता २ । १०)

भगवद्गीता ३। ७—१० के भाव भी इसके समानार्थक हैं। उपरिनिर्दिष्ट गणेशगीताके श्लोकसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वर्णाश्रमधर्मके अनुसार विधियुक्त कर्मको निष्काम भावसे केवल ईश्वरार्पण-बुद्धिसे करना ही श्रेष्ठ है। ऐसे यज्ञका जो वर्णन भगवद्गीतामें आया है, वही गणेशगीतामें भी उपलब्ध है—

श्रेयोऽगुणो निजो धर्मः साङ्गादन्यस्य धर्मतः।
निजे तस्मिन् मृतिः श्रेयो परत्र भयदः परः॥

(गणेशगीता २ । १५)

'अपना धर्म गुणरहित हो तो भी दूसरेके साङ्गोपाङ्ग धर्मसे उत्तम है। अपने धर्ममें मर जाना भी परलोकमें कल्याणकारी है, परंतु दूसरेका धर्म भय देनेवाला है।'

यही तथ्य भगवद्गीतामें कहा गया है—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

(भगवद्गीता ३ । ३५)

'विज्ञानयोग'-नामक तीसरे अध्यायमें भगवान् गजाननने भी अपने अवतार धारणके सम्बन्धमें वे ही बातें बतलायी हैं, जो भगवद्गीताके चौथे अध्यायमें कही गयी हैं। गणेशगीता 'वैधसंन्यासयोग'-नामक चौथे अध्यायमें योगाभ्यास तथा प्राणायामके सम्बन्धमें जो विशेष बातें बतलायी गयी हैं, वे इस प्रकार हैं:—

''प्राणायामके तीन प्रकार हैं—बारह वर्णोंके उच्चारण करनेतकके समयतक जो प्राणायाम किया जाय, वह 'लघु', चौबीस वर्णोंके उच्चारणका समय लेनेवाला 'मध्यम' तथा छत्तीस वर्णोंके उच्चारणका समय लेनेवाला 'उत्तम' प्राणायाम है। प्राणायामका अभ्यास करनेसे भूत और भविष्यकी बातोंका ज्ञान होने लगता है।''—

'अतीतानागतज्ञानी ततः [illegible] ॥'

(गणेशगीता ४ । ११)

बारह उत्तम प्राणायाम होनेतक चित्त स्थिर करनेको 'धारणा' कहते हैं। दो धारणाओंको 'योग' कहते हैं। इस योगका अभ्यास करनेसे साधकको 'त्रिकालज्ञान' प्राप्त होता है।

'योगवृत्तिप्रशंसनयोग'-नामक पाँचवें अध्यायमें योगाभ्यासके अनुकूल-प्रतिकूल देश-काल-पात्रकी चर्चा की गयी है—

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

(गणेशगीता ५ । [illegible])

[illegible]

[illegible]

स्मृतिलोपश्च मूकत्वं बाधिर्यं मन्दता ज्वरः ।
जडता जायते सद्यो दोषाज्ज्ञानाद्धि योगिनः ॥
एते दोषाः परित्याज्या योगाभ्यासनशालिना ।
अनादरे हि चैतेषां स्मृतिलोपादयो ध्रुवम् ॥

(गणेशगीता ५ । १०-११)

'इन दोषयुक्त स्थानोंका ज्ञान न होनेसे योगके साधकको शीघ्र ही स्मरणशक्तिका लोप, गूँगापन, बहरापन, मन्दता (आलस्य), ज्वर और जड़ता आदि दोष प्राप्त होते हैं। योगाभ्यासशाली पुरुषको इन दोषोंका परित्याग कर देना चाहिये। इनकी अवहेलना करनेपर स्मृति-लोप आदि दोष निश्चय ही प्राप्त होते हैं।'

योगीको सदा संयमी रहना चाहिये। राजा वरेण्यने भी अर्जुनकी तरह वही शङ्का प्रकट की कि 'यदि कोई योगभ्रष्ट हो जाय तो उसकी क्या गति होगी ?' उत्तरमें भगवान् गणेशने कहा—'ऐसा योगी अपने योग्यतानुसार स्वर्गके भोगोंको भोगकर उच्चकुलमें जन्म लेता तथा फिर योगाभ्यास करके मुझको प्राप्त होता है।'

'न हि पुण्यकृतां कश्चिन्नरकं प्रतिपद्यते ।'

(गणेशगीता ५ । २६)

'पुण्य कर्म करनेवालोंमेंसे कोई भी नरकमें नहीं पड़ता।' इसीको भगवद्गीतामें इस प्रकार कहा गया है—

'न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ॥'

(भगवद्गीता ६ । ४०)

'बुद्धियोग'-नामक छठे अध्यायमें कहा गया है—'अपने किसी पूर्व सुकृतके कारण ही मनुष्य मुझे जाननेकी इच्छा करेगा। जिसका जैसा भाव होता है, तदनुरूप ही मैं उसकी इच्छा पूर्ण करता हूँ। अन्तकालमें मेरी इच्छा करनेवाला मुझमें मिलता है। मेरे तत्त्वको जाननेवाले भक्तोंका योग-क्षेम मैं चलाता हूँ।'

'उपासनायोग'-नामक सातवें अध्यायमें भक्तियोगका वर्णन है। यहाँ सगुण भक्तिको ही 'उपासना' कहा गया है—

ध्यानाद्यैरुपचारैर्मां तथा पञ्चामृतादिभिः ।
स्नानवस्त्राद्यलंकारसुगन्धधूपदीपकैः ।
नैवेद्यैः फलताम्बूलैर्दक्षिणाभिश्च योऽर्चयेत् ॥
भक्त्यैकचेतसा चैव तस्येष्टं पूरयाम्यहम् ।
एवं प्रतिदिनं भक्त्या मद्भक्तो मां समर्चयेत् ॥
अथवा मानसीं पूजां कुर्वीत स्थिरचेतसा ।
अथवा फलपत्राद्यैः पुष्पमूलजलादिभिः ॥

(गणेशगीता ७ । १-५)

'जो मनुष्य ध्यान आदि, पञ्चामृत आदि तथा स्नान, वस्त्र, अलंकार, सुगन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल और दक्षिणा आदि उपचारोंद्वारा भक्तियुक्त एकाग्र-चित्तसे मेरी अर्चना करता है, मैं उसका अभीष्ट पूर्ण करता हूँ। मेरा भक्त इसी प्रकार प्रतिदिन भक्तिभावसे मेरी पूजा करे। अथवा सुस्थिर चित्तसे मानसी पूजा करे या फल, पत्र, पुष्प, मूल और जलादिके द्वारा प्रयत्नपूर्वक मेरी अर्चना करे।'

तान्त्रिक, मानसी, पत्र-पुष्पादि—ऐसे पूजाके तीन प्रकारोंमें किसी भी एक प्रकारसे पूजा करनी चाहिये। परंतु निष्काम भावसे की गयी पूजा श्रेयस्कर है। मेरा द्वेष करते हुए किसी दूसरे देवताके प्रति की हुई पूजा भी मुझे ही प्राप्त होगी; परंतु वह विधि-विरुद्ध है। ऐसा प्राणी दुःख भोगकर रास्तेपर आ जायगा। पूजामें भूतशुद्धि, प्राणायाम, न्यास, मन्त्र-जप एवं स्तोत्र-पाठ आवश्यक हैं। पूजामें अधिकार सभीका है। मैं ही सारे विश्वमें परिव्याप्त हूँ। जो मेरी इन विभूतियोंको जानकर मेरी उपासना करता है, वह कभी नष्ट नहीं होता।

लोकमें जो-जो अतिशय श्रेष्ठ वस्तु है, वह मेरी विभूति है, ऐसा समझो—

'यद्यच्छ्रेष्ठतमं लोके सा विभूतिर्निबोध मे ।'

(गणेशगीता ७ । २५)

इसीके समानार्थक भाव भगवद्गीतामें भी प्राप्त होते हैं—

'यद्यद्विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।'

(गीता १० । ४१)

'विश्वरूपदर्शनयोग'-नामक आठवें अध्यायमें श्रीगणेशने भी भक्त वरेण्यको विश्वरूपका दर्शन कराया है। जैसे समुद्रसे उत्पन्न सारे जलबिन्दु समुद्रमें ही लीन होते देखे जाते हैं, वैसे ही अनेक विश्व भगवान् गणेशके उस विराट् रूपमें समाते ही जा रहे थे। वरेण्य उस अनन्तरूपसे भयभीत होकर फिर उसी सौम्य रूपको दिखलानेके लिये प्रार्थना करते हैं। इसपर गणेशजीने सगुण रूप धारण किया और बतलाया कि सगुणोपासना ही मुझे अधिक मान्य है—

यो मां मूर्तिधरं भक्त्या मद्भक्तः परिसेवते ।
स मे मान्योऽनन्यभक्तिर्नियुज्य हृदयं मयि ॥

(गणेशगीता ८ । ?)

'राजन् ! जो मेरा भक्त मुझमें अपना मन लगाकर अनन्यभक्ति रखते हुए प्रेमपूर्वक मुझ साकार ईश्वरका सेवन करता है, वह मेरे लिये समादरके योग्य है।'

'क्षेत्रज्ञातृज्ञानज्ञेयविवेकयोग' नामक नवें अध्यायमें क्षेत्र क्षेत्रज्ञका ज्ञान तथा सत्त्व रज-तम आदि तीनों गुणोंके लक्षण भी बतला दिये और संक्षेपसे कह दिया—

येन येन हि रूपेण जनो मां पर्युपासते ।
तथा तथा दर्शयामि तस्मै रूपं सुभक्तितः ॥

(गणेशगीता ९ । ४०)

'लोग जिस जिस रूपमें मेरी उपासना करते हैं, उनकी उत्तम भक्तिसे प्रसन्न होकर मैं उन्हें उसी-उसी रूपमें दर्शन देता हूँ।'

अब श्रीमद्भगवद्गीतासे इसकी तुलना करें—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥

(गीता ७ । २१)

'उपदेशयोग'-नामक दसवें अध्यायमें दैवी, आसुरी और राक्षसी ऐसी तीन प्रकारकी प्रकृतियोंके लक्षण बतलाये गये हैं, जब कि भगवद्गीतामें केवल दैवी और आसुरी दो ही प्रकारकी प्रकृतियोंका वर्णन किया गया है। दैवी प्रकृतिके लक्षण अपैशुन्य, अक्रोध, धैर्य, तेज, अभय, अमानित्व आदि हैं, जो मुक्ति प्रदान करते हैं। अतिवाद, अभिमान, गर्व, भोगेच्छा आदि आसुरी स्वभावके चिह्न हैं, जो पहले भोग तथा बादमें दुःख प्रदान करते हैं। निष्ठुरता, मद, मोह, द्वेष, क्रूरता, आरम्भ मारणादि प्रयोग, अविश्वास, अपवित्रता, निन्दा, भय एवं असत्य आदि राक्षसी प्रकृतिके गुण हैं, जो नरक और दुःख देनेवाले हैं। पूर्वकृत पापोंके कारण ही नारकी जीव पुनः संसारमें कुबड़े, अन्धे, पशु एवं दीन हीन होकर उत्पन्न होते हैं—

दैवाद्वि-मुक्ताः नरकाज्जायन्ते भुवि कुत्सिताः ।
जात्यन्धाः पशवो दीनाः हीनजातिषु ते नृप ॥

× × × ×

कामः क्रोधस्तथा लोभो दम्भश्चत्वार इत्यमी ।
महाद्वाराणि वीचीनां तस्मादेतांस्तु वर्जयेत् ॥

(गणेशगीता १० । १९-२१)

'नरेश्वर ! दैववश नरकसे निकलकर वे पृथ्वीपर कुबड़े, जन्मके अंधे, पशु और दीन होकर हीन जातियोंमें जन्म लेते हैं।'

× × × ×

'काम, क्रोध, लोभ और दम्भ—ये चार नरकोंके महाद्वार हैं। अतः इनका त्याग कर देना चाहिये।'

अतः दैवी प्रकृतिका आश्रय लेकर मोक्षका साधन करना चाहिये।

'त्रिविधवस्तुविवेकनिरूपणयोग'-नामक अन्तिम ग्यारहवें अध्यायमें कायिक, वाचिक तथा मानसिक भेदसे तपके तीन प्रकार बताये गये हैं। ऋजुता, श्रद्धा, शौच (शुद्धता), ब्रह्मचर्य और देव द्विज-पूजन आदि 'कायिक तप' है, सत्य और प्रियभाषण 'वाचिक तप' है एवं निष्कपटता, समाधान, शान्ति और दया आदि 'मानसिक तप'के प्रकार हैं। तीन गुणोंके सम्बन्धके कारण भी तपके तीन प्रकार और होते हैं। इन्हीं तीन गुणोंके कारण यज्ञ, दान, ज्ञान, कर्म, कर्ता, सुख इत्यादिके भी तीन-तीन भेद हो जाते हैं। इनमें सत्त्वगुण श्रेष्ठ और मोक्षदायक है। चातुर्वर्ण्य भी इन्हीं गुणोंके आधारपर प्रतिष्ठित हुए हैं। प्रत्येकके धर्म भी अलग अलग हैं—

स्वस्वकर्मरता एते मत्पर्यन्ताधिकारिणः ।
[illegible] ॥

(गणेशगीता ११ । ३४)

'राजन् ! अपने अपने कर्मोंमें लगे हुए ये चारों वर्णोंके लोग मुझे समर्पित करके यदि समस्त कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं तो मेरी कृपासे सुस्थिर परम पदको प्राप्त होते हैं।'

इसी भावको प्रायः भगवद्गीतामें भी दिखलायी पड़ती है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

(गीता १८ । ४६)

जिस प्रकार भगवद्गीता और गणेशगीताका आरम्भ भिन्न भिन्न परिस्थितियोंमें हुआ था, उसी प्रकार इन दोनों गीताओंके श्रवणका परिणाम भी भिन्न भिन्न हुआ। अर्जुन अपने क्षात्रधर्मके अनुसार युद्ध करनेको तैयार हो गये, परंतु राजा वरेण्य पुत्रको राज्यभार सौंपकर वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने योगका आश्रय ले मोक्ष प्राप्त कर लिया—

[illegible]

([illegible] ११ । ३४)

इस [illegible] ॥

यथा जलं जले क्षिप्तं जलमेव हि जायते।
तथा तद्ध्यानतः सोऽपि तन्मयत्वमुपागतः॥

'जिस प्रकार जल जलमें मिलनेपर जल ही हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मरूपी गणेशका चिन्तन करते हुए राजा वरेण्य भी उस ब्रह्मरूपमें समा गये।'

प्रचारकी दृष्टिसे गणेशगीताका प्रचार अत्यल्प है। भगवद्गीताका प्रचार अनन्त गुना है। गणेशगीतापर भाष्य भी बहुत ही कम किये गये हैं, जब कि भगवद्गीतापर लि[खे] गये भाष्योंकी संख्या करनी कठिन है। इतना हो[नेपर] भी दोनों गीताओंकी फलश्रुति एक ही है। अतएव [...] दोनोंमेंसे चाहे भगवद्गीताका आश्रय ले, चाहे गणेशगीता[का,] किसी भी गीताके अनुसार साधन-भजन करनेपर प्रा[णी] साधकको समान प्रकारसे ब्राह्मी स्थितिकी प्राप्ति होगी। [...] इसलिये कि दोनोंका मुख्यतम विषय एक ही है तथा विषय-प्रतिपादन शैली भी लगभग एक सी है।

श्रीगणेश-साहित्य-संकेतिका

भगवान् श्रीगणेशकी मान्यता और उनकी आराधना केवल भारतमें ही नहीं, अपितु भारतेतर अनेक देशोंमें भी प्रचलित है। जैसे—नेपाल, तिब्बत, चीन, जापान, जावा, बर्मा, श्रीलंका तथा मैक्सिको आदि। जिन-जिन अन्य देशों और भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें भगवान् श्रीगणेशकी मूर्तियाँ पायी जाती हैं तथा उनकी आराधना की जाती है, उन-उन देशों और प्रदेशोंकी तत्तत् भाषाओंमें श्रीगणेश-सम्बन्धी प्रभूत साहित्य अवश्य उपलब्ध होना चाहिये। उस सम्पूर्ण साहित्यकी तालिका हमें प्राप्त नहीं हो सकी है। फिर भी देशके कतिपय मूर्धन्य विद्वानों एवं श्रीगणेश-आराधकोंके कृपापूर्ण सहयोगके आधारपर प्रस्तुत 'श्रीगणेश-साहित्य-संकेतिका' तैयार की गयी है। उसमें सहयोग प्रदान करनेवाले महानुभावोंमें प्रमुख हैं—(१) श्रीअमरेन्द्रजी गाडगील, पूना, (२) श्रीशिवनारायणजी सक्सेना, कलकत्ता, (३) श्रीसुखमयजी भट्टाचार्य, शान्तिनिकेतन, (४) श्रीउमियाशंकरजी ठाकर, आनन्द, (५) डा० एन० एस० [...] दक्षिणामूर्ति, मैसूर, (६) डा० श्री के० टी० नीलकण्ठम्, मैसूर, (७) पण्डित सदाशिवरथ शर्मा, पुरी, (८) श्री [...] वी० आर० के० आचार्युलु, वेमावरम्, (९) श्री एस० आर० सारङ्गपाणि, एम्० ए०, (१०) पं० श्री ए० वी० [...] वीरराघवन्, शिरोमणि, नेल्लोर और (११) श्रीरासमोहन चक्रवर्ती, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पुराणरत्न, विद्याविनोद आदि। हम इन सभी कृपालु महानुभावोंके हृदयसे आभारी हैं।

'संकेतिका'के सभी ग्रन्थोंकी मान्यता इस विशेषाङ्कके अनुरूप ही हो, यह सम्भव नहीं है। 'जिन्ह कें रही भावना जैसी'—के अनुसार सभीने अपनी-अपनी आँखोंसे श्रीगणेशको देखा है। तालिकामें प्रयुक्त सांकेतिक चिह्नोंका अर्थ इस प्रकार समझना चाहिये—ले०—लेखक, स०—सम्पादक, अ०—अनुवादक, प्र०—प्रकाशक, पृ०—पृष्ठ-संख्या।

• • • • •

संस्कृत भाषा

१–गणेशपुराण *

२–श्रीमुद्गलपुराण*—रचयिता—मुद्गल ऋषि, प्र०—श्रीमन्त बापूसाहेब अर्थात् गणपति हरिहर पटवर्धन, राजा साहेब कुरुन्दवाड संस्थान, कुरुन्दवाड; पृ०-१०७

३–पद्मपुराण–(सृष्टिखण्ड, अध्याय ६१—६३)

४–भविष्यपुराण–(चतुर्थ-उत्तरपर्व, अ० ३१—३२)

५–वराहपुराण–(अध्याय २३)

६–लिङ्गपुराण–(पूर्व०, अ० १०४—५)

७–शिवपुराण–(रु० सं०, कु० ख० १३—२१)

८–गरुडपुराण–(सारोद्धार; १५ वाँ अध्याय)

९–ब्रह्मपुराण–(अध्याय ३९)

१०–ब्रह्मवैवर्तपुराण–(गणपतिखण्ड)

११–स्कन्दपुराण–(का० खं० ५५—५७)

१२–अग्निपुराण–(अ० ७१, १७९, ३१३, ३१८, ३४८ [...]

१३–ब्रह्माण्डपुराण–(अध्याय १—५)

१४–सौरपुराण–(४२ वाँ अध्याय)

१५–विष्णुधर्मोत्तरपुराण–(खं० ३, अ० १०४)

१६–नारदपुराण–(अध्याय ५१, ६५, ६६, १४१)

* विशेष परिचयके लिये मार्च, १९७४ का अङ्क देखना चाहिये। दोनों ग्रन्थोंकी प्रतियाँ अब प्रायः अप्राप्य हैं।

१७–याज्ञवल्क्यस्मृति (विनायक शान्ति प्रकरण)

१८–गणेशभागवत (यह इस समय प्रायः अप्राप्य है; मराठी विद्वानोंके अनुसार इसकी श्लोक-संख्या २१,००० कही जाती है।)

१९–गणपत्युपनिषद्

२०–हेरम्ब-उपनिषद्

२१–गणेशपूर्वतापिन्युपनिषद्

२२–गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद्

२३–गणपतिसूक्त

२४–ब्रह्मणस्पतिसूक्तम्–सं०–विद्याविनोद नारायण वामन-शास्त्री आजलेकर; प्र०—गंगाधर महादेव केळकर, दर रोड, रत्नागिरि; पृ०—११

२५–तन्त्रसार [श्रीगणेश-सम्बन्धी अंश] सं०–श्रीकृष्णानन्द आगमवागीश भट्टाचार्य, प्र०—चौखम्बा संस्कृत-सीरीज, वाराणसी–१

२६–गणेशगीता–टीकाकार नीलकण्ठ; प्र०–आनन्द-आश्रम-प्रेस, पूना; पृ०—१८२

२७–गणेशगीतासारम्—सं० व प्र०—हेरम्बराज शास्त्री, योगीन्द्र मठ, मोरगाँव, पूना; पृ०–१८

२८–गणेशतत्त्वसुधालहरी—ले०–कवि श्रीनीलकण्ठजी शास्त्री पञ्चनदम्; प्र०–पण्डित एन० विद्यानाथ शास्त्री शिरोमणि, के० वी० बालादेवी, सुपरिंटेंडेंट एकाउंटेंट जनरल, कचेरी, मद्रास; पृ०—२३

२९–मन्त्रमहार्णवः [श्रीगणेश-सम्बन्धी अंश] (प्र०–श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस, बम्बई)

३०–मन्त्रमहोदधि [श्रीगणेश-सम्बन्धी अंश] (प्र०–श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस, बम्बई)

३१–विनायकमाहात्म्यम्—सं०–वासुदेवशास्त्रीपणशीकर; प्र०–निर्णयसागर प्रेस, डा० एम्० बी० वेल्कर स्ट्रीट, बम्बई; पृ०–५१

३२–शाक्तप्रमोदः [श्रीगणेश-सम्बन्धी अंश] (प्र०–क्षेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेङ्कटेश्वर यन्त्रालय, कल्याण, बम्बई)

३३–शारदातिलकतन्त्रम् [श्रीगणेश सम्बन्धी अंश (प्र०–आगमानुसंधान-समिति, ७१, चल... बागान, कलकत्ता)

३४–श्रीमदुच्छिष्टगणपतिसहस्रनामस्तवरण—सं० ... प्र०–बी० राघवन्, संस्कृत-प्राध्यापक, मद्र... विद्यापीठ, मद्रास–५; पृ०– २४

३५–गणपतिस्तोत्रम्–प्र०–निर्णयसागर प्रेस, डा० एम... बी० वेल्कर स्ट्रीट, बम्बई–२; पृ०—२२

३६–गणेशसहस्रनामस्तोत्रम्—(सहस्रनामावली ... गणपत्यथर्वशीर्षसहित)–सं०–पं० नारायण शास... खिस्ते; प्र०–बैजनाथप्रसाद बुकसेलर, राज... दरवाजा, वाराणसी १; पृ०–६४

३७–गणेशसहस्रनाम–भास्करराचप्रणीत खद्योतभाष्य... प्र०–निर्णयसागर प्रेस, २६ । २८, डा० एम... बी० वेल्कर स्ट्रीट, बम्बई–२; पृ०—९१

३८–गणेशस्तोत्राणि–सं०–तंजापुरि कृष्णार्य राजगोपाल... प्र०–निर्णयसागर प्रेस, डॉ० एम्० बी० वेल्क... स्ट्रीट, बम्बई–२; पृ०—९२

३९–गाणपत्योपयोगिपुस्तकानां संग्रहः–प्र०—गाणपत्... चिन्तामणिराव बालकृष्ण घड़फले; पृ०—२...

४०–गणपतितत्त्वरत्नम्–प्र०–चिन्तामणि बालकृष्... घड़फले, राजराजेश्वर मुद्रणालय, काशी; पृ०–१...

४१–महागणपत्यथर्वशीर्ष–प्र०–केशव भिकाजी ढवळे, बम्बई; पृ०–४८

४२–महागणपतिसपर्यापद्धति–सं०–सी० वी० स्वामि-शास्त्री; प्र०–गणेशभक्त-मण्डली, गुहानन्द-मण्डली, पञ्चवनधंगाल, मद्रास २७; पृ०–१४८

४३–उच्छिष्टगणपत्युच्छिष्टचाण्डालिन्युपासना– प्र०–श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस, बम्बई; पृ०–८९

४४–(गकारादि) श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्–प्र०– गीताप्रेस, गोरखपुर; पृ०–६४

४५–श्रीगणेश-आराधना–ले०–नारायणशास्त्री जोशी; प्र०–मयूरेश प्रकाशन, बम्बई; पृ०–९६

हिंदी भाषा

... श्रीसम्पूर्णानन्द; प्र०–काशी ...

...) ले०– ... २४ । ८ २।

... श्रीरणछोड़दास उद्धव, प्र०–श्रीरणछोड़ प्रकाशन मन्दिर, श्रीरणछोड़ टीकम मन्दिर, मदिरपुर, मालवा; पृ०–६४

५–गणेशचालीसा, गणेशाष्टक– ले०–माधव-बिहारी; प्र०–श्रीलोकनाथ पुस्तकालय, १०३, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता–७

५-गणेशका वैदिक तथा पौराणिक स्वरूप-ले०-हंसराज, गणेशकोश-मण्डल पुस्तकालय

६-माघ-भादों गणेशचतुर्थीव्रतकथा-प्र० मास्टर खेलाड़ीलाल एंड संस, वाराणसी

७-गणेशकथा-ले०-भगवानदास अवस्थी; प्र०-ज्ञानलोक, प्रयाग

८-गणेशपुराण-अ० मोतीलाल, प्र०-गणेशीलाल लक्ष्मीनारायण, मुरादाबाद; पृ०-८८

९-गणेश-आराधना-ले०-राजेश दीक्षित, प्र०-देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली; पृ०-२०८

१०-श्रीगणेश और अन्य कथाएँ-ले०-श्रीनाथसिंह; प्र०-'दीदी'-कार्यालय, इलाहाबाद

११-गणेशाङ्क-मासिक 'कल्याण'का प्रस्तुत विशेषाङ्क, जनवरी, १९७४ सं०-चिम्मनलाल गोस्वामी, प्र०-मोतीलाल जालान, गो०-गीताप्रेस, गोरखपुर (उ० प्र०); पृ०-५४०

१२-गणेशगीता-[मूल संस्कृत हिंदी अर्थसहित] अ०-पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र, प्र०-श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस, बम्बई; पृ०-१२४

१३-गणपति-सम्भवम्-[मूल संस्कृत हिंदी अर्थसहित] ले०-पं० प्रभुदत्त शास्त्री; प्र०-अर्चना प्रकाशन, ७६ रामदास पेठ, नागपुर; पृ०-२०२

१४-श्रीगणेशपुराण-[भाषानुवाद प्रथम भाग] अ०-पूर्णचन्द्र कासलीवाल, जयपुर; मुद्रक-हरिहर इलेक्ट्रिक मशीन प्रेस, छत्ता, मथुरा; पृ०-१४१

१५-श्रीगणेश-ले०-पं० श्रीमाधवाचार्य शास्त्री; प्र०-माधव पुस्तकालय, कमलानगर, दिल्ली; पृ०-५१

मराठी भाषा

१-चिन्तामणिविजय-ले०-कवि धुंडीदास; प्र०-प्रमिला शिवराम आवटी, रानडे रोड, मुकुन्द बिल्डिंग, दादर, बम्बई; पृ०-३६०

२-गणेशपुराण-(मूल संस्कृत और मराठी भाषान्तर) अ०-श्रीविष्णुशास्त्री वापट; प्र०-दामोदर लक्ष्मण लेले, मोदवृत्त छापखाना, वाई; पृ०-९३३

३-गणेशपुराण-ले० एवं प्र०-कवि बल्भीम मोरेश्वर भट, ४०६, नारायण, पूना २; पृ०-४८२

४-गणेशप्रताप-ले०-कवि कै० विनायक महादेव नातू; प्र०-श्रीमयूरेश प्रकाशन, रुक्मिणीनिवास, ब्लाक क्र० २, मोरबाग रस्ता, दादर, बम्बई १४; पृ०-४८२

५-श्रीगणेशप्रभाव-ले० एवं प्र०-श्रीपाद नारायण सतपर, एडवोकेट, न्यू बम्बई आगरारोड, कुर्ला, बम्बई; पृ०-१११

६-श्रीगणेशलीलामृत-प्र०-मु० नारायण रामचन्द्र मेहनी, ज्ञानेश्वर छापखाना, बम्बई; पृ०-८६

७-गणेशविजय-ले०-श्रीमत् गणेशयोगीन्द्राचार्य; सं० एवं प्र०-श्रीहेरम्बराज बाल्शास्त्री शर्मा, श्रीयोगीन्द्रमठ संस्थान, मोरगाँव, जिला-पूना; पृ०-प्रथम खण्ड ४४८, द्वितीय सं० ३८२, तृ० खण्ड ६३५

८-गणेशविलास-ले०-[illegible] प्र०-अनन्त चिन्तामण [illegible] [illegible] पृ०-[illegible]

९-श्रीगणेश-शारदा-संग्रह-ले०-सदाशिव [illegible] पत्के; प्र०-स्वाध्याय मण्डल, पारडी, सूरत; पृ०-१५२

१०-श्रीमङ्गलमूर्ति-ले०-सदाशिव कृष्ण पत्के; प्र०-केशव भिकाजी ढवळे, बनामहाल लेन, बम्बई-४; पृ०-११०

११-मङ्गलमूर्ति श्रीगणेश-ले०-पु० रा० बेहरे; प्र०-सौ० मनोरमा पु० बेहरे, रामेश्वरनिवास, जोगेश्वरी, (पूर्व) बम्बई; पृ०-१०८

१२-मङ्गलमूर्ति गणेश-ले०-पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर; प्र०-स्वाध्याय-मण्डल, पारडी, जि० सूरत; पृ०-१६४

१३-मुद्गलपुराण-अ०-चिन्तामण गङ्गाधर भानु; पृ०-२६७

१४-श्रीमद्योगीन्द्रविजय-ले०-श्रीअङ्कुशधारी देगौंकर महाराज, सं० एवं प्र०-हेरम्बराज बाल्शास्त्रीशर्मा, योगीन्द्रमठ, मोरगाँव, पूना; पृ०-२१४०

१५-श्रीमद्योगीश्वरी-ले०-श्रीमद्गणेशयोगीन्द्राचार्य; प्र०-हेरम्बराज बाल्शास्त्रीशर्मा, योगीन्द्रमठ, मोरगाँव, पूना; पृ०-१३१२

१६-गणपतीची कथा-ले०-अं० ग्र० अग्निहोत्री; प्र०-श्रीराम प्रकाशन, ठाकुरद्वार, बम्बई २; पृ०-११

१७-गणपतीची गोष्ट-ले०-[illegible]; प्र०-[illegible] कम्पनी, १, राउन्ड बिल्डिंग, काळबादेवी रोड, बम्बई २; पृ०-१६

१८-गणपतीच्या गोष्टी—ले०—क० मा० कृ० शिंदे; प्र०—ताडदेव बुकडिपो, ताडदेव, बम्बई–७; पृ०–३२

१९-गणपतीच्या गंमती—ले०–पु० रा० बेहेरे; प्र०—सौ० सुधा गजानन रायकर, कमला निवास, ए ब्लॉक, मुगभाट, बम्बई–४; पृ०–२४

२०-महागणपति—ले०–त्र्यं० ग० बापट; प्र०–द० र० कोपर्डेकर, ५२१ सदाशिव, पूना; पृ०–३१

२१-मुलांचा गणपती—ले०–शं० रा० देवले और वि० न० गोंधलेकर; प्र०—वीनस प्रकाशन, ४१०, शनिवार पेठ, पूना–२; पृ०–३२

२२-मङ्गलमूर्ति–ले० एवं प्र०–दा० वि० कुलकर्णी, कोल्हापुर; पृ०–३०

२३-अष्टविनायक–ले०–सदानन्द चेंदवणकर; प्र०—साहित्य रसमाला प्रकाशन, नितीन मैंशन, ७वीं खेतवाडी, बम्बई ४; पृ०–६१

२४-श्रीअष्टविनायक–ले०–द० म० खेर; प्र०—आनन्द-कार्यालय प्रकाशन, १०१५, सदाशिव, पूना २; पृ०–१२०

२५-अष्टविनायक कथा–ले०–दत्ताजी कुलकर्णी; प्र०—नलिनी प्रकाशन, ९७७, सदाशिव पेठ, पूना २; पृ०–३०

२६-श्रीअष्टविनायक मार्गदर्शिका–ले० एवं प्र०–म० ना० सोमण, रवेंद्र टेरेस, दूसरा बाबुलनाथ क्रॉस रोड, बम्बई ७; पृ०–४३

२७-एकविंशति गाणेशक्षेत्र महिमा–ले० एवं प्र०—हेरम्बराज बाल्शास्त्रीशर्मा, योगीन्द्रमठ, मोरगाँव, पूना; पृ०–१४६

२८-गणपतिपुळे माहात्म्यवर्णन–ले०–के० जनार्दन विठ्ठल पाठक, गणपतिपुळे, रत्नागिरि; पृ०–५३

२९-गणपतिपुळे क्षेत्राची संक्षिप्त माहिती–ले०—प्रभाकर वासुदेव शास्त्री ग्रोंध्ये; प्र०—द० वा० ग्रोंध्ये, पूना; पृ०–१२

३०-श्रीगणेश कथासार–ले०–रामराव मोहनीराज शास्त्री; प्र०—गणपति-संस्थान, राजूर, औरंगाबाद; पृ०–२६

३१-गिरगाँवचा फडके श्रीगणपती–ले०—सदानन्द चेंदवणकर; प्र०–निर्णयसागर प्रेस, डॉ० एम्० बी० वेल्कर स्ट्रीट, बम्बई २; पृ०–१६

३२-हिटवाळा श्रीमहागणपति दर्शन–ले०–शि० मो० घैसास; प्र०—जयहिंद प्रकाशन, खावबाची वाडी, बम्बई २; पृ०–१६

३३-पुण्यांतील एक जागृत दैवत–ले०–दामोदरशास्त्री दाते; प्र०—सौ० नलिनी दामोदर दाते, १२३ शनिवार, नेने घाट, पूना २; पृ०–८

३४-फडके श्रीगणपति-मन्दिर—ले०–शि० मो० घैसास; प्र०-जयहिंद-प्रकाशन, खावबाची वाडी, बम्बई-२; पृ०-१६

३५-श्रीभूस्वानन्दक्षेत्रमहिमा मोरेश्वर क्षेत्रवर्णन—ले० एवं प्र०—हेरम्बराज बाल्शास्त्रीशर्मा, योगीन्द्रमठ, मोरगाँव, पूना; पृ०–८४

३६-महाराष्ट्रांतील महागणपति—ले०—सदानन्द चेंदवणकर; प्र० निर्णयसागर प्रेस, डॉ० एम्० बी० वेल्कर स्ट्रीट, बम्बई- २; पृ०–१३६

३७-लक्षविनायक-माहात्म्य—लक्षविनायक-सप्तशती ले० एवं प्र०—हेरम्बराज बाल्शास्त्रीशर्मा, योगीन्द्रमठ, मोरगाँव, पूना; पृ०-१३२

३८-सिद्धिविनायकदर्शन—ले०—यशवंत रामकृष्ण; प्र०—जयहिन्द प्रकाशन, खावबाची वाडी, बम्बई–२; पृ०–१६

३९-ओंकारस्वरूप (श्रीगणेश) चिन्तामणीस्तवन—ले०–कवि रा० गो० परांजपे; प्र०—प्रकाश सजीवन औषधालय, श्रीगिरीधारी भुवन, सदाशिव गल्ली, गिरगाँव, बम्बई–४; पृ०–१२

४०-श्रीअष्टविनायक स्तोत्र व माहात्म्य—प्र०–सौ० मेधा माधव परचुरे, रुक्मिणी-निवास, दादर, बम्बई-१४; पृ०–२८

४१-आरती-संग्रह—प्र०–सौ० जयश्री धनेश्वर, जयलक्ष्मी प्रकाशन, शिवाजी पार्क, दादर, बम्बई २८; पृ०-१८

४२-उपासनामार्गांचें तत्त्व—ले० एवं प्र०—हेरम्बराज बाल्शास्त्रीशर्मा, योगीन्द्रमठ, मोरगाँव, पूना; पृ०-४४

४३-गणपत्यथर्वशीर्ष—अ०–डा० सी० ग० देसाई; प्र०—आर० बी० मर्चेंठिआ, भानु मैंशन, मजुरी रास्ता, कांदिवली, बम्बई ६७; पृ०–३२

४४-गणपति पुष्पहार— प्र०–सीताराम नारायण नेने शास्त्री, नवी अमृतवाडी, रूम नं० २११, बम्बई–४; पृ०–१६

गुजराती भाषा

१-सत्यविनायक-कथा—ले० एवं प्र०-श्रीइच्छाराम सूर्यराम देसाई, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, फोर्ट, बम्बई-१; पृ०-८०

२-गणपति-पूजा-विधि—ले० एवं प्र०-श्रीइच्छाराम सूर्यराम देसाई; गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, फोर्ट, बम्बई-१; पृ०-१५६

३-गणपति-अध्यात्मज्ञान—ले० एवं प्र०-श्रीइच्छाराम सूर्यराम देसाई, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, फोर्ट, बम्बई-१;

४-गणेशसहस्र-नामावलि-ले० एवं प्र०-श्रीइच्छाराम सूर्यराम देसाई, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, फोर्ट, बम्बई-१; पृ०-५०

५-गणपति-अथर्वशीर्ष—ले० एवं प्र०-श्रीइच्छाराम सूर्यराम देसाई, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, फोर्ट, बम्बई-१; पृ०-४०

६-गणपति-एकाक्षर-मन्त्र-ले० एवं प्र०-श्रीइच्छाराम सूर्यराम देसाई, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, फोर्ट, बम्बई-१; पृ०-२४

७-गणपति-उपासना—प्र०-महादेव रामचन्द्र जागुष्टे, मण दरवाजा, अहमदाबाद; पृ०-१००

८-गणपति अथर्वशीर्ष-प्र०-महादेव रामचन्द्र जागुष्टे, मण दरवाजा, अहमदाबाद; पृ०-२४

९-गणपति-उपासना—ले०-रमाशंकर मुक्ताशंकर जोषी, प्र०-हरिहर पुस्तकालय, टावर रोड, सूरत; पृ०-१००

१०-गणपति-पूजा-कथा—प्र०-हरिहर पुस्तकालय, टा[वर] रोड, सूरत; पृ०-४८

११-गणपति-सहस्रनामावलि-प्र०-हरिहर पुस्तकाल[य], टावर रोड, सूरत; पृ०-३२

१२-गणेश-पूजन-विधि-प्र०-सेठ माणेकलाल व्रजभू[षण]दास, ९, सी०पी० टैंक रोड, बम्बई ४; पृ०-१[illegible]

१३-गणेश-सहस्र-नामावलि—प्र०-सेठ माणेकल[ाल] व्रजभूषणदास, ९, सी० पी० टैंक रोड, बम्ब[ई] ४; पृ०-४०

१४-गणपति-अध्यात्मज्ञान—ले०-रमाशंकर मुक्ताशं[कर] जोषी; प्र०-सेठ माणेकलाल व्रजभूषणदास, [९], सी० पी० टैंक रोड, बम्बई-४; पृ०-३२

१५-गणपति एकाक्षर-मन्त्र—ले०-श्रीरमाशंकर मुक्[ता]शंकर जोषी, प्र०-सेठ माणेकलाल व्रजभूषणदास, ९, सी० पी० टैंक रोड, बम्बई ४; पृ०-१६

१६-सिद्धिदायक बीजमंत्रो—ले०-उमियाशंकर ठाकर, प्र०-जयन्तीलाल ठाकर, गायत्री-गीत मंजरी सदन, धोबी फलिया, आनन्द, गुजरात; पृ०-२४४

१७-ॐकार ब्रह्म-उपासना अने मूर्तिपूजा—ले०-ब्रह्मचारी पूर्णानन्दस्वरूप महाराज, प्र०-श्रीगणपति-मन्दिर, लुणावडा, गुजरात; पृ०-२६४

१८-गणेशमहिम्नस्तोत्र—ले०-विनायक योगी महाराज

१९-सत्यविनायक-कथा—ले०-विनायक योगी महाराज

कन्नड भाषा

१-गणेशपुराण (आठ भाग)—अ०-दानगत यज्ञेश्वर शास्त्री, प्र०-जयचामराजेन्द्र-ग्रन्थमाला, मैसूर

२-गणेशपुराण—अ०-चन्द्रशेखर शास्त्री, प्र०-पैलेस लाइब्रेरी मैसूर; पृ०-५००

३-गणेशोपासना-प्रकाश—ले०-रामचन्द्रशास्त्री मसूरि, प्र०-श्रीसिद्धिविनायक-वैदिक विद्यापीठम्, श्री-सिद्धिक्षेत्र, इडगुंजि

४-गणपतिय कल्पने—ले०-एस० के० रामचन्द्रराव, प्र०-सुरमा प्रकाशन, बंगलोर-११

५-भविष्यपुराण (विनायक चतुर्थी-कथा)—अ०-बी० चेन्नकेशवय्य; प्र०-जयचामराजेन्द्र ग्रन्थ-माला, मैसूर

६-लिङ्गपुराण (विनायककी कथा)—अ०-एकतोरे चन्द्रशेखर शास्त्री; प्र०-जयचामराजेन्द्र-ग्रन्थमाला, मैसूर

७-शिवपुराण (विनायककी कथा)—ले०-दासनूर पण्डित वेङ्कटराव; प्र०-जयचामराजेन्द्र ग्रन्थमाला, मैसूर

८-वराहपुराण (विनायककी कथा)—अ०-म० र० वरदाचार्य; प्र०-जयचामराजेन्द्र ग्रन्थमाला, मैसूर

९-वराहपुराण (विनायककी कथा)—अ०-पं० पद्मरोनाथाचार्य [illegible]; प्र०-[illegible] धार्मिकग्रन्थ [illegible], गदग

(११वीं शती); प्र०—मरे एं० को०, मद्रास।
५–तक्कयाकप्परणि (प्रार्थना गीत)—ले०—ओट्टक्कूत्तर (१२वीं शती); प्र०—उ. वे. स्वामिनाथ ऐयर, मद्रास
६–कलिंगत्तुप्परणि (प्रार्थना-गीत)—ले०—जय कोण्डार (१२वीं शती); प्र०—एस० राजन्, मद्रास
७–विल्लि भारतम् (प्रार्थना-गीत)—ले०—चेल्वैच्चुत्तार (१४वीं शती); प्र०—मरे एंड को०, मद्रास
८–चोक्कनाथर उला (प्रार्थना-गीत)—ले०—तिरुमलै-नायकर (१६वीं शती); प्र०—उ. वे. स्वामिनाथ ऐयर-संस्करण।
९–तिरुप्पुकळ् (एक गीत)—ले०—अरुणगिरिनाथकर (१७वीं शती); प्र०—शैवसिद्धान्त नूर-पदिप्पुक्कळगम्, मद्रास
१०–नन्नेरि (प्रार्थना-गीत)—ले०—शिवप्रकाश स्वामिगल (१७ वीं शती)
११–कुमरगुरुपरर् प्रबन्धम् (चार स्थानोंमें)—ले०—कुमरगुरुपरर् (१७वीं शती); (मीनाक्षियम्मै पिळ्ळै तमिळ्)—प्र०—उ. वे. स्वामिनाथ ऐयर-संस्करण
१२–काशिक्कलंबकम् (प्रार्थना-गीत)—ले०—वही; प्र०—वही
१३–मदुरै मीनाक्षियम्मै कुरम् (प्रार्थना-गीत)—ले०—वही; प्र०—वही
१४–चिदंबर मुम्मणिक्कोवै (प्रार्थना-गीत)—ले०—वही; प्र०—वही
१५–मुत्तुक्कुमारसामि पिळ्ळैत्तमिळ् (प्रार्थना-गीत)—ले०—वही; प्र०—वही
१६–तिरुवारूर नान् मणिमालै (प्रार्थना-गीत)—ले०—वही; प्र०—वही
१७–मदुरैक्कलंबकम् (प्रार्थना-गीत)—ले०—वही; प्र०—वही
१८–कुट्रालक्कुरवंजि (प्रार्थना-गीत)—ले०—तिरिकूट-राचप्पकविरायर् (१७वीं शती); प्र०—एस, राजम्, मद्रास
१९–तिरुविळैयाडर्पुराणम् (प्रार्थना-गीत)—ले०—परंज्योति मुनिवर (१८वीं शती); प्र०—काशी मठम्, तिरुप्पनदाळ
२०–विनायकर पुराणम्—ले०—कचियप्प मुनिवर (१८वीं शती)
२१–विनायकर पिळ्ळैत्तमिळ्—ले०—वही
२२–विनायकर अगवल्—ले०—औवैयार् (११वीं शती; प्र०—काशी मठम्, तिरुप्पनंदाळ
२३–तिरुवरुट्पा (गणपतिस्तोत्र—दस गीत)—ले० रामलिङ्ग अडिगळ (१९वीं शती); प्र० चेन्नै समरस शुद्ध सन्मार्ग-सघम्, मद्रास
२४–विनायकर् नानमणिमालै (भारतियार कवितैगळ चालीस गीत)—ले०—सुब्रह्मण्य भारतियार (बीसवीं शती); प्र०—शक्ति-कार्यालय, मद्रास
२५–कल्पत्रयम्—ले०—स्वामीनाथ गुरुक्कल; प्र०—गणेश कोश-मण्डल पुस्तकालय
२६–गणेशालयपरार्थ नित्यपूजाक्रमः—ले०—के० ए० सदारत्न गुरुक्कल, गणेश-कोश-मण्डल पुस्तकालय
२७–विघ्नेश्वर प्रतिष्ठाविधि—ले०—अघोर शिवाचार्य प्र०—गणेश कोश मण्डल पुस्तकालय
२८–विनायकर कोरतु—प्र० अ०—रंगस्वामी मुदलियार एंड संस, मद्रास; पृ०—९६८
२९–विनायकर—ले०—कृपानन्द वारि, प्र०—तिरुप्पुगल-अमृतम् प्रेस, मद्रास—२; पृ०—६४
३०–गाणपत्यम्—ले०—शेन्दिल तुरनि; प्र०—शास्ता पदिप्पगम्, तिरुचेन्दूर, पृ०—१२८
३१–अरुट्कवि अमुदम्—ले०—नारण दुरैक्कण्णन्; प्र०—देवोपदिप्पगम्, मद्रास—१; पृ०—१३५
३२–विनायकपुराणम् (गद्य)—प्र०—श्रीमहालिङ्गस्वामी-देवस्थानम्, तिरुविडैमरुदूर; पृ०—४२१
३३–विनायकर वलिउप्पाट्टुनूल्—ले०—सी अरणै वडिवेलु मुदलियार; प्र०—कवि एकंबर नूर्पदिप्पु कल्गम्, कांचीपुरम्; पृ०—१२४
३४–वलिपाट्टुमलर्—ले०—प०अ० सुब्रमणियन्; प्र०—१७०, लिंगिचेट्टि गली, मद्रास—१; पृ०—२८
३५–विनायकर मंजरी—ले०—चे० वे० मंजुळ्ळम्; प्र०—आनन्द विल्लम्, भिवंडार ऑफिस; पृ०—१९
३६–विनायकर पुगलनूर्कोवै—ले०—कल्गम् के कविगण (संकलन); प्र०—शैवसिद्धान्त कल्गम्, मद्रास—१; पृ०—१८१
३७–विनायकर अदवलुम् विनायकर् कवचमुम्—प्र०—शैवसिद्धान्त कल्गम्, मद्रास—१; पृ०—८
३८–विनायक पुराणवचनम्—ले० मु० अ० रमनानी पुलवर्, प्र०—शैवसिद्धान्त कल्गम्, मद्रास—१; पृ०—४६८

श्रीगणेशप्रिय चतुर्थीव्रत-माहात्म्य एवं व्रत-विधि

चतुर्थीतिथिकी श्रेष्ठता

शिवपुराणकी कथा है—श्वेतकल्पमें जब भगवान् शंकरके अमोघ त्रिशूलसे पार्वतीनन्दन दण्डपाणिका मस्तक कट गया, तब पुत्रवत्सला जगज्जननी शिवा अत्यन्त दुःखी हुईं। उन्होंने बहुत-सी शक्तियोंको उत्पन्न किया और उन्हें प्रलय मचानेकी आज्ञा दे दी। उन परम तेजस्विनी शक्तियोंने सर्वत्र संहार करना प्रारम्भ किया। प्रलयका दृश्य उपस्थित हो गया। देवगण हाहाकार करने लगे। तब समस्त भयनाशिनी जगदम्बाको प्रसन्न करनेके लिये देवताओंने उत्तर दिशासे हाथीका सिर लाकर शिवा-पुत्रके धड़से जोड़ दिया। महेश्वरके तेजसे पार्वतीका प्रिय पुत्र जीवित हो गया।

अपने पुत्र गजमुखको जीवित देखकर त्रैलोक्यजननी शिवा अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उस समय दयामयी पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी देवताओंने वहीं गणेशको 'सर्वाध्यक्ष' घोषित कर दिया।

उसी समय अत्यन्त प्रसन्न देवाधिदेव महादेवने अपने वीर पुत्र गजाननको अनेक वर प्रदान करते हुए कहा—'विघ्ननाशके कार्यमें तेरा नाम सर्वश्रेष्ठ होगा। तू सबका पूज्य है, अतः अब मेरे सम्पूर्ण गणोंका अध्यक्ष हो जा।'

तदनन्तर परम प्रसन्न भक्तवत्सल आशुतोषने गणपतिको पुनः वर प्रदान करते हुए कहा—'गणेश्वर! तू भाद्रपद-मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको चन्द्रमाका शुभोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है। जिस समय गिरिजाके सुन्दर चित्तसे तेरा रूप प्रकट हुआ, उस समय रात्रिका प्रथम प्रहर बीत रहा था। इसलिये उसी दिनसे आरम्भ करके उसी तिथिमें प्रसन्नताके साथ (प्रतिमास) तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये। वह व्रत परम शोभन तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंका प्रदाता होगा।*

फिर व्रतकी विधि बतलाते हुए सर्वसुहृद् पार्वतीवल्लभने गणेश-चतुर्थीके दिन अत्यन्त श्रद्धा-[illegible]पूर्वक गजमुखको प्रसन्न करनेके लिये किये गये उपवास एवं पूजनके माहात्म्यका गान किया और कहा—'जो लोग नाना प्रकारके उपचारोंसे भक्तिपूर्वक तेरी [illegible] करेंगे, उनके विघ्नोंका सदाके लिये नाश हो जायगा [illegible] उनकी कार्यसिद्धि होती रहेगी। सभी वर्णके लोगों[illegible] विशेषकर स्त्रियोंको यह पूजा अवश्य करनी चाहिये [illegible] अभ्युदयकी कामना करनेवाले राजाओंके लिये भी यह [illegible] अवश्यकर्तव्य है। व्रती मनुष्य जिस जिस वस्तुकी [illegible] करता है, उसे निश्चय ही वह वस्तु प्राप्त हो जाती [illegible] अतः जिसे किसी वस्तुकी अभिलाषा हो, उसे अवश्य [illegible] सेवा करनी चाहिये।'†

* * *

'गणेशपुराण'में भाद्रपद शुक्ल-चतुर्थीको मध्याह्नकालमें [illegible] आदिदेव गणेशके पूजनका माहात्म्य बताया गया है। [illegible] इस प्रकार है—गणेश दर्शनकी तीव्र लालसासे शिवा[illegible] लेखनाद्रिके एक रमणीय स्थानपर गणेशका ध्यान [illegible] हुए उनके एकाक्षरी मन्त्रका जप करने लगीं। इस प्र[illegible] बारह वर्षोंतक कठोर तप करनेपर गुणवल्लभ गणेश [illegible] हुए और पार्वतीके सम्मुख प्रकट होकर उन्होंने उन[illegible] पुत्रके रूपमें अवतरित होनेका वचन दिया।

भाद्र शुक्ल-चतुर्थीका मध्याह्नकाल था। [illegible] चन्द्रवार, स्वातिनक्षत्र एवं सिंहलग्नका योग था। [illegible] शुभ ग्रह एकत्र थे। जगज्जननी शिवाने गणेश[illegible] षोडशोपचारसे पूजा की और उसी समय उनके सम्मु[illegible] अमित महिमामय, कुन्दधवल, चतुर्भुज, त्रिनयन भगवा[illegible] गणेश पुत्ररूपमें प्रकट हो गये।

भक्तमुक्तिदायक सामगान [illegible] गणेशकी [illegible] होने[illegible] कारण भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी [illegible] गणेशकी [illegible] [illegible] हुई। उस दिन मध्याह्नकालमें [illegible] गणेश[illegible] [illegible] मूर्तिकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा एवं [illegible] स्मरण, चिन्तन एवं [illegible] है। [illegible]

---

* चतुर्थ्यां त्वं समुत्पन्नो भाद्रे मासि गणेश्वर ।
असिते च तथा पक्षे चन्द्रस्योदयने शुभे ॥
प्रथमे च तथा यामे गिरिजायाः सुचेतसः ।
आविर्बभूव ते रूपं यस्मात्ते व्रतमुत्तमम् ॥
तस्मात्तद्दिनमारभ्य तस्यामेव तिथौ मुदा ।
व्रतं कार्यं विशेषेण सर्वसिद्ध्यै सुशोभनम् ॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कुमारखं० १८ । ३५-४०)

† ये ये कामं करिष्यन्ति ते ते [illegible] ।
अतः [illegible] ॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८ । [illegible])

श्रीगणेशप्रिय चतुर्थीव्रत-माहात्म्य एवं व्रत-विधि

चतुर्थीतिथिकी श्रेष्ठता

शिवपुराणकी कथा है—श्वेतकल्पमें जब भगवान् शंकरके अमोघ त्रिशूलसे पार्वतीनन्दन दण्डपाणिका मस्तक कट गया, तब पुत्रवत्सला जगज्जननी शिवा अत्यन्त दुःखी हुईं। उन्होंने बहुत-सी शक्तियोंको उत्पन्न किया और उन्हें प्रलय मचानेकी आज्ञा दे दी। उन परम तेजस्विनी शक्तियोंने सर्वत्र संहार करना प्रारम्भ किया। प्रलयका दृश्य उपस्थित हो गया। देवगण हाहाकार करने लगे। तब समस्त भयनाशिनी जगदम्बाको प्रसन्न करनेके लिये देवताओंने उत्तर दिशासे हाथीका सिर लाकर शिवा-पुत्रके धड़से जोड़ दिया। महेश्वरके तेजसे पार्वतीका प्रिय पुत्र जीवित हो गया।

अपने पुत्र गजमुखको जीवित देखकर त्रैलोक्यजननी शिवा अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उस समय दयामयी पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी देवताओंने वहीं गणेशको 'सर्वाध्यक्ष' घोषित कर दिया।

उसी समय अत्यन्त प्रसन्न देवाधिदेव महादेवने अपने वीर पुत्र गजाननको अनेक वर प्रदान करते हुए कहा—'विघ्ननाशके कार्यमें तेरा नाम सर्वश्रेष्ठ होगा। तू सबका पूज्य है, अतः अब मेरे सम्पूर्ण गणोंका अध्यक्ष हो जा।'

तदनन्तर परम प्रसन्न भक्तवत्सल आशुतोषने गणपतिको पुनः वर प्रदान करते हुए कहा—'गणेश्वर! तू भाद्रपद-मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको चन्द्रमाका शुभोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है। जिस समय गिरिजाके सुन्दर चित्तसे तेरा रूप प्रकट हुआ, उस समय रात्रिका प्रथम प्रहर बीत रहा था। इसलिये उसी दिनसे आरम्भ करके उसी तिथिमें [प्रसन्न]ताके साथ (प्रतिमास) तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये। [यह] व्रत परम शोभन तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंका प्रदाता होगा।*

फिर व्रतकी विधि बतलाते हुए सर्वसुहृद् पार्वतीवल्लभने गणेश चतुर्थीके दिन अत्यन्त श्रद्धा-भ[क्ति]पूर्वक गजमुखको प्रसन्न करनेके लिये किये गये [व्रत,] उपवास एवं पूजनके माहात्म्यका गान किया और कहा 'जो लोग नाना प्रकारके उपचारोंसे भक्तिपूर्वक तेरी [पूजा] करेंगे, उनके विघ्नोंका सदाके लिये नाश हो जायगा [और] उनकी कार्यसिद्धि होती रहेगी। सभी वर्णके लोगों[को,] विशेषकर स्त्रियोंको यह पूजा अवश्य करनी चाहिये [तथा] अभ्युदयकी कामना करनेवाले राजाओंके लिये भी यह [व्रत] अवश्यकर्तव्य है। व्रती मनुष्य जिस जिस वस्तुकी काम[ना] करता है, उसे निश्चय ही वह वस्तु प्राप्त हो जाती [है।] अतः जिसे किसी वस्तुकी अभिलाषा हो, उसे अवश्य [तेरी] सेवा करनी चाहिये।'†

* * *

'गणेशपुराण'में भाद्रपद शुक्ल-चतुर्थीको मध्याह्नकालमें आदिदेव गणेशके पूजनका माहात्म्य बताया गया है। क[था] इस प्रकार है—गणेश दर्शनकी तीव्र लालसासे शिवप्रि[या] लेखनाद्रिके एक रमणीय स्थानपर गणेशका ध्यान क[रते] हुए उनके एकाक्षरी मन्त्रका जप करने लगीं। इस प्रका[र] बारह वर्षतक कठोर तप करनेपर गुणवल्लभ गणेश संतु[ष्ट] हुए और पार्वतीके सम्मुख प्रकट होकर उन्होंने उन[के] पुत्रके रूपमें अवतरित होनेका वचन दिया।

भाद्र शुक्ल-चतुर्थीका मध्याह्नकाल था। उस दि[न] चन्द्रवार, स्वातिनक्षत्र एवं सिंहलग्नका योग था। पाँच शुभ ग्रह एकत्र थे। जगज्जननी शिवाने गणेशजीका षोडशोपचारसे पूजा की और उसी समय उनके सम्मुख अमित महिमामय, कुन्दधवल, षड्भुज, त्रिनयन भगवान् गणेश पुत्ररूपमें प्रकट हो गये।

भक्तसुखदायक परमप्रभु गणेशकी प्राकट्य-तिथि होने[के] कारण भाद्रपद शुक्ल-चतुर्थी दयाधाम गणेशकी वरदा तिथि प्रख्यात हुई। उस दिन मध्याह्नकालमें भगवान् गणेशकी मृन्मयी मूर्तिकी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण पूजा एवं मङ्गलमूर्ति प्रभुके स्मरण, चिन्तन एवं नाम जपका अमित माहात्म्य है। य[ह]

---

* चतुर्थ्यां त्वं समुत्पन्नो भाद्रे मासि गणेश्वर।
असिते च तथा पक्षे चन्द्रस्योदयने शुभे॥
प्रथमे च तथा यामे गिरिजायाः सुचेतसः।
आविर्बभूव ते रूपं यस्मात्ते व्रतमुत्तमम्॥
तस्मात्तद्दिनमारभ्य तस्यामेव तिथौ मुदा।
व्रतं कार्यं विशेषेण सर्वसिद्ध्यै सुशोभनम्॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु०खं० १८। ३५-३७)

† यं यं कामयते यो वै तं तं प्राप्नोति निश्चितम्।
अतः कामयमानेन तेन सेव्यः सदा भवान्॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। ६०)

पुण्यमय तिथि अत्यन्त फलप्रदायिनी कही गयी है। चतुर्मुख ब्रह्माने अपने मुखारविन्दसे कहा है कि 'इस चतुर्थी-व्रतका निरूपण एवं माहात्म्य गान शक्य नहीं।'*

'मुद्गलपुराण'में भी आता है कि परम पराक्रमी लोभासुरसे त्रस्त होकर देवताओंने परम प्रभु गजाननसे उसके विनाशकी प्रार्थना की। दयाधाम गजमुख उस महान् असुरके विनाशके लिये परम पावनी चतुर्थीको मध्याह्न-कालमें अवतरित हुए, इस कारण उक्त तिथि उन्हें अत्यन्त प्रीतिप्रदायिनी हुई।†

तिथियोंकी माता चतुर्थीकी उत्पत्ति, उनका तप और वर-प्राप्ति

श्रीगणेशको अत्यन्त प्रिय परम पुण्यमयीको 'वरदा चतुर्थी'-की उत्पत्तिकी पवित्रतम कथा मुद्गलपुराणमें प्राप्य है। वह अत्यन्त संक्षेपमें इस प्रकार है—

लोकपितामह ब्रह्माने सृष्टि-रचनाके अनन्तर अनेक कार्योंकी सिद्धिके लिये अपने हृदयमें श्रीगणेशका ध्यान किया। उसी समय उनके शरीरसे परा प्रकृति, महामाया, तिथियोंकी जननी कामरूपिणी देवी प्रकट हुई। उन परम लावण्यवती देवीके चार पैर, चार हाथ और चार सुन्दर मुख थे। उन्हें देखकर विधाता अत्यन्त प्रसन्न हुए।

उन महादेवीने स्रष्टाके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर अनेक स्तोत्रोंसे उनका स्तवन करनेके अनन्तर निवेदन किया—'ब्रह्माण्डनायक! मैं आपके शुभ अङ्गसे उत्पन्न हुई हूँ। आप मेरे पिता हैं। आप मुझे आज्ञा प्रदान करें, मैं क्या करूँ! प्रभो! आपके पावन पद-पद्मोंमें मेरा बारंबार प्रणाम है। आप मुझे कृपापूर्वक रहनेके लिये स्थान और विविध प्रकारके भोग्यपदार्थ प्रदान करें।'

लोकस्रष्टाने श्रीगणेशका स्मरण कर उत्तर दिया—'तुम अद्भुत सृष्टि करो।' और फिर प्रसन्न पिता ब्रह्माने उन्हें श्रीगणेशका 'वक्रतुण्डाय हुम्' —यह षडक्षर मन्त्र दे दिया।'

महिमामयी देवीने भगवान् वेदगर्भके चरणोंमें भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया और फिर वे वनमें जाकर श्रीगणेश-का ध्यान करते हुए उग्र तप करने लगीं। वे अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक दिव्य सहस्र वर्षतक तप करती रहीं।

उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर देवदेव गजानन प्रकट हुए और उन्होंने कहा—'महाभागे! मैं तुम्हारे निराहार तपश्चरणसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर माँगो।'

परम प्रभुकी सुखद वाणी सुनकर महिमामयी माताने हर्षगद्गद कण्ठसे उनका स्तवन किया।

इससे अतिशय संतुष्ट हुए मूषक वाहनने पुनः कहा—'देवि! मैं तुम्हारे तप एवं स्तवनसे अत्यन्त संतुष्ट हूँ। तुम अपनी इच्छा व्यक्त करो।'

साश्रुनयना देवीने परम प्रभु गजाननके पावनतम चरणोंमें प्रणामकर निवेदन किया—'करुणानिधे! आप मुझे अपनी सुदृढ़ भक्ति प्रदान करें। मुझे सृष्टि-सर्जनकी सामर्थ्य प्राप्त हो। मैं आपको सदा प्रिय रहूँ और मुझसे आपका कभी वियोग न हो।'

स्वीकृतिसूचक 'ओम्'का उच्चारण कर परम प्रभुने वर प्रदान किया—'चतुर्विध फल-प्रदायिनी देवि! तुम मुझे सदा प्रिय रहोगी! तुम समस्त तिथियोंकी माता होओगी और तुम्हारा नाम 'चतुर्थी' होगा। तुम्हारा वामभाग 'कृष्ण' एवं दक्षिणभाग 'शुक्ल' होगा। निस्संदेह तुम मेरी जन्मतिथि होओगी। तुम्हारेमें व्रत करनेवालेका मैं विशेषरूपसे पालन करूँगा और इस व्रतके समान अन्य कोई व्रत नहीं होगा।''

यह कहकर भगवान् गजमुख अन्तर्धान हो गये। तिथियोंकी माता चतुर्थी गणपतिका ध्यान करते हुए सृष्टि रचना करने लगीं। सहसा उनका वामभाग कृष्ण और दक्षिणभाग शुक्ल हो गया। महाभाग्यवती शुक्लवर्णा अत्यन्त विस्मित हुईं। उन्होंने पुनः गणाध्यक्षका ध्यान करते हुए सृष्टि-रचनाका उपक्रम किया ही था कि उनके मुखारविन्दसे प्रतिपदा तिथि उत्पन्न हो गयी। इसी प्रकार नासिकासे द्वितीया, वक्षसे तृतीया, अंगुलीसे पञ्चमी, हृदयसे षष्ठी, नेत्रसे सप्तमी, बाहुसे अष्टमी, उदरसे नवमी, कानसे दशमी, कण्ठसे एकादशी, पैरसे द्वादशी, स्तनसे त्रयोदशी, अहंकारसे चतुर्दशी और मनसे पूर्णिमा तथा जिह्वासे अमावस्या तिथि प्रकट हुई।

सभी तिथियोंसहित दोनों चतुर्थियोंने भगवान् गजमुखके

---

*चतुर्थ्या महिमानं नो न शक्यं प्रतिवर्णितुम् ॥
(गणेशपु० २।८२।३४)

† चतुर्थ्यां मध्यन्हे जातो देहधारी गजाननः।
सा तिथिः परमा तस्य प्रीतिदा सम्बभूव ह ॥
(मुद्गलपु० ४।१।२०)

ध्यान और नाम-जपके साथ तपश्चरण प्रारम्भ किया। इस प्रकार उनके एक वर्षतक तप करनेपर भक्तवत्सल प्रभु विघ्नेश्वर प्रकट हुए। वे मध्याह्नमें शुक्ल चतुर्थीके समीप पहुँचकर बोले—'वर माँगो।'

शुक्ल चतुर्थीने आदिदेव गजमुखके चरणोंमें प्रणाम कर उनकी पूजा और स्तुति की। तदनन्तर उन्होंने कहा—'परमप्रभु गजमुख! मैं आपका वासस्थान होऊँ और आप मुझे अपनी शाश्वती भक्ति प्रदान करें।'

दयामय गजमुखने वर प्रदान किया—'तुम्हें मध्याह्नकालमें मेरा दर्शन प्राप्त हुआ है; अतएव मध्याह्नकालमें शिवादि देवगण मेरा भजन करेंगे। शुक्लपक्षकी चतुर्थीको मेरे भक्तजन सदा तुम्हारा व्रत करेंगे। जो निराहार रहकर मेरे साथ तुम्हारी उपासना करेंगे, उनका संचित कर्म-भोग समाप्त हो जायगा और उन्हें मैं सब कुछ प्रदान करूँगा। तुम्हारा नाम 'वरदा' होगा।'

इतना कहकर श्रीगणेश अन्तर्धान हो गये और भगवती शुक्ल-चतुर्थीका 'वरदा' नाम प्रख्यात हुआ। वे श्रीगणेशको अत्यन्त प्रिय हुईं। उस दिन व्रतके साथ श्रीगणेशकी उपासना कर पञ्चमीको सविधि पारण करनेसे निश्चय ही मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं। व्रतीकी प्रत्येक कामना पूरी होती है और अन्तमें वह अतिशय सुखदायक गणेश धामको प्राप्त होता है।

इसके अनन्तर भगवान् गणपतिने रात्रिके प्रथम प्रहरमें चन्द्रमाके उदित होनेपर कृष्णचतुर्थीके समीप पहुँचकर कहा—'महाभाग्यवती! तुम वर माँगो। मैं तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूँगा।'

विघ्नविनाशक प्रभुके दर्शन एवं उनके वचनसे प्रसन्न होकर भगवती कृष्णचतुर्थीने उनके मङ्गलमय चरणोंमें प्रणाम कर उनकी विधिपूर्वक पूजा की। फिर उनका स्तवन कर निवेदन किया—'करुणामय लम्बोदर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपापूर्वक मुझे अपनी सुदृढ़ भक्ति प्रदान करें। मैं आपको सदा प्रिय रहूँ और मुझसे आपका वियोग कभी न हो। आप मुझे सर्वमान्य कर दें।'

कृष्णचतुर्थीकी भक्तिपूर्ण वाणीसे प्रसन्न हो गणपतिने वर प्रदान करते हुए कहा—'कल्याणि! तुम मेरी [illegible] प्रिय रहोगी और तुमसे मेरा कभी वियोग नहीं होगा।

चन्द्रोदय होनेपर तुमने मुझे प्राप्त किया है; चन्द्रोदयव्यापिनी होनेपर तुम मुझे अत्यधिक प्रिय होओगी। मेरे प्रसादसे तुम उस समय अन्न-जल त्याग [illegible] उपासना करनेवालोंका संकट हरण करो। उस दिन व्रतोपवास करनेवालोंको तुम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सब कुछ प्रदान करोगी। उनकी समस्त कर्मराशि नष्ट हो जायगी और वे निश्चय ही इस लोकमें समस्त सुख भोगकर अन्तमें जन्म-मृत्युके पाशसे मुक्त हो मेरे दुर्लभ धाम जायँगे। संकष्टहारिणी देवि! निस्संदेह मेरी कृपासे सर्वदा लोगोंको आनन्द प्रदान करनेवाली होओगी।'

'उस दिन यति मेरा व्रत निराहार रहकर करें। लोग रात्रिमें चन्द्रोदय होनेपर मेरा पूजन कर ब्राह्मणको [illegible] देकर (उन्हें भोजन कराकर) स्वयं भोजन करें। पूजनके अनन्तर उस दिन श्रावणमें लड्डू और भाद्रमें दधि भोजन करना चाहिये। क्वारमें आश्विनमें निराहार रहे। कार्तिकमें दुग्धपान, मार्गशीर्षमें जलाहार और पौषमें गोमूत्र लेना चाहिये। माघमें श्वेत तिल, फाल्गुनमें शर्करा, चैत्रमें पञ्चगव्य, वैशाखमें पद्मबीज (कमलगट्टा), ज्येष्ठमें गोघृत और आषाढ़में मधुका भोजन करना चाहिये।'

[illegible] चतुर्थी व्रत करनेवालोंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। इस व्रतके प्रभावसे धन-धान्य और आरोग्यकी प्राप्ति होती है, समस्त आपदाएँ नष्ट हो जाती हैं तथा भगवान् गणेशकी कृपासे [illegible] की भी सिद्धि होती है। [illegible]

[illegible]

मिलता है। यदि दोनों ही दिन चन्द्रोदयव्यापिनी न हो तो पर-चतुर्थी लेनी चाहिये। (व्रतराज)

यदि वह दो दिन चन्द्रोदयव्यापिनी हो या न हो तो 'मातृविद्धा प्रशस्यते'के अनुसार पूर्वविद्धा लेनी चाहिये। (व्रत-परिचय) अन्य विद्वानोंका मत है कि 'तृतीयायुक्त चतुर्थी इस व्रतके लिये श्रेष्ठ अवश्य मानी गयी है, किंतु जब सूर्यास्त होनेके पहले तृतीयामें छः घड़ी चतुर्थीका प्रवेश होता हो। पहले दिन चन्द्रोदय-कालमें तिथिका अभाव होनेपर दूसरे दिन ही व्रत करना चाहिये।'

इस विषयमें धर्मशास्त्रीय निर्णय इस प्रकार है—'संकष्ट-चतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्य है। यदि दो दिन चतुर्थी हो और दूसरे दिनकी ही चतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी हो तो दूसरे दिन ही व्रत करना चाहिये। यदि दोनों दिन चन्द्रोदय-व्यापिनी तिथि हो तो पहले दिनकी तृतीयायुक्त चतुर्थीको ही व्रतके लिये ग्रहण करना चाहिये। यदि दोनों ही दिनोंकी चतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी न हो तो दूसरे दिन ही व्रतका पालन करना चाहिये।' (गणेश कोश)

वर्षभरके चतुर्थी-व्रतोंकी संक्षिप्त विधि और उनका माहात्म्य

(१) चैत्र-मासकी चतुर्थीको वासुदेवस्वरूप गणेशजीकी विधिपूर्वक पूजा कर ब्राह्मणको सुवर्णकी दक्षिणा देनेपर मनुष्य सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित हो श्रीविष्णुके सुखद लोकमें जाता है।*

(२) वैशाख-मासकी चतुर्थीको संकर्षण गणेशकी पूजा कर ब्राह्मणोंको शङ्ख दान करना चाहिये। इसके प्रभावसे मनुष्य [illegible] सुख प्राप्त करता है।

(३) ज्येष्ठ-मासकी चतुर्थीको प्रद्युम्नरूपी गणेशकी पूजा कर ब्राह्मणोंको फल-मूलका दान करनेसे व्रती स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है।

ज्येष्ठकी चतुर्थीको [illegible] एक दूसरा श्रेष्ठ व्रत होता है। इस व्रतको विधिपूर्वक [illegible] करनेसे भी मनुष्य [illegible] करती है।

(४) आषाढ़-मासकी चतुर्थीको अनिरुद्धस्वरूप गणेशकी प्रीतिपूर्वक पूजा करके संन्यासियोंको तूँबीका पात्र दान करना चाहिये। इस व्रतको करनेवाला मनुष्य मनो-वाञ्छित फल प्राप्त करता है।

रथन्तर-कल्पका प्रथम दिन होनेसे आषाढ़की चतुर्थीको एक दूसरा उत्तम व्रत होता है। उस दिन मनुष्य श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक मङ्गलमूर्ति गणेशकी सविधि पूजा कर वह फल प्राप्त कर लेता है, जो देव-समुदायके लिये भी दुर्लभ है।

(५) श्रावण-मासकी चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर मङ्गलमय श्रीगणेशजीके स्वरूपका ध्यान करते हुए उन्हें अर्घ्य प्रदान करे। फिर आवाहन आदि सम्पूर्ण उपचारोंसे उनकी भक्तिपूर्वक पूजा कर लड्डूका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। व्रत पूरा होनेपर व्रती स्वयं भी प्रसादस्वरूप लड्डू खाय और फिर रात्रिमें गणेशजीका पूजन कर पृथ्वीपर ही शयन करे। इस व्रतको करनेवाले मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूरी होती हैं और अन्तमें उसे गणेशजीका पद प्राप्त हो जाता है। त्रैलोक्यमें इसके समान अन्य कोई व्रत नहीं है।

श्रावण शुक्ल-चतुर्थीको 'दूर्वागणपति' (सौरपुराण) का व्रत बताया गया है। उस दिन प्रातःस्नानादिसे निवृत्त होकर सिंहासनस्थ चतुर्भुज, एकदन्त गजमुखकी स्वर्णकी मूर्तिका निर्माण कराये और सोनेकी दूर्वा बनवाये। तदनन्तर सर्वतोभद्र-मण्डलपर कलश स्थापन करके उसमें सोनेकी दूर्वा लगाकर उसपर गणेशजीकी प्रतिमाको स्थापित करना चाहिये। मङ्गलमूर्ति गणेशजीको [illegible] विभूषितकर सुगन्धित पत्र-पुष्पादिसे उनकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। आरती, वन्दन, प्रणाम और परिक्रमा कर अपराधोंके लिये क्षमा याचना करे। इस प्रकार तीन या पाँच वर्षतक व्रत पालनसे समस्त कामनाएँ पूरी होती हैं।

(६) भाद्रपद कृष्ण-चतुर्थीको [illegible] गन्ध, पुष्प, माला और दूर्वा आदिके द्वारा यत्नपूर्वक पूजन [illegible] परिक्रमा करनी चाहिये। [illegible] [illegible]

---

* [illegible]

देवता उनका सम्मान करते हैं और अन्तमें वे गोलोकधामकी प्राप्ति करते हैं।

भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको सिद्धिविनायक-व्रतका पालन करना चाहिये। इस दिन गणेशजीका मध्याह्नमें प्राकट्य हुआ था, अतः इसमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि ही ली जाती है।

सर्वप्रथम एकाग्र चित्तसे सर्वानन्दप्रदाता सिद्धिविनायकका ध्यान करे। फिर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक उनके इक्कीस नाम लेकर इक्कीस पत्ते समर्पित करे। उनके प्रत्येक नामके साथ 'नमः' जुड़ा हो। वे इक्कीस नाम और पत्ते इस प्रकार हैं—

'सुमुखाय नमः' कहकर शमीपत्र अर्पित करे। 'गणाधीशाय नमः' कहकर भँगरैयाका पत्ता, 'उमापुत्राय नमः' कहकर बिल्वपत्र, 'गजमुखाय नमः' कहकर दूर्वादल, 'लम्बोदराय नमः' कहकर बेरका पत्ता, 'हरसूनवे नमः' कहकर धतूरेका पत्ता, 'शूर्पकर्णाय नमः' कहकर तुलसीदल,* 'वक्रतुण्डाय नमः' कहकर सेमका पत्ता, 'गुहाग्रजाय नमः' कहकर अपामार्गका पत्ता, 'एकदन्ताय नमः' कहकर वनभंटा या भटकटैयाका पत्ता, 'हेरम्बाय नमः' कहकर सिन्दूर (सिन्दूरचूर्ण या सिन्दूर-वृक्षका पत्ता), 'चतुर्होत्रे नमः' कहकर तेजपात, 'सर्वेश्वराय नमः' कहकर अगस्त्यका पत्ता, 'विकटाय नमः' कहकर कनेरका पत्ता, 'हेमतुण्डाय नमः' कहकर अश्मातपत्र या कदलीपत्र, 'विनायकाय नमः' कहकर आकका पत्ता, 'कपिलाय नमः' कहकर अर्जुनका पत्ता, 'वटवे नमः' कहकर देवदारुका पत्ता, 'भालचन्द्राय नमः' कहकर मरुआका पत्ता, 'सुराग्रजाय नमः' कहकर गान्धारी पत्र और 'सिद्धिविनायकाय नमः' कहकर केतकी-पत्र प्रीतिपूर्वक समर्पित करे।

इससे श्रीगणेशजी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। इसके अनन्तर दो दूर्वादल लेकर गन्ध, पुष्प और अक्षतके साथ गणेशजीपर चढ़ाना चाहिये। फिर नैवेद्यके रूपमें पाँच लड्डू उन दयासिन्धु प्रभु गजमुखको अत्यन्त प्रेमपूर्वक अर्पण करे। तदनन्तर आचमन कराकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनके चरणोंमें बार-बार प्रणाम और प्रार्थना करते हुए विसर्जन करना चाहिये। समस्त सामग्रियोंसहित गणेशजीकी स्वर्णमयी प्रतिमा आचार्यको अर्पित करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रकार पाँच वर्षतक व्रत एवं गणेश-पूजन करनेवालोंको लौकिक एवं पारलौकिक समस्त सुख प्राप्त होते हैं।† इस तिथिकी रात्रिमें चन्द्र-दर्शनका निषेध है। चन्द्रदर्शन करनेवाले मिथ्या कलङ्कके भागी होते हैं।‡

(७) आश्विन-शुक्ल-चतुर्थीको 'पुरुषसूक्त'द्वारा षोडशोपचारसे कपर्दीश-विनायककी भक्तिपूर्वक पूजाका माहात्म्य है।

(८) कार्तिक-कृष्ण चतुर्थीको 'करकचतुर्थी' (करवा चौथ) का व्रत कहा जाता है। यह व्रत स्त्रियाँ विशेषरूपसे करती हैं। इस दिन व्रतीके लिये प्रातःकाल स्नानादिसे निवृत्त होकर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो गणेशजीकी भक्तिपूर्वक पूजा करनेका विधान है। पवित्र चित्तसे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पकवानसे भरे हुए दस करवे परमप्रभु गजाननके सम्मुख रखे। समर्पण करते हुए मन-ही-मन प्रार्थना करे कि 'करुणासिन्धु कपर्दिगणेश! आप मुझपर प्रसन्न हों।' तदनन्तर सुवासिनी स्त्रियों और ब्राह्मणोंको इच्छानुसार आदरपूर्वक उन करवोंको बाँट दें।

समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले भगवान् गणेशका स्मरण चिन्तन एवं नाममन्त्रका जप करते रहना चाहिये। रात्रिमें चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमाको विधिपूर्वक अर्घ्य प्रदान करे। व्रत पूर्तिके लिये स्वयं मिष्टान्न भोजन करना चाहिये।

इस व्रतको बारह या सोलह वर्षोंतक करना चाहिये। तदनन्तर इसका उद्यापन करे। इसके बाद भी चाहें तो इसे छोड़ सकती हैं अन्यथा सुख-सौभाग्यके लिये भी इसे जीवन-पर्यन्त कर सकती हैं। स्त्रियोंके लिये इसके समान सौभाग्य प्रदान करनेवाला अन्य व्रत नहीं है।

(९) मार्गशीर्ष-शुक्ल चतुर्थीको 'कृच्छ्र-चतुर्थी-व्रत' है। (स्कन्दपु०) इससे लेकर एक वर्षतक प्रत्येक चतुर्थीका व्रत रखकर देवदेव गजाननका भक्तिपूर्वक पूजन करे। उस दिन एकभुक्त (दिनमें एक समय भोजन) करे और दूसरे वर्ष प्रत्येक चतुर्थीको केवल रात्रिमें एक बार भोजन करे। तीसरे

---

* 'ब्रह्मवैवर्तपुराण'के अनुसार श्रीगणेशको तुलसी-अर्पण निषिद्ध है, किंतु 'नारदपुराण'में भगवान् गणेशके 'एकदन्त'-स्वरूप एवं 'गजानन' 'लम्बोदर'-स्वरूपके लिये तुलसीपत्र अर्पण करनेका विधान है।

† भाद्रपदके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको व्रत करनेसे [illegible] प्राप्त होता है।

‡ भाद्रपदके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको चन्द्रदर्शन हो जानेपर दोषकी शान्तिके लिये [illegible] [illegible] [illegible] (स्कन्दपुराण)

वर्ष प्रत्येक चतुर्थीको अयाचित (बिना माँगे मिला हुआ) अन्न एक बार खाकर रहे और फिर चौथे वर्षमें प्रत्येक चतुर्थीको सर्वथा निराहार रहकर गणेशजीका स्मरण, चिन्तन, भजन एवं अत्यन्त प्रीतिपूर्वक पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार विधिपूर्वक व्रत करते हुए चार वर्ष पूरे होनेपर अन्तमें व्रत-स्नान करे। उस समय व्रत करनेवाला मनुष्य गणेशजीकी सुवर्णकी प्रतिमा बनवाये। यदि सुवर्ण-मूर्ति बनवानेकी क्षमता न हो तो वर्णक (हल्दी चूर्ण) से ही गणपतिकी प्रतिमा बना ले।

फिर विविध रंगोंसे भूमिपर पद्मपत्र बनाकर उसपर कलश स्थापित करे। कलशके ऊपर चावलसे भरा ताँबेका पात्र रखे। उक्त चावलोंसे भरे पात्रपर दो वस्त्र रखकर उसपर गणेशजीको विराजमान करे। इसके बाद गन्धादि उपचारोंसे श्रद्धा भक्तिपूर्वक उन दयामय देवकी पूजा करनी चाहिये। फिर मोदकप्रिय मङ्गलविग्रह गणेशजीको संतुष्ट करनेके लिये उन्हें नैवेद्यके रूपमें लड्डू समर्पित करे। प्रणाम, परिक्रमा एवं प्रार्थनाके अनन्तर सम्पूर्ण रात्रि गीत, वाद्य, पुराण-कथा एवं गणेशजीके स्तवन और नाम-जपके साथ जागरण करनेका विधान है।

अरुणोदय होनेपर स्नानादि दैनिक कृत्यसे निवृत्त हो शुद्ध वस्त्र धारणकर श्रद्धापूर्वक तिल, चावल, जौ, पीली सरसों, घी और खाँड़से मिली हवन-सामग्रीका विधिपूर्वक होम करे। गण, गणाधिप, कूष्माण्ड, त्रिपुरान्तक, लम्बोदर, एकदन्त, रुक्मदंष्ट्र, विघ्नप, ब्रह्मा, यम, वरुण, सोम, सूर्य, हुताशन, गन्धमादी तथा परमेष्ठी—इन सोलह नामोंद्वारा प्रत्येकके आदिमें प्रणव और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति और उसमें 'नमः' पद लगाकर अग्निमें एक एक आहुति दे।

इसके बाद 'वक्रतुण्डाय हुम्'—इस मन्त्रसे एक सौ आठ आहुतियाँ दे। तदनन्तर व्याहृतियोंद्वारा[1] यथाशक्ति होम करके पूर्णाहुति देनी चाहिये। फिर दिक्पालोंकी पूजा करके चौबीस ब्राह्मणोंको अत्यन्त आदरपूर्वक लड्डू और खीर भोजन करावे। आचार्यको दक्षिणाके साथ सवत्सा गौका दान कर दूसरे ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार भूयसी दक्षिणा दे। इसके बाद उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर उनकी परिक्रमा करे। तदुपरान्त उन्हें आदरपूर्वक विदा करना चाहिये। फिर स्वजन-बन्धुओंके साथ स्वयं प्रसन्नतापूर्वक भोजन करे।

इस महिमामय व्रतका पालन करनेवाले मनुष्य दयासिन्धु गणेशजीके प्रसादसे इस लोकमें उत्तम भोग भोगते और परलोकमें भगवान् विष्णुके सायुज्यके अधिकारी होते हैं।

(१०) पौष-मासकी चतुर्थीको भक्तिपूर्वक विघ्नेश्वर गणेशकी पूजा और प्रार्थना कर एक ब्राह्मणको लड्डूका भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। इस व्रतको विधिपूर्वक करनेवाले पुरुषके यहाँ धन सम्पत्तिका अभाव नहीं होता।

(११) माघ-कृष्ण चतुर्थीको 'संकष्टव्रत' कहा गया है। उस दिन प्रातःकाल स्नानके अनन्तर देवदेव गजमुखकी प्रसन्नताके लिये व्रतोपवासका संकल्प करके दिनभर संयमित रहकर श्रीगणेशका स्मरण, चिन्तन एवं भजन करते रहना चाहिये। चन्द्रोदय होनेपर मिट्टीकी गणेशमूर्ति बनाकर उसे पीढ़ेपर स्थापित करे। गणेशजीके साथ उनके आयुध और वाहन भी होने चाहिये। पहले उक्त मृन्मयी मूर्तिमें गणेशजीकी स्थापना करे; तदनन्तर षोडशोपचारसे उनका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। फिर मोदक तथा गुड़में बने हुए तिलके लड्डूका नवेद्य अर्पित करे। आचमन कराकर प्रदक्षिणा और नमस्कार करके पुष्पाञ्जलि अर्पित करनी चाहिये।

अर्घ्य-प्रदान

तदनन्तर शान्तचित्तसे भक्तिपूर्वक गणेशमन्त्रका इक्कीस बार जप करे और फिर भगवान् गणेशको अर्घ्य प्रदान करे। अर्घ्य प्रदान करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

गणेशाय नमस्तुभ्यं सर्वसिद्धिप्रदायक।
संकष्टहर मे देव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥
कृष्णपक्षे चतुर्थ्यां तु सम्पूजित विधूदये।
क्षिप्रं प्रसीद देवेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

'समस्त सिद्धियोंके दाता गणेश! आपको नमस्कार है। संकटोंको हरण करनेवाले देव! आप अर्घ्य ग्रहण कीजिये; आपको नमस्कार है। कृष्णपक्षकी चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर पूजित देवेश! आप अर्घ्य ग्रहण कीजिये; आपको नमस्कार है।'

इन दोनों श्लोकोंके साथ 'संकष्टहरणगणपतये नमः' (संकष्टहरणगणपतिके लिये नमस्कार है) दो बार बोलकर दो अर्घ्य देने चाहिये।

इसके अनन्तर निम्नाङ्कित मन्त्रसे चतुर्थी तिथिको

---

[1] 'ॐ भूः स्वाहा'—इदमग्नये न मम। 'ॐ भुवः स्वाहा'—इदं वायवे न मम। 'ॐ स्वः स्वाहा' इदं सूर्याय न मम—ये

तिथीनामुत्तमे देवि गणेशप्रियवल्लभे ।
सर्वसंकटनाशाय गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥
'चतुर्थ्यै नमः' इदमर्घ्यं समर्पयामि ।

'तिथियोंमें उत्तम गणेशजीकी प्यारी देवि ! आपके लिये नमस्कार है। आप मेरे समस्त संकटोंको नष्ट करनेके लिये अर्घ्य ग्रहण करें। चतुर्थी तिथिकी अधिष्ठात्री देवीके लिये नमस्कार है। मैं उन्हें यह अर्घ्य प्रदान करता हूँ।' [व्रतराज]

तत्पश्चात् चन्द्रमाका गन्ध पुष्पादिसे विधिवत् पूजन करके ताँबेके पात्रमें लाल चन्दन, कुश, दूर्वा, फूल, अक्षत, शमीपत्र, दधि और जल एकत्र करके निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करते हुए उन्हें अर्घ्य दे—

गगनार्णवमाणिक्य चन्द्र दाक्षायणीपते ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गणेशप्रतिरूपक ॥
(नारदपु०, पूर्व० ११३ । ७७)

'गगनरूपी समुद्रके माणिक्य, दक्षकन्या रोहिणीके प्रियतम और गणेशके प्रतिरूप चन्द्रमा ! आप मेरा दिया हुआ यह अर्घ्य स्वीकार कीजिये।'*

फिर भगवान् गणेशके चरणोंमें प्रणामकर यथाशक्ति उत्तम ब्राह्मणोंको प्रेमपूर्वक भोजन और दक्षिणासे संतुष्टकर उनकी अनुमतिसे स्वयं प्रसन्नतापूर्वक भोजन करे।

इस परम कल्याणकारी 'संकष्टव्रत'के प्रभावसे व्रती धन धान्यसे सम्पन्न हो जाता है और उसके सम्मुख कभी कष्ट उपस्थित नहीं होता।

इस व्रतको 'वक्रतुण्ड-चतुर्थी' (भविष्योत्तर) भी कहते हैं। इस व्रतको माघ-माससे आरम्भ करके हर महीनेमें करे तो संकटका नाश हो जाता है।

माघ मासके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको उपवास करके श्रद्धा भक्तिपूर्वक गणेशजीकी पूजा करे और पञ्चमीको तिलका भोजन करे। इस प्रकार व्रत करनेपर मनुष्य निर्विघ्न सु[ख] जीवन व्यतीत करता है। 'गं स्वाहा'—यह मूलमन्त्र [है]। 'गां नमः।' आदिसे हृदयादि-न्यास करे।†

'आगच्छोल्काय' कहकर गणेशका आवाहन [और] 'गच्छोल्काय' कहकर विसर्जन करे। इस प्रकार आदि[में] गकारयुक्त और अन्तमें 'उल्का' शब्दयुक्त मन्त्रसे उन[का] आवाहनादि कार्य करे। गन्धादि उपचारोंसे सविधि गणपति-पूजन कर उन्हें नैवेद्यरूपमें लड्डू अर्पण करे, फिर आचमन, प्रणाम और परिक्रमा आदिके अनन्तर इस गणे[श] गायत्रीका जप करे—

ॐ महोल्काय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥ (अग्निपुराण)

इस व्रतकी बड़ी महिमा है।

इसी तिथिको 'गौरी-व्रत' भी किया जाता है। उ[स] दिन योगिनी-गणोंसहित गौरीकी पूजा करनी चाहिये। मनुष्यों, विशेषतः स्त्रियोंको कुन्द, पुष्प, कुङ्कुम, लाल सूत्र, लाल फूल, महावर, धूप, दीप, गुड़, अदरख, दूध, खीर, नमक और पालक आदिसे भगवती गौरीका प्रीतिपूर्वक पूजन करना चाहिये। अपने सुख-सौभाग्यकी वृद्धिके लिये सौभाग्यवती स्त्रियों एवं उत्तम ब्राह्मणोंकी पूजाका भी विधान है। तदनन्तर प्रसन्न मन बन्धु-बान्धवोंसहित स्वयं भी भोजन करना चाहिये। इस 'गौरीव्रत'के प्रभावसे सौभाग्य एवं आरोग्यकी वृद्धि होती है। कुछ लोग इसे 'ढुण्ढि व्रत,'[1] 'कुण्ड-व्रत,'[2] 'ललिता व्रत' और 'शान्ति व्रत'[3] भी कहते हैं।

---

* तिथिकी अधिष्ठात्री देवी एवं रोहिणीपति चन्द्रमाको प्रत्येक कृष्णपक्षकी चतुर्थीको गणेश-पूजनके अनन्तर अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। गणेश-कोशमें दिये गये निर्णयके अनुसार भाद्रपद शुक्ल-चतुर्थीको केवल तिथिके लिये मध्याह्न-कालमें तीन बार अर्घ्य देना चाहिये; परंतु कृष्ण-चतु[र्थी] ... तिथिके लिये ...

† हृदयादि षडङ्गोंका न्यास इस प्रकार करे—

'गां हृदयाय नमः। गीं शिरसे स्वाहा। गूं शिखायै वषट्। गैं नेत्रत्रयाय वौषट्। गौं कवचाय हुम्। गः अस्त्राय फट्।'

१—इस दिन काशीवासी ढुण्ढिराज गणेशका दर्शन-पूजन करे। उन्हें श्वेत तिल और चीनीका मोदक अर्पण करना चाहिये। रात्रिमें एक समय भोजन कर भगवान् ढुण्ढिराजका स्मरण, कीर्तन एवं गुणगान करते हुए जागरण करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। (निर्णयसिन्धु)

२—इस दिन उपवास करके देवीकी सविधि पूजा करनेसे सन्तति और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। (देवीभागवत)

३—इस दिन भक्तिपूर्वक गणपतिकी पूजा कर उन्हें ... (पूआ) और ... पदार्थ अर्पण करने चाहिये। ... और भी ... करनेसे ...

इस पुण्यमय तिथिके स्नान, दान, जप और होम आदि शुभ कर्म आदिदेव गजवदनकी कृपासे सहस्रगुने फलदायी हो जाते हैं।

(१२) फाल्गुन मासकी चतुर्थीको मङ्गलमय 'ढुण्ढिराज व्रत' बताया गया है। उस दिन व्रतोपासकके साथ गणेशजीकी सोनेकी मूर्ति बनाकर उसकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा करे। तदनन्तर वह मूर्ति ब्राह्मणको दान कर दे। गणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये उस दिन तिलोंसे ही दान, होम और पूजन आदि करे। उस दिन तिलके पीठेसे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर व्रती स्वयं भी भोजन करे। इस व्रतके प्रभावसे समस्त सम्पदाओंकी वृद्धि होती है और मनुष्य गणेशजीकी कृपासे सहज ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

'मत्स्यपुराण'के अनुसार फाल्गुन शुक्ल-चतुर्थीको 'मनोरथ-चतुर्थी' कहते हैं। आराधनाकी विधि यही है। पूजनोपरान्त नक्तव्रतका विधान है। इस प्रकार बारहों महीनेकी प्रत्येक शुक्ल चतुर्थीको व्रत करते हुए वर्षभरके बाद उस स्वर्णमूर्तिका दान करनेसे मनोरथ सिद्ध होते हैं।

अग्निपुराणमें इसको 'अविघ्ना-चतुर्थी'की संज्ञा दी गयी है।

जिस किसी मासमें भी चतुर्थी तिथि रविवार या मङ्गलवारसे युक्त हो, वह विशेष फलदायिनी होती है। उसे 'अङ्गारक-चतुर्थी' कहते हैं। उस दिन गणेशजीका पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है।*

अमित महिमामयी चतुर्थी-व्रतमें पूजाके अन्तमें चतुर्थी-व्रतकथा श्रवणकी बड़ी महिमा गायी गयी है। पौराणिक कथाओंके अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्तमें परम्परागत कुछ लोक-कथाएँ भी कही-सुनी जाती हैं। वे सभी भगवान् गणेशकी प्रीति प्रदान करनेवाली हैं।

परम महिमामयी अङ्गारक-चतुर्थी

'अङ्गारक चतुर्थी'की माहात्म्य-कथा गणेशपुराणके उपासनाखण्डके ६० वें अध्यायमें वर्णित है। वह कथा अत्यन्त संक्षेपमें इस प्रकार है—

पृथ्वीदेवीने महामुनि भारद्वाजके जपापुष्प-तुल्य अरुण पुत्रका पालन किया। सात वर्षके बाद उन्होंने उसे महर्षिके पास पहुँचा दिया। महर्षिने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने पुत्रका आलिङ्गन किया और उसका सविधि उपनयन कराकर उसे वेद शास्त्रादिका अध्ययन कराया। फिर उन्होंने अपने प्रिय पुत्रको गणपति-मन्त्र देकर उसे गणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये आराधना करनेकी आज्ञा दी।

मुनि पुत्रने अपने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर पुण्यसलिला गङ्गाजीके तटपर जाकर वह परम प्रभु गणेशजीका ध्यान करते हुए भक्तिपूर्वक उनके मन्त्रका जप करने लगा। वह बालक निराहार रहकर एक सहस्र वर्षतक गणेशजीके ध्यानके साथ उनका मन्त्र जपता रहा।

माघ-कृष्ण-चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर दिव्य वस्त्रधारी अष्टभुज चन्द्रभाल प्रसन्न होकर प्रकट हुए। उन्होंने अनेक शस्त्र धारण कर रखे थे। वे विविध अलंकारोंसे विभूषित अनेक सूर्योंसे भी अधिक दीप्तिमान् थे। भगवान् गणेशके मङ्गलमय अद्भुत स्वरूपका दर्शन कर तपस्वी मुनिपुत्रने प्रेमगद्गद कण्ठसे उनका स्तवन किया।

वरद प्रभु बोले—'मुनिकुमार! मैं तुम्हारे धैर्यपूर्ण कठोर तप एवं स्तवनसे पूर्ण प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर माँगो। मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

प्रसन्न पृथ्वीपुत्रने अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया—"प्रभो! आज आपके दुर्लभ दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया। मेरी माता पर्वतमालिनी पृथ्वी, मेरे पिता, मेरा तप, मेरे नेत्र, मेरी वाणी, मेरा जीवन और जन्म सभी सफल हुए। दयामय! मैं स्वर्गमें निवासकर देवताओंके साथ अमृत पान करना चाहता हूँ। मेरा नाम तीनों लोकोंमें कल्याण करनेवाला 'मङ्गल' प्रख्यात हो।"

पृथ्वीनन्दनने आगे कहा—'करुणामूर्ति प्रभो! मुझे आपका भुवनपावन दर्शन आज माघ-कृष्ण-चतुर्थीको हुआ है। अतएव यह चतुर्थी नित्य पुण्य देनेवाली एवं संकट हारिणी हो। सुरेश्वर! इस दिन जो भी व्रत करे, आपकी कृपासे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाया करें।'

सद्यःसिद्धिप्रदाता देवदेव गजमुखने वर प्रदान कर दिया—'मेदिनीनन्दन! तुम देवताओंके साथ सुधा पान करोगे। तुम्हारा 'मङ्गल' नाम सर्वत्र विख्यात होगा। तुम धरणीके पुत्र हो और तुम्हारा रंग लाल है, अतः तुम्हारा

* यह वर्षभरके चतुर्थी व्रतोंकी संक्षिप्त विधि और माहात्म्य 'कल्याण'के 'नारद विष्णु पुराणाङ्क'के आधारपर प्रस्तुत किया गया है। विस्तृत पूजा विधि तथा माहात्म्य जाननेके लिये 'कल्याण'

'अङ्गारक-चतुर्थी'के नामसे प्रख्यात होगी। पृथ्वीपर जो मनुष्य इस दिन मेरा व्रत करेंगे, उन्हें एक वर्षपर्यन्त चतुर्थी व्रत करनेका फल प्राप्त होगा। निश्चय ही उनके किसी कार्यमें कभी विघ्न उपस्थित नहीं होगा।"

परम प्रभु गणेशने मङ्गलको वर देते हुए आगे कहा— 'तुमने सर्वोत्तम व्रत किया है, इस कारण तुम अवन्ती-नगरमें परंतप-नामक नरपाल होकर सुख प्राप्त करोगे। इस व्रतकी अद्भुत महिमा है। इसके कीर्तनमात्रसे मनुष्यकी समस्त कामनाओंकी पूर्ति होगी।'

गजमुख अन्तर्धान हो गये।

मङ्गलने एक भव्य मन्दिर बनवाकर उसमें दशभुज गणेशकी प्रतिमा स्थापित करायी। उसका नामकरण किया— 'मङ्गलमूर्ति'। वह श्रीगणेश-विग्रह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, अनुष्ठान, पूजन और दर्शन करनेसे सबके लिये मोक्षप्रद होगा।

पृथ्वीपुत्रने मङ्गलवारी चतुर्थीके दिन व्रत करके श्री[गणेश]जीकी आराधना की। उसका एक अत्यन्त आश्च[र्यजनक] फल यह हुआ कि वे सशरीर स्वर्ग चले गये। उन्हों[ने देव]समुदायके साथ अमृत-पान किया और वह परमपावनी 'अङ्गारक-चतुर्थी'के नामसे प्रख्यात हुई। यह पुत्र-[पौत्र] एवं समृद्धि प्रदान कर समस्त कामनाओंको पूर्ण करत[ी है।]

परम कारुणिक गणेशजीको अन्तर्हृदयकी विशुद्ध [भक्ति] अभीष्ट है। श्रद्धा और भक्तिपूर्वक त्रयतापनिवारक निधान मोदकप्रिय सर्वेश्वर गजमुख कपित्थ, जम्बू [आदि] वन्यफलोंसे ही नहीं, दूर्वाके दो दलोंसे भी प्रसन्न हो[ते] हैं और मुदित होकर समस्त कामनाओंकी पूर्ति तो [करते] ही हैं, जन्म-जरा-मृत्युका सुदृढ पाश नष्टकर अपना दुर्ल[भ] परमानन्दपूरित दिव्य धाम भी प्रदान कर देते हैं।

—शिवनाथ

श्रीगणपति-पूजनकी विधि

(लेखक—साहित्याचार्य पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

नित्य सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा एक और अद्वितीय हैं। वे निर्गुण निराकार होनेके साथ ही सगुण-साकार भी हैं। जैसे उनका निर्गुण निराकार रूप नित्य है, उसी प्रकार सगुण-साकार भी। वे परमात्मा जगत्की सृष्टिके लिये ब्रह्मा, पालनके लिये विष्णु तथा संहारके लिये रुद्र-रूप धारण करते हैं। वे ही जगत्के प्राणियोंको माताका वात्सल्य एवं संरक्षण देनेके लिये दयामयी माता दुर्गाके रूपमें कार्य करते हैं। वे ही लोकोंकी आवश्यकताओंके अनुसार ताप एवं प्रकाश प्रदान करनेके निमित्त लोक-प्रसविता सविता (सूर्य) हुए हैं। हम सब यह अनुभव करते हैं कि प्रत्येक अभीष्ट कार्यके सम्पादनमें नाना प्रकारके विघ्न आते रहते हैं, उन सभी विघ्नोंका निवारण करके जगत्को मङ्गल प्रदान करनेके लिये परब्रह्म परमात्मा ही नित्य गणपतिरूपमें प्रतिष्ठित हैं। वे विघ्न-वारिधि और बुद्धि विधाता हैं। वे ही सदा, विशेषतः कलियुगमें, थोड़ी-सी भी आराधनासे शीघ्र प्रसन्न होकर भक्तजनोंके अभीष्ट सिद्ध करते हैं। भगवान् गणपति नित्य वैदिक देवता हैं; आर्योंकी सनातन आवास-भूमि आर्यावर्त (भारत) में इनकी अनादि सिद्ध पूजन-परम्परा सदासे ही चली आ रही है। पुराणोंमें भी उनकी महामहिमाका विशद वर्णन उपलब्ध होता है। पञ्चदेवोंमें वे भगवान् गजानन मुख्य हैं; प्रत्येक कर्मका आरम्भ श्रीगणेशके स्मरण-वन्दनसे ही होता है। जिन्हें लोगोंको मुक्ति या कोई भौतिक सिद्धि चाहिये, वे इस युगमें गणेशजीको शीघ्र प्रसन्न करके अपनी अभीष्ट-पूर्ति कर सकते हैं। वे मङ्गलमूर्ति, सिद्धि-सदन, गजानन विनायक बहुत अल्प श्रमसे ही उपासकपर दयासे द्रवित हो जाते हैं। जो विनायककी पूजा करता है, उसे कभी विघ्न नहीं प्राप्त होता।* उनकी आराधनासे कर्ममें सिद्धि प्राप्त होती है।† महागणपति सम्पूर्ण जगत्को उपासकके वशीभूत कर देते हैं।‡

यहाँ गणेशजीके पूजनकी शास्त्रीय विधि दी जाती है। जो यज्ञोपवीतधारी द्विज हों, वे वैदिक मन्त्रों तथा पौराणिक मन्त्रोंसे भी गणपतिजीका पूजन कर सकते हैं। जिनके यज्ञोपवीत न हो, वे वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण न करके केवल पौराणिक मन्त्रोंद्वारा पूजन सम्पन्न कर सकते हैं। गणपतिजीकी पूजामें [illegible] है। पूजाका मुख्य साधन दूर्वादल है। दूर्वा, मोदक और

---

* [illegible]

† [illegible]

‡ [illegible]

की भावना करे। पूजक यदि गृहस्थ हो तो पूजनके समय सपत्नीक बैठकर पूजा करे। पूजन आरम्भ करनेसे पूर्व घीका दीपक जलाकर देवपीठके दाहिने भागमें अक्षत-पुञ्जपर उसे रख दे और 'ॐ दीपज्योतिषे नमः'—यह मन्त्र बोलकर गन्ध-पुष्पसे उसका पूजन करे। फिर उस दीपमें इष्टदेवके ज्योतिर्मय रूपकी भावना करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

(क) भो दीप देवरूपस्त्वं कर्मसाक्षी ह्यविघ्नकृत्।

यावत्कर्मसमाप्तिः स्यात् तावत् त्वं सुस्थिरो भव॥

'हे दीप! तुम देवताके रूप हो, कर्मके साक्षी तथा विघ्नके निवारक हो। जबतक पूजा-कर्म पूरा न हो जाय, तबतक तुम सुस्थिरभावसे संनिकट रहो।'

तदनन्तर पूर्वाभिमुख बैठा हुआ सपत्नीक यजमान निम्नाङ्कित मन्त्रोंको पढ़कर तीन बार आचमन करे—

ॐ केशवाय नमः। ॐ नारायणाय नमः। ॐ माधवाय नमः॥

फिर 'ॐ हृषीकेशाय नमः' कहकर हाथ धो ले और दाहिने हाथमें कुशकी पवित्री[1] धारण करे। उस समय इस मन्त्रका पाठ करे—

(ख) ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। (यजुर्वेद १। १२) तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम्॥ (यजुर्वेद ४। १४)

इस प्रकार पवित्री धारण करनेके बाद तीन बार प्राणायाम करे। तत्पश्चात्—

(ग) ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।

यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

'ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु॥'

'कोई पवित्र हो, अपवित्र हो, अथवा किसी भी अवस्थाको प्राप्त क्यों न हो, जो भगवान् पुण्डरीकाक्षका स्मरण करता है, वह बाहर-भीतरसे पवित्र हो जाता है।' 'सच्चिदानन्दघन पुण्डरीकाक्ष पवित्र करें।'

यह मन्त्र पढ़कर अपने ऊपर तथा पूजन-सामग्रीपर जल छिड़के। इसके बाद निम्नलिखित मङ्गल-मन्त्रोंका पाठ करे—

(घ) ॐ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳬ रातिरभि नो निवर्तताम्। देवानाᳬ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम्। अर्यमणं वरुणᳬ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः। तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥

---

[1] कात्यायनने पवित्रीका लक्षण इस प्रकार बताया है—

अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च।

प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित्॥

'कुशके प्रादेश-मात्र दो पत्ते, जिनके गर्भमें दूसरा पत्ता न हो और अग्रभाग सुरक्षित हो, वे हर जगह कर्ममें 'पवित्र' कहे गये हैं।'

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ॥
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥
(यजु० २५ । १४ । २३)

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥
(यजु० ३६ । १७, २२)

सुशान्तिर्भवतु । श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः । उमामहेश्वराभ्यां नमः । वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः । शचीपुरन्दराभ्यां नमः । मातापितृभ्यां नमः । इष्टदेवताभ्यो नमः । कुलदेवताभ्यो नमः । ग्रामदेवताभ्यो नमः । वास्तुदेवताभ्यो नमः । स्थानदेवताभ्यो नमः । सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः ।

(क) विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम् ।
वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम् ॥ १ ॥
वक्रतुण्ड महाकाय कोटिसूर्यसमप्रभ ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥ २ ॥
सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥ ३ ॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥ ४ ॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥ ५ ॥
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ ६ ॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः ।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥ ७ ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् ।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनं हरिः ॥ ९ ॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।
विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि ॥ १० ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ ११ ॥
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ १२ ॥
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ १३ ॥
स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते ।
पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥ १४ ॥
सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः ।
देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः ॥ १५ ॥

उपर्युक्त माङ्गलिक श्लोकोंका भावार्थ इस प्रकार है—

"विश्वनाथ, माधव, ढुण्ढिराज गणेश, दण्डपाणि, भैरव, काशी, गुहा, गङ्गा तथा भवानी मणिकर्णिकाकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥ कोटि सूर्योंके समान महातेजस्वी, विशाल काय और टेढ़ी सूँड़वाले गणपतिदेव ! आप सदा सब कार्योंमें मेरे विघ्नोंका निवारण करें ॥ २ ॥ सुमुख, एकदन्त, कपिल, गजकर्ण, लम्बोदर, विकट, विघ्ननाशक, विनायक, धूम्रकेतु, गणाध्यक्ष, भालचन्द्र और गजानन—ये गणेशजीके बारह नाम हैं। जो मनुष्य विद्यारम्भ, विवाह, गृहप्रवेश, यात्रा, संग्राम (युद्ध) तथा संकटके अवसरपर इन बारह नामोंका पाठ और श्रवण करता है, उसके कार्यमें विघ्न उत्पन्न नहीं होता है ॥ ३–५ ॥ शुक्लवस्त्र धारण करनेवाले, चन्द्रमाके समान गौर, चार भुजाधारी और प्रसन्न मुखवाले गणपतिदेवका ध्यान करे। इससे सम्पूर्ण विघ्नोंकी शान्ति हो जाती है ॥ ६ ॥ देवताओं और असुरोंने भी अभीष्ट मनोरथकी सिद्धिके लिये जिनका पूजन किया है तथा जो समस्त विघ्नोंको दूर करनेवाले हैं, उन गणाधिपतिको नमस्कार है ॥ ७ ॥ नारायणि ! तुमें सब प्रकारका मङ्गल प्रदान करनेवाली मङ्गलमयी हो, कल्याणदायिनी शिवा हो, सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, त्रिनेत्रधारिणी गौरी हो; तुम्हें नमस्कार है ॥ ८ ॥ जिनके हृदयमें मङ्गलधाम भगवान् श्रीहरि विराजते हैं, अर्थात् जो मन-ही-मन उनका चिन्तन करते हैं, उनके समस्त कार्योंमें और सदा ही अमङ्गल नहीं होने पाता है ॥ ९ ॥ लक्ष्मीपते ! मैं जो आपके युगल

चरणोंका स्मरण करता हूँ। वह स्मरण ही शुभ लग्न है, वही सुदिन है, वही ताराबल, वही चन्द्रबल, वही विद्याबल और वही दैवबल है ॥ १० ॥ जिनके हृदयमें नील कमलके समान श्याम-कान्तिवाले भगवान् जनार्दन विराज रहे हैं, उन्हींका लाभ है, उन्हींकी विजय है; उनकी पराजय किससे हो सकती है ? ॥ ११ ॥ जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं, जहाँ धनुर्धर अर्जुन हैं, वहीं श्री, विजय, भूति तथा ध्रुवा नीति है, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—'जो लोग अनन्य भावसे चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, मुझमें नित्य संयुक्त रहनेवाले उन भक्तोंके योग-क्षेमका भार मैं स्वयं वहन करता हूँ' ॥ १३ ॥ जिनका स्मरण करते ही मनुष्य समस्त कल्याणका भाजन हो जाता है, उन नित्य, अजन्मा आदिपुरुष श्रीहरिकी मैं शरण लेता हूँ ॥ १४ ॥ त्रिभुवनके स्वामी तीन देव—ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु—आरम्भ किये जानेवाले सभी कार्योंमें हमें सिद्धि प्रदान करें" ॥ १५ ॥

—इस प्रकार मङ्गल पाठके अनन्तर यजमान पवित्रीयुक्त हाथमें जल, अक्षत और द्रव्य लेकर निम्नाङ्कित वाक्य पढ़ते हुए संकल्प करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीये परार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भूर्लोके जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गतैकदेशे अमुकनगरे अमुकग्रामे स्थाने वा बौद्धावतारे अमुकनामसंवत्सरे श्रीसूर्ये अमुकायने अमुकर्तौ महामाङ्गल्यप्रदमासोत्तमे मासे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते श्रीसूर्ये अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु च यथायथाराशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणगणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकशर्मा (अमुकवर्मा अमुकगुप्त- [illegible]
श्रीमहागणपतिप्रीत्यर्थं [illegible]
करिष्ये ।

—इस प्रकार संक[illegible]
भूमिगत पात्रमें छोड़ [illegible]
करे । सबसे पहले [illegible]
स्वरूपका चिन्तन [illegible]

आवाहन

हे हेरम्ब त्वमेह्येहि ह्यम्बिकात्र्यम्बकात्मज [illegible]
सिद्धिबुद्धिपते त्र्यक्ष लक्षलाभ पितुः पितः [illegible]
नागास्यं नागहारं त्वां गणराजं चतुर्भुजम् [illegible]
भूषितं स्वायुधैर्दिव्यैः पाशाङ्कुशपरश्वधैः [illegible]
आवाहयामि पूजार्थं रक्षार्थं च मम क्रतोः [illegible]
इहागत्य गृहाण त्वं पूजां यागं च रक्ष मे । [illegible]

'हे माता पार्वती तथा त्रिलोचन महादेवके पुत्र हे[illegible] आप आइये, आइये। आप सिद्धि और बुद्धिके प[illegible] तीन नेत्रोंसे सुशोभित हैं; लक्षोंका लाभ करानेवाले [illegible] पिताके भी पिता हैं; यहाँ पधारिये। आप गजान[illegible] नागमय हार धारण करते हैं; आपके चार भुजाएँ हैं; [illegible] गणोंके राजा हैं; पाश, अङ्कुश और परशु आदि दिव्य [illegible] आयुध आपके हाथोंकी शोभा बढ़ाते हैं। मैं पूजनके [illegible] और अपने इस यज्ञकी रक्षाके लिये भी आपका आवा[illegible] करता हूँ। यहाँ पधारकर आप पूजा ग्रहण करें और याग[illegible] रक्षा भी करें।'*

(ग) ॐ गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्[illegible] प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे व[illegible] मम ॥ आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ (यजु० २३ । १९) ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिता[illegible] गणपतये नमः, गणपतिमावाहयामि स्थापयामि ।

प्रतिष्ठापन

आवाहनके पश्चात् देवताकी प्रतिष्ठापन करे—

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमि[illegible] मं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु । विश्वेदेवास[illegible] इह मादयन्तामो३ म्प्रतिष्ठ ॥ (यजु० २ । १३) ॥

अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च ।
देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन ॥
गणपते सुप्रतिष्ठितो वरदो भव ।

[illegible] हाथमें

(क) विचित्ररत्नखचितं दिव्यास्तरणसंयुतम्।
स्वर्णसिंहासनं चारु गृहाण सुरपूजित॥

'देवपूजित गणेश ! यह सुन्दर स्वर्णमय सिंहासन ग्रहण कीजिये। इसमें विचित्र रत्न जड़े गये हैं तथा इसपर दिव्य आस्तरण (बिछावन) पड़ा हुआ है।'

(ख) ॐ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ (यजु० ३१।२) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, आसनं समर्पयामि।

इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्रसे गणेशजीके पाद-प्रक्षालनके लिये पाद्य अर्पित करे—

(क) ॐ सर्वतीर्थसमुद्भूतं पाद्यं गन्धादिभिर्युतम्।
विघ्नराज गृहाणेदं भगवन् भक्तवत्सल॥

'भक्तवत्सल भगवान् विघ्नराज ! यह सब तीर्थोंके जलसे तैयार किया गया तथा गन्ध आदिसे मिश्रित पाद्य-जल आप ग्रहण कीजिये।'

(ख) ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ (यजु० ३१।३) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि

अर्घ्य-दान

तदनन्तर गन्ध आदिसे युक्त अर्घ्यजल अर्पित करे और निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़े—

(क) ॐ गणाध्यक्ष नमस्तेऽस्तु गृहाण करुणाकर।
अर्घ्यं च फलसंयुक्तं गन्धमाल्याक्षतैर्युतम्॥

'[illegible] ! आपको नमस्कार है। आप गन्ध, पुष्प, अक्षत और फल आदिसे युक्त यह अर्घ्य स्वीकार करें।'

(ख) ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः। ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥ (यजु० ३१।४) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, हस्तयोः अर्घ्यं समर्पयामि।

आचमनीय-समर्पण

इसके अनन्तर [illegible]

(क) विनायक नमस्तुभ्यं त्रिदशैरभिवन्दित।
गङ्गोदकेन देवेश कुरुष्वाचमनं प्रभो॥

'देवेश्वर ! देववन्दित प्रभो ! विनायक ! आपको नमस्कार है। आप गङ्गाजलसे आचमन करें।'

(ख) ॐ ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥ (यजु० ३१।५) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, मुखे आचमनीयं समर्पयामि।

स्नानीय-समर्पण।

तदनन्तर नीचे दिये हुए मन्त्रको बोलकर गङ्गाजलसे स्नान करानेकी भावनासे स्नानीय जल अर्पित करे—

(क) मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापहरं शुभम्।
तदिदं कल्पितं देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

'देव ! मन्दाकिनी (गङ्गा) का जो जल सब पापोंको हरनेवाला और शुभ है, वही आपके स्नानके लिये प्रस्तुत किया गया है; आप इसे स्वीकार करें।'

(ख) ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्। पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये॥ (यजु० ३१।६) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, [illegible] स्नानं समर्पयामि।

पञ्चामृत-स्नान

इसके बाद नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर पञ्चामृतसे गणपतिदेवको स्नान करावे—

(क) पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं पयो दधि घृतं मधु।
शर्करा च समायुक्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

'प्रभो ! दूध, दही, घी, मधु और शक्करसे [illegible] किया गया यह पञ्चामृत मैं ले आया हूँ; इसे आप स्नानके लिये ग्रहण करें।'

(ख) ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः। सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्॥ (यजु० ३४।११) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि।

पञ्चामृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

इसके बाद दूध, दही आदिसे पृथक् पृथक् स्नान कराकर शुद्ध जलसे भी स्नान कराना चाहिये । दूधसे स्नान करानेके लिये मन्त्र निम्नलिखित है—

पयःस्नान

(क) कामधेनुसमुद्भूतं सर्वेषां जीवनं परम् ।
पावनं यज्ञहेतुश्च पयः स्नानार्थमर्पितम् ॥

'प्रभो ! कामधेनुके थनसे प्रकट, सबके लिये परम जीवन, पवित्र तथा यज्ञका हेतुभूत यह दूध आपको स्नानके लिये अर्पित है ।'

(ख) ॐ पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः । पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ (यजु० १८ । ३६) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, पयःस्नानं समर्पयामि ।

पयःस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

दधि-स्नान

(क) पयसस्तु समुद्भूतं मधुराम्लं शशिप्रभम् ।
दध्यानीतं मया देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

'देव ! यह दूधसे उत्पन्न, मीठा-खट्टा, चन्द्रसदृश उज्ज्वल दही मैं ले आया हूँ; आप इसे स्नानके लिये ग्रहण करें ।'

(ख) ॐ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूᳬंषि तारिषत् ॥ (यजु० २३ । ३२) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, दधिस्नानं समर्पयामि ।

दधिस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ॥

घृत-स्नान

(क) नवनीतसमुत्पन्नं सर्वसंतोषकारकम् ।
घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

'भगवन् ! नवनीत (मक्खन) से उत्पन्न तथा सबको संतुष्ट करनेवाला यह घृत मैं आपको अर्पित करता हूँ; इसे आप स्नानके लिये स्वीकार करें ।'

(ख) ॐ घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम । अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ (यजु० १७ । ८८) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, घृतस्नानं समर्पयामि ।

घृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

मधु-स्नान

(क) पुष्परेणुसमुद्भूतं सुस्वादु मधुरं मधु ।
तेजःपुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

'प्रभो ! यह पुष्पके परागसे प्रकट और तेजकी पुष्टि करनेवाला दिव्य सुस्वादु, मधुर मधु सेवामें प्रस्तुत है; आप इसे स्नानके लिये ग्रहण करें ।'

(ख) ॐ मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः । मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवᳬं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ (यजु० १३ । २७–२९) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, मधुस्नानं समर्पयामि ।

मधुस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

शर्करा-स्नान

(क) इक्षुसारसमुद्भूता शर्करा पुष्टिदा शुभा ।
मलापहारिका दिव्या स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

'जो ईखके सार-तत्त्वसे बनी है, पुष्टि देनेवाली, शुभ तथा मैलको दूर कर देनेवाली है; वह दिव्य शर्करा सेवामें प्रस्तुत है; आप इसे स्नानके लिये स्वीकार करें ।'

(ख) ॐ अपाᳬं रसमुद्वयसᳬं सूर्ये सन्तᳬं समाहितम् । अपाᳬं रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ (यजु० ९ । ३) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, शर्करास्नानं समर्पयामि ।

शर्करास्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

इसके बाद सुगन्ध तैल (इत्र) आदि अर्पित करे ।

माङ्गलिक स्नान (सुवासित तैल या इत्र)

(क) चम्पकाशोकबकुलमालतीमोगरादिभिः ।
वासितं स्निग्धताहेतु तैलं चारु प्रगृह्यताम् ॥

'प्रभो ! चम्पा, अशोक, मौलसिरी, मालती और मोगरा आदिसे वासित तथा स्निग्धताका हेतुभूत यह सुन्दर तैल [illegible] करें ।'

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, सुवासितं तैलं समर्पयामि।

शुद्धोदक-स्नान

तदनन्तर गङ्गाजल या तीर्थ-जलसे शुद्ध स्नान कराये। मन्त्र निम्नलिखित है—

(क) गङ्गा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदा सिन्धुः कावेरी स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

'इस शुद्ध जलके रूपमें यहाँ गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी उपस्थित हैं; आप स्नानके लिये यह जल ग्रहण करें।'

(ख) ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे ॥ (यजु० ११ । ५०) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

वस्त्र-समर्पण

(क) शीतवातोष्णसंत्राणं लज्जाया रक्षणं परम्।
देहालंकरणं वस्त्रमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

'प्रभो! यह वस्त्र सेवामें अर्पित है। यह सर्दी, हवा और गर्मीसे बचानेवाला, लज्जाका उत्तम रक्षक तथा शरीरका अलंकार है; आप इसे स्वीकार करके मुझे शान्ति प्रदान करें।'

(ख) ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥ (ऋक्० ३ । ८ । ४) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, वस्त्रं समर्पयामि।

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, आचमनं समर्पयामि।

उपवस्त्र (उत्तरीय)-समर्पण

(क) उत्तरीयं तथा देव नानाचित्रितमुत्तमम्।
गृहाणेदं मया भक्त्या दत्तं तत् सफलीकुरु ॥

'हे देव! नाना प्रकारके चित्रों (बेल-बूटों)से सुशोभित यह उत्तम उत्तरीय वस्त्र मैंने भक्तिपूर्वक अर्पित किया है; आप इसे ग्रहण करें और सफल बनायें।'

(ख) ॐ सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमासदत्स्वः। वासो अग्ने विश्वरूपꣳ संव्ययस्व विभावसो ॥ (यजु० ११ । ४०) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, उपवस्त्रं समर्पयामि। तदन्ते आचमनीयं समर्पयामि।

(वस्त्रके अभावमें लाल सूत एवं अलंकरणके लिये अक्षत चढ़ाना चाहिये।)

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, वस्त्रोपवस्त्रार्थे रक्तसूत्रं समर्पयामि।

अलंकरण

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, अलंकरणार्थमक्षतान् समर्पयामि।

यज्ञोपवीत-समर्पण

(क) नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम्।
उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥

'परमेश्वर! नौ तन्तुओंसे युक्त, त्रिगुण और देवतास्वरूप यह यज्ञोपवीत मैंने समर्पित किया है। आप इसे ग्रहण करें।'

(ख) ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, यज्ञोपवीतं समर्पयामि।

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, आचमनं समर्पयामि।

गन्ध

(क) श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥

'सुरश्रेष्ठ! यह दिव्य श्रीखण्डचन्दन, सुगन्धसे पूर्ण एवं मनोहर है। विलेपनस्वरूप यह चन्दन आप स्वीकार करें।'

(ख) ॐ त्वां गन्धर्वा अखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः। त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान्यक्ष्मादमुच्यत ॥ (यजु० १२ । ९८) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, गन्धं समर्पयामि।

अक्षत

(क) अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर ॥

'सुरश्रेष्ठ परमेश्वर! ये कुङ्कुममें रँगे हुए सुन्दर अक्षत हैं; मैंने भक्तिभावसे इन्हें आपकी सेवामें अर्पित किया है, आप इन्हें ग्रहण करें।'

(ख) ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ (यजु० ३।५१) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, अक्षतान् समर्पयामि।

पुष्प-माला

(क) माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।
मयाहृतानि पुष्पाणि गृह्यन्तां पूजनाय भोः ॥

'प्रभो! मालती आदिकी सुगन्धित मालाएँ और फूल मेरेद्वारा लाये गये हैं; आप इन्हें पूजार्थ ग्रहण करें।'

(ख) ॐ ओषधीः प्रतिमोदध्वं, पुष्पवतीः प्रसूवरीः। अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥ (यजु० १२।७७) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, पुष्पमालां समर्पयामि।

मन्दार-पुष्प

(क) वन्दारुजनमन्दार मन्दारप्रिय धीपते।
मन्दारजानि पुष्पाणि श्वेतार्कादीन्युपेहि भोः ॥

'हे वन्दना करनेवाले भक्तोंके लिये मन्दार (कल्पवृक्ष) के समान कामनापूरक! मन्दारप्रिय! बुद्धिपते गणेश! मन्दारके तथा श्वेत आक आदिके फूल ग्रहण कीजिये।'

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, मन्दार-पुष्पाणि समर्पयामि।

शमीपत्र

(क) त्वत्प्रियाणि सुपुष्पाणि कोमलानि शुभानि वै।
शमीदलानि हेरम्ब गृहाण गणनायक ॥

'गणनायक हेरम्ब! आपके जो प्रिय सुन्दर पुष्प तथा कोमल शुभ शमीपत्र हैं, उन्हें ग्रहण कीजिये।'

(ख) ॐ स इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी। शमीभिर्यज्ञमाशत॥ (ऋग० १।२०।२) ॐ सिद्धिबुद्धि-सहिताय महागणपतये नमः, शमीपत्राणि समर्पयामि।

दूर्वाङ्कुर

(क) दूर्वाङ्कुरान् सुहरितानमृतान् मङ्गलप्रदान्।
आनीतांस्तव पूजार्थं गृहाण गणनायक ॥

'गणनायक! आपकी पूजाके लिये मेरेद्वारा अत्यन्त हरे, अमृतमय तथा मङ्गलप्रद दूर्वाङ्कुर लाये गये हैं, आप इन्हें स्वीकार करें।'

(ग) ॐ काण्डात्काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च ॥ (यजु० १३।२०) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, दूर्वाङ्कुरान् समर्पयामि।

सिन्दूर

(क) सिन्दूरं शोभनं रक्तं सौभाग्यं सुखवर्धनम्।
शुभदं कामदं चैव सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ॥

'प्रभो! सुन्दर, लाल, सौभाग्यस्वरूप, सुखवर्धक, शुभद एवं कामपूरक सिन्दूर सेवामें प्रस्तुत है; इसे ग्रहण करें।'

(ख) ॐ सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः। घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥ (यजु० १७।९५) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, सिन्दूरं समर्पयामि।

नाना परिमलद्रव्य, अबीर-चूर्ण

(क) नानापरिमलैर्द्रव्यैर्निर्मितं चूर्णमुत्तमम्।
अबीरनामकं चूर्णं गन्धाढ्यं चारु गृह्यताम् ॥

'भाँति भाँतिके सुगन्धित द्रव्योंसे निर्मित यह गन्धयुक्त अबीर-नामक सुन्दर तथा उत्तम चूर्ण ग्रहण कीजिये।'

(ख) ॐ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः। हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः ॥ (यजु० २९।५१) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, नानापरिमलद्रव्याणि समर्पयामि।

दशाङ्ग धूप

(क) वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

'वनस्पतिके रससे प्रकट, सुगन्धित, उत्तम . . .

और समस्त देवताओंके सूँघनेयोग्य यह धूप सेवामें अर्पित है। प्रभो! इसे ग्रहण करें।'

(ख) ॐ धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्वयं वयं धूर्वामः। देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्॥ (यजु० १। ८) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, धूपमाघ्रापयामि।

दीप-दर्शन

(क) साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम्॥
भक्त्या दीपं प्रयच्छामि देवाय परमात्मने।
त्राहि मां निरयाद् घोराद्दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते॥

'देवेश! घीमें डुबोयी रुईकी बत्तीको अग्निसे प्रज्वलित करके दीप आपकी सेवामें अर्पित किया गया है; आप इसे ग्रहण करें; यह त्रिभुवनके अन्धकारको दूर करनेवाला है। मैं इष्ट देवता परमात्मा गणपतिको दीप देता हूँ। प्रभो! आप मुझे घोर नरकसे बचाइये। दीपज्योतिर्मय देव! आपको नमस्कार है।'

(ख) ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥ (यजु० ३। ९) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, दीपं दर्शयामि।

नैवेद्य-निवेदन

दीप अर्पणके पश्चात् हाथ धोकर नैवेद्य-अर्पण करे। नैवेद्यमें भाँति-भाँतिके मोदक, गुड़ तथा ऋतुके अनुकूल उपलब्ध नाना प्रकारके उत्तमोत्तम फल प्रस्तुत करे। नैवेद्यमें देय वस्तुका पहले शुद्ध जलसे प्रोक्षण करे। फिर धेनु-मुद्रा दिखाकर देवताके सम्मुख स्थापित करे। इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्रोंको पढ़े—

(क) नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्तिं मे ह्यचलां कुरु।
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च परां गतिम्॥
शर्कराखण्डखाद्यानि दधिक्षीरघृतानि च।
आहारं भक्ष्यभोज्यं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥

'देव! आप यह नैवेद्य ग्रहण करें और अपने प्रति मेरी भक्तिको अविचल कीजिये। वाञ्छित वर दीजिये और परलोकमें परम गति-प्रदान कीजिये। शक्कर और खाँड़से तैयार किये गये खाद्य पदार्थ, दही, दूध, घी तथा भक्ष्य-भोज्य आहार नैवेद्यके रूपमें प्रस्तुत हैं; आप यह नैवेद्य कृपापूर्वक स्वीकार करें।'

(ख) ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँर अकल्पयन्॥ (यजु० ३१। १३) ॐ प्राणाय स्वाहा। ॐ अपानाय स्वाहा। ॐ समानाय स्वाहा॥ ॐ उदानाय स्वाहा। ॐ व्यानाय स्वाहा॥ ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, नैवेद्यं मोदकमयं ऋतुफलानि च समर्पयामि।

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, आचमनीयं मध्ये पानीयं उत्तरापोशनं च समर्पयामि।

करोद्वर्तनके लिये चन्दन

(क) ॐ चन्दनं मलयोद्भूतं कस्तूर्यादिसमन्वितम्।
करोद्वर्तनकं देव गृहाण परमेश्वर॥

'देव! मलयपर्वतसे उत्पन्न चन्दनमें कस्तूरी आदि मिलाकर मैंने करोद्वर्तन तैयार किया है। परमेश्वर! इसे स्वीकार करें।'

(ख) अꣳशुना ते अꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः। गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः॥ (यजु० २०। २७) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, चन्दनेन करोद्वर्तनं समर्पयामि।

पूगीफलादिसहित ताम्बूल-अर्पण

(क) ॐ पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्।
एलाचूर्णादिसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्॥

'प्रभो! महान् दिव्य पूगीफल, इलायची और चूना आदिसे युक्त पानका बीड़ा सेवामें प्रस्तुत है; इसे ग्रहण करें।'

(ख) ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥ (यजु० ३१। १४) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, मुखवासार्थमेलापूगीफलादिसहितं ताम्बूलं समर्पयामि।

नारिकेलफल-अर्पण

(क) इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि॥

'देव ! यह नारियलका फल मैंने आपके सामने रखा है; इससे जन्म-जन्ममें मुझे सफलता प्राप्त हो ।'

(ख) ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ॥ (यजु० १२।८९) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, नारिकेलफलं समर्पयामि ।

दक्षिणा-समर्पण

(क) हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेम बीजं विभावसोः ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

'सुवर्ण हिरण्यगर्भ ब्रह्माके गर्भमें स्थित अग्निका बीज है। वह अनन्त पुण्य-फल प्रदान करनेवाला है। भगवन् ! वह आपकी सेवामें अर्पित है; अतः इसे स्वीकार कर मुझे शान्ति प्रदान करें ।'

(ख) ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(यजु० १३ । ४)

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, कृतायाः पूजायाः साद्गुण्यार्थं द्रव्यदक्षिणां समर्पयामि ।

नीराजन या आरार्तिक (आरती)

(क) कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं तु प्रदीपितम् ।
आरार्तिकमहं कुर्वे पश्य मे वरदो भव ॥

'प्रभो ! केलेके गर्भसे उत्पन्न यह जलाया गया कपूर है; इसीके द्वारा मैं आपकी आरती करता हूँ । आप इसे देखिये और मेरे लिये वरदायक होइये ।'

(ख) ॐ इदꣳ हविः प्रजननं मे अस्तु, दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये । आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि । अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त ॥ (यजु० १९ । ४८) आ रात्रि पार्थिवꣳरजः पितुरप्रायि धामभिः । दिवः सदाꣳसि बृहती वितिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥ (यजु० ३४ । ३२)

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, कर्पूरनीराजनं समर्पयामि ॥

पुष्पाञ्जलि-समर्पण

(क) नानासुगन्धिपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च ।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वर ॥

'परमेश्वर ! यथासमय उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकार सुगन्धित पुष्प मैंने पुष्पाञ्जलिके रूपमें अर्पित किये हैं; अ[illegible] इन्हें स्वीकार करें ।'

(ख) ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्या[illegible] सन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ (यजु० ३१ । १६) ॐ गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधम[illegible] त्वमजासि गर्भधम् ॥ (यजु० २३ । १९) ॐ अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन । ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥ (यजु० २३ । १८)

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे । स मे कामान् कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु ॥

कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ।

ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात् सार्वभौमः सार्वायुषान्तादापरार्धात् पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडि-ति तदप्येष श्लोकोऽभिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे । आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासद इति ।

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वत-स्पात् । सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ (यजु० १७ । १९)

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।

प्रदक्षिणा

(क) यानि कानि च पापानि ज्ञाताज्ञातकृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिणपदे पदे ॥

'मनुष्यद्वारा जाने या अनजानेमें जो कोई पाप किये गये हैं, वे परिक्रमा करते समय पद-पदपर नष्ट होते हैं ।'

(ख) ॐ ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ (यजु० १६ । ६१)

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, प्रदक्षिणां समर्पयामि ।

सब प्रकारके कष्टोंके निवारणका अचूक उपाय

['ॐ गं गणपतये नमः' मन्त्र-जपका अनुभव]

(लेखक—पं० श्रीभवदेवनारायणजी मिश्र, व्याकरण-साहित्याचार्य)

श्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे 'कल्याण' के पाठक भली प्रकार परिचित हैं ही; मैं उनका परिचय क्या दूँ। श्रीभाईजीके स्वजनोंकी परिधि विशाल थी और सभी अपना दुःख-दर्द उनको सुनाया करते थे तथा उनके निवारणके लिये अनुरोध करते थे। परमोच्च कोटिके गृहस्थ संत होनेके नाते श्रीभाईजी लोकसंग्रहकी दृष्टिसे लौकिक कामनाओं एवं आपदाओंमें पीड़ित व्यक्तियोंको कष्टोंके निवारणार्थ यथासम्भव सभी प्रकारके सात्त्विक प्रयत्न करनेके साथ-साथ विश्वम्भर प्रभुको पुकारनेका भी परामर्श देते थे। उनका स्पष्ट मत था कि 'जगत्‌के सामने हाथ फैलाने, दुःख रोनेकी अपेक्षा यह कहीं श्रेष्ठ है कि अशरणशरण भगवान्‌को पुकारा जाय। अपनी बातको स्पष्ट करनेके लिये वे श्रीतुलसीदासजीका यह सवैया सुनाया करते थे—

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं,
जियँ जाचिअ जानकी जानहि रे।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ,
जो जारति जोर जहानहि रे॥
गति देखु बिचारि बिभीषनकी,
अरु आनु हिएँ हनुमानहि रे।
तुलसी ! भजु दारिद-दोष-दवानल,
संकट-कोटि-कृपानहि रे॥

(कवितावली, उत्तरकाण्ड २८)

'संसारमें किसीसे (कुछ) माँगना नहीं चाहिये। यदि माँगना ही हो तो जानकीनाथ श्रीरामचन्द्रजीसे मनहीमें माँगो, जिससे माँगते ही याचकता (दरिद्रता, कामना) जल जाती है, जो बरबस जगत्‌को जला रही है। विभीषणकी दशाका विचार करके देखो और हनुमान्‌जीका भी स्मरण करो। गोसाईंजी कहते हैं कि हे तुलसीदास ! दरिद्रतारूपी दोषको जलानेके लिये दावानलके समान और करोड़ों संकटोंको काटनेके लिये कृपाणरूप श्रीरामचन्द्रजीको भजो।'

इतना ही नहीं, वे योग्य पण्डितोंके द्वारा आर्त व्यक्तियोंके लिये सकाम अनुष्ठान भी करवाते थे। मुझे भी उनके निर्देशनमें विविध प्रकारके अनेक सकाम अनुष्ठान करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अन्य देवी-देवताओंके अनुष्ठानके साथ-साथ वे भगवान् श्रीगणेशका भी अनुष्ठान कर[illegible] श्रीगणेशके अनुष्ठानमें वे 'ॐ गं गणपतये नमः' [illegible] जप ही विशेषरूपसे करवाते थे। उनकी इस मन्त्र[illegible] निष्ठा थी और प्रत्येक विषम परिस्थितिमें वे इसके [illegible] विधान करते थे। पति-पत्नीके मध्य मनमुटाव, पा[illegible] कलह, फैक्टरीमें हड़ताल, व्यापारमें घाटा, मुकद[illegible] सरकारी झंझट, ऋण, भीषण व्याधि आदि सभी [illegible] कष्टों एवं झंझटोंके निवारणके लिये वे इस मन्त्र[illegible] करवाते थे और भगवान् श्रीगणेशकी कृपासे आर्त[illegible] कष्ट बड़ी सरलतासे निवृत्त भी होता था।

इस मन्त्रके जपकी विधि यह है कि प्रातःकाल [illegible] आदिसे शुद्ध होकर पवित्र स्थानमें कुश या ऊनके आस[illegible] पूर्व या उत्तराभिमुख बैठ जाय और भगवान् श्रीगणे[illegible] प्रतिमा या मँढ़वाये हुए चित्रपटको अपने सम्मुख विराज[illegible] कर ले। चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे श्रीगणे[illegible] का पूजन कर प्रथम दिन संकल्प करे कि 'अमुक का[illegible] सिद्धिके लिये इस मन्त्रका प्रतिदिन इतना जप किया जायगा[illegible] तत्पश्चात् भगवान् गणेशका स्मरण करते हुए एकाग्रचित्त[illegible] जप किया जाय। जपके समय आदिसे अन्त[illegible] शुद्ध घीका दीपक श्रीगणेशविग्रहकी दाहिनी ओर प्रज्वलि[illegible] रहे। दीपकके नीचे अक्षत आदि रख दिये जायँ। प्रतिदि[illegible] १०८ मालाका जप हो तो सर्वोत्तम है, नहीं तो सुविधा[illegible]नुसार ५५, ३५, ११ मालाका भी जप किया जा सकता है [illegible] कार्यसिद्धितक यह जप चलता रहे। जप व्यक्ति स्वयं भी कर सकता है अथवा सदाचारी सात्त्विक विद्वान् ब्राह्मण[illegible] द्वारा यथोचित दक्षिणा देकर भी करवा सकता है। जो यज्ञोपवीतधारी न हों, उन्हें 'ॐ' कारको छोड़कर केवल 'गं गणपतये नमः' मन्त्रका जप करना चाहिये। बिना किसी कामनाके भगवान् गणेशकी प्रसन्नताके लिये ही इस मन्त्रकी प्रतिदिन ५, ११, २१ मालाएँ जप करनेसे साधकका सर्वविध मङ्गल होता है। यह परम मङ्गलकारक मन्त्र है, इसका आश्रय ग्रहण करनेवालोंको भगवान् श्रीगणेशकी कृपा अवश्य प्राप्त होती है।

पारमार्थिक एवं लौकिक मनोरथोंकी पूर्ति करानेवाले कुछ सिद्ध स्तोत्र

नीचे कुछ सिद्ध स्तोत्र दिये जा रहे हैं, जिनका श्रद्धा-भक्तिके साथ अनुष्ठान करनेपर 'पारमार्थिक' 'भौतिक' लाभ हो सकते हैं। आशा है, श्रद्धालु पाठक इनसे यथोचित लाभ उठायेंगे। ऐसे ...नोंके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने एक स्थानपर लिखा है—

"यह सत्य है कि भगवान् अपनी मङ्गलमयी सर्वज्ञता और इच्छासे हमारे लिये जो कुछ ...फल-विधान करते हैं, चाहे वह हमारी सीमित और अदूरदृष्टिके कारण हमें अशुभ या दुःखप्र...ान पड़े, वास्तवमें वह परम शुभ और परम मङ्गलकारी ही होता है। इसलिये भगवान्पर और ...ी मङ्गलमयतापर विश्वास करनेवाले भक्त यही चाहते हैं कि उनकी 'मङ्गलमयी' इच्छा ही सदा ... अपना काम करती रहे। हमारी कोई भी इच्छा उस मङ्गलमयी इच्छामें कभी बाधक हो ही ... तथापि जो लोग भोग-कामना और भोग-वासनाको छोड़ नहीं सकते और कामना एवं आसक्तिसे ...भूत होकर अन्याय और असत् मार्गका अवलम्बन करके भोग-सुखकी आशा रखते हैं, उनके लिये ...गवदाराधन और देवाराधन अवश्य ही सेवन करनेयोग्य है। इसमें लाभ-ही-लाभ है। यदि श्रद्धा और ... पूरी हो तो—'नवीन प्रारब्ध'का निर्माण होकर मनोरथकी पूर्ति हो जाती है। कदाचित् प्रतिबन्धक ...ध अत्यन्त प्रबल होनेके कारण मनोरथ-पूर्ति न भी हो तो पुण्यकर्मका अनुष्ठान तो बनता ही है।"

इन स्तोत्रोंके अनुष्ठानके सम्बन्धमें यह निवेदन है कि अनुष्ठानकर्ता भगवान् श्रीगणेशकी प्रतिमा ...चित्रपटके सम्मुख पवित्र स्थानमें शुद्ध आसनपर बैठे और यथोपलब्ध उपचारोंसे श्रीगणेशका पूजन ... उनका मङ्गलमय स्मरण करते हुए श्रद्धा-भक्तिके साथ अपनी कामनाके अनुकूल स्तोत्रका कम-से-कम ...ह पाठ प्रतिदिन करे। अधिक जितना भी हो उत्तम है। जबतक कामना पूर्ण न हो पाठ बराबर चलता रहे।

...अङ्कके आरम्भमें तथा लेखों एवं लीला-कथाओंमें भी स्थान-स्थानपर अनेक स्तुतियाँ आयी हैं और ...भी फलप्रदायिनी हैं। श्रीगणेशके कुछ मन्त्रोंका भी प्रसङ्गानुरूप उल्लेख हुआ है। श्रीगणेश सम्बन्धी ...न मन्त्र तथा उनकी अनुष्ठान-विधि, नामोंकी व्याख्यासहित 'श्रीगणेश-सहस्रनाम स्तोत्र', [illegible] ... सिद्ध-अनुष्ठान, फलप्रद-स्तोत्र आदि करपत्रीके अङ्कमें दिये जा रहे हैं।

(१)

मङ्गल-विधानके लिये*

गणपतिर्विघ्नराजो लम्बतुण्डो गजाननः। द्वैमातुरश्च हेरम्ब एकदन्तो गणाधिपः॥
विनायकश्चारुकर्णः पशुपालो भवात्मजः। द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्॥
विश्वं तस्य भवेद्वश्यं न च विघ्नं भवेत् क्वचित्। (पद्मपु० सृ० ६१। ३१-३३)

[illegible] गणपति, विघ्नराज, लम्बतुण्ड, गजानन, द्वैमातुर, हेरम्ब, एकदन्त, गणाधिप, विनायक, चारुकर्ण, पशुपाल [illegible] [illegible] ये बारह नाम [illegible] है। [illegible] [illegible] ... [illegible] नहीं [illegible]।"

(२)

मोक्ष-प्राप्तिके लिये

[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥

* [illegible]

संकष्ट्याश्च विनायकस्य च मनोः स्थानस्य तीर्थस्य वै
दूर्वाणां महिमेति भक्तिचरितं तत्पार्थिवस्यार्चनम्।
तेभ्यो यैर्यदभीप्सितं गणपतिस्तत्तत्प्रतुष्टो ददौ
ताः सर्वा न समर्थ एव कथितुं ब्रह्मा कुतो मानवः॥
क्रीडाकाण्डमथो वदे कृतयुगे श्वेतच्छविः काश्यपः
सिंहाङ्कः स विनायको दशभुजो भूत्वाथ काशीं ययौ।
हत्वा तत्र नरान्तकं तदनुजं देवान्तकं दानवं
त्रेतायां शिवनन्दनो रसभुजो जातो मयूरध्वजः॥
हत्वा तं कमलासुरं च सगणं सिन्धुं महादैत्यपं
पश्चात् सिद्धिमती सुते कमलजस्तस्मै च ज्ञानं ददौ।
द्वापरे तु गजाननो युगभुजो गौरीसुतः सिन्दुरं
सम्मर्द्य स्वकरेण तं निजमुखे चाखुध्वजो लिप्तवान्॥
गीताया उपदेश एव हि कृतो राज्ञे वरेण्याय वै
तुष्टायाथ च धूम्रकेतुरभिधो विप्रः सधर्मर्धिकः।
अश्वाङ्को द्विभुजो सितो गणपतिर्म्लेच्छान्तकः स्वर्णदः
क्रीडाकाण्डमिदं गणस्य हरिणा प्रोक्तं विधात्रे पुरा॥
एतच्छ्लोकसुपञ्चकं प्रतिदिनं भक्त्या पठेद्यः पुमान्
निर्वाणं परमं व्रजेत् स सकलान् भुक्त्वा सुभोगानपि।

॥ इति श्रीपञ्चश्लोकिगणेशपुराणम् ॥

पूर्वकालमें ब्रह्माजीने व्यासको श्रीविघ्नेश (गणेश) पुराणका सारतत्त्व बताया था। यह महागणपतिकी उपासनासंज्ञक प्रथम खण्ड है। भगवान् शिवने पहले त्रिपुरका संहार करनेके लिये गणपतिका पूजन किया। फिर ब्रह्माजीने इस सृष्टिकी रचना करनेके लिये उनकी विधिवत् स्तुति की। तत्पश्चात् व्यासने बुद्धिकी प्राप्तिके लिये उनका स्तवन किया। संकष्टी देवीकी, गणेशकी, उनके मन्त्रकी, स्थानकी, तीर्थकी और दूर्वाकी महिमा यह भक्तिचरित है। उनके पार्थिव विग्रहका पूजन भी भक्तिचर्या ही है। उन भक्तिचर्या करनेवाले पुरुषोंमेंसे जिन जिनने जिस-जिस वस्तुको पानेकी इच्छा की, संतुष्ट हुए गणपतिने वह-वह वस्तु उन्हें दी। उन सबका वर्णन करनेमें ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है। अब 'क्रीडाकाण्ड'का वर्णन करता हूँ। सत्ययुगमें दस भुजाओंसे युक्त श्वेत कान्तिमान् कश्यपपुत्र सिंहध्वज महोत्कट विनायक काशीमें गये। वहाँ नरान्तक और उसके छोटे भाई देवान्तक नामक दानवको मारकर त्रेतामें वे षड्बाहु शिवनन्दन मयूरध्वजके रूपमें प्रकट हुए। उन्होंने कमलासुरको तथा महादैत्यपति सिन्धुको उसके गणों सहित मार डाला। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने सिद्धि और बुद्धि-नामक दो कन्याएँ उन्हें दीं और ज्ञान भी प्रदान किया। द्वापर युगमें गौरीपुत्र गजानन दो भुजाओंसे युक्त हुए। उन्होंने अपने हाथसे सिन्दूरासुरका मर्दन करके उसे अपने मुखपर पोत लिया। उनकी ध्वजामें मूषकका चिह्न था। उन्होंने संतुष्ट राजा वरेण्यको गणेश-गीताका उपदेश किया। फिर वे धूम्रकेतु-नामसे प्रसिद्ध धर्मयुक्त धनवाले ब्राह्मण होंगे। उस समय उनके ध्वजका चिह्न अश्व होगा। उनके दो भुजाएँ होंगी। वे गौरवर्णके गणपति म्लेच्छोंका अन्त करनेवाले और सुवर्णके दाता होंगे। गणपतिके इस 'क्रीडाकाण्ड'का वर्णन पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे किया था।

जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिभावसे इन पाँच श्लोकोंका पाठ करेगा, वह समस्त उत्तम भोगोंका उपभोग करके अन्तमें परम निर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त होगा।

॥ इस प्रकार 'पञ्चश्लोकी गणेशपुराण' पूरा हुआ ॥

(३)

सर्वविध रक्षाके लिये

गणेशन्यास

श्रीगणेशाय नमः ॥ आचम्य प्राणायामं कृत्वा । दक्षिणहस्ते वक्रतुण्डाय नमः । वामहस्ते शूर्पकर्णाय नमः । ओष्ठे विघ्नेशाय नमः । सम्पुटे गजाननाय नमः । दक्षिणपादे लम्बोदराय नमः । वामपादे एकदन्ताय नमः । शिरसि एकदन्ताय नमः । चिबुके ब्रह्मणस्पतये नमः । दक्षिणनासिकायां विनायकाय नमः । वामनासिकायां ज्येष्ठराजाय नमः । दक्षिणनेत्रे विकटाय नमः । वामनेत्रे कपिलाय नमः । दक्षिणकर्णे धरणीधराय नमः । वामकर्णे आशापूरकाय नमः । नाभौ महोदराय नमः । हृदये धूम्रकेतवे नमः । ललाटे मयूरेशाय नमः । दक्षिणबाहौ स्वानन्दवासकारकाय नमः । वामबाहौ सच्चित्सुखधाम्ने नमः ।

॥ इति मुद्गलपुराणे गणेशन्यासः समाप्तः ॥

श्रीगणेशाय नमः—आचमन और प्राणायाम करनेके पश्चात् दाहिने हाथमें 'वक्रतुण्डाय नमः'—इस मन्त्रको बोलकर वक्रतुण्डका न्यास करे। बायें हाथमें 'शूर्पकर्णाय नमः'—इस मन्त्रसे शूर्पकर्णका, ओठमें 'विघ्नेशाय नमः'—इस मन्त्रसे विघ्नेशका, दोनों ओठोंके बंद सम्पुटमें 'गजाननाय नमः'—इस मन्त्रसे गजाननका, दाहिने पैरमें 'लम्बोदराय नमः'—इस मन्त्रसे लम्बोदरका और बायें पैरमें 'एकदन्ताय नमः' से एकदन्तका न्यास करे। शिरमें भी इसी मन्त्रसे एकदन्तका, चिबुक (ठोढ़ी) में 'ब्रह्मणस्पतये नमः'—इस मन्त्रसे ब्रह्मणस्पतिका, दाहिनी नासिकामें 'विनायकाय नमः'—इस मन्त्रसे विनायकका, बायीं नासिकामें 'ज्येष्ठराजाय नमः'—इस मन्त्रसे ज्येष्ठराजका, दाहिने नेत्रमें 'विकटाय नमः'—इस मन्त्रसे विकटका, बायें नेत्रमें 'कपिलाय नमः'—इस मन्त्रसे कपिलका, दाहिने कानमें 'धरणीधराय नमः'—इस मन्त्रसे धरणीधरका, बायें कानमें 'आशापूरकाय नमः'—इस मन्त्रसे आशापूरकका, नाभिमें 'महोदराय नमः'—इस मन्त्रसे महोदरका, हृदयमें 'धूम्रकेतवे नमः'—इस मन्त्रसे धूम्रकेतुका, ललाटमें 'मयूरेशाय नमः'—इस मन्त्रसे मयूरेशका, दाहिनी बाँहमें 'स्वानन्दवासकारकाय नमः'—इस मन्त्रसे स्वानन्दवासकारकका तथा बायीं बाँहमें 'सच्चित्सुखधाम्ने नमः'—इस मन्त्रसे सच्चित्सुखधामका न्यास करे।

॥ इस प्रकार मुद्गलपुराणमें 'गणेशन्यास' पूरा हुआ ॥

(४)

समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये

गणेशाष्टक

सर्वे ऊचुः

यतोऽनन्तशक्तेरनन्ताश्च जीवा यतो निर्गुणादप्रमेया गुणास्ते ।
यतो भाति सर्वं त्रिधा भेदभिन्नं सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥
यतश्चाविरासीज्जगत्सर्वमेतत्तथाब्जासनो विश्वगो विश्वगोप्ता ।
तथेन्द्रादयो देवसङ्घा मनुष्याः सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥
यतो वह्निभानूद्भवो भूर्जलं च यतः सागराश्चन्द्रमा व्योम वायुः ।
यतः स्थावरा जङ्गमा वृक्षसङ्घाः सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥
यतो दानवाः किंनरा यक्षसङ्घा यतश्चारणा वारणाः श्वापदाश्च ।
यतः पक्षिकीटा यतो वीरुधश्च सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥

(७)

चिन्ता एवं रोग-निवारणके लिये

मयूरेशस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

पुराणपुरुषं देवं नानाक्रीडाकरं मुदा। मायाविनं दुर्विभाव्यं मयूरेशं नमाम्यहम्॥
परात्परं चिदानन्दं निर्विकारं हृदि स्थितम्। गुणातीतं गुणमयं मयूरेशं नमाम्यहम्॥
सृजन्तं पालयन्तं च संहरन्तं निजेच्छया। सर्वविघ्नहरं देवं मयूरेशं नमाम्यहम्॥
नानादैत्यनिहन्तारं नानारूपाणि बिभ्रतम्। नानायुधधरं भक्त्या मयूरेशं नमाम्यहम्॥
इन्द्रादिदेवतावृन्दैरभिष्टुतमहर्निशम्। सदसद्व्यक्तमव्यक्तं मयूरेशं नमाम्यहम्॥
सर्वशक्तिमयं देवं सर्वरूपधरं विभुम्। सर्वविद्याप्रवक्तारं मयूरेशं नमाम्यहम्॥
पार्वतीनन्दनं शम्भोरानन्दपरिवर्धनम्। भक्तानन्दकरं नित्यं मयूरेशं नमाम्यहम्॥
मुनिध्येयं मुनिनुतं मुनिकामप्रपूरकम्। समष्टिव्यष्टिरूपं त्वां मयूरेशं नमाम्यहम्॥
सर्वाज्ञाननिहन्तारं सर्वज्ञानकरं शुचिम्। सत्यज्ञानमयं सत्यं मयूरेशं नमाम्यहम्॥
अनेककोटिब्रह्माण्डनायकं जगदीश्वरम्। अनन्तविभवं विष्णुं मयूरेशं नमाम्यहम्॥

मयूरेश उवाच

इदं ब्रह्मकरं स्तोत्रं सर्वपापप्रनाशनम्। सर्वकामप्रदं नृणां सर्वोपद्रवनाशनम्॥
कारागृहगतानां च मोचनं दिनसप्तकात्। आधिव्याधिहरं चैव भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम्॥

॥ इति मयूरेशस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

ब्रह्माजी बोले—जो पुराणपुरुष हैं और प्रसन्नतापूर्वक नाना प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते हैं; जो मायाके स्वामी हैं तथा जिनका स्वरूप दुर्विभाव्य (अचिन्त्य) है, उन मयूरेश गणेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो परात्पर, चिदानन्दमय, निर्विकार, सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित, गुणातीत एवं गुणमय हैं, उन मयूरेशको मैं नमस्कार करता हूँ। जो स्वेच्छासे ही संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन सर्वविघ्नहारी देवता मयूरेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो अनेकानेक दैत्योंके प्राणनाशक हैं और नाना प्रकारके रूप धारण करते हैं, उन नाना अस्त्र-शस्त्रधारी मयूरेशको मैं भक्तिभावसे नमस्कार करता हूँ। इन्द्र आदि देवताओंका समुदाय दिन-रात जिनका स्तवन करता है तथा जो सत्, असत्, व्यक्त और अव्यक्तरूप हैं, उन मयूरेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सर्वशक्तिमय, सर्वरूपधारी और सम्पूर्ण विद्याओंके वक्ता हैं, उन भगवान् मयूरेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो पार्वतीजीको पुत्ररूपसे आनन्द प्रदान करते और भगवान् शंकरका भी आनन्द बढ़ाते हैं, उन भक्तानन्दवर्धन मयूरेशको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ। मुनि जिनका ध्यान करते और मुनि जिनके गुण गाते हैं तथा जो मुनियोंकी कामना पूर्ण करते हैं, उन समष्टि-व्यष्टिरूप मयूरेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो [illegible] अज्ञानके निवारक, सम्पूर्ण ज्ञानके उद्भावक, पवित्र, [illegible] हैं, उन मयूरेशको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अनेक कोटि ब्रह्माण्डके नायक, जगदीश्वर, अनन्त [illegible] हैं, उन मयूरेशको मैं प्रणाम करता हूँ।

मयूरेशने कहा—यह [illegible]

[illegible]

वाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । जो मनुष्य पराभक्तिसे इस स्तोत्रका जप करता है, वह गजाननका परम भक्त हो जाता है—ऐसा कहकर भगवान् गणेश वहीं अन्तर्धान हो गये ।

॥ इस प्रकार श्रीगणेशपुराणमें 'श्रीगणेशाष्टक' पूरा हुआ ॥

(५)

विघ्ननाशके लिये

श्रीराधिकोवाच

परं धाम परं ब्रह्म परेशं परमीश्वरम् । विघ्ननिघ्नकरं शान्तं पुष्टं कान्तमनन्तकम् ॥
सुरासुरेन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः स्तुतं स्तौमि परात्परम् । सुरपद्मदिनेशं च गणेशं मङ्गलायनम् ॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं विघ्नशोकहरं परम् । यः पठेत् प्रातरुत्थाय सर्वविघ्नात् प्रमुच्यते ॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड १२१ । १०३-१०५)

श्रीराधिकाने कहा—जो परम धाम, परब्रह्म, परेश, परम ईश्वर, विघ्नोंके विनाशक, शान्त, पुष्ट, मनोहर और अनन्त हैं; प्रधान-प्रधान सुर, असुर और सिद्ध जिनका स्तवन करते हैं; जो देवरूपी कमलके लिये सूर्य और मङ्गलोंके आश्रयस्थान हैं, उन परात्पर गणेशकी मैं स्तुति करती हूँ ।

यह उत्तम स्तोत्र महान् पुण्यमय तथा विघ्न और शोकको हरनेवाला है । जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण विघ्नोंसे विमुक्त हो जाता है ।

(६)

संकटनाशके लिये

संकटनाशनस्तोत्रम्

नारद उवाच

प्रणम्य शिरसा देवं गौरीपुत्रं विनायकम् । भक्तावासं स्मरेन्नित्यमायुःकामार्थसिद्धये ॥
प्रथमं वक्रतुण्डं च एकदन्तं द्वितीयकम् । तृतीयं कृष्णपिङ्गाक्षं गजवक्त्रं चतुर्थकम् ॥
लम्बोदरं पञ्चमं च षष्ठं विकटमेव च । सप्तमं विघ्नराजेन्द्रं धूम्रवर्णं तथाष्टमम् ॥
नवमं भालचन्द्रं च दशमं तु विनायकम् । एकादशं गणपतिं द्वादशं तु गजाननम् ॥
द्वादशैतानि नामानि त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । न च विघ्नभयं तस्य सर्वसिद्धिकरं परम् ॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् । पुत्रार्थी लभते पुत्रान् मोक्षार्थी लभते गतिम् ॥
जपेद्गणपतिस्तोत्रं षड्भिर्मासैः फलं लभेत् । संवत्सरेण सिद्धिं च लभते नात्र संशयः ॥
अष्टभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च लिखित्वा यः समर्पयेत् । तस्य विद्या भवेत् सर्वा गणेशस्य प्रसादतः ॥

इति श्रीनारदपुराणे संकटनाशनं नाम गणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

नारदजी कहते हैं—पहले मस्तक झुकाकर गौरीपुत्र विनायकदेवको प्रणाम करके प्रतिदिन आयु, कामना [illegible] और धन आदि [illegible] सिद्धिके लिये [illegible] स्मरण करे । [illegible] है, [illegible] [illegible] नवाँ 'भालचन्द्र', दसवाँ 'विनायक', ग्यारहवाँ 'गणपति' और बारहवाँ [illegible] है । [illegible]

श्रमापनोदनक्षमं समाहितान्तरात्मना समाधिभिः सदार्चितं क्षमानिधिं गणाधिपम्।
रमाधवादिपूजितं यमान्तकात्मसम्भवं शमादिषड्गुणप्रदं नमामि तं विभूतये॥
गणाधिपस्य पञ्चकं नृणामभीष्टदायकं प्रणामपूर्वकं जनाः पठन्ति ये मुदायुताः।
भवन्ति ते विदाम्पुरः प्रगीतवैभवाः जनाश्चिरायुषोऽधिकश्रियः सुसूनवो न संशयः॥

॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यकृतं गणाधिपस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

जो विषयासक्त लोगोंके लिये दुर्लभ, विरक्त जनोंसे पूजित, देवताओं और असुरोंसे वन्दित तथा जरा आदि मृत्यु नाशक हैं; जिनके चरणारविन्दोंकी अर्चना करनेवाले भक्त अपनी वाणीद्वारा बृहस्पतिको और लक्ष्मीद्वारा श्रीविष्णु भी जीत लेते हैं, उन दयासागर गणाधिपतिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो गिरिराजनन्दिनी उमाके मुखारविन्दको प्रमोद प्रदा करनेके लिये सूर्यरूप हैं; जिनका मुख गजराजके समान है; जो प्रणतजनोंकी पापराशिका नाश करनेके लिये उद्यत रहते हैं जिनकी कुक्षि (उदर) नागराज शेषसे आवेष्टित है तथा जो अपने शरीरकी कान्तिसे बालसूर्यकी किरणावलीको पराजित कर ते हैं, उन गणेशजीकी मैं सदा शरण लेता हूँ। शुक आदि मौनावलम्बी महात्मा जिनकी वन्दना करते हैं; जो गकारके च्यार्थ, अविनाशी तथा सकामभाव लेकर चरणोंमें प्रणत होनेवाले भक्त-समूहोंके लिये मनचाही अभीष्ट वस्तुको देनेवाले ; चार भुजाएँ जिनकी शोभा बढ़ाती हैं; जो प्रफुल्ल कमलसे पूजित होते हैं और आत्मतत्त्वके प्रकाशक हैं, उन गणाधिपतिको मैं मस्कार करता हूँ। जो नरेशत्व प्रदान करनेवाले, स्वर्गादि लोकोंके दाता, जरा आदि रोगोंका निवारण करनेवाले तथा असुर-मुदायका संहार करनेवाले हैं; जो अपने करारविन्दोंद्वारा अङ्कुश धारण करते हैं और निर्विकार चित्तवाले उपासक नका सदा ही मनके द्वारा ध्यान करते हैं, उन विघ्नपतिको मैं सानन्द प्रणाम करता हूँ। जो सब प्रकारके श्रम या पीड़ाका नवारण करनेमें समर्थ हैं; एकाग्रचित्तवाले योगीके द्वारा सदा समाधिसे पूजित हैं; क्षमाके सागर और गणोंके अधिपति हैं; रमापति विष्णु आदि देवता जिनकी पूजा करते हैं; जो मृत्युंजयके आत्मज हैं तथा शम आदि छः गुणोंके दाता हैं, उन णेशको मैं ऐश्वर्यप्राप्तिके लिये नमस्कार करता हूँ। यह 'गणाधिपपञ्चकस्तोत्र' मनुष्योंको अभीष्ट वस्तु प्रदान करनेवाला । जो लोग प्रणामपूर्वक प्रसन्नताके साथ इसका पाठ करते हैं, वे विद्वानोंके समक्ष अपने वैभवके लिये प्रशंसित होते हैं था दीर्घायु, अधिक श्री-सम्पत्तिसे सम्पन्न तथा सुन्दर पुत्रवाले होते हैं, इसमें संशय नहीं है।

॥ इस प्रकार श्रीशंकराचार्यद्वारा विरचित 'गणाधिपस्तोत्र' पूरा हुआ ॥

(१०)

लक्ष्मीप्राप्तिके लिये

ॐ नमो विघ्नराजाय सर्वसौख्यप्रदायिने। दुष्टारिष्टविनाशाय पराय परमात्मने॥
लम्बोदरं महावीर्यं नागयज्ञोपशोभितम्। अर्धचन्द्रधरं देवं विघ्नव्यूहविनाशनम्॥
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः हेरम्बाय नमो नमः। सर्वसिद्धिप्रदोऽसि त्वं सिद्धिबुद्धिप्रदो भव॥
चिन्तितार्थप्रदस्त्वं हि सततं मोदकप्रियः। सिन्दूरारुणवस्त्रैश्च पूजितो वरदायकः॥
इदं गणपतिस्तोत्रं यः पठेद् भक्तिमान् नरः। तस्य देहं च गेहं च स्वयं लक्ष्मीर्न मुञ्चति॥

सम्पूर्ण सौख्य प्रदान करनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप विघ्नराज गणेशको नमस्कार है। जो दुष्ट अरिष्ट नाश करनेवाले परात्पर परमात्मा हैं, उन गणपतिको नमस्कार है। जो महापराक्रमी, लम्बोदर, सर्पमय य सुशोभित, अर्धचन्द्रधारी और विघ्न समूहका विनाश करनेवाले हैं, उन गणपतिदेवको मैं वन्दना
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः हेरम्बको नमस्कार है। भगवन्! आप सब सिद्धियोंके दाता हैं; आप

(८)

पुत्रकी प्राप्तिके लिये

संतानगणपतिस्तोत्रम्

नमोऽस्तु गणनाथाय सिद्धिबुद्धियुताय च। सर्वप्रदाय देवाय पुत्रवृद्धिप्रदाय च॥
गुरूदराय गुरवे गोप्त्रे गुह्यासिताय ते। गोप्याय गोपिताशेषभुवनाय चिदात्मने॥
विश्वमूलाय भव्याय विश्वसृष्टिकराय ते। नमो नमस्ते सत्याय सत्यपूर्णाय शुण्डिने॥
एकदन्ताय शुद्धाय सुमुखाय नमो नमः। प्रपन्नजनपालाय प्रणतार्तिविनाशिने॥
शरणं भव देवेश संततिं सुदृढां कुरु। भविष्यन्ति च ये पुत्रा मत्कुले गणनायक॥
ते सर्वे तव पूजार्थं निरताः स्युर्वरो मतः। पुत्रप्रदमिदं स्तोत्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥

॥ इति संतानगणपतिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

सिद्धि-बुद्धिसहित उन गणनाथको नमस्कार है, जो पुत्रवृद्धि प्रदान करनेवाले तथा सब कुछ देनेवाले देवता हैं। जिनका पेट भारी है (लम्बोदर), गुरु (ज्ञानदाता), गोप्ता (रक्षक), गुह्य (गूढस्वरूप) तथा सब ओरसे गौर हैं; जिनका स्वरूप और तत्त्व गोपनीय है तथा जो समस्त भुवनोंके रक्षक हैं, उन चिदात्मा आप गणपतिको नमस्कार है। जो विश्वके मूल कारण, कल्याणस्वरूप, संसारकी सृष्टि करनेवाले, सत्यरूप, सत्यपूर्ण तथा शुण्डधारी हैं, उन आप गणेश्वरको बारंबार नमस्कार है। जिनके एक दाँत और सुन्दर मुख है; जो शरणागत भक्तजनोंके रक्षक तथा प्रणतजनोंकी पीडाका नाश करनेवाले हैं, उन शुद्धस्वरूप आप गणपतिको बारंबार नमस्कार है। देवेश्वर! आप मेरे लिये शरणदाता हों। मेरी संतान-परम्पराको सुदृढ करें। गणनायक! मेरे कुलमें जो पुत्र हों, वे सब आपकी पूजाके लिये सदा तत्पर हों—यह वर प्राप्त करना मुझे इष्ट है। यह पुत्रप्रदायक स्तोत्र समस्त सिद्धियोंको देनेवाला है।

॥ इस प्रकार 'संतानगणपतिस्तोत्र' पूरा हुआ ॥

(९)

श्री एवं पुत्रकी प्राप्तिके लिये

श्रीगणाधिपस्तोत्रम्

सरागिलोकदुर्लभं विरागिलोकपूजितं सुरासुरैर्नमस्कृतं जरादिमृत्युनाशकम्।
गिरा गुरुं श्रिया हरिं जयन्ति यत्पदार्चका नमामि तं गणाधिपं कृपापयःपयोनिधिम्॥
गिरीन्द्रजामुखाम्बुजप्रमोददानभास्करं करीन्द्रवक्त्रमानताघसंघवारणोद्यतम्।
सरीसृपेशबद्धकुक्षिमाश्रयामि संततं शरीरकान्तिनिर्जिताब्जबन्धुबालसंततिम्॥
शुकादिमौनिवन्दितं गकारवाच्यमक्षरं प्रकाममिष्टदायिनं
चकासतं चतुर्भुजैर्विकासिपद्मपूजितं प्रकाशितात्मतत्त्वकं
[illegible]

और अभीष्ट वस्तुको देनेवाला है। जो निरन्तर आदरपूर्वक इसका पाठ करेगा, वह मनुष्य एकेश्वर गणेशकी कृपासे पु
तथा स्त्री एवं स्वजनोंके प्रति मित्रभावसे युक्त होगा।

॥ इस प्रकार श्रीशंकराचार्यद्वारा विरचित 'गणपतिस्तोत्र' पूरा हुआ॥

(१२)

पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्तिके लिये

गजाननस्तोत्रम्

देवर्षय ऊचुः

विदेहरूपं भवबन्धहारं सदा स्वनिष्ठं स्वसुखप्रदं तम्।
अमेयसांख्येन च लक्ष्यमीशं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
मुनीन्द्रवन्द्यं विधिबोधहीनं सुबुद्धिदं बुद्धिधरं प्रशान्तम्।
विकारहीनं सकलाङ्गकं वै गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
अमेयरूपं हृदि संस्थितं तं ब्रह्माहमेकं भ्रमनाशकारम्।
अनादिमध्यान्तमपाररूपं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
जगत्प्रमाणं जगदीशमेवमगम्यमाद्यं जगदादिहीनम्।
अनात्मनां मोहप्रदं पुराणं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
न पृथ्विरूपं न जलप्रकाशं न तेजसंस्थं न समीरसंस्थम्।
न खे गतं पञ्चविभूतिहीनं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
न विश्वगं तैजसगं न प्राज्ञं समष्टिव्यष्टिस्थमनन्तगं तम्।
गुणैर्विहीनं परमार्थभूतं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
गुणेशगं नैव च बिन्दुसंस्थं न देहिनं बोधमयं न ढुण्ढिम्।
सुयोगहीनं प्रवदन्ति तत्स्थं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
अनागतं ग्रैवगतं गणेशं कथं तदाकारमयं वदामः।
तथापि सर्वं प्रतिदेहसंस्थं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
यदि त्वया नाथ धृतं न किंचित्तदा कथं सर्वमिदं भजामि।
अतो महात्मानमचिन्त्यमेवं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
सुसिद्धिदं भक्तजनस्य देवं सकामिकानामिह सौख्यदं तम्।
अकामिकानां भवबन्धहारं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
सुरेन्द्रसेव्यं ह्यसुरैः सुसेव्यं समानभावेन विराजयन्तम्।
अनन्तबाहुं मूषकध्वजं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
सदा सुखानन्दमयं जले च समुद्रजे इक्षुरसे निवासम्।
द्वन्द्वस्य यानेन च नाशरूपं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
चतुःपदार्था विविधप्रकाशास्त एव हस्ताः सचतुर्भुजं तम्।
अनाथनाथं च महोदरं वै गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
महाखुमारूढमकालकालं विदेहयोगेन च लभ्यमानम्।
अमायिनं मायिकमोहदं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥

ऋद्धिदायक हो। आपको सदा ही मोदक (लड्डू) प्रिय है। आप मनके द्वारा चिन्तित अर्थोंको देनेवाले हैं। और रक्त वस्त्रसे पूजित होकर आप सदा वर प्रदान करते हैं। जो मनुष्य भक्तिभावसे युक्त हो इस गणपति स्तोत्रका पाठ करता है, स्वयं लक्ष्मी उसके देह-गेहको नहीं छोड़ती।

(११)

परिवारमें पारस्परिक प्रेम-प्राप्तिके लिये

गणपतिस्तोत्रम्

सुवर्णवर्णसुन्दरं सितैकदन्तबन्धुरं गृहीतपाशकाङ्कुशं वरप्रदाभयप्रदम्।
चतुर्भुजं त्रिलोचनं भुजङ्गमोपवीतिनं प्रफुल्लवारिजासनं भजामि सिन्धुराननम्॥
किरीटहारकुण्डलं प्रदीप्तबाहुभूषणं प्रचण्डरत्नकङ्कणं प्रशोभिताङ्घ्रियष्टिकम्।
प्रभातसूर्यसुन्दराम्बरद्वयप्रधारिणं सरत्नहेमनूपुरप्रशोभिताङ्घ्रिपङ्कजम्॥
सुवर्णदण्डमण्डितप्रचण्डचारुचामरं गृहप्रतीन्दुसुन्दरं युगक्षणप्रमोदितम्।
कवीन्द्रचित्तरञ्जकं महाविपत्तिभञ्जकं षडक्षरस्वरूपिणं भजे गजेन्द्ररूपिणम्॥
विरिञ्चिविष्णुवन्दितं विरूपलोचनस्तुतं गिरीशदर्शनेच्छया समर्पितं पराम्बया।
निरन्तरं सुरासुरैः सपुत्रवामलोचनैः महामखेष्टकर्मसु स्मृतं भजामि तुन्दिलम्॥
मदौघलुब्धचञ्चलालिमञ्जुगुञ्जितारवं प्रबुद्धचित्तरञ्जकं प्रमोदकर्णचालकम्।
अनन्यभक्तिमानवं प्रचण्डमुक्तिदायकं नमामि नित्यमादरेण वक्रतुण्डनायकम्॥
दारिद्र्यविद्रावणमाशु कामदं स्तोत्रं पठेदेतदजस्रमादरात्।
पुत्री कलत्रस्वजनेषु मैत्री पुमान् भवेदेकवरप्रसादात्॥

॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं गणपतिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

जो सुवर्णके समान गौरवर्णसे सुन्दर प्रतीत होते हैं; एक ही श्वेत दन्तके द्वारा मनोहर जान पड़ते हैं; जिन्होंने हाथोंमें पाश और अङ्कुश ले रखे हैं; जो वर तथा अभय प्रदान करनेवाले हैं; जिनके चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं; जो सर्पमय यज्ञोपवीत धारण करते हैं और प्रफुल्ल कमलके आसनपर बैठते हैं, उन गजाननका मैं भजन करता हूँ। जो किरीट, हार और कुण्डलके साथ उद्दीप्त बाहुभूषण धारण करते हैं; चमकीले रत्नोंके कंगन पहनते हैं; जिनके दण्डोपम चरण अत्यन्त शोभाशाली हैं; जो प्रभातकालके सूर्यके समान सुन्दर और लाल दो वस्त्र धारण करते हैं तथा जिनके युगल चरणारविन्द रत्नजटित सुवर्णमय नूपुरोंसे सुशोभित हैं, उन गणेशजीका मैं भजन करता हूँ। जिनका विशाल एवं मनोहर चँवर सुवर्णमय दण्डसे मण्डित है; जो सकाम भक्तोंको गृह सुख प्रदान करनेवाले एवं चन्द्रमाके समान सुन्दर हैं; युगोंमें क्षणका आनन्द देनेवाले हैं; जिनसे कवीश्वरोंके चित्तका रञ्जन होता है; जो बड़ी-बड़ी विपत्तियोंका भञ्जन करनेवाले और षडक्षर मन्त्रस्वरूप हैं, उन गजरूपधारी गणेशका मैं भजन करता हूँ। ब्रह्मा और विष्णु जिनकी वन्दना तथा विरूपलोचन शिव जिनकी स्तुति करते हैं; जो गिरीश (शिव)के दर्शनकी इच्छासे परा अम्बा पार्वतीद्वारा समर्पित हैं; देवता और असुर अपने पुत्रों और वामलोचना पत्नियोंके साथ बड़े-बड़े यज्ञों तथा अभीष्ट कर्मोंमें निरन्तर जिनका स्मरण करते हैं, उन तुन्दिल देवताका मैं भजन करता हूँ। जिनकी मदराशिपर लुभाये हुए चञ्चल भ्रमर मञ्जु गुञ्जारव करते रहते हैं; जो ज्ञानीजनोंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं; अपने कानोंको आनन्द हिलाया करते हैं और अनन्य भक्ति रखनेवाले मनुष्योंको उत्तम मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं, उन वक्रतुण्डनायकका मैं नित्य आदरपूर्वक भजन करता हूँ। यह स्तोत्र, दरिद्रताको शीघ्र भगानेवाला

प्रकाशित होनेवाले जो चार पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) हैं, वे ही जिनके हाथ हैं और उन्हीं हाथोंके कार चतुर्भुज हैं, उन अनाथनाथ लम्बोदर गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो विशाल मूषकपर आरूढ़ हैं, स्वरूप हैं; विदेहात्मक योगसे जिनकी उपलब्धि होती है; जो मायावी नहीं हैं, अपितु मायावियोंको मोहमें डालनेवा उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो सूर्यस्वरूप होकर भी सूर्यके प्रकाशसे रहित हैं; हरिस्वरूप होक हरिविशेषसे हीन हैं; तथा जो शिवस्वरूप होकर भी शिवप्रकाशके नाशक (उसे तिरोहित कर देनेवाले) हैं, उन गजाननक भक्तिभावसे भजन करते हैं। महेश्वरीके साथ रहकर भी जो उत्तम शक्तिसे हीन हैं; प्रभु, परमेश्वर और परके लि वन्दनीय हैं; अचालक होकर भी जो चालक बीजरूप हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो त्रिदश देवताओं, पक्षियों, मनुष्यों, लताओं, वृक्षों, प्रमुख पशुओं तथा चराचर प्राणियोंके लिये वन्दनीय हैं; ऐसे होते हुए भी जो रहित हैं, उन एक—अद्वितीय गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो मन और वाणीकी पहुँचसे परे विद्यमान हैं; समाप्त जिनका स्वरूप है; जो अजन्मा और अविनाशी हैं तथापि जो नगरमें स्थित देवता हैं, उन गजाननका हम भावसे भजन करते हैं। हम गणपतिकी स्तुतिसे परम धन्य हो गये। मर्त्यलोककी वस्तुओंसे उनका अर्चन करके भी हम हैं। जिन्होंने हमें गणेशस्वरूप बना लिया है, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। गजानन ! आपके बीज वेद बताते हैं; उसी बीजरूप चिह्नसे योगी पुरुष आपको प्राप्त होते हैं। आप गजाननका हम भक्तिभावसे भजन हैं। वेद, पुराण, शिव, विष्णु और ब्रह्मा आदि तथा शुक आदि भी गणपतिकी स्तुतिमें कुण्ठित हो जाते हैं, हमलोग उनकी क्या स्तुति कर सकते हैं ! हम गजाननका केवल भक्तिभावसे भजन करते हैं।

मुद्गल उवाच

एवं स्तुत्वा गणेशानं नेमुः सर्वे पुनः पुनः।
तानुत्थाप्य वचो रम्यं गजानन उवाच ह ॥

मुद्गल कहते हैं—इस प्रकार गणेशकी स्तुति करके समस्त देवर्षियोंने उन्हें बारंबार नमस्कार किया। तब उन्होंने उन सबको उठाकर उनसे यह मधुर वचन कहा—

गजानन उवाच

वरं वृणुत महाभागा देवाः सर्षिगणाः परम्। स्तोत्रेण प्रीतिसंयुक्तो दास्यामि वाञ्छितं परम् ॥

गजानन बोले—महाभाग देवताओ तथा देवर्षियो ! तुम कोई उत्तम वर माँगो। तुम्हारे इस स्तोत्रसे प्रसन्न मैं तुम्हें उत्तम मनोवाञ्छित वर दूँगा।

गजाननवचः श्रुत्वा हर्षयुक्ताः सुरर्षयः। जगुस्तं भक्तिभावेन साश्रुनेत्राः प्रजापते ॥

प्रजापते ! गजाननकी यह बात सुनकर देवता और देवर्षि हर्षसे [illegible] हो [illegible] बहाते हुए [illegible] इस प्रकार बोले

देवर्षय ऊचुः

गजानन यदि स्वामिन् प्रसन्नो वरदोऽसि मे। तदा भक्तिं ददस्वैकां त्वदीयां [illegible] ॥
लोभासुरस्य देवेश कृता शान्तिः सुखप्रदा। तथा जगति सर्वं [illegible] भवेत् ॥
अधुना देवदेवेश कर्मयुक्ता द्विजातयः। [illegible] ॥
स्वस्वधर्मरताः सर्वे कृतास्त्वया गजानन। [illegible] ॥
[illegible]

रविस्वरूपं रविभासहीनं हरिस्वरूपं हरियोधहीनम् ।
शिवस्वरूपं शिवभासनाशं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥
महेश्वरीस्थं च सुशक्तिहीनं प्रभुं परेशं परयन्द्यमेवम् ।
अचालकं चालकवीजरूपं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥
शिवादिदेवैश्च खगैश्च वन्द्यं नरैर्लतावृक्षपशुप्रमुख्यैः ।
नराचरैर्लोकविहीनमेकं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥
मनोवचोहीनतया सुसंस्थं निवृत्तिमात्रं ह्यजमव्ययं तम् ।
तथापि देवं पुरसंस्थितं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥
वयं सुधन्या गणपस्तवेन तथैव मर्त्यार्चनतस्तथैव ।
गणेशरूपाय कृतास्त्वया तं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥
गजास्यवीजं प्रवदन्ति वेदास्तदेव चिह्नेन च योगिनस्त्वाम् ।
गच्छन्ति तेनैव गजानन त्वां गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥
पुराणवेदाः शिवविष्णुकाद्याः शुकादयो ये गणपस्तवे वै ।
विकुण्ठिताः किं च वयं स्तुवीमो गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥

देवर्षि बोले—जो विदेह (देहाभिमानशून्य) रूपसे स्थित हैं; भवबन्धनका नाश करनेवाले हैं; सदा स्वानन्दरूप-में स्थित तथा आत्मानन्द प्रदान करनेवाले हैं, उन अमेय सांख्य ज्ञानके लक्ष्यभूत भगवान् गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं । जो मुनीश्वरोंके लिये वन्दनीय, विधि-बोधसे रहित, उत्तम बुद्धिके दाता, बुद्धिधारी, प्रशान्तचित्त, निर्विकार तथा सर्वाङ्गपूर्ण हैं, उन गजाननका हम भक्तिपूर्वक भजन करते हैं । जिनका स्वरूप अमेय (मानातीत) है, जो हृदयमें विराज-मान हैं; 'मैं एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म हूँ'—यह बोध जिनका स्वरूप है; जो भ्रमका नाश करनेवाले हैं, जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है तथा जो अपाररूप हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं । जिनका स्वरूप जगत्को मापनेवाला, अर्थात् विश्वव्यापी है; इस प्रकार जो जगदीश्वर, अगम्य, सबके आदि तथा जगत् आदिसे हीन हैं; तथा जो अनात्मा (अज्ञानी) पुरुषोंको मोहमें डालनेवाले हैं, उन पुराणपुरुष गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं । जो न तो पृथ्वीरूप हैं, न जलके रूपमें प्रकाशित होते हैं; न तेज, वायु और आकाशमें स्थित हैं, उन पञ्चविध विभूतियोंसे रहित गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं । जो न विश्वमें हैं, न तैजसमें हैं और न प्राज्ञ ही हैं; जो समष्टि और व्यष्टि, दोनोंमें विराजमान हैं, उन अनन्तव्यापी निर्गुण एवं परमार्थस्वरूप गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं । जो न तो गुणोंके स्वामी (प्रधान)में हैं, न बिन्दुमें विराजमान हैं; न बोधमय देही हैं और न बुण्डि ही हैं; जिन्हें ज्ञानीजन सुयोगहीन और योगमें स्थित कहते हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं । जो अनागत (भविष्य) हैं, गजग्रीवागत हैं, उन गणेशको हम उस आकारसे युक्त कैसे कहें ! तथापि जो सर्वरूप हैं और प्रत्येक शरीरमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं, उन गजाननका हम भक्ति-भावसे भजन करते हैं । नाथ ! यदि आपने कुछ भी धारण नहीं किया है, तब हम कैसे इस सम्पूर्ण जगत्की सेवा कर सकते हैं । अतः ऐसे अचिन्त्य महात्मा गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं ।

जो भक्तजनोंको उत्तम सिद्धि देनेवाले देवता हैं; सकाम पुरुषोंको यहाँ अभीष्ट सौख्य प्रदान करते हैं और निष्काम भक्तोंके भव-बन्धनको दूर करते हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं । जो मुनीन्द्रोंके सेव्य हैं और असुर भी जिनकी भलीभाँति सेवा करते हैं; जो स्वानन्द धाममें सर्वत्र विराजमान हैं; जिनकी भुजाएँ अनन्त हैं और जिनके चरणमें मूषक ... करते हैं । जो सदा सुखानन्दमय हैं; मूषकके ऊपर ... करते हैं । ...

श्रीगणेश-भक्त केवट भुशुण्डी

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

(गीता ९। ३०-३१)

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा निरन्तर भजन करता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है (अर्थात् उसने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि परमात्माके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है)। इसलिये वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली शान्तिको प्राप्त होता है।'

भगवान् श्रीरामकी भी यही घोषणा है—

'सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥'

(मानस ५। ४३। १)

* * *

प्राचीनकालकी बात है, दण्डकारण्य प्रदेशके नन्दुर-नामक प्रसिद्ध नगरमें नाना-नामक एक केवट रहता था। नाम मलिन था ही, पूर्वकर्मके प्रभाव एवं सङ्ग-दोषसे वह अत्यन्त कुटिल और क्रूर भी हो गया था। करुणा तो उसे छू भी न सकी थी। चौर-कर्ममें वह बाल्यकालसे ही अभ्यस्त हो गया था। उसकी आयुके साथ ही उसके दुर्गुणोंमें भी वृद्धि होती गयी। यौवनमें प्रवेश करनेतक तो वह घोर तस्कर, मद्य-मांससेवी तथा परदारा और परधनका हरण करनेवाला अत्यन्त निर्मम नरपशु हो गया था। उसकी दुष्प्रवृत्तियोंकी चरितार्थतामें किंचित् भी व्यवधान उपस्थित करनेवालेका जीवन अरक्षित हो जाता था। न्याय सर्वथा मिथ्या आरोप लेकर दूसरोंका विश्वास-भाजन बनना चाहता। किंतु मनुष्यका वध कर देना उसके लिये एक खेल था। क्षुद्र स्वार्थ-पूर्तिके लिये भी वह निर्दोष व्यक्तियोंकी हत्या कर देता था।

जनता नानाकी क्रूरतासे प्रायः सभी लोग भीत और त्रस्त रहते थे। अतः विवश होकर नन्दुर-नगरके नागरिकोंने उसे निर्वासित कर दिया। दुष्ट नानाको अपनी जन्मभूमिके साथ [illegible] आनन्द प्राप्त करनेके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं रहा। उसने नगरसे दूर उपत्यकाके सघन वनमें ही आवास बनाना अपने लिये सर्वथा निरापद और उपयोगी समझा।

वहाँ सपत्नीक रहता हुआ नाना पूर्ण स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने लगा। सर्वथा निरंकुश क्रूरतम केवट जिसे जहाँ पाता, वहीं लूट लेता। इस प्रकार धन प्राप्तिके लिये उसने अनेक हत्याएँ कीं। वह धनुष-बाण, ढाल-तलवार, पाश तथा अनेक आयुध धारणकर यात्रियोंके लिये दुर्मद बन गया था। उसके पास वस्त्राभूषण तथा विविध सामग्रियोंका ढेर लग गया। अर्थका उसे अभाव नहीं था, किंतु उसका लोभ उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था। वह निर्ममतापूर्वक मनुष्य-वध करता ही जाता था। क्रीडा करते हुए मूक पशुओंको मार डालनेमें उसे अद्भुत आनन्दकी अनुभूति होती थी।

एक दिन वह वन्य पशुओंको मारता और उन्हें छटपटाकर प्राण-त्याग करते देखकर प्रसन्न होता हुआ एक योजन दूर निकल गया। सहसा उसका पैर एक गड्ढेमें पड़ा। उसे मोच आ गयी। नाना कराह उठा। लँगड़ाता हुआ वह गणेशतीर्थके समीप पहुँचा। श्रम निवारणार्थ उसने उस गणेश-कुण्डमें स्नानकर उसका जलपान किया। कुछ देर बाद वह अपने घरके लिये लौटा। मार्गमें उसने गणपतिका स्मरण करते हुए अनन्य गणेशोपासक महामुनि मुद्गलको देखा तो वैरको पैदा भूलकर उन्हें मारने दौड़ा। किंतु उसका हाथ जैसे अवरुद्ध हो गया और उसी समय उसके शस्त्र धरतीपर गिर पड़े। इतना ही नहीं, गजमुखके परम प्रिय भक्त मुद्गलके दर्शनसे उसकी दुष्प्रवृत्तियाँ नष्ट और कुटिल बुद्धि परिवर्तित हो गयी। इस बुद्धिमें इस आकस्मिक परिवर्तनसे नाना आश्चर्यचकित हुआ।

उसी समय मुस्कराते हुए महर्षि मुद्गलने उससे पूछा—'भाई! तुम्हारे शस्त्र पृथ्वीपर कैसे गिर गये?'

तब गणेशजी महाराजके अनुग्रह-प्राप्त मुद्गलके दर्शनसे ज्ञान-वैराग्ययुक्त केवट नानाने आदरपूर्वक उत्तर दिया—'मुने! मैं नाना नामका केवट हूँ। मैंने इस गणेशकुण्डमें स्नान किया और फिर आपका दर्शन करते ही मेरी कुटिल बुद्धि [illegible] हो गयी। मन भी [illegible]'

देवर्षियोंने कहा—गजानन ! स्वामिन् ! यदि आप प्रसन्न होकर हमें वर देना चाहते हैं तो अपनी लोभशून्य सुदृढ़ दीजिये। देवेश्वर ! आपने जो लोभासुरकी शान्ति की है, यह परम सुखदायिनी है। उसीसे आपने सम्पूर्ण ो वरयुक्त कर दिया। देवदेवेश्वर ! अब द्विजातिगण इस भूतलपर अपने-अपने कर्ममें संलग्न होंगे और ो अपने-अपने स्थानोंमें सुखसे रहेंगे। गजानन ! आपने सब लोगोंको अपने-अपने धर्ममें तत्पर कर दिया है। ाज ! अब इसके बाद भी हम कोई उत्तम वर माँग रहे हैं। नाथ ! प्रभो ! जब हम आपका स्मरण करें, न ! तब आप हम सबको संकटहीन कर दिया करें।

एवमुक्त्वा प्रणेमुस्तं गजाननमनामयम्। तानुवाचाथ प्रीतात्मा भक्ताधीनः स्वभावतः॥

ऐसा कहकर देवर्षियोंने रोगादि विकारोंसे रहित गजानन गणेशको प्रणाम किया। तब स्वभावतः भक्तोंके ा रहनेवाले गणेशने प्रसन्नचित्त होकर उनसे कहा—

गजानन उवाच

यच्च प्रार्थितं देवा मुनयः सर्वमञ्जसा। भविष्यति न संदेहो मत्स्मृत्या सर्वदा हि वः॥
भवत्कृतं मदीयं यै स्तोत्रं सर्वत्र सिद्धिदम्। भविष्यति विशेषेण मम भक्तिप्रदायकम्॥
पुत्रपौत्रप्रदं पूर्णं धनधान्यप्रवर्धनम्। सर्वसम्पत्करं देवाः पठनाच्छ्रवणान्नृणाम्॥
मारणोच्चाटनादीनि नश्यन्ति स्तोत्रपाठतः। परकृत्यं च विप्रेन्द्रा अशुभं नैव बाधते॥
संग्रामे जयदं चैव यात्राकाले फलप्रदम्। शत्रूच्चाटनादिषु च प्रशस्तं तद्भविष्यति॥
कारागृहगतस्यैव बन्धनाशकरं भवेत्। असाध्यं साधयेत् सर्वमनेनैव सुरर्षयः॥
एकविंशतिवारं च एकविंशदिनावधिम्। प्रयोगं यः करोत्येव स सर्वसिद्धिभाग् भवेत्॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां ब्रह्मभूतस्य दायकम्। भविष्यति न संदेहः स्तोत्रं मद्भक्तिवर्धनम्॥
एवमुक्त्वा गणाधीशस्तत्रैवान्तरधीयत॥

॥ इति श्रीमुद्गलपुराणे देवर्षिकृतं गजाननस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

गजानन बोले—देवताओ तथा ऋषियो ! आप लोगोंने जो-जो प्रार्थना की है, मेरे स्मरणसे आपकी वे प्रार्थनाएँ सर्वदा एवं अनायास पूर्ण हो जायँगी, इसमें संदेह नहीं है। आपलोगोंद्वारा किया गया मेरा यह सर्वत्र सिद्धि देनेवाला होगा, विशेषतः यह मेरी भक्ति प्रदान करेगा। देवताओ ! यह स्तोत्र पढ़ने और सुननेवा ोंको पुत्र-पौत्र प्रदान करनेवाला, पूर्ण धन-धान्यकी वृद्धि करनेवाला तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंको देनेवाला होगा। स्तोत्रके पाठसे शत्रुओंद्वारा किये गये मारण और उच्चाटन आदिके प्रयोग नष्ट हो जायँगे। विप्रेन्द्र ! दूसरोंका हुआ आभिचारिक प्रयोग और अशुभ कर्म उसमें कभी बाधा नहीं दे सकेगा। यह स्तोत्र संग्राममें विजय और ालमें उत्तम फल देनेवाला होगा। शत्रुके उच्चाटन आदिके लिये किया गया इसका प्रयोग श्रेष्ठ सिद्ध होगा। कारागारमें पड़ा हुआ है, उसके द्वारा पढ़ा गया यह स्तोत्र उसके बन्धनका नाश करनेवाला होगा। देवर्षियो ! स्तोत्रसे ही सारा असाध्य साधन करना चाहिये। जो इक्कीस दिनोंतक प्रतिदिन इक्कीस बार इसका प्रयोग करता है वह सम्पूर्ण सिद्धियोंका भागी होगा। मेरी भक्तिको बढ़ानेवाला यह स्तोत्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तथा ाव प्रदान करनेवाला होगा; इसमें संदेह नहीं है।

ऐसा कहकर गणेशजी वहीं अन्तर्धान हो गये।

॥ इस प्रकार श्रीमुद्गलपुराणमें देवर्षिकृत 'गजानन स्तोत्र' पूरा हुआ ॥

फिर उन समस्त देवताओंने भुशुण्डीकी पूजा की और उनके चरणोंमें प्रणाम कर वे प्रस्थित हुए।

तदनन्तर देवदेव गजाननके अनन्य भक्त भुशुण्डीने वहाँ मङ्गलमूर्ति गणेशजीकी अत्यन्त सुन्दर मूर्ति स्थापित की और वे उनकी षोडशोपचारसे पूजा करते हुए उनके एकाक्षर मन्त्रका जप करने लगे। उनकी अलौकिक गणेश भक्ति एवं मन्त्र-जपके प्रभावसे उनके आश्रमके समीप रहनेवाले हिंसक पशुओंने अपनी सहज हिंसा त्याग दी। वहाँ सिंह और मृग तथा नकुल और सर्पादि समस्त जीव वैर-भाव त्यागकर एक साथ विचरण करने लगे; सर्वत्र सात्त्विकता एवं शान्तिका साम्राज्य व्याप्त हो गया।

इस प्रकार सौ वर्ष बीते। देवदेव गजानन प्रसन्न होकर भुशुण्डीके सम्मुख प्रकट हुए। उन्होंने उनसे कहा—'तुम मेरे ही स्वरूप हो गये। अब तप क्यों करते हो! सर्वथा कृतकृत्य हो। आयु पूर्ण होनेपर तुम मेरा सारूप्य प्राप्त कर लोगे।'

भुशुण्डीकी भक्तिसे प्रसन्न परम प्रभु गजाननने उनसे कहा—'यह स्थल सिद्धि प्रदान करनेवाला नामलक्षेत्र (अमलाश्रम क्षेत्र)* के नामसे प्रसिद्ध होगा। यहाँ आकर मेरा दर्शन करनेवालोंकी कामनाएँ पूरी हुआ करेंगी।'

भुशुण्डीने प्रभुके चरणोंपर मस्तक रख दिया और मुस्कराते हुए करुणामूर्ति सुमुख अन्तर्धान हो गये।†

(गणेशपुराणके आधारपर)

—शिवनाथ दुबे

श्रीगणपतिका जयगान

जय-जय जगवन्दन जय गणपति। गिरिजाके नन्दन जय गणपति॥
कैलास-विहारी जय गणपति। जनके उद्धारी जय गणपति॥
सुर-नर-मुनि-नायक जय गणपति। सबके सुखदायक जय गणपति॥
भव-भीति-विभञ्जन जय गणपति। निज-जन-मनरञ्जन जय गणपति॥
दानव-कुल-घालक जय गणपति। सुर-मुनि-प्रतिपालक जय गणपति॥
मायाके बालक जय गणपति। पशुपतिके बालक जय गणपति॥
जग-सृष्टि-रचैया जय गणपति। षण्मुखके भैया जय गणपति॥
देवान्तकदारण जय गणपति। कमलासुरमारी जय गणपति॥
दुख-संकटहारी जय गणपति। सेवक-सुखकारण जय गणपति॥
अघ-ओघ-विदाहन जय गणपति। कृत-मूषक-वाहन जय गणपति॥
बालेन्दु-विभासित जय गणपति। सिन्दूर-प्रकाशित जय गणपति॥
धृतशुण्ड गजानन जय गणपति। मोदित-पञ्चानन जय गणपति॥
सौभाग्य-विधायक जय गणपति। मुद-मङ्गल-दायक जय गणपति॥
मोदक-मधुराशन जय गणपति। बहुविघ्न-विनाशन जय गणपति॥
जम्बूफल-भक्षक जय गणपति। शरणागतरक्षक जय गणपति॥
धृत-अङ्कुश-पाशक जय गणपति। खल-दैत्य-विनाशक जय गणपति॥
गजवदन विनायक जय गणपति। सुन्दर सब लायक जय गणपति॥
सुर-नर-आनन्दन जय गणपति। याचक-हरिचन्दन जय गणपति॥
विद्याके दाता जय गणपति। सद्बुद्धि-विधाता जय गणपति॥
संकट-संहारी जय गणपति। नित-मङ्गलकारी जय गणपति॥

'दास'

* श्रीगणेशके इक्कीस महाक्षेत्रोंमें इस क्षेत्रकी भी गणना की जाती है।

† श्रीगणेश-भक्तोंके और; चरित मार्च, १९०४के अङ्कमें देखने चाहिये।

क्षमा-प्रार्थना एवं नम्र निवेदन

यं निर्जरासुरनराः सकलार्थसिद्ध्यै
भूयोऽन्तरायशमयेऽनुदिनं नमन्ति ।
तं भक्तकामपरिपूरणकल्पवृक्षं
भक्त्या गणेशमखिलार्थदमानतोऽस्मि ॥

'देवता, असुर और मनुष्य अपने सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि तथा बहुत अन्तरायकी निवृत्तिके लिये प्रतिदिन जिन्हें मस्तक झुकाते हैं, भक्तोंकी कामना-पूर्तिके लिये कल्पवृक्षके समान उदार उन निखिलार्थदाता श्रीगणेशको मैं भक्तिभावसे प्रणाम करता हूँ ।'

भगवान् श्रीगणेशकी मङ्गलमयी अहैतुकी कृपासे उन्हींकी अर्चनाके रूपमें प्रकाशित 'श्रीगणेश-अङ्क' इन पृष्ठोंमें सम्पन्न हो रहा है। भगवान् अनन्त रूपोंमें विलास कर रहे हैं; जो कुछ भी हमारे देखने-सुनने, जानने और चिन्तन करनेमें आता है, वह सब भगवत्स्वरूप ही है। भगवान् ही सब कुछ बने हुए हैं; उनके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ।' अतः किसी भी रूपमें हम उनका भजन कर सकते हैं। निराकार-साकार—सभी रूप उनके हैं। इसी तथ्यको परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके शब्दोंमें हम इस प्रकार समझ सकते हैं—

"सत्य-तत्त्व या परमात्मा एक हैं। वे निर्गुण होते हुए ही सगुण, निराकार होते हुए ही साकार, सगुण होते हुए ही निर्गुण तथा साकार होते हुए ही निराकार हैं। उनके सम्बन्धमें कुछ भी कहना नहीं बनता; और जो कुछ कहा जाता है, सब उन्हींके सम्बन्धमें कहा जाता है। अवश्य ही जो कुछ कहा जाता है, वह अपूर्ण ही होता है; पूर्णका वर्णन किसी भी तरह हो नहीं सकता। परंतु परमात्मा किसी भी अवस्थामें अपूर्ण नहीं हैं; उनका आंशिक वर्णन भी पूर्णका ही वर्णन होता है; क्योंकि उनका अंश भी पूर्ण ही है। इन्हीं परमात्माको ऋषियोंने, संतोंने, भक्तोंने नाना भावोंसे पूजा है और परमात्माने उन सभीकी विभिन्न भावोंसे की हुई पूजाको स्वीकार किया है।

"वे परात्पर सच्चिदानन्दघन एक परमेश्वर ही परम तत्त्व हैं। वे गुणातीत हैं, परंतु गुणमय हैं; विश्वातीत हैं, परंतु विश्वमय हैं। सबमें वे ही व्याप्त हैं; और जिनमें वे व्याप्त हैं, वे सभी पदार्थ—समस्त चराचर भूत उन्ह[ीमें] स्थित हैं। वे विज्ञानानन्दघन परात्पर प्रभु ही ब्रह्मा, महादे[व], महाविष्णु, महाशक्ति, अनन्तानन्दमय साकेताधिपति श्रीरा[म], सौन्दर्यसुधासागर गोलोकाधीश्वर श्रीकृष्ण (भगवान् [...] और शिव-पार्वतीके पुत्र गजमुख गणेश) हैं। ये स[ब] विभिन्न स्वरूप सत्य और नित्य हैं; परंतु अनेक दीख[ते] हुए भी वस्तुतः ये हैं सदा-सर्वदा एक ही।

"साधक या भक्त अपनी-अपनी रुचिके अनुसार इनमें से या इनसे अतिरिक्त अन्य किसी भी एक लीलास्वरूप[की] उपासना आवश्यक समझकर किया करते हैं और उनक[ा] ऐसा करना है भी बहुत ही ठीक। भगवान्‌के अनेक रूपोंकी उपासना एक साथ नहीं की जा सकती; चञ्चल मनको शान्त और एकाग्र करनेके लिये एक ही रूपकी उपासना आवश्यक होती है। अनेक रूपोंकी उपासनासे तो चित्तकी चञ्चलता और भी बढ़ जाती है। इसलिये विचारशील दिव्यदृष्टिप्राप्त सद्गुरु साधककी रुचि, उसकी स्थिति, पात्रता, अधिकार और परिणामको देखकर उसे किसी एक ही रूपकी उपासना बताकर ऐसा मन्त्र भी देते हैं, जिसके द्वारा वह अपने उपास्यदेवका भजन कर सके। परंतु साथ ही यह भी बतला देते हैं कि तुम्हें जिन भगवान्‌की उपासना बतलायी गयी है, एकमात्र भगवान् ये ही हैं; ये ही भिन्न-भिन्न देश-काल-पात्रमें पूजित होते हैं। कोई भी स्वरूप तत्त्वतः इनसे भिन्न नहीं है; जब भिन्न ही नहीं, तब छोटे-बड़ेका तो प्रश्न ही नहीं रह जाता। तुम अपने उपास्य रूपको पूजते रहो, परंतु दूसरेके उपास्यदेवसे द्वेष न करो, उसे नीचा न समझो। यदि तुम ऐसा करोगे तो तुम अपने ही उपास्यदेवसे द्वेष करोगे और उसे नीचा समझोगे; क्योंकि तुम्हारे उपास्यदेव भगवान् ही तो दूसरे लोगोंके द्वारा दूसरे रूपोंमें पूजित होते हैं। यदि तुम यह मान बैठोगे कि दूसरोंके उपास्यदेव भगवान् कोई दूसरे हैं तो ऐसा करके तुम अपने ही भगवान्‌की एक सीमा बाँधकर उसे छोटा और अनेकोंमें से एक बना दोगे। फिर वह परात्पर नहीं रहेगा; लोकपालोंकी भाँति एक देवताविशेष रह जायगा। तब ऐसे 'अल्प' और 'सीमाबद्ध' भगवान्‌से तुमको असीम भूमाकी प्राप्ति नहीं होगी। तुम अपने ही दोषसे स्वयं परात्पर परमेश्वरके दर्शनसे वञ्चित रह जाओगे। इसलिये अपने ही रूपमें मनन्यभाव

आरति गजवदन विनायककी !

आरति गजवदन विनायककी !
सुर-मुनि-पूजित गणनायककी !! टेक ॥

एकदन्त शशिभाल गजानन,
विघ्नविनाशक शुभगुन-कानन,
शिवसुत वन्द्यमान-चतुरानन,
दुःखविनाशक सुखदायककी ॥ सुर० ॥

ऋद्धि-सिद्धि-स्वामी समर्थ अति,
विमल बुद्धिदाता सुविमल-मति,
अघ-वन-दहन, अमल अविगत-गति,
विद्या-विनय-विभव-दायककी ॥ सुर० ॥

पिङ्गलनयन, विशाल शुण्डधर,
धूम्रवर्ण शुचि, वज्राङ्कुश-कर,
लम्बोदर बाधा-विपत्ति-हर,
सुरवन्दित सब विधि लायककी ॥ सुर० ॥

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

रखो, परंतु दूसरोंके इष्टोंको अपने ही इष्टका रूपान्तर समझकर उन सभीका सम्मान करो। दूसरे सभी स्वरूपोंको अपने इष्टके विभिन्न स्वरूप मानना ही 'अनन्यता' है। इसके विपरीत करना तो 'अन्य'को आश्रय देना है, जो अनन्य भक्तके लिये व्यभिचार है।" अस्तु।

शास्त्रोंमें भगवान्‌के सच्चिदानन्दमय पाँच मुख्य विग्रह माने गये हैं। ये सभी विग्रह अनादि, अनन्त एवं परात्पर हैं। सभीके भिन्न भिन्न लोक हैं, जो चिन्मय एवं शाश्वत हैं। सबके अलग-अलग स्वरूप हैं, अलग-अलग शक्तियाँ हैं, आयुध हैं, वाहन हैं, पार्षद हैं, सेवक हैं, सेवाके विविध प्रकार हैं तथा उपासना एवं अर्चाकी विविध पद्धतियाँ हैं। ये सभी स्वरूप पूर्ण हैं—लीलाक्रमसे ही उनमें परस्पर मुख्यता एवं गौणता दृष्टिगोचर होती है। ये पाँच स्वरूप हैं—शिव, शक्ति, विष्णु, गणेश और सूर्य। इन पाँच देवोंकी एक साथ भी उपासना होती है और पृथक्-पृथक् भी। इन पाँच भगवद्विग्रहोंमेंसे भगवान् शिव, शक्ति एवं भगवान् विष्णुकी तो 'कल्याण'के द्वारा अर्चना हो चुकी है। इन तीनोंके तत्त्व, स्वरूप, उपासना, लोक, आयुध, वाहन, पार्षद आदिकी विशद चर्चा स्वतन्त्र विशेषाङ्कों, जैसे—'शक्ति-अङ्क', 'शिवाङ्क', 'श्रीविष्णु-अङ्क'-के रूपमें हो चुकी है। श्रीराम और श्रीकृष्णके सम्बन्धमें भी, जो भगवान् विष्णुके ही अवतार अथवा अवतारी माने गये हैं—इससे अधिक विशेषाङ्क निकल चुके हैं। भगवान् गणेश एवं भगवान् सूर्यकी अर्चना अभी नहीं हो पायी थी। अतः इस बार भगवान् गणपतिकी अर्चनाके विचारसे यह प्रयास हुआ है।

भगवान् गणेशकी इस अर्चनामें हम तो केवल निमित्त बने हैं; वस्तुतः इस अर्चनाका सम्पूर्ण श्रेय है—हमारा एवं 'कल्याण'का सदासे अनुग्रह तथा प्रीति रखनेवाले परम पूजनीय आचार्यों, संतों, महात्माओं, भक्तों, विद्वानों, विचारकों, लेखकों, कवियों, साधकों आदिको, जिन्होंने अपनी सहज उदारतासे अपनी श्रेष्ठ एवं अनुभूतिपूर्ण रचनाएँ भेजकर, अमूल्य सुझाव देकर हमें सहयोग दिया है। हम इन सभी पूजनीय गुरुजनों एवं बन्धुओंके प्रति हृदयसे कृतज्ञ हैं और प्रार्थना करते हैं कि भविष्यमें भी उनका इसी प्रकार सहयोग और स्नेह हमें प्राप्त होता रहे।

भगवान् गणेशके सम्बन्धमें
फैली हुई हैं, जैसे—(१)
(२) गणेशका आदि स्थान दक्षि
की उपासना आदि अति निम्न स्त
सम्प्रदाय दसवीं शताब्दीमें प्रादुर्भूत
दोष किसी विद्वान्‌का नहीं है; अ
द्वारा हमारी संस्कृति, सभ्यता एवं
शिथिल करनेका जो कुप्रयास हुआ
हम इस प्रकारकी अनर्गल बातें सोच
अङ्कसे इन भ्रान्तियोंका बहुत कु
—ऐसा हमारा विश्वास है।
शैलीको आदर नहीं देता; यह शास
प्रतिपादनको ही महत्त्व देता
मङ्गलमयी परम्पराका अनुसरण क
गणेशके परात्पर स्वरूपका विशद
भगवान् अनन्त हैं; उनके चरित्र प

'रघुबीर चरित अपार बारिधि पा

ऐसी स्थितिमें हमारा यह प्रयास
कैसेके उद्देश्यसे उड़नेवाले क्षुद्र मच्छ

भगवान् गणेशके सम्बन्धमें सम
प्राप्त कर सके, इसके लिये हमने इ
विभिन्न भाषाओंमें उपलब्ध साहित्य
किया है। आशा है, अध्यात्मप्रेमी
ग्रन्थोंका स्वाध्याय करनेकी चेष्टा करें

ऋषियोंका उद्घोष है—'दे
अर्थात् स्वयं देवस्वरूप होकर—देव
अर्चना करें। 'कल्याण' विशुद्ध
कारण इसके प्रवर्तक एवं आदि सम्
श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
आजीवन अक्षरशः पालन करते रहे।
भगवान्‌के 'मन्त्र' बन गये थे; देखि
'स्थितिसाम्ये भेदभावनम्।' (
भगवान् और उनके भक्तमें कोई अन
भगवान्स्वरूप ही हो जाता है—श्री शि
इतना होनेपर भी वे अपने व्यवहारमें
सबके लिये पूर्ण सचेष्ट थे कि 'कल्याण'